

# Public Finance

---

DECO404



**L** OVELY  
**P** ROFESSIONAL  
**U** NIVERSITY

---



लोक वित्त  
**PUBLIC FINANCE**

Copyright © 2012 Laxmi Publications (P) Ltd.  
All rights reserved

Produced & Printed by  
**LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.**  
113, Golden House, Daryaganj,  
New Delhi-110002  
for  
Lovely Professional University  
Phagwara

**पाठ्यक्रम**  
**(SYLLABUS)**  
**लोक वित्त**  
**(Public Finance)**

**उद्देश्य**

- इस विषय (कोर्स) का उद्देश्य लोक वित्त की मूल अवधारणाओं से, विशेषतः समष्टि अर्थशास्त्र की नीतियों के संदर्भ में, छात्रों को अवगत कराना है। छात्रों को सरकारी लोक वित्त नीतियों का सैद्धांतिक विधि द्वारा विश्लेषण करने की जानकारी देना। यह विषय (कोर्स) लोक वित्त पर समष्टि अर्थशास्त्र के अनुप्रयोगों पर बल देता है।

**Objectives**

- The aims of this course are to introduce basic concepts of public finance, particularly in the context of macroeconomics policies, to the students. This course will provide students relevant theoretical methods to analyze government public finance policies. The course will emphasize on application of advanced macroeconomic to public finance.

<b>Sr. No.</b>	<b>Topic</b>
1	Meaning and scope of Public Finance; Principles of maximum social advantage; Issues related to economic activities of the public sector.
2	Instrument of public finance: concepts and role of budget; Public revenue: Revenue receipts and capital receipts.
3	Taxation and its cannons; Division of tax burden: Expediency theory.
4	Socio – political theory; Ability to pay theory; objective and subjective indices.
5	Incidence of taxes and the effects of a tax, Forward and backward shifting; Theories of tax shifting: the concentration theory; Diffusion theory.
6	Classification and choice of taxes: Direct and indirect, VAT; Effect of taxation on production and growth.
7	Public Debt: Meaning of public and private debt and its limitations; Public debt, economic growth and inflation.
8	Public expenditure: Meaning and nature of public expenditure, Wagner’s law of Increasing of state activities; Effects of public expenditure and economic stabilization; Public budget: Introduction, types.
9	Federal Finance: The rationale and principles; Indian Federal Finance: Historical background, financial federalism under constitution.
10	Finance Commission: Introduction, rationale.

## विषय-सूची

इकाई (Units)

(CONTENTS)

पृष्ठ संख्या (Page No.)

1. लोक-वित्त का अर्थ एवं क्षेत्र (Meaning and Scope of Public Finance)	1
2. अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धांत (Principles of Maximum Social Advantages)	25
3. सार्वजनिक वित्त (व्यय) के आर्थिक गतिविधियों से संबंधित मुद्दे [Issues Related to Economic Activities of Public Finance (Exp.)]	36
4. सार्वजनिक वित्त के साधन : बजट का अर्थ एवं भूमिका (Instrument of Public Finance: Concepts and Role of Budget)	42
5. लोक आगम : आगम प्राप्ति एवं पूँजी प्राप्ति (Public Revenue: Revenue Receipts and Capital Receipts)	49
6. कर पद्धति एवं इसके सामान्य मापदंड (Taxation and Its Canons)	61
7. काय-साधक सिद्धांत (Expediency Theory)	77
8. सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत (Socio-Political Theory)	80
9. भुगतान सामर्थ्य के सिद्धांत : वस्तुपरक एवं व्यक्तिपरक दृष्टिकोण (Ability to Pay Theory: Objective and Subjective Indices)	83
10. कराघात (कर का दबाव), कर-विवर्तन एवं करापात (कर का भार) (Impact, Shifting and Incidence of Taxation)	99
11. कर-विवर्तन का सिद्धांत : संकेंद्रण एवं विकेंद्रण सिद्धांत (Theories of Tax Shifting: Concentration and Diffusion Theory)	105
12. प्रसारण सिद्धांत (Diffusion Theory)	119
13. करों का वर्गीकरण और चयन : प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष, वैट (Classification and Choice of Taxes: Direct and Indirect, Vat)	122
14. उत्पादन और वृद्धि पर कराधान के प्रभाव (Effects of Taxation on Production and Growth)	143
15. लोक ऋण : सार्वजनिक और निजी ऋण के अर्थ एवं इसकी सीमाएँ (Public Debt: Meaning of Public and Private Debt and its Limitation)	162
16. लोक ऋण के प्रभाव : सार्वजनिक ऋण तथा आर्थिक विकास (Effect of Public Debt: Public Debt and Economic Growth)	173
17. लोक व्यय (Public Expenditure)	197
18. लोक व्यय के प्रभाव (Effects of Public Expenditure)	213
19. सार्वजनिक बजट (Public Budget)	233
20. संघीय वित्त व्यवस्था (The Federal Finance)	249
21. भारत में संघीय वित्त का विकास (Development of Federal Finance in India)	265
22. भारतीय वित्त आयोग (Indian Finance Commission)	278
23. बारहवें एवं तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशें (Implementation of XIIth and XIIIth Finance Commission)	293
24. भारतीय लोक ऋण (Indian Public Debt)	309
25. भारतीय कर प्रणाली (Indian Tax System)	326
26. श्री एल. के. झा समिति की सिफारिशें (Recommendations of Shri L. K. Jha Committee)	345
27. कर सुधारों पर राजा चलेया समिति की रिपोर्ट (Recommendations of Raja J. Chelliah Committee on Tax Reforms)	350
28. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों पर केलकर समिति की सिफारिशें (Recommendations of Kelker Committee on Direct and Indirect Tax)	356
29. राज्यों का वित्त (States Finance)	362
30. स्थानीय वित्त (Local Finance)	389

नोट

## **इकाई-1: लोक वित्त का अर्थ एवं क्षेत्र**

### **(Meaning and Scope of Public Finance)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 1.1 लोक वित्त का अर्थ (Meaning of Public Finance)
- 1.2 लोक वित्त का महत्त्व एवं क्षेत्र (Importance and Scope of Public Finance)
- 1.3 आधुनिक राज्य के कार्य (Functions of Modern States)
- 1.4 लोक वित्त की विषय-सामग्री (Subject-matter of Public Finance)
- 1.5 लोक तथा निजी वित्त (Public and Private Finance)
- 1.6 सरकारी या राष्ट्रीय ऋण (National Debt)
- 1.7 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में लोक वित्त का महत्त्व (Role of Public Finance in National Economy)
- 1.8 सारांश (Summary)
- 1.9 शब्दकोश (Keywords)
- 1.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 1.11 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- लोक वित्त का महत्त्व एवं उसके क्षेत्र को समझने में।
- आधुनिक राज्य के कार्यों की भलीभाँति जानकारी प्राप्त करने में।
- लोक वित्त की विषय-सामग्री को समझने हेतु।
- लोक वित्त तथा निजी-वित्त की व्याख्या हेतु।
- राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में लोक वित्त के महत्त्व को जानने में।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

लोक वित्त अपने आपमें नया विषय नहीं है और इसका अध्ययन प्राचीनकाल से होता आया है किन्तु वैज्ञानिक ढंग से इसका अध्ययन वर्तमान में ही सम्भव हो पाया है। प्राचीनकाल में इस विषय का क्षेत्र संकुचित था किन्तु आज इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो चुका है। यद्यपि प्राचीन एकतन्त्रीय प्रणाली में भी आय-व्यय का ब्योरा रखा

**नोट**

जाता था किन्तु उसका प्रारूप छोटा होता था क्योंकि राज्य के कार्य अत्यधिक सीमित थे। इसके विपरीत आधुनिक राज्यों के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। विशेषकर कल्याणकारी राज्यों की स्थापना के पश्चात् तो राज्य लोगों के आर्थिक जीवन में इतनी गहनता से प्रवेश कर चुका है कि वर्तमान में उसकी अनुपस्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वर्तमान में राज्य का कार्य केवल सुरक्षा का प्रबन्ध करना तथा कानून और न्याय की व्यवस्था तक ही सीमित नहीं है बल्कि उसे अनेक कल्याणकारी कार्य भी करने होते हैं। उदाहरणार्थ, भारत तथा विश्व के अनेक राज्यों को अनेक कार्य, जैसे-सामाजिक सुरक्षा, जनता का संरक्षण, न्याय, रेलवे, भारी विद्युत संयन्त्रण व अणु-शक्ति जैसी अन्य जनोपयोगी सेवाएँ आदि सम्पन्न करने होते हैं। आर्थिक नियोजन तथा नियोजित विकास की लहर ने जो राज्यों के कार्यों की रूपरेखा में पूर्णतया परिवर्तन कर दिया है। स्वाभाविक है कि राज्यों के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होने से आय और व्यय के ढाँचे में भी वृद्धि होगी। इस प्रकार यह कहना कठिन होगा कि राज्य जिसका आरम्भ मात्र जीवन के लिए हुआ था, वह आज अच्छे मानव-जीवन के लिए कार्यरत है। स्पष्ट है कि राज्यों के बढ़ते हुए कार्यकलापों के फलस्वरूप राज्य की आय तथा व्यय के लिए उचित प्रबन्ध की आवश्यकता अनुभव हुई और उसका परिणाम यह हुआ कि आज लोक वित्त और उसकी समस्याओं का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाने लगा।

### 1.1 लोक वित्त का अर्थ (Meaning of Public Finance)

लोक वित्त का सम्बन्ध लोक-सत्ताओं या सरकारी सत्ताओं (Public authorities) की आय तथा व्यय से होता है। 'लोक' (Public) शब्द का प्रयोग साधारणतः सरकार (Government) या राज्य (State) के लिए ही किया जाता है। लोक-सत्ताओं में सभी प्रकार की सरकारें सम्मिलित की जाती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि लोक वित्त का सम्बन्ध केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय-सभी प्रकार की सरकारों के आय-व्यय से होता है और लोक वित्त के अन्तर्गत इन सभी प्रकार की सरकारों के आय-व्यय का अध्ययन किया जाता है। लोक वित्त को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित किया है। कुछ मुख्य-मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

प्रो. डाल्टन के शब्दों में, "लोक वित्त का सम्बन्ध लोक-सत्ताओं की आय व व्यय से तथा इन दोनों के परस्पर समायोजन से है।"<sup>1</sup>

प्रो. फिण्डले शिराज के अनुसार, "सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा साधनों की प्राप्ति एवं व्यय से सम्बन्धित सिद्धान्तों का अध्ययन ही राजस्व कहलाता है।"<sup>2</sup>

बेस्टेबल ने इसको परिभाषित करते हुए कहा है, "राजकीय साधनों की पूर्ति एवं उनका उपयोग ही अध्ययन की सामग्री है जिसे राजस्व कहा जाता है।"<sup>3</sup>

प्रो. मेहता के शब्दों में, "राजस्व राज्य के मौद्रिक तथा साख सम्बन्धी साधनों का अध्ययन है।"<sup>4</sup>

विश्लेषण-विभिन्न विद्वानों द्वारा लोक वित्त की उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि लोक वित्त का मूल अर्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय शासन-सत्ताओं के आय तथा व्यय से है। लेकिन वर्तमान समय में यह अर्थ और अधिक विस्तृत और व्यापक हो गया है। अब लोक वित्त का अध्ययन केवल सरकारी आय-व्यय से सम्बन्धित नहीं अपितु इसके अन्तर्गत वित्तीय प्रशासन, लेखा परीक्षण व वित्तीय नियन्त्रण भी सम्मिलित किया जाता है।

1. "It deals with the income and expenditure of public authorities and with the adjustment of one to another."  
—Dalton
2. "The study of the principles underlying the spending and raising of funds public authorities."  
—Findlay Shirras
3. "Public Finance deals with the expenditure and income of public authorities of the State and their mutual relation as also with the financial administration and control."  
—C.F. Bastable
4. "Public Finance then constitutes a study of the monetary and credit resources of the State."  
—J.K. Mehta

## नोट

अतः लोक वित्त की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं—यह वह विज्ञान है जो सार्वजनिक आय-व्यय, ऋण तथा वित्तीय प्रशासन, लेखा परीक्षण व वित्तीय नियन्त्रण के मूल सिद्धान्तों का तथा राजकोषीय क्रियाओं व राजकोषीय नीतियों का समाज और आर्थिक-व्यवस्था पर होने वाली प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है।

सैन्डफोर्ड ने लोक वित्त को निम्न प्रकार परिभाषित किया है, “लोक वित्त का अर्थशास्त्र विशेष रूप से सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से सम्बन्धित है। इसमें हम उन आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं जो राज्य अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में उठती हैं, जैसे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच साधनों का विभाजन किस प्रकार किया जाता है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत सरकारी व्यय के विभिन्न साधनों की सन्तुष्टि के लिए साधनों का आवंटन कैसे किया जाता है।”

स्पष्ट है कि लोक वित्त या राज वित्त (Public Finance) विभिन्न सरकारों की आय एवं व्यय के तरीकों एवं समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करता है। लोक निकाय (public bodies) जिन रीतियों से अपना धन खर्च करते हैं तथा जिन उपायों से आय तथा ऋण प्राप्त करते हैं, उन उपायों व रीतियों को ही लोक वित्त की क्रियाओं का नाम दिया जाता है। ये उपाय चूँकि राजकोष (fiscal or public treasury) की क्रियाओं से सम्बन्ध रखते हैं, अतः उन्हें राजकोषीय क्रियाएँ (fiscal operations) भी कहा जाता है। इस प्रकार राजकोषीय क्रियाएँ तथा राजकोषीय नीतियाँ (fiscal policies) लोक वित्त के अभिन्न अंग बन गये हैं। राजकोषीय क्रियाओं तथा राजकोषीय नीतियों का प्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय आय, देश के जीवन-स्तर (standard of living), धन तथा आय के वितरण तथा मुद्रा बाजार (money market) आदि पर पड़ता है और उससे देश का सम्पूर्ण आर्थिक जीवन प्रभावित होता है। इस प्रकार, देश का हर व्यक्ति लोक वित्त के उपायों से सम्बन्धित होता है।



नोट्स राजकोषीय नीतियाँ लोक वित्त के अभिन्न अंग हैं।

## 1.2 लोक वित्त का महत्त्व एवं क्षेत्र (Importance and Scope of Public Finance)

लोक वित्त के महत्त्व एवं क्षेत्र का अध्ययन हम निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे—

- (1) राज्य के कार्य,
- (2) आर्थिक जीवन पर राजकोषीय क्रियाओं का प्रभाव, तथा
- (3) लोक वित्त की विषय सामग्री।

(1) **राज्य के कार्य (Functions of the State)**—प्राचीन अर्थशास्त्री चूँकि हस्तक्षेप न करने की अबन्ध नीति (laissez faire) में विश्वास करते थे, अतः उन्होंने इस बात का समर्थन किया कि सरकार के कार्यों की संख्या कम से कम होनी चाहिए। सन् 1776 में एडम स्मिथ ने “वेल्थ ऑफ नेशन्स” (Wealth of Nations) नामक अपनी पुस्तक में राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम एक लेख लिखा। एडम स्मिथ के अनुसार, “एक पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न राष्ट्र” के कर्त्तव्यों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—

- (क) अन्य राष्ट्रों के आक्रमण तथा अन्याय के विरुद्ध राष्ट्र को सुरक्षा प्रदान करना,
- (ख) नागरिकों के बीच आन्तरिक शान्ति, न्याय व व्यवस्था बनाये रखना, तथा
- (ग) कुछ ऐसे सार्वजनिक कार्यों एवं सार्वजनिक संस्थाओं की स्थापना करना एवं उनका संचालन करना, जो यद्यपि सम्पूर्ण समाज के लिए अत्यधिक लाभदायक हों, परन्तु जिनको निजी व्यक्तियों द्वारा प्रारम्भ करने तथा चलाने में उन्हें मुनाफा न हो। उनका मत था कि ऐसे सार्वजनिक कार्यों में उन कार्यों को मुख्य माना जाना चाहिए जिनके द्वारा राज्य में व्यापार व वाणिज्य की सुविधाजनक स्थितियाँ उत्पन्न हों। यह तो स्पष्ट ही है कि ये तीनों कार्य किसी भी सरकार के प्रारम्भिक कार्य हैं। किसी ऐसी स्थिर राजनैतिक व्यवस्था की कल्पना करना भी असम्भव है जिसमें कि इन कार्यों को मूलभूत कार्य न माना जाता हो। वर्तमान



## नोट

समय में सरकार आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए जो कार्य करती है उन्हें एडम स्मिथ के तृतीय वर्ग के कार्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि 18वीं शताब्दी के इंग्लैण्ड में एडम स्मिथ ने भी सरकारी खर्च की इन दो शाखाओं (अर्थात् आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों) के विकास पर जोर दिया था।

किन्तु अनेक अर्थशास्त्रियों, जैसे—इंग्लैण्ड में **रोबर्ट ओविन (Robert Owen)** और **जॉन स्टुआर्ट मिल** ने जो कि संस्थापक सम्प्रदाय (classical school) के अनुयायी थे, अबन्ध नीति के दोषों की ओर लोगों का ध्यान दिलाया और सरकारी हस्तक्षेप की वकालत की। फ्राँस में **सिसोमण्डी (Sisomandi)** ने भी अबन्ध नीति (Laissez faire) के सिद्धान्त की आलोचना की और गरीबों के हितों की रक्षा के लिए राजकीय नियन्त्रण का सुझाव दिया। विभिन्न देशों के समाजवादियों (socialists) ने किसी न किसी रूप में उत्पादन के साधनों के समाजीकरण (socialization) का इसलिए सुझाव दिया, जिससे श्रमिक वर्ग को प्रचलित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के शोषण से बचाया जा सके। सन् 1930 की गम्भीर आर्थिक मन्दी (Economic depression) तथा कीन्स द्वारा रोजगार के सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन तो अबन्ध नीति के लिए मौत की घण्टी ही बन गई। कीन्स ने बताया कि राज्य को राजकोषीय क्रियाओं के द्वारा रोजगार में वृद्धि करना और उसे उच्च स्तर पर बनाये रखना सम्भव है। इस प्रकार आर्थिक जीवन में सरकारी हस्तक्षेप तथा प्रवेश का समर्थन बराबर बढ़ता गया और यह क्रम आज भी चालू है।

किन्तु राज्य की धारणा (concept) तथा राज्य के कार्यों की रूपरेखा में शनैः शनैः परिवर्तन होता रहा है। यह बात अब अत्यन्त व्यापक रूप से स्वीकार की जाती है कि राज्य का उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का कल्याण अधिक से अधिक करना है। राज्य की इसी धारणा के फलस्वरूप राज्य के कार्यों का विस्तार हुआ है और इसीलिए उसे चिकित्सा सुविधाओं, शिक्षा, निर्धन-सहायता व स्वास्थ्य रक्षा तथा अन्य अनेक जनोपयोगी सेवाओं की व्यवस्था करनी होती है, जिससे सम्पूर्ण समाज के ही कल्याण (welfare) में वृद्धि की जा सके। वर्तमान समय में, राज्य कई प्रकार से अपनी जनता की सहायता करता है। उदाहरणार्थ, वह रेलों, सड़कों, बिजली तथा डाक व तार जैसी मूलभूत सेवाओं की व्यवस्था करके देश की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करता है, वह आय के वितरण में पाई जाने वाली असमानताओं को कम करने के लिए आवश्यक पग उठाता है, वह कमी वाली वस्तु के उत्पादन तथा वितरण पर नियन्त्रण लगाता है, वह आवश्यक पदार्थों की कीमतों को नियन्त्रित करता है और मुद्रा-स्फीति (inflation) तथा मन्दी (depression) को रोकने के लिए तथा उनके प्रतिकार के लिए यथोचित पग उठाता है। युद्धकाल में, राज्य देश के सम्पूर्ण साधनों पर अपना नियन्त्रण रखता है तथा उन्हें विशेष दिशा में इसलिए गतिशील करता है ताकि युद्ध का मुकाबला सफलतापूर्वक किया जा सके।

उन्नत एवं विकसित देशों (advanced countries) की सरकारें इस बात के लिए प्रतिबद्ध अथवा वचनबद्ध होती हैं कि वे देश के रोजगार का एक स्थिर एवं व्यापक स्तर बनाये रखें। उनका लक्ष्य ही यह होता है कि देश की अर्थव्यवस्था (economy) यथासम्भव पूर्ण रोजगार के स्तर पर कार्यशील रहे। वे ऐसे कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं जिनके द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो तथा अर्थव्यवस्था निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर रहे। जहाँ तक अल्पविकसित अथवा विकासशील देशों (underdeveloped or developing countries) की सरकारों का प्रश्न है, वे भी प्रगतिशील आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के लिए वचनबद्ध (committed) होती हैं। अतः हो सकता है कि ऐसे देश अपने सम्पूर्ण साधनों का ही योजनाबद्ध विकास करें। स्पष्ट है कि विकसित, अल्पविकसित अथवा विकासशील सभी देशों में राज्य के कार्यों में ठोस वृद्धि हुई है और सम्भावना यही है कि सरकार के दायित्वों एवं जिम्मेदारियों में ज्यों-ज्यों वृद्धि होगी, वैसे-वैसे राज्य के कार्यों में और विस्तार होगा। हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियाँ इसी तथ्य की पुष्टि करती हैं। हमारा देश एक अल्पविकसित देश है। अतः विकास-योजनाओं को लागू करने के लिए सरकार ज्यों-ज्यों नये-नये दायित्व अपने ऊपर ले रही है, त्यों-त्यों आर्थिक जीवन में उसका प्रवेश बढ़ता जा रहा है और उसके कार्यों की संख्या बढ़ती जा रही है।



क्या आप जानते हैं? सन् 1776 में एडम स्मिथ ने Wealth of Nations नामक अपनी पुस्तक में राज्य के कार्यों के संबंध में सर्वप्रथम एक लेख लिखा।

नोट

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. लोक वित्त का संबंध लोक-सत्ताओं या सरकारी सत्ताओं की आय तथा ..... से है।
2. .... शब्द का प्रयोग साधारणतः सरकार या राज्य के लिए ही किया जाता है।
3. लोक वित्त की क्रियाओं को ..... क्रियाएँ भी कहा जाता है।
4. .... में एडम स्मिथ ने 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' नामक अपनी पुस्तक में राज्य के कार्यों के संबंध में सर्वप्रथम एक लेख लिखा।
5. सन् ..... में गम्भीर आर्थिक मंदी हुई।

### 1.3 आधुनिक राज्य के कार्य (Functions of Modern States)

इन बढ़ते हुए कार्यों को पूरा करने के लिए राज्य को अपना खर्च बढ़ाना होता है और खर्च की पूर्ति के लिए उसे लोक वित्त में दिये गये तरीकों को अपनाकर विभिन्न स्रोतों से धन प्राप्त करना होता है। अतः राज्य के कार्यों व उत्तरदायित्वों का विस्तार होने के साथ ही साथ आजकल लोक वित्त के अध्ययन का महत्त्व एवं क्षेत्र भी निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है।

आधुनिक राज्य के कार्यों के विश्लेषण से पता चलता है कि जन-कल्याण (welfare) के लिए निम्नलिखित सेवाओं की आवश्यकता होती है—

- (a) आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा (security) तथा सैनिक, पुलिस तथा अन्य सुरक्षात्मक सेवाओं के लिए व्यय की व्यवस्था करना।
- (b) न्याय (justice) अथवा विवादों का निपटारा।
- (c) आर्थिक उद्यमों तथा अन्य ऐसी सेवाओं का नियमन व नियन्त्रण जैसे कि सिक्का ढलाई (coinage), बाट तथा माप (weight and measures), व्यावसायिक गतिविधियों का नियमन (regulation) तथा कुछ उद्यमों (enterprises) की सरकारी स्वामित्व व संचालन।
- (d) शिक्षा, सामाजिक सहायता, सामाजिक बीमा, स्वास्थ्य नियन्त्रण तथा ऐसी ही अन्य क्रियाओं के द्वारा सामाजिक तथा सांस्कृतिक कल्याण में वृद्धि करना।
- (e) औषधियों का निर्माण व बिक्री, मद्य की बिक्री, जुआ तथा अन्य समाज विरोधी कार्यवाहियों पर नियन्त्रण लगाकर नैतिक स्तरों का अनियमन करना।
- (f) प्राकृतिक साधनों का संरक्षण।
- (g) परिवहन तथा संचार के साधनों पर नियन्त्रण रखकर तथा ऐसे ही अन्य उपायों द्वारा राज्य की एकता को न केवल बनाये रखना अपितु उसमें और वृद्धि करना।
- (h) सरकार का प्रशासन तथा सरकारी अधिकारियों की सहायता।
- (i) सरकार की वित्तीय व्यवस्था और राजकोषीय नियन्त्रण का प्रशासन।
- (j) समय-समय पर धर्म से सम्बन्धित कार्य।

(2) राजकोषीय क्रियाओं के प्रभाव (Effect of Fiscal Operations)—आर्थिक विश्लेषण (economic analysis) से पता चलता है कि लोक वित्त की कार्यवाहियाँ निवेश (investment) तथा उपभोग पर ठोस प्रभाव

## नोट

डालती हैं। अतः इनका उपयोग कुल माँग को नियन्त्रित करने तथा अर्थव्यवस्था को स्थिर करने में सरलता से किया जा सकता है। सरकारी व्यय अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने वाली राजकोषीय नीति (fiscal policy) का मुख्य आधार होता है और उसमें परिवर्तन लाकर देश के कुल व्यय को नियन्त्रित किया जा सकता है। किन्तु इस दिशा में सरकारी व्यय केवल तभी सक्रिय होता है तब सरकार किसी निश्चित अवधि में अपनी आय से अधिक या कम खर्च करती है। अतः उन्नत देश अपनी अर्थव्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए सदा अच्छी राजकोषीय नीति का ही आश्रय लेते हैं और आर्थिक नियोजन के अन्य सभी उपायों में इसे ही उक्त उद्देश्य की पूर्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय मानते हैं।

यद्यपि ऊपर के वक्तव्य की भी कुछ सीमाएँ हैं, फिर भी राष्ट्रीय आय व उत्पादन में स्थायित्व लाने तथा कुछ सीमाओं के अन्तर्गत उसमें वृद्धि करने का यह सर्वाधिक शक्तिशाली तथा एकमात्र अस्त्र रहा है। एक उन्नत अर्थव्यवस्था (advanced economy) में, जहाँ कि प्रति व्यक्ति आय (per capita income) का काफी अच्छा स्तर होता है, राष्ट्रीय आय की वृद्धि के मार्ग की एक मुख्य बाधा यह होती है कि साधनों में होने वाली वृद्धि की तुलना में माँग नहीं बढ़ती, अतः निवेश के अवसर कम हो जाते हैं। माँग होने का कारण यह होता है कि आय बढ़ने के साथ-साथ सीमान्त उपभोग-प्रवृत्ति (Marginal propensity to consume) घटती जाती है। अतः राष्ट्रीय आय के वितरण में यदि अधिक समानता लाई जाए तो उससे उपभोग कार्य को बल मिलता है और निवेश तथा कुल उत्पादन में वृद्धि होने लगती है। इस प्रकार उच्च आय वाले औद्योगिक देश 'ऊँची मजदूरी व कम लाभ' वाली अर्थव्यवस्था को अपनाकर तथा ऐसी ही अन्य राजकोषीय कार्यवाहियों के द्वारा आय से वितरण में अधिकाधिक समानता लाकर अपनी आय तथा लोगों के जीवन स्तर को काफी ऊँचा उठा सकते हैं। अतः उन्नत देशों में आर्थिक स्थिरता लाने तथा राष्ट्रीय आय व उत्पादन के समान एवं न्यायपूर्ण वितरण के लिए लोक वित्त की कार्यवाहियों को बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

अल्पविकसित देशों में भी, सरकार का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास हो तथा राष्ट्रीय उत्पादन का न्यायपूर्ण वितरण (equitable distribution) हो, और राजकोषीय नीति (fiscal policy) इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए महत्त्वपूर्ण अस्त्र बन सकती है।

राजकोषीय नीति देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डाल सकती है, एक ओर तो यह सरकारी आय (Public income) की मात्रा में वृद्धि करके ऐसा कर सकती है और दूसरी ओर, सरकारी खर्च (public expenditure) की मात्रा तथा उसकी दिशा-परिवर्तन करके। तीन महत्त्वपूर्ण राजकोषीय उपाय, जिनके द्वारा कि सरकारी खजाने अथवा राजकोष के साधनों में वृद्धि की जा सकती है, ये हैं—**कराधान** या **करारोपण** (taxation) **जनता के उधार** तथा **ऋण-प्राप्ति** अथवा **साख-निर्माण**। यह आवश्यक है कि राजकोषीय उपायों का उपभोग इनमें परस्पर पूर्ण तालमेल रखते हुए किया जाए, ताकि लोगों के आर्थिक जीवन पर सामाजिक कल्याण एवं आर्थिक प्रगति के रूप में इनके सर्वोत्तम तथा व्यापक प्रभाव पड़ें।

यह भी स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना चाहिए कि इन तीनों उपायों में कराधान ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि करों का निर्धारण बुद्धिमत्ता के साथ किया जाए और उनको सावधानी के साथ लागू किया जाए तो कराधान राजकोषीय नीति का अत्यन्त प्रभावशाली अस्त्र बन सकता है। विकास के सामान्य कार्यक्रम के एक अंग के रूप में, कराधान का उपभोग निम्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जा सकता है—

- (क) उपभोग पर रोक लगाकर या उसमें उसमें कटौती करके उत्पत्ति के साधनों को उपभोग के निवेश की ओर स्थानान्तरित करना।
- (ख) बचत तथा निवेश करने के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन देना।
- (ग) साधनों को जनता के हाथों में से राज्यों के हाथों में देना, जिससे सार्वजनिक निवेश करना सम्भव हो सके।
- (घ) आर्थिक असमानताओं में कमी करना।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये सभी लक्ष्य राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि तथा उसके वितरण में सुधार के अन्तिम लक्ष्यों से मेल खाते हैं। अतः अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास तथा सामाजिक कल्याण की दृष्टि से भी लोक वित्त की कार्यवाहियों का भारी महत्त्व है।

## 1.4 लोक वित्त की विषय-सामग्री (Subject-matter of Public Finance)

नोट

लोक वित्त एक ऐसा विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध सरकार की आय तथा व्यय से है किन्तु वर्तमान समय में इसका क्षेत्र एवं महत्त्व और विस्तृत हो गया है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसको निम्नलिखित विभागों में बाँटा है सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण और सम्पूर्ण रूप में राजकोषीय व्यवस्था की समस्याएँ, जैसे कि वित्तीय प्रशासन। इन विभागों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(1) **सार्वजनिक आय या लोक राजस्व (Public Revenue)**—इन विभाग में सरकारी आय की प्राप्ति एवं उसमें वृद्धि के उपायों, कराधान के सिद्धान्तों तथा उनसे सम्बन्धित अन्य समस्याओं का विवेचन एवं विश्लेषण किया जाता है।

इस विभाग के अन्तर्गत निम्न कार्य किये जाते हैं—

- सार्वजनिक आय के कौन-कौन से साधन हैं अर्थात् सार्वजनिक आय का वर्गीकरण।
- कर जो कि सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है, कर कितने प्रकार के होते हैं अर्थात् कर का वर्गीकरण।
- कर लगाने में किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् करारोपण के सिद्धान्त।
- जनता की कर देने की शक्ति से क्या तात्पर्य है और यह किन-किन बातों पर निर्भर करती है अर्थात् कर देय क्षमता तथा उसके निर्धारक तत्व।
- सार्वजनिक आय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है अर्थात् सार्वजनिक आय के प्रभाव।
- किन-किन कारणों से एक कर का भार किसी अन्य व्यक्ति पर टालने में, सफल होता है? अर्थात् कर के विवर्तन के तत्व।

(2) **सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure)**—लोक वित्त का यह विभाग सरकारी व्यय के सिद्धान्तों तथा देश के आर्थिक जीवन पर अर्थात् उत्पादन, वितरण तथा विभिन्न वर्गों पर पड़ने वाले उसके प्रभावों का अध्ययन करता है।

इस विभाग के अन्तर्गत निम्नलिखित समस्याओं का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है—

- सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण।
- किन-किन मदों पर सरकारी व्यय होना चाहिए और किन-किन पर नहीं? अर्थात् सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र।
- सार्वजनिक व्यय करते समय किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त।
- सार्वजनिक व्यय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है? अर्थात् सार्वजनिक व्यय के प्रभाव।

(3) **सार्वजनिक ऋण (Public Debt)**—इस विभाग के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि सरकारी ऋण क्यों लिए जाते हैं, कैसे लिए जाते हैं, उनका भुगतान किस प्रकार किया जाता है तथा उनका समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है।

सार्वजनिक ऋण के अन्तर्गत निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है—

- किन-किन परिस्थितियों में सरकार के लिए ऋण लेना वाँछनीय होगा अर्थात् सार्वजनिक ऋण का क्षेत्र।
- सार्वजनिक ऋण कितने प्रकार के होते हैं अर्थात् सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण।
- किन दशाओं में ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन दशाओं में कर लगाना अर्थात् ऋण और कर का तुलनात्मक अध्ययन।
- किन दशाओं में देश के भीतर से ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन में विदेशों से अर्थात् आन्तरिक तथा बाह्य ऋण की तुलना।

**नोट**

- (e) घाटे का वित्त प्रबन्ध क्या होता है, किस सीमा तक घाटे का वित्त प्रबन्ध किया जा सकता है और उसके क्या प्रभाव होते हैं अर्थात् घाटे के वित्त प्रबन्ध का अर्थ, सीमा तथा प्रभाव।
- (f) ऋण की वापसी के कौन-कौन से तरीके और उनमें से हर एक के क्या गुण व दोष हैं अर्थात् सार्वजनिक ऋण के शोधन के सिद्धान्त।
- (g) ऋण के क्या प्रभाव होते हैं?

(4) **वित्तीय प्रशासन (Financial Administration)**—लोक वित्त की इस शाखा के अन्तर्गत प्रशासनिक नियन्त्रण के उपायों तथा बजट की तैयारी से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाता है।

वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है—

- (a) बजट किस प्रकार तैयार, पास तथा कार्यान्वित किया जाता है?
- (b) विभिन्न करों का एकत्रीकरण किन-किन अधिकारियों तथा संस्थाओं द्वारा होता है?
- (c) व्यय विभागों का संचालन किस प्रकार होता है?
- (d) सार्वजनिक लेखों के लिखने तथा उनके ऑडिट के लिए कौन-कौन से विभाग तथा अधिकारी होते हैं तथा उनके क्या-क्या अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं?

बेस्टेबल ने राजस्व के इस विभाग की आवश्यकता तथा महत्त्व पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार कोई भी वित्त की पुस्तक पूर्ण नहीं कही जा सकती है जब तक कि वह वित्तीय प्रशासन और बजट की समस्याओं का अध्ययन नहीं करती।

**विषय-सामग्री सम्बन्धी आधुनिक मत**

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतानुसार, लोक वित्त की विषय-सामग्री के उपरोक्त चार भागों के अतिरिक्त निम्न दो भागों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए—

(1) **आर्थिक स्थिरता (Economic Stabilisation)**—इस विभाग के अन्तर्गत यह अध्ययन किया जाता है कि वर्तमान में सभी अर्थव्यवस्थाओं का, आर्थिक स्थिरता, एक मुख्य उद्देश्य होता है, इसको बनाये रखने के लिए राजकोषीय नीति (Fiscal policy) को किस प्रकार से उपभोग में लाया जाए? देश की राष्ट्रीय आय में न्यायोचित वितरण, कीमत स्थिरता को बनाये रखने के लिए राजकोषीय नीति एक महत्वपूर्ण अस्त्र माना जाने लगा है। इसकी सहायता से देश की उत्पादन क्रियाओं का नियमन करके आर्थिक स्थिरता स्थापित की जा सकती है।

(2) **आर्थिक वृद्धि (Economic Growth)**—कुछ विद्वानों का कहना है कि आर्थिक स्थिरता की समस्या मूलभूत रूप से विकसित देशों की होती है। विकासशील देशों में तो मुख्य समस्या आर्थिक वृद्धि की होती है। ऐसी स्थिति में इन देशों में आय, बचत, निवेश एवं पूँजी-निर्माण में वृद्धि करने की आवश्यकता होती है जो राजकोषीय उपकरणों के प्रयोग से ही सम्भव हो सकता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रो. रैगनर नर्कसे (R. Nurkse)** का कहना ठीक प्रतीत होता है, “मेरा अटूट विश्वास हो चुका है अल्प-विकसित देशों में पूँजी-निर्माण की समस्या को हल करने के लिए लोक वित्त को एक नायक का स्थान प्राप्त हुआ है।” इस प्रकार स्पष्ट है कि नियोजित विकास में राजकोषीय नीति, जोकि लोक वित्त की विषय-सामग्री का अंग है, का अध्ययन आवश्यक है।

लोक वित्त का क्षेत्र तथा इसकी विषय-सामग्री स्थिर नहीं है, क्योंकि राज्य की धारणा (concept), राज्य के कार्यों तथा अर्थशास्त्र की समस्याओं में परिवर्तन होने के साथ ही साथ इसका भी निरन्तर विस्तार होता जा रहा है।



**उदाहरण—** सन् 1930 की गम्भीर आर्थिक मन्दी तथा ‘रोजगार का सामान्य सिद्धान्त’ नामक कीन्स के लेख ने इस बात को पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि देश में आर्थिक स्थिरता लाने व उसे बनाये रखने में राजकोषीय कार्यवाहियों का कितना अधिक महत्त्व है। आजकल सरकारी आय, सरकारी खर्च तथा सरकारी उधार में वृद्धि तथा राज्य के आर्थिक व सामाजिक उत्तरदायित्वों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रतिरक्षा एवं लोक-प्रशासन की नित्य नई-नई समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इन सभी तत्वों के कारण लोक वित्त का क्षेत्र भी बराबर विस्तृत होता जा रहा है।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

6. लोक वित्त की कार्यवाहियाँ निवेश तथा उपभोग पर ठोस प्रभाव डालती है।
7. सरकारी व्यय अर्थव्यवस्था में अस्थिरता लाने वाली राजकोषीय नीति का मुख्य आधार होता है।
8. राजकोषीय नीति देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डाल सकती है।
9. लोक वित्त एक ऐसा विज्ञान है, जिसका सरकार की आय तथा व्यय से कोई संबंध नहीं है।
10. लोक वित्त का क्षेत्र तथा इसकी विषय-सामग्री स्थिर नहीं है।

### 1.5 लोक तथा निजी वित्त (Public and Private Finance)

लोक वित्त तथा निजी वित्त की तुलना करने से विदित होता है कि इन दोनों के बीच जहाँ कई समानताएँ पाई जाती हैं वहाँ अनेक विभिन्नताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं, जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है—

#### 1.5.1 समानताएँ (Similarities)

लोक वित्त तथा निजी-वित्त के बीच पाई जाने वाली समानताएँ निम्न प्रकार हैं—

- (1) **अधिकतम सन्तुष्टि (Maximum Satisfaction)**—व्यक्ति तथा राज्य दोनों का उद्देश्य, मोटे तौर पर एक-सा ही होता है और वह है मानवीय आवश्यकताओं की तुष्टि (Satisfaction of human wants)। निजी वित्त का सम्बन्ध जहाँ व्यक्तिगत आवश्यकताओं की तुष्टि से होता है, वहाँ लोक वित्त का सम्बन्ध सामाजिक या सामूहिक आवश्यकताओं की तुष्टि से होता है।
- (2) **सन्तुलित बजट (Balanced Budget)**—व्यक्ति तथा राज्य दोनों ही धन प्राप्त करते हैं और खर्च भी करते हैं तथा प्रत्येक का प्रयास यह होता है कि आय तथा व्यय को सन्तुलित किया जाए। दोनों ही इस बात का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं कि खर्च द्वारा अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त की जाए।
- (3) **ऋण (Borrowing)**—लोक वित्त तथा निजी वित्त, दोनों की ही स्थिति में जब चालू आय चालू व्यय के मुकाबले कम पड़ जाती है, तो उधार लेना आवश्यक हो जाता है। यही नहीं व्यक्ति की तरह राज्य को भी घाटे के समय लिए गये ऋण की वापसी अदायगी करनी पड़ती है।
- (4) **आर्थिक विकल्प (Economic Choice)**—लोक वित्त तथा निजी वित्त दोनों ही चूँकि न्यूनतम साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि तथा लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं, अतः दोनों को सदा आय तथा व्यय के समायोजन की समस्या तथा आर्थिक विकल्प (Economic Choice) के चुनाव की समस्या का सामना करना पड़ता है।

#### 1.5.2 असमानताएँ (Dis-similarities)

लोक वित्त तथा निजी वित्त के बीच कई मामलों में मौलिक अन्तर पाया जाता है जैसे कि उद्देश्य, वित्त प्राप्ति के तरीके तथा साधनों की मात्रा आदि के मामलों में। उदाहरण के लिए, जहाँ लोक वित्त जन-कल्याण में विश्वास करता है वहाँ निजी वित्त का एकमात्र लक्ष्य लाभ प्राप्त करना होता है, पहला (Former) जहाँ घाटे की पूर्ति नये कर लगाकर या अन्य प्रकार से कर सकता है, वहाँ दूसरा (Later) ऐसा नहीं कर सकता। इसी प्रकार लोक वित्त के साधन बड़े तथा विशाल होते हैं जबकि निजी वित्त के साधन सीमित होते हैं। अब हम इस विषय की विस्तार से विवेचना करेंगे।

- (1) **व्यय का निर्धारण (Determination of Expenditure)**—लोक-सत्ता (Public authority) सर्वप्रथम अपने उस खर्च की मात्रा का निर्धारण करती है जोकि उसे अपने कुछ दायित्वों को पूरा करने के लिए विभिन्न मदों पर व्यय करना होता है और उसके पश्चात् वह उस खर्च की पूर्ति के लिए साधनों की खोज करती है। किन्तु एक

**नोट**

व्यक्ति सर्वप्रथम अपनी आय पर विचार करता है और उसके बाद वह उस खर्च की मात्रा का निर्धारण करता है जो कि उसे उपभोग की विभिन्न मदों पर व्यय करना होता है। ऐसा होने का कारण यह है कि लोक-सत्ता तो अपनी आय को अपनी आवश्यकताओं के अनुसार घटा-बढ़ा सकती है, किन्तु किसी व्यक्ति की आय में ऐसी लचक नहीं पाई जाती। प्रो. डाल्टन ने इस बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है कि, “व्यक्ति तो अपनी आय के अनुसार ही अपने व्यय का समायोजन (adjustment) करता है किन्तु लोक-सत्ता अपने व्यय के अनुसार अपनी आय को समायोजित करती है।” किन्तु यह कथन भी कुछ सीमाओं तक ही सत्य है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति के दायित्वों एवं खर्चों में वृद्धि होती है तो वह भी अपनी आय को बढ़ाने का प्रयत्न कर सकता है और दूसरी ओर, कोई सरकार या अन्य लोक-सत्ता (Public authority) भी अपने खर्चों को अनिश्चित सीमा तक नहीं बढ़ा सकती। उसे भी यह देखना होता है कि देश की अर्थव्यवस्था को हानि पहुँचाये बिना वह कितनी आय प्राप्त कर सकती है। अतः कभी-कभी तो सरकार को साधनों के अभाव के कारण अपने व्यय को कम करना पड़ जाता है।

(2) **अनिवार्यता का लक्षण (Compulsory Character)**—फिण्डले शिराज के अनुसार, “सरकारी व्यय का एक अन्य लक्षण है, इसमें पाया जाने वाला अनिवार्यता का तत्व।” कुछ व्यय ऐसे होते हैं जिन्हें राज्य स्थगित या उपेक्षित नहीं कर सकता, किन्तु व्यक्ति की स्थिति में ऐसा करना सम्भव है। उदाहरण के लिए, प्रतिरक्षा तथा लोक प्रशासन आदि पर किया जाने वाला व्यय अनिवार्य प्रकृति का होता है। इसी प्रकार, राज्य लोगों को इस बात के लिए बाध्य कर सकता है कि वे कपड़े, अनाज तथा अन्य वस्तुओं की किसी विशेष किस्म का ही प्रयोग करें, इन वस्तुओं को सरकार द्वारा निर्धारित दामों पर ही खरीदें तथा सरकार द्वारा निर्धारित दरों से कर अदा करें। किन्तु प्राइवेट व्यक्ति या व्यावसायिक फर्म आदि ऐसा नहीं कर सकते। यही नहीं, परिस्थितियाँ भी व्यक्ति को इस बात के लिए बाध्य कर सकती हैं कि वे भोजन, न्यूनतम वस्त्र तथा मकान आदि की मदों पर कुछ विशेष मात्रा में ही खर्च करें तथा कुछ विशेष किस्म या नमूने के ही कपड़े खरीदें व पहनें। इन सब मामलों में वह इन केवल अपनी रुचि, स्वाद तथा पसन्द (choice) से ही प्रेरित होता है बल्कि वस्तुओं की उपलब्धता तथा समाज के वातावरण से भी प्रभावित होता है।

(3) **सम-सीमान्त तुष्टिगुण नियम (Principle of Equi-marginal Utility)**—अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए, “व्यक्ति अपने खर्च को विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं पर इस प्रकार वितरित करता है कि सभी मदों पर किये गए खर्चों का सीमान्त तुष्टिगुण या सीमान्त उपयोगिता (marginal utility) सब बराबर रहे और सम्पूर्ण व्यय से प्राप्त होने वाला कुल तुष्टिगुण अधिकतम हो।” होना यह चाहिए कि विभिन्न उद्देश्यों व मदों के बीच सरकारी खर्च के वितरण पर भी ऐसा ही नियम लागू हो। परन्तु यह देखा जाता है कि सरकार के मुकाबले व्यक्ति इस सिद्धान्त को लागू करने में अधिक समर्थ होता है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति अपनी इच्छा की खर्च की मदों का चुनाव करने में अधिक स्वतन्त्र होता है, जबकि सरकार इतनी स्वतन्त्र नहीं होती। सामान्यतः व्यक्ति के खर्च करने या न करने का पैमाना यह होता है कि किसी विशेष खर्च से उसे कितना लाभ प्राप्त हो रहा है ... किन्तु सरकार ... इस पैमाने को अपने खर्च का आधार नहीं बना सकती, विशेष रूप से प्रतिरक्षा, कानून व व्यवस्था की स्थापना, शिक्षा, निर्धनों की सहायता आदि के मामलों पर किये जाने वाले खर्च में। स्पष्ट है कि राज्य के इन खर्चों के मामले में कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती। कभी-कभी तो सरकार पर इस बात के लिए दबाव डाला जाता है कि वह कुछ विशेष मदों पर ही धन व्यय करे, जबकि दबाव के अभाव की स्थिति में सम्भव है सरकार ऐसा करना पसन्द न करती। ऐसा तब ही होता है जबकि देश में कुछ निहित स्वार्थ वाले वर्ग या व्यक्ति अधिक शक्तिशाली बनकर सरकार की आलोचना करने तथा उस पर दबाव डालने की स्थिति में आ जाते हैं। परिणाम यह होता है कि आवश्यक मदों पर सरकार के खर्च बढ़ जाते हैं।

(4) **बजट की प्रकृति (Nature of Budget)**—व्यक्ति साधारणतया बेशी के बजट (surplus budget) में अर्थात् आय से कम खर्च करने में विश्वास करता है और घाटे के बजट (deficit budget) को अर्थात् आय से अधिक खर्च करने की नीति को उचित तथा वांछनीय नहीं समझता। परन्तु सरकार या अन्य कोई लोक-सत्ता वर्षों तक घाटे का बजट बनाना लाभदायक समझ सकती है, विशेष रूप से आर्थिक विकास तथा युद्ध की अवधियों में व्यक्ति द्वारा बेशी बजट बनाना बड़ा अच्छा माना जाता है और इस कार्य को उसका एक व्यक्तिगत गुण समझा जाता

## नोट

है क्योंकि केवल बचत द्वारा ही कोई पूँजी का संग्रह कर सकता है तथा धनवान बन सकता है, परन्तु सरकार के बेशी के बजट का अर्थ है—उच्च स्तर का कराधान या निम्न स्तर का सरकारी व्यय, किन्तु सामान्य दशाओं में, सरकार के लिए बेशी या घाटे के बजट को नहीं, अपितु सन्तुलित बजट (balanced budget) को अच्छा समझा जाता है।

(5) **साधनों की प्रकृति (Nature of Resources)**—व्यक्ति की आय प्राप्त करने के साधन न्यूनाधिक रूप से सीमित ही होते हैं किन्तु सरकार के साधन व्यापक होते हैं। सरकार या लोक-सत्ता आवश्यकता पड़ने पर सामान्य जनता से तथा विदेशों से उधार ले सकती है, किन्तु व्यक्ति के लिए ऐसा करना आमतौर पर सम्भव नहीं होता। सरकार घाटे की वित्त व्यवस्था (deficit financing) का आश्रय ले सकती है, अर्थात् अपनी आय बढ़ाने के लिए नोट छाप सकती है, परन्तु कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। लोक-सत्ता (public authority) ऐसा कानून बना सकती है कि जिससे लाभदायक व्यवसाय तथा व्यापार को आय बढ़ाने के उद्देश्य से वह अपने हाथों में ले सके, उदाहरण के लिए, वह निजी परिवहन (private transport) तथा निजी थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर सकती है। सरकार सामान्य जनता से धन प्राप्त करने के लिए बल-प्रयोग के तरीके (coercive method) भी अपना सकती है किन्तु व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता।

(6) **व्यय के उद्देश्य का प्रयोजन (Motive of Expenditure)**—व्यावसायिक सौदों में प्राइवेट व्यक्ति का सर्वप्रथम उद्देश्य लाभ प्राप्त करना होता है। परन्तु इसके विपरीत लोक निकायों (Public bodies) के सौदे लाभ के उद्देश्य से नहीं, बल्कि जन-कल्याण के उद्देश्य से प्रेरित होते हैं। उदाहरण के लिए, अनेक सेवाओं जैसे कि जनता का स्वास्थ्य, चिकित्सा सुविधाएँ, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा की कार्यवाहियाँ तथा जलपूर्ति आदि को व्यावसायिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं माना जाता किन्तु नागरिकों के कल्याण की दृष्टि से उन्हें अत्यावश्यक समझा जाता है और इसी कारण लोक निकायों द्वारा ऐसी सेवाओं तथा सुविधाओं की व्यवस्था की जाती है।

(7) **दीर्घकालीन दृष्टिकोण (Long Term Consideration)**—प्राइवेट व्यक्ति या कम्पनियाँ उन व्यावसायिक क्षेत्रों में अधिक उदारता से धन लगाती हैं जिनमें कि शीघ्र प्रतिफल (returns) प्राप्त होने की आवश्यकता होती है किन्तु जिन व्यावसायिक क्षेत्रों में नाममात्र का ही प्रतिफल प्राप्त होता है और वह भी काफी देर से, **प्राइवेट पूँजी उनमें जाते हुए जरा शर्माती है**, परन्तु सरकार इन विचारों व दृष्टिकोणों से कभी प्रभावित नहीं होती। अतः सरकार ऐसी परियोजनाओं को भी अपने हाथ में ले लेती है, बशर्ते कि वे जनकल्याण (Public welfare) की दृष्टि से उचित हों। भारत में बहु-उद्देश्यीय जल विद्युत परियोजनाओं (Multipurpose Hydroelectric Projects) का निर्माण इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस प्रकार, सरकार द्वारा जन-कल्याण की दृष्टि से अनेक खर्चे किये जाते हैं जो भविष्य तथा वर्तमान दोनों के लिए ही होते हैं। वास्तव में बात यह है कि भविष्य भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि वर्तमान, और सरकार भविष्य एवं वर्तमान के लिए खर्चों की व्यवस्था जिस प्रकार करती है, उस प्रकार व्यक्ति नहीं कर सकता।

(8) **बल-प्रयोग के तरीके (Coercive Method)**—सरकार या अन्य लोक-सत्ता अपनी आय को वसूल करने के लिए बल-प्रयोग के तरीके अपना सकती है। मान लीजिए कोई व्यक्ति अपना देय आय-कर अदा नहीं करता है तो उसे अदालत द्वारा दण्डित कराया जा सकता है अथवा कर-भार बढ़ाकर उसको आर्थिक रूप से दण्डित किया जा सकता है। इस प्रकार, कोई भी व्यक्ति करों की अदायगी से इंकार नहीं कर सकता बशर्ते कि वे उस पर देय हों। इसके विपरीत, प्राइवेट व्यक्ति तथा व्यापारी अपनी आय प्राप्त करने के लिए उस प्रकार शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते जिस प्रकार कि सरकार करती है। यही कारण है कि प्राइवेट व्यक्तियों तथा व्यापारियों के मुकाबले सरकार की आय अधिक आश्वासित (assured) होती है।

(9) **प्रचार तथा लेखा-परीक्षण (Publicity and Audit Test)**—अन्त में, लोक वित्त तथा निजी वित्त का एक और अन्तर उल्लेखनीय है। वह यह है कि प्राइवेट व्यक्ति तो अपने सभी वित्तीय सौदों को गुप्त रखना ही पसन्द करता है किन्तु सरकार अपने बजट-प्रस्तावों का तथा पंचवर्षीय योजना की विभिन्न मदों में साधनों के बंटवारे का अधिक से अधिक प्रचार करती है। इसके अतिरिक्त, लोक-निकायों के खातों का लेखा-परीक्षण तथा निरीक्षण अनिवार्य रूप से किया जाता है किन्तु व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह सदा ही आवश्यक नहीं होता।



## नोट



टास्क लोक वित्त और निजी वित्त में अन्तर स्पष्ट करें।

### 1.5.3 लोक वित्त की प्रवृत्तियाँ (Trends in Public Finance)

सामान्य आर्थिक सिद्धान्त (General Economic Theory) ने लोक वित्त की विचारधारा तथा राजकीय कार्यवाहियों को सदा प्रभावित किया है। लोक वित्त की प्राचीन विचारधारा संस्थापक आर्थिक सिद्धान्त (Classical Economic Theory) पर आधारित थी परन्तु बाद में इस सिद्धान्त में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते रहे हैं। अन्त में आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ जिसे 'कीन्स का पूर्ण रोजगार का सामान्य सिद्धान्त (Keyne's General Theory of Full Employment) कहा जाता है। इस सिद्धान्त के कारण लोक वित्त की प्राचीन धारणा में भी परिवर्तन हो गया है।



नोट्स लोक वित्त के आधुनिक सिद्धान्त का प्रतिपादक कीन्स को माना जाता है।

परिणामस्वरूप वर्तमान युग में लोक वित्त तथा राजकोषीय कार्यवाहियों पर अर्थव्यवस्था में नये-नये योगदान करने का उत्तरदायित्व आ गया है।

1. **प्राचीन या संस्थापक सिद्धान्त (Classical Theory)**—प्राचीन आर्थिक सिद्धान्त की मान्यता थी कि पूर्ति (supply) अपनी माँग (demand) स्वयं उत्पन्न कर लेती है। अतः कभी भी कोई बड़ी बेरोजगारी अथवा अत्युत्पादन (over production) की स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती। यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार अर्थात् साधनों के पूर्ण उपयोग को मान्यता देता है। तर्क यह है कि यदि श्रम गतिशील है और मजदूरियाँ लचकदार (flexible) हैं तो निजी उद्यम द्वारा साधनों का पूर्ण उपयोग किया जा सकता है और यह कि बेरोजगारी (unemployment) श्रम की अगतिशीलता (immobility) तथा मजदूरियों की लोचहीनता अथवा अपरिवर्तनशीलता के कारण उत्पन्न होती है। प्राचीन अथवा संस्थापक अर्थशास्त्रियों (classical economists) का मत था कि एक व्यक्ति का व्यय दूसरे व्यक्ति की आय होती है, परन्तु उनका यह भी कहना था कि किसी एक व्यक्ति के व्यय में कमी होने से अन्य व्यक्ति की आय में कमी नहीं होगी, क्योंकि खर्च कम करके वह जो धन बचायेगा वह स्वयमेव निवेश (Invest) कर दिया जायेगा अर्थात् पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों पर व्यय हो जायेगा। अतः एक व्यक्ति के खर्च में कमी होने के परिणामस्वरूप दूसरे व्यक्ति की आय में कमी नहीं होगी। इसका अर्थ यह है कि प्रभावी या समर्थ माँग (effective demand) में कोई कमी नहीं होगी।

लोक वित्त का प्राचीन सिद्धान्त (classical theory) प्राचीन सामान्य आर्थिक सिद्धान्त पर ही आधारित है। इसके अनुसार निजी उद्यम (Private enterprises) पूर्ण रोजगार के विषय में आश्वस्त रहते हैं और राज्य आर्थिक क्रियाओं का स्तर ऊँचा करने में असमर्थ होता है। यदि सरकार कराधान (taxation) के द्वारा अपना खर्च बढ़ाती है तो इसका अर्थ केवल यही होगा कि खर्च प्राइवेट व्यक्ति के हाथों में से निकलकर सरकार के हाथों में आ गया है किन्तु उससे उत्पादन के क्षेत्र की कुल माँग में वृद्धि नहीं होगी। यदि सरकार उधार लेकर अपने खर्च में वृद्धि करती है तो इसका अर्थ केवल प्राइवेट व्यक्तियों से प्रतियोगिता करना ही होगा और इससे कीमतों में वृद्धि होगी तथा मुद्रास्फीति बढ़ेगी। इसका अर्थ यह है कि प्राचीन अर्थशास्त्री सन्तुलित बजट में विश्वास करते थे। कर चूँकि सदा ही बचतों पर कुछ न कुछ प्रभाव डालते हैं, अतः निजी बचतों में कमी के फलस्वरूप निजी निवेश (private investment) का स्तर भी गिर सकता है। स्पष्ट है कि कर (taxes) पूँजी के संचय पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। अतः उनका विश्वास था कि छोटा बजट ही सर्वोत्तम बजट है। सबसे अधिक अवांछनीय कर वे हैं जो निजी बचतों पर अधिक बोझ डालते हैं जैसे मृत्यु कर, अतिरिक्त कर (super tax) तथा व्यवसाय कर तथा अपेक्षाकृत समृद्धों पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष कर दूसरी ओर, परोक्ष कर (indirect taxes) चूँकि उपभोग पर प्रभाव डालते हैं, अतः आर्थिक दृष्टिकोण से उन्हें हानिरहित माना जा सकता है, यद्यपि सामाजिक दृष्टि से वे भी अवांछनीय होते हैं। इसका

## नोट

अर्थ यह है कि प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने परोक्ष करों के पक्ष का समर्थन किया। बजट का घाटा यदि नोट छापकर या अल्पकालीन सरकारी ऋण लेकर पूरा किया जाए जो उससे मुद्रास्फीति (inflation) ही बढ़ती है। इसका कारण यह है कि अल्पावधि में ब्याज की दर इतनी नहीं बढ़ती कि उससे निजी निवेश में गिरावट आ सके और यह स्थिति सरकार के खर्च की वृद्धि को अस्त-व्यस्त कर देती है। यदि बजट के घाटे की पूर्ति दीर्घकालीन सरकारी बॉण्ड जारी करके की जाती है तो ऐसे बॉण्ड केवल निजी व्यवसाय के बॉण्ड या शेयरों के स्थानापन्न (substitute) ही माने जाएँगे और उनसे मुद्रास्फीति उत्पन्न नहीं होगी। बजट का घाटा आमतौर पर प्रगति की दर को गिरा देता है बशर्ते कि सरकार पूँजीगत साजसज्जा के निर्माण के लिए पूर्णतया उधार लिए गये धन का ही उपयोग न करे। ऊपर किये गये विश्लेषण से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

- (1) सरकार देश के अन्दर आर्थिक क्रियाओं के स्तर में वृद्धि नहीं कर सकती है।
- (2) बजट सन्तुलित होना चाहिए।
- (3) छोटा बजट ही सर्वोत्तम बजट है।
- (4) समाज के लिए वे कर हानिकारक होते हैं, जो बचतों पर पड़ें, जैसे आय-कर, मृत्यु-कर आदि। उपभोग पर पड़ने वाले कर कम हानिकारक होते हैं।
- (5) यदि बजट के घाटे से बचना सम्भव न हो, तो उचित यह होगा कि दीर्घकालीन बॉण्ड जारी किये जाएँ।
- (6) उधार केवल उत्पादकीय निवेश (productive investment) के लिए ही किया जाना चाहिए।

2. **आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory)**—कीन्स का 'रोजगार सिद्धान्त' इस सामान्य धारणा पर टिका है कि एक व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला व्यय दूसरे व्यक्ति की आय है। यदि किसी व्यक्ति द्वारा अपनी पूरी आय खर्च कर दी जाती है तो उसके फलस्वरूप दूसरे व्यक्ति की उतनी आय बढ़ जाती है। यदि प्रत्येक अन्य व्यक्ति भी अपनी पूरी आय खर्च कर देता है तो इससे आय तथा व्यय की परिधि स्थिर ही रहेगी। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपनी प्राप्त आय का कुछ भाग खर्च नहीं करता और खर्च में की गई यह कमी निवेश-व्यय द्वारा पूरी नहीं की जाती है, तो इसका प्रभाव यह होगा कि एक व्यक्ति का घटा हुआ खर्च अन्य व्यक्तियों की आय में कमी कर देगा। आय कम मिलने से लोग भी कम खर्च करेंगे और उसके फलस्वरूप अन्य लोगों की आय भी घट जाएगी। इससे या तो रोजगार उपलब्ध होगा जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में गिरावट आ जाएगी।

तथापि, कीन्स ने एक तर्क को स्वीकार नहीं किया—

- (क) कि उपभोग का स्थगन पूँजी के संचय को बढ़ाना है, इसके विपरीत बचत के प्रयास से बेरोजगारी बढ़ती है और राष्ट्रीय आय घटती है।
- (ख) कि रोजगार मजदूरियों के निम्न स्तर पर प्रदान किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, उनका मत था कि मजदूरियों में कटौती करने से वस्तुओं की माँग घटेगी और उससे मजदूरों की छँटनी की नौबत आ जाएगी।
- (ग) किसी ऐसी आर्थिक पद्धति की स्थापना की प्रवृत्ति पाई जाती है जो कि निजी सम्पत्ति पर आधारित होती है तथा जो पूर्ण रोजगार के स्तर पर अपने को समायोजित (adjust) कर लेती है।

अब हम इस बात का विश्लेषण करेंगे कि अर्थशास्त्र के सामान्य सिद्धान्त में होने वाले इस गम्भीर परिवर्तन ने लोक वित्त के सिद्धान्तों को किस प्रकार प्रभावित किया है—

स्पष्ट है कि कीन्स ने स्वचालित पूर्ण रोजगार की प्राचीन मान्यता को स्वीकार नहीं किया तथा बताया कि सन्तुलित बजट सभी परिस्थितियों में वांछनीय नहीं होता है बल्कि वर्तमान समय में कुछ लक्ष्यों की पूर्ति के लिए बजट को एक शक्तिशाली अस्त्र माना जाता है जैसे कि—(i) पूर्ण रोजगार की प्राप्ति, (ii) निवेश का ऊँचा स्तर, (iii) मुद्रास्फीति का विरोध अर्थात् मुद्रा-स्फीति (inflation) तथा मुद्रा-अवस्फीति (deflation) दोनों का ही अभाव, और (iv) श्रेष्ठतर वितरण। किन्तु व्यवहार में, यह कठिन हो सकता है कि सभी लक्ष्यों को एक साथ तुरन्त प्राप्त कर लिया जाए।

**नोट**

स्थूल रूप में कहा जा सकता है कि यदि मुद्रास्फीति अधिक बढ़ गई हो तो उसका इलाज है बेशी का बजट (surplus budget); और यदि मुद्रा अवस्फीति अधिक बढ़ गई हो तो घाटे का बजट (Deficit budget) बनाकर उसका इलाज किया जा सकता है। यदि मुद्रास्फीति के अभाव की स्थिति लानी है तो वह आवश्यक है कि सभी सरकारी तथा गैर-सरकारी नई बचतों की कुल मूल्य सभी (सरकारी तथा गैर-सरकारी) नये निवेशों के मूल्य के बराबर हो। यदि बचतें (savings) निवेश (investment) से कम होंगी तो मुद्रास्फीति उत्पन्न होगी और कीमतें बढ़ेंगी। इसके विपरीत, यदि बचतें निवेश से अधिक होंगी तो उससे मुद्रा अवस्फीति उत्पन्न होगी, कीमतें गिरने लगेंगी और बेरोजगारी बढ़ने लगेगी।

जैसे ही रोजगार आय में वृद्धि होती है, नई बचतों के लेने के लिए नया निवेश भी अवश्य बढ़ता है। परन्तु आय के बढ़ने के साथ-साथ लोगों की उपभोग-प्रवृत्ति अर्थात् उपभोग के प्रति रुझान (propensity to consume) उतना नहीं बढ़ता कि जितनी आय बढ़ती है। फलतः उपभोग, आय बढ़ने की गति के साथ-साथ नहीं बढ़ पाता। इसका परिणाम यह होता है कि बचतें अधिक बढ़ जाती हैं और समर्थ माँग (effective demand) घट जाती है, और समर्थ माँग घटने के फलस्वरूप बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। यह वह स्थिति है जिसमें लोक वित्त के महत्त्व का पता चलता है। इस स्थिति में राज्य सड़कों, रेलों जनोपयोगी उद्यमों तथा उद्योगों के निवेश पर सरकारी धन व्यय करके समर्थ माँग में वृद्धि कर सकता है। सरकार द्वारा इस प्रकार निवेश किया जाने वाला धन लोगों से उधार लिया जा सकता है; और लोगों द्वारा सरकार को उधार दिया गया यह धन, हो सकता है उसी आय का भाग हो जिसे कि लोगों ने उपभोग की वस्तुओं पर व्यय न करके नकद रूप में अपने पास रख लिया हो। सरकार घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा उत्पन्न मुद्रा में से भी निवेश के लिए धन ले सकने की अच्छी स्थिति में होती है। इससे वह कुल व्यय की उस कमी को पूरा कर देती है जो कि लोगों की उन बचतों द्वारा उत्पन्न हुई थी जो कि निवेश के लिए उपलब्ध नहीं हो सकी थी। प्राचीन अर्थशास्त्री सरकारी व्यय के इस महत्त्वपूर्ण योगदान को कभी नहीं समझ सकें। उन्होंने तो सदा ही आर्थिक क्रियाओं में सरकारी हस्तक्षेप का विरोध किया और कहा कि राज्य आर्थिक क्रियाओं के स्तर को ऊँचा नहीं उठा सकता। इसी प्रकार, प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने घाटे की वित्त व्यवस्था तथा सरकारी उधार का भी विरोध किया, जबकि आधुनिक अर्थशास्त्री आर्थिक स्थिरता लाने अथवा आर्थिक प्रगति को तेज करने के लिए उन्हें लोक वित्त के महत्त्वपूर्ण उपायों की श्रेणी में रखते हैं।

**1.5.4 कराधान तथा समन्यायपूर्ण वितरण (Taxation and Equitable Distribution)**

प्राचीन अर्थशास्त्री इस बात का समर्थन नहीं करते थे कि कराधान का उपयोग आय को धनी लोगों के पास से निर्धनों की ओर को स्थानान्तरित करने के एक अस्त्र के रूप में किया जाये, किन्तु लोक वित्त की आधुनिक धारणा के अन्तर्गत, कराधान को आय की असमानताओं को कम करने तथा सामाजिक न्याय में वृद्धि करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है। इसके अतिरिक्त, प्राचीन अर्थशास्त्री धनिकों के मुकाबले निर्धनों पर ही कर लगाने हो उचित समझते थे और प्रत्यक्ष करों के मुकाबले वे परोक्ष करों का ही समर्थन करते थे। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि उन लोगों पर ही कर लगाया जाना चाहिए जिनमें कि बचत करने की सामर्थ्य है और उन लोगों पर नहीं, जो कि बेचारे वस्तुओं के उपभोग के लिए ही बेचैन हैं। अन्य शब्दों में, उनका मत है कि निर्धनों की अपेक्षा धनिकों पर कर लगाया जाये। यही नहीं, प्राचीन अर्थशास्त्रियों के विरुद्ध, आधुनिक अर्थशास्त्री आरोही तथा प्रत्यक्ष कराधान (progressive and direct taxation) कर समर्थन इस उद्देश्य से करते हैं ताकि इनका उपयोग सरकारी आय को एकत्र करने तथा देश में आय का समन्यायपूर्ण वितरण करने के एक अस्त्र के रूप में किया जा सके। अनुपाजित आय (unearned income) को चूँकि सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय माना जाता है, अतः सरकार द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि अनुपाजित आय का एक भाग प्रत्यक्ष करों (मृत्यु कर तथा लॉटरियों आदि पर कर) के द्वारा ले लिया जाए, किन्तु प्राचीन अर्थशास्त्री इसका भी समर्थन नहीं करते थे। परोक्ष कर लोक वित्त में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री इस बात को उचित नहीं समझते कि उपभोग की हर वस्तु पर कर लगा दिया जाए। इसके विपरीत, उनका मत है कि उपभोग की केवल उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाया जाए

जिनका लोगों के सामान्य कल्याण पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, अर्थात् ऐसी वस्तुओं पर कर लगाया जाए जिनका उपभोग धनी करते हैं, निर्धन नहीं।

## 1.6 सरकारी या राष्ट्रीय ऋण (National Debt)

प्राचीन अर्थशास्त्रियों की मान्यता के अनुसार, सरकारी ऋण को फलहीन ऋण (dead weight debt) ही माना जाना चाहिए—इन मानों में नहीं कि ऋण बन्धक रखा गया, बल्कि इन मानों में कि सरकार को ऋण देकर व्यर्थ के अर्थात् फलहीन अवसर प्रदान किये गये। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री सरकारी उधार को लोक वित्त की एक महत्वपूर्ण कार्यवाही मानते हैं। वर्तमान समय में अनेक महत्वपूर्ण परिस्थितियों का सामना करने के लिए सरकारी ऋणों को आवश्यक माना जाता है जैसे कि बजट के घाटे को पूरा करने के लिए तथा खाद्यान्न के अभाव व अकाल आदि की स्थितियों से निपटने के लिए। सरकारी उधार को इस कारण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है कि वर्तमान समय में जनकल्याण के लक्ष्य को पूरा करना इतना महंगा सौदा हो गया है कि कराधान के द्वारा प्राप्त की गई सामान्य आय उसके लिए कम पड़ जाती है। कीन्स के समान, अन्य भी अनेक अर्थशास्त्रियों का विचार है कि बढ़ा हुआ ऐसा सरकारी खर्च, जिसकी वित्तीय व्यवस्था कराधान द्वारा नहीं बल्कि उधार (borrowings) द्वारा की गई हो आर्थिक मन्दी दूर करने का महत्वपूर्ण उपाय है। अल्प विकसित देशों के प्राकृतिक साधनों (natural resources) के विकास के लिए भी सरकारी उधार को बड़ा उपयोगी माना जाता है।

### 1.6.1 कार्यशील वित्त (Activating Finance)

प्रो. बलजीत सिंह ने कार्यशील वित्त का विचार प्रतिपादित किया। उनके अनुसार, कार्यशील वित्त में हम वित्तीय साधनों एवं उपकरणों का उनकी कार्य संरचना पर परीक्षण करते हैं और हम बात करते हैं कि उपकरणों की अर्थव्यवस्था के लिए क्या उपयोगिता है। कार्यशील वित्त प्रबन्ध इस बात की जानकारी देता है कि वित्त प्रबन्ध की विभिन्न विधियाँ किस प्रकार से अर्थव्यवस्था में स्फूर्ति उत्पन्न करती हैं। कार्यशील वित्त प्रबन्ध इस मान्यता को लेकर चलता है कि व्यय अपूर्ण रहता है और इसी के कारण माँग व उत्पादन में असाम्य बना रहता है।

कार्यशील वित्त प्रबन्ध में ऐसे उपाय किये जाते हैं जिससे विनियोग का प्रवाह सदैव बना रहे। यदि ऐसा हुआ तो राष्ट्रीय आय व रोजगार स्तर में वृद्धि होगी। कीन्स और लर्नर के विचार केवल विकसित देशों के लिए उपयुक्त हैं जहाँ कि व्यय का अधिक महत्त्व है। अर्द्धविकसित तथा विकासशील देशों को बचत और विनियोग पर अधिक ध्यान देना चाहिए। अतः विकासशील देशों में राजकोषीय नीतियों का नियमन एवं संचालन इस प्रकार होना चाहिए कि सभी साधनों को रोजगार में लगाकर उत्पादन एवं आय वृद्धि के प्रयास होने चाहिए। साधनों के श्रेष्ठतम प्रयोग का प्रयास करना चाहिए। विकासशील देशों में दोनों व्यवस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। विकास के प्रारम्भिक चरणों में प्रो. सिंह की मान्यता एवं अन्तिम चरणों में प्रो. (Lerner) के सिद्धान्तों को लागू करके अपेक्षित लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

3. **राजस्व में नवीन प्रवृत्तियाँ (New Trends in Public Finance)**—आधुनिक काल में राजस्व के स्वरूप और प्रकृति में भारी परिवर्तन हुआ है जिसके परिणामस्वरूप इसकी परिभाषा कुछ भिन्न प्रकार से की गई है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख परिभाषाएँ अग्रलिखित हैं—

(1) **रिचर्ड मसग्रेव (Richard Musgrave)** के अनुसार, “राजस्व सार्वजनिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्तों का अध्ययन है या और स्पष्ट रूप में, आर्थिक नीति के उन पहलुओं का अध्ययन है जो सार्वजनिक बजट की क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं”<sup>1</sup>।

1. “...an investigation into the principles of public economy, move precisely into those aspects of economic policy that arise in the operations of the public budget.”

—Theory of Public Finance, 1959, page 3.

## नोट

(2) आटो एकस्टीन (Otto Eckstein) के अनुसार, “राजस्व अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले बजट के प्रभावों का अध्ययन है विशेषकर उस प्रभाव का जो प्रमुख आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति पर पड़ता है जैसे-विकास, स्थायित्व, न्याय एवं कुशलता। यह उस बात का भी अध्ययन है कि क्या होना चाहिए।”<sup>1</sup>

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि राजस्व वास्तविक विज्ञान के साथ-साथ एक आदर्श विज्ञान भी है। यह सरकारी बजट के आर्थिक पहलुओं का अध्ययन करता है। इन आर्थिक पहलुओं का सम्बन्ध आर्थिक उद्देश्यों से है। ये आर्थिक बजट द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।

ये आर्थिक उद्देश्य हैं—(1) आर्थिक विकास, (2) आर्थिक स्थायित्व, (3) न्याय एवं कुशलता। प्रो. मसग्रेव (Prof. Musgrave) ने इन आर्थिक उद्देश्यों को तीन भागों में बाँटा है—आर्थिक स्थायीकरण (Economic Stabilisation), आय का वितरण (Distribution of Income) तथा साधनों का आवंटन (Resources Allocation)। स्पष्ट है कि राजस्व में निम्न दोनों बातों का अध्ययन करते हैं—

(a) किस प्रकार इन उद्देश्यों की पूर्ति की जाये,

(b) इन उद्देश्यों का पूर्ति करने में बजट की विभिन्न क्रियाओं की अर्थव्यवस्था पर कैसे प्रभाव पड़े हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्व अब केवल वास्तविक विज्ञान (Positive Science) ही नहीं है बल्कि एक आदर्श विज्ञान भी है। अतः राजस्व की नवीन प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप राजस्व का क्षेत्र और विकसित हो गया है।

4. विकसित तथा अल्पविकसित देशों में लोक वित्त (Public Finance in Developed and Under-developed Countries)—वर्तमान युग में सभी देश बड़ी तीव्र गति से आर्थिक उन्नति करने में लगे हैं। अल्पविकसित देशों में तो आर्थिक विकास की समस्या है ही, यह समस्या विकसित देशों में भी है, क्योंकि वे अपने आर्थिक विकास को निरन्तर विकासशील बनाये रखना चाहते हैं। आजकल राष्ट्रों की सरकारें उनके आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप करती हैं, जिससे राष्ट्र की आर्थिक क्रियाएँ प्रभावित होती हैं। इस प्रकार देश के आर्थिक जीवन में बढ़ते हुए सरकारी हस्तक्षेप से, आज के युग में विकसित तथा अल्पविकसित देशों में राजस्व का महत्त्व भी निरन्तर बढ़ रहा है।

### 1.6.2 विकसित देश एवं लोक वित्त

#### (Developed Countries and Public Finance)

विकसित देशों के आर्थिक विकास की गति तीव्र होने पर तथा वहाँ के नागरिकों का जीवन-स्तर ऊँचा होने पर भी वहाँ लोक वित्त का पर्याप्त महत्त्व रहता है। राजस्व-नीतियाँ सरकार की वित्तीय नीतियों के रूप में प्रकट होती हैं। इनसे विकसित देशों की अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। विकसित देश की मुख्य समस्या होती है—देश के आर्थिक जीवन-स्तर को स्थिर बनाये रखना। विकसित देश के अन्तर्गत लोक वित्तीय गतियों का उद्देश्य आर्थिक विकास को प्राप्त करना नहीं होता। आर्थर स्मिथीज (Arther Smithies) ने अमेरिका के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है—“वित्तीय नीति का प्रमुख उद्देश्य कुल माँग पर नियन्त्रण करना होता है और यह निजी क्षेत्र के लिए वैकल्पिक प्रयोगों के बीच साधनों के वितरण के इसके परम्परागत कार्य को छोड़ देती है।”

विकसित देशों में आर्थिक विकास के आर्थिक उच्चावचन आते रहते हैं। इसलिए सरकार यह प्रयास करती है कि जन-क्रय-शक्ति (Purchasing power) को नियन्त्रित रखकर आर्थिक स्थिरता बनी रहे।

इस प्रकार विकसित देशों में आर्थिक स्थिरता बनाये रखने में लोक वित्त अतीव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कुल माँग के नियन्त्रण द्वारा आर्थिक स्थिरता स्थापित की जा सकती है। कुल माँग सार्वजनिक व्यय, उपभोग तथा विनियोग द्वारा प्रभावित होती है। लोक वित्त की नीतियों द्वारा कुल माँग को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया जा

1. “Public Finance is the study of the affects of budgets on the economy particularly the effect on the achievement of the major economic objectives —growth, stability, equality and efficiency.” It is also the study of “What ought to be.”

## नोट

सकता है। यदि देश की सरकार अपनी बजट नीति के द्वारा कुल माँग को स्थिर रखे तो आर्थिक विकास में स्थायित्व लाया जा सकता है। विकसित देशों में सार्वजनिक व्यय, करारोपण, सार्वजनिक ऋण आदि प्रयोग से आर्थिक स्थिरता स्थापित की जाती है और ये सभी लोक वित्त या राजस्व के अन्तर्गत आते हैं। अतः विकसित देशों में आर्थिक स्थायित्व लाने में लोक वित्त का अत्यधिक महत्त्व है।

### 1.6.3 अल्पविकसित देश एवं लोक वित्त (Under-developed Countries and Public Finance)

विकसित तथा अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं में कुछ मूलभूत अन्तर होता है, जैसे विकसित देशों की मुख्य समस्या आर्थिक स्थिरता स्थापित करने की होती है, जबकि अल्पविकसित देशों की मुख्य समस्या आर्थिक विकास करने की होती है। **वाल्टर हेल्लर (Walter Heller)** का मत है कि विकसित तथा अल्पविकसित देशों की राजस्व-नीति प्रायः एक-सी होती है। वित्तीय नीति का प्रमुख उद्देश्य आय एवं धन के वैषम्य को समाप्त करना, विनियोग को प्रोत्साहित करना तथा आर्थिक स्थायित्व बनाये रखना है।

अल्पविकसित देशों में वहाँ की सरकारों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास को दिन-प्रतिदिन तीव्र गति प्रदान करना होता है और इसके लिए लोक वित्त या राजस्व की क्रियाओं को प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ ए. आर. प्रेस्ट (A. R. Prest) के शब्द द्रष्टव्य हैं—“अब यह केवल स्वीकार ही नहीं किया जाता बल्कि आशा की जाती है कि सरकार को आर्थिक विकास के लिए दृढ़, निश्चित कार्य करना चाहिए।”

“विकासशील देशों के आर्थिक विकास हेतु आर्थिक जीवन को नियन्त्रित तथा नियमित किया जाना परमावश्यक है। इस कार्य को सरकार राजस्व की क्रियाओं द्वारा सम्पन्न करती है। अतः यह बात निर्विवाद सत्य है कि अल्पविकसित देशों में राजस्व की नीतियाँ सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं।”

अल्पविकसित देशों में लोक वित्त का महत्त्व कुछ अन्य कारणों से भी बढ़ गया है, जो निम्न प्रकार हैं—

- (1) **सार्वजनिक बचत की कमी**—विकासशील देशों में बचत की मात्रा बहुत कम होती है, जिससे आर्थिक विकास नहीं हो पाता। इसके लिए वित्त एकत्रित करने की आवश्यकता होती है, जिसे सार्वजनिक बचत (Public savings) की उचित नीति द्वारा बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार इन देशों में राजस्व का महत्त्व अत्यधिक बढ़ा है।
- (2) **आर्थिक साधनों को प्राप्त करना**—वर्तमान युग में अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास को तीव्र करना तथा उसमें स्थायित्व स्थापित करना राज्य का प्रमुख कार्य माना जाता है इन देशों के आर्थिक साधनों को बलपूर्वक इकट्ठा करना कठिन होता है, इसलिए आर्थिक साधनों को अप्रत्यक्ष रूप से एकत्रित करना अच्छा समझा जाता है और इसके लिए लोक वित्त सर्वोपयुक्त समझा जाता है।
- (3) **निजी क्षेत्र पर नियन्त्रण**—अल्पविकसित देशों में निजी क्षेत्र को एकदम समाप्त करना असम्भव है, क्योंकि ऐसा करने से आर्थिक विकास की गति अवरुद्ध होने का भय रहता है। अतः निजी क्षेत्र के लिए उचित निर्देशन एवं नियन्त्रण का होना आवश्यक है और यह कार्य राजस्व की क्रियाओं द्वारा ही किया जा सकता है।

## 1.7 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में लोक वित्त का महत्त्व (Role of Public Finance in National Economy)

वर्तमान समय में लोक वित्त का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यद्यपि प्राचीन अर्थशास्त्रियों के अनुसार राज्य को प्रजा के कार्यों में कम-से-कम हस्तक्षेप करना चाहिए। एडम स्मिथ ने तो केवल सुरक्षा, पुलिस और शान्ति व्यवस्था आदि जैसे कार्यों में ही राजकीय हस्तक्षेप को आवश्यक बताया। इसी प्रकार व्यक्तियों द्वारा किया गया व्यय उत्पादक तथा सरकार द्वारा किया गया व्यय अनुत्पादक होता है। 19वीं शताब्दी में प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री **वैगनर (Wagner)** ने राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं का प्रतिपादन किया और तब से राज्य के कार्यों में तीव्रता से वृद्धि हुई है। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विशेष रूप से 1930 की महामन्दी के कारण लोक वित्त को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। वर्तमान समय में राज्य को एक कल्याणकारी संस्था माना जाता है। निर्धनता, आर्थिक विषमता, व्यावसायिक उच्चावचन आदि परिस्थितियों के कारण मानव जीवन में राजकीय हस्तक्षेप को अपरिहार्य बना दिया है।

## नोट

कार्ल मार्क्स, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ तथा सिडनी वेब ने व्यक्तिगत प्रयासों के स्थान पर राजकीय प्रयास व हस्तक्षेप को महत्त्व प्रदान किया है।

लोक वित्त के अध्ययन के महत्त्व में वृद्धि का एक कारण यह भी है कि देश की सार्वजनिक वित्त व्यवस्था का प्रत्येक अंग पर प्रभाव पड़ता है। सार्वजनिक वित्त का कार्य सरकार के लिए केवल वित्त एकत्रित करना ही नहीं है—अब उसे सामाजिक न्याय दिलाने, आर्थिक स्थिरता बनाये रखने, पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा देने का भी एक शक्तिशाली साधन समझा जाता है। विकासशील देशों के आर्थिक विकास में भी लोक वित्त का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अतः स्पष्ट है कि अब सरकार आर्थिक विषयों में अत्यधिक हस्तक्षेप करने लगी है।



क्या आप जानते हैं 1930 की महामन्दी के कारण लोक वित्त को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया।

संक्षेप में हम लोक वित्त के महत्त्व का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं—

- (1) साधनों के वितरण में महत्त्व,
- (2) आय और सम्पत्ति के वितरण में महत्त्व,
- (3) आर्थिक स्थिरता के सन्दर्भ में महत्त्व तथा
- (4) आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में महत्त्व।

(1) **साधनों के वितरण में महत्त्व** (Importance of Public Finance in Allocation of Resources)—साधनों के वितरण से आशय इनके सर्वश्रेष्ठ चुनाव से है जिससे स्पष्ट होता है कि समाज की भूमि, श्रम, पूँजीगत वस्तुओं व अन्य साधनों का किस प्रकार प्रयोग किया जाये— किन वस्तुओं का उत्पादन कितनी मात्रा में किया जाये तथा उत्पादन की किन-किन रीतियों का प्रयोग किया जाये, इत्यादि। प्रत्येक देश के पास निश्चित मात्रा में आर्थिक साधन उपलब्ध होते हैं। इनमें प्राकृतिक साधन, जैसे—भूमि, वन, खनिज सम्पदा व शक्ति स्रोत आदि भी सम्मिलित किये जाते हैं। प्राकृतिक साधनों के विषय में यह उल्लेखनीय है कि इनकी उपलब्धि मात्रा से ही किसी देश के आर्थिक विकास का स्तर ऊँचा नहीं हो जाता अपितु आर्थिक विकास हेतु इन साधनों का विदोहन भी आवश्यक है। इनके अतिरिक्त किसी देश के प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों के द्वारा कृषि उद्योग, यातायात व व्यापार आदि आर्थिक क्रियाओं का संचालन होता है। यही देश की अर्थव्यवस्था के अंग हैं। इन्हीं पर सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था निर्भर करती है। स्पष्ट है कि आर्थिक क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य उपलब्ध साधनों का बुद्धिमत्तापूर्ण तरीके से उचित विदोहन करना है। इसका ज्ञान निम्न विवरण से भी हो सकता है—

(i) **आर्थिक संरचना का विकास** (Development of Economic Structure)—सरकार अपनी बजट नीति द्वारा आर्थिक संरचना के विकास हेतु धन की व्यवस्था कर सकती है। इसके अन्तर्गत रेलवे, विद्युत, सड़क, यातायात, स्कूल, अस्पताल, बहुदेशीय योजनाओं आदि का विकास आता है। इसके अभाव में आर्थिक प्रगति व्यवस्थित रूप से नहीं हो सकती परन्तु इन योजनाओं पर बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। परन्तु इनके शीघ्र व प्रत्यक्ष प्रतिफल की भी आशा नहीं की जा सकती। अतः व्यक्तिगत उद्यमी इस प्रकार के विनियोगों में रुचि नहीं रखते। अतः राज्य का कर्तव्य है कि वह आर्थिक संरचना के भार को वहन करे, पूँजी निर्माण की दर को तीव्र करे व भार मितव्ययिताओं को उत्पन्न करे।

(ii) **जनसंख्या वृद्धि की दर** (Rate of Population Growth)—दुत आर्थिक विकास तभी सम्भव हो सकता है जब जनसंख्या वृद्धि दर की अपेक्षा रोजगार के अवसरों और आय में वृद्धि की दर बहुत अधिक हो। अतः सरकार अपनी राजकोषीय नीति में परिवार नियोजन पर अधिक महत्त्व देते हुए जनसंख्या को नियन्त्रित करती है।

(iii) **पिछड़े क्षेत्रों का विकास** (Development of Backward Areas)—यदि पिछड़े क्षेत्रों में कर सम्बन्धी छूटें एवं रियायतें प्रदान की जाएँ तो घने बसे क्षेत्रों में लगे आर्थिक साधनों को पिछड़े क्षेत्रों की ओर मोड़ा जा सकता

## नोट

है। इससे जहाँ पिछड़े क्षेत्रों की उन्नति और विकास में सहायता मिलेगी वहाँ सन्तुलित आर्थिक विकास भी सम्भव हो सकेगा।

(iv) **सार्वजनिक व निजी उद्योग का विकास** (Development of Public and Private Industries)– वर्तमान समय में राज्य देश में सुदृढ़ औद्योगिक ढाँचा तैयार करने हेतु स्वयं आधारभूत उद्योगों की स्थापना व उनका विकास करता है। इसके अतिरिक्त सरकार व्यक्तिगत विनियोगों को भी अपनी राजस्व नीति द्वारा प्रोत्साहित कर सकती है, जैसे–(A) व्यक्तिगत उद्योगों पर कर भार कम करना, (B) इनको विभिन्न औद्योगिक सुविधाएँ प्रदान करना, (C) व्यक्तिगत उद्योगों को सस्ती ऋण सुविधाएँ मिलना व इस हेतु विशिष्ट वित्तीय संस्थाएँ खोलना आदि।

(v) **सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी गतिविधियाँ** (Social Security Activities)–अनेक विकसित देशों में क्रमिक सुरक्षा, उदाहरणार्थ–स्वास्थ्य बीमा, बेकारी बीमा योजना, वृद्धावस्था पेन्शन, मातृत्व लाभ आदि कार्यक्रमों पर बहुत बड़ी मात्रा में सार्वजनिक व्यय किया जाता है जिसका अर्थव्यवस्था पर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उपलब्ध साधनों के पूर्ण उपयोग व उचित आवण्टन के क्षेत्र में राजस्व का महत्वपूर्ण योगदान है।

(2) **आय और सम्पत्ति के वितरण में महत्त्व** (Importance of Public Finance in Distribution of Income and Wealth)–आज अधिकांश देशों में आय व सम्पत्ति के वितरण में असमानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं एक ओर तो कुछ मुट्ठी भर लोग धन से परिपूर्ण रहते हैं और अनेक विलासितापूर्ण कार्यों में अपनी आय का दुरुपयोग करते हैं, जबकि दूसरी ओर जनसाधारण अथाह दरिद्रता व विपत्ति के नीचे दबे कराहते हैं। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था वे अन्तर्गत यदि आर्थिक शक्तियों को नियन्त्रित न किया जाये तो आय व सम्पत्ति के वितरण की समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। आय की असमानता नैतिक, सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से अवाञ्छनीय है। धन के वितरण की असमानता को दूर करने से समाज को अधिकतम आर्थिक कल्याण प्राप्त हो सकेगा। आय की असमानता के कारण देश में उत्पादन का ढाँचा धनी वर्ग के अनुकूल हो जाता है। उत्पादन का अधिकांश भाग अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तुओं के बजाय विलासिता की वस्तुओं का होता है। अतः समाज को अधिकतम सामाजिक सन्तोष प्राप्त नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त आय की असमानता अन्ततः बेरोजगारी को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या के विशाल वर्ग के लिए आर्थिक असुरक्षा उत्पन्न हो जाती है, बचत व विनियोग का सन्तुलन सम्भव नहीं हो पाता और देश की अर्थव्यवस्था अनुकूलतम स्थिति में कार्य नहीं कर पाती। अब हमें यह अध्ययन करना होगा कि आय व सम्पत्ति के वितरण की विषमताओं को कम करने हेतु लोक वित्त कहाँ तक उपयोगी होगा। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री धन के वितरण के लिए करारोपण को सामान्यतः विरोध की दृष्टि से देखते थे। उनका कहना था कि करारोपण का एकमात्र उद्देश्य राज्य के लिए आय प्राप्त करना है। परन्तु वर्तमान समय में यह बात पूर्ण रूप से स्वीकार की जा रही है कि राजकोषीय नीतियाँ धन के वितरण की असमानताओं को दूर करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं। सार्वजनिक व्यय द्वारा जहाँ गरीबों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाकर वितरण की विषमताओं में कमी की जा सकती है वहाँ करारोपण द्वारा धनी व्यक्तियों की आय का स्तर नीचा करके भी इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार आज धन के वितरण में वाञ्छित समानता लाने की दो मुख्य विधियाँ हैं–

(i) **सार्वजनिक व्यय** (Public Expenditure)–यह आय को निर्धन व्यक्तियों के हित में पुनर्वितरित करने का साधन हो सकता है। यदि सरकार अपनी आय का अधिकतम भाग इस प्रकार व्यय करती है जिससे निर्धनों की अधिक सहायता होती है तो वास्तविक आयों में कम असमानता होगी। अतः सरकार को निम्न आय के लोगों पर अधिक व्यय करना चाहिए। इस विषय में सरकार को चाहिए कि वह–(अ) सामाजिक सेवाओं, जैसे–निःशुल्क शिक्षा, चिकित्सा व मकान की व्यवस्था आदि गरीबों के लिए करे। (ब) बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था की कठिनाइयों से गरीबों की रक्षा करे। (स) सरकार द्वारा अनिवार्य वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि हेतु विशेष आर्थिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए। (द) यदि सरकार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के सन्तुलित विकास कार्यक्रम को शुरू कर दे तो यह नीति जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और आय की असमानताओं को दूर करने में और भी सफल होगी।



## नोट

(ii) करारोपण (Taxation)—करारोपण भी धन की असमानताओं को दूर करने का महत्वपूर्ण साधन है। सर्वप्रथम जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर ने करारोपण के माध्यम से धन की असमानताओं को दूर करने का जोरदार समर्थन किया है। आय-कर (Income Tax) वेतन और मजदूरियों में अन्तर के कारण आय की असमानता को कम करता है, जबकि उत्तराधिकार कर (Inheritance Tax) विशेष रूप से सम्पत्तियों के अन्तर के कारण उत्पन्न असमानताओं को कम करता है। अतः प्रगतिशील व प्रत्यक्ष करों के द्वारा अपेक्षाकृत धनी वर्ग के लोगों से निर्धन वर्ग की ओर धन का हस्तान्तरण किया जा सकता है, क्योंकि धनी व्यक्तियों से कर वसूल करके उसे ऐसी सामाजिक सेवाओं पर व्यय किया जा सकता है जिसका वास्तविक लाभ निर्धन वर्ग के लोगों को हो। यद्यपि सार्वजनिक व्यय और करारोपण साथ-साथ चलते हैं, फिर भी धन के वितरण की असमानता को दूर करने में करारोपण का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि करारोपण केवल धनी व्यक्तियों की आय का स्तर नीचा करने के लिए ही आवश्यक नहीं है अपितु सरकारी व्यय के कार्यक्रमों के लिए धनराशि प्राप्त करने के लिए भी बहुत आवश्यक है। प्रगतिशील कर आय की असमानता को कम करते हैं जबकि प्रतिगामी कर आय की असमानता को बढ़ाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्व द्वारा आय और सम्पत्ति के समान वितरण की दिशा में जो प्रयास किये जाते हैं उनका बचत और विनियोग पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और देश की अर्थव्यवस्था को समुचित ढंग से विकसित करने में सहायता मिलती है तथा देश के आर्थिक व सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है।

(3) आर्थिक स्थिरता के सन्दर्भ में महत्त्व (Importance of Economic Stability)—आर्थिक स्थिरता का तात्पर्य उत्पादन, रोजगार व मूल्य में होने वाले परिवर्तनों से है। उत्पादन, रोजगार और मूल्यों में होने वाली वृद्धि देश की अर्थव्यवस्था के ऊपर जाने के प्रतीक माने जाते हैं। इसके विपरीत उत्पादन में कमी, बेरोजगारी व मन्दी देश की अर्थव्यवस्था को मन्दी की ओर ले जाते हैं। अतः पूर्ण रोजगार अथवा आर्थिक स्थिरता हेतु लोक वित्त के महत्त्व की विवेचना हम इस प्रकार कर सकते हैं कि इसके द्वारा उत्पादन, मूल्यों व रोजगार पर किस प्रकार प्रभाव डाला जा सकता है ताकि निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

यहाँ पर पूर्ण रोजगार और मूल्य-स्थिरता के अर्थों को समझना आवश्यक हो जाता है। सर विलियम बेवरिज के अनुसार, “रोजगार का विचार उस विशेष स्थिति की ओर संकेत करता है जिसमें बेकार व्यक्तियों की संख्या की तुलना में काम करने के लिए अधिक खाली स्थान प्राप्त होते हैं।” अमरीकी आर्थिक संघ के अनुसार, “पूर्ण रोजगार का अर्थ यह है कि उन सभी योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को जो प्रचलित वेतन दरों पर काम चाहते हैं, बिना अधिक विलम्ब हुए उत्पादक कार्यों में काम प्राप्त हो सके।” इसी प्रकार मूल्य स्थिरता का अर्थ यह है कि मूल्यों के सामान्य स्तर में तीव्र अल्पकालिक परिवर्तनों का न होना।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह मत था कि समाज में सदा पूर्ण रोजगार की स्थिति बनी रहती है। उनका यह विचार जे. बी. से के प्रसिद्ध कथन “पूर्ति स्वतः माँग की जननी होती है” पर आधारित था। अतः अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी या अत्युपादन हो ही नहीं सकता क्योंकि जो कुछ भी पैदा होता है उसका मुद्रा द्वारा विनिमय अवश्य हो जाता है लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के उपरोक्त विचारों का जोरदार खण्डन किया है और यह स्पष्ट किया है कि देश में निजी उपक्रम के प्रयासों से ही सदा पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं पाई जाती। कीन्स के अनुसार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सदा ही उतार-चढ़ाव आया करते हैं। कभी अतिपूर्ण रोजगार की स्थिति आती है तो कभी अपूर्ण रोजगार की स्थिति। अगर किसी विशेष समय पूर्ण रोजगार की स्थिति पाई जाती है तो यह एक संयोग की ही बात होती है।

पूर्ण रोजगार और उससे सम्बन्धित तथ्य अर्थात् उत्पादन रोजगार एवं मूल्य को प्रभावित करने वाला एक आधारभूत तत्व प्रभावपूर्ण माँग समाज में होने वाले कुल उत्पादन के मूल्य को सूचित करती है। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय उत्पादन का कुल मूल्य और उद्योगपतियों द्वारा माल की विक्री से प्राप्त होने वाली आय में कोई अन्तर नहीं होता। अर्थात् कुल उत्पादन राष्ट्रीय आय के बराबर होता है। अतः उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक स्थिरता एक देश की अर्थव्यवस्था को काफी सीमा तक प्रभावित करती है।

## नोट

(4) **आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में महत्त्व** (Importance in collection of resources for Economic Development)–आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में लोक वित्त का क्या महत्त्व है, इसे हम निम्न विवरण से स्पष्ट कर सकते हैं–

(i) **पूँजी निर्माण** (Capital formation)–किसी देश के आर्थिक विकास में पूँजी निर्माण का केन्द्रीय महत्त्व होता है। वस्तुतः अर्द्धविकसित देशों में व्याप्त निर्धनता के उचित चक्र को विनियोग के बिन्दु से टाला जा सकता है और जिसके कारण अनुकूल परिवर्तनों की सम्भावना हो जाती है। अन्ततः लोक वित्त की कार्यवाहियों का उद्देश्य यह होना चाहिए कि उपभोग व अन्य गैर विकास कार्यों की ओर से पूँजी निर्माण अर्थात् बचत व विनियोग की ओर साधनों का अन्तरण हो। सरकार पूँजी निर्माण में वृद्धि करने के लिए कई प्रकार से सहायता कर सकती है। डॉ. आर. एन. त्रिपाठी के अनुसार, चूँकि अर्द्धविकसित देशों में बचत की दर अत्यन्त कम होती है, अतः इन देशों में बढ़ती हुई बचत दर प्राप्त करने हेतु ताकि विनियोग अधिक से अधिक हो, सरकार निम्नलिखित ढंग अपना सकती है–

- (अ) प्रत्यक्ष भौतिक नियंत्रण, (ब) वर्तमान करों की दर में वृद्धि करना,  
(स) सार्वजनिक उद्योगों से बचत प्राप्त करना, (द) सार्वजनिक ऋण,  
(य) घाटे का बजट

(अ) **प्रत्यक्ष भौतिक नियंत्रण** (Direct physical Control)–यह विशिष्ट उपभोग व अनुत्पादक विनियोजन को घटाने में अत्यन्त प्रभावशाली होता है। यद्यपि अर्द्धविकसित देशों में उसका प्रशासन असुविधाजनक होता है फिर भी प्रत्यक्ष भौतिक नियंत्रण राजकोषीय नीति का आवश्यक अंग होता है।

(ब) **वर्तमान करों की दर में वृद्धि** (Increase in the rate of present taxes)–करों को लगाना तथा वर्तमान करों की दर में वृद्धि जो स्पष्ट रूप से प्रगतिशील भी कही जा सकती है, अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। कर की रचना निम्न प्रकार से हो सकती है–(क) धनी वर्ग के उन साधनों को जो निष्क्रिय पड़े हों अथवा जिनका राशि की दृष्टि से लाभप्रद उपभोग न होता हो–आय कर, सम्पत्ति कर आदि लगाकर प्राप्त किया जा सकता है, सरकारी वस्तुओं पर कर लगाया जा सके जिनकी माँग बेलोच हो, (ख) कृषक वर्ग की बढ़ती आय में से कर लगा देना आवश्यक होता है। इस हेतु भूमि तथा अन्य प्रकार की सम्पत्तियों पर करारोपण किया जा सकता है।

(स) **सार्वजनिक उद्योगों से बचत प्राप्त करना** (To collect the savings from public enterprises)–विकासशील देशों में अधिक लागत के कारण उद्योगों में कम बचत प्राप्त होती है फिर भी यदि सार्वजनिक उद्योगों को दक्षता व कुशलता से चलाया जाये तो उनसे भी अतिरिक्त प्राप्त किया जा सकता है।

(द) **सार्वजनिक ऋण** (Public debt)–ऐच्छिक बचत को सरकार ऋण के रूप में प्राप्त कर सकती है। लोगों की बचत को बढ़ाने के लिए सरकारी ऋण पत्र कर सुरक्षित साधन है। संस्थाएँ भी अपने धन को सरकारी ऋण-पत्रों में लगा सकती हैं। चूँकि अर्द्धविकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है, इसलिए सार्वजनिक ऋणों का क्षेत्र अत्यधिक सीमित होता है, परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि सार्वजनिक ऋण-पत्रों को क्रय करने हेतु देश में किसी प्रकार की बचत नहीं होती। इन देशों में लघु बचतों का विशेष महत्त्व होता है। वर्तमान समय में बहुत-सी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ जैसे, विश्व बैंक व अन्तराष्ट्रीय विकास संघ आदि भी विकासशील देशों को पर्याप्त ऋण प्रदान करती हैं।

(य) **घाटे का बजट** (Deficit Budget)–घाटे की वित्त व्यवस्था की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कि सरकार करों व जनता से लिए जाने वाले ऋणों व आय के अन्य साधनों द्वारा जितना प्राप्त करती है उससे अधिक व्यय करती है। सरकार को घाटे कि वित्त व्यवस्था का उपभोग सतर्कता के साथ करना चाहिए। इस विधि का अत्यधिक उपयोग अर्थव्यवस्था में स्फीतिजनक स्थितियाँ उत्पन्न करके अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर सकता है।

(ii) **उत्पादन के स्वरूप में उत्पादन करके** (Change in the production structure)–सार्वजनिक क्षेत्र के लिए साधनों को गतिशील करने में राजकोषीय नीति बड़ी प्रेरक होती है। सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करके सरकार ऐसे उद्योगों का विस्तार कर सकती है जिन्हें वह राष्ट्रीय हित की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझती है। इसके साथ ही

## नोट

लोक वित्त सम्बन्धी कार्यवाहियों का उद्देश्य व्यक्तिगत विनियोग को वांछित दिशाओं की ओर गतिशील करने के लिए भी किया जा सकता है।

(iii) बेरोजगारी को दूर करना (To remove the unemployment) – अल्प-विकसित देशों में बेरोजगारी व अदृश्य बेरोजगारी की समस्याएँ बहुत विकट होती हैं। पूर्ण विकसित देशों में प्रायः एक अल्पकालीन समस्या होती है जो व्यापार-चक्रों के प्रभाव से उत्पन्न होती है। परन्तु विकासशील देशों में बेरोजगारी एक सर्वव्यापी समस्या होती है, जिसका समाधान एक दीर्घकालीन विकास नीति द्वारा ही हो सकता है। अतः देश में करारोपण, सार्वजनिक व्यय व ऋण सम्बन्धी नीतियों के द्वारा विनियोग में वृद्धि करके रोजगार के अवसरों का विस्तार किया जा सकता है।



टास्क आर्थिक विकास हेतु साधन जुटाने में लोक वित्त का क्या महत्त्व है?

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

11. लोक वित्त किसमें विश्वास करता है?
 

(अ) जन-कल्याण में	(ब) स्व-कल्याण में
(स) लाभ में	(द) उपरोक्त सभी।
12. निजी वित्त का एकमात्र लक्ष्य क्या है?
 

(अ) जन-कल्याण करना	(ब) लाभ प्राप्त करना
(स) नुकसान करना	(द) उपरोक्त सभी।
13. आधुनिक अर्थशास्त्री सरकारी उधार को लोक वित्त की कौन-सी कार्यवाही मानते हैं?
 

(अ) पूर्ण	(ब) अपूर्ण
(स) महत्त्वपूर्ण	(द) संपूर्ण।
14. वैगनर कहाँ का अर्थशास्त्री था?
 

(अ) भारत	(ब) रूस
(स) अमेरिका	(द) जर्मनी।
15. महामंदी कब हुई थी?
 

(अ) 1930 में	(ब) 1830 में
(स) 2001 में	(द) 1999 में।

## 1.8 सारांश (Summary)

- लोक वित्त का अर्थशास्त्र विशेष रूप से सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से सम्बन्धित है। इसमें हम उन आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं जो राज्य अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में उठती हैं, जैसे निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच साधनों का विभाजन किस प्रकार किया जाता है तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत सरकारी व्यय के विभिन्न साधनों की सन्तुष्टि के लिए साधनों का आबंटन कैसे किया जाता है।
- सन् 1930 की गम्भीर आर्थिक मन्दी (Economic depression) तथा कीन्स द्वारा रोजगार के सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन तो अबन्ध नीति के लिए मौत की घंटी ही बन गई। कीन्स ने बताया कि राज्य को राजकोषीय क्रियाओं के द्वारा रोजगार में वृद्धि करना और उसे उच्च स्तर पर बनाये रखना सम्भव है।

## नोट

- अल्पविकसित देशों में भी, सरकार का मुख्य लक्ष्य यह होता है कि देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास हो तथा राष्ट्रीय उत्पादन का न्यायपूर्ण वितरण (equitable distribution) हो, और राजकोषीय नीति (fiscal policy) इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए महत्वपूर्ण अस्त्र बन सकती है।
- लोक वित्त का क्षेत्र तथा इसकी विषय-सामग्री स्थिर नहीं है, क्योंकि राज्य की धारणा (concept), राज्य के कार्यों तथा अर्थशास्त्र की समस्याओं में परिवर्तन होने के साथ ही साथ इसका भी निरन्तर विस्तार होता जा रहा है।
- लोक वित्त तथा निजी वित्त के बीच कई मामलों में मौलिक अन्तर पाया जाता है जैसे कि उद्देश्य, वित्त प्राप्ति के तरीके तथा साधनों की मात्रा आदि के मामलों में।
- लोक वित्त की प्राचीन विचारधारा संस्थापक आर्थिक सिद्धान्त (Classical Economic Theory) पर आधारित थी परन्तु बाद में इस सिद्धान्त में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते रहे हैं। अन्त में आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ जिसे 'कीन्स का पूर्ण रोजगार का सामान्य सिद्धान्त (Keyne's General Theory of Full Employment) कहा जाता है। इस सिद्धान्त के कारण लोक वित्त की प्राचीन धारणा में भी परिवर्तन हो गया है।
- कीन्स का 'रोजगार सिद्धान्त' इस सामान्य धारणा पर टिका है कि एक व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला व्यय दूसरे व्यक्ति की आय है।
- रोजगार का विचार उस विशेष स्थिति की ओर संकेत करता है जिसमें बेकार व्यक्तियों की संख्या की तुलना में काम करने के लिए अधिक खाली स्थान प्राप्त होते हैं।

### 1.9 शब्दकोश (Keywords)

- बजट (Budget)—आय-व्यय का लेखा-जोखा।
- राजकोषीय क्रियाएँ (Fiscal operations)—राजकोष की क्रियाएँ।
- मुद्रा-स्फीति (Inflation)—देश की व्यापारिक आवश्यकता से अधिक मुद्रा का प्रचलन।
- कराधान (Taxation)—कर लगाना।

### 1.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. लोक वित्त से आपका क्या अभिप्राय है?
2. आधुनिक राज्य के कार्यों का संक्षेप में वर्णन करें।
3. कराधान से आप क्या समझते हैं?
4. लोक वित्त एवं निजी वित्त में पाए जाने वाली समानताओं को लिखें।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें—  
(a) करारोपण (b) सार्वजनिक व्यय।

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |          |          |             |         |
|----------|----------|-------------|---------|
| 1. व्यय  | 2. 'लोक' | 3. राजकोषीय | 4. 1776 |
| 5. 1930  | 6. सत्य  | 7. असत्य    | 8. सत्य |
| 9. असत्य | 10. सत्य | 11. (अ)     | 12. (ब) |
| 13. (स)  | 14. (द)  | 15. (अ)।    |         |

नोट

### 1.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

---



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
3. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
4. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस-सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
5. मनी बैंकिंग इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
6. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
7. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## इकाई-2: अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त (Principles of Maximum Social Advantages)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 2.1 अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त (The Principle of Maximum Social Advantage)
- 2.2 अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum Social Advantage)
- 2.3 सारांश (Summary)
- 2.4 शब्दकोश (keywords)
- 2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 2.6 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त को समझने में।
- अधिकतम सामाजिक लाभ की जानकारी प्राप्त करने में।
- कर लगाते समय विचारणीय तथ्य से अवगत होने में।
- व्यय करते समय विचारणीय तथ्य को जानने में।

### प्रस्तावना (Introduction)

“लोक वित्त का सिद्धान्त” नामक वाक्यांश से आशय उस मूलभूत नियम (fundamental rule) से है, जिसके द्वारा राज्य की वित्तीय नीति का निर्धारण किया जाना चाहिए। इस मूलभूत नियम को ही अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त या अधिकतम शुद्ध सामाजिक लाभ का सिद्धान्त अथवा अधिकतम सामाजिक कल्याण का सिद्धान्त कहा जाता है। प्रो. पीगू अथवा प्रो. डाल्टन ऐसे दो विख्यात अर्थशास्त्री थे, जिन्हें लोक वित्त के इस सिद्धान्त के प्रतिपादन तथा इसकी प्रसिद्धि का पूर्ण श्रेय दिया जा सकता है।

एडम स्मिथ जैसे प्राचीन अर्थशास्त्रियों का मत था कि राज्य की क्रियाएँ तथा करधान की मात्रा कम से कम होनी चाहिए। एडम स्मिथ का ही अनुसरण करते हुए उनके प्रमुख फ्रांसीसी शिष्य जे. बी. से ने कहा कि “वित्त की सब योजनाओं में सर्वोत्तम योजना है कम व्यय करना और सभी करों में सर्वोत्तम कर वह है जिसकी धनराशि सबसे कम हो।” एडम स्मिथ तथा रिकार्डो का विचार था कि गैर-सरकारी व्यय ‘उत्पादक’ (productive) होता है और सरकारी व्यय ‘अनुत्पादक’ (unproductive)। इसी कारण इन अर्थशास्त्रियों का कहना था कि “प्रत्येक कर

**नोट**

एक बुराई (evil) है और प्रत्येक सरकारी खर्च अनुत्पादक है।” इसके विपरीत प्रो. डाल्टन ने दृढ़तापूर्वक यह कहा कि, “यह कहना सही नहीं है कि प्रत्येक कर स्वयं में एक बुराई है।” उदाहरण के लिए, नशीली औषधियों, मद्य तथा अन्य मादक पदार्थों पर यदि कर लगाये जाएँ, तो उससे ऐसे पदार्थों का, जो कि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, उपभोग घटता ही है और इससे समाज का ठोस कल्याण भी होता है। डाल्टन ने सरकारी व्यय का भी समर्थन किया और इस प्राचीन विचारधारा का विरोध किया है कि यह अनुत्पादक होता है। “अन्धविश्वासी व्यक्ति सभी प्रकार के सरकारी व्यय के बारे में पहले से ही पूर्वाग्रही (biased) बने होते हैं। किन्तु हमें स्पष्ट रूप से इस बात को मानकर चलना चाहिए कि किसी भी प्रकार का सरकारी व्यय अच्छा होता है।” उदाहरण के लिए, कृषि, उद्योग, सार्वजनिक स्वास्थ्य शिक्षा तथा न्याय आदि पर किये गये सरकारी व्यय को इसलिए अनुत्पादक नहीं माना जा सकता क्योंकि ऐसा व्यय किसी न किसी प्रकार से आर्थिक व सामाजिक कल्याण में वृद्धि ही करता है। किन्तु साथ ही, प्रो. डाल्टन ने यह भी कहा कि, “यह कहना भी सही नहीं है कि सभी प्रकार का सरकारी व्यय अच्छा होता है। उदाहरणतः अनावश्यक युद्धों पर किया जाने वाला सरकारी व्यय स्पष्टतः एक बुराई ही है।” अब यह बात तो स्पष्ट ही है कि प्राचीन अर्थशास्त्रियों की यह धारणा कि प्रत्येक कर एक बुराई है और प्रत्येक सरकारी व्यय अनुत्पादक, आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा दृढ़ता से अस्वीकृत कर दी गई है। उनका विश्वास है कि किसी भी सरकारी व्यय की उत्पादकता (productivity) की आर्थिक कसौटी यह है कि वह व्यय कितना आर्थिक कल्याण उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ—शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर किया गया सरकारी व्यय विलासिता की वस्तुओं पर किये गये गैर-सरकारी व्यय से प्रायः अधिक उत्पादक होता है। इस प्रकार, लोक वित्त की कोई कार्यवाही यदि, सम्पूर्ण रूप से समाज तथा समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करती है, तब तो उसे वाँछनीय माना जायेगा अन्यथा नहीं।

## 2.1 अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त (The Principle of Maximum Social Advantage)

यह सिद्धान्त समाज के आर्थिक कल्याण (economic welfare) को, सम्पूर्ण रूप में (as a whole), अधिकतम करने की दृष्टि से लोक वित्त की कार्यवाहियों का निर्देशन करता है। सरकारी राजस्व (public revenue) तथा सरकारी व्यय (public expenditure) राज्य की दो महत्वपूर्ण वित्तीय कार्यवाहियाँ हैं। यह आवश्यक है कि राज्य की इन दोनों वित्तीय कार्यवाहियों का निर्देशन या नियमन किसी मूलभूत सिद्धान्त के द्वारा किया जाए ताकि उन कार्यवाहियों से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त किया जा सके। प्रो. पीगू तथा प्रो. डाल्टन ऐसे दो विख्यात अर्थशास्त्री थे जो लोक वित्त के इस मूलभूत सिद्धान्त के प्रतिपादन तथा प्रसिद्धि के लिए उत्तरदायी थे।

अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त के अनुसार, राज्य की अपनी आय की प्राप्ति और धन का व्यय इस प्रकार करना चाहिए ताकि जनता के कल्याण में अधिकतम वृद्धि हो सके। जब सरकार कर लगाती है तो कुछ अनुपयोगिता या तुष्टिहीनता (disutility) उत्पन्न होती है। दूसरी ओर, जब सरकार धन व्यय करती है तो उपयोगिता या तुष्टिगुण (utility) में कुछ वृद्धि होती है। अतः सरकार को अपने आय-व्यय को इस प्रकार समायोजित करना चाहिए कि किसी तुष्टिगुण के अधिकतम बेशी (surplus) उत्पन्न हो तथा तुष्टिहीनता की मात्रा कम से कम हो। परन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ऐसा करके सभी लोगों के व्यक्तिगत कल्याण में अधिकतम वृद्धि हो जाएगी, ऐसी बात नहीं है, बल्कि यह सम्भव हो सकता है कि उनमें से कुछ के कल्याण में और कमी हो जाए। परन्तु यदि बड़ी संख्या में लोगों के कल्याण में वृद्धि होती है तो यह माना जाएगा कि सम्पूर्ण रूप से समाज का शुद्ध कल्याण (net welfare) अधिकतम ही हुआ है। प्रो. डाल्टन ने इसे इन शब्दों में व्यक्त किया है कि, “लोक वित्त की इन कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप, उत्पन्न किये जाने वाले धन की प्रकृति तथा मात्रा में और विभिन्न व्यक्तियों व वर्गों के बीच उस धन के वितरण में अनेक परिवर्तन होते हैं। प्रश्न यह है कि क्या ये परिवर्तन, समग्र रूप में, समाज पर लाभकारी प्रभाव छोड़ते हैं? यदि ऐसा है तब तो माना जाएगा कि लोक वित्त की कार्यवाहियाँ न्यायोचित हैं, अन्यथा नहीं। लोक वित्त की सर्वोत्तम व्यवस्था वह है जो अपने द्वारा सम्पादित की जाने वाली कार्यवाहियों के द्वारा अधिकतम सामाजिक लाभ उपलब्ध कराये।”

## नोट



**नोट्स** प्रो. डाल्टन ने इस सिद्धान्त को 'अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त' कहा और प्रो. पीगू ने इसे 'अधिकतम कुल कल्याण का सिद्धान्त' (Principle of Maximum Aggregate Welfare) का नाम दिया।

### 2.1.1 सरकारी आय तथा व्यय की सीमा

#### (Extent of Public Revenue and Expenditure)

प्रो. डाल्टन ने इस बात की ओर भी संकेत किया कि सरकारी व्यय किस सीमा तक बढ़ाया जाये? सरकारी व्यय को विभिन्न उपयोगों में किस प्रकार बाँटा जाये? सरकारी आय को कैसे एकत्र किया जाए? तथा उसे विभिन्न वर्गों के बीच कैसे विभाजित किया जाये? प्रो. डाल्टन के ही शब्दों में, "सरकारी व्यय प्रत्येक दिशा में ठीक उस सीमा तक किये जाने चाहिए कि जिससे किसी भी क्षेत्र में इस व्यय की थोड़ी-सी और वृद्धि से समाज को प्राप्त होने वाले लाभ में, और इसके विपरीत कराधान अथवा अन्य सरकारी आय के अन्य किसी साधन में की जाने वाली थोड़ी-सी भी वृद्धि से होने वाली हानि में, समान सन्तुलन स्थापित किया जा सके। यह नियम सरकारी व्यय तथा सरकारी आय दोनों की ही एक आदर्श सीमा प्रस्तुत करता है।" इसका अर्थ है कि लगाये जाने वाले कर की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से जनता द्वारा किये जाने वाले त्याग (sacrifice) का भार तो बढ़ता जाएगा, किन्तु उस कर के खर्च से जनता को प्राप्त होने वाले लाभ (benefit) की मात्रा बराबर घटती जायेगी। इस प्रकार कर लगाने तथा उसे खर्च करने के सिलसिले में एक बिन्दु ऐसा आ पहुँचेगा जहाँ कि राज्य द्वारा खर्च किये जाने वाले धन की किसी इकाई (unit) से प्राप्त होने वाला लाभ, सरकार द्वारा लगाये जाने वाले कर की किसी इकाई के कारण जनता द्वारा किये जाने वाले त्याग के ठीक बराबर होगा। यह वह स्थिति है कि जब सरकार को आय तथा व्यय के सम्बन्ध में अपना बढ़ता हुआ कदम रोक देना चाहिए क्योंकि यही वह बिन्दु (point) है कि जिस पर सीमान्त त्याग (marginal sacrifice) सीमान्त लाभ (marginal benefit) के बराबर होता है। सरकार के वित्तीय कार्य की यही इष्टतम या अनुकूलतम सीमा (optimum limit) है। इस प्रकार, सरकारी व्यय उस सीमा तक किया जाना चाहिए जहाँ तक कि सरकारी खर्च से प्राप्त होने वाला सीमान्त तुष्टिगुण, कराधान या सरकारी आय के कारण होने वाली सीमान्त तुष्टिहीनता (marginal disutility) के ठीक बराबर हो।



उदाहरण-अधिकतम सामाजिक कल्याण को निम्न उदाहरण द्वारा आसानी से समझाया जा सकता है-

मुद्रा की इकाई	कर की प्रत्येक इकाई से त्याग	व्यय की प्रत्येक इकाई से सन्तुष्टि
1	5	16
2	7	12
3	9	9
4	12	7
5	16	5
6	20	3

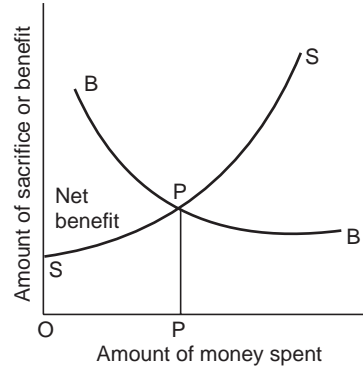
उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि समाज पर कर की प्रत्येक इकाई भार में वृद्धि करने से सीमान्त त्याग बढ़ता जाता है। इसके विपरीत सार्वजनिक व्यय की प्रति अतिरिक्त इकाई से समाज के लिए इसकी उपयोगिता पहले की अपेक्षा कम होती जाती है। यहाँ मुद्रा की तीसरी इकाई पर सीमान्त सामाजिक त्याग तथा सीमान्त सामाजिक लाभ बराबर है अर्थात् 9 इकाई। यहीं पर कर तथा सार्वजनिक व्यय की सीमा निश्चित हो जायेगी।

यह बात आगे दिये गये रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट की गयी है जिसमें SS' रेखा त्याग या तुष्टिहीनता की वक्र रेखा है और BB' रेखा लाभ या तुष्टिगुण की वक्र रेखा (benefit or utility curve) है। ये दोनों वक्र रेखाएँ P बिन्दु



**नोट**

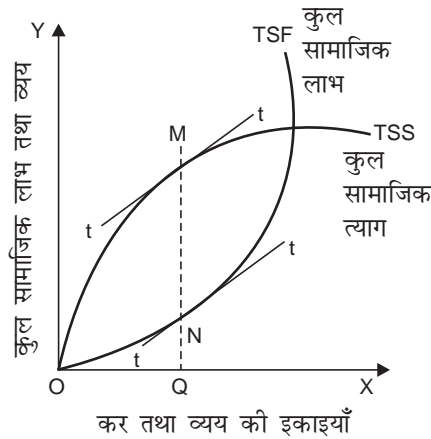
पर एक-दूसरे को काटती हैं। इसके अतिरिक्त OX रेखा खर्च किये गये धन की मात्रा को प्रकट करती है तथा खड़ी रेखा (OY) किये गये त्याग (sacrifice) अथवा खर्च किये गये धन होने वाले लाभ की मात्रा को प्रदर्शित करती है।



**चित्र-1**

लाभ की वक्र रेखा BB द्वारा घरे गये क्षेत्र में से यदि त्याग की वक्र रेखा (sacrifice curve) SS' द्वारा घरे गये क्षेत्र को घटा दिया जाये तो वह शुद्ध लाभ (net benefit) बचा रहता है जो OP' के बराबर खर्च करने से प्राप्त होगा। OP' खर्च P बिन्दु पर अनुकूलतम या इष्टतम स्थिति में है क्योंकि इस बिन्दु पर धन की अन्तिम इकाई द्वारा प्राप्त तुष्टिगुण धन की अन्तिम इकाई द्वारा खोये गये तुष्टिगुण के बराबर है। त्याग की वक्र रेखा SS' ऊपर उठती हुई वक्र रेखा है क्योंकि सरकारी व्यय के लिए प्राप्त किये जाने वाले धन की प्रत्येक इकाई के साथ ही त्याग की मात्रा बढ़ती जाती है। किन्तु इसके विपरीत, लाभ की वक्र रेखा BB' नीचे गिरती हुई वक्र रेखा है, क्योंकि ज्यों-ज्यों व्यय बढ़ता है त्यों-त्यों उसकी प्रत्येक इकाई के साथ ही उससे प्राप्त होने वाला लाभ घटता जाता है। बिन्दु P, जहाँ कि दोनों वक्र रेखाएँ परस्पर मिलती हैं, राज्य की वित्तीय क्रिया की अनुकूलतम सीमा को प्रकट करता है। यही वह बिन्दु है जहाँ कि किया गया सीमान्त त्याग प्राप्त किये गये सीमान्त लाभ के बराबर होता है।

अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त की व्याख्या कुल सामाजिक त्याग तथा कुल सामाजिक लाभ वक्र द्वारा भी स्पष्ट की जा सकती है। अधिकतम सामाजिक लाभ उस बिन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ कुल सामाजिक लाभ तथा कुछ सामाजिक त्याग का अन्तर सबसे अधिक हो।



**चित्र-2**

चित्र-2 से TSB वक्र सार्वजनिक व्यय से प्राप्त कुल सामाजिक लाभ को दर्शाता है जिसका ढाल ऊपर की ओर उठता हुआ प्राप्त होता है। यह वक्र यह दर्शाता है कि जैसे-जैसे सार्वजनिक में वृद्धि होती जाती है कुल सामाजिक लाभ बढ़ता जाता है। किन्तु एक बिन्दु के बाद घटने लग जाता है। इसके विपरीत TSS वक्र कर से उत्पन्न कुल सामाजिक त्याग को प्रदर्शित करता है जो यह दर्शाता है कि कर की मात्रा के साथ कुल त्याग बढ़ता जाता है किन्तु एक बिन्दु के बाद कुल त्याग बहुत तीव्र गति से बढ़ने लग जाता है।

यहाँ TSB तथा TSS वक्र का अन्तर शुद्ध सामाजिक लाभ प्राप्त होगा जो यहाँ MN से दर्शाया गया है। अतः सरकार को OQ मात्रा में व्यय लगाना चाहिए ताकि अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके।

नोट



क्या आप जानते हैं? अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धान्त की व्याख्या कुल सामाजिक त्याग तथा कुल सामाजिक लाभ वक्र द्वारा भी की जा सकती है।

### 2.1.2 साधनों का बँटवारा (Distribution of Resources)

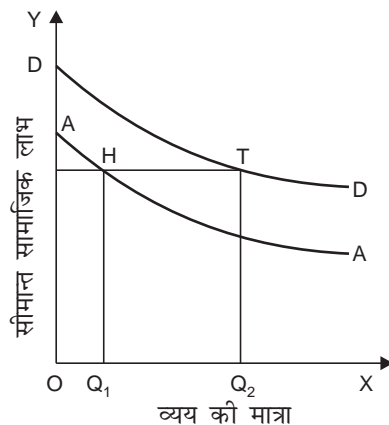
विभिन्न उपयोगों (uses) के बीच साधनों का बँटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि संतुष्टि का सीमांत प्रतिफल (marginal return of satisfaction) सभी उपयोगों में एक समान हो। उदाहरण के लिए, युद्धपोतों तथा निर्धनों की सहायता की मदों के बीच खर्च का बँटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनमें से प्रत्येक पद पर लगाये गये अन्तिम शिलिंग से सन्तुष्टि का समान प्रतिफल प्राप्त हो। यही से सम सीमांत तुष्टिगुण (Equi-marginal utility) या अधिकतम संतुष्टि (maximum satisfaction) का यह सिद्धांत है जो लोक वित्त में लागू किया जाता है। फिर, मान लीजिए कि कृषि पर किये गये खर्च सीमांत तुष्टिगुण प्रतिरक्षा (defence) पर किये गये खर्च के सीमांत तुष्टिगुण से अधिक है तो प्रतिरक्षा पर किये गये खर्च के मुकाबले कृषि पर किये गये खर्च से अधिक संतुष्टि प्राप्त हो रही है। इस स्थिति में, साधनों को प्रतिरक्षा से कृषि की ओर को स्थानान्तरित करना वांछनीय होगा। यह स्थानान्तरण उस समय तक होना चाहिए, जब तक कि दोनों दिशाओं से प्राप्त होने वाला सीमांत तुष्टिगुण बराबर न हो जाये।

### 2.1.3 व्यय करते समय विचारणीय तथ्य

- (1) प्रत्येक व्यय से सीमांत उपयोगिता समान रहनी चाहिए। यदि शिक्षा पर किये गये व्यय से सीमांत उपयोगिता चिकित्सा पर किये गये व्यय से सीमांत उपयोगिता से अधिक है तो शिक्षा पर अधिक व्यय करना होगा। सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन आदि पर व्यय इस प्रकार किया जाये कि सबसे समान सीमांत उपयोगिता प्राप्त हो।
- (2) व्यय ऐसा हो कि उत्पादन बढ़े। सड़कों, रेलों, कुओं, मनोरंजन के साधनों, विद्यालयों तथा चिकित्सालयों आदि पर व्यय उचित है। प्रतिरक्षा पर व्यय अनुत्पादक है, परन्तु आवश्यक है क्योंकि समाज को सुरक्षित रखना है, देश को आन्तरिक तथा बाहरी झगड़ों से बचाना है।

### रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

चित्र-3 में AA वक्र द्वारा कृषि पर किये गये सार्वजनिक व्यय से प्राप्त सीमांत सामाजिक लाभ को दर्शाया गया है। इसके विपरीत DD वक्र सुरक्षा पर किये गये सार्वजनिक व्यय से प्राप्त सीमांत व्यय सामाजिक लाभ बताता है।



चित्र-3

**नोट**

अधिकतम सामाजिक लाभ उस बिन्दु पर प्राप्त होगा जहाँ दोनों मदों से प्राप्त सीमांत सामाजिक लाभ के बराबर हो। चित्र में दोनों से प्राप्त सीमांत सामाजिक लाभ की स्थिति।  $HQ_1 = KQ_2$  होगा। अतः कृषि पर  $OQ_1$  तथा सुरक्षा पर  $OQ_2$  मात्रा में व्यय किया जाये तो दोनों से सीमांत सामाजिक लाभ समान मात्रा में प्राप्त होगा और यही अधिकतम सामाजिक लाभ होगा।

**2.1.4 कर लगाते समय विचारणीय तथ्य**

- (1) कर लगाते समय सरकार को देखना चाहिए कि कर उन व्यक्तियों पर लगे जिनमें कर देने की क्षमता हो। कर का भार विभिन्न व्यक्तियों पर समान पड़े।
- (2) कर लगाने से समाज की उत्पादन शक्ति कम न हो जाये तथा पूँजी के निर्माण में बाधा न पड़े।
- (3) धनी व्यक्ति के पास धन के अधिक होने से धन की सीमांत उपयोगिता घटती जाती है तथा कर देते समय उसे अधिक त्याग नहीं करना पड़ता। अतः धनी व्यक्तियों पर निर्धनों की अपेक्षा अधिक दर से कर लगे जिससे त्याग बराबर हो। उदाहरणार्थ X, Y, Z तीन व्यक्ति हैं, इनकी आर्थिक स्थिति भिन्न है। यदि इन तीन व्यक्तियों से एक समान कर वसूल किया जाता है तो उनका त्याग इस प्रकार होता है जैसा कि आगे सारणी में दिखाया गया है—

रुपयों की इकाइयाँ	X	त्याग Y	Z
1 रुपया कर देने पर	10	15	20
2 रुपये कर देने पर	15	20	25
3 रुपये कर देने पर	20	25	32
4 रुपये कर देने पर	26	32	40

त्याग को समान करने के लिए X से 3 रुपये, Y से 3 रुपये तथा Z से 1 रुपया कर के रूप में वसूल करना चाहिए जो चित्र नं. 4 में स्पष्ट हो जाता है।

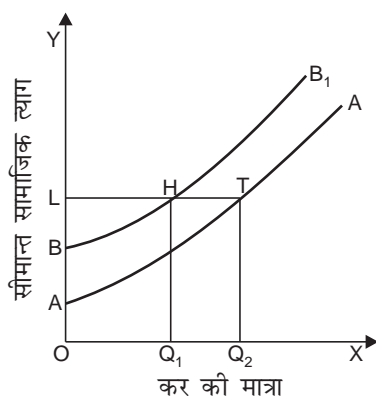
**2.1.5 कराधान के भार का वितरण (Distribution of Burden of Taxation)**

प्रो. पीगू का कहना था कि विभिन्न स्रोतों के बीच कराधान के भार का वितरण न्यूनतम कुल त्याग (least aggregate sacrifice) के सिद्धान्त के अनुसार किया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, कराधान के भार को विभिन्न स्रोतों के बीच इस प्रकार बाँटा जाना चाहिए कि प्रत्येक स्रोत (source) का सीमांत त्याग बराबर हो। प्रो. पीगू के ही शब्दों में, “यदि न्यूनतम कुल त्याग की स्थिति लानी है तो करों को इस प्रकार बाँटा जाना चाहिए कि करों के रूप में अदा किये धन का सीमांत तुष्टिगुण सभी करदाताओं के लिए समान हो।” उदाहरण के लिए, यदि A द्वारा अदा किये गये रुपये की अन्तिम इकाई का तुष्टिगुण या उपयोगिता (utility) B द्वारा अदा किये गये रुपये की अन्तिम इकाई के तुष्टिगुण से कम हो, तो इसमें B पर कर का भार कम किया जाना चाहिए और A के कर-भार में वृद्धि की जानी चाहिए। यह प्रक्रिया उस समय तक जारी रहनी चाहिए तब तक कि A और B दोनों के ही अन्तिम रुपये का सीमांत त्याग बराबर न हो जाए।

**रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण**

चित्र-4 में  $AA_1$  व  $BB_1$  वक्र A तथा B व्यक्तियों द्वारा कर अदा करने से सीमांत सामाजिक त्याग को प्रदर्शित करते हैं। ये वक्र ऊपर की ओर उठते हुए होते हैं जो यह दर्शाते हैं कि जैसे-जैसे कर की मात्रा एकत्रित की जायेगी, सीमांत सामाजिक त्याग की मात्रा बढ़ती जायेगी। कुल त्याग उसी अवस्था में न्यूनतम होगा जहाँ A तथा B का सीमांत सामाजिक त्याग बराबर होगा। इस स्थिति में सरकार A व्यक्ति पर  $OQ_2$  तथा B व्यक्ति पर  $OQ_1$  के बराबर कर लगाये क्योंकि यहाँ A द्वारा किया गया सीमांत सामाजिक त्याग B द्वारा किये गये सीमांत सामाजिक त्याग के बराबर है अर्थात्  $TQ_2 = HQ_1$ ।

नोट



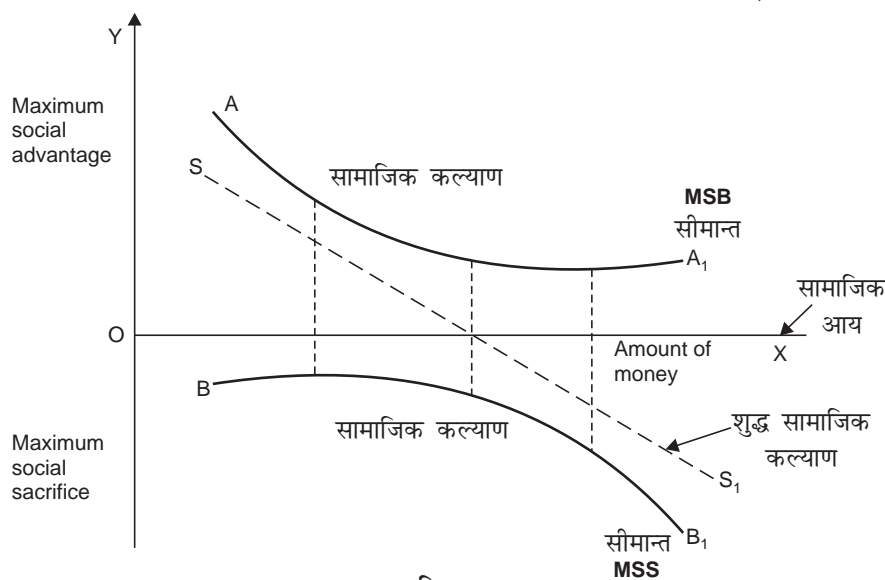
चित्र-4



टास्क कराधान के भार के वितरण को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट करें।

### मसग्रेव का स्पष्टीकरण

प्रो. मसग्रेव ने भी अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धांत को चित्र-5 की सहायता से समझाने का प्रयास किया है।



चित्र-5

चित्र-5 में OX पर सार्वजनिक आय प्रदर्शित की गई है। OX के ऊपर का भाग सामाजिक कल्याण तथा नीचे का हिस्सा सामाजिक त्याग को दिखाता है।  $AA_1$  सीमांत सामाजिक कल्याण तथा  $BB_1$  सीमांत सामाजिक त्याग को प्रदर्शित करता है।  $AA_1$  का नीचे झुकना इस बात को व्यक्त करता है कि व्यय की अतिरिक्त राशियों से प्राप्त होने वाला कल्याण गिर रहा है।  $BB_1$  वक्र से यह स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे कर का भार बढ़ेगा करदाता के त्याग की मात्रा भी बढ़ती जायेगी।  $SS_1$  वक्र शुद्ध सामाजिक कल्याण को दर्शाता है जिसे  $AA_1$  में से  $BB_1$  घटाकर मालूम किया जा सकता है अर्थात् सामाजिक लाभ में से सामाजिक त्याग घटा दिया जाता है। M वह बिन्दु है जहाँ पर वास्तविक सामाजिक कल्याण अधिकतम है और OM धन की वह मात्रा है जो सरकार को समाज से कर के रूप में प्राप्त करनी चाहिए और सार्वजनिक व्यय के रूप में खर्च करनी चाहिए।

## नोट

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. लोक वित्त के सिद्धांत को ..... का सिद्धांत भी कहते हैं।
2. एडम स्मिथ ..... था।
3. जब सरकार धन व्यय करती है तो ..... में कुछ वृद्धि होती है।
4. प्रत्येक व्यय से ..... उपयोगिता समान रहनी चाहिए।
5. व्यय ऐसा हो कि ..... बढ़े।

## 2.2 अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum Social Advantage)

निष्कर्ष के रूप में अब कहा जा सकता है कि ऐसे तीन मूलभूत सिद्धान्त हैं जो कि वित्तीय कार्यवाहियों में सरकार का मार्गदर्शन करते हैं तथा अधिकतम सामाजिक लाभ के आदर्श को प्राप्त करने में सरकार की सहायता करते हैं—

1. **व्यय की सीमा**—सरकारी व्यय उस सीमा तक ही किया जाना चाहिए, जहाँ कि राज्य द्वारा खर्च किये धन की अन्तिम इकाई से जनता को प्राप्त होने वाला लाभ सरकारी आय की उसी इकाई के प्राप्त करने में जनता पर पड़ने वाले त्याग के ठीक बराबर हो।
2. **राज्यों के साधनों का विभाजन**—खर्च की विभिन्न मदों के बीच राज्य के साधनों का बँटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि प्रत्येक साधन से प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि का सीमान्त प्रतिफल एक समान हो।
3. **कर विभाजन**—करों का बँटवारा भी इस प्रकार किया जाना चाहिए कि लोगों द्वारा धन का जो सीमान्त तुष्टिगुण करों के रूप में अदा किया जाये, वह सभी करदाताओं का एक समान हो।

### सामाजिक लाभ की कसौटी (Test of Social Advantage)

प्रो. डाल्टन ने सामाजिक लाभ के परीक्षण की कुछ कसौटियों का भी सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि लोक वित्त की कार्यवाहियों के द्वारा कुछ लक्ष्य प्राप्त किये जाने चाहिए। जिनके द्वारा सम्पूर्ण रूप में, समुदाय के सामाजिक लाभ में वृद्धि हो। उनके द्वारा सुझाई जाँच-कसौटियाँ निम्न प्रकार हैं—

(1) **समाज का संरक्षण (Preservation of Community)**—प्रत्येक सरकार का यह कर्तव्य है कि वह आन्तरिक अशान्ति तथा अव्यवस्था तथा बाह्य आक्रमण से समाज की रक्षा करे। आन्तरिक शान्ति तथा बाह्य सुरक्षा से नागरिकों में आत्मविश्वास पैदा होता है और उनका आर्थिक जीवन उन्नत होता है जिससे सामाजिक लाभ में वृद्धि होती है। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि सेना, पुलिस तथा न्यायालयों आदि की स्थापना की जाए ताकि देश के आन्तरिक व बाह्य शत्रुओं की धमकियों का सफलतापूर्वक मुकाबला किया जा सके। प्रत्येक स्थिति में यह राज्य का परम कर्तव्य है कि वह अपने नागरिकों के आर्थिक तथा अनार्थिक, दोनों ही प्रकार के कल्याण में वृद्धि करे। वह देश तथा विदेश के लिए शान्ति तथा सहअस्तित्व (peace and co-existence) की नीति का अनुसरण करे, अन्यथा सेना, पुलिस, न्यायालयों आदि पर होने वाले अनुत्पादक व्यय में अधिक वृद्धि हो जायेगी, जिसका देश के आर्थिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

(2) **उत्पादन में सुधार (Improvement in Production)**—लोक वित्त की कार्यवाहियों का दूसरा लक्ष्य यह होना चाहिए कि देश में उत्पादन का स्तर ऊँचा उठे ताकि समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो सके। उत्पादन में वृद्धि या सुधार का अर्थ है—“(क) उत्पादन शक्ति में वृद्धि, ताकि प्रति श्रमिक द्वारा कम प्रयत्न करके अधिक उत्पादन किया जा सके, (ख) उत्पादन के संगठन में सुधार, ताकि बेरोजगारी तथा अन्य कारणों से होने वाली आर्थिक साधनों की बरबादी को न्यूनतम किया जा सके, और (ग) उत्पादन की रचना तथा उसके स्वरूप में सुधार, ताकि ऐसी वस्तुओं का उत्पादन हो जिनसे समाज की आवश्यकताएँ सर्वोत्तम रूप में पूरी की जा सकें।” अतः लोक वित्त की कार्यवाहियों (सरकारी व्यय, कराधान तथा सरकारी ऋण आदि) का उद्देश्य यह होना चाहिए कि इन तीनों लक्ष्यों को पूरा किया जाए जिससे कि उत्पादन में और समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो।

## नोट

(3) **वितरण में सुधार (Improvement in Distribution)**—राज्य की नीति का निर्धारण करते समय तीसरी विचारणीय बात यह होनी चाहिए कि यह देखा जाए कि जो उत्पादन किया गया है, समाज के विभिन्न वर्गों के बीच उसका समुचित रूप से वितरण भी हो, अर्थात् उसका वितरण इस प्रकार होना चाहिए कि विभिन्न व्यक्तियों तथा परिवारों की आय में पाई जाने वाली असमानताएँ तथा घट-बढ़ समाप्त हो। आय का वितरण परिवार की आवश्यकताओं के अनुसार तथा साथ ही साथ उनकी कुशलता तथा प्रयत्नों (efforts) के अनुरूप होना चाहिए। अनुपाजित आय (unearned income) के कारण आय में उत्पन्न होने वाली असमानताओं को सहन नहीं किया जाना चाहिए जबकि कुशलता तथा परिश्रम को न्यायोचित सम्मान दिया जाना चाहिए और पुरस्कृत किया जाना चाहिए। डाल्टन के शब्दों में, “वितरण में सुधार का अर्थ है—(क) विभिन्न व्यक्तियों एवं परिवारों की आय में पाई जाने वाली असमानताओं को, जो अधिकांश सभ्य समाजों में पाई जाती है, कम करना, (ख) कुछ व्यक्तियों एवं परिवारों, विशेष रूप से समाज के निर्धन वर्ग के लोगों की आमदनियों में, विभिन्न समयों में होने वाली भारी घट-बढ़ को समाप्त करना।” अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि आर्थिक कल्याण में वृद्धि के लिए आय तथा धन का समुचित रूप से वितरण किया जाए।”

(4) **आर्थिक स्थिरता और पूर्ण रोजगार (Economic Stability and Full Employment)**—आर्थिक अस्थिरता (अर्थात् बार-बार तेजी तथा मन्दी की स्थिति उत्पन्न होना) स्वतंत्र अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण है। इससे अनेक बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं, जैसे कि बेरोजगारी तथा अत्युत्पादन (over production) लोगों के सामाजिक कल्याण में तभी वृद्धि की जा सकती है जबकि देश में व्यावसायिक दशाओं में स्थिरता बनी रहे तथा उसमें आने वाले उतार-चढ़ाव (fluctuations) समाप्त कर दिये जाएँ। अतः राजकोषीय कार्यवाहियों का लक्ष्य यह होना चाहिए कि रोजगार के ऊँचे स्तर पर आर्थिक स्थिरता को बनाए रखा जा सके। राजकोषीय कार्यवाहियों के द्वारा सार्वजनिक निर्माण आदि के कार्यों पर सरकारी खर्च में वृद्धि करके मन्दी (depression) के प्रभावों को कम किया जा सकता है और इस प्रकार रोजगार तथा समर्थ माँग (effective demand) में वृद्धि की जा सकती है। इसी तरह, मुद्रा स्फीति की अवधि में, सरकारी उधार तथा भारी कराधान के द्वारा मूल्य स्तर को नीचे लाने में मदद मिल सकती है।

(5) **भविष्य के लिए व्यवस्था (Provision for Future)**—व्यक्ति साधारणतया भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को ही अधिक महत्त्व देते हैं। परिणामस्वरूप, उनकी वित्तीय गतिविधियाँ उनकी वर्तमान आवश्यकताओं अथवा जीवनकालीन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के प्रयासों से ही प्रेरित रहती हैं। किन्तु राज्य पर दोहरी जिम्मेदारी होती है क्योंकि उसे वर्तमान तथा भावी दोनों पीढ़ियों (generations) के हितों की देखभाल करनी होती है। अतः राज्य के लिए यह उचित ही है कि वह वर्तमान पीढ़ी के छोटे लाभ के मुकाबले भावी पीढ़ी के बड़े लाभों को प्रमुखता दे। डाल्टन के शब्दों में, “राज्य भविष्य का भी उसी प्रकार संरक्षक है जिस प्रकार वर्तमान का। व्यक्ति तो मर जाता है किन्तु वह समाज, व्यक्ति जिसका अंग है, जीवित रहता है। अतः राज्य को वर्तमान के छोटे सामाजिक लाभ के मुकाबले भविष्य के बड़े सामाजिक लाभ को ही प्रमुखता देनी चाहिए।”



**नोट्स** मुद्रा स्फीति की अवधि में सरकारी उधार तथा कराधान के द्वारा मूल्य स्तर को नीचे लाने में मदद मिल सकती है।

### सीमाएँ (Limitations)

अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त लोक वित्त का एक मूलभूत सिद्धान्त है और इसे राज्य की वित्तीय क्रियाओं का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त माना जाता है। परन्तु इसके बावजूद, जब इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप से लागू किया जाता है तो कई कठिनाइयाँ सामने आती हैं। उनमें निम्न मुख्य हैं—

(i) **तुष्टिहीनता तथा तुष्टि के बीच असन्तुलन (Disadjustment between disutility and utility)**— राज्य के लिए यह बड़ा कठिन होगा कि वह कर लगाने से उत्पन्न होने वाली तुष्टिहीनता या अनुपयोगिता (disutility) तथा सरकारी व्यय से लोगों को मिलने वाले तुष्टिगुण या उपयोगिता (utility) के बीच सन्तुलन स्थापित कर सके।

**नोट**

यहाँ तक कि व्यक्ति तक को भी अपने व्यावहारिक जीवन में ऐसा करने में तथा उस बिन्दु तक पहुँचने में प्रायः कठिनाई होती है जहाँ कि उसके त्याग की तुष्टिहीनता उसकी आय के तुष्टिगुण के बराबर हो और राज्य के लिए तो ऐसा करने में और भी कठिनाई होती है, क्योंकि सरकार का कर लगाने तथा खर्च करने का कार्य किसी एक व्यक्ति द्वारा सम्पन्न नहीं किया जाता, बल्कि विभिन्न विभागों में तथा विभिन्न स्थानों पर लाखों सरकारी कर्मचारियों द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

(ii) **भविष्य का अनुमान** (Future expectation)–राज्य भविष्य के बारे में अनुमान लगा सकता है और देख सकता है कि भविष्य में क्या-क्या घटनाएँ घटित हो सकती हैं, परन्तु इन अनुमानों एवं परिकल्पनाओं के आधार पर यह मान लेना बड़ा कठिन है कि सरकार द्वारा किया गया खर्च वर्तमान में जो तुष्टिहीनता उत्पन्न कर रहा है, भविष्य में उसके मुकाबले अधिक तुष्टिगुण प्रदान करेगा। अतः कराधान की सीमान्त तुष्टिहीनता को सरकारी खर्च के सीमान्त तुष्टिगुण से सन्तुलित कर सकना राज्य के लिए यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। शुद्ध सामाजिक लाभ को अधिकतम करने में राज्य की सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि अपनी वित्तीय क्रियाओं के इन परिणामों का सही-सही अनुमान लगाने की उसमें कितनी योग्यता है और ऐसा करने की योग्यता अभी आ सकती है जबकि इस कार्य को करने वाले अधिकारी तथा कर्मचारी बड़े संवेदनशील (sensitive) तथा बुद्धिमान हों। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकारी प्रशासन की रचना प्रत्येक स्तर पर ऐसे योजना-निर्माताओं, विशेषज्ञों तथा उच्च योग्यता वाले अधिकारियों को मिलाकर की जानी चाहिए जो कि एक निश्चित समय में खर्च किये गये सरकारी धन से अधिकतम लाभ प्राप्त करने में समर्थ हो सकें।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**बहुविकल्पीय प्रश्न** (Multiple Choice Questions) :

6. ऐसे कितने मूलभूत सिद्धांत हैं जो कि वित्तीय कार्यवाहियों में सरकार का मार्गदर्शन करते हैं?
 

(अ) तीन	(ब) चार
(स) पाँच	(द) छः।
7. आर्थिक अस्थिरता किस अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण है?
 

(अ) परतंत्र	(ब) स्वतंत्र
(स) परतंत्र और स्वतंत्र	(द) इनमें से कोई नहीं।
8. उत्पादन में वृद्धि का अर्थ है—
 

(अ) उत्पादन शक्ति में हास	(ब) उत्पादन शक्ति का समान होना
(स) उत्पादन शक्ति में वृद्धि	(द) इनमें से कोई नहीं।

**2.3 सारांश (Summary)**

- “लोक वित्त का सिद्धान्त” नामक वाक्यांश से आशय उस मूलभूत नियम (fundamental rule) से है, जिसके द्वारा राज्य की वित्तीय नीति का निर्धारण किया जाना चाहिए।
- एडम स्मिथ जैसे प्राचीन अर्थशास्त्रियों का मत था कि राज्य की क्रियाएँ तथा कराधान की मात्रा कम से कम होनी चाहिए।
- वित्त की सब योजनाओं में सर्वोत्तम योजना है कम व्यय करना और सभी करों में सर्वोत्तम कर वह है जिसकी धनराशि सबसे कम हो।
- अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त के अनुसार, राज्य की अपनी आय की प्राप्ति और धन का व्यय इस प्रकार करना चाहिए ताकि जनता के कल्याण में अधिकतम वृद्धि हो सके।

## नोट

- सरकारी व्यय प्रत्येक दिशा में ठीक उस सीमा तक किये जाने चाहिए कि जिससे किसी भी क्षेत्र में इस व्यय की थोड़ी-सी और वृद्धि से समाज को प्राप्त होने वाले लाभ में, और इसके विपरीत कराधान अथवा अन्य सरकारी आय के अन्य किसी साधन में की जाने वाली थोड़ी-सी भी वृद्धि से होने वाली हानि में, समान सन्तुलन स्थापित किया जा सके। यह नियम सरकारी व्यय तथा सरकारी आय दोनों की ही एक आदर्श सीमा प्रस्तुत करता है।
- विभिन्न उपयोगों (uses) के बीच साधनों का बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि संतुष्टि का सीमांत प्रतिफल (marginal return of satisfaction) सभी उपयोगों में एक समान हो।
- यदि न्यूनतम कुल त्याग की स्थिति लानी है तो करों को इस प्रकार बाँटा जाना चाहिए कि करों के रूप में अदा किये धन का सीमांत तुष्टिगुण सभी करदाताओं के लिए समान हो।
- वितरण में सुधार का अर्थ है—(क) विभिन्न व्यक्तियों एवं परिवारों की आय में पाई जाने वाली असमानताओं को, जो अधिकांश सभ्य समाजों में पाई जाती है, कम करना, (ख) कुछ व्यक्तियों एवं परिवारों, विशेष रूप से समाज के निर्धन वर्ग के लोगों की आमदनियों में, विभिन्न समयों में होने वाली भारी घट-बढ़ को समाप्त करना।

## 2.4 शब्दकोश (Keywords)

- राजस्व (Revenue)—राज्य की आय।
- प्रतिरक्षा (Defence)—हिफ़ाजत।

## 2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त की व्याख्या करें।
2. साधनों का बँटवारा किस प्रकार किया जाता है?
3. कर लगाते समय किन-किन तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए?
4. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें—  
(a) व्यय की सीमा (b) कर विभाजन।

## उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |                       |                 |             |           |
|-----------------------|-----------------|-------------|-----------|
| 1. अधिकतम सामाजिक लाभ | 2. अर्थशास्त्री | 3. उपयोगिता | 4. सीमांत |
| 5. उत्पादन            | 6. (अ)          | 7. (ब)      | 8. (स)।   |

## 2.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त—न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक वित्त—एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
3. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस—सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।



नोट

## इकाई-3: सार्वजनिक वित्त ( व्यय ) के आर्थिक गतिविधियों से संबंधित मुद्दे

### [Issues Related to Economic Activities of Public Finance (Exp.)]

#### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 3.1 सार्वजनिक व्यय के आर्थिक प्रभाव (Economic Effects of Public Expenditure)
- 3.2 सारांश (Summary)
- 3.3 शब्दकोश (Keywords)
- 3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 3.5 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- सार्वजनिक व्यय के आर्थिक प्रभाव को जानने में।
- सार्वजनिक व्यय का उत्पादन पर प्रभाव समझने में।
- सार्वजनिक व्यय का वितरण पर प्रभाव को जानने में।

#### प्रस्तावना (Introduction)

जनता की कार्य-क्षमता तब बढ़ती है, जबकि उसे कार्य करने की आवश्यक सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। सार्वजनिक व्यय द्वारा आर्थिक साधनों का विशेष नियोजनों में स्थानांतरण कई बार उत्पत्ति को बढ़ा देता है। जिस प्रकार कर नीति की सहायता से सरकार धन की असमानता को ख़ाई को कम कर सकती है, उसी प्रकार सार्वजनिक व्यय की सहायता से भी असमानता को कम किया जा सकता है।

#### 3.1 सार्वजनिक व्यय के आर्थिक प्रभाव (Economic Effects of Public Expenditure)

प्रत्येक आधुनिक राष्ट्र में सार्वजनिक व्यय का परिणाम दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अतः इस प्रकार के व्यय के आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण बहुत महत्वपूर्ण है। डाल्टन का अनुसरण करते हुये हम इन प्रभावों को मोटे रूप से तीन भागों में बाँट लेते हैं—(i) उत्पादन पर प्रभाव, (ii) वितरण पर प्रभाव और (iii) अन्य प्रभाव।

### 3.1.1 सार्वजनिक व्यय का उत्पादन पर प्रभाव

नोट

#### (Effect of Public Expenditure on Production)

कुछ लोगों का मत है कि सार्वजनिक व्यय पूर्णतया अनुत्पादक होते हैं और वह देश की उत्पत्ति को तनिक भी नहीं बढ़ा सकते। परन्तु यह मत ठीक नहीं है। ऐसा कहने वाले लोग यह भूल जाते हैं कि बहुत-सा सार्वजनिक व्यय तो केवल लोगों में आपस में धन का **हस्तान्तरण** (Transference) मात्र ही है—जैसे कि सार्वजनिक ऋण पर सरकार का ब्याज देना या बूढ़े लोगों को पेन्शन देना। यहाँ सरकार केवल एक श्रेणी के लोगों से लिया हुआ धन दूसरी श्रेणी के लोगों को दे देती है दूसरे, शिक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर सार्वजनिक व्यय प्रत्यक्ष रूप से लोगों की कार्य-क्षमता को बढ़ाता है। इसी प्रकार रेलों, सड़कों, नहरों आदि के बनाने पर किया गया सार्वजनिक व्यय भी देश की उत्पादन शक्ति बढ़ाता है। कृषि-भूमि के सुधार तथा जंगलों के विकास में किया गया व्यय प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक है। परन्तु कुछ सार्वजनिक व्यय ऐसे भी हैं जो प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में सहायता नहीं देते, जैसे कि युद्ध पर किया गया व्यय। अधिकांश लोगों के अनुसार, यह व्यय निश्चित रूप से अनुत्पादक है क्योंकि इस प्रकार का व्यय देश के नवयुवकों तथा देश की बहुत-सी आवश्यक सामग्री, जैसे—लोहा, कोयला, तेल आदि को उत्पादन के क्षेत्र से हटाकर युद्ध के क्षेत्र में लगा देता है, जहाँ वे नष्ट हो जाते हैं। ऊपरी रूप से यह बात सत्य प्रतीत होती है, परन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि युद्ध पर किया गया व्यय बाहरी आक्रमण से रक्षा कर देश को होने वाली आर्थिक हानि तथा दासता से बचाता है और इस प्रकार उत्पादन कार्य में परोक्ष रूप से सहायक होता है।



नोट्स

यह अवश्य मानना पड़ेगा कि आजकल सेनाओं पर बहुत अधिक व्यय किया जाता है और इसमें कमी की बहुत अधिक आवश्यकता तथा गुंजाइश है।

सार्वजनिक व्यय के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव निम्नलिखित हैं—

(1) **जनता की कार्य-क्षमता व बचत करने की शक्ति में वृद्धि**—जनता की कार्य-क्षमता तब ही बढ़ती है, जबकि उसे कार्य करने की आवश्यक सुविधायें प्रदान की जायें। सरकार का शिक्षा पर व्यय, चिकित्सा पर व्यय, यातायात पर किया गया व्यय आदि ऐसे व्यय हैं, जिनसे लोगों को अपने कार्य में काफी सहायता मिलती है। अतः वे सभी व्यय लोगों की कार्य-क्षमता बढ़ाते हैं, कार्य-क्षमता बढ़ने से उनमें उत्पादन शक्ति बढ़ती है और जब आय अधिक होगी तो बचत की शक्ति अपने आप बढ़ जायेगी। संक्षेप में, इस प्रकार समझा जा सकता है कि बचाने की शक्ति बढ़ाने के लिए आर्थिक आय की आवश्यकता है और अधिक आय तभी हो सकती है जबकि कार्य-क्षमता में वृद्धि हो और कार्य-क्षमता का बढ़ना, शिक्षा प्रसार व अन्य बहुत-सी बातों पर निर्भर है। इन सभी पर सरकार द्वारा व्यय किया जाता है, इसलिए सार्वजनिक व्यय जनता की कार्य-क्षमता व बचत करने की शक्ति में वृद्धि करता है।

(2) **जनता की कार्य करने तथा बचत करने की इच्छा में वृद्धि**—सार्वजनिक व्यय दो प्रकार का होता है—एक तो वर्तमान सम्बन्धी और दूसरा भविष्य सम्बन्धी। वर्तमान व्यय से तो व्यक्तियों के कार्य करने और बचाने की इच्छा में वृद्धि होती है। सार्वजनिक व्यय से अधिकतर व्यक्तियों को अपना जीवन स्तर ऊँचा करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। यह सम्भव है कि कुछ व्यक्तियों में बुरी आदत उत्पन्न हो जायें, जिनको न देने के लिए सरकार को वस्तुओं और सेवाओं के रूप में सहायता देनी चाहिए। व्यक्तियों में सदैव प्रगति करते रहने की इच्छा रहती है, वे अपनी इच्छा को सार्वजनिक व्यय द्वारा कार्य रूप दे सकते हैं। अतः सार्वजनिक व्यय से व्यक्तियों में अपना उत्पादन करने की इच्छा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार यदि सरकार भविष्य में आर्थिक लाभ देने का वायदा कर ले तो सम्भव है कि व्यक्तियों में कार्य करने की रुचि कम हो जाये, परन्तु यदि यह व्यय कुछ शर्तों के अधीन किया जाता है तो इससे व्यक्तियों के कार्य करने और बचाने की रुचि में वृद्धि होती है। जैसे—बीमारी तथा बेकारी लाभ, जिससे राज्य अपना अंशदान (Contribution) उसी समय देता है, जबकि लाभ प्राप्त करने वाला अपना अंशदान देने को तैयार हो जाता है। यदि सरकार काम की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ लाभ की दर में वृद्धि कर दे तो भी कार्य करने की इच्छा में वृद्धि होगी।

## नोट

(3) देश के उत्पादन साधनों को प्रोत्साहन—सार्वजनिक व्यय द्वारा आर्थिक साधनों का विशेष नियोजनों (Employments) में स्थानान्तरण कई बार उत्पत्ति को बढ़ा देता है। इस प्रकार का स्थानान्तरण सरकार विशेष उद्योगों में निजी साहसियों को आर्थिक सहायता तथा अनुदान देकर या स्वयं उन उद्योगों को घाटे में चला कर भी कर सकती है। इस प्रकार का स्थानान्तरण आवश्यक है, परन्तु अवनुत तथा उपेक्षित उद्योगों को उत्पन्न करेगा अथवा वर्तमान की अपेक्षा भविष्य के लिये व्यवस्था कर उत्पादन की भावी शक्ति को बढ़ायेगा। दूसरी प्रकार का स्थानान्तरण अर्थात् भविष्य के लिए आर्थिक व्यवस्था उत्पादन शक्ति को बढ़ाने के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है और इसी दृष्टिकोण से भौतिक पूँजी के साथ-साथ मानवीय पूँजी की भी बराबर वृद्धि करना बड़ा महत्वपूर्ण है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा, चिकित्सा, आवश्यक भोजन पदार्थों के मूल्यों में कमी करने के लिए आर्थिक सहायता, रेलों, सड़कों, नहरों व सिंचाई के अन्य साधनों, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान, सामाजिक बीमा आदि पर किया गया सार्वजनिक व्यय बहुत लाभदायक होता है। इसके अतिरिक्त सरकार सार्वजनिक ऋण को कम करने के लिये ऋण परिशोध कोष को चलाकर बचत को बढ़ा सकती है और यह बचत उत्पादन को बढ़ायेगी।



क्या आप जानते हैं सरकार आर्थिक सहायता देकर पिछड़े हुए क्षेत्रों में नये उद्योगों को चला कर वहाँ के अचल और बेकार पड़े हुए साधनों को काम में लगा कर कुल उत्पत्ति को बढ़ा सकती है।

(4) योजनाओं द्वारा आर्थिक विकास—यदि सरकार उद्योगों की उन्नति के लिए नई-नई योजनायें बनाती है, तो ये व्यय भी उत्पादक व्यय माने जाते हैं, क्योंकि इनसे उत्पादन में वृद्धि होकर देश के आर्थिक विकास में वृद्धि होती है।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. प्रत्येक आधुनिक राष्ट्र में ..... व्यय का परिणाम दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।
2. जनता की ..... तब ही बढ़ती है, जबकि उसे कार्य करने की आवश्यक सुविधाएँ प्रदान की जाएँ।
3. सरकार निर्धन वर्ग की आय में ..... रूप से भी वृद्धि कर सकती है।
4. ऋणों तथा सामाजिक व्ययों के द्वारा भी ..... निर्धन वर्ग की सहायता करती है।
5. सरकारी विभागों में काम करने वाले कर्मचारियों के ..... को स्थायी बनाकर रोजगार के उतार-चढ़ाव को रोका जा सकता है।

### 3.1.2 सार्वजनिक व्यय का वितरण पर प्रभाव

#### (Effect of Public Expenditure on Distribution)

जिस प्रकार कर नीति की सहायता से सरकार धन की असमानता को ख़ाई को कम कर सकती है, उसी प्रकार सार्वजनिक व्यय की सहायता से असमानता को भी कम किया जा सकता है। अगर सरकार अधिकतम सामाजिक लाभ सिद्धांत के अनुसार व्यय करे तो समाज की आर्थिक असमानता बड़ी जल्दी दूर की जा सकती है। यह असमानता निम्न प्रकार से दूर की जा सकती है—

(1) निर्धन वर्गों के लिये अधिक व्यय करना—सरकार ने धनी वर्ग से करों द्वारा जो धन प्राप्त किया है, उसे निर्धन वर्ग के हितों पर व्यय करे तभी देश की आर्थिक असमानता कम होगी तथा देश का अधिकतम हित हो सकेगा। अगर सरकार धन की असमानता को कम करना चाहती है तो उसे चाहिये कि सार्वजनिक व्यय शिक्षा, चिकित्सा, स्वच्छता, बगीचों तथा जल आदि के प्रबन्ध पर व्यय करे। इससे निर्धन वर्ग की कार्य-क्षमता बढ़ेगी, उनकी आय में वृद्धि होगी तथा उनका रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठेगा। इन सुविधाओं से अधिकतर लाभ निर्धन वर्ग को होगा जिससे वे इन पर व्यय होने वाले धन को बचाकर अन्य वस्तुओं को खरीद कर उपभोग कर सकते हैं। इससे निर्धन

## नोट

व्यक्ति भी अधिक से अधिक वस्तुओं का उपभोग करके अपने रहन-सहन का स्तर ऊँचा कर लेते हैं। दूसरी ओर, धनी वर्ग को इन सुविधाओं को प्राप्त करने के लिये धन व्यय करना पड़ता है तथा इससे अन्य वस्तुओं के उपभोग के लिये कम धन बच पाता है। इस प्रकार इन दोनों के रहन-सहन के स्तर के बीच असमानता धीरे-धीरे कम हो जाती है।

(2) **निर्धन वर्ग की आय में प्रत्यक्ष रूप से वृद्धि करना**—सरकार निर्धन वर्ग की आय में प्रत्यक्ष रूप से भी वृद्धि कर सकती है। यह वृद्धि उसे बेकारी के समय सहायता देकर तथा वृद्धावस्था के समय सहायता देकर की जा सकती है, इससे निर्धन वर्ग की क्रय-शक्ति बढ़ जाती है और वह अपनी उपभोग की मात्रा को बढ़ा सकता है।

(3) **ऋण तथा सामाजिक व्ययों द्वारा सहायता**—ऋणों तथा सामाजिक व्ययों के द्वारा भी सरकार निर्धन वर्ग की सहायता करती है जिससे इनका रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो सकता है और निर्धन और धनी के बीच की असमानता कम हो सकती है। इस प्रकार के ऋणों या सामाजिक व्ययों का उद्देश्य समाज में आर्थिक समानता लाना है।

(4) **प्रगतिशील अनुदानों द्वारा सहायता**—सरकार निर्धनों को अनुदान प्रदान करके भी समाज में आर्थिक समानता लाने का प्रयत्न करती है। यह अनुदान भी करों की ही भाँति प्रगतिशील, आनुपातिक तथा प्रतिगामी होते हैं। जैसे-जैसे किसी निर्धन की आय कम होती चली जाती है, वैसे-वैसे उसे दी जाने वाली अनुदान की मात्रा भी अगर क्रमशः बढ़ती चली जाती है तो यह प्रगतिशील अनुदान कहलाता है। दूसरी ओर अगर आय के घटने पर क्रमशः अनुदान की मात्रा भी घटती चली जाये तो इसे प्रतिगामी अनुदान कहते हैं और जब अनुदान आय के एक निश्चित प्रतिशत दर के अनुसार दिये जायें तो इसे आनुपातिक अनुदान कहते हैं। प्रगतिशील अनुदान ही समाज में आर्थिक असमानता को कम कर सकता है। इसलिये सरकार को प्रगतिशील अनुदान ही देना चाहिये।

**पीगू के अनुसार**—“कोई भी कार्य जिसके द्वारा निर्धन व्यक्तियों की वास्तविक आय में वृद्धि हो, बशर्ते इसके द्वारा किसी भी तरह राष्ट्रीय आकार में कमी न आने पाये, सामान्य रूप से आर्थिक कल्याण में वृद्धि करना है।”



**टास्क** निर्धन वर्ग की आय में प्रत्यक्ष रूप से वृद्धि करके आर्थिक असमानताओं को दूर किया जा सकता है—कैसे?

### 3.1.3 सार्वजनिक व्यय के अन्य प्रभाव

#### (Other Effects of Public Expenditure)

सार्वजनिक व्यय की सहायता से सरकार श्रम की माँग को स्थायी रखकर बेकारी की समस्या को सुलझा सकती है। बेकारी की समस्या को सुलझाने के लिये सार्वजनिक व्यय से निम्नलिखित सहायता ली जा सकती है—

(1) **सरकार अपना व्यय नये व्यवसायों को चलाने में कर सकती है**, जिससे अनेक लोगों को काम करने के लिये मिल सकता है। इस नीति से रोजगार (Employment) में वृद्धि के कारण बेरोजगारी की समस्या हल हो जायेगी। आजकल भारतवर्ष में इसी प्रकार की नीति को अपनाया जा रहा है। भारत की सार्वजनिक आय (Public Revenue) का अधिकांश भाग पंचवर्षीय योजना पर व्यय किया जा रहा है। इससे लाखों बेकार श्रमिकों को रोजगार मिल चुका है।

(2) **सरकारी विभागों (Government Departments) में काम करने वाले कर्मचारियों के रोजगार को स्थायी बनाकर रोजगार के उतार-चढ़ाव को रोका जा सकता है।**

(3) **प्राचीन सरकारी व्यवसायों की प्रवृत्ति को व्यक्तिगत व्यवसायों की प्रवृत्ति के समान बनाने में व्यय होने से भी बेकारी कम हो जायेगी।** अक्सर जब व्यक्तिगत व्यवसायों में उतार-चढ़ाव होता है तो उससे अनेक श्रमिक बेकार हो जाते हैं, लेकिन सरकारी व्यवसायों की प्रवृत्ति व्यक्तिगत व्यवसायों की प्रवृत्ति के समान हो जाने से उनको सरकारी व्यवसायों में काम मिल जाता है।

**नोट**

(4) व्यापार तथा उद्योगों में मन्दी आने पर बेरोजगारी का भय बना रहता है। अगर ऐसी दशा में सरकार अपना व्यय पूँजीपतियों की सहायता करने या नये उद्योगों को चलाने में करती है, तो इसी नीति से बेकारी का भय दूर हो जायेगा।

**निष्कर्ष**—सार्वजनिक व्यय पर ही वास्तव में देश का उत्पादन, वितरण व श्रम समस्या निर्भर है। सार्वजनिक व्यय जितना ही इन्हें सुचारु रूप से चलाने का प्रयत्न करेगा, उतना ही देश की आर्थिक दशा को लाभ होगा।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

6. अगर सरकार अधिकतम सामाजिक सिद्धांत के अनुसार व्यय करे तो समाज की आर्थिक असमानता बड़ी जल्दी दूर की जा सकती है।
7. सरकार ने धनी वर्ग से करों द्वारा जो धन प्राप्त किया है, उसे धनी वर्ग के हितों पर व्यय करे।
8. सरकार निर्धन वर्ग की आय में प्रत्यक्ष रूप से भी वृद्धि कर सकती है।
9. सरकार निर्धनों को अनुदान प्रदान करके भी समाज में आर्थिक असमानता लाने का प्रयत्न करती है।
10. सार्वजनिक व्यय की सहायता से सरकार श्रम की माँग को स्थायी रखकर बेकारी की समस्या को सुलझा सकती है।

**3.2 सारांश (Summary)**

- प्रत्येक आधुनिक राष्ट्र में सार्वजनिक व्यय का परिणाम दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अतः इस प्रकार के व्यय के आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण बहुत महत्वपूर्ण है।
- कुछ लोगों का मत है कि सार्वजनिक व्यय पूर्णतया अनुत्पादक होते हैं और वह देश की उत्पत्ति को तनिक भी नहीं बढ़ा सकते। परन्तु यह मत ठीक नहीं है।
- जनता की कार्य-क्षमता तब ही बढ़ती है, जबकि उसे कार्य करने की आवश्यक सुविधायें प्रदान की जायें। सरकार का शिक्षा पर व्यय, चिकित्सा पर व्यय, यातायात पर किया गया व्यय आदि ऐसे व्यय हैं, जिनसे लोगों को अपने कार्य में काफी सहायता मिलती है।
- सार्वजनिक व्यय दो प्रकार का होता है—एक तो वर्तमान सम्बन्धी और दूसरा भविष्य सम्बन्धी। वर्तमान व्यय से तो व्यक्तियों के कार्य करने और बचाने की इच्छा में वृद्धि होती है।
- जिस प्रकार कर नीति की सहायता से सरकार धन की असमानता की खाई को कम कर सकती है, उसी प्रकार सार्वजनिक व्यय की सहायता से असमानता को भी कम किया जा सकता है।
- सरकार निर्धन वर्ग की आय में प्रत्यक्ष रूप से भी वृद्धि कर सकती है। यह वृद्धि उसे बेकारी के समय सहायता देकर तथा वृद्धावस्था के समय सहायता देकर की जा सकती है, इससे निर्धन वर्ग की क्रय-शक्ति बढ़ जाती है और वह अपनी उपभोग की मात्रा को बढ़ा सकता है।
- सरकारी विभागों (Government Departments) में काम करने वाले कर्मचारियों के रोजगार को स्थायी बनाकर रोजगार के उतार-चढ़ाव को रोका जा सकता है।
- प्राचीन सरकारी व्यवसायों की प्रवृत्ति को व्यक्तिगत व्यवसायों की प्रवृत्ति के समान बनाने में व्यय होने से भी बेकारी कम हो जायेगी।

### 3.3 शब्दकोश (Keywords)

नोट

- हस्तांतरण (Transference)–एक के हाथ से दूसरे के हाथ में आना।
- अंशदान (Contribution)–थोड़ा योगदान।

### 3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सार्वजनिक व्यय का उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. सार्वजनिक व्यय का वितरण पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है?
3. सार्वजनिक व्यय के अन्य प्रभावों का वर्णन करें।

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |              |                |              |          |
|--------------|----------------|--------------|----------|
| 1. सार्वजनिक | 2. कार्यक्षमता | 3. प्रत्यक्ष | 4. सरकार |
| 5. रोजगार    | 6. सत्य        | 7. असत्य     | 8. सत्य  |
| 9. असत्य     | 10. सत्य।      |              |          |

### 3.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक-वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।

नोट

## इकाई-4: सार्वजनिक वित्त के साधन : बजट का अर्थ एवं भूमिका (Instrument of Public Finance : Concepts and Role of Budget)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 4.1 बजट का अर्थ (Meaning of Budget)
- 4.2 बजट से संबंधित कुछ अन्य बातें (Some Concepts Associated with Budgets)
- 4.3 भारत में बजट संबंधी कुछ तथ्य (Some Facts Concerning Public Budgets in India)
- 4.4 सारांश (Summary)
- 4.5 शब्दकोश (Keywords)
- 4.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 4.7 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- बजट के अर्थ को समझने हेतु।
- बजट से संबंधित महत्वपूर्ण बातें जानने में।
- भारत में बजट से संबंधित कुछ तथ्यों की जानकारी हेतु।

### प्रस्तावना (Introduction)

सार्वजनिक बजट का प्रथम आयाम सरकार द्वारा वित्तीय साधन जुटाने तथा उन्हें व्यय करने का है। यहाँ तक कि किसी बजट का अर्थ भी इसी आयाम तक सीमित माना जाता था।

अधिकतर देशों में यह प्रथा है कि सार्वजनिक बजट एक वर्ष के लिए हो। विभिन्न देशों में 'राजकोषीय वर्ष' का प्रारंभ तथा समापन विभिन्न तिथियों के साथ देखने को मिलते हैं। कई लोगों के मतानुसार बजट की कालावधि कम से कम दो वर्ष होनी चाहिए। उनके तर्कानुसार वर्ष का एक बड़ा भाग बजट को पारित करने तथा अगला बजट तैयार करने में ही लग जाता है।

## नोट

बजट संबंधी अर्थपूर्ण जानकारी के लिए यह जानना जरूरी है कि सरकार की प्राप्तियों तथा व्यय के लिए हमारे अपने देश के संविधान में क्या प्रावधान है तथा क्या प्रथाएँ हैं। भारत सरकार को मिलने वाली वे सब प्राप्तियाँ जो इसके अपने स्वामित्व में आती हैं, उन खातों में रखी जाती हैं जिन्हें सामूहिक तौर पर भारत की 'समेकित निधि' कहा जाता है।

#### 4.1 बजट का अर्थ (Meaning of Budget)

एक आधुनिक सरकार का बजट एक विस्तृत प्रलेख होता है। इसमें, प्रस्तावित संशोधनों सहित, सरकार की समस्त वित्तीय प्राप्तियों और व्यय का मदवार विवरण रहता है; उन वित्तीय प्रवाहों के अनुमान रहते हैं; तथा उनसे संबद्ध सरकार की नीतियों और गतिविधियों का उल्लेख रहता है।

अतः सार्वजनिक बजट का समुचित अर्थ जानने के लिए इसके मुख्य आयामों का ब्योरा आवश्यक है, जो इस प्रकार है—

1. सार्वजनिक बजट का प्रथम मुख्य आयाम सरकार द्वारा वित्तीय साधन जुटाने तथा उन्हें व्यय करने का है। यहाँ तक कि किसी समय बजट का अर्थ भी इसी आयाम तक सीमित माना जाता था।

हर सरकार के समक्ष कुछ लक्ष्य होते हैं जिनकी प्राप्ति के लिए वह नीतियों और गतिविधियों का चुनाव करती है। साधनों को जुटाने तथा उन्हें व्यय करने के कार्य भी इन्हीं गतिविधियों से जुड़े रहते हैं। अतः सार्वजनिक बजट का एक अर्थ यह लिया जा सकता है कि यह सरकार द्वारा वित्तीय साधन जुटाने तथा उन्हें व्यय करने का एक विस्तृत ब्योरा है। इसमें एक कालावधि (अधिकतर एक वर्ष) के लिए अनुमानित प्राप्तियाँ तथा प्रस्तावित खर्चे उपयुक्त मदों तथा मद-वर्गों में दर्शाये जाते हैं। एक विचाराधीन वर्ष का बजट उस वर्ष के शुरू होने से पर्याप्त समय पूर्व ही संसद अथवा अन्य संबद्ध विधायक प्राधिकरण को प्रस्तुत कर दिया जाता है तथा इस प्रकार सरकार बजट के माध्यम से प्राप्तियों तथा व्यय ही हर मद के बारे में अपना प्रस्तावित निर्णय दर्शाती है।

2. एक आधुनिक सरकार से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह अपनी प्राप्तियों तथा व्यय मदों के बारे में अव्यवस्थित ढंग से निर्णय ले। सरकार के पास आने वाले साधन बुनियादी तौर पर समाज की धरोहर होते हैं और इसका यह नैतिक कर्तव्य बनता है कि इन साधनों का किसी प्रकार से अपव्यय न होने दे। इसके अतिरिक्त बजट की सभी मदों का परस्पर गहरा संबंध होने के कारण उनका रूप-आकार सरकार को लक्ष्य-प्राप्ति की संरचना के अनुरूप ही होना चाहिए। इस कारण बजट का ब्योरा केवल विचाराधीन वर्ष (अथवा कालावधि) की अनुमानित प्राप्तियों तथा प्रस्तावित व्यय तक ही सीमित नहीं रखा जाता, प्रत्युत इसमें सामान्यतः आँकड़ों के मद-वार (तथा अन्य प्रकारों से भी वर्गीकृत) प्राप्तियों और अदायगियों के चार सैट तथा उनसे संबंधित आवश्यक विवेचन भी रखे जाते हैं, जो इस प्रकार हैं—

- (i) बीते वर्ष के यथासंभव वास्तविक आँकड़े (Actuals of previous year);
- (ii) चालू वर्ष के लिए पारित किए गए आँकड़े, अर्थात् 'बजट अनुमान' (Budget Estimates of outgoing year);
- (iii) चालू वर्ष के संभावित वास्तविक अर्थात् 'संशोधित अनुमान (Revised Estimates of outgoing year); तथा
- (iv) आने वाले वर्ष (विचाराधीन बजटीय कालावधि) के प्रस्तावित अर्थात् 'बजट अनुमान' (Budget Estimates of incoming year)।



नोट्स

इस भाग में मद-वार प्रस्तावित व्यय राशियों के अतिरिक्त प्राप्तियों के दो सैट होते हैं। एक सैट में वे राशियाँ दर्शायी जाती हैं जो वर्तमान कर ढाँचे को यथास्थित रखते हुए अनुमानित की जाती है तथा दूसरे सैट में बजट में प्रस्तावित कर-ढाँचे तथा अन्य वित्तीय स्रोतों एवं नीति आदि में प्रस्तावित संशोधन के उपरांत अपेक्षित अनुमान दर्शाए जाते हैं।



## नोट

3. इस प्रकार बजट सरकार द्वारा देश, समाज तथा अर्थव्यवस्था के समक्ष समस्याओं, तथ्यों, लक्ष्यों तथा उनकी प्राप्ति की संभावनाओं के मूल्यांकन को प्रतिबिम्बित करता है।
4. अधिकतर स्थितियों में यह देखने को मिलता है कि चालू वर्ष के 'बजट अनुमानों' (B.E.) तथा 'संशोधित अनुमानों' (R.E.) में अंतर होता है। बजट में इन अंतरों की यथासंभव व्याख्या दी जाती है।
5. अधिकतर मामलों में सार्वजनिक बजट की कुछ व्यय मदों के लिए सरकार कानूनी तौर पर बाध्य होती है तथा उनके लिए साधन जुटाने के पश्चात ही शेष साधन अन्य व्यय मदों के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं। कुछ मामलों में यह भी संभव रहता है कि कुछ निर्दिष्ट साधन-प्राप्तियाँ कुछ निर्दिष्ट व्यय मदों के लिए आरक्षित (earmarked) हों।
6. यह भी संभव है कि बजट, दो अथवा दो से अधिक भागों में विधायक प्राधिकरण को प्रस्तुत किया जाए। ऐसा कई कारणों से हो सकता है—
  - (i) जब देश में बहु-स्तरीय सरकार हो तो यह आशा की जाती है कि केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त राज्य सरकारों तथा स्थानीय सरकारों के बजट अलग से प्रस्तुत किए जाएँगे।
  - (ii) सरकार के किसी एक स्तर पर भी बजट को खंडों में प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ भारत में केन्द्रीय सरकार के बजट में से 'रेलवे बजट' का खंड 'सामान्य बजट' (अर्थात् 'मुख्य बजट') (General or Main Budget) से पूर्व तथा अलग से संसद के समक्ष रखा जाता है।
  - (iii) कभी-कभार चुनाव अथवा अन्य किसी कारण से भी सार्वजनिक बजट सामान्य कालावधि (अर्थात् एक वर्ष) से कम कालावधि के लिए विधायक प्राधिकरण के समक्ष आता है तथा वर्ष के शेष भाग के लिए बजट का दूसरा खंड बाद में पारित करने की बारी आती है।



**क्या आप जानते हैं** वर्ष के दौरान (अर्थात् बजट की कालावधि के अंदर) सरकार को किन्हीं कारणों से अतिरिक्त साधनों की तथा अतिरिक्त व्यय करने की आवश्यकता पड़ सकती है। इस कार्य के लिए सरकार एक पूरक बजट (supplementary budget) तैयार करती तथा पारित कराती है। पूरक बजट की आवश्यकता का स्रोत सरकार की अपनी गतिविधियाँ तथा नीति संशोधन हो सकता है अथवा बाहरी परिस्थितियों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप भी सरकार को पूरक बजट के सहारे की आवश्यकता पड़ सकती है।

7. बजट का मदों तथा मद-वर्गों में बँटवारा देश के कानूनी ढाँचे तथा लेखांकन पद्धति पर निर्भर करता है। इस अनिवार्य वर्गीकरण के साथ-साथ बजट को अर्थपूर्ण बनाने तथा उसके प्रभावों का सही अनुमान लगाने के लिए कई अन्य वर्गीकरण विधियाँ भी अपनाई गई हैं, जिनका विवेचन इस अध्याय में बाद में किया जाएगा। इसी प्रकार बजट के राजस्व तथा पूँजी खातों (Revenue and Capital Accounts) में परंपरागत वर्गीकरण की व्याख्या 'बजट के प्रकार' नामक खंड में की जाएगी।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. एक आधुनिक सरकार का बजट एक विस्तृत ..... होता है।
2. सरकार के किसी एक स्तर पर भी ..... को खंडों में प्रस्तुत किया जा सकता है।
3. बजट का मदों तथा मद-वर्गों में बँटवारा देश के कानूनी ढाँचे तथा ..... पद्धति पर निर्भर करता है।
4. सार्वजनिक बजट का प्रथम मुख्य आयाम सरकार द्वारा ..... साधन जुटाने तथा उन्हें व्यय करने का है।
5. सरकार के पास आने वाले साधन बुनियादी तौर पर समाज की ..... होते हैं।

## 4.2 बजट से संबंधित कुछ अन्य बातें (Some Concepts Associated with Budgets)

**कालावधि (Duration)**—अधिकतर देशों में यह प्रथा है कि सार्वजनिक बजट एक वर्ष के लिए हो। विभिन्न देशों में 'राजकोषीय वर्ष' (fiscal year) का प्रारंभ तथा समापन विभिन्न तिथियों के साथ देखने को मिलते हैं। केवल कुछ देशों का ही 'राजकोषीय वर्ष' उनके कैलेंडर वर्ष के साथ मेल खाता है। भारत में बजट की सामान्य कालावधि एक वर्ष है जो 1 अप्रैल से प्रारंभ होकर अगले वर्ष के 31 मार्च तक गिनी जाती है। इस राजकोषीय वर्ष की तिथियों के संशोधन के पक्ष में कई बार सुझाव दिए गए हैं, परंतु किसी सुझाव ने सर्वमान्यता प्राप्त नहीं की है। सुझाव देने वालों का तर्क है कि भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है जिसमें खरीफ की फसल की अधिक महत्ता है। अतः हमारा राजकोषीय वर्ष अक्टूबर/नवम्बर से शुरू होना चाहिए।

कई लोगों के मतानुसार बजट की कालावधि कम से कम दो वर्ष होनी चाहिए। उनके तर्कानुसार वर्ष का एक बड़ा भाग बजट को पारित करने तथा अगला बजट तैयार करने में ही लग जाता है। अतः वार्षिक बजट की इस प्रथा के कारण साधनों का काफी अपव्यय होता है।

**गोपनीयता (Secrecy)**—भारत में बजट के आँकड़े तथा बजटीय प्रस्ताव (Budgetary proposals) बजट की प्रस्तुति के अंतिम क्षण तक गुप्त रखे जाते हैं। इस गोपनीयता के कारण (प्रधान मंत्री अथवा मुख्य मंत्री को छोड़ कर) मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों से भी पूरा बजट गुप्त रखा जाता है।

कई लोगों का मत यह है कि इस गोपनीयता की प्रथा से कोई विशेष लाभ नहीं होता, उल्टे केवल हानि होती है। व्यापारी तथा अन्य लोग बजट के प्रस्तावों के अनुमान लगाते रहते हैं। इस कारण वे बहुधा कीमतें बढ़ाने तथा अन्य प्रकार से लाभान्वित होने में सफल हो जाते हैं। निवेशकर्ताओं के लिए भी दीर्घकालीन निर्णय लेने में कठिनाई होती है। अतः इन लोगों का यह विचार है कि बजट के आँकड़े तथा अन्य प्रस्ताव गोपनीय नहीं रहने चाहिए। गैर सरकारी तत्वों को भी वाद-विवाद द्वारा इनके चुनाव में योगदान देने का अवसर मिलना चाहिए, ताकि सरकार भी यह जान सके कि समाज और अर्थव्यवस्था पर इसके बजटीय प्रस्तावों के संभावित प्रभाव क्या हैं तथा उन्हें किस प्रकार बेहतर बनाया जा सकता है।

एक अन्य मतानुसार बजट की कुछ विशेष मदों के बारे में गोपनीयता हितकारी हो सकती है। अतः ऐसी मदों की गोपनीयता को कायम रखते हुए अन्य मदों तथा (विशेषकर कर संबंधी) प्रस्तावों को बजट की प्रस्तुति से पूर्व जनता को जानकारी दे दी जानी चाहिए तथा उन पर खुले रूप से विचार विमर्श किया जाना चाहिए।

### 'अच्छा' बजट (A Good Budget)

किसी बजट को तभी अच्छा कहा जा सकता है जब वह समाज और अर्थव्यवस्था के विभिन्न चयनित लक्ष्यों की प्राप्ति में यथासंभव सहायक हो। परंतु यहाँ पर मुख्य समस्या यह है कि इन लक्ष्यों के बारे में मतभेद रहता है। फिर भी विधायक प्राधिकरण की दृष्टि में जो लक्ष्य उचित हों, एक 'अच्छा' बजट उसकी सहायता में सहायक होना चाहिए।

इस बात का मूल्यांकन कैसे किया जाए कि विचाराधीन बजट चयनित उद्देश्यों की प्राप्ति में कहाँ तक सहायक होगा? इसके लिए बजट के आँकड़ों तथा प्रस्तावों के विस्तृत विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है। एक अच्छा बजट वह है जिसमें यह विश्लेषण दिया गया हो अथवा जिसका इस प्रकार का विश्लेषण सुचारु ढंग से किया जा सके।

इस संदर्भ में इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि सरकार का अपने चालू खर्चों के लिए जैसे कि सरकारी कर्मियों के वेतन, ब्याज की अदायगियाँ, देश की रक्षा पर व्यय आदि) उधार लेने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

## नोट

### 4.3 भारत में बजट संबंधी कुछ तथ्य (Some Facts Concerning Public Budgets in India)

बजट संबंधी अर्थपूर्ण जानकारी के लिए यह जानना जरूरी है कि सरकार की प्राप्तियों तथा व्यय के लिए हमारे अपने देश के संविधान में क्या प्रावधान हैं तथा क्या प्रथाएँ हैं। इस संदर्भ में सर्वप्रथम यह नोट कर लेना चाहिए कि सरकार की प्राप्तियाँ उसके अपने स्वामित्व में हो सकती हैं, अथवा इसके पास धरोहर के रूप में हो सकती हैं (इन धरोहरों का मुख्य रूप उधार होता है)। इसी आधार पर 'धरोहर' के रूप में वसूल होने वाली प्राप्तियों को उनके स्वामियों को लौटाने तथा कुछ अन्य व्यय मदों के लिए संसद (अथवा राज्य की विधान सभा) की अनुमति की आवश्यकता नहीं पड़ती।

**1. समेकित निधि (Consolidated Fund)**—भारत सरकार को मिलने वाली वे सब प्राप्तियाँ जो इसके अपने स्वामित्व में आती हैं, उन खातों में रखी जाती हैं जिन्हें सामूहिक तौर पर 'भारत की समेकित निधि' कहा जाता है।

(i) संविधान के 80वें संशोधन से पूर्व भारत सरकार द्वारा वसूले जाने वाले करों में से कुछ की समस्त निबल प्राप्तियाँ तथा कुछ की आंशिक निबल प्राप्तियाँ राज्य सरकारों को जाती थीं। अतः व्यवस्था इस प्रकार थी कि आयकर की प्राप्तियों में राज्यों को मिलने वाले भाग के अतिरिक्त अन्य सभी कर प्राप्तियाँ भारत की समेकित निधि में जाती थीं तथा इस समेकित निधि में से राज्यों को मिलने वाली कर प्राप्तियों का भाग (आय कर की प्राप्तियों से मिलने वाली भाग को छोड़कर) उन्हें हस्तांतरित किया जाता था। बिना विधानसभा वाले संघ राज्य क्षेत्रों के बजट भारत सरकार के बजट में समेकित होते हैं। इसलिए संघ राज्य क्षेत्रों की कर प्राप्तियाँ भी भारत की समेकित निधि में जाती थीं। अब स्थिति यह है कि (क) अनुच्छेद 268 और 269 के अंतर्गत लगाए गए करों, (ख) करों पर सर्चार्ज, तथा (ग) विशेष प्रयोजनों के लिए लगाए गए करों को छोड़कर भारत सरकार के सभी करों की निबल प्राप्तियों का एक पूर्वनिश्चित भाग राज्यों को जाता है और भारत की समेकित निधि से बाहर रहता है।

(ii) भारत सरकार की विभिन्न प्रकार की कर-भिन्न राजस्व प्राप्तियाँ भी होती हैं। ये सब भी भारत की समेकित निधि में जाती हैं। इन प्राप्तियों के उदाहरणों में 'करेंसी', 'सिक्का ढलाई और टकसाल' (Currency, Coinage and Mint), 'ब्याज प्राप्तियाँ', 'लाभांश और लाभ', 'विदेशी अनुदान सहायता तथा अंशदान' (External Grants-in-Aid and Contributions), 'संघ-राज्य क्षेत्रों का कर-भिन्न राजस्व' तथा 'अन्य कर-भिन्न राजस्व' आदि शामिल हैं।

(iii) पूँजी खाते में होने वाली भी कई प्राप्तियाँ भारत की समेकित निधि में ही जाती हैं। इनमें भारत सरकार द्वारा लिए गए कई प्रकार के आंतरिक उधार, विदेशी-उधार तथा भारत सरकार द्वारा पहले से दिए गए उधारों और अग्रिमों की वसूलियाँ आदि शामिल हैं। संवैधानिक स्थिति यह मानी जाती है कि जो ऋण प्राप्तियाँ समेकित निधि में रखी जाती हैं, उन्हें सरकार ने वर्तमान में उपलब्ध तथा भविष्य में प्राप्य राशियों की जमानत पर उधार लिया है और कि सरकार उनका भुगतान भी समेकित निधि से ही करेगी। भारत सरकार की वे सब देनदारियाँ जो "भारत की समेकित निधि" से देय हैं, सामूहिक तौर पर "भारत सरकार का सार्वजनिक ऋण" अथवा "लोक ऋण" कहलाती हैं।

इस निधि के तदनु रूप हर राज्य की भी एक समेकित निधि होती है।

**2. लोक खाता (Public Account)**—भारत सरकार द्वारा तथा इसके लिए प्राप्त अन्य सब राशियाँ जिन खातों में रखी जाती हैं, उन्हें सामूहिक तौर पर 'भारत का लोक खाता' (Public Account of India) कहा जाता है। ये सब राशियाँ सरकार के पास एक प्रकार से 'धरोहर' के रूप में जमा रहती हैं। अतः उनको लौटाने के लिए सरकार को संसद की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होती। अन्य देनदारियों के मुख्य उदाहरण हैं—(क) अल्प बचतें, जमा राशियाँ और लोक भविष्य निधियाँ (Small Savings, Deposits and PPF); (ख) राज्य भविष्य निधियाँ (State Provident Funds); (ग) अन्य खाते (Other Accounts); तथा (घ) प्रारक्षित निधियाँ और जमा राशियाँ (Reserve Funds and Deposits)। इन उधारों की अदायगी संसद से पारित कराए बिना की जा सकती है।

इस निधि के तदनु रूप हर राज्य का भी एक 'लोक खाता' होता है।



टास्क समेकित निधि से क्या समझते हैं?

**3. भारत की आकस्मिकता निधि (Contingency Fund of India)**—देश को कभी किसी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ सकता है जिसमें सरकार को एकदम व्यय करने की आवश्यकता पड़ जाए, परंतु संसद से उसकी अनुमति लेने का समय तथा अवसर न हो। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए सरकार के पास अग्रदाय अथवा पेशगी के रूप में कुछ राशि का रहना उचित समझा जाता है। इसके लिए संसद द्वारा एक अलग निधि के रूप में कुछ राशि रख दी जाती है जिसे 'भारत की आकस्मिक निधि' (Contingency Fund of India) के नाम से जाना जाता है। समय-समय पर इस निधि से किए गए व्यय को संसद द्वारा पारित किया जाता है तथा इसकी कुल राशि में यथोचित संशोधन भी किया जाता है।

इसी प्रकार हर राज्य की अपनी 'आकस्मिकता निधि' रहती है।

भारत की समेकित निधि में से की जाने वाली अदायगियों के दो वर्ग हैं। पहले वर्ग में वे मदें आती हैं जो इस निधि पर 'भारित' (charged) भुगतान हैं, अर्थात् इन अदायगियों (व्यय मदों तथा उन पर अनुमानित व्यय राशियों) को संसद से पारित कराने की आवश्यकता नहीं होती। पारित हुए बिना ही वे बजट के व्यय पक्ष का एक अंग बन जाती हैं। इन 'भारित' भुगतान मदों के कुछ उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। तदनुरूप हर राज्य की समेकित निधि पर भी कुछ 'भारित' भुगतान रहते हैं। समेकित निधि में से किसी भी अन्य प्रकार की अदायगी संसद (तथा राज्यों के मामले में विधान सभाओं) की पूर्वानुमति के बिना नहीं की जा सकती।

जहाँ तक लोक खाते की बात है, उसमें प्राप्तियाँ ही ऐसी पूर्वनिश्चित शर्तों के अनुसार होती हैं कि सरकार उनकी अदायगियों की समय-सारणी तथा अन्य शर्तों द्वारा कानूनी तौर पर बाध्य होती है। अतः इस खाते से अदायगियों के लिए संसद (अथवा राज्य की विधान सभा) की पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं होती।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

6. विभिन्न देशों में किसका प्रारंभ तथा समापन विभिन्न तिथियों के साथ देखने को मिलते हैं?
 

(अ) राजकोषीय वर्ष	(ब) वित्तीय वर्ष
(स) सार्वजनिक वित्त	(द) इनमें से कोई नहीं।
7. कुछ देशों का राजकोषीय वर्ष उसके किस वर्ष के साथ मेल खाता है?
 

(अ) वित्तीय	(ब) कैलेंडर
(स) हिंदी	(द) सार्वजनिक।
8. पूँजी खाते में होने वाली कई प्राप्तियाँ भारत की किस निधि में जाती हैं?
 

(अ) आकस्मिक	(ब) लोक
(स) समेकित	(द) उपरोक्त सभी।

### 4.4 सारांश (Summary)

- एक आधुनिक सरकार का बजट एक विस्तृत प्रलेख होता है। इसमें, प्रस्तावित संशोधनों सहित, सरकार की समस्त वित्तीय प्राप्तियों और व्यय का मदवार विवरण रहता है; उन वित्तीय प्रवाहों के अनुमान रहते हैं; तथा उनसे संबद्ध सरकार की नीतियों और गतिविधियों का उल्लेख रहता है।
- अधिकतर देशों में यह प्रथा है कि सार्वजनिक बजट एक वर्ष के लिए हो। विभिन्न देशों में 'राजकोषीय वर्ष' (fiscal year) का प्रारंभ तथा समापन विभिन्न तिथियों के साथ देखने को मिलते हैं। केवल कुछ देशों का ही 'राजकोषीय वर्ष' उनके कैलेंडर वर्ष के साथ मेल खाता है।

## नोट

- कई लोगों का मत यह है कि इस गोपनीयता की प्रथा से कोई विशेष लाभ नहीं होता, उल्टे केवल हानि होती है। व्यापारी तथा अन्य लोग बजट के प्रस्तावों के अनुमान लगाते रहते हैं। इस कारण वे बहुधा कीमतें बढ़ाने तथा अन्य प्रकार से लाभान्वित होने में सफल हो जाते हैं।
- किसी बजट को तभी अच्छा कहा जा सकता है जब वह समाज और अर्थव्यवस्था के विभिन्न चयनित लक्ष्यों की प्राप्ति में यथासंभव सहायक हो। परंतु यहाँ पर मुख्य समस्या यह है कि इन लक्ष्यों के बारे में मतभेद रहता है।
- बजट संबंधी अर्थपूर्ण जानकारी के लिए यह जानना जरूरी है कि सरकार की प्राप्तियों तथा व्यय के लिए हमारे अपने देश के संविधान में क्या प्रावधान हैं तथा क्या प्रथाएँ हैं। इस संदर्भ में सर्वप्रथम यह नोट कर लेना चाहिए कि सरकार की प्राप्तियाँ उसके अपने स्वामित्व में हो सकती हैं, अथवा इसके पास धरोहर के रूप में हो सकती हैं (इन धरोहरों का मुख्य रूप उधार होता है)।
- भारत सरकार को मिलने वाली वे सब प्राप्तियाँ जो इसके अपने स्वामित्व में आती हैं, उन खातों में रखी जाती हैं जिन्हें सामूहिक तौर पर 'भारत की समेकित निधि' कहा जाता है।
- भारत सरकार द्वारा तथा इसके लिए प्राप्त अन्य सब राशियाँ जिन खातों में रखी जाती हैं, उन्हें सामूहिक तौर पर 'भारत का लोक खाता' (Public Account of India) कहा जाता है।
- देश को कभी किसी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ सकता है जिसमें सरकार को एकदम व्यय करने की आवश्यकता पड़ जाए, परंतु संसद से उसकी अनुमति लेने का समय तथा अवसर न हो।

## 4.5 शब्दकोश (Keywords)

- पूरक (Supplimentary)–तुष्ट करने वाला।
- भारित (Charged)–ऋणयुक्त।

## 4.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. बजट का क्या अर्थ है?
2. अच्छा बजट क्या है?
3. बजट से संबंधित कुछ तथ्यों का वर्णन करें।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें—  
(i) कालावधि (ii) गोपनीयता।

## उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |           |        |            |            |
|-----------|--------|------------|------------|
| 1. प्रलेख | 2. बजट | 3. लेखांकन | 4. वित्तीय |
| 5. धरोहर  | 6. (अ) | 7. (ब)     | 8. (स)।    |

## 4.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त—न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन—मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस—नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस—सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
5. पब्लिक फाइनेंस—नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## **इकाई-5: लोक आगम : आगम प्राप्ति एवं पूँजी प्राप्ति**

### **(Public Revenue : Revenue Receipts and Capital Receipts)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 5.1 अर्थ तथा महत्त्व (Meaning and Significance)
- 5.2 लोक आगम के स्रोत (Sources of Public Revenue)
- 5.3 सारांश (Summary)
- 5.4 शब्दकोश (Keywords)
- 5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 5.6 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- लोक आगम के अर्थ तथा महत्त्व को समझने में।
- लोक आगम के स्रोत को जानने में।
- कर के विभिन्न तत्व को समझने हेतु।
- उपहार तथा अनुदान की जानकारी प्राप्त करने हेतु।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

आज के आर्थिक नियोजन के युग में उत्पत्ति का जो महत्त्व अर्थशास्त्र में है, वही महत्त्व लोक आगम का लोक वित्त में है। वर्तमान समय में राज्यों के कार्यों में वृद्धि होने के कारण सार्वजनिक व्यय की राशि भी बढ़ती जा रही है। लोक आगम के स्रोत में कर वे अनिवार्य भुगतान हैं जो करदाता द्वारा सरकार के प्रति बिना किसी ऐसी आशा से किये जाते हैं कि उसे उनके बदले में कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होगा।

#### **5.1 अर्थ तथा महत्त्व (Meaning and Significance)**

जिस प्रकार एक व्यक्ति को अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु आय की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सरकार को अपने कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए आय की आवश्यकता होती है। सरकार को प्राप्त होने वाली सभी प्रकार की आय को सार्वजनिक आय कहा जाता है। लोक वित्त के अध्ययन में सरकारी आय को वही स्थान

**नोट**

प्राप्त होता है जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में उत्पादन (production) के प्राप्त होता है। जिस प्रकार उपभोग (consumption) की पूर्ति के लिए उत्पादन आवश्यक होता है, उसी प्रकार सरकारी खर्च की पूर्ति के लिए सरकारी आय आवश्यक होती है।

सरकार को विभिन्न स्रोतों से जो आय प्राप्त होती है उसे सरकारी आय या सरकारी राजस्व कहा जाता है। किन्तु डाल्टन ने सरकारी आय का व्यापक तथा संकुचित, दोनों ही अर्थों में प्रयोग किया है। उसने **व्यापक अर्थ** में इसे सरकारी प्राप्तियों (public receipts) का नाम दिया है और **संकुचित अर्थ** में सरकारी आय या सरकारी राजस्व (public revenue) की संज्ञा दी है। सरकारी राजस्व में करों (taxes) सरकारी उद्यमों द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों, फीस तथा जुर्माने जैसी प्रशासनिक क्रियाओं की आय तथा उपहारों व अनुदानों को सम्मिलित किया जाता है। किन्तु सरकारी प्राप्तियों में सरकार की उन सभी आमदनियों को सम्मिलित किया जाता है जो कि किसी भी निश्चित अवधि में उसे प्राप्त होती हैं। अन्य शब्दों में, सरकारी प्राप्तियाँ (public receipts) = सरकारी राजस्व (public revenue) + अन्य सभी स्रोतों की आय जैसे कि व्यक्तियों, बैंकों या केन्द्रीय बैंक से लिया जाने वाला उधार तथा नई पत्र-मुद्रा जारी करना।

आज के आर्थिक नियोजन के युग में उत्पत्ति का जो महत्त्व अर्थशास्त्र में है, वही महत्त्व लोक आगम का लोक वित्त में है। वर्तमान समय में राज्यों के कार्यों में वृद्धि होने के कारण सार्वजनिक व्यय की राशि भी बढ़ती जा रही है। इस बढ़ते हुए व्यय की पूर्ति हेतु सार्वजनिक आय में वृद्धि करना आवश्यक हो गया है। आधुनिक युग में आय सम्बन्धी साधनों का उद्देश्य केवल आय प्राप्त करना ही नहीं है, अपितु एक प्रभावकारी राजकोषीय यन्त्र के रूप में उत्पादन, रोजगार, विनियोग एवं अन्य आर्थिक क्रियाओं को भी प्रभावित करना है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण नीति के साथ-साथ सार्वजनिक आय के सम्बन्ध में भी निश्चित नीति का निर्धारण करके वाँछित उद्देश्यों की पूर्ति करते हेतु एक शक्तिशाली साधन की व्यवस्था की जा सकती है। इसलिए वर्तमान युग में सार्वजनिक आय प्रत्येक अर्थव्यवस्था के लिए, चाहे विकसित हो या अविकसित, महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। सरकार की लोकप्रियता एवं सफलता सम्पूर्ण सार्वजनिक आय पर निर्भर करती है। इस प्रकार निजी व्यक्तियों तथा सरकार, दोनों के लिए सार्वजनिक आय के तरीकों तथा उसकी प्रकृति के अध्ययन का व्यावहारिक महत्त्व अधिक हो गया है।



**नोट्स** सरकारी प्राप्तियाँ = सरकारी राजस्व + अन्य सभी स्रोतों की आय।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :**

1. सरकार को प्राप्त होने वाली सभी प्रकार की आय को ..... आप कहते हैं।
2. लोक वित्त में सरकारी आय को वही स्थान प्राप्त होता है जो कि अर्थशास्त्र के अध्ययन में ..... के प्राप्त होता है।
3. .... की पूर्ति के लिए उत्पादन आवश्यक होता है।
4. सरकारी प्राप्तियाँ = सरकारी राजस्व + .....।
5. आज के आर्थिक नियोजन के युग में उत्पत्ति का जो महत्त्व अर्थशास्त्र में है, वही महत्त्व ..... का लोक वित्त में है।

**5.2 लोक आगम के स्रोत (Sources of Public Revenue)**

अब हम सरकारी आय के विभिन्न स्रोतों या रूपों का अध्ययन करेंगे। ये स्रोत निम्नलिखित हैं—

- (1) कर (Taxes),

- (2) व्यावसायिक आय (Commercial Revenues),  
 (3) प्रशासनिक आय (Administrative Revenues),  
 (4) उपहार तथा अनुदान (Gifts and Grants),  
 अब हम इन सभी स्रोतों का पृथक्-पृथक् अध्ययन करेंगे।

### 5.2.1 कर (Taxes)

कर वे अनिवार्य भुगतान (compulsory payments) हैं जो करदाता द्वारा सरकार के प्रति बिना किसी ऐसी आशा से किये जाते हैं कि उसे उनके बदले में कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होगा। बेस्टेबिल के अनुसार, “कर व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के पास विद्यमान धन का वह अनिवार्य अंशदान (compulsory contribution) है जो कि सरकारी कार्यों को सेवा के बदले में दिया जाता है।” प्रो. सैलिगमैन (Seligmen) का कहना है कि, “कर व्यक्ति द्वारा सरकार को दिये जाने वाले उस अनिवार्य अंशदान को कहते हैं जो सबके सामान्य हित के लिए किये जाने वाले खर्चों के भुगतान में अदा किया जाता है और उसके बदले में कोई विशेष लाभ नहीं दिया जाता।” टॉजिंग (taussig) के अनुसार, “सरकार द्वारा ली जाने वाली अन्य धनराशियों के मुकाबले कर के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि इसमें करदाता व सरकारी सत्ता के बीच प्रत्यक्ष रूप से लेने और देने वाली बात (quid pro quo) नहीं पाई जाती है।”

### कर की विशेषताएँ या लक्षण (Characteristics of a Tax)

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कर में कुछ विशेषतायें पाई जाती हैं, जो इस प्रकार हैं—

(1) **अनिवार्य भुगतान (Compulsory Contribution)**—कर नागरिक द्वारा अथवा निवास तथा सम्पत्ति आदि के कारण से देश की सीमा में रहने वाली प्रजा द्वारा राज्य को दिया जाने वाला अंशदान है और यह अंशदान सामान्य उपयोग (Common use) के लिए ही दिया जाता है। चूँकि यह एक अनिवार्य अंशदान है, अतः कोई भी व्यक्ति कर की अदायगी से इन्कार नहीं कर सकता। उदाहरण के लिए, कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि चूँकि उसे राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली कुछ सेवाओं का लाभ नहीं मिल रहा है अथवा चूँकि उसे वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं है, अतः वह कर देने को बाध्य नहीं है। अतः कर उस प्रत्येक व्यक्ति को अदा करना पड़ता है जिस पर कि राज्य द्वारा कर लगाया जाता है भले ही वह वयस्क (Adult) हो या अवयस्क (minor) और नागरिक हो या विदेशी। यही नहीं, यदि कोई व्यक्ति कर देने से इन्कार करे तो उसे दण्ड दिया जाता है।

परन्तु इसके बावजूद कर की कुछ सीमायें हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी विशेष पदार्थ पर कर लगाया जाता है तो उसे पदार्थ का उपयोग न करके वह कर से बच सकता है। मान लीजिये कि शराब पर कर लगाया गया है तो सरकार इस कर को अदा करने के लिए किसी व्यक्ति को केवल तभी बाध्य कर सकती है। जबकि वह शराब का उपयोग करे। परन्तु यदि वह शराब नहीं पीता है, तो उसे शराब पर लगे कर को अदा करने के लिए भी बाध्य नहीं किया जा सकता। इन सीमाओं के अतिरिक्त, कर एक अनिवार्य भुगतान ही है और इसकी यही विशेषता इसको अन्य किस्म की सरकारी आय से पृथक् करती है।

(2) **व्यक्तिगत दायित्व (Personal Obligation)**—कर करदाता पर व्यक्तिगत दायित्व (Personal Obligation) डालता है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी व्यक्ति पर कर लगा है तो उसका कर्तव्य या दायित्व है कि उसे अदा करे और किसी भी स्थिति में उससे बचने की न सोचे। उदाहरण के लिए, मान लीजिये लोगों की आमदनियों पर कर लगाया गया है, तो चूँकि लोगों की आय के अनेक स्रोत हो सकते हैं, अतः सम्भव है, सरकार को लोगों की आय के सभी स्रोतों का पता न हो। इस स्थिति में, यह करदाता का कर्तव्य है कि वह अपनी समस्त आय को घोषित करे और कर अदा करते समय अपनी कुल आय को ही दृष्टिगत रखे।

(3) **कर समाज के हित के लिए लगाया जाता है (The Tax is imposed for the General and Common Benefit)**—करदाताओं से करों के रूप में जो अंशदान प्राप्त होता है, वह हो सकता है कि केवल उनके ही लाभ के लिए खर्च न किया जाये। बल्कि सर्व-सामान्य के हित में खर्च किया जाये। हो सकता है कि



**नोट**

कोई व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ न हो विशेष रूप से ऐसी आवश्यकताओं को पूरा करने में जिस पर कि भारी मात्रा में खर्च होता है, जैसे कि अस्पताल का निर्माण। इस स्थिति में राज्य सभी लोगों के लाभ के लिए ऐसी सेवाओं की व्यवस्था करता है। अतः इस सामान्य बोझ को उठाने के लिए ऐसे सभी लोगों पर कर लगा दिये जाते हैं जो कि उन्हें अदा करने में समर्थ होते हैं।

**(4) कर और राज्य द्वारा प्रदान की गई सेवाओं में कोई सम्बन्ध नहीं** (No relation between Taxation and State Services)–कर की अदायगी, राज्य द्वारा व्यक्ति के लिए की जाने वाली किसी विशेष सेवा के भुगतान के लिए नहीं की जाती और न कर इसलिए अदा किया जाता है कि करदाता को राज्य द्वारा कोई विशिष्ट लाभ प्रदान किया गया है। इस प्रकार, कर इसलिए नहीं दिये जाते क्योंकि कर देने वाले व्यक्ति को राज्य से कोई लाभ प्राप्त हुआ है अथवा राज्य ने उसके लिए कोई सेवा की है।

परन्तु कर की इस विशेषता की भी कुछ सीमायें हैं। उदाहरण के लिए भूमि कर (Land tax) केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा अदा किया जाता है जिनके पास भूमि होती है अथवा जो भूमि से लाभ उठाते हैं। इसी प्रकार, मनोरंजन कर (Entertainment tax) केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा दिया जाता है जो मनोरंजन का लाभ प्राप्त करते हैं। इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए प्रो. डि मार्को (De Marco) ने कर की इस विशेषता की सीमाओं के सम्बन्ध में कहा कि आधुनिक राज्य में कराधान का कानून परस्पर विनिमय के सम्बन्ध (exchange relationship) की मान्यता पर आधारित है, अर्थात् राज्य द्वारा सेवा की व्यवस्था की जाती है और उसके बदले में सरकार को कर अदा किया जाता है।<sup>1</sup> अतः डि मार्को के अनुसार, “कर प्रत्येक नागरिक द्वारा सरकार को दी जाने वाली वह कीमत है जो कि वह उन सामान्य सार्वजनिक सेवाओं की लागत के अपने उस हिस्से के बदले में अदा करता है जिसे वह उपयोग करता है।”<sup>2</sup>

परन्तु यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि किसानों से भूमि कर के रूप में जो अंशदान प्राप्त किया जाता है, हो सकता है कि राज्य द्वारा उसका उपयोग केवल उन्हीं के लाभ के लिए न किया जाए, बल्कि सम्पूर्ण समाज के ही लाभ के लिए दिया जाए। इसी प्रकार, मनोरंजन का लाभ प्राप्त करने के बदले में लोगों से सरकार को जो अंशदान प्राप्त होता है, हो सकता है कि सरकार द्वारा वह केवल उन्हीं के लाभ के लिए प्रयोग में न लाकर सम्पूर्ण समुदाय के लाभ के ही प्रयोग में लाया जाए। इस प्रकार, व्यक्ति द्वारा कर के रूप में अदा की जाने वाली धनराशि तथा सरकारी सेवा से उसे प्राप्त होने वाले लाभ के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः कर एक अनिवार्य अंशदान है और यह अंशदान सर्व-सामान्य को प्रदान किये जाने वाले लाभ के लिए ही होती है तथा सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा तथा अदा किये जाने वाले कर के बीच परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता।



**क्या आप जानते हैं?** करदाता का कर्तव्य है कि वह अपनी समस्त आय को घोषित करे तथा कर अदा करते समय अपनी कुल आय को दृष्टिगत रखे।

**कर के तत्व (Elements of Tax)**

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कर के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं—

**1. अनिवार्य अंशदान (Compulsory Contribution)**—कर एक अनिवार्य अंशदान है, यदि कर लगने की कानून द्वारा निर्धारित दशाएँ लागू होती हों।

1. “The law of taxation in modern state is based on the assumption of an exchange relationship, that is the exchange of a payment of the state for the provision of public services by the state.”
2. “The tax is the price which citizen pays to the state to cover his share of the cost the general public services which he will consume.”

—4 and 5 Antonio de Viti de Macro, *First Principle of Public Finance*, pages 112-113.

## नोट

2. **केवल सरकार द्वारा कर लगाना** (Taxes are imposed by a government)–केवल सरकार द्वारा ही लगाये जाते हैं। यदि किसी मन्दिर या अन्य संस्था के प्रबन्धक किसी क्षेत्र के प्रत्येक परिवार के लिए हर वर्ष एक विशिष्ट रकम देना अनिवार्य कर दें, तो इसे किसी भी स्थिति में कर नहीं कहा जा सकता।
3. **त्याग का समावेश** (Involvement of Sacrifice)–कर के भुगतान में त्याग की भावना निहित होती है क्योंकि करदाता समाज के सामान्य हित में ही कर अदा करता है।
4. **समाज कल्याण** (Social Welfare)–कर सम्पूर्ण समुदाय के कल्याण के उद्देश्य से लगाया जाता है, अर्थात् कर से प्राप्त होने वाली आय, एक ओर तो, समाज के विशेष वर्ग के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए खर्च कर दी जाती है और, दूसरी ओर इस खर्च से आय की असमानताएँ दूर होती हैं।
5. **भुगतान के लिए लाभ शर्त नहीं** (The Benefit is not the condition for the Payment)–लाभ प्राप्त होना कर की अदायगी की कोई अनिवार्य शर्त नहीं है। कर इसलिए नहीं अदा किये जाते क्योंकि करदाता सरकारी खर्च से कोई लाभ प्राप्त करते हैं, अपितु इसलिए अदा किये जाते हैं क्योंकि वे अनिवार्य होते हैं। साथ ही, करदाता को यदि कोई लाभ मिलता भी है तो यह जरूरी नहीं है कि वह अदा किये गये कर के अनुपात में ही हो।
6. **सेवा लागत से कोई सम्बन्ध नहीं** (No Relation with the Cost of Service)–सरकारी सेवा द्वारा व्यक्तियों को जो लाभ प्रदान किया जाता है, कर उस लाभ की लागत (cost) को वसूल करने के लिए नहीं लगाया जाता, अर्थात् कर का उन सेवा की लागत से कोई सम्बन्ध नहीं होता जो कि सरकार व्यक्ति को प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, यह हो सकता है कि एक गरीब व्यक्ति सरकारी खर्च से लाभान्वित तो सबसे अधिक हो किन्तु कराधान का प्रतिकूल प्रभाव उस पर सबसे कम पड़े।
7. **आय में से भुगतान** (The Payment from Income)–कर आय पर भी लगाये जा सकते हैं और पूँजी पर भी। परन्तु उनका भुगतान आय में से ही किया जाता है।
8. **व्यक्तिगत कर अदायगी** (Individual Payment)–कर व्यक्ति, सम्पत्ति या वस्तु किसी पर भी लगाये जा सकते हैं, परन्तु उनकी अदायगी व्यक्तियों द्वारा ही की जाती है।
9. **कानूनी वसूली** (Legal Collection)–कर एक कानूनी वसूलयाबी (legal collection) है।

### 5.2.2 व्यावसायिक आय (Commercial Revenues)

व्यावसायिक आय वे आमदनियाँ हैं जो कि सरकार को अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं अथवा सेवाओं की कीमतों के रूप में प्राप्त होती हैं। अन्य शब्दों में, उस आय को व्यावसायिक आय कहा जाता है जो कि सरकार द्वारा सरकारी उद्यमों (public enterprises) की वस्तुओं व सेवाओं को बेचकर प्राप्त की जाती है। इस आय को कीमतों (Prices) का नाम दिया जाता है और वह इसलिए क्योंकि वह सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों के रूप में प्राप्त होती हैं। व्यावसायिक आय में डाक व्यय की अदायगियाँ, चुँगी, सरकारी साख निगमों द्वारा उधार दिये गये धन का ब्याज, सरकारी भण्डारों की शराब के लिए अदा की जाने वाली कीमतें, सरकार द्वारा वितरित की जाने वाली बिजली की कीमतें, रेल-सेवा आदि की अदायगियाँ सम्मिलित की जाती हैं। कभी-कभी सरकार इस्पात तथा खनिज तेल जैसी वस्तुओं के उत्पादन से भी आय प्राप्त करती है। किन्तु इसके बावजूद, संसार के अधिकांश देशों में व्यावसायिक उद्यमों से होने वाली बचतों या बेशियों (Surpluses) को आय का कोई महत्वपूर्ण स्रोत नहीं माना जाता।

### कर तथा कीमत में अन्तर (Difference between Tax and Price)

कर तथा कीमत में मुख्य अन्तर निम्न प्रकार हैं-

- (1) **अदायगी का अन्तर**–कर तो एक अनिवार्य अंशदान है जो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अदा किया जाता है जिस पर कि वह लगाया जाता है किन्तु कीमत उन व्यक्तियों द्वारा अदा की जाती है, जो सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुएँ, तथा सेवाएँ खरीदते हैं।

## नोट

- (2) **लाभ का अन्तर**—कर इस बात की कोई गारन्टी नहीं देता कि उस भुगतान के बदले में कोई लाभ (benefit) भी प्राप्त होगा कि नहीं, और यदि होगा तो उसकी मात्रा (amount) तथा प्रकृति (nature) क्या होगी, किन्तु कीमते वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले में की जाने वाली प्रत्यक्ष अदायगियाँ हैं और उन अदायगियों (Payments) की मात्रा खरीदी गई वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा पर निर्भर होती है। प्रो. पी. ई. टेलर ने इस बात को इन शब्दों में व्यक्त किया है कि “व्यावसायिक आय को अन्य श्रेणियों की आय से पृथक् करने वाली इसकी विशेषताएँ हैं : अदायगी या भुगतान के बदले में वस्तु या सेवा की प्रत्यक्ष प्राप्ति (direct receipt) तथा दूसरे, भुगतान की धनराशि का मोटे तौर पर वस्तु या सेवा की लागत (या लाभ) के साथ समायोजन (adjustment)।”

यहाँ उल्लेखनीय है कि सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमत और औसत या सीमान्त उत्पादन लागत के बीच सदा ही कोई साम्य या समानता की स्थिति बनी रहती हो, ऐसी बात नहीं है। यह हो सकता है कि सरकारी उद्यमों द्वारा अपनाई जाने वाली सामान्य सामाजिक नीति (general social policy) और व्यावसायिक नीति (business policy) के साथ टकराव उत्पन्न हो जाये, जैसी कि डाक व्यव की दरों अथवा सुरंग मार्ग के भाड़ों के बारे में होता है कि ये दरें और भाड़े कभी भी सेवा की लागत को पूरी नहीं करते। ऐसे उदाहरणों में, आमतौर पर यह वांछनीय माना जाता है कि सामाजिक कल्याण के लिए सरकारी सेवा काफी व्यापक रूप से उपलब्ध कराई जाये, अपेक्षाकृत उसके कि वस्तु की लागत तथा कीमत यदि बराबर होती तो उस स्थिति में उपलब्ध कराई जानी सम्भव होती। अन्य कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं कि जिनमें कुल वस्तुओं तथा सेवाओं के वितरण के लिए सरकारी एकाधिकारों (government monopolies) की स्थापना की जाती है, और इसलिए ताकि एकाधिकारी लाभ कमाये जा सकें। भारत में रेल सेवा तथा बिजली के वितरण की सेवाएँ इसके प्रमुख उदाहरण हैं। फाँसीसी तम्बाकू एकाधिकार (French tobacco monopoly) भी इसी का उदाहरण है तथा सरकार द्वारा संचालित मद्यशालाएँ भी इसी श्रेणी में आती हैं। इन मामलों में यह हो सकता है कि इन एकाधिकारों की स्थापना में सरकार का एकमात्र उद्देश्य लाभ प्राप्त करना ही न हो, बल्कि अपने द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं के वितरण पर नियन्त्रण रखना भी हो। जैसा कि टेलर (Taylor) ने कहा है “यह हो सकता है कि इस क्षेत्र में नियन्त्रण (control) के उद्देश्य से की जाने वाली एकाधिकारी कार्यवाही भी उतनी ही महत्वपूर्ण हो जितनी कि लाभ की सम्भावनाएँ।”

सरकार वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन तथा उनकी बिक्री के क्षेत्र में अनेक कारणों से प्रविष्ट हो सकती है। कुछ मामलों में, यह हो सकता है कि प्राइवेट साहसी ऐसे उद्यमों की स्थापना करने के इच्छुक ही न हों या तो इसलिए क्योंकि उनमें बहुत कम लाभ होने की आशा है, अथवा इसलिए क्योंकि उनसे प्रतिफल या लाभों की प्राप्ति बहुत दीर्घकाल के बाद होने की आशा है, उदाहरण के लिए, डाक-सेवा तथा नहरों व बिजली उत्पन्न करने वाले बाँधों का निर्माण आदि। दूसरे कुछ आवश्यक सेवाएँ सरकार द्वारा इसलिए भी हाथ में ली जा सकती हैं जिससे एकाधिकारी किस्म के प्राइवेट संगठनों से उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके, जैसे कि नगर परिवहन सेवा (city transport service) तथा जल-प्रदाय सेवा (water supply service)। तीसरे, कुछ अन्य मामलों में, यह माना जाता है कि अमुक सेवा प्राइवेट व्यक्तियों की तुलना में सरकार द्वारा अधिक अच्छी तथा सस्ती प्रदान की जा सकती है, जैसे कि बिजली का उत्पादन तथा वितरण। चौथे, कुछ ऐसे भी मामले हैं जिनमें सरकार उक्त उद्यमों (enterprises) को अपने हाथ में ले लेती है जो कि अर्थव्यवस्था (economy) को लिए मूलभूत महत्व के होते हैं। सरकार द्वारा ऐसे उद्यमों से सम्बन्धित वस्तुओं का उत्पादन सम्पूर्ण देश के ही हित में माना जाता है। लोहा व इस्पात, भारी विद्युत पदार्थ, तेल तथा खनिज आदि ऐसे ही उद्यमों के उदाहरण हैं। यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण होगा कि इन व्यावसायिक आमदनियों की प्रकृति मुख्यतः उन कीमतों के समान ही होती है जो कि वस्तुओं तथा सेवाओं के गैर-सरकारी उत्पादकों को दी जाती हैं।

### 5.2.3 प्रशासनिक आय (Administrative Revenues)

जिन प्राप्तियों (receipts) को प्रशासनिक आय की श्रेणी में रखा जाता है, वे हैं—शुल्क या फीस, लाइसेंस, जुर्माने, सम्पत्ति जब्त करने और उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति पर अधिकार करने आदि से होने वाली प्राप्तियाँ तथा

## नोट

विशेष कर-निर्धारण (Special assessments)। इन प्राप्तियों की एक विशेषता तो यह होती है कि व्यक्ति को न्यूनधिक रूप में इस बात की छूट होती है कि वह इनका भुगतान करे या नहीं। दूसरे, ये प्राप्तियाँ व्यक्ति को प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करती हैं या उस पर जुर्माना करती हैं। किन्तु इनकी स्थिति में, यह आवश्यक नहीं है कि भुगतान की गई धनराशि का या तो लाभ के मूल्य से अथवा उस लाभ को प्रदान करने की लागत से घनिष्ठ सम्बन्ध हो। प्रशासनिक आमदनियों की एक अन्य अनोखी विशेषता यह है कि ये सामान्यतः सरकार के प्रशासनिक कार्यों के गौण उत्पादन (by product) के रूप में प्राप्त होती हैं। और यही कारण है कि इन्हें 'प्रशासनिक आय' का नाम दिया जाता है।

इन प्रशासनिक आमदनियों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है-



टास्क कर तथा कीमत में अंतर स्पष्ट करें।

### (क) शुल्क या फीस (Fees)

प्रो. सेलिगमैन फीस की परिभाषा इस प्रकार की है-“शुल्क अथवा फीस उस धनराशि को कहते हैं जो कि सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रत्येक ऐसी आवर्ती सेवा (recurring service) की लागत अदा करने के लिए दी जाती है, जो कि मुख्यतः जनता के हित के लिए होती है किन्तु जो फीस देने वाले को ऐसी विशेष लाभ पहुँचाती है जिसको मापा जा सके।” इस प्रकार, फीस एक ऐसी अदायगी है जो कि उन प्रशासनिक सेवाओं की लागत को पूरा करने के लिए सरकार को दी जाती है जो सम्पूर्ण जनता के हित में सम्पन्न की जाती है किन्तु जो व्यक्तियों को विशेष लाभ प्रदान करती है। अतः फीस केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा अदा की जाती है जो कि सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं से कोई विशेष लाभ प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई छात्र राजकीय विद्यालय में पढ़कर शिक्षा का लाभ प्राप्त करना चाहता है तो उसे उसके लिए फीस देनी होती है।

### फीस तथा कीमत में अन्तर (Differences between Fees and Price)

फीस तथा कीमत में कई मुख्य अन्तर पाये जाते हैं-

- (1) **कीमत ऐच्छिक, फीस अनिवार्य**-कीमतें तो सदा ही ऐच्छिक अदायगियाँ (voluntary payments) होती हैं, किन्तु फीस अनिवार्य अंशदान भी हो सकती हैं, यद्यपि दोनों का ही भुगतान विशेष सेवाओं के बदले में किया जाता है।
- (2) **आदान-प्रदान का तत्व (quid pro quo)**-आदान-प्रदान का तत्व जो कि कर में पाया जाता है, फीस में भी विद्यमान रहता है किन्तु कीमतों में इस तत्व का अभाव है।
- (3) **व्यावसायिक क्रियाएँ**-फीस व्यावसायिक सेवा के लिए किया जाने वाला भुगतान नहीं है, बल्कि सरकार की प्रशासनिक क्रियाओं के गौण उत्पादन हैं किन्तु कीमतें सरकार द्वारा की जाने वाली व्यावसायिक क्रियाओं के लिए की जाने वाली अदायगियाँ हैं।

### (ख) लाइसेन्स शुल्क (Licence Fees)

लाइसेन्स शुल्क की प्रकृति बहुत कुछ फीस या शुल्क से ही मिलती-जुलती है किन्तु इसमें तथा फीस में कुछ अन्तर भी है। “लाइसेन्स शुल्क उस स्थिति में अदा किया जाता है जबकि सरकारी सत्ता से यह प्रार्थना की जाती है कि वह कोई अधिक स्पष्ट तथा निश्चित किस्म की सेवा प्रदान करने की बजाय एक अनुमति (permission) अथवा विशेषाधिकार (privilege) प्रदान कर दे।” मोटर वाहनों का रजिस्ट्रेशन शुल्क, मोटर चलाने के परमिट की अदायगी और बन्दूक या रिवाल्वर रखने का लाइसेन्स शुल्क ऐसे ही शुल्क के कुछ उदाहरण हैं। इन मामलों में किसी भी व्यक्ति को शुल्क अदा करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता, अपितु जो भी व्यक्ति बन्दूक या मोटर का उपयोग करना चाहता है तो उसके लिए उसे आवश्यक शुल्क का भुगतान करना होता है। शुल्क अदा करने पर शुल्कदाता को जो लाभ प्राप्त होता है वह बन्दूक रखने या मोटर का उपयोग करने को कानूनी व व्यावहारिक सुविधा के रूप में होता है।

**नोट**

ऐसे शुल्क का उद्देश्य कभी-कभी यह भी होता है कि विभिन्न प्रकार की क्रियाओं एवं गतिविधियों का नियमन अथवा नियन्त्रण किया जाये; उदाहरण के लिए, कानून व व्यवस्था की स्थापना करने के उद्देश्य से जिम्मेदार व्यक्तियों के बन्दूकों व रिवाल्वरों के लाइसेन्स दिये जाते हैं। इसी प्रकार, शराब की बिक्री पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए शराब की दुकानें चलाने के लिए लाइसेन्स दिये जाते हैं। जन-सुरक्षा के हित में, मोटर-चलाकों से मोटर चलाने के लिए लाइसेन्स प्राप्त के लिए प्राप्त करने के लिए कहा जाता है और ये लाइसेन्स केवल तभी प्राप्त किये जाते हैं जबकि व्यक्ति किसी वाहन (vehicle) को चलाने की दृष्टि से ठीक (fit) होता है। अतः लाइसेन्स शुल्क में नियमन या नियन्त्रण का जो तत्व पाया जाता है वह इसे शुल्क तथा कर दोनों ही से पृथक् करता है।

**(ग) विशेष कर-निर्धारण (Special Assessments)**

प्रो. सेलिगमैन के शब्दों में, “विशेष कर-निर्धारण या विशेष उगाही (special assessment) उस अनिवार्य अंशदान को कहते हैं जो प्रदान किये जाने वाले विशेष लाभों के अनुपात में वसूल किया जाता है और जिसका उद्देश्य लोकहित की दृष्टि से अधिकार में ली गई सम्पत्ति में विशेष सुधार करने की लागत अदा करना होता है।” जब सरकार सड़क-निर्माण, नालियों की व्यवस्था तथा सड़कों व गलियों में प्रकाश की व्यवस्था जैसे सार्वजनिक सुधार के कुछ कार्य अपने हाथ में लेती है, तो ऐसे सुधारों से सम्पूर्ण जनता को तो सामान्य लाभ पहुँचता ही है, किन्तु उन व्यक्तियों को विशिष्ट लाभ होता है जिनकी दुकान-मकान आदि सम्पत्ति उस सड़क के किनारे होती है। इन सुधारों के परिणामस्वरूप, इन सम्पत्तियों के मूल्यों अथवा किरायों में वृद्धि हो जाती है। अतः हो सकता है कि सरकार इस प्रकार किये गये खर्च का कुछ भाग वसूल करने के लिए उस क्षेत्र के लोगों पर कोई विशेष कर निर्धारित कर दे। ऐसा विशेष कर-निर्धारण, सामान्यतः सम्पत्ति के मूल्य में होने वाली वृद्धि के अनुपात में ही किया जाता है और इस दृष्टि से यह भिन्न होता है।

**विशेषताएँ (Characteristics)**—सैलिगमैन के अनुसार विशेष कर-निर्धारण में निम्नलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं—

- (1) इसमें विशेष उद्देश्य (special purpose) का तत्व पाया जाता है।
- (2) इसमें सरकारी सेवा से मिलने वाले विशिष्ट लाभ को मापा जा सकता है।
- (3) विशेष कर-निर्धारण (special assessment) आरोही (progressive) नहीं होते, बल्कि प्राप्त होने वाले लाभ (benefits) के अनुसार अनुपाती (proportional) होते हैं।
- (4) ये विशिष्ट स्थानीय सुधारों के लिए लगाये जाते हैं।

**निर्धारण की विशेष कर-निर्धारण से तुलना****(Comparison of Special Assessment with a Tax)**

**समानताएँ (Similarities)**—इसमें निम्नलिखित समानताएँ पाई जाती हैं—

- (1) **उद्देश्य (Object)**—दोनों में ही सार्वजनिक उद्देश्य का तत्व (element of public purpose) पाया जाता है, क्योंकि सरकारी आय चाहे कर (Tax) के रूप में प्राप्त हुई हो अथवा विशेष कर-निर्धारण (special assessment) के रूप में, सम्पूर्ण रूप में समाज के और साथ-साथ विशिष्ट व्यक्ति के हित के लिए खर्च की जाती है।
- (2) **अनिवार्य अंशदान (Compulsory Contribution)**—कर की तरह विशेष कर-निर्धारण भी एक अनिवार्य अंशदान है। अतः इन दोनों में ही अनिवार्यता का तत्व भी पाया जाता है।

**असमानताएँ (Dis-similarities)**—कर तथा विशेष कर-निर्धारण के बीच तीन असमानताएँ (Dis-similarities) भी पाई जाती हैं। ये निम्नलिखित हैं—

- (1) **उपयोग की विभिन्नता (Dis-similarities of Assessment)**—करों के रूप में प्राप्त होने वाली आय सरकार के सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति में लगाई जाती है, किन्तु विशेष कर-निर्धारण या विशेष उगाही के रूप में समाप्त होने वाली आय विशिष्ट स्थानीय सुधारों (special local improvement) में लगाई जाती है।

## नोट

- (2) **निर्धारण का आधार (Basis of Assessment)**—कर को लगाने के आधार अनेक हो सकते हैं, जैसे कि आय, व्यय; सम्पत्ति का मूल्य आदि; किन्तु विशेष कर-निर्धारण या विशेष उगाही को लगाने का आधार केवल एक होता है, वह है लाभ (benefit)। अन्य शब्दों में, विशेष कर-निर्धारण प्राप्त होने वाले लाभों के अनुपात में लगाया जाता है।
- (3) **उद्देश्य की भिन्नताएँ (Dis-similarities of Object)**—विशेष कर-निर्धारण अधिकांशतया कुछ पूँजी विकास योजनाओं के लिए धन प्राप्त करने के उद्देश्य से लगाये जाते हैं, किन्तु कर (taxes) पूँजीगत विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए भी लगाये जाते हैं और सरकार के चालू व्यय की पूर्ति के लिए भी।
- (4) **अदायगी की भिन्नताएँ (Dis-similarities of Payment)**—विशेष कर-निर्धारण कीमतों से भी इस दृष्टि से भिन्न हैं क्योंकि कीमतों की अदायगी ऐच्छिक होती है जबकि विशेष कर-निर्धारण की अदायगी अनिवार्य होती है।

**(घ) अर्थदण्ड तथा जुर्माने (Fines and Penalties)**

अर्थदण्ड तथा जुर्माने सरकारी आय के महत्वपूर्ण स्रोत नहीं हैं। अर्थदण्ड (fine) का सम्बन्ध दण्ड (punishment) से होता है और जुर्माना (penalty) कानून के उल्लंघन पर किया जाता है। इन दोनों का ही उद्देश्य किसी अनुचित कार्य के लिए दण्ड देना तथा अपराधों को रोकना होता है।

**(ङ) जमानत या सम्पत्ति आदि जब्त करना (Forfeitures)**

जमानतों (bails) या बाण्डों (bonds) अथवा सम्पत्ति को जब्त करने से आशय उन जुर्मानों से होता है जो कि अदालतों द्वारा लोगों पर इसलिए किये जाते हैं कि वे निश्चित तिथि को अदालत में उपस्थित होने में असफल रहे अथवा उन्होंने पहले किये गये ठेकों अथवा करारों (contracts) को पूरा नहीं किया। स्पष्ट है कि सरकार की आय के इस स्रोत का भी महत्व बहुत ही कम है।

**(च) मृतक की सम्पत्ति पर कब्जा (Escheat)**

सरकार की आय का यह स्रोत ऐसे व्यक्ति की सम्पत्ति पर सरकार के दावे का प्रतीक है जो बिना कानून उत्तराधिकारी नियत किये अथवा अपनी सम्पत्ति को देने के बारे में बिना वसीयत किये ही मर गया हो। इस स्थिति में, उस व्यक्ति की बैंक में जमा धनराशियाँ तथा अन्य सभी सम्पत्तियाँ सरकार के अधिकार में चली जाती हैं। सम्पत्ति पर कब्जे के इस अधिकार (escheat) के अन्तर्गत, सरकार भंग की गई शिक्षा संस्थाओं अथवा अन्य न्यासों (trusts) की बेवारसी सम्पत्ति (unclaimed property) पर भी अपना कब्जा कर सकती है। सरकारी आय का यह भी कोई महत्वपूर्ण स्रोत नहीं है।

**5.2.4 उपहार तथा अनुदान (Gifts and Grants)**

भेंट या उपहार (gifts) वे ऐच्छिक अंशदान हैं जो प्राइवेट व्यक्ति अथवा गैर-सरकारी दाताओं (donors) द्वारा ऐसे विशिष्ट कार्यों के लिए सरकार को दिये जाते हैं जैसे कि युद्धकाल या संकटकाल के समय सहायता-कोष (relief fund) अथवा प्रतिरक्षा कोष (defence fund)। ऐसे अंशदान देशभक्त, दानशील एवं जनसेवी व्यक्तियों द्वारा युद्ध, अकाल तथा ऐसे ही अन्य संकटकालीन अवसरों पर दिये जाते हैं।

आधुनिक राजस्व व्यवस्था में, केवल युद्धकाल या संकटकाल को छोड़कर इन उपहारों को कोई उल्लेखनीय स्थान प्राप्त नहीं है। प्राचीन काल की राजकीय व्यवस्था में अवश्य इनको महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था जबकि राजा, नवाब तथा जागीरदार आदि शासक अपनी प्रजा से 'नजराने' लिया करते थे। आजकल उपहार (gifts) की कुल मात्रा (अनुदानों की नहीं) इतनी थोड़ी होती है कि राजस्व-व्यवस्था में उसका स्थान नाममात्र का ही होता है।

उपहारों तथा अनुदानों के रूप में होने वाली प्राप्तियों की विशेषता यही है कि ये ऐच्छिक प्रकृति की होती हैं और इनको देने वाला व्यक्ति बदले में किसी भी प्रत्यक्ष लाभ की आशा नहीं करता। अनुदानों (grants) की स्थिति में, दाता सरकार (donor government) अन्य किसी स्तर पर सरकारी कार्य को सम्पन्न करने के लिए वित्तीय

**नोट**

सहायता देती है। संघीय शासन वाले देशों में, केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को और राज्य सरकारें स्थानीय सरकारों (local governments) को, साधारणतः इसलिए सहायक अनुदान (grants-in-aid) देती है ताकि उन्हें इस योग्य बनाया जा सके कि वे अपने कार्यों को सफलतापूर्वक कर सकें अथवा एकरूपता (uniformity)। अथवा कार्यकुशलता की दृष्टि से कुछ ऐसे विशिष्ट कार्यों को अपने हाथों में ले सकें जैसे कि राजमार्गों का निर्माण तथा रख-रखाव (maintenance)। अतः ये अनुदान शर्तहीन (unconditional) भी हो सकते हैं अथवा केवल कुछ विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने के लिए भी दिये जा सकते हैं।

कभी-कभी एक देश की सरकार अन्य देश से अनुदान प्राप्त करती हैं जिसे आमतौर पर **विदेशी सहायता** (foreign aid) कहा जाता है। विदेशी सहायता कई मदों (plan heads) के बीच परस्पर सह-सम्बन्ध बना रहे। तथापि, उचित यह होगा कि इस वर्गीकरण को छोड़ा न जाये, अन्यथा संसद के प्रति जबाबदेही तथा समाज के प्रति उत्तरदायिता के जो ठोस लाभ इससे अब प्राप्त होते हैं, वे समाप्त हो जायेंगे। परन्तु सरकार को यह अवश्य करना चाहिये कि बजट को खर्चों की योजना की मदों के अनुसार वितरित करने की एक ऐसी पृथक् व्यवस्था की जाये जिससे कि निष्पत्ति बजट के निर्माण का उद्देश्य पूरा हो सके।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें**

(State whether the following statements are True or False) :

6. कर व्यक्ति द्वारा सरकार को दिये जाने वाले अनिवार्य अंशदान है।
7. कर करदाता पर व्यक्तिगत दायित्व नहीं डालता है।
8. भूमि कर केवल उन्हीं व्यक्तियों द्वारा अदा किया जाता है जिनके पास भूमि होती है।
9. कर के भुगतान में त्याग की भावना निहित नहीं होती है।
10. सरकारी सेवा द्वारा व्यक्तियों को लाभ प्रदान किया जाता है।

**5.3 सारांश (Summary)**

- सरकार की लोकप्रियता एवं सफलता सम्पूर्ण सार्वजनिक आय पर निर्भर करती है। इस प्रकार निजी व्यक्तियों तथा सरकार, दोनों के लिए सार्वजनिक आय के तरीकों तथा उसकी प्रकृति के अध्ययन का व्यावहारिक महत्त्व अधिक हो गया है।
- कर वे अनिवार्य भुगतान (compulsory payments) हैं जो करदाता द्वारा सरकार के प्रति बिना किसी ऐसी आशा से किये जाते हैं कि उसे उनके बदले में कोई प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होगा। बेस्टेबिल के अनुसार, “कर व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के पास विद्यमान धन का वह अनिवार्य अंशदान (compulsory contribution) है जो कि सरकारी कार्यों को सेवा के बदले में दिया जाता है।”
- कर नागरिक द्वारा अथवा निवास तथा सम्पत्ति आदि के कारण से देश की सीमा में रहने वाली प्रजा द्वारा राज्य को दिया जाने वाला अंशदान है और यह अंशदान सामान्य उपयोग (Common use) के लिए ही दिया जाता है। चूँकि यह एक अनिवार्य अंशदान है, अतः कोई भी व्यक्ति कर की अदायगी से इन्कार नहीं कर सकता।
- कर की अदायगी, राज्य द्वारा व्यक्ति के लिए की जाने वाली किसी विशेष सेवा के भुगतान के लिए नहीं की जाती और न कर इसलिए अदा किया जाता है कि करदाता को राज्य द्वारा कोई विशिष्ट लाभ प्रदान किया गया है।
- कर प्रत्येक नागरिक द्वारा सरकार को दी जाने वाली वह कीमत है जो कि वह उन सामान्य सार्वजनिक सेवाओं की लागत के अपने उस हिस्से के बदले में अदा करता है जिसे वह उपयोग करता है।

## नोट

- व्यावसायिक आय वे आमदनियाँ हैं जो कि सरकार को अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं अथवा सेवाओं की कीमतों के रूप में प्राप्त होती हैं।
- कर तो एक अनिवार्य अंशदान है जो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अदा किया जाता है जिस पर कि वह लगाया जाता है किन्तु कीमत उन व्यक्तियों द्वारा अदा की जाती है, जो सरकार द्वारा उत्पादित वस्तुएँ, तथा सेवाएँ खरीदते हैं।
- कर इस बात की कोई गारन्टी नहीं देता कि उस भुगतान के बदले में कोई लाभ (benefit) भी प्राप्त होगा कि नहीं, और यदि होगा तो उसकी मात्रा (amount) तथा प्रकृति (nature) क्या होगी, किन्तु कीमतें वस्तुओं तथा सेवाओं के बदले में की जाने वाली प्रत्यक्ष अदायगियाँ हैं और उन अदायगियों (Payments) की मात्रा खरीदी गई वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा पर निर्भर होती है।
- जिन प्राप्तियों (receipts) को प्रशासनिक आय की श्रेणी में रखा जाता है, वे हैं—शुल्क या फीस, लाइसेंस, जुर्माने, सम्पत्ति जब्त करने और उत्तराधिकारी के अभाव में सम्पत्ति पर अधिकार करने आदि से होने वाली प्राप्तियाँ तथा विशेष कर-निर्धारण (Special assessments)।
- विशेष कर-निर्धारण या विशेष उगाही (special assessment) उस अनिवार्य अंशदान को कहते हैं जो प्रदान किये जाने वाले विशेष लाभों के अनुपात में वसूल किया जाता है और जिसका उद्देश्य लोकहित की दृष्टि से अधिकार में ली गई सम्पत्ति में विशेष सुधार करने की लागत अदा करना होता है।
- उपहारों तथा अनुदानों के रूप में होने वाली प्राप्तियों की विशेषता यही है कि ये ऐच्छिक प्रकृति की होती हैं और इनको देने वाला व्यक्ति बदले में किसी भी प्रत्यक्ष लाभ की आशा नहीं करता।

#### 5.4 शब्दकोश (Keywords)

- भूमि कर (Land tax)—भूमि के लिए दिया जाने वाला कर।
- लागत (Cost)—व्यय।
- कानूनी (Legal)—कानून से संबद्ध।
- बेश (Surplus)—अधिकता।

#### 5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सरकारी प्राप्तियों का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?
2. लोक आगम के विभिन्न स्रोतों का संक्षेप में वर्णन करें।
3. कर की विशेषताओं का उल्लेख करें।
4. प्रशासनिक आय से आप क्या समझते हैं?
5. फीस तथा कीमत में क्या अंतर है?

#### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |              |            |          |                           |
|--------------|------------|----------|---------------------------|
| 1. सार्वजनिक | 2. उत्पादन | 3. उपभोग | 4. अन्य सभी स्रोतों की आय |
| 5. लोक आगम   | 6. सत्य    | 7. असत्य | 8. सत्य                   |
| 9. असत्य     | 10. सत्य।  |          |                           |



नोट

### 5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

## **इकाई-6: कर पद्धति एवं इसके सामान्य मापदंड**

### **(Taxation and Its Canons)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 6.1 कराधान का विकास (The Development of Taxation)
- 6.2 एडम स्मिथ के कराधान सिद्धान्त (Adam Smith's Canons of Taxation)
- 6.3 एडम स्मिथ के सिद्धांत की आलोचना (Criticism of Adam Smith's Canons)
- 6.4 कराधान के अन्य सिद्धांत (Other Principles of Taxation)
- 6.5 सारांश (Summary)
- 6.6 शब्दकोश (Keywords)
- 6.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 6.8 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- कराधान के विकास संबंधी बातों को जानने में।
- कराधान के विभिन्न सिद्धांतों को समझने में।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

वर्तमान समय में सरकार के कार्यों में वृद्धि होने के साथ ही साथ सरकारी खर्च में भी निरन्तर वृद्धि हो रही है। आजकल प्रत्येक सरकार के सामने एक महत्वपूर्ण समस्या यह होती है कि वह अपने खर्चों की वित्तीय व्यवस्था के लिए पर्याप्त मात्रा में आय कैसे प्राप्त करें। सरकार अस्थायी रूप से तो उधार द्वारा भी आय प्राप्त कर सकती है, परन्तु कुछ समय बाद तो उन्हें भी वापिस ही करनी होती है। कुछ सरकारी आय सरकारी उद्यमों, प्रशासनिक एवं न्यायिक कार्यों तथा ऐसे ही अन्य स्रोतों से भी प्राप्त की जाती है, परन्तु सरकारी आय का एक बड़ा भाग कराधान (taxation) से ही प्राप्त होता है।

#### **6.1 कराधान का विकास (The Development of Taxation)**

प्राचीन समुदायों में लोग सरकार की सहायता के लिए अपनी ऐच्छिक सेवाएँ दिया करते थे। किन्तु राज्य के उदय के साथ-साथ ही सरकार के संचालन के लिए कर या उपहार तथा खानों व अन्य उद्यमों की आय प्राप्त की जाने

## नोट

लगी। प्राचीन राज्य सम्पत्ति कर, आय कर, वस्तु कर तथा उत्तराधिकार करों का संग्रह कभी-कभी ही करते थे और वह भी थोड़ी मात्रा में और केवल संकटकालीन आय के रूप में। प्राचीन राज्यों को लघु व्यय के लिए कराधान की किसी विस्तृत पद्धति की आवश्यकता नहीं होती थी।

यदि आधुनिक राज्यों की कर-पद्धतियों के उद्गम का लगाना है तो, जैसे कि प्लेन (Plehn) ने कहा है, वह प्राचीन राजकोषीय व्यवस्था की बजाय सामन्तवादी व्यवस्था (feudal system) में अधिक अच्छी तरह ढूँढ़ा जा सकता है। रोम के पतन के बाद काफी लम्बे समय तक शासक (rulers) अपने खर्चों की पूर्ति अपनी स्वयं की भूमि की आय से तथा अपनी प्रजा के अनिवार्य अंशदानों से किया करते थे उस समय सामन्तवादी बाजारों के शुल्क, सुरक्षा के शुल्क, सड़कों पुछों व घाटों के उपयोग का शुल्क, भूमि के किराये आदि की अदायगियाँ, जो कि वस्तुओं और सेवाओं के रूप में की जाती थीं, धीरे-धीरे मौद्रिक अदायगियों (money payments) में बदल गईं और आगे चलकर जब मौद्रिक अर्थव्यवस्था (money economy) में जन्म लिया तो इन्हीं अदायगियों ने करों (taxes) का रूप धारण कर लिया।

दस्तकारी के युग में जैसे-जैसे नई-नई वस्तुएँ बनने लगीं और नये-नये प्रकार के उद्योग स्थापित होने लगे, वैसे-वैसे ही व्यक्तिगत पदार्थों पर भूमि-कर, उत्पादन-कर, सीमा शुल्क, बाजार कर, पथ कर तथा अन्य कर लगाये जाने लगे। यह बात स्मरणीय है कि प्राचीन देय राशियों का करों के रूप में परिवर्तन एकदम नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से शनै-शनै: हुआ।

सन् 1500 के पश्चात् जब आधुनिक राज्य का उदय हुआ, तो शनै: शनै: कराधान (Taxation) ने अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। सरकारी खर्च की वृद्धि के साथ ही आय के नये-नये स्रोत ढूँढ़ने आवश्यक हो गये और वे ढूँढ़े गये नई-नई सम्पत्तियों पर, नई-नई व्यावसायिक क्रियाओं पर तथा उपभोग की नई-नई वस्तुओं पर कर लगाकर 19वीं और 20वीं शताब्दी में आय कर तथा उत्तराधिकार कर का महत्व बढ़ा। प्रथम विश्वयुद्ध तो अपने साथ मानो भारी खर्चों की बाढ़ ही ले आया जिसकी पूर्ति के लिए भारी कष्टदायी कराधान की व्यवस्था की गई। युद्ध में फंसे राष्ट्रों ने अपने पुराने करों को चरम सीमा तक बढ़ा दिया और नये-नये सामान्य बिक्री कर तथा अनावर्ती पूँजी कर (capital levies) लागू कर दिये। युद्धकाल के बाद का समय तो ऊँचे कराधान दृष्टि से और भी उल्लेखनीय रहा। सन् 1929 के अन्त में आरम्भ होने वाली और लम्बी अवधि तक खिंचने वाली मन्दी (depression) ने कुछ प्रचलित करों की उपयोगिता को समाप्त कर दिया और सामाजिक सहायता पर सरकारी व्यय में होने वाली वृद्धि ने नये-नये करों की माँग उत्पन्न कर दी। पर इसके बावजूद, मन्दी अवधि में कराधान सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए कोई अधिक लाभकारी सिद्ध नहीं हुआ। आजकल तो बदलती हुई आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक दशाओं के कारण पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में राजकोषीय कार्यवाहियाँ ही सहायक होती हैं। अतः इस बात को समझना बहुत आवश्यक है कि एक अच्छी कर पद्धति के निर्धारक तत्व क्या हैं, जिससे कि वह पद्धति विभिन्न परिस्थितियों में अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा कर सके।

अतः इस प्रश्न पर जब सम्पूर्ण रूप में एवं व्यापक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है तो प्रश्न उठता है कि अच्छी कर-पद्धति में कौन-कौन-सी विशेषताएँ होनी चाहिए। सर्वप्रथम तो, उसमें अच्छे करों का समावेश होना चाहिए क्योंकि करों से ही कर-पद्धति का निर्माण होता है। एडम स्मिथ सम्भवतः सबसे पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने कराधान के सिद्धान्तों का अथवा कराधान के नियमों का प्रतिपादन किया। तत्पश्चात् अन्य अर्थशास्त्रियों जिनमें फिण्डले शिराज, बेस्टेबिल प्रमुख हैं, ने करारोपण के अन्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।



नोट्स सन् 1500 के पश्चात् आधुनिक राज्य का उदय हुआ।

## 6.2 एडम स्मिथ के कराधान सिद्धान्त (Adam Smith's Canons of Taxation)

एडम स्मिथ द्वारा प्रस्तुत कराधान के सिद्धान्त या नियम निम्नलिखित हैं—

### 6.2.1 समानता का सिद्धान्त (The Canon of Equality)

समानता या समन्याय का सिद्धान्त (Canon of equality or equity) एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित सबसे पहला सिद्धान्त है। इसके अनुसार, “प्रत्येक राज्य के नागरिकों को यथासम्भव अपनी-अपनी योग्यता के अनुपात में सरकार की सहायता के लिए अंशदान करना चाहिए, अर्थात् उस आय के अनुपात में जिसका आनन्द वे राज्य के संरक्षण में प्राप्त करते हैं...। इस सिद्धान्त का अनुकरण करने से कराधान की समानता प्राप्त की जा सकती है और इसकी उपेक्षा करने से कराधान की असमानता यह सिद्धान्त यह स्पष्ट बताता है कि सरकार को अपने व्यय की पूर्ति के लिए प्रत्येक नागरिक से उसकी योग्यतानुसार कर वसूल करना चाहिए।”



क्या आप जानते हैं समानता के सिद्धान्त को समन्याय का सिद्धान्त भी कहते हैं।

**आलोचना (Criticism)**—इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति राज्य की सुरक्षा में जो आय प्राप्त करता है, उस पर अनुपाती दरों से कर लगाया जाना चाहिए। यद्यपि एक स्थान पर स्मिथ ने यह भी कहा कि धनी लोगों को अपने धन के अनुपात में नहीं बल्कि उससे भी अधिक कर अदा करना चाहिए, जिसका अर्थ है आरोही कराधान (progressive taxation)। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री एडम स्मिथ की इस बात से सहमत नहीं हैं कि अनुपात कर (proportional taxes) समन्यायपूर्ण होते हैं। अतः समानता के सिद्धान्त को लागू करने के लिए उन्होंने आरोही कराधान की वकालत की। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्रियों का एडम स्मिथ के कराधान के साधनों अर्थात् कराधान की दरों के बारे में ही मतभेद है, कराधान के लक्ष्यों के बारे में नहीं।

### 6.2.2 निश्चितता का सिद्धान्त (Canon of Certainty)

एडम स्मिथ का दूसरा सिद्धान्त निश्चितता का सिद्धान्त है। इसके अनुसार, “प्रत्येक व्यक्ति को जो कर देना है, वह निश्चित होना चाहिए, मनमाना नहीं। कर के भुगतान का समय, भुगतान की विधि तथा भुगतान की राशि आदि करदाता तथा प्रत्येक अन्य व्यक्ति को स्पष्ट होनी चाहिए। कर के मामले में, किसी व्यक्ति को जो रकम अदा करनी है उसकी निश्चितता (certainty) इतने महत्त्व की बात है कि समस्त देशों के अनुभव के आधार पर मेरा विचार है कि काफी मात्रा की असमानता भी इतनी भयानक नहीं है जितनी कि बहुत थोड़ी मात्रा की अनिश्चितता।”

**हैडले** ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। उसका कहना है कि इससे व्यक्ति तथा सरकार दोनों को लाभ है क्योंकि व्यक्ति को अनिश्चितता रहती है कि उसे कितना कर और किस समय देना है। इसके विपरीत सरकार को अपने बजट संतुलित करने में सहायता मिलती है।

**आलोचना (Criticism)**—यह कहा जाता है कि कर का भुगतान अनिवार्य होता है अतः वह एक प्रकार से निश्चित-सा ही होता है। इस स्थिति में इस सिद्धान्त का कोई महत्त्व नहीं है। परन्तु यह बात सैद्धान्तिक रूप से ही सत्य हो सकती है। जहाँ तक व्यवहार का प्रश्न है, इस सिद्धान्त की उपयोगिता किसी प्रकार भी कम नहीं होती। उदाहरण के लिए, आयकर का भुगतान, भुगतान की दर तथा भुगतान का समय आदि सभी बातें करदाताओं व कर-अधिकारियों को अच्छी तरह मालूम होती हैं परन्तु फिर भी उनके बीच विवाद उत्पन्न होते हैं और वे अदालतों में जाते हैं। ऐसे अनेक मामले देखने को मिलते हैं जिनमें कर-अधिकारियों द्वारा करदाताओं को परेशान किया जाता है। वास्तव में बात यह है कि कर का निर्धारण करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और निश्चितता के सिद्धान्त का उद्देश्य इन्हीं कठिनाइयों को दूर करना है ताकि सरकार को प्राप्त होने वाली आय निश्चित हो जाए।

## नोट

**6.2.3 सुविधा का सिद्धान्त (Canon of Convenience)**

एडम स्मिथ का तीसरा सिद्धान्त सुविधा का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार, “प्रत्येक कर ऐसे समय तथा ऐसी रीति से वसूल किया जाना चाहिए कि उसको अदा करना करदाता के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक हो।” इसका अर्थ है कि कर ऐसे तरीके से लगाया जाना चाहिए और ऐसे समय लगाया जाना चाहिए जबकि करदाता उसका अत्यन्त सुविधा के साथ भुगतान कर सके। उदाहरण के लिए, भू-राजस्व या मालगुजारी (land revenue) को वसूल करने का सर्वोत्तम समय वह होता है जबकि फसल काटी जाती है। इसी प्रकार, मकानों के किराये पर लगाया जाने वाला कर उस समय वसूल किया जाना चाहिए जबकि करदाता को उसे देने में सबसे अधिक सुविधा हो। परोक्ष कर इतने सुविधाजनक होते हैं कि व्यक्ति कर के भुगतान की तुलना में वस्तुओं की कीमतों के रूप में अधिक सुविधाजनक मानते हैं। उपयोगी वस्तुओं की तुलना में विलासिताओं की वस्तुओं पर लगाये गये कर अधिक सुविधाजनक होते हैं।

**आलोचना (Criticism)**—स्मिथ ने उन करों का भी कारणों सहित उल्लेख किया जिनको कि बड़ी सुविधा के साथ एकत्र किया जा सकता है। यह हैं विलासिता की वस्तुओं पर कर। “उपभोगी वस्तुओं (consumable goods) जैसे कि विलासिता की व एंश की वस्तुओं पर लगाये गये कर बहुत सुविधापूर्ण होते हैं क्योंकि उपभोक्ताओं को जिस रूप में उन्हें देना पड़ता है वह बहुत सुविधाजनक होता है।” इन करों का भुगतान उपभोक्ता के लिए सुविधाजनक होता है क्योंकि वह धीरे-धीरे जब-जब वस्तुएँ खरीदता है तो वैसे-वैसे ही वह थोड़ा-थोड़ा कर अदा करता रहता है और वह जब चाहता है तभी अदा करता है, क्योंकि उन वस्तुओं को सर्वाधिक सुविधाजनक समय पर खरीदना या बिल्कुल न खरीदना उसकी इच्छा पर निर्भर होता है।

**6.2.4 मितव्ययिता का सिद्धान्त (Canon of Economy)**

स्मिथ का चौथा और अन्तिम सिद्धान्त है मितव्ययिता या किफायत का सिद्धान्त। इसके अनुसार, “प्रत्येक कर इस प्रकार लगाया तथा वसूल किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा राज्य के कोष में जितना धन आये, लोगों की जेब से उसके अलावा फालतू धन कम से कम मात्रा में निकले।” इस सिद्धान्त का उद्देश्य है कि कर-वसूली की प्रशासनिक लागत कम से कम रखी जाये, अर्थात् लोगों की जेब से बाहर आने वाले धन तथा राजकोष में जमा किये जाने वाले धन में कम से कम अन्तर हो। एडम स्मिथ ने यह भी कहा कि जनता द्वारा दिये जाने वाले कर का सहकारी कोष से आने वाली रकम में आधिक्य निम्नलिखित चार दशाओं में हो सकता है—

(i) **सर्वप्रथम**, कर लगाने तथा वसूल करने के लिए भारी संख्या में अधिकारियों की जरूरत पड़ सकती है; जिनका वेतन ही इतना होगा कि कर के रूप में प्राप्त धनराशि का काफी बड़ा भाग तो उसमें तो खर्च हो जायेगा और फिर राज्य-कार्य के लिए करदाताओं को पहले से अधिक कर देना पड़ेगा। अतः यह आवश्यक है कि कर वसूल करने की प्रशासनिक लागत कम से कम होनी चाहिए।

(ii) **दूसरे**, कर लोगों के उद्योग व व्यापार में बाधा डाल सकते हैं और लोगों को व्यवसाय की कुछ ऐसी शाखाएँ चालू करने के विषय में हतोत्साहित कर सकते हैं जो बहुसंख्यक लोगों के लिए जीविका तथा निर्वाह का साधन बन सकती थीं।

(iii) **तीसरे**, कुछ दुर्भाग्यशाली व्यक्ति करों से बचने का असफल प्रयास करते हैं और पकड़े जाने पर जब उन पर जुर्माना होता है अथवा उनकी सम्पत्ति आदि जब्त की जाती है तो उससे उनका व्यापार भी चौपट हो जाता है और ऐसा होने से समुदाय को उस व्यवसाय से मिलने वाले लाभ भी समाप्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, एक अविवेकी कर अधिकारी करों की चोरी व तस्करी के लिए स्वयं ही एक बड़ा आकर्षण बना रहता है। अतः कर इतने भारी नहीं होने चाहिए कि उससे करों को छिपाने का प्रलोभन मिले और करदाता पर अनावश्यक अतिरिक्त बोझ पड़े।

(iv) **चौथे**, कर अधिकारियों के बार-बार के दौरों से तथा खातों आदि की अनावश्यक जाँच-पड़ताल से भी करदाताओं पर अनावश्यक परेशानी, घबराहट तथा दबाव पड़ सकता है। अतः कर-पद्धति बहुत सरल होनी चाहिए ताकि वह कर अधिकारियों द्वारा परेशानी तथा उत्तेजना पैदा करने का कारण न बने।



टास्क सुविधा के सिद्धांत को स्पष्ट करें।

नोट

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. प्राचीन समुदायों में लोग सरकार की सहायता के लिए अपनी ..... सेवाएँ दिया करते थे।
2. सन् ..... के पश्चात् आधुनिक राज्य का उदय हुआ।
3. .... संभवतः सबसे पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने कराधान के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।
4. .... ने निश्चितता के सिद्धांत का समर्थन किया।
5. कर वसूल करने की ..... लागत कम से कम होनी चाहिए।

### 6.3 एडम स्मिथ के सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Adam Smith's Canons)

एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्तों के अध्ययन के उपरान्त यह ज्ञात होता है कि समानता के सिद्धान्त को छोड़कर अन्य सभी सिद्धान्त कर-नीति का कोई निश्चित आधार निर्मित नहीं करते। इन्हें सिद्धान्त न कहकर कर-अधिकारियों के प्रशासन सम्बन्धी निर्देश कह सकते हैं।

समानता अथवा न्यायशीलता का सिद्धान्त भी करदेय क्षमता की कोई निश्चित माप नहीं बतलाता।

एडम स्मिथ के सिद्धान्तों के उपर्युक्त दोष होने पर भी अर्थशास्त्रियों ने इन सिद्धान्तों को करारोपण के लिए पर्याप्त महत्वपूर्ण माना है। प्रोफेसर शिराज के मतानुसार, एडम स्मिथ के पश्चात् “कोई भी विद्वान करों के नियमों को इतने सरल तथा स्पष्ट रूप में नहीं रख सका जैसा कि एडम स्मिथ ने।”

प्रो. बी. आर. मिश्रा के शब्दों में—“योग्यता का नियम करारोपण का एक सिद्धान्त है, अन्य तीन करों से सम्बन्धित प्रशासकीय नियम हैं।”

### 6.4 कराधान के अन्य सिद्धान्त (Other Principles of Taxation)

बेस्टेबिल जैसे कई लेखकों ने एडम स्मिथ के अलावा कुछ अन्य सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

#### 6.4.1 उत्पादकता का सिद्धान्त (Canon of Productivity)

बेस्टेबिल (Bastable) ने अपने कराधान के सिद्धान्तों को महत्त्व के क्रम में रखा। इस क्रम में उन्होंने सबसे पहला स्थान उत्पादकता अथवा उत्पादिता के सिद्धान्त को दिया। अन्य शब्दों में, “सर्वप्रथम कराधान को उत्पादक होना चाहिए।” स्पष्ट है कि बेस्टेबिल ने कर की उत्पादकता को सर्वोच्च महत्त्व प्रदान किया। कर की उत्पादकता दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है। **सर्वप्रथम**, कर ऐसी होना चाहिए जो सरकार के संचालन के लिए यथेष्ट मात्रा में धन दे सके। **बेस्टेबिल** के शब्दों में, “राजस्व व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य राज्य के खर्चों के लिए आय प्राप्त करना होता है, अतः वित्त मन्त्री स्वभावतः ही कर द्वारा प्राप्त होने वाली रकम से ही उसके गुणों का अनुमान लगाता है।” **दूसरे**, कर ऐसा होना चाहिए जो अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन, दोनों ही दृष्टिकोणों से न तो उत्पादन को हतोत्साहित करे और न उसमें बाधा डालें।

#### 6.4.2 लोच का सिद्धान्त (Canon of Elasticity)

कर-प्रणाली में लोच का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। बेस्टेबिल ने लोच के सिद्धान्त को काफी महत्त्वपूर्ण बतलाया। उन्होंने कहा कि कर ऐसे होने चाहिए कि सरकार की आवश्यकताओं के अनुसार उनमें घटा-बढ़ी की जा

## नोट

सके। सरकार को अकाल या बाढ़ का सामना करने के लिए तथा युद्ध, विकास कार्यों एवं अन्य सम्भावित कारणों के लिए अधिक धन की आवश्यकता हो सकती है। इस स्थिति में सरकार के साधनों में तेजी से वृद्धि केवल तभी की जा सकती है जबकि उसकी कर पद्धति लोचदार (elastic) हो। उदाहरण के लिए, सम्पत्ति तथा वस्तुओं पर लगाये जाने वाले कर उतने लोचदार नहीं होते, जितना कि आय-कर होता है।

### 6.4.3 विविधता का सिद्धान्त (Canon of Diversity)

एक कर-पद्धति (single tax system) तथा बहु कर-पद्धति (multiple tax system) में तुलनात्मक लाभों के बारे में पहले से ही काफी विवाद बना रहा है। एक-कर लगाने के सम्बन्ध में विचारकों द्वारा समय-समय पर अनेक प्रस्ताव किये जाते रहे हैं। उदाहरण के लिए फिजियोक्रैट्स (physiocrats) ने भूमि के आर्थिक लगान पर ही एक-कर लगाने का सुझाव दिया। इसी प्रकार, केवल आय पर ही एक-कर लगाने के सम्बन्ध में अनेक तर्क दिये जाते हैं। **एक-कर में अनेक कमियाँ पाई जाती हैं**—(i) हो सकता है कि चह पर्याप्त आय न प्रदान करे, (ii) हो सकता है कि इसके द्वारा कराधान के भार का वितरण सन्तोषजनक न हो, (iii) इसको वसूल करना कठिन तथा खर्चीला हो सकता है, (iv) इसमें कर से बचने का प्रलोभन भी काफी हो सकता है।

इसके विपरीत **बहु-विध कराधान (multiple taxation)** में इन सब दोषों के पाये जाने की बहुत कम सम्भावना है। जहाँ तक तर्कों का प्रश्न है, तराजू का पलड़ा एक-कर के विरुद्ध जाता है। इसी कारण कुछ लेखकों ने कराधान की अनेकता या विविधता पर भारी जोर दिया।

करों की अनेकता का अर्थ कि प्रत्यक्ष, तथा परोक्ष अनेक प्रकार के कर होने चाहिए ताकि नागरिकों का प्रत्येक वर्ग राज्य की आय में अपना योगदान कर सके। एक-कर पद्धति की तुलना में सामान्यतः बहु-कर पद्धति को प्रमुखता दी जाती है। परन्तु करों में अत्यधिक विविधता (multiplicity) का होना भी उचित नहीं माना जाता, क्योंकि अत्यधिक विविधता मितव्ययिता तथा उत्पादकता के सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ती है। यदि करों की संख्या बहुत अधिक हुई तो उसका परिणाम यह होगा कि उनमें प्रत्येक कर थोड़ी-थोड़ी ही आय प्रदान करेगा जिससे उनके संग्रह की लागत बढ़ जायेगी।

डाल्टन का सुझाव था कि बहुत अधिक की बजाय थोड़े से ठोस करों पर ही निर्भर रहा जाये। “यह अच्छा होगा कि सरकारी आय के अधिकाँश भाग के लिए थोड़े से करों पर ही निर्भर रहा जाये।” डाल्टन का विचार था कि यदि बहुत अधिक मात्रा में कर लगाये गये तो प्रशासनिक व्यवस्था की कार्यकुशलता नष्ट हो जायेगी। अतः प्रशासन की कार्यकुशलता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि कर सीमित मात्रा में लगाये जाएँ किन्तु प्रो. आर्थर यंग का कहना है कि, “यदि मुझसे एक अच्छी कर-पद्धति की व्याख्या करने को कहा जाये तो मैं कहूँगा कि अच्छी कर-पद्धति वह है जो लोगों की अपरिमित संख्या पर बहुत हल्का दबाव डाले और भारी दबाव किसी पर भी नहीं।” परन्तु यह ध्यान रहे कि ऐसे करों के अवरोही प्रभाव (regressive effects) न पड़ें।

इस प्रकार, उचित यह है कि कराधान के भार को सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर विस्तृत रूप से फैला दिया जाये, ताकि उसके किसी एक भाग को अधिक क्षति न पहुँचे। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एक अच्छी कर-पद्धति बहुविध कराधान (multiple taxation) के सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए, किन्तु ऐसा करने में उत्पादक तथा मितव्ययिता के प्रयासों को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे।



क्या आप जानते हैं? अच्छी कर-पद्धति वह है जो लोगों की अपरिचित संख्या पर बहुत हल्का दबाव डाले और भारी दबाव किसी पर भी नहीं।

### 6.4.4 सरलता का सिद्धान्त (Canon of Simplicity)

कर ऐसा होना चाहिए कि करदाता उसे सरलता से समझ सके। दूसरे शब्दों में, कर की प्रकृति उसका उद्देश्य, भुगतान का समय, कर-निर्धारण का तरीका तथा आधार आदि सभी ऐसे होने चाहिए कि प्रत्येक करदाता उनको आसानी से

## नोट

समझ सके तथा उनका पालन कर सके। स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त करदाता की अनेक कठिनाइयों को दूर करता है परन्तु आधुनिक कर-व्यवस्था में, जिनकी प्रकृति काफी जटिल हो गई है, इस सिद्धान्त का पालन करना कठिन है। तथापि यह कहा जा सकता है कि प्रशासनिक कार्य-कुशलता (administrative efficiency) अच्छी कर-पद्धति का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है और वह कुशलता आसानी से तभी लाई जा सकती है जबकि कर-पद्धति काफी सरल हो। जब कर-पद्धति होगी और उसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी तो करदाता को हिसाब-किताब सम्बन्धी या प्रशासनिक अथवा अन्य किसी प्रकार की कठिनाई का भी सामना नहीं करना पड़ेगा। फलस्वरूप, सरकार के लिए कर-आय की वसूली भी आसान हो जायेगी। अतः कराधान के इस सिद्धान्त को अपनाने से ही कर-पद्धति की कुशलता बढ़ाई जा सकती है।

#### 6.4.5 वांछनीयता का सिद्धान्त (Canon of Expediency)

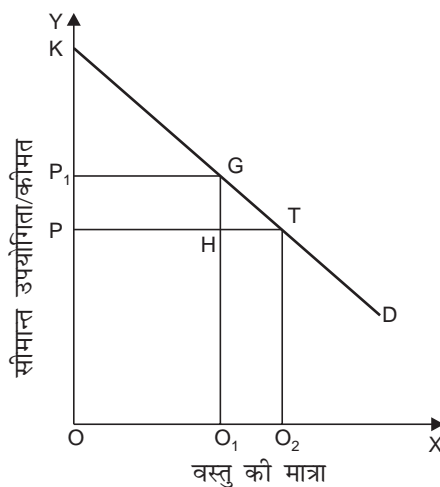
इसका अभिप्राय यह है कि सरकार को केवल वे ही कर लगाने चाहिए जो उचित व वांछनीय हों। इस दृष्टि से सरकार जब भी कोई नया कर लगाये या पुराने करों में वृद्धि करे तो यह देखा जाना चाहिए कि करदाताओं पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि कोई कर वांछनीय भी है और उसमें एक अच्छे कर की अधिकांश विशेषताएँ भी पाई जाती हैं परन्तु सरकार उस कर को लगाना समयानुकूल न माने। उदाहरण के लिए, भारत में एक आरोही कृषि आयकर को अत्यन्त वांछनीय माना जाता है परन्तु इसे आज तक उस रूप में लागू नहीं किया गया जिस रूप में लागू किया जाना चाहिए। अतः लोकतन्त्रीय देशों में, जहाँ कि जनता की इच्छाओं का आदर किया जाता है, इस सिद्धान्त को बड़ा महत्व प्रदान किया जाता है।

#### 6.4.6 समन्वय का सिद्धान्त (Canon of Co-ordination)

लोकतन्त्रीय देशों में केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों द्वारा लगाये जाते हैं। अतः यह वांछनीय है कि विभिन्न सरकारों द्वारा लगाये जाने वाले करों के बीच समन्वय बना रहे। करदाता और सरकार दोनों के ही हितों की दृष्टि से ऐसा होना अत्यन्त आवश्यक है, विशेष रूप से लोकतन्त्रीय देशों में।

#### 6.4.7 उपभोक्ता बचत का सिद्धान्त (Canon of Consumer Surplus)

मार्शल के अनुसार सरकार को कर लगाते समय निम्नलिखित दो तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए—(i) कर उन्हीं वस्तुओं पर लगाया जाना चाहिए जिनसे उपभोक्ताओं को बचत प्राप्त हो रही हो ताकि उन वस्तुओं पर कर लगाने के पश्चात् भी उपभोक्ताओं का आकर्षण बना रहे। (ii) सरकार को उन्हीं वस्तुओं पर कर लगाना चाहिए जिन पर कर के कारण से उपभोक्ता बचत के त्याग से अधिक सरकार को आय प्राप्त हो तभी अधिकतम कल्याण प्राप्त होगा। इस तथ्य को संलग्न चित्र से आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है—





**नोट**

मान लीजिये D सीमान्त उपयोगिता वक्र है। कर लगाने से पूर्व करदाता वस्तु की OP कीमत पर OQ मात्रा प्राप्त करता है। मान लीजिये प्रति इकाई कर लगाया जाता तो कीमत ठीक कर की मात्रा के बराबर अर्थात्  $OQ_1$  हो जाती है तथा मात्रा घटकर  $OQ_1$  हो जाती है। इस स्थिति में कर से प्राप्त आय  $GHPP_1$  है जो कर की मात्रा तथा वस्तु की मात्रा का गुणनफल है। इस स्थिति में उपभोक्ता की आय  $GPPT_1$  है। अतः विशुद्ध हानि GHT है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कर इस प्रकार से लगाये जाने चाहिए जिससे कम से कम उपभोक्ता बचत की हानि हो।



टास्क उपभोक्ता बचत के सिद्धांत को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट करें।

**कर के तीन पहलू (Three Aspects of Tax)**

एडम स्मिथ के सिद्धान्त पर टिप्पणी करते हुए, सर जोशिया स्टाम्प (Sir Josiah Stamp) ने करों का विश्लेषण तीन दृष्टिकोण से किया है—

- (i) कराधान के प्रश्नों पर करदाता के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए ।
- (ii) उन पर सरकार के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए, और
- (iii) उन पर उत्पादक इकाई या आर्थिक समाज के रूप में सम्पूर्ण समुदाय के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए ।

इस सम्बन्ध में प्रो. केनन ने ठीक कहा है कि ये कोई मौलिक सिद्धान्त (fundamental principle) नहीं हैं बल्कि केवल इस बात को कहने का दूसरा तरीका है कि समानता, उत्पादकता तथा मितव्ययिता कराधान के आधारभूत सिद्धान्त हैं।

अनेक आधुनिक लेखकों ने, जिनमें गर्नियर (Garnier), रोस्चर (Roscher) तथा रिक्का सालेरनो (Ricca Salerno) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं, इस बात का प्रयास किया है कि अच्छी कर पद्धति की विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ नियम बनाये जायें। इस सम्बन्ध में प्रो. शिराज का यह कहना ठीक ही है कि “कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति अब तक कराधान के सिद्धान्तों को इनसे स्पष्ट और सरल नियमों के रूप में रखने में उतना सफल नहीं हुआ जितना कि एडम स्मिथ। उसके तीव्र और विशाल मस्तिष्क ने अपने से पूर्व की सभी जाँच एवं खोजों को बिल्कुल ही नया रूप दे दिया और उसके उत्तराधिकारियों ने उस सिद्धान्तों में न तो कोई अधिक सुधार ही किया और न ही उन्होंने, लोक वित्त में उन सिद्धान्तों को जो स्थान प्राप्त था, उससे कोई ऊँचा स्थान दिलाया।”

परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि बाद के लेखकों ने इस दिशा में जो योगदान किया उसका कोई महत्त्व ही नहीं है। बेस्टेबिल तथा अन्य लेखकों ने कराधान के जिस सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है उन्हें भी एक अच्छी कर पद्धति के महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्वों में गिना जाता है।

यह बात जरूर है कि जब कभी यह पाया जाये कि इन सिद्धान्तों में परस्पर टकराव हो रहा है तो उस स्थिति में कम महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त के मुकाबले सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को ही काम में लाया जाये। उदाहरण के लिए, समानता व सुविधा के मुकाबले उत्पादकता का सिद्धान्त अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। इसी प्रकार, अधिक मात्रा की मितव्ययिता को कम मात्रा की समानता के मुकाबले अधिक महत्त्व प्रदान किया जाना चाहिए अथवा अधिक मात्रा की समानता को कम मात्रा की मितव्ययिता के मुकाबले अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। राज्यों के प्रशासन को सफल बनाना कर-पद्धति कर मुख्य उद्देश्य होता है, यदि कम मात्रा की समानता एवं सुविधा को उत्पादकता के लिए छोड़ दिया जाये तो ऐसा करना कोई अयुक्तिसंगत नहीं होगा।

**6.4.8 एक अच्छी कर-प्रणाली की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Tax System)**

एक आदर्श कर प्रणाली वह होती है जो आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के करों का समावेश कर लेती है। एडम स्मिथ से लेकर आधुनिक अर्थशास्त्रियों के करारोपण के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जो विवेचना की गयी है उन सभी तथ्यों से एक अच्छी कर प्रणाली की विशेषताओं का निर्माण होता है। प्रत्येक कर प्रणाली में कुछ गुण एवं कुछ दोष सम्भव

## नोट

होते हैं। इस सम्बन्ध में लुट्स का कहना है, “न तो कोई कर पूर्णतया अच्छा होता है और न ही पूर्णतया खराब होता है।” व्यवहार में कोई प्रणाली दोष मुक्त नहीं हो सकती। प्रसिद्ध दार्शनिक एडमंड बर्क का कहना उचित है, “कर लगाना व लोगों को प्रसन्न रखना उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार प्यार करना और बुद्धिमान बने रहना।” किसी समय विशेष में कोई कर-प्रणाली उचित हो सकती है और समय एवं परिस्थितियों के परिवर्तित होने पर अनुचित हो सकती है।

एक अच्छी कर-प्रणाली की क्या विशेषताएँ हों यह सरकारी व्यय की प्रकृति, सरकारी कार्यों के बारे में जनता की प्रतिक्रियाएँ राजकोषीय नीति, देश की आर्थिक दशा और राजनीतिक उद्देश्य आदि तत्त्वों पर निर्भर करता है। यही नहीं एक अच्छी कर प्रणाली की विशेषताएँ विकसित अर्थव्यवस्था में विकासशील अर्थव्यवस्था की तुलना में यह भिन्न होंगी।

श्रीमती हिक्स के मतानुसार एक अच्छी कर प्रणाली में निम्नलिखित गुण होने चाहिए—

- (i) जनता पर जो करारोपण किया जाता है वह उनके भुगतान करने की योग्यता के अनुसार होना चाहिए। यह योग्यता उनकी आय एवं परिवाकि परिस्थितियों पर निर्भर करती है।
- (ii) कर का उद्देश्य सार्वजनिक सेवाओं को वित्तीय व्यवस्थाओं के लिए निश्चित किया जाना चाहिए।
- (iii) कर-प्रणाली सार्वभौमिकता पर आधारित होनी चाहिए।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि एक अच्छी कर-पद्धति वह है जिसमें कर को शनैः शनैः बढ़ाया जाए, किन्तु युद्ध जैसे संकटकाल के अवसरों पर भारी कर को व्यवहारिक माना जा सकता है। साधारण स्थिति में, भारी कराधान (heavy taxation) को, जो कि लोगों के आर्थिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, वाँछनीय नहीं माना जाता। तथापि, हमारा मत है कि प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही प्रकार के करों का आश्रय लिया जाना चाहिए, परन्तु कर-पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि उसके अवरोही अथवा प्रगति विरोधी प्रभाव न पड़ें।



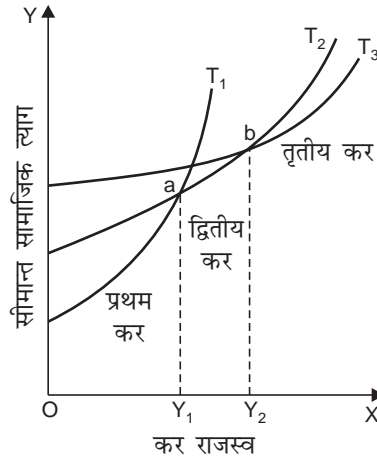
नोट्स एक आदर्श कर प्रणाली वह होती है जो आवश्यकतानुसार सभी प्रकार के करों का समावेश कर लेती है।

एक अच्छी कर-प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए—

### (1) कर सम्पूर्ण कर-पद्धति के ही अंग हैं (Taxes are Parts of the Tax-System)

सरकार के करों को, अच्छा है यह कहा जाये कि राज्य के करों को, एक एकीकृत अथवा संयुक्त कर-पद्धति के अंग के रूप में ही देखा जाना चाहिए, अपेक्षाकृत इसके कि उन्हें अनेक परस्पर असम्बन्धित करों के रूप में ही देखा जाए, प्रत्येक कर पर इस दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए कि कर-व्यवस्था में उसका समुचित स्थान क्या है। इसका निर्णय कर-व्यवस्था के अन्य करों से उसके लाभों व हानियों की तुलना करके लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पृथक् रूप में कोई भी कर अच्छा या बुरा कैसा भी हो सकता है। परन्तु कर-पद्धति के एक अंग के रूप में उसकी स्थिति ठीक इससे उल्टी हो सकती है, क्योंकि कर-पद्धति के एक अंग के रूप में हो सकता है यह अन्य करों के बुरे प्रभावों को दूर कर दे अथवा अन्य करों के कुछ अवाँछनीय परिणामों को और भी बढ़ा दे। कोई कर-पद्धति में आवश्यक सन्तुलन भी स्थापित कर सकता है अथवा यह वर्तमान सन्तुलन को बिगाड़ भी सकता है। विधायकों एवं शासकों के समक्ष यह एक मुख्य समस्या विद्यमान रहती है कि सन्तुलित, एकीकृत तथा समरूप कर-पद्धति का निर्माण कैसे किया जाए और इस समस्या का समाधान केवल तभी हो सकता है जबकि कर-व्यवस्था के सम्पूर्ण ढांचे में विभिन्न करों का ताना-बाना ऐसे बुना जाए कि उससे कर-पद्धति में बहुरूपता (symmetry) आये और उसका विरोध कम से कम हो।

## नोट



किसी एकपक्षीय करारोपण की तुलना में सरकार को करों से एक पूर्ण मिले-जुले रूप से अधिक आय प्राप्त होती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सरकार को अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए कर-पद्धति के आधार को अधिक व्यापक रूप प्रदान करना चाहिए। इस तथ्य को संलग्न रेखाचित्र की सहायता से आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है। संलग्न चित्र में X-अक्ष पर कर राजस्व तथा Y-अक्ष पर सीमान्त सामाजिक त्याग दर्शाया गया है। यहाँ यह दर्शाया गया है कि प्रथम कर में सीमान्त सामाजिक त्याग, द्वितीय एवं तृतीय कर से कम है। सरकार सबसे पहले राजस्व प्राप्त करने के लिए प्रथम कर का सहारा लेगी। राजस्व प्राप्त कराने के लिए कर की मात्रा में वृद्धि करेगी किन्तु  $a$  बिन्दु के पश्चात् प्रथम कर का सीमान्त सामाजिक त्याग द्वितीय कर से अधिक हो जायेगा। इस स्थिति में सरकार अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए द्वितीय कर की सहारा लेगी। अधिक राजस्व प्राप्त कराने के लिए द्वितीय कर की मात्रा में वृद्धि की जायेगी किन्तु  $b$  बिन्दु के पश्चात् द्वितीय कर का सीमान्त सामाजिक त्याग तृतीय कर से अधिक होगा। ऐसी स्थिति में सरकार अधिक राजस्व प्राप्त करने के लिए तृतीय कर लगायेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकार को अधिक राजस्व प्राप्त कराने के लिए कर का व्यापक क्षेत्र ढूँढ़ना होगा।

आरोही आय-कर तथा उत्तराधिकार करों का उपयोग उच्च आय वाले वर्गों पर तथा उसके द्वारा प्रयुक्त वस्तुओं पर भारी बोझ डालने के लिए किया जा सकता है। ऐसे भी कर लगाये जा सकते हैं जो कि निम्न आय वाले वर्गों तक पहुँच सकें। कर कोई से भी लगाये जाएँ, परन्तु उनका चुनाव तक सुनियोजित सामाजिक नीति के अनुसार किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक बड़ी समस्या सदा यह बनी रही है कि कुल कर प्राप्तियों में सम्पत्ति-कर, वस्तु-कर, आय-कर तथा अन्य करों के अनुपात का पता कैसे लगाया जाए? अतः कर-पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो इन सभी समस्याओं का उपयुक्त समाधान प्रस्तुत कर सके।

### (2) अधिकतम सामाजिक लाभ (Maximum Social Benefit)

कराधान को सरकारी आय प्राप्त करने का ही साधन नहीं मान लेना चाहिए बल्कि कुछ ऐसे सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति का भी साधन माना जाना चाहिए जैसे कि धन का पुनर्वितरण कराना तथा आय की असमानताओं को कम करना। सरकारी सेवाओं की वित्तीय व्यवस्था करने के लिए भी कराधान का उपयोग किया जा सकता है। इसका उपयोग उपभोग को नियन्त्रित एवं नियमित करने के लिए भी किया जा सकता है; उदाहरण के लिए, भारी उत्पादन शुल्क लगाकर शराब तथा अन्य नशीले पदार्थों के उपभोग को सीमित करना। ऐसे उपायों से देश के सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है। इस प्रकार, अच्छी कर-पद्धति वह है जो देश को अधिकतम सामाजिक लाभ प्रदान करने के विषय में आश्वस्त करे तथा उसे केवल सरकारी आय प्राप्त करने का ही साधन न मान लिया जाए।

### (3) करों के भार का न्यायपूर्ण वितरण (Just Distribution of Tax Burden)

अच्छी कर-पद्धति वह है जो कि करों के भार के न्यायपूर्ण वितरण के विषय में आश्वस्त करे। करों के भार के न्यायपूर्ण वितरण के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त मुख्यतः प्रचलित हैं—

- (1) लागत सिद्धान्त (Cost Theory)—कराधान का माप सरकार द्वारा प्रत्येक करदाता को प्रदान की जाने वाली सेवा की लागत द्वारा किया जाना चाहिए,

## नोट

- (2) **लाभ सिद्धान्त (Benefit Theory)**—कराधान का माप प्रत्येक करदाता को ऐसी सेवा से प्राप्त होने वाले लाभ के आधार पर किया जाना चाहिए, और
- (3) **सामर्थ्य सिद्धान्त (Ability to pay Theory)**—करों का निर्धारण प्रत्येक व्यक्ति की कर देने की सामर्थ्य के अनुसार किया जाना चाहिए।

**लागत सिद्धान्त** उन सेवाओं पर लागू नहीं किया जा सकता जिनका भुगतान कीमतों के रूप में नहीं, बल्कि अन्य प्रकार से किया जाता है। (जैसे कि पीछे करों की कीमतों तथा शुल्कों की परिभाषाओं में बताया गया है) करों की स्थिति में लागत का पता नहीं लगाया जा सकता। कर एक अनिवार्य अंशदान है जो कि सभी नागरिकों से लिया जाता है और इनमें यह नहीं देखा जाता कि सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा का विभिन्न व्यक्तियों ने कितना-कितना उपयोग किया है। इस प्रकार लागत सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप में लागू नहीं किया जा सकता। चूँकि विभिन्न करदाताओं को प्रदान की जाने वाली सेवाओं की लागत का पता नहीं लगाया जा सकता, अतः वृद्धावस्था पेन्शन जैसे कुछ-एक मामलों को छोड़कर, सेवा से प्राप्त होने वाले लाभ का भी पता नहीं लगाया जा सकता। सेवा से प्राप्त होने वाले लाभ के सिद्धान्त के अनुसार तो पेन्शन पाने वाले व्यक्ति को अपनी सम्पूर्ण पेन्शन ही करों के रूप में सरकार को लौटानी होगी। यदि इस सिद्धान्त के कुछ अपवाद (exceptions) रखे जाते हैं, तो यह स्पष्ट नहीं है कि वे किस नियम के आधार पर तथा किस समय तक रखे जाने हैं। अन्त में शेष बचता है कर अदा करने की योग्यता का सिद्धान्त या **सामर्थ्य सिद्धान्त**, जिसके सम्बन्ध में भी यद्यपि यह कठिनाई सामने आती है कि प्रत्येक करदाता की कर अदा करने की सामर्थ्य का अनुमान कैसे लगाया जाए, किन्तु फिर भी इस सिद्धान्त को अन्य सभी के मुकाबले श्रेष्ठ माना जाता है। वास्तव में, अच्छी कर-पद्धति वह है जो न्यूनतम कुल त्याग के विषय में आश्वस्त करे और जो समाज के निर्धन वर्ग के मुकाबले धनी वर्गों पर अधिक बोझ डाले। अतः एक अच्छी कर-पद्धति आरोहण (Progression) के सिद्धान्त पर आधारित होती है।

#### (4) करों का सार्वलौकिक रूप से लागू होना (Universal Application of Taxes)

यह ठीक ही है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही कर अदा करना चाहिए और जिन लोगों की कर देने की सामर्थ्य एक समान हो उन पर करों का बोझ भी एक-सा ही पड़ना चाहिए। किन्तु भारतीय कर-पद्धति में कुछ सीमा तक यह गुण नहीं पाया जाता। उदाहरण के लिए, भारत में आय-कर व्यापक तथा एक समान रूप में नहीं लगाया जाता क्योंकि कृषि से प्राप्त होने वाली आय पर उस सीमा तक कर नहीं लगाया जाता जितना कि गैर-कृषि क्षेत्रों की आय पर लगाया जाता है। इससे उन लोगों के मन में असन्तोष उत्पन्न होता है जो कि गैर-कृषि क्षेत्रों में लगे हैं। उससे अर्थव्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न होने का भी भय रहता है। अतः अच्छी कर-पद्धति तो वही है जो बिना किसी भेद-भाव के समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर करों को व्यापक एवं एक समान रूप से लागू करे।

#### (5) राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ ही सरकारी आय भी बढ़नी चाहिए

##### (Revenues should Increase with the Increase in National Income)

कर-पद्धति का ढाँचा ऐसा होना चाहिए कि राष्ट्रीय आय में जैसे-जैसे वृद्धि हो, वैसे-वैसे ही उसका अधिकाधिक अनुपात स्वयमेव सरकारी खजाने में आता रहे और उसका लेने के लिए सरकार को कोई अतिरिक्त कर न लगाना पड़े। इस दृष्टि से तो, कृषि आय पर अथवा भूमि के पूँजीगत मूल्य पर लगाये जाने वाले कर के मुकाबले, प्रति एकड़ भू-राजस्व (land revenue) की मात्रा, जो कि 10 वर्ष पूर्व निश्चित की गई थी, कम लाभप्रद है।

इसी प्रकार, प्रत्येक दुकानदार पर लगाया गया स्थिर कर (fixed tax) कम लाभदायक होता है अपेक्षाकृत उस कर के जो कि उनकी निबल आय (net income) अथवा कुल बिक्रियों पर लगाया जाता है। इस प्रकार अच्छी कर-पद्धति वह है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, पैदावार तथा उपभोग में वृद्धि होने के साथ ही साथ राज्य की आय में स्वयमेव वृद्धि होती रहे।

## नोट

**(6) प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों में समन्वय (Coordination between Direct and Indirect Taxes)**

अच्छी कर-पद्धति की रचना एक ही किस्म के करों को मिलाकर नहीं की जानी चाहिए, अपितु उसके अन्तर्गत सभी प्रकार के कर सन्तुलित एवं समन्वित (co-ordinated) तरीके से लगाये जाने चाहिए। प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों कर-पद्धति में समुचित स्थान मिलना चाहिए ताकि वांछित मात्रा में आय का प्रतिफल प्राप्त हो सके और उत्पादन तथा उपभोग पर कोई प्रतिकूल प्रभाव भी न पड़े अनेक ऐसे लाभ हैं जो प्रत्यक्ष करों (direct taxes) में पाये जाते हैं, परोक्ष करों (indirect taxes) में नहीं। परन्तु प्रत्यक्ष करों में कमी यह है कि वे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था (entire economy) पर कर-भार डालने में समर्थ होते। अतः एक आधुनिक सरकार के बढ़ते हुए खर्चों को पूरा करने के लिए वे यथेष्ट मात्रा में आय नहीं दे पाते। फिर, एक बात यह है कि परोक्ष कर का भुगतान करदाता के लिए सुविधाजनक होता है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि अर्थव्यवस्था पर अर्थात् उत्पादन व वितरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अधिकतम सरकारी आय प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही प्रकार के कर लगाये जाने चाहिए।

इसी प्रकार, अच्छी कर-पद्धति को केवल आरोही (progressive) अथवा केवल अनुपाती (proportional) करों पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए। इन दोनों ही प्रकार के करों के अपने गुण तथा दोष हैं। अतः किसी भी अच्छी कर-पद्धति के लिए यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था तथा सम्पूर्ण समुदाय के हित में इन दोनों ही प्रकार के करों का लाभ उठाया जाए।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अच्छी कर-पद्धति में किसी एक विशेष किस्म के करों पर ही अनावश्यक जोर नहीं दिया जाता बल्कि एक सन्तुलित रीति से एवं ताल-मेल के सभी कर इस प्रकार लगाये जाते हैं ताकि सम्पूर्ण समाज से ही आय प्राप्त हो सके और उपभोग, उत्पादन तथा सम्पूर्ण देश के आर्थिक विकास पर उनका कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

**(7) कर ढाँचे में अनुकूलता**

कर ढाँचा इस प्रकार का होना चाहिए ताकि परिस्थितियों एवं आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके। आर्थिक उच्चावचन पर नियन्त्रण, पूर्ण रोजगार की स्थापना, दीर्घकालीन गतिहीनता की प्रवृत्तियों का देखना, संकटकाल में मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण आदि महत्त्वपूर्ण लक्ष्यों को सरकार अपने कर ढाँचे द्वारा प्राप्त कर सकती है।

**(8) करदाताओं के अधिकार एवं उनकी समस्या पर ध्यान**

एक अच्छी कर प्रणाली का निर्माण करदाताओं के अधिकार एवं उनकी समस्याओं को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य महत्त्वपूर्ण हैं—

- (i) कर से सम्बन्धित कर कानून अधिक स्पष्ट एवं सरल होने चाहिए ताकि एक सामान्य व्यक्ति भी इन्हें आसानी से समझ सके।
- (ii) करों का भुगतान एवं वसूली के सम्बन्ध में सरकारी कम से कम होना चाहिए। कर नीति एवं कर वसूल करने का ऐसा समय होना चाहिए जो करदाताओं के लिए सुविधाजनक हो।
- (iii) करदाताओं की शिकायतों एवं कठिनाइयों को अति शीघ्रता से उचित कार्यवाही करके समाधान करना चाहिए। इस सम्बन्ध में कुशल प्रशासन अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। शिथिल प्रशासन एवं अलोकप्रिय राजस्व नीतियों से कर देय क्षमता में हास होता है।

**(9) उत्पादन पर प्रभाव (Effects on Production)**

एक अच्छी कर-पद्धति अर्थव्यवस्था के तीव्र गति से आर्थिक विकास के प्रति आश्वस्त कराती है। वह व्यापार तथा उद्योग के विकास में बाधक नहीं बनती अच्छी कर-पद्धति का ढाँचा इस प्रकार बनाया जाना चाहिए जिससे कि वह अतिरिक्त या फालतू साधनों को अर्थव्यवस्था से अलग कर दे तथा लोगों की काम करने, बचत करने व निवेश करने की योग्यता पर इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। कर-पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो सदा उत्पादन-वृद्धि को प्रोत्साहन दे अर्थात् वह लोगों को काम करने, बचत करने तथा निवेश (invest) करने के लिए

प्रोत्साहित करे। इस बात को डाल्टन ने बड़े ही नपे-तुले शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है कि, “आर्थिक दृष्टिकोण से कराधान की सर्वोत्तम पद्धति वह है जो कि सबसे अच्छे अथवा सबसे कम बुरे आर्थिक प्रभाव डालती है।”

#### ( 10 ) वितरण का प्रभाव (Effects on Distribution)

कराधान का पुराना उद्देश्य तो केवल आय प्राप्त करना मात्र ही रहता था। प्राचीन समय में, चूँकि राज्य को थोड़े ही कार्य सम्पन्न करने होते थे, अतः कराधान को राज्य के लिए धन प्राप्ति का एक साधन मात्र समझा जाता था, परन्तु ‘केवल आय के लिए कराधान’ इस विचार को अब ऐसा मध्यकालीन नारा समझा जाता है जो कि वर्तमान दशाओं में कतई भी लागू नहीं होता। कहा जाता है कि वर्तमान समय में कराधान का उपयोग कुछ सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के एक अस्त्र के रूप में किया जा सकता है, जैसे कि आय की असमानताओं को दूर करना, साधनों को उत्पादक उपयोगों की ओर को मोड़ना तथा समुदाय के सामाजिक कल्याण में वृद्धि करना। जो कर, आय को व्यक्तियों के पास से सरकार की ओर को स्थानान्तरित कर देते हैं उनसे हो सकता है कि गैर-सरकारी उपभोग तथा निवेश (investment) का स्वरूप ही बदल जाए और यह स्थिति राष्ट्रीय आय का स्तर ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अच्छी कर-पद्धति वह है जो राष्ट्रीय आय की वृद्धि तथा आमदनियों के समान एवं न्यायपूर्ण वितरण के विषय में आश्वस्त करे।

#### ( 11 ) सरकारी आय की मात्रा तथा कल्याण (Size of Revenue and Welfare)

प्राचीन अथवा संस्थापक अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) का विश्वास था कि सरकारी आय का अन्तिम निर्धारक तत्त्व देश के व्यक्तियों के पास विद्यमान धन (Wealth) ही है और सरकारी आय की प्राप्ति केवल उस धन पर कर लगाकर ही की जा जाती है। इस प्रकार, वे वाणिज्यिक आय जैसे अन्य स्रोतों का पता लगाने में असफल रहे।

उसका यह भी विचार था कि गैर-सरकारी क्षेत्र की ओर को साधनों के स्थानान्तरण से लाभ के स्थान पर हानियाँ ही अधिक होती हैं। यह सिद्धान्त कि सरकार, जो सबसे कम कर लगाती है सबसे कम खर्च करती है, वर्तमान समय के लिए उपयुक्त नहीं है। वर्तमान समय में तो सामाजिक न्याय प्रदान करने तथा आर्थिक समानता लाने के लिए भी सरकार को धन की आवश्यकता होती है और कराधान आय की असमानताएँ दूर करने, सामाजिक न्याय लाने का महत्वपूर्ण साधन है।

यहाँ यह बात भी ध्यान रखने की है कि सरकारी आय की मात्रा से आशय, और कुछ नहीं, केवल साधनों की उपलब्धता (availability of resources) से ही है। किसी भी देश का आर्थिक कल्याण इस बात पर निर्भर होता है कि ये उपलब्ध साधन कैसे प्राप्त किये जाते हैं तथा उनका उपयोग किया जाता है। यह हो सकता है कि किसी देश में सरकारी आय बड़ी मात्रा में होने पर आर्थिक कल्याण की मात्रा बहुत थोड़ी हो और ऐसा तब हो सकता है जबकि बड़ी आय प्रदान करने वाला कराधान उत्पादन तथा वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हो। इसके विपरीत, यदि किसी देश का कराधान उत्पादन तथा न्यायपूर्ण वितरण को प्रोत्साहित करता है तो वहाँ सरकारी आय की मात्रा कम होने पर भी आर्थिक कल्याण अधिक मात्रा में देखा जा सकता है। अतः सरकारी आय की बड़ी मात्रा केवल तभी उल्लेखनीय अनुकूल प्रभाव डाल सकती है जबकि उसे बुद्धिमत्तापूर्ण विभिन्न मदों पर खर्च कर दिया जाए। इस प्रकार, सरकारी खर्च भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितनी कि सरकारी आय।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अच्छी कर-पद्धति वह है जो न केवल राज्य को पर्याप्त आय प्रदान करे, अपितु आय तथा धन के वितरण में पाई जाने वाली असमानताओं को दूर करके देश के आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि करें ।

#### 6.4.9 विकासशील अर्थव्यवस्था में कर-प्रणाली (Tax Structure in a Developing Economy)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में कर-प्रणाली का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिए कि वह अर्थव्यवस्था की आधारभूत आवश्यकताओं एवं उद्देश्य की पूर्ति कर सके। एक भारत जैसी विकसित अर्थव्यवस्था की आधारभूत समस्या ‘आर्थिक स्थिरता’ को बनाये रखने की होती है ताकि वहाँ पूर्ण रोजगार की स्थिति बती रहे। इसलिए विकसित

**नोट**

अर्थव्यवस्था में कर-प्रणाली का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिए जिससे कि वहाँ आर्थिक स्थिरता एवं पूर्ण रोजगार को बनाये रखने में सहयोग मिल सके। किन्तु विकसित अर्थव्यवस्था की कर-प्रणाली विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए उपयुक्त नहीं मानी जाती है। क्योंकि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य समस्या आर्थिक विकास की गति को तेज करने की होती है। ऐसी स्थिति में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में कर-प्रणाली का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करके आर्थिक प्रगति की दर को बढ़ाया जा सके, मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण किया जा सके तथा धन और आय के वितरण में असमानताओं में कमी की जा सके। इस प्रकार स्पष्ट है कि विकासशील देशों की कर-प्रणाली विकसित देशों की कर-प्रणाली से भिन्नता लिए होती है।

विकासशील देशों की कर-प्रणाली के सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. किन्डले बर्जर (Kindley Berger) का कहना है कि इन देशों में कर-नीति के दो मुख्य उद्देश्य होने चाहिए—

- (i) अनावश्यक उपभोग वृद्धि तथा सट्टा आदि पर नियन्त्रण तथा
- (ii) पूँजी निर्माण में वृद्धि करना।

प्रो. मायर एवं बाल्डविन (Meier and Baldwin) के अनुसार विकासशील देशों की नीति तभी प्रभावशील होगी जबकि उससे—

- (i) लोगों की करदान क्षमता बढ़ाई जा सके।
- (ii) प्रशासन को कुशल एवं ईमानदार बनाया जा सके, तथा
- (iii) न्याय एवं समानता स्थापित की जा सके।

किन्तु इन देशों में सुदृढ़ कर-व्यवस्था का निर्माण करते समय निम्न बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए—

(1) **पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करना (Increase in the rate of Capital Formation)**—विकासशील देशों में पूँजी निर्माण की दर बहुत नीची होती है। इसलिए इन देशों में करारोपण का मुख्य उद्देश्य उन समस्याओं का हल करना होना चाहिए। कर नीति द्वारा वर्तमान उपभोग में कटौती करके बचतों में वृद्धि की जा सकती है। इसके अतिरिक्त करारोपण द्वारा साधनों का विभिन्न उत्पादक एवं अनुत्पादक क्षेत्रों में पुनर्वितरण करके पूँजी निर्माण की दर में बढ़ोतरी की जा सकती है।

(2) **आर्थिक विकास को गति देना (To Accelerate the Economic Development)**—विकासशील देशों में मुख्य समस्या आर्थिक विकास की गति में वृद्धि करने की होती है। ऐसी स्थिति में कर नीति ऐसी निर्धारित करनी चाहिए ताकि देश के उत्पादन में अधिक से अधिक वृद्धि की जा सके। इसके लिए करारोपण से लोगों के काम करने की क्षमता एवं इच्छा, बचत एवं विनियोग की क्षमता व इच्छा को बढ़ाना आवश्यक है। उत्पादन वृद्धि के लिए करारोपण की सहायता से साधनों की भी विभिन्न क्षेत्रों में पुनर्वितरित किया जा सकता है।

(3) **आर्थिक अतिरेक को गतिशील करना (To Mobilize the Economic Surplus)**—इन देशों में काफी आर्थिक अतिरेक उपभोग जैसे अनुत्पादक कार्यों पर व्यय कर दिया जाता है जिससे पूँजी निर्माण को हानि पहुँचती है। अधिकांश आर्थिक अतिरेक उपभोग पर व्यय कर दिया जाता है। अतः इन देशों में कर-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो साधनों को निजी उपभोग से हटाकर पूँजी निर्माण की ओर प्रेरित कर सके और पूँजी निर्माण के आधार में निरन्तर वृद्धि कर सके।

(4) **आर्थिक विषमताओं को कम करना (To Minimize the Economic Disequalities)**—विकासशील देशों में आर्थिक विषमताएँ अधिक पाई जाती हैं। सरकार को चाहिए कि वह इस प्रकार की कर-नीति का निर्माण करे जिससे देश में आर्थिक विषमताएँ कम से कम की जा सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति करारोपण द्वारा की जा सकती है। आय एवं धन में समानता लाने के लिए प्रगतिशील कर नीति अपनायी जा सकती है अर्थात् धनी वर्ग पर अधिक दर से कर लगाया जाए तथा निम्न वर्ग पर बहुत कम अन्यथा उन्हें छूट दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त धनी वर्ग से करों द्वारा प्राप्त धन को सामाजिक लाभ की सेवाओं में व्यय करना चाहिए।

## नोट

(5) **मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण (Control on Inflation)**—करारोपण मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करने का अचूक अस्त्र माना जाता है। विकासशील देशों में व्यय तथा हीनार्थ प्रबन्धन के कारण मुद्रास्फीति की गम्भीर स्थिति पाई जाती है। इस प्रकार की स्थिति में एक ओर विनियोग और आय में वृद्धि होती है किन्तु दूसरी ओर उत्पादन में उस अनुपात में वृद्धि नहीं हो पाती है जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं की माँग तथा मूल्य दोनों में वृद्धि हो जाती है और मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसको नियन्त्रित करने के लिए इन देशों में करारोपण का सहारा लिया जाता है। कर-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जो लोगों की अतिरिक्त क्रय शक्ति को कम कर सके और ऐच्छिक बचत को बढ़ावा दे सके।

(6) **योग्यतानुसार अंशदान (Contribution according to Ability)**—कर-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि सभी लोग सरकार को कुछ न कुछ अंशदान अवश्य दें और करारोपण कर सामर्थ्य के अनुसार वसूल किया जाए। ऐसा करने से दो लाभ होंगे—प्रथम, सरकार को अधिक मात्रा में राजस्व प्राप्त हो सकेगा तथा दूसरे कर-भाग का वितरण न्यायपूर्ण हो सकेगा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कर-प्रणाली ऐसी अपनायी जानी चाहिए जिसके अन्तर्गत सभी व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार कर चुका सकें।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

6. करारोपण सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया?
 

(अ) एडम स्मिथ	(ब) हैडले
(स) अरस्तु	(द) बेस्टेबिल।
7. सर्वप्रथम कराधान को क्या होना चाहिए?
 

(अ) अनुत्पादक	(ब) उत्पादक
(स) उपभोग	(द) सभी।
8. जो आवश्यकता अनुसार सभी प्रकार के करों का समावेश कर लेती है उसे क्या कहते हैं?
 

(अ) दोषपूर्ण कर प्रणाली	(ब) समता कर प्रणाली।
(स) आदर्श कर प्रणाली	(द) विकृत कर प्रणाली।

### 6.5 सारांश (Summary)

- सन् 1500 के पश्चात् जब आधुनिक राज्य का उदय हुआ, तो शनैः शनैः कराधान (Taxation) ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। सरकारी खर्च की वृद्धि के साथ ही आय के नये-नये स्रोत ढूँढ़ने आवश्यक हो गये और वे ढूँढ़े गये नई-नई सम्पत्तियों पर, नई-नई व्यावसायिक क्रियाओं पर तथा उपभोग की नई-नई वस्तुओं पर कर लगाकर 19वीं और 20वीं शताब्दी में आय कर तथा उत्तराधिकार कर का महत्त्व बढ़ा।
- सन् 1929 के अन्त में आरम्भ होने वाली और लम्बी अवधि तक खिंचने वाली मन्दी (depression) ने कुछ प्रचलित करों की उपयोगिता को समाप्त कर दिया और सामाजिक सहायता पर सरकारी व्यय में होने वाली वृद्धि ने नये-नये करों की माँग उत्पन्न कर दी।
- प्रत्येक राज्य के नागरिकों को यथासम्भव अपनी-अपनी योग्यता के अनुपात में सरकार की सहायता के लिए अंशदान करना चाहिए, अर्थात् उस आय के अनुपात में जिसका आनन्द वे राज्य के संरक्षण में प्राप्त करते हैं...। इस सिद्धान्त का अनुकरण करने से कराधान की समानता प्राप्त की जा सकती है और इसकी उपेक्षा करने से कराधान की असमानता यह सिद्धान्त यह स्पष्ट बताता है कि सरकार को अपने व्यय की पूर्ति के लिए प्रत्येक नागरिक से उसकी योग्यतानुसार कर वसूल करना चाहिए।



## नोट

- प्रत्येक कर ऐसे समय तथा ऐसी रीति से वसूल किया जाना चाहिए कि उसको अदा करना करदाता के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक हो।
- प्रत्येक कर इस प्रकार लगाया तथा वसूल किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा राज्य के कोष में जितना धन आये, लोगों की जेब से उसके अलावा फालतू धन कम से कम मात्रा में निकले।
- सर्वप्रथम कराधान को उत्पादक होना चाहिए।
- राजस्व व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य राज्य के खर्चों के लिए आय प्राप्त करना होता है, अतः वित्त मन्त्री स्वभावतः ही कर द्वारा प्राप्त होने वाली रकम से ही उसके गुणों का अनुमान लगाता है।
- यदि मुझसे एक अच्छी कर-पद्धति की व्याख्या करने को कहा जाये तो मैं कहूँगा कि अच्छी कर-पद्धति वह है जो लोगों की अपरिमित संख्या पर बहुत हल्का दबाव डाले और भारी दबाव किसी पर भी नहीं।
- न तो कोई कर पूर्णतया अच्छा होता है और न ही पूर्णतया खराब होता है।

## 6.6 शब्दकोश (Keywords)

- करारोपण (Taxation)–कर लगाना।
- आय-कर (Income Tax)–आय पर लगने वाला कर।

## 6.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कराधान के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. निश्चितता के सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें।
3. लोचदार सिद्धांत क्या है?
4. कर के कितने पहलू हैं? लिखें।
5. “राष्ट्रीय आय की वृद्धि के साथ ही सरकारी आय भी बढ़नी चाहिए”। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

## उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |              |         |              |          |
|--------------|---------|--------------|----------|
| 1. ऐच्छिक    | 2. 1500 | 3. एडम स्मिथ | 4. हैडले |
| 5. प्रशासनिक | 6. (अ)  | 7. (ब)       | 8. (स)।  |

## 6.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।

नोट

## **इकाई-7: कार्य-साधक सिद्धांत**

### **(Expediency Theory)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 सिद्धांत का मूल्यांकन (Evaluation of Theory)

7.2 सारांश (Summary)

7.3 शब्दकोश (Keywords)

7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

7.5 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- कार्य-साधक सिद्धांत से संबंधित मूल्यांकन प्रक्रिया को समझने में।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

इस सिद्धांत में इस बात को महत्व दिया गया है कि केवल उन्हीं करों को लगाने का औचित्य बनता है जिन्हें वसूल भी किया जा सकता हो तथा जिनसे राजस्व की प्राप्ति भी हो सके। किसी ऐसे कर को लगाना जिसे वसूल न किया जा सके, एक अर्थहीन प्रयत्न के सिवा कुछ नहीं कहा जा सकता। इस सिद्धांत में यह मत भी निहित है कि सरकार को किसी विचाराधीन कर को अपनाने में उसके संभावित प्रभावों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। अनुमानित प्रभावों के हानिकारक होने पर भी यदि कर-राजस्व की उचित राशि प्राप्ति हो सकती हो तो ऐसा कर अस्वीकार्य नहीं होना चाहिए।

#### **7.1 सिद्धांत का मूल्यांकन (Evaluation of Theory)**

(1) यह सिद्धांत अवश्य एक कटु सत्य पर आधारित है, परंतु यह सत्य केवल नकारात्मक है। व्यावहारिकता के स्तर पर हर सरकार तथा हर विधान-मंडल के समक्ष राजस्व-प्राप्ति के अतिरिक्त भी अनेक उद्देश्य रहते हैं जिनके कारण केवल कार्य-साधकता के आधार पर किसी कर को अपनाए जाने की संभावना अति कम होती है। इसके अतिरिक्त सामान्यतः समाज में विभिन्न वर्गों की यह चेष्टा रहती है कि करदेयता का भार मुख्य रूप से अन्य वर्गों पर ही थोपा जाए। वार्गिक निहित स्वार्थों (sectarian or vested interests) के लिए सरकार पर सब प्रकार से दबाव डाले जाते हैं। इस कारण कई बार सरकार दबाव में आकर भी कर संबंधी निर्णय ले लेती है।

**नोट**

(2) यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि किसी सरकार के लिए अपनी त्रुटियों पर विचार किए बिना कोई कर लगाना उचित नहीं ठहराया जा सकता। सरकार को अपनी प्रशासनिक त्रुटियों तथा कर वसूलने की लागत आदि अनेक पहलुओं पर विचार करने के पश्चात ही किसी कर के अपनाने का निर्णय लेना चाहिए। कर इस प्रकार लगाना चाहिए कि करदाताओं को अनावश्यक परेशानी न हो।

(3) किसी कर-प्रणाली का पूरा निर्माण केवल कार्य-साधकता के आधार पर करने से समाज उसके अनेक संभावित लाभों से वंचित रह जाता है। यह तथ्य सर्वमान्य है कि कर अर्थव्यवस्था पर गहरे प्रभाव डालते हैं। ऐसी स्थिति में सरकार का प्रयत्न यह होना चाहिए कि यथासंभव अच्छे प्रभावों में बढ़ोतरी तथा बुरे प्रभावों में कमी हो। यदि कर प्रणाली के निर्माण में इसका संभावित प्रभावों पर विचार न किया जाए तो यह समाज के लिए अति हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है।

**नोट्स**

निष्कर्ष यह निकलता है कि किसी ऐसे कर के लगाने का औचित्य नहीं बनता जिसे वसूला न जा सके। परंतु ऐसे सभी 'योग्य' करों को एक बराबर न मानकर उनमें से सर्वोत्तम करों को चुनना चाहिए जिससे समाज और अर्थव्यवस्था को कम से कम हानि तथा अधिक से अधिक हित की प्राप्ति हो।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :**

1. किसी ऐसे कर को लगाना जिसे वसूल न किया जा सके, एक ..... प्रयत्न के सिवा कुछ नहीं कहा जा सकता।
2. यह सिद्धांत अवश्य कटु सत्य पर आधारित है, परंतु यह सत्य केवल ..... है।
3. किसी कर प्रणाली का पूरा निर्माण केवल कार्य-साधकता के आधार पर करने से समाज उसके अनेक संभावित ..... से वंचित रह जाता है।
4. सभी योग्य करों को एक बराबर न मानकर उनमें से ..... करों को चुनना चाहिए।
5. किसी सरकार के लिए अपनी त्रुटियों पर विचार किए बिना कोई ..... नहीं लगाना चाहिए।

**7.2 सारांश (Summary)**

- किसी ऐसे कर को लगाना जिसे वसूल न किया जा सके, एक अर्थहीन प्रयत्न के सिवा कुछ नहीं कहा जा सकता। इस सिद्धांत में यह मत भी निहित है कि सरकार को किसी विचाराधीन कर को अपनाने में उसके संभावित प्रभावों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।
- यह सिद्धांत अवश्य एक कटु सत्य पर आधारित है, परंतु यह सत्य केवल नकारात्मक है। व्यावहारिकता के स्तर पर हर सरकार तथा हर विधान-मंडल के समक्ष राजस्व-प्राप्ति के अतिरिक्त भी अनेक उद्देश्य रहते हैं जिनके कारण केवल कार्य-साधकता के आधार पर किसी कर को अपनाए जाने की संभावना अति कम होती है।
- यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि किसी सरकार के लिए अपनी त्रुटियों पर विचार किए बिना कोई कर लगाना उचित नहीं ठहराया जा सकता।
- किसी कर-प्रणाली का पूरा निर्माण केवल कार्य-साधकता के आधार पर करने से समाज उसके अनेक संभावित लाभों से वंचित रह जाता है। यह तथ्य सर्वमान्य है कि कर अर्थव्यवस्था पर गहरे प्रभाव डालते हैं।

### 7.3 शब्दकोश (Keywords)

नोट

- कार्य-साधक (Expediency)–कार्य साधने वाला।
- मूल्यांकन (Evaluation)–मूल्य आँकना।

### 7.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कार्य-साधक सिद्धांत का क्या महत्त्व है?
2. कार्य-साधक सिद्धांत का मूल्यांकन करें।

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. अर्थहीन
2. नकारात्मक
3. लाभों
4. सर्वोत्तम
5. कर।

### 7.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## **इकाई-8: सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत** **(Socio-Political Theory)**

### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत (Socio-Political Theory)

8.2 सिद्धांत का मूल्यांकन (Evaluation of Theory)

8.3 सारांश (Summary)

8.4 शब्दकोश (Keywords)

8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

8.6 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत को जानने में।
- सिद्धांत के मूल्यांकन को समझने हेतु।

### **प्रस्तावना (Introduction)**

वैगनर का मत था कि निजी संपत्ति और उत्तराधिकारिता का अस्तित्व केवल समाज के सौजन्य तथा सरकार के संरक्षण के कारण ही संभव है। इनका अस्तित्व किसी दैवी आज्ञा की देन नहीं है। इसलिए सरकार का यह अधिकार बनता है कि संपत्ति के स्वामित्व और उत्तराधिकारिता को यथोचित नियमित करे जिससे समाज के हितों की रक्षा हो सके।

### **8.1 सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत (Socio-Political Theory)**

इस सिद्धांत को जर्मनी के एडोल्फ वैगनर (Adolph Wagner) ने प्रतिपादित किया। इस सिद्धांत की मूल धारणा यह है कि करों का चुनाव उसके सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों के आधार पर किया जाना चाहिए। जर्मन-दर्शन की प्रथानुसार वैगनर का भी यह विचार था कि किसी समस्या का समाधान व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से नहीं, प्रत्युत सामूहिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। समाज केवल व्यक्तियों का एक समूह ही नहीं होता। इसका एक अपना अस्तित्व भी होता है जिसे बनाए रखने का एक अपना औचित्य होता है। हर सरकार का यह बुनियादी कर्तव्य है कि इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु यथाशक्ति कदम उठाए। इसलिए कर-प्रणाली का उद्देश्य समाज के सदस्यों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करना नहीं, प्रत्युत यथासंभव पूरे समाज के हितों की रक्षा

## नोट

करना होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, वैगनर द्वारा कर-नीति के निर्माण और इसके कार्यान्वयन में आधुनिक हित-वर्धन दर्शन के अपनाने पर जोर दिया जा रहा था। विशेषकर वैगनर का यह कहना था कि कराधान के माध्यम से आय की असमानताओं को घटाना चाहिए और इसके लिए छोटी आमदनियाँ कर-मुक्त होनी चाहिए।

वैगनर का मत था कि निजी संपत्ति और उत्तराधिकारिता का अस्तित्व केवल समाज के सौजन्य तथा सरकार के संरक्षण के कारण ही संभव है। इनका अस्तित्व किसी देवी आज्ञा की देन नहीं है। इसलिए सरकार का यह अधिकार बनना है कि संपत्ति के स्वामित्व और उत्तराधिकारिता को यथोचित नियमित करे जिससे समाज के हितों की रक्षा हो सके। वैगनर के विचारों का उस समय तो काफी विरोध हुआ परंतु यही विचार आजकल की आधुनिक सरकारों की राजकोषीय नीतियों का मूलाधार बन चुके हैं। आजकल सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ इतनी गंभीर हो गई हैं कि उनको आंकना तक कठिन हो गया है। कोई भी आधुनिक सरकार एक मूकदर्शक की भाँति समाज को इन समस्याओं के हाथों पीड़ित नहीं देख सकती। इन समस्याओं के समाधान में समाज की सहायता करना इसका एक मूल कर्तव्य माना जाता है।



टास्क एडोल्फ वैगनर कहाँ का रहने वाला था?

## 8.2 सिद्धांत का मूल्यांकन (Evaluation of Theory)

कार्यवाहक सिद्धांत की तुलना में सामाजिक-राजनीतिक कर का सिद्धांत अधिक स्वीकार्य है। परंतु इस सिद्धांत में कई त्रुटियाँ भी हैं। इसमें कर-प्रणाली की नैतिकता अर्थात् कर-भार के आवंटन में न्यायोचित समानता पर ध्यान नहीं दिया गया। इस आयाम के अभाव में कर-प्रणाली सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के समाधान में सहायक बनने के स्थान पर उनको सक्षम और जटिल बनाने की भूमिका निभाने लगती है। रॉयल कमीशन ऑन टैक्सेशन (कनाडा) (Royal Commission on Taxation, Canada) के मतानुसार किसी भी कर-प्रणाली का सर्वोच्च उद्देश्य उसके भार का न्यायोचित आवंटन ही हो सकता है। इस न्यायसंगति के अभाव में समाज के ढाँचे को क्षति भी पहुँच सकती है तथा वह नष्ट भी हो सकता है। यदि करदाताओं के मन में यह धारणा बैठ जाए कि कर-प्रणाली में न्यायसंगति का अभाव है, तो वे करों की चोरी की भी चेष्टा करते हैं।



क्या आप जानते हैं न्यायसंगति को अपनाने में कई कठिनाइयाँ सामने आती हैं। सर्वप्रथम 'न्यायसंगति' का कोई नितांत अर्थ नहीं लगाया जा सकता। दूसरी कठिनाई यह है कि बहुधा इस उद्देश्य का कर-प्रणाली के अन्य उद्देश्यों से टकराव हो जाता है। इन अन्य उद्देश्यों में आर्थिक विकास, आर्थिक स्थिरता, रोजगार-प्रोत्साहन आदि शामिल हैं। उद्देश्यों में संभावित टकराव का समाधान 'कर-देय क्षमता सिद्धांत' में संभव है।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following Statements are True or False) :

1. सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत का प्रतिपादन जर्मनी के एडोल्फ वैगनर ने किया था।
2. जर्मन-दर्शन के प्रथानुसार वैगनर का भी यही मत था कि किसी समस्या का समाधान व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से होनी चाहिए।
3. कार्यवाहक सिद्धांत की तुलना में सामाजिक-राजनीतिक कर का सिद्धांत अधिक स्वीकार्य है।

नोट

### 8.3 सारांश (Summary)

- सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत को जर्मनी के एडोल्फ वैंगनर (Adolph Wagner) ने प्रतिपादित किया। इस सिद्धांत की मूल धारणा यह है कि करों का चुनाव उसके सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों के आधार पर किया जाना चाहिए।
- कर-प्रणाली का उद्देश्य समाज के सदस्यों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को पूरा करना नहीं, प्रत्युत यथासंभव पूरे समाज के हितों की रक्षा करना होना चाहिए।
- कोई भी आधुनिक सरकार एक मूक दर्शक की भांति समाज को इन समस्याओं के हाथों पीड़ित नहीं देख सकती। इन समस्याओं के समाधान में समाज की सहायता करना इसका एक मूल कर्तव्य माना जाता है।
- कार्यवाहक सिद्धांत की तुलना में सामाजिक-राजनीतिक कर का सिद्धांत अधिक स्वीकार्य है। परंतु इस सिद्धांत में कई त्रुटियाँ भी हैं। इसमें कर-प्रणाली की नैतिकता अर्थात् कर-भार के आवंटन में न्यायोचित समानता पर ध्यान नहीं दिया गया।

### 8.4 शब्दकोश (Keywords)

- कमीशन (Commission)–आयोग।
- करारोपण (Taxation)–कर लगाना।

### 8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत की व्याख्या करें।
2. सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत का मूल्यांकन करें।

#### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य।

### 8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
3. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस-सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
4. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।

नोट

## इकाई-9: भुगतान सामर्थ्य के सिद्धांत : वस्तुपरक एवं व्यक्तिपरक दृष्टिकोण (Ability to Pay Theory : Objective and Subjective Indices)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 भुगतान-सामर्थ्य के सूचक (Index of Ability to Pay)

9.2 व्यक्तिपरक या भावनात्मक दृष्टिकोण (Subjective Approach)

9.3 वस्तुपरक या बाह्य दृष्टिकोण (Objective Approach)

9.4 उत्पादन शक्ति के सिद्धांत में सामर्थ्य का माप (Index of Ability in Faculty Theory)

9.5 कर सामर्थ्य सिद्धान्त व अर्द्धविकसित देश (Ability to Pay Theory and Under-developed Countries)

9.6 सारांश (Summary)

9.7 शब्दकोश (Keywords)

9.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

9.9 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- भुगतान सामर्थ्य के सूचक के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु।
- व्यक्तिपरक या भावनात्मक दृष्टिकोण को समझने हेतु।
- वस्तुपरक या बाह्य दृष्टिकोण को जानने में।
- उत्पादक शक्ति के सिद्धांत में सामर्थ्य के माप संबंधी बातों की जानकारी प्राप्त करने हेतु।
- कर सामर्थ्य सिद्धांत व अर्द्धविकसित देश से संबंधित बातों को जानने में।

### प्रस्तावना (Introduction)

भुगतान-सामर्थ्य के सूचक में संपत्ति आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। इससे प्राप्त होने वाली आय शून्य से लेकर बड़ी धन-राशि तक विभिन्न प्रकार की हो सकती है।



**नोट**

व्यक्तिपरक दृष्टिकोण के अंतर्गत करदान सामर्थ्य को मापने के लिए त्याग सिद्धांत का उपयोग किया जाता है और वस्तुपरक दृष्टिकोण में इस कार्य के लिए उत्पादन शक्ति सिद्धांत प्रयुक्त होता है।

अनेक विचारकों का मत है कि करदान योग्यता सिद्धांत सार्वभौमिक सिद्धांत है और यह आसानी से अर्द्ध विकसित देशों में लागू किया जा सकता है।

### 9.1 भुगतान-सामर्थ्य के सूचक (Index of Ability to Pay)

(क) सम्पत्ति (Property)–कर अदा करने की योग्यता या सामर्थ्य का सिद्धान्त, अपने प्रारम्भिक रूप में, आय के मुकाबले उत्पादन शक्ति के रूप में ही अधिक व्यक्त किया जाता था। आय के मुकाबले व्यक्ति के संचित धन एवं उसकी सम्पत्ति को ही उसकी कर अदा करने की सामर्थ्य का प्रतीक माना जाता था। वास्तविकता यह है कि सम्पत्ति भुगतान-सामर्थ्य की मुख्य कसौटी नहीं है, हाँ, इसे भुगतान सामर्थ्य का अनुपूरक सूचक (supplementary index) अवश्य माना जा सकता है। इसके अनेक कारण हैं—

- (1) सम्पत्ति आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत तो है, परन्तु सभी सम्पत्तियाँ आय प्रदान करती हों, ऐसी बात तो नहीं है।
- (2) सम्पत्ति से होने वाली आय लगातार प्राप्त नहीं होती।
- (3) सम्पत्ति से होने वाली आय शून्य से लेकर बड़ी धन-राशि तक विभिन्न प्रकार की हो सकती है। ऐसा होना सम्पत्ति की प्रकृति, स्थिति तथा उसके उपयोग आदि पर निर्भर होता है। उदाहरण के लिए, हो सकता है किसी व्यक्ति का गाँव में स्थित मकान कोई प्रदान न करे। परन्तु यदि वही मकान नगर में स्थित हो तो आय का एक अच्छा स्रोत बन सकता है।
- (4) सम्पत्ति पर जो कर लगता है वह उसके पूँजीगत मूल्य (capital value) पर लगता है। अतः यदि किसी वर्ष सम्पत्ति से कोई आय नहीं होती है तो उस सम्पत्ति पर लगाये गये करों को न्यायोचित नहीं माना जा सकता। इस स्थिति में यह कहा जा सकता है कि सम्पत्ति को कर अदा करने की सामर्थ्य की प्रारम्भिक अथवा मुख्य कसौटी नहीं माना जा सकता।

हाँ, निम्नलिखित कारणों से सम्पत्ति को भुगतान-सामर्थ्य की अनुपूरक कसौटी (Supplementary test) अवश्य माना जा सकता है—

- (1) अतिरिक्त क्षमता (Additional Capacity)–सम्पत्ति का स्वामित्व इसके धारक (holder) को कर अदा करने की एक ऐसी अतिरिक्त क्षमता प्रदान करता है जिसकी प्राप्ति शुद्ध या निबल आय (net income) से प्राप्त नहीं होती है।
- (2) भुगतान-सामर्थ्य (Ability to Pay)–सम्पत्ति से होने वाली आय में व्यक्तिगत सेवाओं से कमाई जाने वाली आय की अपेक्षा कर अदा करने की सामर्थ्य अधिक मात्रा में होती है। इसके अतिरिक्त, उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति उसके पाने वाले (recipient) को कर अदा करने की योग्यता बहुत अधिक मात्रा में प्रदान करती है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार प्राप्त सम्पत्ति से उसके पाने वाले को जो आय मिलती है, वह अनुपार्जित (unearned) प्रकृति की ही होती है।

(ख) आय (Income)–कर अदा करने की सामर्थ्य का दूसरा सूचक आय को माना जा सकता है। कुल आय (gross income) में लागत का तत्व भी सम्मिलित रहता है जबकि शुद्ध या निबल आय (net income), लागत घटाने के बाद प्राप्त होती है। अतः कुछ आय के मुकाबले निबल आय को कर-सामर्थ्य की माप का अधिक अच्छा सूचक माना जा सकता है। एडम स्मिथ सबसे पहले विचारक थे जिन्होंने यह स्वीकार किया था कि आय ही कर अदा करने की योग्यता का उपयुक्त माप है। आजकल तो यह बात आमतौर पर स्वीकार की जाती है।

(ग) परिवार का आकार (Size of the Family)–व्यक्ति की कर देने की सामर्थ्य का निर्धारण करते समय परिवार के आकार को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए। यदि दोनों की आय एक समान हो तो छोटे आकार के परिवार की तुलना में बड़े आकार वाले परिवार में कर देने की सामर्थ्य कम होती है। उदाहरण के लिए, यदि अन्य बातें समान

हों तो चार बच्चों से युक्त विवाहित युगल के मुकाबले एक कुँआरे या अविवाहित व्यक्ति में कर देने की सामर्थ्य अधिक होती है।

(घ) उपभोग (Consumption)–यह भी कहा जाता है कि उपभोग-व्यय को व्यक्ति की कर अदा करने की सामर्थ्य का माप बनाया जाना चाहिए। कभी-कभी यह देखा जाता है कि सम्पत्ति और आय के आधार पर बनाये गये कर सम-न्यायपूर्ण नहीं होते हैं। परिणामस्वरूप, करदाता अनेक प्रकार से उन्हें छिपाने की कोशिश करते हैं। अतः प्रो. फिशर ने और अभी हाल ही में, प्रो. कैल्डोर ने व्यय पर कर लगाने की सिफारिश की। परन्तु वास्तविकता यह है कि कर अदा करने की सामर्थ्य के उपभोग-मापदण्ड को कभी कोई विशिष्ट स्थान प्राप्त नहीं हुआ।

### कर देने की सामर्थ्य को कैसे मापा जा जाए? (How to measure Ability?)

भुगतान-सामर्थ्य के सिद्धान्त के अन्तर्गत एक मौलिक समस्या यह उत्पन्न होती है कि व्यक्ति की कर अदा करने की सामर्थ्य को मापा कैसे जाए? इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दो दृष्टिकोणों का सहारा लिया जाता है—

- (1) व्यक्तिपरक या भावनात्मक दृष्टिकोण (subjective approach),
- (2) वस्तुपरक या बाह्य दृष्टिकोण (objective approach)।

व्यक्तिपरक दृष्टिकोण के अन्तर्गत, करदान सामर्थ्य को मापने के लिए त्याग सिद्धान्त (sacrifice theory) का उपयोग किया जाता है और वस्तुपरक दृष्टिकोण में, इस कार्य के लिए उत्पादक शक्ति सिद्धान्त (faculty theory) प्रयुक्त होता है।

## 9.2 व्यक्तिपरक या भावनात्मक दृष्टिकोण (Subjective Approach)

व्यक्तिपरक दृष्टिकोण करदाताओं की मनोवैज्ञानिक अथवा मानसिक प्रतिक्रियाओं पर आधारित है। व्यक्तिपरक या भावनात्मक दृष्टिकोण में, करदाता को करों के अदा करने में मानसिक असन्तोष, कष्ट तथा अन्य प्रकार की असुविधाएँ होती हैं। इस प्रकार करदाता जब कर का भुगतान करता है तो उसे त्याग करना पड़ता है। यदि कर-भार को न्यायपूर्ण रीति से बाँटा जाए, तो प्रत्येक करदाता को समान त्याग ही करना होगा।

व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से करारोपण के तीन आधार लिए जाते हैं—

- (1) समान निरपेक्ष त्याग (Equal Absolute Sacrifice)
- (2) समान आनुपातिक त्याग (Equal Proportional Sacrifice)
- (3) समसीमान्त त्याग अथवा न्यूनतम कुल त्याग (Equal Marginal Sacrifice or Minimum Aggregate Sacrifice)।

इन धारणाओं के प्रतिपादन में निम्न मान्यताएँ लेकर चलते हैं—

- (i) आय द्वारा प्राप्त उपयोगिता की संख्यात्मक माप (cardinal measurement) सम्भव है।
- (ii) आय में वृद्धि के साथ-साथ सीमान्त उपयोगिता में हास हो जाता है।
- (iii) आय स्तर की सीमान्त उपयोगिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। सभी व्यक्तियों की आय की इकाई व उससे सम्बन्धित सीमान्त उपयोगिता समान है, अतः उपयोगिता की अन्तःवैयक्तिक तुलना (inter-personal comparison) सम्भव होती है।

### 9.2.1 समान कुल त्याग (Equal Absolute Sacrifice)

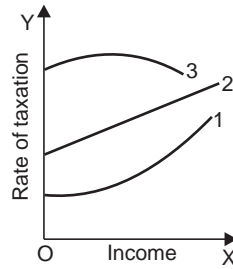
इस दृष्टिकोण के अनुसार करारोपण तभी न्यायसंगत हो सकता है जबकि प्रत्येक व्यक्ति की त्याग की मात्रा बराबर हो। इस सम्बन्ध में डॉ. डाल्टन का कहना है, “करारोपण के प्रत्येक द्रव्य के बोझ का वितरण इस प्रकार से होना चाहिए कि सब करदाताओं पर प्रत्यक्ष वास्तविक भार बराबर हो।”<sup>1</sup>

1. Dalton, op. cit., page 91.

**नोट**

किन्तु त्याग का सम्बन्ध मनुष्य की मानसिक दशाओं से होता है जिसको मापना सम्भव नहीं होता। अतः विभिन्न व्यक्तियों के त्याग की तुलना करना ठीक नहीं है। यदि कर लगाने के लिए आय को आधार मान लिया जाए तो ऐसी स्थिति में समान त्याग प्राप्त करने के लिए तीन परिस्थितियों की कल्पना की जा सकती है—

(i) **आय का तीव्र गति से बढ़ना**—इस स्थिति में वृद्धि के साथ-साथ व्यक्ति को मिलाने वाली उपयोगिता घटती चली जाती है। ऐसी स्थिति में कर की दूर प्रगतिशील होगी। संक्षेप में, आय में वृद्धि के साथ लोगों को अधिक कर चुकाना होगा। इसकी व्याख्या चित्र द्वारा आसानी से की जा सकती है।



चित्र 1

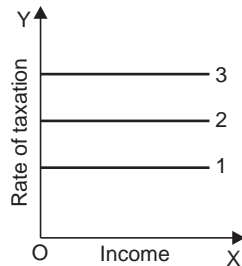
चित्र-1 में X-अक्ष पर आय एवं Y-अक्ष पर कर की दर मापी गयी है। चित्र में स्पष्ट है कि करों की दरों को तीन प्रकार से प्रगतिशील बनाया जा सकता है। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि जैसे-जैसे आय में तीव्र वृद्धि होती है वैसे-वैसे सीमान्त उपयोगिता कम होती जाती है। इस प्रकार सभी करदाताओं का त्याग करने के लिए ऊँची दर पर कर समान होगा।



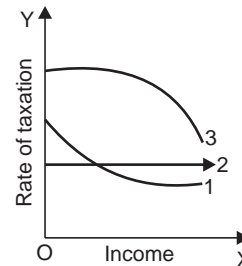
**नोट्स** कराधान में समानता का मतलब है त्याग की समानता।

अतः कराधान के द्रव्य-भार को ऐसी रीति से बाँटा जाना चाहिए जिससे कि प्रत्येक करदाता को समान त्याग करना पड़े। इस प्रकार, कराधान में न्यायपूर्ण समानता लाने के लिए यह आवश्यक है कि एक-सी परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों से मान व्यवहार किया जाए ताकि क्षैतिज साम्यता (horizontal equity) प्राप्त की जा सके, और असमान परिस्थितियों में रहने वाले सभी व्यक्तियों से कर लगाने के मामले में भिन्न-भिन्न व्यवहार किया जाए, ताकि शीर्ष साम्यता (vertical equity) भी प्राप्त की जा सके। अतः मिल ने यह तर्क दिया कि कराधान के वास्तविक भार में समानता लाने के लिए एक से तथा एक-सी परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों से एक-सा ही व्यवहार किया जाना चाहिए।

(ii) **आय में शनैः शनैः वृद्धि**—यदि आय में शनैः शनैः वृद्धि होती है तो उससे प्राप्त सीमान्त उपयोगिता में धीरे-धीरे हास होगा। ऐसे स्थिति में त्याग में समानता लाने के लिए समानुपातिक करारोपण का सहारा लेना पड़ेगा।



चित्र 2



चित्र 3

## नोट

इस प्रकार इस स्थिति में ऊँची तथा नीची आय वाले सभी व्यक्तियों पर समान दर से कर लगाया जाना चाहिए। यह चित्र-2 में स्पष्ट किया गया है। चित्र में स्पष्ट है कि कर की तीनों दरों में किसी एक को लागू किया जा सकता है।

(iii) **आय का गिरना**—इस स्थिति में आय के गिरने के फलस्वरूप आय की सीमान्त इकाइयों से प्रारम्भ में सीमान्त उपयोगिता बढ़ती जाती है। ऐसी परिस्थिति में समान त्याग करने के लिए प्रतिगामी (Regressive) करारोपण लगाया जाना उचित होगा, अर्थात् अधिक आय वाले कम दर में और कम आय वाले ऊँची दर में करों का भुगतान करेंगे। रेखाचित्र-3 में दी गयी तीनों दरों में किसी एक दर के आधार पर कर लगाया जा सकता है।

परन्तु आय के बढ़ने के साथ-साथ द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता के घटने का सही-सही माप करना एक बड़ा कठिन कार्य है। फलस्वरूप, आरोहण की दरों (rates of progression) का निर्धारण मनमाने ढंग पर किया जाता है, जिसे कि न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। किन्तु आय के ऊँचे स्तरों पर यदि कर के आरोहण (progression) की मात्रा, उस मात्रा से काफी अधिक हो, जो कि किसी व्यक्ति के द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता की वक्र रेखा (curve) द्वारा प्राप्त की जाये, तो उसे न्यायोचित माना जाता है। यह वक्र रेखा आय की वृद्धि के साथ ही द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता की दर की गिरावट को प्रकट करती है तथा यह इस मान्यता पर खींची जाती है कि इससे उस व्यक्ति के अन्य सामाजिक साथी अप्रभावित रहते हैं।”

### 9.2.2 समान अनुपाती त्याग (Equal Proportional Sacrifice)

इस सिद्धान्त के अनुसार करदाताओं पर कर का भार समान नहीं रहता है बल्कि उनकी आर्थिक स्थिति में अनुपात में निश्चित होता है। दूसरे शब्दों में, कर लगाने के परिणामस्वरूप होने वाली उपयोगिता की हानि करदाताओं की कुल आय के अनुपात में होनी चाहिए। इस स्थिति में भी अधिक आय वाले करदाता निम्न आय वाले करदाताओं के मुकाबले अधिक कर अदा करेंगे। परन्तु आय के प्रति त्याग का अनुपात सभी के लिए बराबर होगा। इसको निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{A \text{ द्वारा किया जाने वाला त्याग}}{A \text{ की आय}} = \frac{B \text{ द्वारा किया जाने वाला त्याग}}{B \text{ की आय}}$$

इस प्रकार, इस सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक करदाता पर पड़ने वाला प्रत्यक्ष वास्तविक भार (direct real burden) उस आर्थिक कल्याण (economic welfare) के अनुपात में होगा जो कि वह अपनी आय से प्राप्त करता है। इसके अनुसार, आरोही कर के ढाँचे का निर्माण करना भी सम्भव है क्योंकि द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता आय की वृद्धि के साथ ही (किसी भी अनुपात में) घटती जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि समान पूर्ण त्याग के मुकाबले इस सिद्धान्त के अनुसार लागू किया जाने वाला कराधान अधिक आरोही होता है।

### 9.2.3 समान सीमान्त त्याग (Equal Marginal Sacrifice)

इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न करदाताओं का कुल त्याग नहीं, बल्कि सीमान्त त्याग (अर्थात् करदाता के धन की अन्तिम इकाई द्वारा कराया जाने वाला त्याग) बराबर होना चाहिए, ताकि समुदाय का समस्त त्याग सम्पूर्ण रूप में न्यूनतम हो। प्रो. पीगू के शब्दों में, “कराधान का ऐसा वितरण, जो कि न्यूनतम समस्त त्याग के सिद्धान्त (principle of least aggregate sacrifice) के अनुरूप हो, वह हो सकता है जो समाज के सभी सदस्यों द्वारा किये जाने वाले कुल त्याग (total sacrifice) को नहीं, अपितु सीमान्त त्याग को बराबर कराये।” राज्य का उद्देश्य आर्थिक कल्याण को अधिकतम करना है और कराधान करदाताओं के लिए अनुपयोगिता या तुष्टिहीनता (disutility) उत्पन्न करता है। अतः करों का वितरण न्यूनतम समस्त त्याग के सिद्धान्त के अनुसार किया जाना चाहिए, अर्थात् कराधान के द्वारा प्रत्येक करदाता से कराया जाने वाला सीमान्त त्याग बराबर होना चाहिए।

इस सिद्धान्त के अनुसार कर का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि करदाताओं द्वारा किये गये त्याग की मात्रा कम से कम हो तथा सामाजिक लाभ अधिकतम हो। यह तभी सम्भव है कि सभी करदाताओं का सीमान्त त्याग बराबर हो। इसको सारणी एवं रेखाचित्र द्वारा अग्रलिखित प्रकार से समझाया जा सकता है—

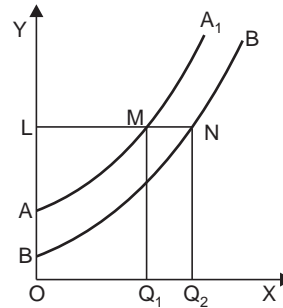
## नोट

माना तीन करदाता A, B और C हैं जिनसे सरकार 8 रुपये कर के रूप में वसूल करना चाहती है। मान लीजिये इनमें में किसी एक को रुपया देना पड़ता है तो निम्न त्याग करना पड़ता है—

रुपयों की इकाइयाँ	A द्वारा किया गया सीमान्त त्याग	B द्वारा किया गया सीमान्त त्याग	C द्वारा किया गया सीमान्त त्याग
1	15	20	42
2	25	30	51
3	38	42	60
4	42	50	65
5	50	58	69

इस स्थिति में सम-सीमान्त त्याग 4 इकाई है। अतः सरकार यदि 8 रुपये कर के रूप में वसूल करना चाहती है तो A से 4 रुपये, B से 3 रुपये C से 1 रुपया वसूल करेगी।

इस स्थिति को रेखाचित्र-4 द्वारा आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है। यहाँ  $x$ -अक्ष तथा  $y$ -अक्ष पर क्रमशः कर की मात्रा एवं कर चुकाने से त्याग मापा गया है।  $AA_1$  तथा  $BB_1$  क्रमशः A एवं B करदाता के त्याग को प्रदर्शित करते हैं जो यह बताते हैं कि जैसे-जैसे कर की मात्रा बढ़ती जायेगी वैसे-वैसे त्याग बढ़ता जायेगा। कुल त्याग तब न्यूनतम होगा जब A एवं B का सीमान्त त्याग बराबर हो। यह तभी सम्भव हो सकता है जब सरकार A से  $OQ_1$  तथा B से  $OQ_2$  कर की मात्रा एकत्रित करे क्योंकि इस स्थिति में ही A का सीमान्त त्याग  $Q_1M$  तथा B का सीमान्त त्याग  $Q_2N$  बराबर है।



चित्र 4

समानता लाने के लिए, यह होना चाहिए कि धनी व्यक्तियों पर कर लगाये जाएँ और इनसे होने वाली प्राप्तियाँ में से छोटी आय वाले लोगों को उस समय तक अधिदान (bounties) दिये जाएँ, जब तक कि समानता का चरम स्तर (dead level) न प्राप्त कर लिया जाये। परन्तु यदि राज्य ऐसा नहीं करता है तो राजस्व का संग्रह पूर्णतया सर्वोच्च आय वाले वर्गों से किया जाना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह निम्न आय वाले वर्गों को उस समय तक न छुए, जब तक कि उच्च आय वाले वर्ग निम्न आय वाले वर्गों के स्तर तक न आयें। इसका अर्थ यह है कि कर सबसे पहले ऐसे व्यक्ति पर लगाये जाने चाहिए जिसकी आय सर्वाधिक हो और वह इसलिए क्योंकि कर लगने पर उसे न्यूनतम त्याग करना होगा। इस प्रकार, कराधान के द्वारा जब उसकी आय घटकर समाज के दूसरे सबसे बड़े धनी व्यक्ति के स्तर तक आ जाए, तो अब इन दोनों पर ही कर लगाना आरम्भ कर देना चाहिए और वह इसलिए क्योंकि जब इन दोनों के द्वारा ही कर के रूप में अन्तिम रुपये की अदायगी के कारण जो त्याग किया जायेगा, वह बराबर होगा। इस प्रकार, अब इन दोनों पर ही कर लगाते-लगाते इन्हें समाज के तीसरे सबसे बड़े धनी व्यक्ति के स्तर तक

नीचे ले आना चाहिए। और यह प्रक्रिया उस समय तक जारी रहनी चाहिए जब तक कि आवश्यक मात्रा में राजस्व (revenue) प्राप्त न हो जाए।

नोट



टास्क समान अनुपाती त्याग तथा समान सीमान्त त्याग से आप क्या समझते हैं?

न्यूनतम समस्त त्याग का सिद्धान्त अथवा सम-सीमान्त त्याग का सिद्धान्त स्पष्टतः अत्यधिक आरोही कर ढाँचे का निर्माण करता है। अतः जैसे कि प्रो० पीगू ने कहा है कि सम-सीमान्त त्याग का अर्थ है कि, “करों द्वारा न्यूनतम आय के ऊपर की सभी आमदनियों की चोटियाँ कलम कर दी जाएँ और कराधान के पश्चात् सभी व्यक्तियों के पास समान आमदनियाँ छोड़ी जाएँ।” यहाँ यह भी आवश्यक है कि न्यूनतम स्तर की आये वाले वर्ग को कराधान से मुक्त रखा जाये। वह न्यूनतम स्तर की आय इतनी अवश्य हो कि उससे जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं पर किया जाने वाला खर्च पूरा हो जाये। व्यक्ति पर कर लगाते समय उसके परिवार के आकार को भी अवश्य ही दृष्टिगत रखा जाना चाहिए।

#### 9.2.4 सिद्धान्त का मुसग्रेव उपयोगिता मॉडल (Musgrave's Utility Model)

समान पूर्ण त्याग, समान अनुपाती त्याग और समान सीमान्त त्याग के सिद्धान्त को गणितीय रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है।<sup>1</sup> प्रत्येक व्यक्ति जो त्याग करता है उसका माप आय की उस शक्ति से किया जाना चाहिए जिसे कि वह कर के रूप में छोड़ता है। अब यदि Y आय, T = अदा किये गये कर की राशि और U = कुल उपयोगिता है, तो  $U(Y) =$  कर की अदायगी से पूर्व उपलब्ध कुल उपयोगिता और  $U(Y - T) =$  कर अदायगी के बाद स्वायत्त आय (disposable income) से प्राप्त कुल उपयोगिता मान लें तो (नीचे की ओर लिखे गये छोटे अक्षर (subscripts) A तथा B विभिन्न व्यक्तियों के सूचक हैं)। **व्यक्तिपरक त्याग दृष्टिकोण** (subjective sacrifice approach) के तीनों दृष्टिकोणों को निम्न प्रकार से गणितीय रूप में दर्शाया जा सकता है:

(क) समान पूर्ण त्याग (Equal Absolute Sacrifice)–

$$[U(Y) - U(Y - T)]_A = [U(Y) - U(Y - T)]_B \text{ इत्यादि।}$$

(ख) समान अनुपाती त्याग (Equal Proportional Sacrifice)–

$$\left[ \frac{U(Y) - U(Y - T)}{U(Y)} \right]_A = \left[ \frac{U(Y) - U(Y - T)}{U(Y)} \right]_B$$

(ग) समान सीमान्त त्याग Equal Marginal Sacrifice)–

$$\left[ \frac{da(Y - T)}{d(Y - T)} \right]_A = \left[ \frac{d(Y - T)}{d(Y - T)} \right]_B$$

#### 9.2.5 सिद्धान्त का रेखांकन रूप (Diagrammatic Representation)

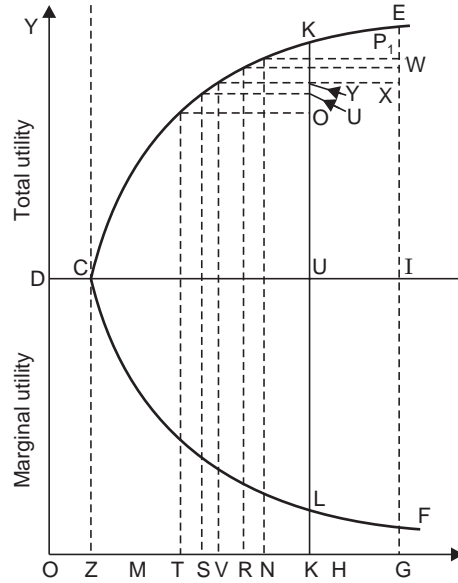
प्रो० मुसग्रेव (Musgrave) ने समान त्याग से सम्बन्धित तीन पहलुओं—समान कुल त्याग, समान आनुपातिक त्याग और समान सीमान्त त्याग को रेखाचित्र-5 द्वारा प्रदर्शित किया है।

चित्र (जो कि ऊपर दर्शाया गया है) में क्षैतिज अक्ष (Horizontal axis) पर आय (Income) को मापा गया है तथा लम्बवत् अक्ष (Vertical axis) पर D बिन्दु के ऊपर तथा नीचे क्रमशः कुल उपयोगिता (Total utility) को मापा गया है।

1. Musgrave—The Theory of Public Finance. Page 96.

**नोट**

चित्र में आय OZ या DC जीविकोपार्जन (Subsistence) आय को बताया गया है जिसकी उपयोगिता यहाँ नहीं दर्शायी गई है। यहाँ CE वक्र एवं CF वक्र क्रमशः आय से प्राप्त कुल उपयोगिता (Total utility) तथा सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility) को प्रदर्शित करते हैं। अब मान लीजिए करदाता-A तथा करदाता-B की आय जीविकोपार्जन आय से क्रमशः ZG तथा ZH बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में करदाता-A को कुल उपयोगिता IE तथा सीमान्त उपयोगिता GF के बराबर प्राप्त होगी। इसके विपरीत करदाता-B को KJ के बराबर कुल उपयोगिता तथा HL के बराबर सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होगी। अब मान लीजिए MG के बराबर आय-कर (Income Tax) लगाया जाता है तो फलस्वरूप दोनों करदाताओं की उपयोगिता में कमी आयेगी।



चित्र 5


समान पूर्ण त्याग के अन्तर्गत करदाता-A, NG के बराबर कर चुकायेगा तथा करदाता-B, TH के बराबर कर चुकायेगा अर्थात् कुल कर की राशि  $MG = NG + TH$  के बराबर होगी। यदि करदाता-A, NG के बराबर कर चुकायेगा तो उसकी कुल उपयोगिता में कमी EP के बराबर आयेगी अर्थात्  $NG = EP$ । इसके विपरीत करदाता-B के द्वारा TH कर चुकाने से उसकी KQ के बराबर कुल उपयोगिता में कमी आयेगी  $TH = KQ$ ।

समान आनुपातिक त्याग के अन्तर्गत करदाता-A RG के तथा करदाता-B SH के बराबर भुगतान करता है और इस प्रकार कुल भुगतान  $MG = RG + SH$  होता है। जहाँ  $RG = EW$  तथा  $SH = KU$ । इस प्रकार करदाताओं के अंत निम्न प्रकार होंगे-

$$\frac{A \text{ द्वारा किया जाने वाला त्याग}}{A \text{ की कुल उपयोगिता}} = \frac{B \text{ द्वारा किया जाने वाला त्याग}}{B \text{ की कुल उपयोगिता}}$$

अर्थात् 
$$\frac{W}{EI} = \frac{KU}{KJ}$$

समान सीमान्त त्याग के अन्तर्गत करदाता-A, VG तथा करदाता-B, VH के बराबर भुगतान करता है और इस प्रकार कुल भुगतान  $MG = VG + VH$  के बराबर किया जाता है। इन अवस्थाओं में दोनों करदाता VN के बराबर सीमान्त त्याग करेंगे किन्तु कुल त्याग  $EX + KY$  के बराबर होगा जो कि न्यूनतम होता है।



क्या आप जानते हैं  $MG = RG + SH$ , जहाँ  $RG = EW$  तथा  $SH = KU$

व्यक्तिपरक दृष्टिकोण के त्याग सम्बन्धी तीनों धारणाओं के अन्तर्गत कर की प्रकृति तथा सापेक्षिक करदेयता (relative tax liability) का संक्षिप्त विवरण निम्न तालिका में दिया गया है—

नोट

**विभिन्न धारणाओं के अन्तर्गत कराधान का भार  
(Burden on Taxation Under Different Concepts)**

त्याग की धारणा या पहलू	कर-ढाँचे की प्रकृति	कराधान का भार	
		उच्च आय वाले वर्ग	निम्न आय वाले वर्ग
(क) समान कुल त्याग	न्यूनतम आरोही (least progressive)	निम्नतम	उच्चतम
(ख) समान अनुपाती त्याग	प्रथम धारणा की तुलना में अधिक आरोही	उच्चतम	निम्नतम
(ग) समान सीमान्त त्याग	अत्यधिक तीव्र आरोही कराधान (निम्न आय वाले वर्गों के लिए काफी उच्च स्तर की कर-छूट सहित)	उच्चतम	निम्नतम

**इनमें कौन-सी धारणा श्रेष्ठ है? (Which Concept is Superior?)**

प्रश्न यह है कि त्याग सिद्धान्त से सम्बन्धित इन तीनों धारणाओं अथवा विचारधाराओं में कौन-सी श्रेष्ठ है? **एडम स्मिथ** का तो यह कहना था कि, “व्यक्ति अपनी-अपनी सम्बन्धित सामर्थ्य के अनुपात में अंशदान (Contribution) दें।” इस कथन में अनुपात (proportion) शब्द का अर्थ कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत ‘समानपूर्ण त्याग’ से भी लिया जा सकता है और कुछ अन्य परिस्थितियों के अन्तर्गत ‘समान अनुपाती त्याग’ से भी लिया जा सकता है। **जे० एस० मिल** ने समान त्याग के सिद्धान्त का समर्थन तो किया किन्तु ‘समानता’ की स्पष्ट रूप से परिभाषा नहीं की। बाद में जब त्याग के इन तीनों सिद्धान्तों की व्याख्या की गई, तब भी विचारकों में इस सम्बन्ध में कोई सहमति नहीं हुई कि त्याग सिद्धान्त के इन तीनों पहलुओं में से किसे सर्वोत्तम माना जाये। इसी प्रकार, इस समस्या पर भी कोई सहमति नहीं हुई कि त्याग सिद्धान्त को सर्वोत्तम छाँटी गई धारणा के अन्तर्गत कर-दर की अनुसूची (tax rate schedules) का निर्धारण कैसे किया जाए।

स्पष्ट है कि कुछ प्राचीन लेखकों ने तो समान अनुपाती त्याग का समर्थन किया और कुछ ने समान कुल त्याग का। किन्तु **पीगू** से सब सहमत अवश्य हैं जिसने कि समान सीमान्त त्याग को “कराधान के अन्तिम सिद्धान्त” के रूप में प्रस्तुत किया। उसने इस सिद्धान्त का इसलिए समर्थन किया, क्योंकि न्यूनतम समस्त त्याग (least aggregate sacrifice) (अर्थात् समान सीमान्त त्याग) सम्पूर्ण समुदाय के समान कल्याण को अधिकतम करने की एक आवश्यक शर्त और किसी भी आधुनिक सरकार का यही मुख्य लक्ष्य भी होता है। अतः पहले तो **एजवर्थ** (Edgeworth) ने और उसके पश्चात् **पीगू** ने यही निष्कर्ष निकाला कि **न्यूनतम समस्त त्याग ही कर-वितरण का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है**, इसलिए नहीं क्योंकि वह सम-न्यायपूर्ण है, बल्कि इसलिए क्योंकि इसका जन्म अधिकतम भलाई के मूलभूत उपयोगितावादी सिद्धान्त से हुआ है। एजवर्थ ने यह भी कहा कि समान पूर्ण त्याग अथवा समान अनुपाती त्याग के मुकाबले न्यूनतम त्याग सिद्धान्त (least sacrifice principle) को लागू करना अधिक सुविधाजनक होगा। हमें आवश्यकता केवल यह जानने कि है कि सामान्य सीमान्त उपयोगिता की वक्र रेखा नीचे जा रही है, यह नहीं कि इस रेखा के नीचे झुकने की स्पष्ट दर क्या है? परन्तु असमान उपयोगिता अनुसूचियों की मान्यता से बंधकर यह निष्कर्ष फिर दोषपूर्ण हो जाता है।

फिर, तीव्र आरोही कराधान बचतों पर और उसके फलस्वरूप देश के सम्पूर्ण उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। एजवर्थ तथा प्रो० पीगू ने भी इस बात को स्वीकार किया कि समानता लाने के लिए अपनाये जाने वाले तीव्र उपाय कुल उत्पादन पर हानिकारक प्रभाव डाल सकते हैं। अतः उन्होंने सुझाव दिया कि ऐसे प्रभावों की व्यवस्था करने की दृष्टि से न्यूनतम कुल त्याग के नियम की पूर्ण व्याख्या की जानी चाहिए।



## नोट

## 1. व्यक्तिपरक दृष्टिकोण की सीमाएँ (Limitations of Subjective Approach)

ऊपर जिस व्यक्तिपरक त्याग दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है, उसकी अनेक सीमाएँ भी हैं। ये निम्नलिखित हैं—

(1) **व्यवहार में सीमान्त त्याग को बराबर करना कठिन**—व्यवहार में, सभी करदाताओं के सीमान्त त्याग को बराबर करना बड़ा कठिन सिद्ध होगा। दो व्यक्ति जिनकी आय तथा देयताएँ (income and liabilities) एक समान हों, यदि समान कर भी अदा करें तो भी यह हो सकता है कि वे समान त्याग न कर पायें। ऐसा उनकी रुचि तथा उनके स्वभाव में अन्तर के कारण हो सकता है।

(2) **त्याग एवं भावात्मक विचार**—त्याग (sacrifice) एक व्यक्तिपरक या भावात्मक तत्त्व है, जिसे सरकारी सत्ता द्वारा ठीक-ठीक माप सकना सम्भव नहीं है। इसे तो केवल वही व्यक्ति अनुभव कर सकता है जो कि त्याग कर रहा है। इसके अतिरिक्त, एक ऐसी स्थिति पर पहुँचना कठिन है जिनमें कि सभी व्यक्तियों का कुल त्याग न्यूनतम हो। अतः समुदाय में कर-भार के न्यायपूर्ण वितरण के लक्ष्य को प्राप्त कर सकना कठिन है।

(3) **आय का गलत आधार**—वह आय जो कि धन तथा सम्पत्ति से प्राप्त की गई हो, के मुकाबले व्यक्तिगत सेवा तथा कठिन श्रम से अर्जित की गई आय से व्यक्ति को अधिक उपयोगिता या तुष्टिगुण (utility) प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त, धन तथा सम्पत्ति से प्राप्त वह आय, जो कि प्रयासों तथा कठोर श्रम से एकत्र की गई हो, उस आय के मुकाबले अधिक तुष्टिगुण प्रदान करती है जो कि उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति से प्राप्त की गई हो। परन्तु कर देने की सामर्थ्य को मापने हेतु, व्यक्तिगत त्याग के दृष्टिकोण से इन तथ्यों को कतई भी दृष्टिगत नहीं रखा गया है। इस स्थिति में यह पता लगाना बड़ा मुश्किल है कि किस व्यक्ति ने कितना त्याग किया है।

(4) **सीमान्त उपयोगिता की माप सम्भव नहीं**—यह भी सम्भव नहीं है कि आय बढ़ने के साथ-साथ सीमांत उपयोगिता या तुष्टिगुण के घटने की दर को बिल्कुल ठीक-ठीक माप लिया जाए। इसका परिणाम यह होगा कि कराधान की दर में आरोहण का निर्धारण मनमाने ढंग पर किया जायेगा। इससे सभी के सीमांत त्याग के बराबर होने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलेगा।

(5) **मुद्रा की हासमान सीमान्त उपयोगिता की गलत मान्यता**—यह सर्वविदित है कि जब आय अति न्यून स्तर से मध्यम स्तर की ओर बढ़ती है तो मुद्रा (आय) की सीमांत उपयोगिता में कमी आती है किन्तु जब आय मध्यम स्तर से उच्च स्तर की ओर बढ़ती है तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि आय में वृद्धि होने से सीमांत उपयोगिता घटती है।

**अन्त में**, निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कर अदा करने की सामर्थ्य को मापने के लिए व्यक्तिपरक त्याग दृष्टिकोण न केवल एक उपयोगी धारणा (concept) है, अपितु एक आदर्श भी है। व्यावहारिक जीवन में इसको लागू करने का क्षेत्र बड़ा सीमित है और इसके लक्ष्य को प्राप्त कर सकना बड़ा कठिन है।



टास्क व्यक्तिपरक दृष्टिकोण की सीमाओं को लिखें।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. .... से होने वाली आय लगातार प्राप्त नहीं होती।
2. आय द्वारा प्राप्त ..... की संख्यात्मक माप संभव है।
3. आय में वृद्धि के साथ-साथ सीमान्त उपयोगिता में ..... हो जाता है।
4. सम-सीमान्त त्याग का सिद्धांत स्पष्टतः अत्यधिक ..... कर ढाँचे का निर्माण करता है।
5. समान पूर्ण त्याग, समान अनुपाती त्याग और समान सीमान्त त्याग के सिद्धांत को ..... रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

### 9.3 वस्तुपरक या बाह्य दृष्टिकोण (Objective Approach)

नोट

त्याग सिद्धान्तों तथा व्यक्तिपरक दृष्टिकोण को लागू करने में चूँकि अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ सामने आती हैं, अतः कुछ लेखकों ने विशेषकर अमेरिकी लेखकों ने कर अदा करने की सामर्थ्य को मापने के लिए वस्तुपरक या बाह्य दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। प्रो० सैलिगमैन ने वस्तुपरक दृष्टिकोण में सामर्थ्य (ability) को प्रकट करने के लिए उत्पादक-शक्ति (faculty) शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार, इसे 'कर अदा करने के उत्पादक-शक्ति सिद्धान्त' (faculty theory) की भी संज्ञा दी जाती है।

त्याग सिद्धान्त अथवा व्यक्तिपरक दृष्टिकोण के विपरीत, उत्पादक-शक्ति का सिद्धान्त करदाता की भावनाओं एवं उसके कष्टों की अपेक्षा उसकी करदेय क्षमता (taxable capacity) के द्राव्यिक मूल्य (money value) को दृष्टिगत रखता है। इस प्रकार, त्याग सिद्धान्त के समान, उत्पादक शक्ति का सिद्धान्त करदाता की मनोवैज्ञानिक भावनाओं पर आधारित नहीं है, अपितु उसकी करदेय क्षमता पर आधारित है जो कि उसकी आय, संचित धन तथा सम्पत्ति आदि के द्वारा मापी जाती है। अतः उत्पादक शक्ति का सिद्धान्त अनेक बाह्य तत्वों पर भी विचार करता है जिनमें करदाता की आय तथा सम्पत्ति आदि भी सम्मिलित है जो कि वास्तव में किसी व्यक्ति की कर देने की योग्यता को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, यह सिद्धान्त केवल आय को ही दृष्टिगत नहीं रखता, अपितु इस बात पर भी विचार करता है कि वह आय अर्जित किस प्रकार की गई (अर्थात् व्यक्तिगत परिश्रम करके अर्जित की गई या सम्पत्ति के द्वारा); और यदि सम्पत्ति के द्वारा अर्जित की गई तो वह सम्पत्ति किस प्रकार प्राप्त की गई, अर्थात् क्या वह सम्पत्ति उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी अथवा व्यक्तिगत प्रयासों से वंचित की गई। किसी भी व्यक्ति की उत्पादन शक्ति मुख्यतः समाज के आर्थिक ढाँचे पर निर्भर होती है तथा उन लाभों पर कर अदा करने की योग्यता का माप किया जाये तो आर्थिक ढाँचे (economic structure) को तथा उस आर्थिक ढाँचे में व्यक्ति जिन लाभों को प्राप्त करता है, उन्हें भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए। इस प्रकार, त्याग सिद्धान्तों के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के विपरीत, उत्पादक शक्ति का सिद्धान्त सामाजिक तत्व को अधिक महत्त्व देता है।

### 9.4 उत्पादक शक्ति के सिद्धान्त में सामर्थ्य का माप (Index of Ability in Faculty Theory)

उत्पादक-शक्ति के सिद्धान्त के अनुसार, व्यक्ति की कर अदा करने की सामर्थ्य को मापने के तीन महत्त्वपूर्ण मापदण्ड हैं—

- (1) करदाता की आय,
- (2) करदाता की सम्पत्ति, तथा
- (3) करदाता का उपभोग स्तर या व्यय।

(क) आय (Income)—आय उस धनराशि का प्रतीक है जो कि एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत किसी परिवार द्वारा किसी क्रिया (activity) द्वारा प्राप्त की जाती है जिसमें उसके द्वारा अधिकृत टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का मूल्य भी सम्मिलित है। परन्तु मापदण्ड के रूप में केवल निबल आय (net income) पर ही विचार किया जाना चाहिए। ऊँची आय वाले व्यक्तियों पर अधिक कर लगाया जाना चाहिए पर निम्न आय वाले व्यक्तियों पर या तो कर कम मात्रा में लगाया जाए अन्यथा बिल्कुल छूट दे दी जाए। किन्तु मौदिक आय को कर सामर्थ्य का उचित आधार नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि—

- (1) यह सम्भव है कि दो व्यक्तियों की आय समान होते हुए भी उनकी कर सामर्थ्य अलग-अलग हो सकती है क्योंकि एक का दायित्व दूसरे से अधिक हो।
- (2) कुछ व्यक्ति कठोर परिश्रम से आय अर्जित करते हैं तो कुछ की आय सम्पत्ति से हो सकती है। ऐसी स्थिति में दोनों की समान आय होते हुए समान दर से कर लगाया जा सकता है।

## नोट

(ख) सम्पत्ति (Property)—सम्पत्ति तथा संचित धन की मात्रा को भी कर अदा करने की योग्यता का एक महत्वपूर्ण मापदण्ड माना जाता है। इसका कारण यही है कि लोगों का रहन-सहन का स्तर केवल आय से ही प्रभावित नहीं होता, अपितु संचित धन तथा सम्पत्ति से भी प्रभावित होता है। किन्तु सम्पत्ति को योग्यता का मापक बनाने में निम्न कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं—

- (1) समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जिनकी आय तो बहुत अधिक होती है किन्तु वे कर के भय से मितव्ययी नहीं हैं जिसके परिणाम से वे सम्पत्ति नहीं रखते। इस स्थिति में यदि सम्पत्ति को कर का आधार माना गया तो ऐसे लोग कर से मुक्त हो जायेंगे।
- (2) सम्पत्ति का आधार इसलिए भी भ्रामक है क्योंकि सम्पत्ति से किसी वर्ष आय प्राप्त हो सकती है और नहीं भी। इसके अतिरिक्त समान आकार वाली सम्पत्ति से आय भिन्न-भिन्न प्राप्त हों।
- (3) यदि सम्पत्ति पर कर लगाया गया तो लोग सम्पत्ति एकत्रित करने में हिचकेंगे और वे अमितव्ययी हो जायेंगे।
- (4) सम्पत्ति का वास्तविक मूल्य आंकना भी सम्भव नहीं है।
- (5) एक सामान्य सम्पत्ति कर, चूँकि बड़ी सम्पत्ति के मुकाबले छोटी सम्पत्ति पर अधिक बोझ डालता है, अतः यह प्रतिगामी (regressive) प्रकृति की होती है।

(ग) उपभोग व्यय (Consumption Expenditure)—प्रो० कैल्डोर जैसे कुछ अर्थ-शास्त्रियों का यह मत है कि कर अदा करने की सामर्थ्य का सच्चा मापदण्ड न तो आय है और न ही सम्पत्ति। उनका कहना है कि लोगों का आर्थिक कल्याण उस आय पर निर्भर होता है जो कि खर्च कर दी जाती है; अर्थात् आय पर नहीं, बल्कि खर्च पर निर्भर होता है। संचित धन तथा सम्पत्ति उस समय तक सन्तुष्टि प्रदान नहीं कर सकते जब तक कि उनका उपयोग उपभोग के लिए न किया जाए। अतः उपभोग कर अदा करने की सामर्थ्य को मापने का एक महत्वपूर्ण मापदण्ड है। उपभोग स्तर की करदान की योग्यता को मापने का यह आधार व्यावहारिक रूप से उचित नहीं है, क्योंकि—

- (1) किसी व्यक्ति का अधिक व्यय इस बात का परिचायक नहीं होता है कि उसकी कर सामर्थ्य अधिक है। उदाहरणस्वरूप, एक बड़े परिवार का उपभोग व्यय एक छोटे परिवार से होता है। परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि बड़े परिवार की करदान योग्यता अधिक है।
- (2) यदि करदान योग्यता का आधार उपभोग मान लिया जाए तो उससे उपभोग में कमी आयेगी जिसके परिणामस्वरूप लोगों की कार्यक्षमता घट जायेगी जिसका उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।
- (3) यह ठीक है कि आय का उपार्जन आवश्यकताओं की संतुष्टि (उपभोग) के लिए होता है किन्तु आय का उपयोग केवल उपभोग के लिए ही नहीं होता है। बचत आय का महत्वपूर्ण अंग है जिसका बाद में विनियोग हो जाता है। यदि कर सामर्थ्य का आधार उपभोग मान लिया जायेगा तो बचत एवं विनियोग की उपेक्षा हो जायेगी जो कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं है।

चूँकि वस्तुपरक दृष्टिकोण की भी अनेक गम्भीर मर्यादाएँ हैं, अतः व्यक्ति की कर देने की सामर्थ्य को मापने के तरीके का प्रश्न अभी भी बिना उत्तर दिये ही रह जाता है। वास्तव में बात यह है कि प्राचीन काल में आवश्यक सम्पत्ति (property) करधान का एक महत्वपूर्ण आधार था। परन्तु वर्तमान समय में, आय को ही व्यक्ति की कर अदा करने की सामर्थ्य को मापने का न्यायपूर्ण मापदण्ड माना जाता है। आय को आधार बनाने का एक लाभ यह है कि इसके अन्तर्गत करधान को आरोही बनाना सरल होता है। परन्तु व्यवहार में जब व्यक्ति की कर देने की सामर्थ्य का निर्धारण किया जाये तो आय के अलावा सम्पत्ति तथा उपभोग व्यय को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि आय के सम्बन्ध में भी केवल उसकी मात्रा महत्वपूर्ण नहीं है अपितु आय के स्रोत का भी भारी महत्व है, अर्थात् इस बात को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए कि आय व्यक्तिगत सेवाओं द्वारा कमाई गयी है अथवा सम्पत्ति के स्वामित्व से प्राप्त हुई है। यहीं जब व्यक्ति की कर देने की सामर्थ्य का निर्धारण किया जाये तो कुछ अन्य बातों पर भी विचार किया जाना चाहिए जैसे कि परिवार का आकार, आय की नियमितता तथा

नोट

वह अवधि जिसके लिये आय की गणना की गई है। इस प्रकार, स्पष्ट है कि कराधान के भार का न्यायपूर्ण वितरण करने के लक्ष्य को प्राप्त करने में वस्तुपरक दृष्टिकोण के अनुपूरक (supplementary) के रूप में कार्य करता है। उपर्युक्त विवेचन के पश्चात्, निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि कराधान के भार का न्यायपूर्ण वितरण करने की दृष्टि से सामर्थ्य सिद्धान्त (Ability Theory) ही सबसे अधिक उपयुक्त सिद्धान्त है।

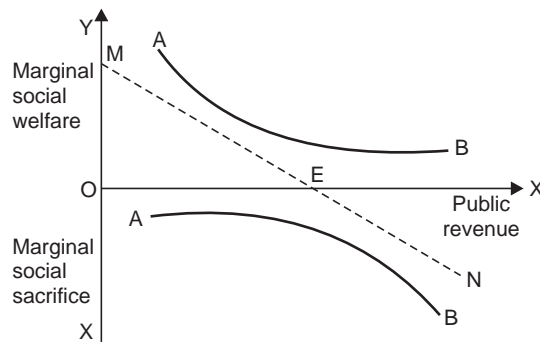
### आधुनिक मत-अधिकतम सामाजिक कल्याण

#### (Present Views—Maximum Welfare Principle)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने करारोपण के उचित वितरण के लिए न्याय-सिद्धान्त के स्थान पर कल्याण सिद्धान्त को प्राथमिकता दी है। प्रो. पीगू ने सीमान्त त्याग सिद्धान्त का प्रतिपादन कल्याण को ध्यान में रखकर ही किया। एजवर्थ कल्याण के तर्क को स्वीकार करता है। उसका कहना है कि कल्याण तब अधिकतम होगा जब सीमान्त उपयोगिता समान होगी। इसके विपरीत, पीगू ने न्यूनतम सामूहिक त्याग के सिद्धान्त को अधिकतम कल्याण से सम्बन्धित किया है। वास्तव में करारोपण का समता सिद्धान्त एवं कल्याण सिद्धान्त दोनों ही दोषपूर्ण हैं। ये दोनों विचारधाराएँ ही संकुचित हैं क्योंकि वे केवल बजट के करारोपण का ही अध्ययन करती हैं। वास्तव में करों में न्यायशीलता का अध्ययन करते समय केवल कर भार को ही न लें बल्कि उन लाभों को भी सम्मिलित करें जो सार्वजनिक व्यय से प्राप्त होते हैं। डाल्टन, पीगू एवं मुसग्रेव ने कर के भार तथा इसके वितरण की समस्या में सरकारी सेवाओं को सम्मिलित करके इसको न्याय के रूप में प्रदान करने का प्रयास किया क्योंकि कल्याण को कर तथा सार्वजनिक व्यय दोनों ही प्रभावित करते हैं। जहाँ कर कल्याण को कम करता है वहाँ सार्वजनिक व्यय कल्याण में वृद्धि करती है। पीगू एवं डाल्टन ने बजट नीति सम्बन्धी दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है—

- (1) सरकार को विभिन्न मदों पर इस प्रकार से व्यय करना चाहिए ताकि प्रत्येक मद पर की गयी राशि से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता बराबर हो।
- (2) सार्वजनिक व्यय को उस सीमा तक बढ़ाते रहना चाहिए जहाँ तक कि इस व्यय से उत्पन्न होने वाली उपयोगिता राज्य द्वारा लगाये गये करों से उत्पन्न असन्तोष के बराबर न हो जाए।

बजट नीति द्वारा सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना उपयुक्त रहता है। मुसग्रेव के मतानुसार, करों के आवंटन में न्यूनतम त्याग सिद्धान्त, सार्वजनिक व्यय के निर्धारण के अधिकतम से मेल खाते हैं और ये दोनों ही बजट के सामान्य सिद्धान्त में पाये जाते हैं।<sup>11</sup> मुसग्रेव ने इसे चित्र-6 द्वारा समझाने की कोशिश की है। रेखाचित्र में OX-अक्ष पर सार्वजनिक आय दर्शायी गयी है। AB वक्र सार्वजनिक व्यय से समाज को प्राप्त होने वाले सन्तोष को प्रदर्शित करता है। इसके विपरीत A'B' वक्र करारोपण से उत्पन्न सीमान्त सामाजिक त्याग को प्रदर्शित करता है। AB वक्र नीचे घट रहा है जो यह बतलाता है कि जैसे-जैसे सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे व्यक्तियों को



चित्र 6

1. "Minimum sacrifice approach to be the allocation of taxes is matched by a maximum benefit approach to the determination of public expenditure and the two are combined in a general theory of budget planning."  
—Musgrave

**नोट**

होने वाला संतोष एवं लाभ की मात्रा घटती जाती है। इसके विपरीत A'B' वक्र यह दर्शाता है कि करारोपण में वृद्धि होने से करदाता की त्याग की मात्रा बढ़ती जाती है। MN वह शुद्ध सामाजिक कल्याण है जो A A में से A'B' घटाकर प्राप्त होता है। E बिन्दु साम्य है जहाँ सीमान्त सामाजिक त्याग=सीमान्त सामाजिक लाभ होता है। इसी बिन्दु पर अधिकतम सामाजिक कल्याण प्राप्त होगा।

**9.5 कर सामर्थ्य सिद्धान्त व अर्द्धविकसित देश****(Ability to Pay Theory and Under-developed Countries)**

अनेक विचारकों का मत है कि करदान योग्यता सिद्धान्त सार्वभौमिक (universal) सिद्धान्त है और यह आसानी से अर्द्धविकसित देशों में लागू किया जा सकता है। किन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि अर्द्धविकसित देशों की स्थिति में कर सामर्थ्य सिद्धान्त करारोपण ढाँचे के अनुरूप नहीं बन सकता है, इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(1) **आर्थिक विकास (Economic Development)**—अर्द्धविकसित देशों में करारोपण का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विकास के लिए बचत का सृजन एवं संव्यूहन करना होता है। अर्द्धविकसित देशों में करदान योग्यता सिद्धान्त तभी लागू किया जा सकता है जबकि इससे आय व सम्पत्ति के वितरण में व्याप्त असमानताओं को कम किया जाये। जबकि इन देशों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास होता है। आय की असमानताओं में कमी करना गौण विषय होता है। इस विषय की पूर्ति में करदान योग्यता सिद्धान्त अधिक सहायक नहीं होता है। इस सम्बन्ध में **नक्सै** की टिप्पणी ठीक है, “आर्थिक विकास के प्रसंग से लोक वित्त का प्राथमिक लक्ष्य अन्तर्वैयक्तिक (inter-personal) आय वितरण में परिवर्तन करना नहीं, बल्कि पूँजी निर्माण में अनुरक्त राष्ट्रीय आय के अनुपात में वृद्धि करना है।”

(2) **सीमित मात्रा**—करदान योग्यता सिद्धान्त का प्रमुख आधार आय एवं सम्पत्ति होती है जबकि अर्द्ध-विकसित देशों में इनकी सीमित मात्रा होती है। आर्थिक विकास के कार्यों को कार्यान्वित करने के लिए सरकार को जो वित्त प्रबन्ध करना पड़ता है वह मुख्यतया परोक्ष करों द्वारा ही प्राप्त होता है। आय एवं सम्पत्ति की सीमित मात्रा होने से प्रत्यक्ष कर सीमित मात्रा में ही लगाया जा सकता है।

(3) **साधनों की प्राप्ति**—कार्यशील वित्त प्रबन्ध (Activating Finance) एवं क्रियात्मक वित्त प्रबन्ध (Functional Finance) के दृष्टिकोण से करारोपण विकास के लिए साधन प्राप्ति को एक मुख्य अस्त्र माना जाता है। यदि इस दृष्टिकोण को मान लिया तो अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था में करदान-योग्यता सिद्धान्त मूलभूत सिद्धान्त नहीं हो सकता क्योंकि अर्द्धविकसित देशों में लोगों की आय बहुत कम है और आय में बहुत असमानता पायी जाती है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि करदान योग्यता सिद्धान्त चाहे करारोपण में कितना भी न्यायशील क्यों न हो अर्द्धविकसित देशों की परिस्थितियों में लागू नहीं किया जा सकता।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)****बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

6. कुछ लेखकों ने विशेषकर अमेरिकी लेखकों ने कर अदा करने की सामर्थ्य को मापने के लिए किस दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया?
 

(अ) वस्तुपरक	(ब) व्यक्तिपरक
(स) व्यवहारपरक	(द) इनमें कोई नहीं।
7. किसी भी व्यक्ति की उत्पादन शक्ति मुख्यतः समाज के किस ढाँचे पर निर्भर करती है?
 

(अ) अनार्थिक	(ब) आर्थिक
(स) सामाजिक	(द) सांस्कृतिक।
8. मापदण्ड के रूप में केवल किस आय पर ही विचार किया जाना चाहिए?
 

(अ) सबल	(ब) निर्बल
(स) निबल	(द) सकल।

नोट

9. सम्पत्ति के किस मूल्य को आंकना संभव नहीं है?
- (अ) वास्तविक (ब) अवास्तविक  
(स) सार्वजनिक (द) बाजार।
10. अनेक विचारकों के मतानुसार करदान योग्यता सिद्धांत किस प्रकार का सिद्धांत है?
- (अ) सार्वजनिक (ब) सार्वभौमिक  
(स) व्यक्तिगत (द) उपरोक्त सभी।

## 9.6 सारांश (Summary)

- अतः कराधान के द्रव्य-भार को ऐसी रीति से बाँटा जाना चाहिए जिससे कि प्रत्येक करदाता को समान त्याग करना पड़े। इस प्रकार, कराधान में न्यायपूर्ण समानता लाने के लिए यह आवश्यक है कि एक-सी परिस्थितियों में रहने वाले व्यक्तियों से मान व्यवहार किया जाए ताकि क्षैतिज साम्यता (horizontal equity) प्राप्त की जा सके, और असमान परिस्थितियों में रहने वाले सभी व्यक्तियों से कर लगाने के मामले में भिन्न-भिन्न व्यवहार किया जाए, ताकि शीर्ष साम्यता (vertical equity) भी प्राप्त की जा सके।
- कराधान का ऐसा वितरण, जो कि न्यूनतम समस्त त्याग के सिद्धान्त (principle of least aggregate sacrifice) के अनुरूप हो, वह हो सकता है जो समाज के सभी सदस्यों द्वारा किये जाने वाले कुछ त्याग (total sacrifice) को नहीं, अपितु सीमान्त त्याग को बराबर कराये।
- “व्यक्ति अपनी-अपनी सम्बन्धित सामर्थ्य के अनुपात में अंशदान (Contribution) दें।” इस कथन में अनुपात (proportion) शब्द का अर्थ कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत ‘समानपूर्ण त्याग’ से भी लिया जा सकता है और कुछ अन्य परिस्थितियों के अन्तर्गत ‘समान अनुपाती त्याग’ से भी लिया जा सकता है।
- त्याग सिद्धान्त अथवा व्यक्तिपरक दृष्टिकोण के विपरीत, उत्पादक-शक्ति का सिद्धान्त करदाता की भावनाओं एवं उसके कष्टों की अपेक्षा उसकी करदेय क्षमता (taxable capacity) के द्राव्यिक मूल्य (money value) को दृष्टिगत रखता है।

## 9.7 शब्दकोश (Keywords)

- समता (Equity)–तुल्यता।
- अंशदान (Contribution)–थोड़ा योगदान।
- साम्य (Equilibrium)–समानता।
- अधिदान (Bounties)–साधारण से अधिक दान।

## 9.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. संपत्ति के भुगतान-सामर्थ्य की अनुपूरक कसौटी क्यों कहा गया है?
2. कर देने की सामर्थ्य को कैसे मापा जाता है?
3. व्यक्तिपरक दृष्टिकोण और वस्तुपरक दृष्टिकोण में क्या अंतर है?
4. समान कुल त्याग को स्पष्ट करें।
5. सिद्धांत का मुसग्रेव उपयोगिता मॉडल की व्याख्या करें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |            |             |          |          |
|------------|-------------|----------|----------|
| 1. संपत्ति | 2. उपयोगिता | 3. ह्रास | 4. आरोही |
| 5. गणितीय  | 6. (अ)      | 7. (ब)   | 8. (स)   |
| 9. (अ)     | 10. (ब)।    |          |          |

### 9.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

---



पुस्तकें

1. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस-सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
4. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
5. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## इकाई-10: कराघात (कर का दबाव), कर-विवर्तन एवं करापात (कर का भार) (Impact, Shifting And Incidence of Taxation)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 कराघात अथवा कर का दबाव (Impact of Tax)

10.2 कर का विवर्तन (Shifting of Tax)

10.3 कर का भार अथवा करापात (Incidence of a Tax)

10.4 सारांश (Summary)

10.5 शब्दकोश (Keywords)

10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- कराघात अथवा कर के दबाव को समझने में।
- कर का भार अथवा करापात को समझने में।
- कर के विवर्तन को जानने हेतु।

### प्रस्तावना (Introduction)

सामान्य अर्थों में कर विवर्तन का अभिप्राय है करदाता द्वारा कर के भार को किसी दूसरे पर टालना। कर विवर्तन वह प्रक्रिया है जिसमें करदाता अपने करभार को दूसरे पर डालने का प्रयास करता है। इस प्रकार, विवर्तन का करभार से गहरा संबंध है, क्योंकि कर भार से बचने के लिए ही कर विवर्तन किया जाता है।

कर के भार को करापात भी कहते हैं। यह विवर्तन का अंतिम परिणाम है, यह प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है।

### 10.1 कराघात अथवा कर का दबाव (Impact of Tax)

कराघात अथवा कर का दबाव उस व्यक्ति पर पड़ता है जिस पर सरकार कर लगाती है और जो वास्तव में सरकार को कर का भुगतान करता है और करदाता के रूप में सरकार के पास इसी व्यक्ति का नाम पंजीकृत होता है।



**नोट**

उदाहरण के लिए, यदि शक्कर पर दस रुपए प्रति क्विंटल का कर सरकार द्वारा लगाया जाता है तो शक्कर के उत्पादक से यह वसूल किया जाता है। अतः कराघात इसी उत्पादक पर होगा क्योंकि सरकार को कर भुगतान विक्रेता से ही प्राप्त होता है। अन्य शब्दों में यही उत्पादक, “कर के भुगतान का प्रारम्भिक मौद्रिक भार उठाता है।” सेलिगमैन (Seligman) के अनुसार, “कर देने का तात्कालिक प्रभाव जिस व्यक्ति पर पड़ता है, उसे कराघात कहते हैं।” जब करदाता किसी कर विशेष के भार को दूसरों पर विवर्तित नहीं कर पाता तो उस पर कराघात के साथ कर का भार भी पड़ता है। प्रत्यक्ष कर इसी प्रकृति के होते हैं, जैसे, आय-कर, सम्पत्ति कर आदि का कराघात और करापात उसी व्यक्ति पर पड़ता है जो उसे सरकारी कोष में जमा करता है।

**10.2 कर का विवर्तन (Shifting of Tax)**

सामान्य अर्थों में कर विवर्तन का अभिप्राय है करदाता द्वारा कर के भार को किसी दूसरे पर टालना। **कर विवर्तन वह प्रक्रिया है जिसमें करदाता अपने करभार को दूसरों पर डालने का प्रयास करता है।** कर विवर्तन की प्रक्रिया उस समय होती है जब कर का दबाव और कर का भार अलग-अलग व्यक्तियों पर पड़ता है; जैसे बिक्री कर पहले व्यापारियों से लिया जाता है तो उन पर कर का दबाव पड़ता है, किन्तु व्यापारी जब इन करों की मात्रा को आंशिक अथवा पूर्णरूप से वस्तु के मूल्य में सम्मिलित करके उपभोक्ताओं पर टाल देते हैं तो कर का भार अन्तिम रूप से उपभोक्ताओं पर पड़ता है—इस प्रकार कराघात से करापात की स्थिति में पहुँचने की प्रक्रिया ही कर विवर्तन है। **प्रो. मसग्रेव** के शब्दों में, “पारम्परिक अर्थ में कर विवर्तन से आशय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार मूल्यों में समाहित करके दबाव के बिन्दु से अन्तिम बिन्दु की ओर हटा दिया जाता है।” इस प्रकार, विवर्तन का करभार से गहरा सम्बन्ध है क्योंकि कर भार से बचने के लिए ही कर विवर्तन किया जाता है। कर विवर्तन जिस बिन्दु के आगे नहीं होता वह बिन्दु करापात अथवा कर भार का बिन्दु होता है। जब कर विवर्तन नहीं हो पाता तो कराघात एवं करापात दोनों एक ही व्यक्ति पर पड़ते हैं।

**कर विवर्तन के प्रकार**

कर विवर्तन दो प्रकार का होता है—

- (1) आगे की ओर कर विवर्तन (Forward Shifting)
- (2) पीछे की ओर कर विवर्तन (Backward Shifting)

जब कर किसी उत्पादक पर लगाया जाए, किन्तु उसे वह क्रेता पर डाल दे तब यह ‘**आगे की ओर विवर्तन**’ कहलाता है और इसके विपरीत जब कर किसी उत्पादक पर लगाया जाए और उत्पादक उस कर को कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले व्यक्ति अथवा उत्पादन में काम कर रहे श्रमिक पर स्थानान्तरित कर दे तब यह ‘**पीछे की ओर विवर्तन**’ कहलाता है। कर विवर्तन के प्रकारों को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। जब सरकार चीनी पर उत्पादन कर लगाती है और चीनी का उत्पादक कर के भार को उपभोक्ताओं की ओर टाल देता है तो इसे **आगे की ओर कर विवर्तन** कहा जाएगा, किन्तु यदि चीनी का उत्पादक कर भार को गन्ने के उत्पादकों पर टालने में सफल हा जाता है तो यह **पीछे की ओर कर विवर्तन** का उदाहरण है।



नोट्स करदाता अपने करभार को दूसरों पर डालने का प्रयास करता है, जिसे विवर्तन की संज्ञा देते हैं।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. कर का दबाव उस व्यक्ति पर पड़ता है जिस पर सरकार ..... लगाती है।
2. उत्पादक कर के भुगतान का प्रारम्भिक ..... भारत उठाता है।

नोट

3. .... वह प्रक्रिया है जिसमें करदाता अपने करभार को दूसरों पर डालने का प्रयास करता है।
4. विवर्तन से .... का गहरा संबंध है।
5. कर विवर्तन जिस बिंदु के आगे नहीं होता वह बिंदु .... का बिंदु होता है।

### 10.3 कर का भार अथवा करापात (Incidence of a Tax)

कर के भार को करापात भी कहते हैं। फिण्डेल शिराज के शब्दों में, “करापात विवर्तन का अन्तिम परिणाम है, यह प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है। इस प्रकार करापात की समस्या में यह विश्लेषण किया जाता है कि कर का भुगतान कौन करता है अर्थात् मौद्रिक भार किस पर पड़ता है।” यह परिभाषा स्पष्ट करती है कि कर का भार उस व्यक्ति पर पड़ता है जो अन्तम रूप से कर का भुगतान करता है अर्थात् जो अन्तिम रूप से कर के मौद्रिक भार को वहन करता है। जैसे शक्कर के उत्पादक पर कर लगाया जाता है। यदि उत्पादक इस कर को शक्कर का मूल्य बढ़ाकर उपभोक्ताओं पर टालने में सफल हो जाता है तो कर का भार उपभोक्ताओं पर पड़ेगा क्योंकि अन्तिम रूप से शक्कर के उपभोक्ताओं पर ही कर का मौद्रिक भार पड़ेगा। यदि उत्पादक शक्कर पर लगाए गए कर को उपभोक्ताओं पर टालने में सफल नहीं होता तो कराघात के साथ कर का भार भी उत्पादक पर ही पड़ेगा। सामान्यतः शक्कर का उपभोक्ता कर के भार को और आगे नहीं टाल सकता और स्वयं कर का भार सहन करता है।

प्रो. सेलिंगमैन के अनुसार, “अन्तिम करदाता पर कर के बोझ के निर्धारण को कर का भार कहा जाता है।”

प्रो. फिलिप ई. टेलर (Philip E. Taylor) के अनुसार, “करभार उस व्यक्ति पर होता है जो उसे और आगे नहीं टाल सकता है।”

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि करापात या कर भार में निम्नांकित तीन तत्त्व सम्मिलित होते हैं—

- (i) करापात कर का अन्तिम भार है जिसे आगे किसी अन्य पर टाला नहीं जा सकता।
- (ii) यह कर का मौद्रिक भार है।
- (iii) यह कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है क्योंकि यह सरकारी कोष में जमा कुल राशि के बराबर होता है।

#### 10.3.1 कराघात एवं करापात में अन्तर

##### (Distinction Between Impact & Incidence of Taxation)

कराघात और करापात में अन्तर करारोपण के प्रारम्भिक भार एवं अन्तिम भार के आधार पर किया जाता है। कराघात एवं करापात में अन्तर प्रदर्शित करने वाले मुख्य बिन्दु हैं—

1. कराघात कर के प्रारम्भिक भार को प्रकट करता है और करापात कर के अन्तिम भार को प्रकट करता है।
2. कराघात उस व्यक्ति पर पड़ता है जो उस राशि का भुगतान करता है जबकि करापात उस व्यक्ति पर होता है जो अन्तिम रूप से उस कर को वहन करता है।
3. कराघात का अभिप्राय सरकार को किए गए कर राशि के मौद्रिक भुगतान से है जबकि करापात से अभिप्राय कर के प्रत्यक्ष मौद्रिक भार से लगाया जाता है।
4. करापात उस व्यक्ति पर होता है जो इसे किसी दूसरे पर टाल नहीं सकता जबकि कराघात में कर भार किसी दूसरे पर टाला जा सकता है। दूसरे शब्दों में, करापात अथवा कर भार का विवर्तन किया जा सकता है, किन्तु कराघात का नहीं।
5. कराघात से बचना कर अपवंचन (Tax Evasion) कहलाता है जो अवैधानिक है जबकि करापात अथवा कर भार से बचने के लिए प्रयत्न किया जाना पूर्णतः वैधानिक है।

## नोट

## 10.3.2 कर का मौद्रिक भार और वास्तविक भार

## (Money Burden And Real Burden of Tax)

प्रो. डाल्टन ने कर (Tax) के प्रत्यक्ष भार और अप्रत्यक्ष भार तथा कर के मौद्रिक और वास्तविक भार में भेद किया है।

यदि एक उत्पादक वस्तु के मूल्यों को कर की मात्रा के अनुसार बढ़ाने में सफल हो जाता है तो कर का **प्रत्यक्ष मौद्रिक भार** उपभोक्ताओं पर पड़ता है क्योंकि उसे वस्तु का अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि उत्पादक को पहले ही कुछ करों का भुगतान सरकार को कर देना पड़ता है जिससे उत्पादक को उतनी राशि पर ब्याज की हानि होती है, इसे कर का **अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार** कहते हैं अन्य शब्दों में, जब करदाता को कर की मात्रा की तुलना में अधिक राशि से वंचित होना पड़ता है तो इसे ही कर का अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार कहते हैं।



क्या आप जानते हैं कर भार उस व्यक्ति पर होता है जो उसे और आगे नहीं टाल सकता है।

**कर वंचन (Tax Evasion)**—जिस व्यक्ति की आय कर-योग्य (Taxable) होती है किन्तु वह अपनी आय का झूठा हिसाब दिखाकर अथवा गलत बिक्री दिखाकर कम करों का भुगतान करता है तो इसे कर वंचन कहते हैं अर्थात् इसमें करदाता करों की चोरी करता है।

**कर से बचाव (Tax Avoidance)**—यह कर वंचन से भिन्न स्थिति है। जब करदाता कानून का पालन करते हुए कर बचाता है तो उसे कर का बचाव कहते हैं। जैसे भारत में वर्तमान कानून के अनुसार यदि वेतनभोगी कर्मचारी अपनी आय से जीवन बीमा, संचयी सावधि जमा, सामान्य भविष्य निधि आदि में 80,000 ₹ तक जमा करता है तो इस बचत पर आय-कर में से 20 प्रतिशत की छूट (अधिकतम 16,000 ₹) प्राप्त होती है।

**कर विवर्तन और कर वंचन में अन्तर**—कर विवर्तन और कर वंचन में अन्तर है। जब करदाता कर का भुगतान तो कर देता है परन्तु कर के भार को दूसरों पर टाल देता है तो इसे कर विवर्तन कहते हैं। जैसे विक्रय कर की राशि विक्रेता, उपभोक्ताओं पर टाल देता है। इसके विपरीत कर वंचन में करदाता झूठा हिसाब प्रस्तुत करके कर चुकाने से बच जाता है।

कर विवर्तन और कर वंचन में निम्न भेद हैं—

- (i) कर विवर्तन एक स्वाभाविक तथा वैज्ञानिक प्रक्रिया है जबकि कर वंचन अवैधानिक कार्य है जो दण्डनीय अपराध है।
- (ii) कर विवर्तन से सरकार को राजस्व की हानि नहीं होती जबकि कर वंचन से सरकार को भारी आर्थिक क्षति होती है।
- (iii) कर विवर्तन में कर का भार किसी-न-किसी को सहना ही पड़ता है जबकि कर वंचन में करों का भुगतान ही नहीं किया जाता तो उसके भार का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।
- (iv) कर विवर्तन से नैतिक पतन का कोई सम्बन्ध नहीं है जबकि कर वंचन से समाज में बेईमानी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि अवांछनीय कार्यों को प्रोत्साहन मिलता है।



टास्क कर वंचन से क्या अभिप्राय है?

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False):

6. कर के भार को करापात भी कहते हैं।
7. कराघात कर के अंतिम भार को प्रकट करता है और करापात कर के प्रारंभिक भार को प्रकट करता है।
8. कराघात से बचना कर अपवंचन कहलाता है।
9. यदि एक उत्पादक वस्तु के मूल्यों को कर की मात्रा के अनुसार बढ़ाने में सफल हो जाता है तो कर का मौद्रिक भार उत्पादक पर ही पड़ता है।
10. जब करदाता कानून का पालन करते हुए कर बचाता है तो उसे कर का बचाव कहते हैं।

## 10.4 सारांश (Summary)

- कराघात अथवा कर का दबाव उस व्यक्ति पर पड़ता है जिस पर सरकार कर लगाती है और जो वास्तव में सरकार को कर का भुगतान करता है और करदाता के रूप में सरकार के पास इसी व्यक्ति का नाम पंजीकृत होता है।
- कर देने का तात्कालिक प्रभाव जिस व्यक्ति पर पड़ता है, उसे कराघात कहते हैं। जब करदाता किसी कर विशेष के भार को दूसरों पर विवर्तित नहीं कर पाता तो उस पर कराघात के साथ कर का भार भी पड़ता है।
- सामान्य अर्थों में कर विवर्तन का अभिप्राय है करदाता द्वारा कर के भार को किसी दूसरे पर टालना। कर विवर्तन वह प्रक्रिया है जिसमें करदाता अपने करभार को दूसरों पर डालने का प्रयास करता है।
- करापात विवर्तन का अन्तिम परिणाम है, यह प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है। इस प्रकार करापात की समस्या में यह विश्लेषण किया जाता है कि कर का भुगतान कौन करता है अर्थात् मौद्रिक भार किस पर पड़ता है।
- कराघात और करापात में अन्तर करारोपण के प्रारंभिक भार एवं अन्तिम भार के आधार पर किया जाता।
- यदि एक उत्पादक वस्तु के मूल्यों को कर की मात्रा के अनुसार बढ़ाने में सफल हो जाता है तो कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार उपभोक्ताओं पर पड़ता है क्योंकि उसे वस्तु का अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है।

## 10.5 शब्दकोश (Keywords)

- विवर्तन (Shifting)–दूसरे पर टालना।
- करापात (Incidence of Tax)–कर लगाना।

## 10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कर विवर्तन से क्या अभिप्राय है?
2. कराघात को परिभाषित करें।
3. करापात की व्याख्या करें।
4. कराघात एवं करापात में क्या अंतर है?
5. कर का मौद्रिक भार और वास्तविक भार से आप क्या समझते हैं?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |           |            |               |          |
|-----------|------------|---------------|----------|
| 1. कर     | 2. मौद्रिक | 3. कर विवर्तन | 4. करभार |
| 5. करापात | 6. सत्य    | 7. असत्य      | 8. सत्य  |
| 9. असत्य  | 10. सत्य।  |               |          |

### 10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

---



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
3. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
4. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस-सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।

नोट

## इकाई—11: कर-विवर्तन का सिद्धांत : संकेंद्रण एवं विकेंद्रण सिद्धांत (Theories of Tax Shifting : Concentration and Diffusion Theory)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 11.1 कर-विवर्तन अथवा करापात के सिद्धान्त  
(Theories of Shifting of Taxes or Incidence of Taxes)
- 11.2 कर भार अथवा कर-विवर्तन को निर्धारित करने वाले तत्व  
(Factors Determining Incidence or Shifting of Tax)
- 11.3 कर भार की समस्या के अध्ययन का महत्त्व  
(Importance of Incidence Problem Study)
- 11.4 कुछ मुख्य करों के भार का अध्ययन  
(Study of the Incidence of Some Important Taxes)
- 11.5 सारांश (Summary)
- 11.6 शब्दकोश (Keywords)
- 11.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 11.8 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- कर विवर्तन अथवा करापात के सिद्धांत को जानने हेतु।
- कर भार अथवा कर विवर्तन को निर्धारित करने वाले तत्वों की जानकारी में।
- कर भार की समस्या के अध्ययन के महत्त्व संबंधी बातों की जानकारी प्राप्त करने हेतु।

### प्रस्तावना (Introduction)

संकेंद्रण के सिद्धांत का प्रतिपादन फ्रांस के प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों ने किया तथा विकेंद्रण सिद्धांत का प्रतिपादन फ्रांसीसी अर्थशास्त्री कैनार्ड और ब्रिटिश विद्वान मैन्सफील्ड ने किया।

जब किसी वस्तु पर कर लगाया जाता है अथवा पुराने कर की दर में वृद्धि की जाती है तो करदाता कर के भार को दूसरों पर टालने का प्रयत्न करता है।

## नोट

करारोपण में न्याय की समस्या बहुत महत्वपूर्ण है। अतः समाज के विभिन्न वर्गों में कर का भार समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए।

### 11.1 कर-विवर्तन अथवा करापात के सिद्धान्त

#### (Theories of Shifting of Taxes or Incidence of Taxes)

कर के भार के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं जो निम्न प्रकार हैं—

(1) **संकेन्द्रण का सिद्धान्त** (Concentration Theory)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों ने किया। उनका विश्वास था कि भूमि में ही वास्तविक उत्पादन (Net Product) प्राप्त होता है अतः भूमि पर ही कर लगाया जाना चाहिए। उनका विचार था कि कर चाहे जिस व्यक्ति या वस्तु पर लगाया जाय, उसका अन्तिम भार भूमि पर ही पड़ेगा अर्थात् अन्त में जाकर कर भूमि पर ही केन्द्रित हो जाते हैं। अतः सरकार को अनेक प्रकार के कर न लगाकर केवल भूमि की शुद्ध आय पर ही कर लगाना चाहिए। इससे कर प्रक्रिया सरल होगी तथा करों को एकत्र करने की लागत भी कम होगी।

उपर्युक्त सिद्धान्त की आलोचना की गई है क्योंकि अर्थशास्त्रियों का मत है कि केवल भूमि ही उत्पादक नहीं होती वरन् अन्य व्यवसाय भी उत्पादक होते हैं अतः समाज के अन्य वर्गों पर भी कर लगाए जाने चाहिए। इससे करों का वितरण भी न्यायपूर्ण होगा। संकेन्द्रण सिद्धान्त यद्यपि दोषपूर्ण है पर इससे यह बात ज्ञात होती है कि करों का भुगतान अतिरेक से ही किया जा सकता है जो कर भार के आधुनिक सिद्धान्त का आधार है।

(2) **विकेन्द्रण अथवा प्रसरण सिद्धान्त** (Diffusion Theory)—इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **कैनार्ड** (Canard) और ब्रिटिश विद्वान **मैन्सफील्ड** (Mansfield) ने किया। यह सिद्धान्त संकेन्द्रण सिद्धान्त के विपरीत है तथा स्पष्ट करता है कि सभी कर चाहे जिस रूप में लगाए जाएँ, वे पूरे समाज में फैल जाते हैं। अन्य शब्दों में, कर विवर्तन उस समय तक होता रहता है जब तक कि वह सम्पूर्ण समाज में नहीं फैल जाता है। **कैनार्ड** के अनुसार जिस प्रकार शरीर की किसी एक शिरा से रक्त निकालने पर रक्त की कमी केवल उस शिरा में नहीं होती वरन् यह कमी पूरे शरीर में फैल जाती है, उसी प्रकार यदि वर्ग विशेष से सरकार कर वसूल करती है तो उस कर का भार कर विवर्तन के माध्यम से अन्य सभी वर्गों पर वितरित हो जाता है। इसी सन्दर्भ में **प्रो. फिण्डले शिराज** मैन्सफील्ड को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि “किसी भी स्थान पर लगाया जाने वाला कोई भी कर किसी झील में गिरने वाले कंकड़ की भाँति होता है जो पानी में इस प्रकार चक्र उत्पन्न करता है कि एक चक्र दूसरे को गति प्रदान करता चला जाता है और केन्द्र-बिन्दु से सम्पूर्ण परिधि आन्दोलित हो जाती है।”

उपर्युक्त सिद्धान्त की भी आलोचना की गई है। इस सिद्धान्त की यह मान्यता गलत है कि प्रत्येक कर को विवर्तित किया जा सकता है। वास्तव में प्रत्यक्ष करों का विवर्तन नहीं किया जा सकता। दूसरे, यह सिद्धान्त कर फैलने की प्रवृत्ति तो बताता है, कर की मात्रा को स्पष्ट नहीं करता। तीसरे यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता को लेकर चलता है जो अवास्तविक एवं काल्पनिक है।

(3) **कर भार का आधुनिक सिद्धान्त** (Modern Theory of Incidence)—कर भार का आधुनिक सिद्धान्त मूल्य और कीमत के विश्लेषण पर आधारित है। यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि कर का भुगतान केवल अतिरेक (Surplus) में से ही किया जाता है एवं कर वस्तु की उत्पादन लागत का भाग है। **प्रो. डाल्टन** और **प्रो. टेलर** का मत है कि उन्हीं करों का विवर्तन सम्भव है जो कीमत सौदों (Price Transactions) से सम्बन्धित होते हैं। यही कारण है कि प्रत्यक्ष करों को इसलिए विवर्तित नहीं किया जा सकता क्योंकि वे कीमत सौदों से सम्बन्धित नहीं होते। जैसा कि शुरू में ही स्पष्ट कर दिया गया है, करों का भुगतान अतिरेक से ही किया जाता है। यदि करदाता को कोई अतिरेक प्राप्त नहीं होता तो वह कर का विवर्तन करता है और यह विवर्तन उस समय तक किया जायगा जब तक कि ऐसी स्थिति पैदा नहीं हो जाती कि उसे आधिक्य प्राप्त होने लगे। वस्तुओं का मूल्य इतना होना चाहिए जिससे कर की राशि का भुगतान किया जा सके। यदि कर लगाने के बाद वस्तु के मूल्य में कोई वृद्धि नहीं होती तो इसका यह अर्थ है कि विक्रेता को वर्तमान मूल्य पर ही आधिक्य प्राप्त हो रहा है। इसके विपरीत, यदि वर्तमान मूल्य से कर का भुगतान नहीं किया जा सकता है तो वस्तु के मूल्य में वृद्धि कर दी जाएगी।

नोट



**नोट्स** करदाता कर का कितना भाग दूसरों पर विवर्तित कर सकता है, यह कर की प्रकृति, वस्तु की मांग एवं पूर्ति की लोच, वस्तु की उत्पादन, लागत आदि पर निर्भर रहता है।

## 11.2 कर भार अथवा कर-विवर्तन को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Incidence or Shifting of Tax)

जब किसी वस्तु पर कर लगाया जाता है अथवा पुराने कर की दर में वृद्धि की जाती है तो करदाता उस कर के भार को दूसरों पर टालने का प्रयत्न करता है। कर के भार को दूसरों पर किस सीमा तक टाला जा सकता है, यह आगे लिखे तत्वों पर निर्भर रहता है—

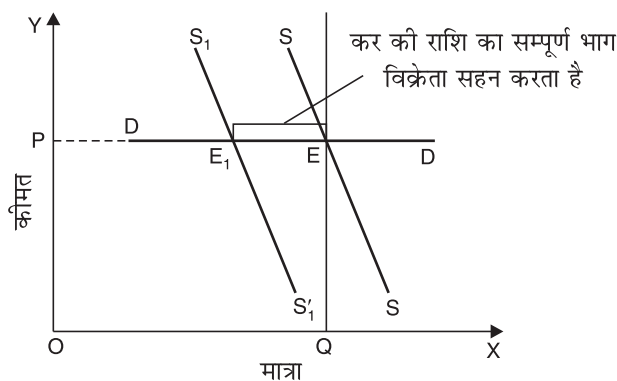
(1) **कर की प्रकृति (Nature of Tax)**—यह कर की प्रकृति पर निर्भर रहता है कि कर का विवर्तन किया जा सकता है अथवा नहीं और यदि किया जा सकता है, तो किस सीमा तक। उदाहरण के लिए, शुद्ध आय पर लगाए गए कर जैसे, आय-कर अथवा सम्पत्ति कर को विवर्तित नहीं किया जा सकता। किन्तु परोक्ष करों के भार को दूसरों पर टाला जा सकता है, जैसे विक्रय कर उपभोक्ताओं से वसूल किया जा सकता है। किन्तु यदि अल्पकाल में करों के भार को मूल्य में शामिल करने से बिक्री पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो विक्रेता कर के समस्त भार को उपभोक्ताओं पर नहीं टालता।

(2) **कर की शक्ति (Amount of Tax)**—यदि किसी वस्तु पर सरकार द्वारा बहुत ही अल्प मात्रा में कर लगाया जाता है तो व्यापारी उसका भार स्वयं सह लेता है तथा उपभोक्ताओं पर उसे नहीं टालता। इसका कारण यह है कि छोटी-सी राशि के लिए वह अपने ग्राहक को नाराज नहीं करना चाहता। किन्तु यदि कर की राशि अधिक है तो इसे उपभोक्ताओं पर टालने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाता है।

(3) **वस्तु की मांग की लोच (Elasticity of Demand)**—कर का विवर्तन वस्तु की लोच पर भी निर्भर रहता है। जिस वस्तु पर कर लगाया गया है यदि उसकी मांग लोचदार है तो कर का भार विवर्तित नहीं किया जाता तथा व्यापारी स्वयं भार का वहन करता है। इसका कारण यह है कि यदि व्यापारी वस्तु का मूल्य बढ़ाता है तो उपभोक्ता वस्तु की माँग कम कर देंगे और इससे विक्रेता की बिक्री कम हो जायेगी और उसे हानि होगी।

इसके विपरीत, यदि वस्तु की माँग बेलोचदार है तो विक्रेता कर के भार को सरलता से उपभोक्ताओं पर टाल देगा क्योंकि वस्तु का मूल्य बढ़ जाने पर भी उपभोक्ता वस्तु की माँग कम नहीं करेंगे। उदाहरणार्थ अनिवार्य वस्तुओं पर लगाए गए कर के भार को टाला जा सकता है पर विलासिताओं पर कर के भार को व्यापारी ही वहन करता है। विभिन्न माँग लोच दशाओं में कर विवर्तन को चित्र 1(A), 1(B), 1(C), 1(D) तथा 1(E) द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

(i) जब माँग पूर्णतः लोचदार हो ( $e_d = \infty$ )

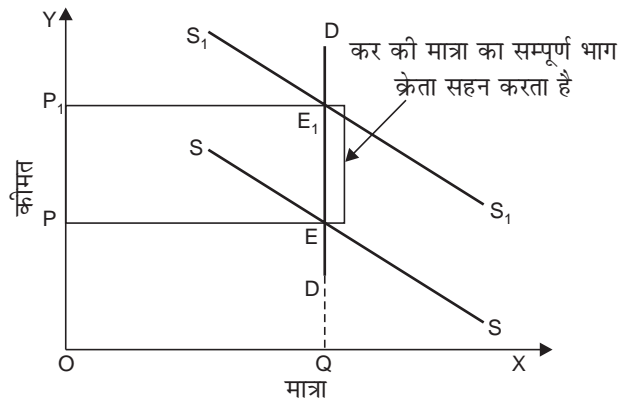


चित्र 1(A)



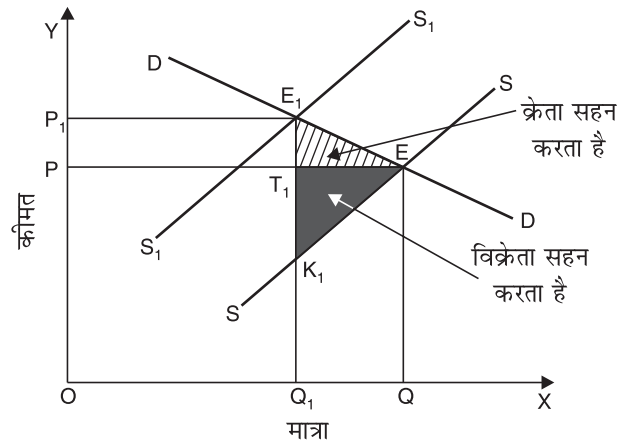
नोट

(ii) जब माँग की लोच पूर्णतया बेलोचदार हो ( $e_d = 0$ )



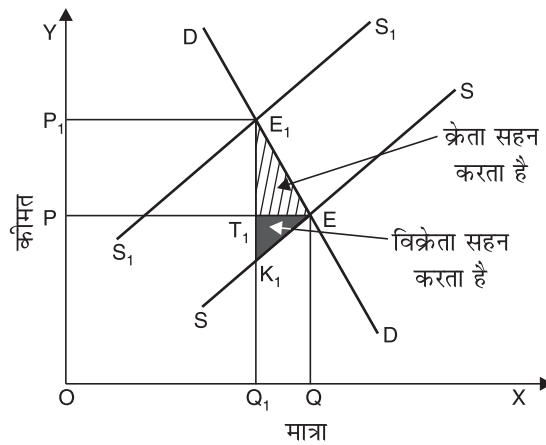
चित्र 1(B)

(iii) जब माँग की लोच इकाई से अधिक हो ( $e_d > 1$ )



चित्र 1(C)

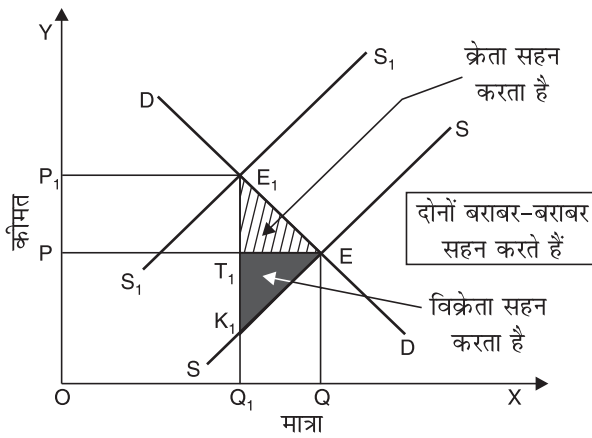
(iv) जब माँग की लोच इकाई से कम हो ( $e_d < 1$ )



चित्र 1(D)

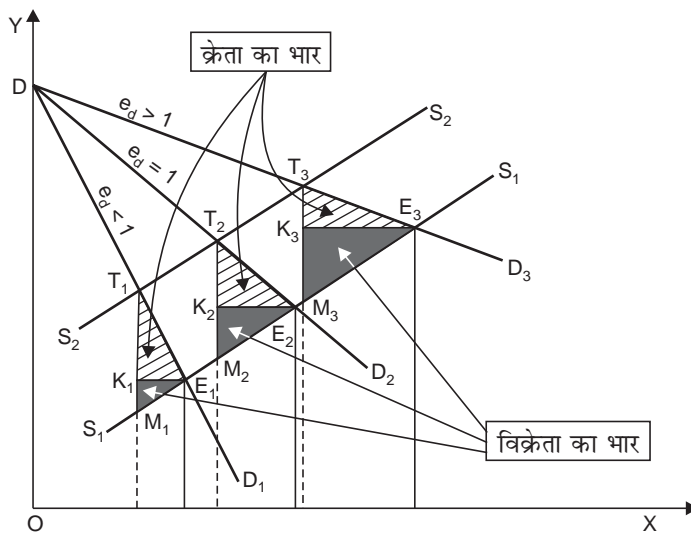
(v) जब माँग की लोच इकाई के बराबर हो ( $e_d = 1$ )

नोट



चित्र 1(E)

माँग की विभिन्न लोच की दशाओं में कर भार की स्थिति



चित्र 2

उपर्युक्त चित्र 2 से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे माँग की लोच बढ़ती जाती है वैसे-वैसे विक्रेता पर कर-भार अधिक होता जाता है अर्थात् माँग की लोच जितनी कम होगी कर का भार क्रेता पर उतना ही अधिक होगा तथा इसके विपरीत माँग की लोच जितनी अधिक होगी कर-भार विक्रेता पर बढ़ता चला जाएगा।

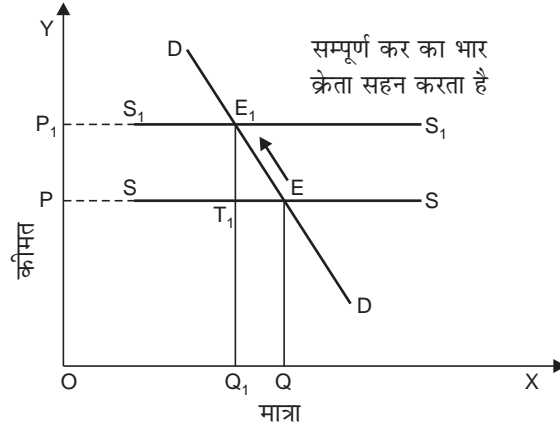
(4) वस्तु की पूर्ति की लोच (Elasticity of Supply)—वस्तु की पूर्ति की लोच भी कर भार के विवर्तन को प्रभावित करती है। यदि वस्तु की पूर्ति बेलोचदार है तो इस पर लगाए गए कर का भार व्यापारी पर ही पड़ेगा क्योंकि ऐसी स्थिति में विक्रेता वस्तु का मूल्य बढ़ाकर उसकी पूर्ति को प्रभावित नहीं कर सकता।

इसके विपरीत, यदि वस्तु की पूर्ति लोचदार है तो कर के भार को उपभोक्ताओं पर टाला जा सकता है। इसका कारण यह है कि कर के फलस्वरूप वस्तु में वृद्धि होने से यदि माँग में कमी होती है, तो व्यापारी वस्तु की पूर्ति को कम कर देता है जिससे मूल्य नहीं घट पाते। इस प्रकार, जिस वस्तु पर कर लगाया जाता है यदि उस वस्तु की माँग लोचदार और पूर्ति बेलोचदार होती है तो कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता। यदि वस्तु की माँग बेलोचदार होती है तो कर के भार का विवर्तन किया जा सकता है।

**नोट**

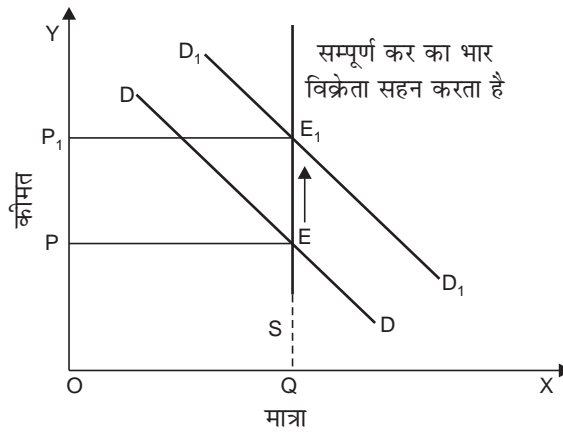
विभिन्न पूर्ति लोच दशाओं में कर-विवर्तन को चित्र 3(A), 3(B), 3(C), 3(D) तथा 3(E) द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

(i) जब पूर्ति की लोच पूर्णतया लोचदार हो ( $e_s = \infty$ )



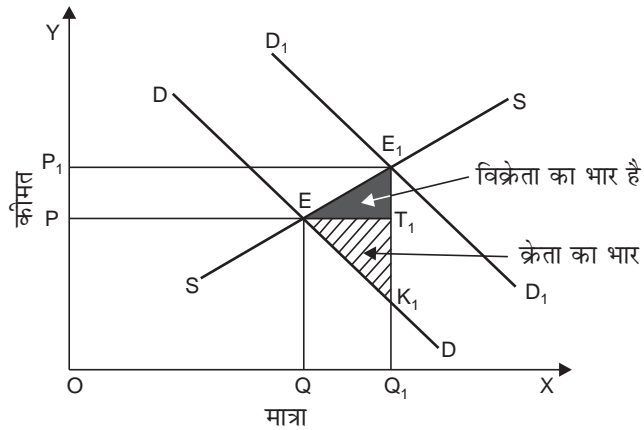
चित्र 3(A)

(ii) जब पूर्ति की लोच पूर्णतः बेलोचदार हो ( $e_s = 0$ )



चित्र 3(B)

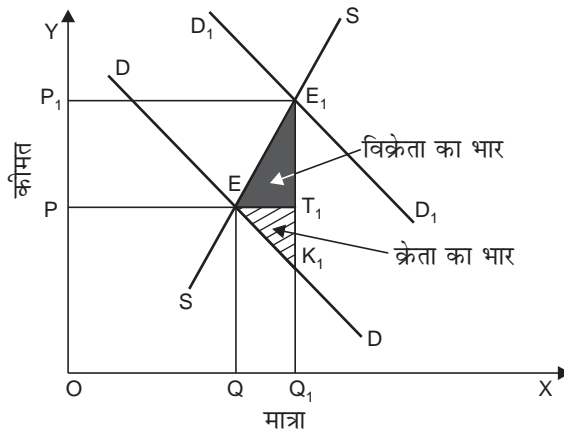
(iii) जब पूर्ति की लोच इकाई से अधिक हो ( $e_s > 1$ )



चित्र 3(C)

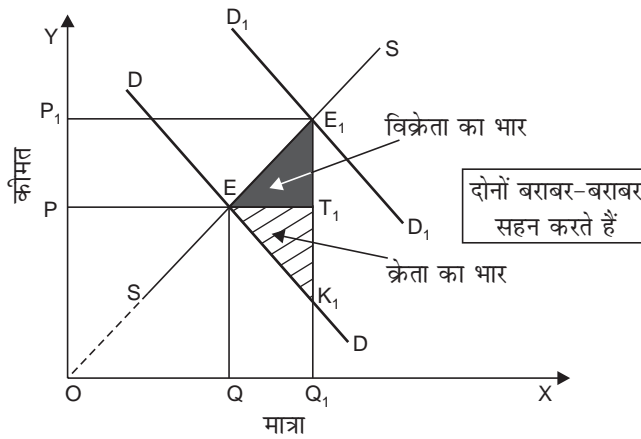
(iv) जब पूर्ति की लोच इकाई से कम हो ( $e_s < 1$ )

नोट



चित्र 3(D)

(v) जब पूर्ति की लोच इकाई के बराबर हो ( $e_s = 1$ )



चित्र 3(E)

प्रो. डाल्टन के अनुसार, “प्रत्येक उपभोक्ता अपनी माँग में कमी के द्वारा कर के भार को विक्रेता पर ही डालने का प्रयास करता है जबकि प्रत्येक उत्पादक अथवा विक्रेता वस्तु की पूर्ति में कमी के द्वारा कर के भार को, उपभोक्ता पर डालने का प्रयास करता है। कर के भार का वास्तविक विभाजन अन्ततः उनकी सौदा करने की तुलनात्मक शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।”

इस प्रकार कर का भार उस वस्तु की माँग व पूर्ति की सापेक्षिक लोच पर निर्भर रहता है जिस पर कर लगाया गया है।


(5) बाजार में प्रतियोगिता (Competition in the Market)—कर के विवर्तन पर इस बात का भी प्रभाव पड़ता है कि बाजार में प्रतियोगिता का अंश क्या है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कर की राशि को विवर्तित किया जा सकता है क्योंकि इस स्थिति में कर का विवर्तन वस्तु की लोच पर निर्भर रहता है। इसी प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में भी कर विवर्तन इस बात पर निर्भर रहता है कि माँग की लोच कैसी है और प्रतियोगिता का अंश क्या है। ध्यान रहे पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार बाजार की काल्पनिक दशाएँ हैं। वास्तव में अपूर्ण प्रतियोगिता ही पाई जाती है।

**नोट**

( 6 ) **करारोपण का उद्देश्य (Object of Taxation)**—कुछ कर इस उद्देश्य से लगाए जाते हैं कि उनका विवर्तन कर दिया जाएगा, जैसे, परोक्ष कर। परन्तु कुछ करों का यह उद्देश्य होता है कि जिन पर वे लगाए गए हैं वे ही उसका भुगतान करें तथा उनका विवर्तन न किया जा सके; जैसे, आय-कर।

( 7 ) **स्थानापन्न वस्तुओं की उपलब्धि (Availability of Substitutes)**—जिस वस्तु पर कर लगाया गया है, यदि बाजार में उसकी स्थानापन्न वस्तु उपलब्ध होती है तो कर भार को सरलता से विवर्तित नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि जैसे ही उत्पादक करों को वस्तु के मूल्य में शामिल करता है मूल्य बढ़ जाता है जिसके फलस्वरूप उपभोक्ता उन स्थानापन्न वस्तुओं का प्रयोग करने लगते हैं जो सस्ती होती है। जिन वस्तुओं की कोई स्थानापन्न वस्तुएँ नहीं होती यदि उन पर कर लगाया जाता है तो विक्रेता आसानी से करों की राशि को विवर्तित कर देता है क्योंकि उपभोक्ता ऐसी वस्तु को खरीदने के लिए बाध्य होता है।

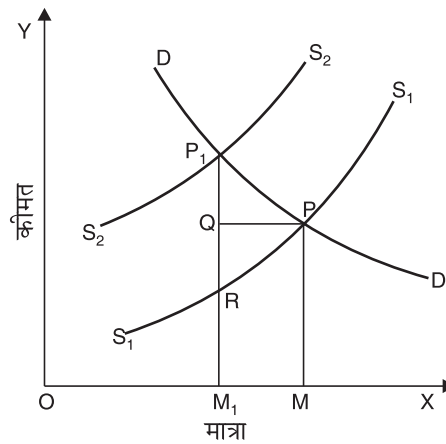
( 8 ) **कर का आधार (Basis of Taxation)**—विशिष्ट करों अर्थात् संख्या, वजन अथवा आकार के आधार पर लगाए गए करों का विवर्तन किया जा सकता है। किन्तु वस्तु के मूल्य के आधार पर (Advalorem) लगाए गए करों का विवर्तन करना कठिन होता है क्योंकि जैसे-जैसे वस्तु का मूल्य बढ़ता है करों की राशि भी बढ़ती जाती है।



क्या आप जानते हैं पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कर की राशि को विवर्तित किया जा सकता है।

( 9 ) **उत्पत्ति के नियम (Laws of Return)**—कर के विवर्तन पर उत्पत्ति के नियमों का भी प्रभाव पड़ता है जिसका विवेचन अग्र प्रकार है—

(i) **क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम**—यदि वस्तु का उत्पादन, उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो इसका आशय यह है कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है प्रति इकाई लागत में वृद्धि होती है। अतः जब कर की राशि मूल्य में जोड़ी जाती है तो वस्तु का मूल्य अधिक बढ़ जाता है जिससे वस्तु की माँग में कमी होने की सम्भावना रहती है। अतः कर की पूर्ण राशि का विवर्तन नहीं किया जा सकता है।

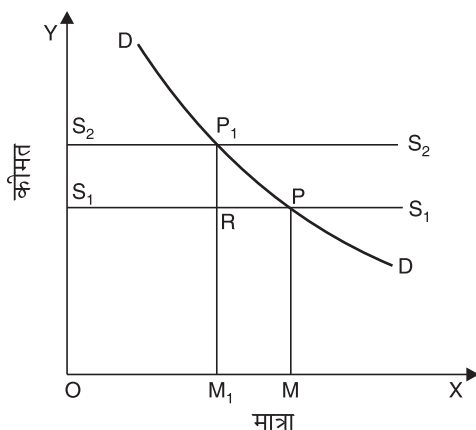


चित्र 4(a)

चित्र 4(a) में  $S_1S_1$  कर लगने के पूर्व का पूर्ति वक्र है जबकि  $S_2S_2$  कर लगने के बाद का पूर्ति वक्र है। कर लगने से पूर्व वस्तु की कीमत  $PM$  है तथा कर लगने के बाद वस्तु की कीमत बढ़कर  $P_1M_1$  हो जाती है। अतः कीमत में होने वाली वृद्धि  $P_1Q$  के बराबर है अतः क्रेताओं पर कर का भार  $P_1Q$  के बराबर होगा जो कर की राशि  $P_1R$  से कम है। दूसरे शब्दों में विक्रेताओं पर पड़ने वाला कर का भार  $QR$  के बराबर है।

नोट

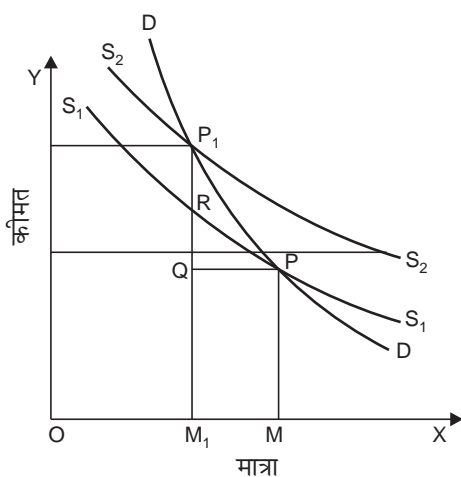
(ii) क्रमागत उत्पत्ति समता नियम—यदि वस्तु का उत्पादन, उत्पत्ति समता नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो उत्पत्ति घटाने या बढ़ाने का लागत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि कर की राशि को वस्तु के मूल्य में जोड़ा जाता है तो इसमें माँग प्रभावित नहीं होती और कर की समस्त राशि को मूल्य में मिलाकर उपभोक्ताओं पर विवर्तित किया जा सकता है।



चित्र 4(b)

चित्र 4(b) में  $S_1S_1$  कर लगने के पूर्व का पूर्ति वक्र है और  $S_2S_2$  कर लगने के बाद का पूर्ति वक्र है। कर से पूर्व कीमत  $PM$  के बराबर है जबकि कर के बाद कीमत  $P_1M_1$  हो जाती है। इस प्रकार कर की मात्रा  $P_1R$  के बराबर है। चित्र से स्पष्ट है कि सम्पूर्ण कर का भार क्रेताओं द्वारा वहन किया जाता है और विक्रेता कर भार का कोई अंश वहन नहीं करता है।

(iii) क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम (Decreasing Cost)—यदि वस्तु का उत्पादन, उत्पत्ति वृद्धि नियम के अन्तर्गत हो रहा है तो जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है प्रति इकाई लागत घटती जाती है। यदि ऐसी स्थिति में कर लगाया जाए तो वस्तु के मूल्य में कर की राशि से अधिक की वृद्धि हो सकती है और उसका भार उपभोक्ताओं पर पड़ेगा।



चित्र 4(c)

चित्र 4(c) में  $S_1S_1$  कर लगने के पूर्व का पूर्ति वक्र है तथा  $S_2S_2$  कर लगने के बाद का पूर्ति वक्र है। कर लगने से पूर्व कीमत  $PM$  के बराबर है कर की राशि  $P_1R$  के बराबर है जबकि कीमत में होने वाली वृद्धि  $P_1Q$  के बराबर

**नोट**

है इस प्रकार चित्र से स्पष्ट है कि उत्पत्ति वृद्धि नियम में लगाए गए कर से अधिक मूल्य में वृद्धि हो जाती है और क्रेताओं को कर की राशि से अधिक भार वहन करना पड़ता है।

( 10 ) समय तत्त्व (Time Element)–यदि विक्रेता पर कोई कर बहुत थोड़े समय के लिए अस्थायी रूप से लगाया जाता है तो वह प्रायः भार को स्वयं सह लेता है तथा उसे अपने ग्राहकों पर नहीं टालता। किन्तु जो कर स्थायी रूप में लगाए जाते हैं, विक्रेता द्वारा उन्हें विवर्तित करने का प्रयास किया जाता है।

( 11 ) पूंजी की गतिशीलता (Mobility of Capital)–यदि पूंजी पूर्ण रूप से गतिशील होती है तो उत्पादक कर के भार को उपभोक्ताओं पर विवर्तित करने में सफल हो जाता है क्योंकि वह पूंजी का विनियोग कर उससे लाभ प्राप्त कर लेता है। किन्तु यदि उसने पहले से ही व्यवसाय में अधिकतम पूंजी लगा रखी है तो कर के भार को उपभोक्ताओं पर नहीं डाला जा सकता।



टास्क उत्पत्ति के नियम को लिखें।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. प्रत्यक्ष करों का ..... नहीं किया जा सकता।
2. करभार का आधुनिक सिद्धांत मूल्य और ..... के विश्लेषण पर आधारित है।
3. वस्तुओं का मूल्य इतना होना चाहिए जिससे कर की राशि का ..... किया जा सके।
4. कर का विवर्तन वस्तु की ..... पर भी निर्भर करता है।
5. वस्तु की पूर्ति की लोच भी करभार के ..... को प्रभावित करती है।

**11.3 कर भार की समस्या के अध्ययन का महत्त्व****(Importance of Incidence Problem Study)**

करारोपण में न्याय की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है अतः समाज के विभिन्न वर्गों में कर का भार समान रूप से वितरित किया जाना चाहिए। किन्तु जब तक वित्तमन्त्री को यह ज्ञान न हो कि करों का मौद्रिक भार अन्त में किस वर्ग पर पड़ता है, वह करों के भार का न्यायपूर्ण वितरण नहीं कर सकता। करारोपण कर देने की योग्यता के अनुरूप है अथवा नहीं, यह जानने के लिए करों के अन्तिम भार का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है। जैसे सरकार यदि यह फैसला करती है कि शक्कर के उत्पादकों पर कर लगाया जाये क्योंकि उनमें भुगतान करने की योग्यता है। किन्तु यदि ये उत्पादक अपने कर के भार को उपभोक्ताओं पर टालने में सफल हो जाते हैं तो सरकार का उद्देश्य ही विफल हो जाता है।

प्रो. सेलिगमैन के अनुसार, “करों के विविध आर्थिक प्रभावों को जानने के लिए भी कर भार का अध्ययन आवश्यक है।” उनके ही शब्दों में, “कर भार निर्धारित कर लेने के बाद ही हम किसी कर के व्यापक प्रभावों के अध्ययन की दिशा में बढ़ सकते हैं।”<sup>1</sup>

कर के अन्तिम भार के अध्ययन की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। अभी सांख्यिकी की कोई ऐसी इकाई विकसित नहीं हुई है जिसके द्वारा कर के भार का सही अनुमान लगाया जा सके। किन्तु इसके बावजूद व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दोनों ही रूपों में कर भार के अध्ययन की उपयोगिता है। कभी-कभी कीमतों में परिवर्तन के कारण करों के भार को मालूम करना सम्भव नहीं हो पाता। फिर कभी कर भार और कर के प्रभाव में भेद कर पाना भी सम्भव नहीं

1. “It is only when we have ascertained the incidence that we can proceed to discuss the wider effects of a tax.”  
—Seligman

होता। प्रो. कैन्नन (Cannan) का मत है कि “केवल यह जानना कि कर का भार एक विशेष व्यक्ति पर पड़ता है, इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह दूसरों की तुलना में अधिक भार का वहन कर रहा है।”

नोट



नोट्स कर भार पर ध्यान दिए बिना जो कर प्रणाली विकसित होगी, वह न्याय और समानता से दूर होगी।

#### 11.4 कुछ मुख्य करों के भार का अध्ययन (Study of the Incidence of Some Important Taxes)

(1) आय पर करों का भार (Incidence of Tax on Income)—आय पर लगाए जाने वाले करों में आय-कर, अतिरिक्त लाभकर, निगम कर, पूंजी लाभ कर (Capital gains tax) आदि का समावेश होता है। चूँकि ये कर शुद्ध आय पर लगाए जाते हैं, इनका भार उन्हीं व्यक्तियों पर पड़ता है, जिन पर ये लगाए जाते हैं।

यदि वेतन और मजदूरी से प्राप्त आय पर कर लगाया जाता है तो साधारणतः इसे विवर्तित नहीं किया जा सकता। इस कर का विवर्तन सेवायोजकों (Employers) पर ही किया जा सकता है किन्तु सेवायोजक केवल इसलिए अधिक वेतन और मजदूरी देने को तैयार नहीं होंगे कि श्रमिकों की आय पर कर लगा दिया गया है। इसका कारण यह है कि आय-कर लगने से कर्मचारियों की उत्पादकता में कोई वृद्धि तो होती नहीं है।

जहाँ तक व्यावसायिक शुद्ध लाभ पर लगाए जाने वाले कर का प्रश्न है, कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि वस्तुओं का मूल्य बढ़ाकर इसका विवर्तन किया जा सकता है किन्तु यह तर्क उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि वास्तव में बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है। अपूर्ण प्रतियोगिता में व्यवसायी सरलता से वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि नहीं कर सकता। इस प्रकार शुद्ध लाभ पर लगाए जाने वाले कर का भार व्यापारियों पर ही पड़ता है।

यदि आय पर भारी मात्रा में कर लगाया जाता है तो इसका कर भार भी करदाता पर पड़ता है। किन्तु जब उत्पादन पर भारी मात्रा में कर लगाया जाता है तो इसका विनियोग और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(2) सम्पत्ति पर कर का भार (Incidence of Tax on Property)—विश्लेषण की सुविधा के लिए सम्पत्ति पर कर के भार का अध्ययन हम दो खण्डों में करेंगे—प्रथम, उस सम्पत्ति पर कर जिसका प्रयोग उत्पादन के लिए किया जाता है और द्वितीय, उस सम्पत्ति पर कर जिसका प्रयोग आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष सन्तुष्टि के लिए किया जाता है। जब ऐसी सम्पत्ति के स्वामित्व पर कर लगाया जाता है जिसका प्रयोग उत्पादन के लिए किया जाता है, तो इस कर को विवर्तित किया जा सकता है। जैसे कारखाने की इमारत पर कर लगाया जाता है तो उत्पादक इसे लागत मानकर वस्तु के मूल्य में शामिल कर लेता है और इसे उपभोक्ताओं पर टालने में सफल हो जाता है।

जब ऐसी सम्पत्ति पर कर लगाया जाता है जिसका प्रयोग करदाता द्वारा प्रत्यक्ष सन्तुष्टि के लिए किया जाता है, जैसे स्वयं रहने का मकान, कार, आभूषण इत्यादि तो इस कर का विवर्तन करना सम्भव नहीं होता क्योंकि इसके विवर्तन में कीमत का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

(3) बिक्री कर का भार (Incidence of Sales Tax)—जो कर वस्तुओं पर लगाया जाता है, विक्रेता उसे वस्तु के मूल्य में शामिल कर लेता है और कर की राशि को उपभोक्ताओं पर टालने में सफल हो सकता है अर्थात् कराघात तो विक्रेताओं पर पड़ता है किन्तु कर का भार उपभोक्ताओं पर पड़ता है, किन्तु इस कथन का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता क्योंकि विक्रेता सदैव बिक्री-कर को विवर्तित करने में सफल नहीं होता। विक्रेता उन्हीं वस्तुओं के कर को विवर्तित करने में सफल हो पाता है जिनकी माँग बेलोचदार होती है तथा जिनकी स्थानापन्न वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं, उन पर लगाए गए करों की राशि को विवर्तित करना विक्रेता के लिए सम्भव नहीं होता।

ऐसी दशा भी उत्पन्न हो सकती है कि विक्रेता करों को उपभोक्ताओं पर (आगे की ओर विवर्तन) न टालकर उनका पीछे की ओर विवर्तन करे अर्थात् वस्तुओं का मूल्य न बढ़ाकर थोक व्यापारी अथवा उत्पादक को कम कीमत पर बेचने के लिए बाध्य करे। कभी-कभी बिक्री-कर का भार आंशिक रूप से क्रेता और आंशिक रूप से विक्रेता पर



**नोट**

भी पड़ता है जो उपभोक्ताओं और विक्रेताओं की सौदा करने की तुलनात्मक शक्तियों (Bargaining Power) द्वारा निर्धारित होता है।

**(4) उत्पादन पर करों का भार (Incidence of Taxes on Production)**—यह कर वस्तुओं के उत्पादन पर लगाया जाता है। उत्पादन पर करों के भार का अध्ययन बिक्री-कर के समान ही है। जो कर उत्पादन पर लगाए जाते हैं, उन्हें उत्पादकों द्वारा वस्तु के मूल्य में शामिल कर लिया जाता है और उन्हें उपभोक्ताओं पर टाल दिया जाता है। **प्रो. टेलर (Philip E. Taylor)** के अनुसार, “उत्पादन पर लगाए जाने वाले समस्त कर, उत्पादक अथवा विक्रेता द्वारा उत्पादन लागत माने जाते हैं किन्तु विभिन्न उत्पादन लागतों में जिन पर प्रारम्भिक कराघात (Impact of Tax) होता है, करों की विवर्तित करने का अंश अलग-अलग होता है।”

**प्रो. टेलर** के अनुसार उत्पादन पर तीन प्रकार के कर लगाए जाते हैं—

- (i) वे कर जिनकी राशि निश्चित होती है तथा जिनका उत्पादन की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं होता।
- (ii) दूसरे प्रकार के कर वे कर होते हैं जो उत्पादन की मात्रा के अनुपात में घटते-बढ़ते हैं। इसके अन्तर्गत उत्पादन कर (Excise Duty) आते हैं। ये कर परिवर्तनशील लागत (variable cost) के समान होते हैं तथा इन्हें वस्तु के प्रति इकाई लागत में जोड़ा जा सकता है। किन्तु इन करों को कितनी सीमा तक विवर्तित किया जा सकता है, यह वस्तु की माँग की लोच तथा पूर्ति की लोच पर निर्भर रहता है।
- (iii) तीसरे प्रकार के उत्पादन कर वे होते हैं जो परिवर्तनशील लागत में परिवर्तन के साथ घटते-बढ़ते रहते हैं परन्तु करों में परिवर्तन, अस्थिर लागत में परिवर्तन के अनुपात में ही नहीं होता।

उपर्युक्त करों के विवर्तन के सम्बन्ध में **प्रो. टेलर** का मत है कि “कोई भी उत्पादन कर विवर्तित किया जा सकता है अथवा नहीं, यह विवर्तन के विरुद्ध बचाव की शक्ति पर निर्भर होगा। बचाव की शक्ति माँग और पूर्ति की लोच में प्रतिबिम्बित होती है।”

**(5) आयात-निर्यात करों का भार (Incidence of Export & Import Duties)**—आयात और निर्यात कर परोक्ष कर होते हैं। सामान्य रूप से आयात करों का भार उपभोक्ताओं पर पड़ता है क्योंकि आयातकर्ता आयातित वस्तुओं का मूल्य बढ़ाकर, कर की राशि को देश के उपभोक्ताओं से वसूल कर लेता है। जब सरकार संरक्षण के उद्देश्य से आयात कर लगाती है तो इन करों की दर ऊंची होती है। ऐसी स्थिति में आयातकर्ता, कर को पूर्ण रूप से विवर्तित नहीं कर पाता और आंशिक रूप से स्वयं कर के भार को सहता है।

जब सरकार केवल **आय प्राप्त करने के उद्देश्य** से आयात कर लगाती है तो कर की दर बहुत ऊंची नहीं होती और ऐसे करों के भार को उपभोक्ताओं पर टाला जा सकता है। किन्तु यह विवर्तन किस सीमा तक किया जा सकेगा, यह देश में उपलब्ध स्थानापन्न वस्तुओं, उपभोक्ताओं की माँग की लोच आदि पर निर्भर रहता है।

**निर्यात कर** का भार सामान्य रूप से निर्यात करने वाले व्यापारी पर पड़ता है किन्तु परिस्थितियों के अनुसार निर्यात करों के भार को निर्यातकर्ता, आयातकर्ता और विदेशी उपभोक्ताओं के बीच वितरित किया जा सकता है। यदि निर्यात की जाने वाली वस्तु की माँग लोचदार है तो निर्यात कर का भार निर्यातक पर पड़ता है। इसके विपरीत, यदि निर्यात की जाने वाली वस्तु की माँग बेलोचदार तथा अधिक तीव्र है तो निर्यात कर का भार आयात करने वाले देश के उपभोक्ताओं पर पड़ेगा। यदि निर्यातक देश का वस्तु पर एकाधिकार है और विश्व में अनेक देश उसके ग्राहक होते हैं तो निर्यात कर के भार को पूर्ण रूप से आयातक देश पर टाला जा सकता है।

**(6) व्यवसाय कर का भार (Incidence of Professional Tax)**—सरकार द्वारा कभी-कभी विभिन्न प्रकार के व्यवसायों पर प्रगतिशील आधार पर कर लगाया जाता है अर्थात् व्यवसाय से जैसे-जैसे आय बढ़ती है, व्यवसाय कर की मात्रा भी बढ़ा दी जाती है। यह कर प्रत्यक्ष कर के समान ही है जिसका अन्तिम भार करदाता पर ही पड़ता है। परन्तु कुछ परिस्थितियों में इस कर को विवर्तित किया जा सकता है, जैसे यदि एक डॉक्टर के व्यवसाय पर कर लगाया जाता है तो वह इस कर को मरीजों से ली जाने वाली फीस पर विवर्तित कर सकता है किन्तु एक प्राध्यापक पर लगाए गए व्यवसाय कर को विवर्तित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार व्यवसाय कर का विवर्तन व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर रहता है।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False):

6. आय पर लगाए जाने वाले करों में आय-कर, अतिरिक्त लाभ कर, निगम कर, पूँजी लाभ कर आदि का समावेश होता है।
7. यदि आय पर भारी मात्रा में कर लगाया जाता है तो इसका कर भार करदाता पर नहीं पड़ता है।
8. जब उत्पादन पर भारी मात्रा में कर लगाया जाता है तो इसका विनियोग और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
9. आयात और निर्यात कर परोक्ष कर होते हैं।
10. सामान्य रूप से आयात करों का भार उत्पादनकर्ताओं पर पड़ता है।

### 11.5 सारांश (Summary)

- कर विवर्तन उस समय तक होता रहता है जब तक कि वह सम्पूर्ण समाज में नहीं फैल जाता है। **कैनार्ड** के अनुसार जिस प्रकार शरीर की किसी एक शिरा से रक्त निकालने पर रक्त की कमी केवल उस शिरा में नहीं होती वरन् यह कमी पूरे शरीर में फैल जाती है, उसी प्रकार यदि वर्ग विशेष से सरकार कर वसूल करती है तो उस कर का भार कर विवर्तन के माध्यम से अन्य सभी वर्गों पर वितरित हो जाता है।
- कर भार का आधुनिक सिद्धान्त मूल्य और कीमत के विश्लेषण पर आधारित है। यह सिद्धान्त मानकर चलता है कि कर का भुगतान केवल अतिरेक (Surplus) में से ही किया जाता है एवं कर वस्तु की उत्पादन लागत का भाग है।
- करदाता कर का कितना भाग दूसरों पर विवर्तित कर सकता है, यह कर की प्रकृति, वस्तु की मांग एवं पूर्ति की लोच, वस्तु की उत्पादन, लागत आदि पर निर्भर रहता है।
- जब किसी वस्तु पर कर लगाया जाता है अथवा पुराने कर की दर में वृद्धि की जाती है तो करदाता उस कर के भार को दूसरों पर टालने का प्रयत्न करता है।
- कर का विवर्तन वस्तु की लोच पर भी निर्भर रहता है। जिस वस्तु पर कर लगाया गया है यदि उसकी मांग लोचदार है तो कर का भार विवर्तित नहीं किया जाता तथा व्यापारी स्वयं भार का वहन करता है।
- प्रत्येक उपभोक्ता अपनी माँग में कमी के द्वारा कर के भार को विक्रेता पर ही डालने का प्रयास करता है जबकि प्रत्येक उत्पादक अथवा विक्रेता वस्तु की पूर्ति में कमी के द्वारा कर के भार को, उपभोक्ता पर डालने का प्रयास करता है। कर के भार का वास्तविक विभाजन अन्ततः उनकी सौदा करने की तुलनात्मक शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।
- करों के विविध आर्थिक प्रभावों को जानने के लिए भी कर भार का अध्ययन आवश्यक है।
- केवल यह जानना कि कर का भार एक विशेष व्यक्ति पर पड़ता है, इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह दूसरों की तुलना में अधिक भार का वहन कर रहा है।
- कोई भी उत्पादन कर विवर्तित किया जा सकता है अथवा नहीं, यह विवर्तन के विरुद्ध बचाव की शक्ति पर निर्भर होगा। बचाव की शक्ति मांग और पूर्ति की लोच में प्रतिबिम्बित होती है।

### 11.6 शब्दकोश (Keywords)

- विवर्तन (Shifting)—लुढ़कना।
- लोच (Elasticity)—कोमलता।

नोट

### 11.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. क्रमागत उत्पत्ति समता नियम की व्याख्या करें।
2. क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम की सोदाहरण व्याख्या करें।
3. उत्पत्ति के नियमों की सप्रसंग व्याख्या करें।
4. वस्तु की माँग की लोच से आपका क्या अभिप्राय है?
5. करापात के सिद्धांतों की सप्रसंग व्याख्या करें।

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |             |            |           |         |
|-------------|------------|-----------|---------|
| 1. विवर्तन  | 2. कीमत    | 3. भुगतान | 4. लोच  |
| 5. विवर्तन। | 6. सत्य    | 7. असत्य  | 8. सत्य |
| 9. सत्य     | 10. असत्य। |           |         |

### 11.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## **इकाई-12: प्रसारण सिद्धांत**

### **(Diffusion Theory)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 प्रसारण सिद्धांत (Diffusion Theory)

12.2 सारांश (Summary)

12.3 शब्दकोश (Keywords)

12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

12.5 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- प्रसारण सिद्धांत संबंधी जानकारी प्राप्त करने हेतु।
- प्रसारण सिद्धांत की त्रुटियों से अवगत होने में।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

प्रसारण सिद्धांत की एक निहित मान्यता यह है कि अर्थव्यवस्था में एक ऐसी बाजार व्यवस्था है जो पर्याप्त हद तक स्पर्धायुक्त है और इस कारण उत्पादन साधन सुगमता और शीघ्रता से एक रोजगार प्रयुक्ति से दूसरी रोजगार प्रयुक्ति में जा सकते हैं।

#### **12.1 प्रसारण सिद्धांत (Diffusion Theory)**

इस सिद्धांत के अनुसार करों का अंतिम आपतन पूरी अर्थव्यवस्था की गतिविधियों, वस्तुओं तथा आयों पर इस प्रकार बिखर जाता है कि उसके आवंटन का कोई निश्चित रूप निर्धारित नहीं किया जा सकता। इस मतानुसार आय अधिशेष (अथवा निवल उत्पाद) का अस्तित्व केवल खेती में नहीं, अनेक प्रकार से अर्जित की गई आय मदों में होता है। इस कारण कर-आपतन का केन्द्रीकरण अनिवार्य नहीं है। इसके विपरीत विभिन्न वर्गों की आर्थिक गतिविधियों में परस्पर निर्भरता के फलस्वरूप कीमतों में घटी-बढ़ी द्वारा कर-आपतन का अंतरण होता रहता है। इस अंतरण प्रक्रिया द्वारा कर-आपतन पूरी अर्थव्यवस्था पर इस प्रकार फैल जाता है कि इसकी अंतिम रूप रेखा निर्धारित नहीं की जा सकती।

## नोट

इस सिद्धांत की एक निहित मान्यता यह है कि अर्थव्यवस्था में एक ऐसी बाजार व्यवस्था है जो पर्याप्त हद तक स्पर्धायुक्त है और इस कारण उत्पादन साधन सुगमता और शीघ्रता से एक रोजगार प्रयुक्ति से दूसरी रोजगार प्रयुक्ति में जा सकते हैं।



**नोट्स** यदि ये शर्तें पूरी हो जाएँ तो इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि करों का प्राथमिक आघात कहाँ होता है। उनका आपतन तो हर दशा में सारी अर्थव्यवस्था पर फैल जाता है।

## त्रुटियाँ (Limitation)

इस सिद्धांत पर ध्यान से विचार करने पर इसकी कई त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं—

1. यदि यह मान भी लिया जाए कि करों का अंतिम आपतन पूरी अर्थव्यवस्था में बिखर जाता है तो भी इसका अर्थ यह नहीं निकलता कि सरकार को कर लगाते समय इस बात पर विचार नहीं करना चाहिए कि वह कर कहाँ लगा रही है। इसका कारण यह है कि करारोपण के व्यापक प्रभाव उनके अंतिम आपतन के अतिरिक्त भी कई रूप लेते हैं और इन प्रभावों की रूपरेखा काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि करों को कब, कहाँ तक किस प्रकार लगाया गया, उनकी दरें तथा अन्य संबंधित गुण क्या हैं आदि।
2. यह सिद्धांत अर्थव्यवस्थाओं पर आधारित है। बाजार व्यवस्था में भी पूर्ण स्पर्धा देखने को नहीं मिलती तथा वर्तमान काल में तो एकाधिकारक तत्व इसके आवश्यक घटक बन गए हैं। इसलिए यह अनिवार्य नहीं कि हर कर विशेष का आपतन बिखर जाए। इसके विपरीत अनेक मामलों में आपतन की आघात-स्थान पर ही टिके रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है।
3. प्रो. डाल्टन का कहना है कि इस सिद्धांत से मिलने वाले निष्कर्ष हमें करों के अंतिम आपतन के आवंटन की जानकारी प्राप्त करने तथा एक उपयुक्त कर-नीति का निर्माण करने में हतोत्साहित करते हैं। परंतु कर-नीति का निर्माण एक ऐसा कार्य है जो सब प्रकार की रुकावटों के बावजूद यथासंभव सुचारु रूप से किया जाना चाहिए।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. कर आपतन का केन्द्रीकरण ..... नहीं है।
2. कर-आपतन पूरी अर्थव्यवस्था पर इस प्रकार फैल जाता है कि इसकी अंतिम रूप-रेखा ..... नहीं की जा सकती।
3. करारोपण के व्यापक प्रभाव उनके अंतिम ..... के अतिरिक्त भी कई रूप लेते हैं।

## 12.2 सारांश (Summary)

- प्रसारण सिद्धांत के अनुसार करों का अंतिम आपतन पूरी अर्थव्यवस्था की गतिविधियों, वस्तुओं तथा आयों पर इस प्रकार बिखर जाता है कि उसके आवंटन का कोई निश्चित रूप निर्धारित नहीं किया जा सकता।
- इस सिद्धांत की एक निहित मान्यता यह है कि अर्थव्यवस्था में एक ऐसी बाजार व्यवस्था है जो पर्याप्त हद तक स्पर्धायुक्त है और इस कारण उत्पादन साधन सुगमता और शीघ्रता से एक रोजगार प्रयुक्ति से दूसरी रोजगार प्रयुक्ति में जा सकते हैं।
- यदि यह मान भी लिया जाए कि करों का अंतिम आपतन पूरी अर्थव्यवस्था में बिखर जाता है तो भी इसका अर्थ यह नहीं निकलता कि सरकार को कर लगाते समय इस बात पर विचार नहीं करना चाहिए कि वह कर कहाँ लगा रही है।

- कर-नीति का निर्माण एक ऐसा कार्य है जो सब प्रकार की रुकावटों के बावजूद यथासंभव सुचारु रूप से किया जाना चाहिए।

नोट

### 12.3 शब्दकोश (Keywords)

- प्रसारण (Diffusion)–फैलाना।
- त्रुटि (Limitation)–कमी।

### 12.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रसारण सिद्धांत का वर्णन करें।
2. प्रसारण सिद्धांत में क्या त्रुटियाँ हैं?

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. अनिवार्य
2. निर्धारित
3. आपतन।

### 12.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

**इकाई-13: करों का वर्गीकरण और चयन : प्रत्यक्ष एवं  
अप्रत्यक्ष, वैट  
(Classification and Choice of Taxes : Direct  
and Indirect, Vat)**

**अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 13.1 प्रत्यक्ष एवं परोक्ष (अप्रत्यक्ष) कर (Direct and Indirect Taxes)
- 13.2 प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर-एक तुलनात्मक विवेचन  
(Direct and Indirect Tax : A comparative Explanation)
- 13.3 आनुपातिक, प्रगतिशील और प्रतिगामी कर  
(Proportional, Progressive and Regressive Taxes)
- 13.4 विशिष्ट कर एवं यथामूल्य कर (Specific Tax and Ad Valorem Tax)
- 13.5 एक कर प्रणाली एवं बहुकर प्रणाली  
(Single Tax System and Multiple Tax System)
- 13.6 भारत में मूल्य वर्धित कर और संशोधित मूल्य वर्धित कर  
[Value Added Tax (VAT) and Modified Value Added Tax (Modvat) In India]
- 13.7 मूल्य वर्धित कर के विभिन्न रूप (Various Forms of Value Added Tax)
- 13.8 संशोधित मूल्य वर्धित कर (Modified Value Added Tax-MODVAT)
- 13.9 सारांश (Summary)
- 13.10 शब्दकोश (Keywords)
- 13.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 13.12 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

**उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- प्रत्यक्ष कर एवं अप्रत्यक्ष कर को समझने में।
- प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर के तुलनात्मक अध्ययन संबंधी बातों की जानकारी प्राप्त करने में।
- आनुपातिक, प्रगतिशील और प्रतिगामी कर से भलीभाँति परिचित होने में।
- विशिष्ट कर एवं यथामूल्य कर को जानने में।
- एक कर प्रणाली एवं बहुकर प्रणाली को स्पष्ट करने हेतु।

## प्रस्तावना (Introduction)

करों को उनके स्वरूप, प्रकृति एवं लगाए जाने की विधि के आधार पर सामान्य रूप में चार प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है—

- (i) प्रत्यक्ष कर और परोक्ष कर;
- (ii) आनुपातिक, प्रगतिशील, प्रतिगाती एवं अधोगामी कर;
- (iii) विशिष्ट कर तथा यतामूल्य कर;
- (iv) एक कर तथा बहुकर प्रणाली।

इनका विस्तृत विवेचन इस प्रकार है—

### 13.1 प्रत्यक्ष एवं परोक्ष (अप्रत्यक्ष) कर (Direct and Indirect Taxes)

अनेक अर्थशास्त्रियों ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों को **कराघात** (Impact of Taxation) एवं **करापात** (Incidence of Taxation) के आधार पर परिभाषित किया है। **कराघात और करापात की दृष्टि** से कर का प्रारम्भिक भार जिस व्यक्ति पर पड़ता है, उसे **कराघात** अथवा **कर का दबाव** (Impact of a tax) कहते हैं। किन्तु कभी-कभी, जिस व्यक्ति पर कर लगाया जाता है, वह कर का दबाव दूसरों पर टालने में सफल हो जाता है अर्थात् कर का अन्तिम भुगतान किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया जाता है जिसे **करापात** (Incidence of tax) कहते हैं।

सामान्य तौर पर **प्रत्यक्ष कर** वे कर होते हैं जिनका भुगतान एक ही बार में कर दिया जाता है तथा इन करों का वे ही व्यक्ति भुगतान करते हैं जिन पर वह लगाया जाता है अर्थात् उनके भार को दूसरों पर टाला नहीं जा सकता। इसके विपरीत अप्रत्यक्ष कर वे होते हैं जिनका भुगतान पहले तो उत्पादकों द्वारा किया जाता है किन्तु जिन्हें बाद में उपभोक्ताओं पर टाल दिया जाता है। इस प्रकार **प्रत्यक्ष करों में कर का दबाव एवं कर-भार (कराघात और करापात) एक ही व्यक्ति पर पड़ता है, जैसे आय-कर; जबकि अप्रत्यक्ष करों में कराघात और करापात भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर पड़ता है, जैसे, बिक्री-कर।**

डाल्टन के अनुसार, “**प्रत्यक्ष कर** वह कर है जो कि उसी व्यक्ति द्वारा अदा किया जाता है जिस पर कि वह कानूनी रूप से लगाया जाता है, किन्तु **अप्रत्यक्ष (अथवा परोक्ष) कर** वह कर होता है जो कि उस व्यक्ति द्वारा अदा नहीं किया जाता पर कि वह लगाया जाता है बल्कि परस्पर हुए किसी समझौते के अधीन आंशिक रूप से अथवा पूर्णतया किसी अन्य द्वारा अदा किया जाता है।”



**नोट्स** डाल्टन की दृष्टि में प्रत्यक्ष कर का विवर्तन (shifting) नहीं होता जबकि अप्रत्यक्ष कर का विवर्तन होता है।

**प्रो. जे. एस. मिल (J. S. Mill)** के अनुसार, “**प्रत्यक्ष कर** वह कर है जो उसी व्यक्ति से माँगा जाता है जिससे उसे भुगतान करने की आशा की जाती है और **परोक्ष कर** वह है जो व्यक्ति से इस आशा के साथ माँगा जाता है कि वह दूसरों पर बोझ डालकर अपनी क्षतिपूर्ति कर लेगा।”

उपर्युक्त परिभाषा सरकार की प्रत्याशा अथवा इच्छा पर आधारित है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि जो सरकार की इच्छा है उसी के अनुसार करों के सम्बन्ध में व्यवहार किया जायेगा।

**बैस्टेबल (Bastable)** के अनुसार, “**प्रत्यक्ष कर** वे हैं जो स्थाई और बार-बार उपस्थित होने वाले अवसरों पर लगाए जाते हैं जबकि **अप्रत्यक्ष कर** विशेष घटनाओं पर लगाए जाते हैं जो कभी-कभी उपस्थित होते हैं।”

किन्तु बैस्टेबल का प्रत्यक्ष और परोक्ष करों के सम्बन्ध में उपर्युक्त भेद वैज्ञानिक नहीं है।



## नोट

**आर्मिटेज स्मिथ** (Armitage Smith) के अनुसार, “प्रत्यक्ष कर से तात्पर्य यह है कि यह कर हस्तान्तरित एवं विवर्तित नहीं किया जा सकता वरन् उसी व्यक्ति पर लगाया जाता है जिससे भार सहन करने की आशा की जाती है। आय-कर प्रत्यक्ष कर का श्रेष्ठ उदाहरण है।” परोक्ष कर वस्तुओं और सेवाओं पर ऐसे कर होते हैं जिन्हें अन्य व्यक्तियों पर विवर्तित किया जा सकता है।

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष कर का भार अन्तिम रूप से उसी व्यक्ति पर रहता है जो इसे सरकारी कोष में जमा करता है अर्थात् प्रत्यक्ष कर के भार को विवर्तित करना सम्भव नहीं होता।

**फिण्डले शिराज** के शब्दों में, “प्रत्यक्ष कर वे होते हैं जो व्यक्तियों की सम्पत्ति और आय पर तत्काल लगाए जाते हैं और करदाताओं द्वारा सीधे सरकार को भुगतान किए जाते हैं; जैसे, आय-कर, सम्पत्ति कर, मृत्यु कर इत्यादि। इनके अतिरिक्त अन्य कर परोक्ष कर समूह में आते हैं जो उपभोक्ताओं द्वारा वस्तुओं के उपभोग और आनन्द से उनकी आय को प्रभावित करते हैं; जैसे, व्यापार पर कर, मनोरंजन कर इत्यादि।

**प्रो. डी मार्को** ने आय के माप के आधार पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों में भेद किया है। प्रो. मार्को का मत है कि करारोपण में किसी व्यक्ति द्वारा दिए जाने वाले कर की मात्रा का निर्धारण करने में एक व्यक्ति की आय की गणना करना सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है। **मार्को** के अनुसार, “यदि किसी व्यक्ति की आय की गणना प्रत्यक्ष रूप से की जाती है तो उस पर लगाए गए कर को **प्रत्यक्ष कर** कहते हैं। किन्तु यह प्रत्यक्ष गणना सदैव सम्भव नहीं होती अथवा बहुत कुछ आय गणना में नहीं आ पाती। अतः जिस आय की गणना प्रत्यक्ष तौर पर नहीं हो पाती तो उपभोक्ता द्वारा व्यय करते समय ऐसी आय की गणना की जाती है और उस पर लगाए गए कर को **अप्रत्यक्ष कर** कहते हैं।

**डी मार्को** का मत है कि प्रत्यक्ष और परोक्ष करों का उपर्युक्त भेद आर्थिक लक्षणों पर आधारित है किन्तु वास्तव में यह भेद प्रशासनिक घटकों पर है। फिर, मात्र आय की गणना के वंचन के आधार पर, करों का वर्गीकरण उपर्युक्त नहीं है।

### 13.1.1 प्रत्यक्ष करों के गुण (Merits of Direct Taxes)

प्रत्यक्ष करों में निम्नलिखित गुण होते हैं—

1. **समता एवं न्यायशीलता (Equity & Justice)**—प्रत्यक्ष करों में न्याय के सिद्धान्त का पालन किया जा सकता है क्योंकि इनमें ऐसी व्यवस्था होती है कि प्रत्येक नागरिक अपनी योग्यता के अनुसार करों का भुगतान कर सके। प्रत्यक्ष करों का ढाँचा प्रगतिशील होता (Progressive) है अर्थात् धनी व्यक्तियों से अधिक कर लिया जाता है और निर्धन व्यक्तियों से कम कर लिया जाता है यह फिर इस वर्ग को इन करों से मुक्त कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष कर कराधान की योग्यता के अनुरूप होता है और यह करों में न्याय के सिद्धान्त का अनुपालन करता है।
2. **लोचपूर्ण (Elastic)**—प्रत्यक्ष कर व्यक्ति की सम्पत्ति और आय पर आधारित होते हैं। जब देश में उत्पादन और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो लोगों की सम्पत्ति और आय में वृद्धि होती है तथा करों से आय भी बढ़ जाती है। ये कर इस अर्थ में लोचपूर्ण होते हैं क्योंकि इन करों की दर में जरा-सी वृद्धि करके सरकार अपनी आय बढ़ा सकती है। इस प्रकार संकटकाल में इन करों से आय बढ़ाने में सहायता मिलती है।
3. **निश्चितता (Certainty)**—प्रत्यक्ष कर करारोपण के निश्चितता के सिद्धान्त को भी सन्तुष्ट करते हैं क्योंकि सरकार को इस बात की निश्चितता रहती है कि करों में उसे कितनी आय प्राप्त होगी तथा करदाता भी जानते हैं कि उन्हें कर की कितनी राशि का भुगतान करना है। निश्चितता के गुण के कारण सरकार को अपना बजट बनाने में सहायता मिलती है।
4. **मितव्ययिता (Economy)**—करों को एकत्रित करने में प्रशासनिक व्यय होता है किन्तु परोक्ष करों की तुलना में, प्रत्यक्ष करों के संग्रह में कम व्यय होता है क्योंकि इसमें जो प्रशासनिक व्यय होता है, उसकी तुलना में सरकार को अधिक आय प्राप्त होती है। इन करों में इसलिए भी मितव्ययिता होती है कि अधिकांश मामलों में ये कर आय के स्रोत पर ही एकत्रित कर लिए जाते हैं और संग्रहित कर-राशि पूर्ण रूप से राजकोष में पहुँच जाती है।

## नोट

5. **उत्पादकता (Productivity)**—प्रत्यक्ष करों से सरकार को बड़ी मात्रा में आय प्राप्त होती है। विभिन्न देशों के अध्ययन से यह ज्ञात हो गया है कि वहाँ की सरकारों को करों से प्राप्त होने वाली आय में प्रत्यक्ष करों से अधिक आय प्राप्त होती है।

6. **नागरिकों में जागरूकता की भावना पैदा करना (Civic Consciousness)**—प्रत्यक्ष करों में यह गुण भी होता है कि ये नागरिकों में जागरूकता की भावना पैदा करते हैं। करदाता जानता है कि वह सरकार को कर दे रहा है, उसकी अभिरूचि इस बात में रहती है कि सरकार इस आय को किस प्रकार व्यय कर रही है। इस प्रकार व्यक्ति नागरिक के रूप में अपने कर्तव्य और अधिकारों के प्रति सजग रहा है।

### 13.1.2 प्रत्यक्ष करों के दोष (Demerits of Direct Taxes)

प्रत्यक्ष करों के उपर्युक्त गुणों के साथ ही इनमें कुछ दोष भी हैं जो इस प्रकार हैं—

1. **कर अपवंचन (Tax Evasion)**—प्रत्यक्ष करों का सबसे बड़ा दोष यह है कि इनमें करों के अपवंचन अथवा चोरी की अधिक गुंजाइश रहती है। प्रायः लोग झूठा हिसाब प्रस्तुत कर या तो अपने आपको इन करों से पूर्ण रूप से बचा लेते हैं अथवा करों की चोरी कर लेते हैं अर्थात् कम मात्रा में करों का भुगतान करते हैं। ऐसे बहुत-से लोग भी कर देने से बच जाते हैं जिनकी आय के सम्बन्ध में सरकार के पास कुछ निश्चित जानकारी नहीं होती।

2. **असुविधाजनक (Inconvenient)**—प्रत्यक्ष कर इस दृष्टिकोण से असुविधाजनक होते हैं क्योंकि करदाताओं को अपनी आय का सरकारी नियमों के अनुसार लम्बा-चौड़ा हिसाब रखना पड़ता है। जरा-सी गलती होने पर करदाताओं को भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके साथ ही करदाताओं को एक ही बार में भारी मात्रा में कर का भुगतान करना पड़ता है जिससे उन्हें बड़ा मानसिक कष्ट होता है।

3. **बचत और विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव (Adverse effect on Saving & Investment)**—यदि प्रत्यक्ष करों की दर बहुत ऊँची होती है तो इसका बचत और विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः प्रत्यक्ष करों का भार उसी वर्ग पर पड़ता है जो बचत और विनियोग कर सकते हैं।

4. **सीमित क्षेत्र (Limited Scope)**—प्रत्यक्ष कर चूँकि सम्पत्ति और आय पर ही लगाए जाते हैं, इनका क्षेत्र सीमित हो जाता है तथा निर्धन और कम आय वाला वर्ग इनकी पहुँच के बाहर हो जाता है। दूसरे शब्दों में यदि केवल प्रत्यक्ष करों का ही आश्रय लिया जाए तो इनके द्वारा निर्धन वर्ग के लोगों तक पहुँचा जा सकता। इस प्रकार प्रत्यक्ष कर का क्षेत्र सीमित है।

5. **करों की मनमानी दर (Arbitrary Rates)**—सरकार द्वारा प्रत्यक्ष करों की जो दरें निर्धारित की जाती हैं, उनके पीछे कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता। एक निश्चित मात्रा में सम्पत्ति और निश्चित आय के नीचे सब व्यक्तियों को कर से छूट दे दी जाती है तथा अधिक आय अर्जन करने वाले लोगों पर मनमाने ढंग से प्रगतिशील दर से कर लगाया जाता है जिससे धनी वर्ग हतोत्साहित होता है।

6. **मानसिक अशान्ति (Mental Worry)**—प्रत्यक्ष कर की अदायगी द्वारा सीधे की जाती है जिसका उसे पूर्ण ज्ञान रहता है जबकि परोक्ष कर में व्यक्ति को कर देते समय कर भार का सीधे अनुमान नहीं होता। इस दृष्टि से प्रत्यक्ष कर व्यक्ति को कष्ट एवं मानसिक अशान्ति देता है।

### 13.1.3 परोक्ष अथवा अप्रत्यक्ष करों के गुण (Merits of Indirect Taxes)

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अप्रत्यक्ष कर वस्तुओं एवं सेवाओं पर लगाए जाते हैं तथा इन करों के भार को अन्तिम उपभोक्ताओं पर विवर्तित कर दिया जाता है।

परोक्ष करों के निम्न गुण हैं—

1. **व्यापक आधार (Wide Coverage)**—आज यह दृष्टिकोण है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार राज्य को कर देना चाहिए। इस दृष्टिकोण से परोक्ष करों का यह गुण है कि इनका आधार विस्तृत होता है तथा सभी व्यक्तियों पर इनका भार पड़ता है, क्योंकि वस्तुओं का उपयोग धनी और निर्धन सभी करते हैं। अतः सबको कर देना पड़ता है।

## नोट

2. **कर वंचन सम्भव नहीं (Tax Evasion Impossible)**—परोक्ष करों की चोरी कर पाना सम्भव नहीं होता। इसका कारण यह है कि ये कर पहले उत्पादकों एवं व्यापारियों से वसूल किए जाते हैं, फिर कर की इस मात्रा को वस्तुओं के मूल्य में शामिल कर लिया जाता है और उपभोक्ताओं से इसे वसूल कर लिया जाता है किन्तु ऐसी स्थिति भी होती है कि कभी-कभी व्यापारी झूठा हिसाब प्रस्तुत कर इन करों की चोरी कर लेते हैं।
3. **सुविधाजनक (Convenient)**—इन करों का यह गुण होता है कि करदाताओं की दृष्टि से ये बहुत सुविधाजनक होते हैं क्योंकि ये कर एक ही बार में न लिए जाकर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में लिए जाते हैं अर्थात् वस्तुओं के उपभोग की मात्रा के अनुसार। वस्तुओं के मूल्य में शामिल होने के कारण करदाताओं अथवा उपभोक्ताओं को इनका भार महसूस नहीं होता।
4. **सामाजिक कल्याण अनुरूप (Leading to Social Welfare)**—इन करों से सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है क्योंकि ऐसी वस्तुओं पर जिनके उपभोग से सामाजिक कल्याण में कमी होती है, करों की मात्रा में वृद्धि कर उनके उपभोग को हतोत्साहित किया जा सकता है। यही कारण है कि शराब, सिगरेट, भांग, अफीम आदि हानिकारक एवं नशीली वस्तुओं पर ऊँचा कर लगाया जाता है।
5. **लोचदार (Elastic)**—अप्रत्यक्ष करों में यह गुण भी होता है कि ये लोचदार होते हैं अर्थात् करों की दर में वृद्धि करके सरकार अपनी आय बढ़ा सकती है। जिन वस्तुओं की माँग बेलोचदार होती है, उन पर कर की दर सरलता से बढ़ाई जा सकती है। किन्तु इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि ऐसी वस्तुओं का मूल्य बढ़ने से गरीब उपभोक्ताओं पर अधिक भार पड़ता है।
6. **लोकप्रिय (Popular)**—अप्रत्यक्ष कर देते समय व्यक्ति को प्रायः इन करों का बोध नहीं होता और व्यक्ति इनकी अदायगी में कोई कष्ट अनुभव नहीं करता।



क्या आप जानते हैं हानिकारक एवं नशीली वस्तुओं पर ऊँचा कर लगाया जाता है।

#### 13.1.4 अप्रत्यक्ष करों के दोष (Demerits of Indirect Taxes)

यद्यपि अप्रत्यक्ष करों के गुण होते हैं किन्तु उनके कुछ दोष भी हैं जो निम्न प्रकार हैं—

1. **न्याय की कमी (Lack of Justice)**—परोक्ष करों का सबसे बड़ा दोष यह है कि ये न्यायपूर्ण नहीं होते क्योंकि ये अमीर और गरीब दोनों पर समान दर से लगाए जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि गरीब व्यक्ति पर इनका भार अपेक्षाकृत अधिक होता है।
2. **अनिश्चित (Uncertain)**—सरकार स्पष्ट कर से यह पहले से नहीं जान सकती कि इन करों से उसे कितनी आय प्राप्त होगी क्योंकि यह उपभोक्ताओं की माँग की लोच पर निर्भर रहता है उपभोक्ताओं को भी यह ज्ञान नहीं हो पाता कि उन्हें कितनी मात्रा में परोक्ष कर देने पड़ेगे क्योंकि चाहे तब इन करों की दर बढ़ती रहती है। विक्रेता भी वस्तुओं पर मनमानी दर से वसूल करता रहता है।
3. **अवरोही (Regressive)**—अप्रत्यक्ष कर धनी एवं निर्धन दोनों वर्गों द्वारा समान रूप से अदा किए जाते हैं। परिणामस्वरूप धनी वर्ग की तुलना में निर्धन वर्ग पर इन करों का अधिक बोझ पड़ता है अर्थात् अप्रत्यक्ष कर प्रकृति से अवरोही होते हैं।
4. **मितव्ययिता का अभाव (Lack of Economy)**—अप्रत्यक्ष करों को वसूल करने में एक बड़ी प्रशासनिक मशीनरी की आवश्यकता होती है जिस पर सरकार को बहुत व्यय करना पड़ता है। इन करों की वसूली में भ्रष्टाचार भी होता है और सरकार को जितनी आय प्राप्त नहीं होनी चाहिए, उतनी आय प्राप्त नहीं हो पाती।
5. **उपभोग और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव (Adverse effect on Consumption & Production)**—परोक्ष करों के फलस्वरूप वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाती है जिससे उनका उपभोग कम हो जाता है। उपभोग कम हो जाने से वस्तुओं की माँग कम हो जाती है जिससे उत्पादन भी कम हो जाता है।

नोट

6. **नागरिक चेतना का अभाव (Lack of Civic Consciousness)**—प्रत्यक्ष करों में उपभोक्ता यह नहीं जान पाते कि करों का भुगतान कर रहे हैं और कितनी मात्रा में कर रहे हैं। इसका कारण यह है कि करों को मूल्य में शामिल कर लिया जाता है। अतः करदाताओं में यह नागरिक चेतना पैदा नहीं हो पाती हक उनके द्वारा भुगतान की गई करों की राशि को सरकार द्वारा किस प्रकार व्यय किया जा रहा है।

7. **कर वंचन (Tax Evasion)**—यद्यपि हमने परोक्ष करों के गुणों में यह देखा है कि कर वंचन सम्भव नहीं हो पाता किन्तु यह पूर्णरूप से सत्य नहीं है। यह सही है कि उपभोक्ता करों से नहीं बच पाते किन्तु विक्रेता प्रायः झूठे हिसाब पेश कर देते हैं और बिक्री राशि कम दिखाते हैं तथा इस प्रकार अप्रत्यक्ष करों की चोरी करने में सफल हो जाते हैं।

8. **बचतें हतोत्साहित (Savings Discouraged)**—अप्रत्यक्ष कर कीमतों में सम्मिलित होता है अतः व्यक्ति को अपने उपभोग के लिए अधिक व्यय करना पड़ता है। इस दशा में बढ़ता उपभोग व्यय व्यक्ति की बचतों को कम कर देता है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

- कराघात और करापात की दृष्टि से कर का प्रारंभिक भार जिस व्यक्ति पर पड़ता है, उसे ..... कहते हैं।
- प्रत्यक्ष करों में ..... के सिद्धांत का पालन किया जा सकता है।
- प्रत्यक्ष कर व्यक्ति की ..... और आय पर आधारित होते हैं।
- ..... कर वस्तुओं एवं सेवाओं पर लगाए जाते हैं।
- परोक्ष करों का सबसे बड़ा दोष यह है कि ये ..... नहीं होते।

### 13.2 प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर : एक तुलनात्मक विवेचन

#### (Direct and Indirect Tax : A Comparisonative Explanation)

प्रत्यक्ष और परोक्ष करों का तुलनात्मक विवेचन करते हुए प्रो. डी मार्को ने यह मत व्यक्त किया कि 'प्रत्यक्ष कर एवं अप्रत्यक्ष कर एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रो. डी मार्को के अनुसार धनी व्यक्तियों की सम्पूर्ण आय का सही माप नहीं किया जा सकता। यह तो स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष करों का भार उन्हीं व्यक्तियों पर अधिक पड़ता है जिनकी आय की गणना की जा सकती है, जैसे, वेतन पाने वाले कर्मचारी। इसके विपरीत, कुछ ऐसे अधिक आय वाले लोग होते हैं जिनकी आय जो अधिक होती है किन्तु उनकी आय की सही गणना नहीं की जा सकती, जैसे, डॉक्टर, वकील इत्यादि। अतः ये लोग आय कर से बच जाते हैं। इस प्रकार इन करों का वितरण असमान हो जाता है। किन्तु अप्रत्यक्ष करों से इस असमानता को ठीक किया जा सकता है। जिन लोगों की आय की गणना नहीं हो पाती और इस प्रकार करों से बच जाते हैं, उनके पास काफी आय बची रहती है जिसे वे वस्तुओं के क्रय करने पर खर्च करते हैं। ऐसी आय पर अप्रत्यक्ष कर लगाए जा सकते हैं। इस प्रकार करों के भार को विभिन्न वर्गों में समान रूप से वितरित किया जा सकता है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष कर, प्रत्यक्ष करों के पूरक होते हैं क्योंकि वे ऐसी आय पर लगाए जा सकते हैं जो प्रत्यक्ष आय के अन्तर्गत नहीं आ पाते।

एक अन्य दृष्टि से भी अप्रत्यक्ष कर, प्रत्यक्ष करों के पूरक होते हैं। एक व्यक्ति की आय में आय में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। किन्तु प्रत्यक्ष करों में इनकी पूर्ण गणना नहीं हो पाती और लोग प्रत्यक्ष करों से बच जाते हैं। किन्तु व्यक्ति की आय बढ़ने से उसके उपभोग में वृद्धि हो जाती है, अप्रत्यक्ष करों के रूप में अधिक राशि का भुगतान करना होता है।

प्रो. डी मार्को के अनुसार, प्रत्यक्ष कर कई रूपों में अप्रत्यक्ष करों के पूरक होते हैं—**प्रथम**, ऐसी वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर नहीं लगाए जा सकते जिनका उपभोग स्वयं उत्पादकों द्वारा कर लिया जाता है, जैसे, कृषि। ऐसे मामलों में प्रत्यक्ष

**नोट**

करों की आवश्यकता होती है। दूसरे, अप्रत्यक्ष कर, सब प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं पर नहीं लगाए जा सकते अतः एक व्यक्ति की आय पर अप्रत्यक्ष कर लगाना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उस आय पर प्रत्यक्ष कर भी लगाया जाना चाहिए। तीसरे, प्रत्यक्ष करों के समान, अप्रत्यक्ष करों का भी अपवंचन किया जा सकता है। अतः इस दृष्टि से, केवल अप्रत्यक्ष करों के द्वारा ही व्यक्तियों की आय की सही गणना करों के लिए नहीं की जा सकती और पूरक के रूप में अप्रत्यक्ष कर लगाए जाने चाहिए।



टास्क प्रत्यक्ष कर एवं अप्रत्यक्ष कर में अंतर स्पष्ट करें।

**13.3 आनुपातिक, प्रगतिशील और प्रतिगामी कर  
(Proportional, Progressive and Regressive Taxes)**

करारोपण में न्याय एवं कर-भार की दृष्टि से करों को चार भागों में बाँटा जा सकता है—

**13.3.1 आनुपातिक करारोपण (Proportional Taxation)**

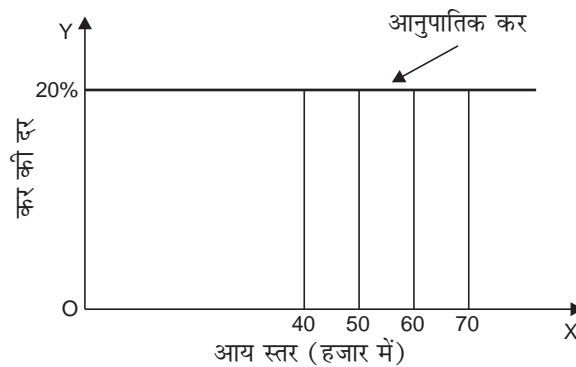
डाल्टन के अनुसार, “आनुपातिक करारोपण के अन्तर्गत सभी करदाता अपनी आय का समान अनुपात करों के रूप में भुगतान करते हैं।”

फिलिप ई. टेलर (Philip E. Taylor) के अनुसार, “आनुपातिक कर की दरों की तालिका वह होती है जिसमें कर के आधार में परिवर्तन होने पर भी कर की दर समान रहती है।”

आनुपातिक कर की तालिका

आय स्तर ( ₹ )	कर की दर ( प्रतिशत )	कर की राशि ( ₹ )
40,000	20	8,000
50,000	20	10,000
60,000	20	12,000
70,000	20	14,000

तालिका को निम्नांकित चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है—



चित्र 1

आनुपातिक करारोपण के गुण—आनुपातिक कर प्रणाली के निम्न दो गुण हैं—

(1) सरलता—इसका सबसे बड़ा गुण इसकी सरलता है। प्रो. जे. बी. से के अनुसार, “आनुपातिक करारोपण इतनी सरल प्रणाली है कि इसकी परिभाषा देना भी आवश्यक नहीं है।”

**नोट**

(2) यह कर प्रणाली मनमाने ढंग से निर्धारित नहीं की जा सकती—इस प्रणाली में अमीर और गरीब दोनों वर्गों से समान दर से कर वसूल किया जाता है अतः इसमें विभिन्न आय वाले समूहों से कर की दर मनमाने ढंग से निर्धारित नहीं की जा सकती।

**आनुपातिक करारोपण के दोष**—इस कर प्रणाली में गुण के स्थान पर दोष ही अधिक हैं जो इस प्रकार हैं—

(1) **न्यायशीलता का अभाव**—यह कर प्रणाली न्यायपूर्ण नहीं है। यदि हम उपयोगिता हास नियम को मुद्रा पर लागू करें तो स्पष्ट हो जाता है कि अधिक आय वाले व्यक्ति को मुद्रा की अतिरिक्त इकाई से, निर्धन की अपेक्षा, कर सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार आनुपातिक करों से करों के भार का वितरण असमान रूप से होता है।

(2) **धनी वर्ग से उनकी क्षमता के अनुकूल कर नहीं लिए जाते**—चूँकि अमीर और गरीब दोनों से ही समान दर से कर लिए जाते हैं। अतः सरकार को अमीर वर्ग से उतनी आय प्राप्त नहीं हो पाती जितनी कि होनी चाहिए। आजकल सरकार के व्यय में काफी वृद्धि हुई है अतः आनुपातिक करों से सरकार को पर्याप्त आय नहीं हो सकती।

(3) **लोच का अभाव**—आनुपातिक करों में लोच का भी अभाव है। यदि सरकार को अधिक आय की आवश्यकता होती है और पहले ही करों की दर अधिक है तो विशेष रूप से निर्धन व्यक्तियों से अधिक कर नहीं लिए जा सकते क्योंकि ऐसी स्थिति में करों की दर बढ़ाना सम्भव नहीं होती।

इस प्रकार, यदि आनुपातिक कर प्रणाली को अपनाया जाता है तो इससे करों के भार का वितरण अन्यायपूर्ण होगा, सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त नहीं होगी तथा करों के ढाँचे में लोच का अभाव होगा।

**13.3.2 प्रगतिशील अथवा आरोही करारोपण (Progressive Taxation)**

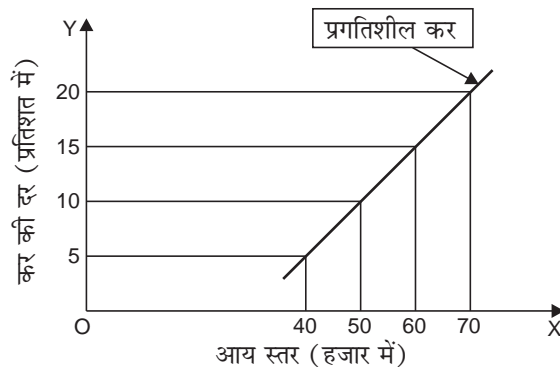
प्रगतिशील कर प्रणाली ऐसी प्रणाली है जिसमें आय की वृद्धि के साथ ही कर दर में भी वृद्धि होती जाती है। इसका सिद्धान्त यह है कि “अधिक आय, अधिक कर की दर।” डाल्टन के अनुसार, “प्रगतिशील करारोपण में करदाता की आय जितनी अधिक होती है, उतने ही अधिक अनुपात में वह कर का भुगतान करता है।”

**प्रो. टेलर** के अनुसार, “प्रगतिशील कर की दरों की तालिका वह है जिसमें कर के आधार में वृद्धि के साथ कर की दर भी बढ़ती जाती है।”

**प्रगतिशील कर की तालिका**

आय स्तर ( ₹ )	कर की दर (%)	कर की राशि ( ₹ )
40,000	5	2,000
50,000	10	5,000
60,000	15	9,000
70,000	20	14,000

उपर्युक्त तालिका को निम्नांकित चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है—



**चित्र 2**

## नोट

**प्रगतिशील करारोपण के गुण अथवा पक्ष में तर्क**—इस कर प्रणाली के पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं—

1. **न्यायपूर्ण**—यह प्रणाली न्यायपूर्ण क्योंकि इसमें ऊँची आय वालों से ऊँची दर के आधार पर कर लिया जाता है जो उपयोगिता हास नियम के अनुरूप है। जिस व्यक्ति के पास जितनी अधिक आय होती है, उसे अतिरिक्त मुद्रा की इकाई में उतनी ही कम सन्तुष्टि प्राप्त होती है अतः धनी व्यक्तियों से अधिक कर लिया जा सकता है। इस प्रकार यह प्रणाली कर देने की योग्यता के अनुरूप है।

2. **कुल त्याग न्यूनतम सिद्धान्त के अनुरूप**—प्रगतिशील कर प्रणाली में, निर्धन व्यक्तियों की तुलना में धनी व्यक्तियों को कम त्याग करना पड़ता है जो कि उपयोगिता हास नियम से स्पष्ट हो गया है। यदि धनी व्यक्तियों पर ऊँची दर से कर लगाए जाते हैं और निर्धन व्यक्तियों को या करों से मुक्त कर दिया जाता है अथवा बहुत नीची दरों पर कर लगाए जाते हैं तो पूरे समुदाय पर करों का भार न्यूनतम होगा। इस सम्बन्ध में **प्रो. पीगू** का मत है कि दो समान रूप से धनी व्यक्ति कर का भुगतान करने के बाद भी समान धनी बने रहेंगे। यद्यपि पूर्व की तुलना में वे दोनों कुछ धनी बन जाएँगे पर समानता उनमें बनी रहेगी और इस प्रकार उनकी सन्तुष्टि का अधिक हास नहीं होगा।

3. **वितरण में समानता**—प्रगतिशील करों से धन के वितरण में अधिक समानता लाई जा सकती है। इन करों से धनी व्यक्तियों की क्रय-शक्ति को कम किया जा सकता है और इस आय को लोक व्यय के माध्यम से निर्धन व्यक्तियों पर व्यय करके वितरण में समानता लाई जा सकती है। इसका आधार यह है कि अमीर व्यक्ति को अतिरिक्त मुद्रा की इकाई की सीमान्त उपयोगिता कम रहती है तथा निर्धन व्यक्ति को उसी मुद्रा की इकाई से अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है। इस प्रकार समाज की कुल सन्तुष्टि को अधिकतम किया जा सकता है। इसी उद्देश्य से बहुत-से देशों में इस कर प्रणाली को अपनाया गया।

4. **सरकार की आय की वृद्धि सम्भव**—वर्तमान में सरकारों का कार्य-क्षेत्र बढ़ता जा रहा है अतः उनकी धन की आवश्यकता भी बढ़ रही है। प्रगतिशील करों के माध्यम से अमीर व्यक्तियों पर ऊँची दर से कर लगाकर सरकार अपनी आय की पूर्ति कर सकती है। हमने यह स्पष्ट कर दिया है कि आनुपातिक करों से सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त नहीं हो पाती अतः आजकल प्रगतिशील कर प्रणाली आवश्यक हो गई है।

5. **लोकपूर्ण**—प्रगतिशील करों से यह लाभ भी है कि सरकार अपनी आय को आवश्यकता पड़ने पर बढ़ा सकती है जबकि आनुपातिक करों में यह सम्भव नहीं होता क्योंकि उसकी करों की दर में वृद्धि करने पर गरीबों पर अधिक भार पड़ता है। प्रगतिशील करों में धनी व्यक्तियों पर कर की दर बढ़ाकर आय में वृद्धि की जा सकती है।

6. **मितव्ययिता**—प्रगतिशील कर मितव्ययी भी होते हैं क्योंकि इन्हें एकत्रित करने की लागत अधिक नहीं होती। करों की वसूल करने की लागत वही रहती है चाहे कर की दर कम हो चाहे अधिक। इस प्रकार करों के संग्रह पर कम व्यय करके सरकार प्रगतिशील करों के माध्यम से अधिक राजस्व प्राप्त कर सकती है।

7. **आर्थिक स्थिरता**—यदि आर्थिक मन्दी के समय लोगों की व्यय करने की शक्ति में वृद्धि की जाती है तो आर्थिक क्रियाओं और रोजगार के स्तर को बढ़ाया जा सकता है। अतः कर नीति का यह उद्देश्य होना चाहिए कि अधिक लोगों के पास क्रय-शक्ति रहे। किन्तु क्रय-शक्ति को केवल थोड़े से धनी व्यक्तियों के पास छोड़ दिया जाता है तो वे उसे व्यय नहीं करना चाहेंगे क्योंकि उनकी उपभोग प्रवृत्ति सीमित होती है। किन्तु यदि यह राशि प्रगतिशील करों के माध्यम से धनी व्यक्तियों से सरकार द्वारा ले ली जाती है और इसे सार्वजनिक व्यय के द्वारा अधिक संख्या में निर्धन व्यक्तियों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है तो कुल उपभोग में वृद्धि होगी क्योंकि इनकी क्रय-शक्ति बढ़ने से माँग में वृद्धि होगी, इसके फलस्वरूप देश में उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होगी तथा आर्थिक स्थिरता आएगी।

**प्रगतिशील कर प्रणाली के दोष अथवा विपक्ष में तर्क (Demerits of Progressive Taxation)**— यद्यपि वर्तमान प्रगतिशील कर प्रणाली को प्रायः सार्वभौमिक रूप से अपनाया जा रहा है फिर भी प्रारम्भिक अर्थशास्त्रियों ने जिनमें **मेकुलाच (McCulloch)** का नाम उल्लेखनीय है, प्रगतिशील करों का विरोध किया। मेकुलाच ने बताया कि आनुपातिक करारोपण का परित्याग कर प्रगतिशील करारोपण को अपनाने से हमारी स्थिति ठीक उस व्यक्ति की तरह हो जाती है जो समुद्र तट पर बिना दिशा सूचक यन्त्र के खड़ा हो।

प्रगतिशील कर प्रणाली के विरोध में निम्न तर्क लिए जाते हैं—

1. **उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव**—यदि प्रगतिशील करों की दर बहुत ऊंची रहती है तो बचत, विनियोग और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जब लोग यह अनुभव करते हैं कि उनके द्वारा अर्जित आय का बड़ा हिस्सा करों के रूप में लिया जायेगा तो वे उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित नहीं होते। परन्तु यह आपत्ति पूर्णरूप से ठीक नहीं है क्योंकि प्रगतिशील करों का सब वर्गों की आय पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। यह धारणा इस गलत मान्यता पर आधारित है कि सरकार का समस्त व्यय अनुत्पादक होता है।

2. **करों का आधार गलत**—कुछ विचारकों का यह मत है कि प्रगतिशील कर प्रणाली का आधार गलत है। इसके आधार पर यह मान्यता है कि तुलनात्मक रूप से एक निर्धन व्यक्ति की तुलना में एक धनी व्यक्ति की मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम होती है। किन्तु कुछ अर्थशास्त्री इसे सही नहीं मानते क्योंकि उनकी दृष्टि में एक मानसिक तत्त्व होने से उपयोगिता की तुलना नहीं की जा सकती। **प्रो. रॉबिन्स** का यही मत है। किन्तु यह तर्क उचित नहीं है क्योंकि मुद्रा, उपयोगिता ह्रास नियम का अपवाद नहीं है और समान स्थिति में रहने वाले लोग लगभग समान सन्तुष्टि का अनुभव करते हैं।

3. **प्रगतिशील कर प्रणाली अन्त में स्वयं समाप्त हो जाती है**—प्रगतिशील करों से एकाधिकार और धन के केन्द्रीयकरण पर रोक लगती है तथा लोगों की सम्पत्ति समान होने की प्रवृत्ति होती है। यदि यह स्थिति निरन्तर चलती रहे, तो करों में प्रगतिशीलता का आधार ही समाप्त हो जाएगा। किन्तु यह आलोचना उसी समय सही हो सकती है जब हम यह मानकर चले कि प्रगतिशील करों का सदैव उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पर हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि सदैव ऐसा नहीं होता।

4. **करों की मनमानी दर**—यह आलोचना भी की जाती है कि विभिन्न प्रकार की आयों पर लगाने के लिए कर की जो दर निर्धारित की जाती है वह प्रायः मनमाने ढंग से निश्चित की जाती है जो किसी-न-किसी रूप से अन्यायपूर्ण होती है। इस सम्बन्ध में **मेकुलाच** का कथन है कि “प्रगतिशील करों में अन्याय की ऐसी कोई सीमा नहीं है जो आप नहीं कर सकते।” **प्रो. लुट्ज** के शब्दों में, “प्रगतिशील करारोपण बहुत अधिक खतरनाक राजस्व अस्त्र है क्योंकि इसके दुरुपयोग पर कोई प्राकृतिक अथवा स्वचालित नियन्त्रण नहीं होता।”

यह तो कहा जा सकता है कि इन करों की दर में कुछ मनमानी की जा सकती है परन्तु इस प्रणाली में करारोपण की खण्ड पद्धति (Slab System of taxation) के कारण मनमानी प्रवृत्ति को कम किया जा सकता है।

5. **बचत और परिश्रम हतोत्साहित**—प्रगतिशील करों के आलोचक कहते हैं कि यह कर प्रणाली बचत करने वालों एवं परिश्रम करने वालों को सजा देती है तथा फिजूलखर्ची करने वालों और आलसियों को प्रश्रय देती है। **प्रो. जे. एम. मिल** (J. S. Mill) के अनुसार, “एक निश्चित सीमा के बाद प्रगतिशील करारोपण, करारोपण का अन्यायपूर्ण तरीका है और वास्तव में एक प्रगतिशील डकैती है।” किन्तु यह तर्क पूर्ण रूप से सही नहीं है क्योंकि केवल परिश्रम और मिव्ययिता से ही सम्पत्ति का निर्माण नहीं होता वरन् इसमें सामाजिक, आर्थिक एवं राज्य द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का भी महत्वपूर्ण हाथ होता है।

**निष्कर्ष**—अन्त में यह कहा जा सकता है कि आजकल प्रगतिशील कर प्रणाली को उसके गुणों के कारण बहुत-से देशों द्वारा अपनाया जा रहा है। यद्यपि इसमें कुछ दोष हैं, जैसे, करों की मनमानी दर एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव, किन्तु इन्हें प्रशासनिक कुशलता द्वारा दूर किया जा सकता है।

### 13.3.3 प्रतिगामी अथवा अवरोही कर प्रणाली (Regressive Taxation)

कर प्रणाली को उस समय प्रतिगामी कहा जाता है जब करदाता की आय और सम्पत्ति में वृद्धि होने के साथ करों की दर में कमी जाती है। जैसे निम्न आय पर दस प्रतिशत कर और ऊंची आय पर पाँच प्रतिशत कर प्रतिगामी कर प्रणाली का उदाहरण है। **डाल्टन** के शब्दों में, “प्रतिगामी करारोपण में करदाता की आय जितनी अधिक होती है कर का दिया जाने वाला अनुपात उतना ही कम होता है।” इस परिभाषा से स्पष्ट है कि करों का भार धनी व्यक्तियों की तुलना में निर्धन व्यक्तियों पर अधिक पड़ता है अतः इन्हें न्याय और समानता के आधार पर उचित नहीं कहा



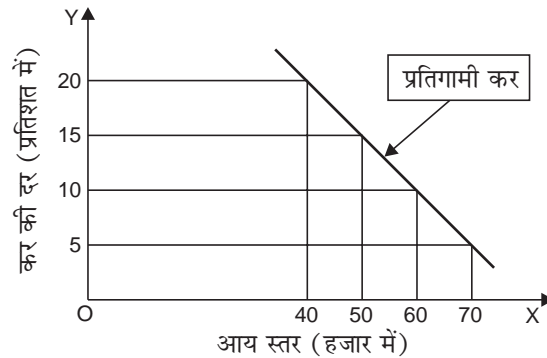
**नोट**

जा सकता है। यह प्रणाली बेलोचदार और अनुत्पादक भी है क्योंकि सरकार को इससे कोई उल्लेखनीय आय प्राप्त नहीं होती। इसे दृष्टि में रखते हुए आधुनिक समय में न तो इस कर प्रणाली कर कोई औचित्य है और न महत्त्व।

**प्रतिगामी कर की तालिका**

आय स्तर ( ₹ )	कर की दर ( प्रतिशत )	कर की राशि ( ₹ )
40,000	20	8,000
50,000	15	7,500
60,000	10	6,000
70,000	5	3,500

उपर्युक्त तालिका को निम्नांकित चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है—



**चित्र 3**

**13.3.4 अधोगामी कर (Degressive Taxation)**

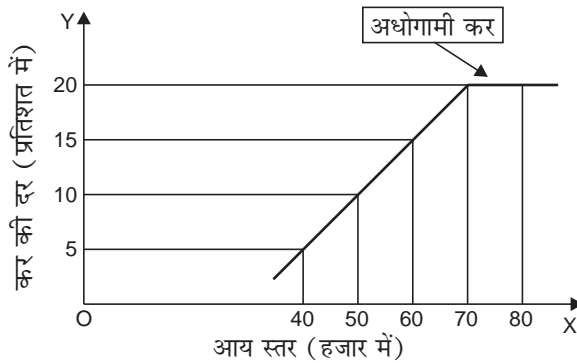
अधोगामी कर एक निश्चित सीमा तक प्रगतिशील होते हैं। किन्तु इस सीमा के बाद यह कर आनुपातिक बन जाते हैं। वर्तमान समय में विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ इसी प्रकार के करों का अधिक प्रयोग करती हैं।

**अधोगामी कर की तालिका**

आय स्तर ( ₹ )	कर की दर ( प्रतिशत )	कर की राशि ( ₹ )
40,000	5	2,000
50,000	10	5,000
60,000	15	9,000
70,000	20	14,000
80,000	20	16,000

उपर्युक्त तालिका को निम्नांकित चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है—

नोट



चित्र 4

### 13.4 विशिष्ट कर एवं यथामूल्य कर (Specific Tax and Ad Valorem Tax)

परोक्ष अथवा अप्रत्यक्ष कर दो प्रकार के होते हैं—

(i) विशिष्ट कर (Specific Tax), (ii) यथामूल्य कर (Ad Valorem Tax)।

**विशिष्ट कर** वे होते हैं जो वस्तु की संख्या, आकार अथवा भार के आधार पर लगाए जाते हैं, जैसे, किसी वस्तु के भार पर 50 रुपए प्रति मीट्रिक टन के हिसाब से कर लगाया जाये।

**यथामूल्य कर** वे होते हैं जो वस्तुओं के मूल्य के अनुसार लगाए जाते हैं, जैसे, किसी वस्तु के मूल्य पर 10 प्रतिशत की दर से कर लगाया जाए तो यह यथामूल्य कर होगा। विक्रय कर प्रायः इसी पद्धति से लगाया जाता है।

उपर्युक्त दोनों कर प्रतियोगी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। जिन वस्तुओं की गणना करना कठिन होता है, उन पर यथामूल्य कर लगाया जाता है तथा जिन वस्तुओं का भार ज्ञात किया जा सकता है अथवा गणना की जा सकती है, उन पर विशिष्ट कर लगाया जाता है।

#### विशिष्ट करों के गुण

विशिष्ट करों के निम्नलिखित गुण होते हैं—

(i) इन करों को एकत्रित करना सुविधाजनक होता है।

(ii) इन करों का अपवंचन भी सरलता से नहीं किया जा सकता क्योंकि वस्तुओं की संख्या अथवा भार की जाँच की जा सकती है।

#### विशिष्ट करों के दोष

इन करों का सबसे बड़ा दोष यह है कि ये न्यायपूर्ण नहीं होते क्योंकि इनका भार भार निर्धन वर्ग पर अधिक पड़ता है। निर्धन वर्ग, धनी व्यक्तियों की तुलना में ऐसी वस्तुओं का उपभोग करते हैं जिनका भार अधिक होता है।

#### यथामूल्य करों के गुण

यथामूल्य कर, विशिष्ट करों की तुलना में पूर्ण होते हैं क्योंकि इनको प्रगतिशील दरों से वसूल किया जा सकता है। प्रायः धनी लोग अधिक मूल्यवान वस्तुओं का प्रयोग करते हैं और यदि ऐसी वस्तुओं पर कर की दर ऊँची रखी जाये तो इन करों को प्रगतिशील बनाया जा सकता है।

#### यथामूल्य करों के दोष

(i) यथामूल्य कर एकत्रित करने की दृष्टि से असुविधाजनक होते हैं, मूल्य का सही-सही पता लगाना पड़ता है।

नोट

(ii) इन करों का अपवंचन किया जा सकता है क्योंकि करदाता झूठे बिल बनाकर करों से बचने का प्रयास करते हैं।



क्या आप जानते हैं अप्रत्यक्ष कर दो प्रकार के होते हैं—

(a) विशिष्ट कर

(b) यथामूल्य कर।

### 13.5 एक कर प्रणाली एवं बहुकर प्रणाली

#### (Single Tax System and Multiple Tax System)

एक कर प्रणाली के अन्तर्गत राज्य द्वारा केवल एक कर लगाया जाता है जो या तो कृषि उत्पादन पर हो सकता है, आय पर हो सकता है अथवा अन्य किसी वस्तु पर हो सकता है।

##### 13.5.1 एक कर—केवल कृषि पर (Single Tax—Only on Agriculture)

**प्रकृतिवादी (Physiocrats)**—अर्थशास्त्रियों का विचार था कि केवल कृषि उत्पादन पर कर लगाया जाये क्योंकि केवल कृषि ही उत्पादन व्यवसाय है। प्रकृतिवादी मानते थे कि कृषि के अतिरिक्त अन्य सब व्यवसाय अनुत्पादक होते हैं। उनकी धारणा इस बात पर आधारित थी कि शुद्ध उत्पादन (Net Product) केवल कृषि में ही प्राप्त होता है।

**ईसाक शेरमैन (Issac Sherman)**—का विचार था कि भूमि पर लगाया जाने वाला कर विवर्तित किया जा सकता है अतः उस कर का अन्तिम भार समाज के सभी व्यक्तियों पर पड़ेगा।

**इस कर के दोष**—यदि केवल भूमि पर कर लगाया जाता है तो इसके प्रमुख दो दोष दिखाई देते हैं जो इस प्रकार हैं—

(i) **अपर्याप्त आय**—यदि केवल कृषि पर कर लगाया जाता है तो इससे सरकार को पर्याप्त आय प्राप्त नहीं होती। आजकल जबकि सरकारों के कार्यों में वृद्धि हो रही है और अधिक धन की आवश्यकता होती है, तब एक कर प्रणाली से कार्य नहीं चल सकता और न ही सरकार को आवश्यक धनराशि प्राप्त हो सकती है।

(ii) **न्यायशीलता के विरुद्ध**—कृषि पर लगाए जाने वाले कर का भार केवल कृषकों पर पड़ता है जबकि पूँजीपति इन करों से बच जाते हैं। यह कहना गलत है कि भूमि पर लगाए गए कर को विवर्तनीय किया जा सकता है। चूँकि धनी व्यक्तियों की तुलना में, निर्धन व्यक्ति अधिक मात्रा में कृषि पदार्थों का उपभोग करते हैं अतः निर्धन वर्ग पर कर का भार अधिक पड़ता है। इस प्रकार यह कर अन्यायपूर्ण है तथा कर देने की योग्यता के अनुरूप नहीं है।

##### 13.5.2 एक कर—केवल आय पर (Single Tax—Only on Income)

समाजवादी विचारकों ने एक कर के रूप में केवल आय पर कर लगाने का समर्थन किया है। उनका तर्क है कि करों का भुगतान आय में से ही किया जाता है अतः एक ही कर लगाना पर्याप्त है तथा इसे प्रगतिशील बनाकर कर देने की योग्यता के अनुरूप बनाया जा सकता है। **प्रो. डाल्टन** यद्यपि केवल भूमि कर की तुलना में आय पर कर को उचित मानते थे, फिर उन्होंने इसे पर्याप्त नहीं माना।

**इस कर के दोष**—केवल आय पर कर लगाने के निम्न दोष हो सकते हैं—

(i) केवल आय पर कर लगाने से पर्याप्त आय प्राप्त नहीं हो सकती।

(ii) आय के अतिरिक्त, अन्य स्रोतों से प्राप्त सम्पत्ति पर कर नहीं लगाया जा सकेगा।

(iii) इस कर की बड़ी मात्रा में चोरी की जाएगी।

(iv) निर्धन वर्ग की आय पर भी कर लगेगा तथा उसे आय का हिसाब-किताब रखने में असुविधा होगी।

(v) सभी व्यक्तियों से आय-कर वसूल करने का खर्च काफी होगा।

## नोट

उपर्युक्त दोषों को देखते हुए वर्तमान में एक कर प्रणाली को व्यावहारिक नहीं माना जाता और इसके स्थान पर सब देशों ने बहुकर प्रणाली को अपनाया है।



टास्क एक कर प्रणाली से क्या अभिप्राय है?

### 13.5.3 बहुकर प्रणाली (Multiple Tax System)

इसे अनेक की प्रणाली भी कहते हैं। जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है, इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के कर लगाकर सरकार आवश्यक धन एकत्रित कर सकती है। आर्थर यंग (Arthur Young) के शब्दों में, “यदि मैं करारोपण की श्रेष्ठ पद्धति की परिभाषा करूँ तो वह ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी विशेष बिन्दु पर बहुत अधिक कर भार न होकर अनन्त बिन्दु पर थोड़ा-थोड़ा भार हो।” लेकिन यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि कर के अनेक बिन्दु तो हो सकते हैं पर उन्हें अनन्त नहीं होना चाहिए क्योंकि उससे कर उलझनपूर्ण हो जायेंगे तथा वसूली भी समस्या बन जायेगी।

आजकल प्रायः सब देशों में बहुकर प्रणाली ही लोकप्रिय हैं। इन करों में प्रगतिशीलता का गुण लाकर इन्हें न्यायपूर्ण भी बनाया जा सकता है। आजकल सरकारें आय-कर, विक्रय-कर, सम्पत्ति कर, उपहार कर, मृत्यु कर, उत्पादन कर, आयात कर आदि अनेक करों को अपना रही हैं।

#### बहुकर प्रणाली के गुण

बहुकर प्रणाली के निम्न गुण हैं—

- इन करों से सरकार को आवश्यकतानुसार पर्याप्त आय हो सकती है।
- करों को प्रगतिशील बनाकर न्यायपूर्ण बनाया जा सकता है।
- अनेक करों के माध्यम से राज्य के प्रायः सब वर्गों से सहयोग लिया जा सकता है।
- उचित उपाय अपनाकर करवंचन को रोका जा सकता है।

#### बहुकर प्रणाली के दोष

बहुकर प्रणाली में अनेक गुणों के साथ-साथ अनेक दोषों का भी समावेश है जिसमें निम्न प्रमुख हैं—

- बहुकर प्रणाली उपभोक्ताओं पर अधिक कर-भार डालती है। जिससे उनकी बचत एवं काम करने की योग्यता एवं इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- बहुकर प्रणाली में धनिकों की अपेक्षा निर्धनों पर कर का भार अधिक पड़ता है।



नोट्स आजकल सभी देशों में बहुकर प्रणाली प्रचलित है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

#### बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

- अप्रत्यक्ष कर प्रत्यक्ष के होते हैं—
 

(अ) पूरक	(ब) समान
(स) अनुपूरक	(द) असमान।
- आनुपातिक करारोपण के सबसे बड़ा गुण क्या है?
 

(अ) कठोरता	(ब) सरलता
(स) नम्रता	(द) मृदुता।

## नोट

8. प्रगतिशील कर प्रणाली ऐसी प्रणाली है जिसमें आय की वृद्धि के साथ ही कर-दर में भी क्या हो जाती है?
- (अ) हास (ब) समान रहता है  
(स) वृद्धि (द) असमान रहता है।
9. विशिष्ट करों को एकत्रित करना क्या होता है?
- (अ) आसान (ब) मुश्किल  
(स) लाभदायक (द) सुविधाजनक।
10. बहुकर प्रणाली से सरकार को आवश्यकतानुसार क्या प्राप्त होती है?
- (अ) आय (ब) व्यय  
(स) नुकसान (द) इनमें से कोई नहीं।

### 13.6 भारत में मूल्य वर्धित कर और संशोधित मूल्य वर्धित कर (Value Added Tax (VAT) and Modified Value Added Tax (Modvat) In India)

**परिचय**—मूल्य वर्धित कर (VAT), विक्रय कर के विकल्प के रूप में लागू किया गया है सबसे पहले 1954 में इसे फ्रांस में लागू किया गया जहाँ निर्यात वस्तुओं को छोड़कर विभिन्न वस्तुओं पर अलग-अलग दर से मूल्य वर्धित कर लगाया गया। फ्रांस के अतिरिक्त यूरोप के साझा बाजार के अन्य देशों में भी लागू किया गया। यह कर लागू होने के पहले यूरोप के देशों में बिक्री कर हर लेन-देन के सौदे पर लगता था, फलस्वरूप वस्तु की कीमत में बहुत वृद्धि हो जाती थी, अतः यह निर्णय लिया गया कि प्रत्येक अवस्था में सम्पूर्ण मूल्य पर कर न लेकर केवल बढ़े हुए मूल्य पर ही कर लिया जाये, इससे वस्तुओं के मूल्य में कम वृद्धि होगी तथा उपभोक्ताओं को लाभ होगा। इसे ही मूल्य वर्धित कर कहते हैं। 1973 में इसे अमेरिका में भी लागू किया गया।

#### 13.6.1 वैट की परिभाषा (Definition of VAT)

मूल्य वर्धित (VAT), एक ऐसी कर प्रणाली है जिसके अनुसार कर (Tax) केवल उत्पादन प्रक्रिया में की गई मूल्य वृद्धि पर ही लगाया जाता है। यह मूल्य वृद्धि उत्पादक व विक्रेता द्वारा की जाती है।

श्री एल. के. झा समिति के अनुसार, “मूल्य वर्धित कर व्यापक रूप से समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं पर एक कर है जिसमें निर्यात वस्तुओं एवं शासकीय सेवाओं को पृथक् कर दिया जाता है। यह कर प्रत्येक स्तर पर व्यवसाय की मूल्य वृद्धि पर जोड़ा जाता है। अतः इसे मूल्य वर्धित कर कहते हैं।” मूल्य वृद्धि से तात्पर्य उस राशि से है जो उत्पादन के कुल मूल्य में से क्रय किए गए भौतिक साधनों का मूल्य घटाकर प्राप्त किया जाता है। इस दृष्टि से व्यापारी द्वारा कर, वस्तु के कुल मूल्य पर नहीं, वरन् उस राशि पर दिया जाता है जिसकी वृद्धि की गई है। इसे शुद्ध मूल्य (Net Value) कहा जा सकता है। सूत्र रूप में इसे निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है—



नोट्स वर्धित मूल्य = वस्तु का कुल मूल्य – क्रय की गयी कच्ची सामग्री एवं अन्य सामग्री का मूल्य

उपर्युक्त में जो कर वर्धित मूल्य में लगाया जाता है, उसे ही मूल्य वर्धित कर कहते हैं। इसे हम एक सरल उदाहरण देकर प्रस्तुत करेंगे—बाजार में जो डबल रोटी बिकती है, वह गेहूँ के मैदे से तैयार की जाती है—इसके बनने की तीन अवस्थाएँ हैं—गेहूँ, गेहूँ से मैदा तैयार करना और फिर इसे गूँथकर एवं सेंककर डबल रोटी तैयार करना। अगर पहले गेहूँ पर कर लगे, उसके बाद मैदे पर और फिर डबल रोटी पर तो तीन बार कर के ऊपर कर लगेगा और डबल

## नोट

रोटी के दाम बहुत बढ़ जायेंगे। मूल्य वर्धित कर प्रणाली के प्रारम्भ होने पर अन्तर हुआ कि मैदे पर कर इसकी कुल कीमत पर न लगाकर केवल उस भाग पर लगता है जिससे मैदे की कीमत में वृद्धि हुई है। मान लो गेहूँ तीन रुपए किलो है और मैदा तीन रुपए पचास पैसे किलो तो पहले मैदे पर तीन रुपए पचास पैसे पर कर लगता था पर वैट (VAT) के लागू होने के बाद केवल 50 पैसे पर कर लगने लगा।

एक ट्रक का उदाहरण देकर भी इसे समझाया जा सकता है। ट्रक के लिए पहले इस्पात चाहिए, फिर इस इस्पात के विभिन्न हिस्से बनाए जाते हैं और फिर ट्रक तैयार किया जाता है। उक्त तीनों चीजों के कारखाने भिन्न-भिन्न हैं और यदि हर एक भिन्न-भिन्न कर लगते हैं तो करों पर कर लगने से ट्रक की कीमत बहुत बढ़ जायेगी अतः केवल मूल्य वृद्धि पर कर लगाया जाना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर प्रो. जे. सी. विनफ्रे (J. C. Winfrey) ने मूल्य वर्धित कर की परिभाषा इस प्रकार दी है, “मूल्य वर्धित कर वस्तु के फुटकर विक्रय मूल्य पर न लगाया जाकर उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओं में बढ़े हुए मूल्य पर लगाया जाता है।”

### 13.6.2 मूल्य वर्धित कर एवं विक्रय कर (VAT and Sales Tax)

चूँकि वैट को, विक्रय कर के विकल्प के रूप में अपनाया गया है, अतः आवश्यक है हम इन दोनों का अन्तर समझ लें। विक्रय कर वस्तु के कुल मूल्य पर केवल एक ही बार लगाया जाता है जबकि मूल्य वर्धित कर उत्पादन की प्रत्येक अवस्था में केवल बढ़े हुए मूल्य पर लगाया जाता है। चूँकि वस्तु का कुल मूल्य उत्पादकों द्वारा बढ़ाए गए मूल्य की ही योग होता है, अतः कहा जा सकता है कि इन दोनों में कई अन्तर नहीं हैं, किन्तु इनमें यह विशेष अन्तर है कि जहाँ मूल्य वृद्धि कर, केवल बढ़े हुए मूल्य पर लगाया जाता है वहाँ विक्रय कर केवल एक ही बार कुल विक्रय मूल्य पर लगाया जाता है।

अब प्रश्न है वैट को बिक्री कर के विकल्प के रूप में क्यों प्रस्तुत किया गया? इसके निम्न कारण हैं—

- (i) बिक्री कर में अनेक जटिलताएँ हैं।
- (ii) बिक्री कर के कारण, विभिन्न राज्यों में वस्तुओं के क्रय-विक्रय में कई प्रकार की बाधाएँ आती हैं।
- (iii) चूँकि विक्रय कर केवल एक ही बिन्दु पर लगाया जाता है, इसमें कर चोरी की अधिक सम्भावना रहती है।

### 13.6.3 मूल्य वर्धित कर एवं उत्पादन कर (VAT and Excise Duty)

उत्पादन शुल्क, सरकार द्वारा किसी फर्म द्वारा किए गए उत्पादन पर लगाया जाता है। यदि किसी वस्तु या इकाई का उत्पादन विभिन्न फर्मों द्वारा किया जाता है अर्थात् एक फर्म, दूसरी फर्म द्वारा निर्मित कच्चे माल का प्रयोग करती है तो प्रत्येक फर्म को उत्पादन शुल्क का भुगतान करना होता है अतः अन्त में निर्मित वस्तु (final goods) के ऊपर कर का भार बहुत बढ़ जाता है। इसके विपरीत, मूल्य वर्धित कर के अनुसार प्रत्येक फर्म पर केवल वर्धित मूल्य पर ही कर लगाया जाता है।

भारत के मुख्य अर्थशास्त्रियों ने भारत में उत्पादन कर के स्थान पर मूल्य वर्धित कर लगाने का समर्थन किया। इसका कारण यह है कि उत्पादन कर में अनेक जटिलताएँ हैं जो इस प्रकार हैं—

- (i) कुछ वस्तुओं पर उत्पादन कर विशिष्ट कर (Specific) की तरह तथा कुछ वस्तुओं पर मूल्यानुसार (ad-valorem) लगाया जाता है इससे प्रणाली में जटिलता आती है।
- (ii) चूँकि उत्पादन के विभिन्न चरणों पर उत्पादन कर लगाया जाता है, उसके प्रशासन के लिए बड़े पैमाने पर कर्मचारियों की आवश्यकता होती है।
- (iii) प्रशासकीय कठिनाई के कारण छोटे उद्योगों को उत्पादन कर में शामिल नहीं किया जा सकता जिससे सरकार को हानि होती है।

## नोट

## उदाहरण द्वारा मूल्य वर्धित कर का स्पष्टीकरण

मान लीजिए एक फर्म 'क' ने अपना 10,000 रुपए का निर्मित माल थोक व्यापारी 'ख' को बेचा। 'ख' थोक व्यापारी इस माल को फुटकर व्यापारियों को 10,500 रुपए में बेचता है तो मूल्य वर्धित कर की गणना इस प्रकार होगी—

(i) थोक व्यापारी द्वारा क्रय माल का मूल्य	10,000 रुपए
(ii) थोक व्यापारी द्वारा वसूल किया गया मूल्य	10,500 रुपए
(iii) यदि कर की दर 10 प्रतिशत है तो थोक विक्रय मूल्य पर देय कर की राशि 10,500 पर 10 प्रतिशत	1,050 रुपए
(iv) पहले फर्म 'क' द्वारा भुगतान कर	1,000 रुपए
(v) व्यापारी 'ख' द्वारा भुगतान किया जाने वाला कर (मूल्य वर्धित कर)	50 रुपए

## 13.7 मूल्य वर्धित कर के विभिन्न रूप

## (Various Forms of Value Added Tax)

प्रो. कार्ल शूप (Carl Shoup) ने मूल्य वर्धित कर के निम्न चार प्रकारों का विवेचन किया है जो इस प्रकार है—

- (i) **उत्पादन पर आधारित मूल्य वर्धित कर (VAT Based on Production)**—प्रत्येक फर्म उत्पादन करने के लिए अन्य फर्मों से सामग्री क्रय करती है तथा अपने उत्पादन को बेचकर आय प्राप्त करती है जिसे हम कुल प्राप्तियाँ (Gross Receipts) कहते हैं। यदि हम फर्म की कुल प्राप्तियों में से उसके द्वारा क्रय की गई सामग्री का मूल्य घटा दें तो हम फर्म द्वारा की गई मूल्य वृद्धि ज्ञात कर सकते हैं। इस मूल्य वृद्धि पर लगाए गए कर को उत्पादन पर आधारित मूल्य वर्धित कर कहते हैं।
- (ii) **उपभोग पर आधारित मूल्य वर्धित कर (Consumption Based VAT)**—यदि राष्ट्रीय उत्पाद में से कुल विनियोग को घटा दिया जाये तो जो शेष बचता है, वह उपभोग के तुल्य होता है और इस पर जो कर लगाया जाता है, उसे उपभोग आधारित मूल्य वर्धित कर कहते हैं। यह सबसे अधिक प्रचलित कर है जो बिक्री कर (Sales Tax) के विकल्प के रूप में लगाया जाता है। यह कर उन वस्तुओं पर लगाया जाता है जिनका प्रयोग अन्तिम उपभोग हेतु किया जाता है।
- (iii) **आय आधारित मूल्य वर्धित कर (Income Based VAT)**—यह कर निगम कर (Corporation Tax) के विकल्प के रूप में लगाया जाता है निगम कर व्यावसायिक निगमों और कम्पनियों की आय पर लगाया जाता है। उत्पादन में विभिन्न साधनों का योगदान होता है, जैसे, भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन एवं साहस जिन्हें क्रमशः लगान, मजदूरी, ब्याज, वेतन एवं लाभ प्राप्त होता है। उक्त पारिश्रमिकों का योग कर यदि उसे आधार मानकर मूल्य वृद्धि पर कर लगाया जाए तो उसे आधारित मूल्य वर्धित कर कहते हैं।
- (iv) **मजदूरी आधारित मूल्य वर्धित कर (Wage Based VAT)**—एक फर्म द्वारा उत्पादित इकाइयों के मूल्य में से उसमें प्रयुक्त विभिन्न आदाओं (Inputs) के साथ मशीन की घिसावट, ब्याज इत्यादि को घटाकर जो शेष बचता है, वह वर्धित मूल्य होता है जो मजदूरी भुगतान के बराबर होता है। इस विधि को मजदूरी आधारित मूल्य वर्धित कर कहते हैं।

## 13.7.1 मूल्य वर्धित कर के गुण (Merits of VAT)

(1) **उत्पादन के विभिन्न रूपों के प्रति तटस्थ**—मूल्य वर्धित कर, विक्रय कर से इस अर्थ में भिन्न है कि यदि विक्रय कर लगाया जाता है तो विभिन्न उत्पादन क्रियाओं के अनुसार कर का भार अलग-अलग होता है, जिसके फलस्वरूप कर का भार बढ़ जाता है। किन्तु मूल्य वर्धित कर सभी स्थितियों में समान रहता है। मूल्य वर्धित कर इस पर निर्भर नहीं रहता है कि वस्तु कितने हाथों में से विक्रय के दौरान गुजरती है।

## नोट

- (2) **कर वंचन में कमी**—मूल्य वर्धित कर में कर की चोरी का भय कम रहता है क्योंकि प्रत्येक फर्म को केवल मूल्य वृद्धि पर ही कर देना पड़ता है जो विक्रय कर की तुलना में काफी कम होता है। स्वाभाविक है उत्पादन कर की चोरी करने को प्रोत्साहित नहीं होते हैं।
- (3) **निर्यात प्रोत्साहन**—मूल्य वर्धित कर को उत्पादन लागत से सरलता से पृथक् किया जा सकता है तथा कर भार को पृथक् करके निर्यात व्यापार को प्रोत्साहित किया जा सकता है। यदि हम अन्य करों से तुलना करें तो पाते हैं कि मूल्य वर्धित कर निर्यात व्यापार बढ़ाने में अधिक सहायक है।
- (4) **मूल्य नियन्त्रण में सहायक**—विक्रय कर के फस्वरूप मूल्य में कर की तुलना में अधिक वृद्धि हो जाती है, किन्तु मूल्य वर्धित कर का भार सभी उत्पादन की क्रियाओं में समान होने से मूल्य में अधिक वृद्धि नहीं होती।
- (5) **व्यावहारिक**—अन्य करों की तुलना में मूल्य वर्धित कर अधिक व्यावहारिक है। यही कारण है अधिकतर यूरोप के देशों ने इसे अपनाया है।
- (6) **फर्म की उत्पादन क्षमता में वृद्धि**—मूल्य वर्धित कर लाभ के आधार पर न लगाया जाकर उत्पादन की मात्रा के अनुसार लगाया जाता है। लाभ हो या हानि, फर्म को कर देना ही पड़ता है अतः प्रत्येक फर्म यह प्रयास करती है कि न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करे।

**मूल्य वर्धित कर के दोष (Demerits of VAT)**

- (1) **लागू करने में कठिनाइयाँ**—मूल्य वर्धित कर को लागू करने के लिए एक सक्षम एवं कार्यकुशल प्रशासन तन्त्र की आवश्यकता होती है जो उत्पादन की विभिन्न प्रणाली में होने वाली मूल्य वृद्धि का सही लेखा-जोखा रख सके, परन्तु इस प्रकार के कुशल कर्मचारी न होने से इसे लागू करने में कठिनाई होती है।
- (2) **करदाताओं के सहयोग के बिना लागू करना असम्भव**—यह कर प्रणाली उसी समय लागू की जा सकती है जब सरकार को करदाताओं का पूरा सहयोग मिले। इसके लिए फर्मों को उत्पादन व मूल्य की सही गणना करना जरूरी है। फर्मों को इसका हिसाब भी रखना पड़ता है कि उत्पादन में जिन अन्य फर्मों से सामग्री क्रय की गई है, उन्होंने कितने कर का भुगतान किया है।
- (3) **गणना सम्बन्धी कठिनाइयाँ**—इस कर की गणना सरल नहीं है क्योंकि इसमें काफी जटिलता रहती है।
- (4) **अविकसित देशों में क्रियान्वयन में कठिनाई**—एक पिछड़ी एवं अभावग्रस्तता वाली अर्थव्यवस्था में इस कर प्रणाली को कार्यविन्त करना कठिन है।

**13.8 संशोधित मूल्य वर्धित कर (Modified Value Added Tax-MODVAT)**

MODVAT का अभिप्राय है—Modified Value Added Tax अर्थात् संशोधित मूल्य वर्धित कर। MODVAT पूर्व में प्रचलित VAT (मूल्य वर्धित कर Value Added Tax) का ही संशोधित रूप है।

भारत में मूल्य वर्धित कर उत्पादन शुल्क के स्थान पर लगाया गया है जबकि अन्य देशों में इसे विक्रय कर के स्थान पर लगाया गया है। अर्थात् भारत में इसे संशोधित रूप में लगाया गया। यही कारण है कि इसे संशोधित मूल्य वर्धित कर ( **मोडवैट** ) कहते हैं।

सबसे पहले भारत में **भूतलिंगम समिति** ने उत्पादन शुल्क के नाम व **मूल्य वर्धित कर (VAT)** का समर्थन किया। सन् 1978 में **श्री एल. के. झा समिति** ने जिसे परोक्ष करों के अध्ययन हेतु नियुक्त किया गया था, कुछ वस्तुओं पर **मूल्य वर्धित कर (VAT)** लगाने का सुझाव दिया जिन्हें निर्मित वस्तुओं (Manufactured Goods) पर लगाया जाना था जिसे (MANVAT) (Manufacturing Value Added Tax) का नाम दिया, किन्तु बाद में इसे संशोधित कर MODVAT कर दिया गया।

MODVAT के अनुसार आगतों (Insprits) एवं मध्यवर्ती वस्तुओं पर कर समाप्त करके कर को केवल निर्मित अन्तिम वस्तुओं (final Goods) पर लगाया जाता है जिससे करारोपण की दोहरी सम्भावना समाप्त हो जाती है।



## नोट



क्या आप जानते हैं भारत में (MODVAT) योजना 1980-87 के बजट में लागू की गई।

भारत में मोडवैट को शुरू करने की आवश्यकता क्यों हुई? तत्कालीन वित्तमन्त्री के अनुसार उत्पादन शुल्क सम्बन्धी समाधान में जिस जटिल समस्या का समाधान करना पड़ता है वह है इनपुट (Inputs) पर कराधान और अन्तिम उत्पाद के मूल्य पर पड़ने वाला उसका संचयी प्रभाव। दीर्घकालीन राजाकोषीय नीति में यह सुझाव दिया गया था कि इसका सबसे अच्छा हल यह होगा कि कुछ विशेष समस्याओं वाले क्षेत्रों को छोड़कर प्रोफार्मा क्रेडिट की मौजूदा प्रणाली को उत्पादन शुल्क योग्य सभी वस्तुओं पर लागू किया जाये। इसे ही **मोडवैट** का नाम दिया गया।

### 13.8.1 प्रोफार्मा क्रेडिट योजना क्या है?

यह देखने के लिए कि कर के ऊपर कर न लगे, सरकार ने 'प्रोफार्मा क्रेडिट योजना, (Proforma Credit Plan) बनाई है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक फर्म, उत्पादन में जब कोई ऐसी वस्तु का प्रयोग करती है जिस पर पहले कर दिया जा चुका है, तो वह सरकार को वह प्रोफार्मा पेश करती है और उस पर कर लगाते समय कर नहीं लगता। इस योजना के अन्तर्गत लाभ केवल उन उद्योगों को मिलता है। जहाँ इनपुट और अन्तिम उत्पादन दोनों ही उत्पादन करों की सूची में एक ही श्रेणी में आते हैं।

भारत में 1986-87 के बजट में सब **मोडवैट** का आरम्भ हुआ तब यह घोषित किया गया कि जब तक इनपुट्स और अन्तिम उत्पाद 37 विनिर्दिष्ट अध्यायों में शामिल रहेंगे और अन्तिम उत्पाद पर कुछ उत्पाद शुल्क लगता रहेगा। तब तक उपर्युक्त इनपुट्स पर लगने वाले शुल्क पर क्रेडिट उपलब्ध होता रहेगा। इससे अन्तिम उत्पाद की लगत में कमी आएगी।

मोडवैट कोई ऐसी योजना नहीं है जिसका भारत में आविष्कार किया गया है। पहले ही इसे यूरोप के साझा बाजार देशों में शुरू किया गया। प्रारम्भ में भारत में कुछ चीजों पर MODVAT लगाया गया, जैसे, शीशे की वस्तुएँ, प्लास्टिक, रंग-रोगन, कुछ कल-पुर्जे इत्यादि। यह सच है कि मोडवैट से कुछ चीजों की कीमते कम होंगी पर यह राहत मामूली सी होगी और थोड़ी वस्तुओं पर ही मिलेगी। किन्तु मोडवैट योजना का वास्तविक उद्देश्य तो यह है कि कर के ऊपर कर न लगे।

### सेनवैट (CENVAT)

1 अप्रैल, 2000 से मोडवैट (MODVAT) को सेनवैट (CENVAT) के रूप में परिवर्तित किया गया। वर्ष 2000-2001 के बजट में पिछले बजट की घोषित तीन उत्पाद शुल्क दरों (8, 16 तथा 24 प्रतिशत) को 16% की एक मोडवैट योग्य दर में बदलकर इसे (Central Value Added Tax (CENVAT) का नाम दिया गया।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

11. मूल्य वर्धित कर (VAT), विक्रय कर के विकल्प के रूप में लागू किया गया है।
12. वर्धित मूल्य = वस्तु का कुल मूल्य + क्रय की गयी कच्ची सामग्री एवं अन्य सामग्री का मूल्य।
13. बिक्री कर में अनेक जटिलताएँ हैं।
14. भारत के मुख्य अर्थशास्त्रियों ने भारत में उत्पादन कर के स्थान पर मूल्य वर्धित कर लगाने का समर्थन किया।
15. हानि की स्थिति में फर्म को कर नहीं देना पड़ता है।

### 13.9 सारांश (Summary)

नोट

- प्रत्यक्ष करों में कर का दबाव एवं कर-भार (कराघात और करापात) एक ही व्यक्ति पर पड़ता है, जैसे आय-कर; जबकि अप्रत्यक्ष करों में कराघात और करापात भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर पड़ता है, जैसे, बिक्री-कर।
- प्रत्यक्ष कर से तात्पर्य यह है कि यह कर हस्तान्तरित एवं विवर्तित नहीं किया जा सकता वरन् उसी व्यक्ति पर लगाया जाता है जिससे भार सहन करने की आशा की जाती है। आय-कर प्रत्यक्ष कर का श्रेष्ठ उदाहरण है।
- अप्रत्यक्ष करों में यह गुण भी होता है कि ये लोचदार होते हैं अर्थात् करों की दर में वृद्धि करके सरकार अपनी आय बढ़ा सकती है। जिन वस्तुओं की माँग बेलोचदार होती है, उन पर कर की दर सरलता से बढ़ाई जा सकती है। किन्तु इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि ऐसी वस्तुओं का मूल्य बढ़ने से गरीब उपभोक्ताओं पर अधिक भार पड़ता है।
- प्रत्यक्ष कर एवं अप्रत्यक्ष कर एक-दूसरे के पूरक हैं।
- आनुपातिक करारोपण के अन्तर्गत सभी करदाता अपनी आय का समान अनुपात करों के रूप में भुगतान करते हैं।
- आनुपातिक कर की दरों की तालिका वह होती है जिसमें कर के आधार में परिवर्तन होने पर भी कर की दर समान रहती है।
- विशिष्ट कर वे होते हैं जो वस्तु की संख्या, आकार अथवा भार के आधार पर लगाए जाते हैं जैसे, किसी वस्तु के भार पर 50 रुपए प्रति मैट्रिक टन के हिसाब से कर लगाया जाये।
- यथामूल्य कर वे होते हैं जो वस्तुओं के मूल्य के अनुसार लगाए जाते हैं, जैसे, किसी वस्तु के मूल्य पर 10 प्रतिशत की दर से कर लगाया जाए तो यह यथामूल्य कर होगा। विक्रय कर प्रायः इसी पद्धति से लगाया जाता है।
- एक कर प्रणाली के अन्तर्गत राज्य द्वारा केवल एक कर लगाया जाता है जो या तो कृषि उत्पादन पर हो सकता है, आय पर हो सकता है अथवा अन्य किसी वस्तु पर हो सकता है।
- आजकल प्रायः सब देशों में बहुकर प्रणाली ही लोकप्रिय हैं। इन करों में प्रगतिशीलता का गुण लाकर इन्हें न्यायपूर्ण भी बनाया जा सकता है। आजकल सरकारें आय-कर, विक्रय-कर, सम्पत्ति कर, उपहार कर, मृत्यु कर, उत्पादन कर, आयात कर आदि अनेक करों को अपना रही हैं।
- मूल्य वर्धित कर (VAT), विक्रय कर के विकल्प के रूप में लागू किया गया है सबसे पहले 1954 में इसे फ्रांस में लागू किया गया जहाँ निर्यात वस्तुओं को छोड़कर विभिन्न वस्तुओं पर अलग-अलग दर से मूल्य वर्धित कर लगाया गया।
- मूल्य वर्धित कर व्यापक रूप से समस्त वस्तुओं एवं सेवाओं पर एक कर है जिसमें निर्यात वस्तुओं एवं शासकीय सेवाओं को पृथक् कर दिया जाता है। यह कर प्रत्येक स्तर पर व्यवसाय की मूल्य वृद्धि पर जोड़ा जाता है। अतः इसे मूल्य वर्धित कर कहते हैं।
- MODVAT का अभिप्राय है—Modified Value Added Tax अर्थात् संशोधित मूल्य वर्धित कर। MODVAT पूर्व में प्रचलित VAT (मूल्य वर्धित कर Value Added Tax का की ही संशोधित रूप है।

### 13.10 शब्दकोश (Keywords)

- आनुपातिक (Proportional)—अनुपात संबंधी।
- विशिष्ट (Specific)—विशेषता युक्त।

नोट

### 13.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रत्यक्ष कर से क्या अभिप्राय है?
2. अप्रत्यक्ष कर को परिभाषित करें।
3. अप्रत्यक्ष कर के गुण-दोषों का वर्णन करें।
4. प्रतिगामी अथवा अवरोही कर प्रणाली से आप क्या समझते हैं?
5. बहुकर प्रणाली के गुण-दोषों का वर्णन करें।
6. सेनवैट से क्या अभिप्राय है?

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |               |          |            |               |
|---------------|----------|------------|---------------|
| 1. कराघात     | 2. न्याय | 3. संपत्ति | 4. अप्रत्यक्ष |
| 5. न्यायपूर्ण | 6. (अ)   | 7. (ब)     | 8. (स)        |
| 9. (द)        | 10. (अ)  | 11. सत्य   | 12. असत्य     |
| 13. सत्य      | 14. सत्य | 15. असत्य। |               |

### 13.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त—एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन—मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस—नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस—नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

## इकाई-14: उत्पादन और वृद्धि पर कराधान के प्रभाव (Effects of Taxation on Production and Growth)

### अनुक्रमणिका (Contents)

#### उद्देश्य (Objectives)

#### प्रस्तावना (Introduction)

- 14.1 उत्पादन पर करारोपण का प्रभाव (Effects of Taxation on Production)
- 14.2 वितरण पर कराधान के प्रभाव (Effects of Taxation on Distribution)
- 14.3 कर की प्रगतिशीलता की माप (Measurement of Tax Progression)
- 14.4 वितरण बनाम उत्पादन (Distribution vs Production)
- 14.5 कराधान के अन्य प्रभाव (Other Effects of Taxation)
- 14.6 करारोपण और आर्थिक स्थिरता (Taxation and Economic Stability)
- 14.7 कराधान के नियामकीय प्रभाव (Regulatory Effects of Taxation)
- 14.8 सारांश (Summary)
- 14.9 शब्दकोश (Keywords)
- 14.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 14.11 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- वितरण पर कराधान के प्रभाव की जानकारी प्राप्त करने में।
- कर की प्रगतिशीलता की माप को जानने में।
- वितरण बनाम उत्पादन को समझने हेतु।
- करारोपण और आर्थिक स्थिरता की जानकारी हेतु।

### प्रस्तावना (Introduction)

आजकल कराधान का उपयोग केवल राजस्व-प्राप्ति के स्रोत के रूप में ही नहीं किया जाता, बल्कि कुछ ऐसे सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में भी किया जाता है, जैसे कि उपभोग व उत्पादन का नियमन, तेजी व मन्दी की स्थितियों पर नियन्त्रण, आर्थिक प्रगति को प्रोत्साहन तथा आय की असमानताओं की समाप्ति आदि। इन आर्थिक क्रियाओं पर कराधान के प्रभाव अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। अतः सरकार को केवल राजस्व-प्राप्ति की बात ही अपने मन में नहीं रखनी चाहिए अपितु कराधान के आर्थिक प्रभावों को भी दृष्टिगत रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में डाल्टन का कहना है कि “आर्थिक दृष्टिकोण से कराधान की सर्वश्रेष्ठ पद्धति वह है जो सबसे अच्छे अथवा कम से कम बुरे आर्थिक प्रभाव डालती है।”

## नोट

**14.1 उत्पादन पर करारोपण का प्रभाव (Effects of Taxation on Production)**

प्राचीन अर्थशास्त्रियों का मत था कि करारोपण का एक मात्र उद्देश्य आय प्राप्त करना है परन्तु आधुनिक समय में करारोपण का उद्देश्य अपेक्षाकृत विस्तृत हो गया है। वर्तमान युग में करारोपण से मात्र आय प्राप्ति ही नहीं अपितु इसका ध्येय उत्पादन को प्रभावित करना व समाज में धन के वितरण को समान भी करना समझा जाता है। **श्रीमती हिक्स** के शब्दों में, “किसी देश की अर्थव्यवस्था पर उस देश की कर प्रणाली का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।” अतः हमें इस बात का गहनता से अध्ययन करना होगा कि करारोपण का उत्पादन, वितरण व रोजगार आदि पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। **प्रो. लर्नर** का कहना है कि कर सम्बन्ध नीति अपनाते समय मुख्य उद्देश्य केवल आर्थिक लाभ या आधिक्य प्राप्त करना नहीं होना चाहिए अपितु अर्थव्यवस्था में स्थिरता बनाये रखना और तेजी से मन्दी को रोकना भी होना चाहिए।

**प्रो. डाल्टन** ने करारोपण के प्रभावों का निम्न तीन शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन किया है—

- (1) उत्पादन पर प्रभाव (Effects on Production),
- (2) वितरण पर प्रभाव (Effects on Distribution),
- (3) अन्य प्रभाव (Other Effects)।

**उत्पादन पर प्रभाव (Effects on Production)**

**डाल्टन** के अनुसार उत्पादन पर करारोपण के प्रभाव निम्नलिखित तीन प्रकार से पड़ सकते हैं—

- (क) काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की योग्यता पर प्रभाव।
- (ख) काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा पर प्रभाव।
- (ग) उत्पादन के गठन अथवा प्रतिरूप (pattern) पर पड़ने वाले प्रभाव (अर्थात् विभिन्न उद्योगों तथा क्षेत्रों के बीच साधनों के बंटवारे पर प्रभाव)।

अब हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि करारोपण इन तीनों रूपों में उत्पादन के स्तर को किस प्रकार प्रभावित करता है।



**नोट्स** करारोपण का एकमात्र उद्देश्य आय प्राप्त करना है।

**14.1.1 काम करने, बचत करने तथा विनियोग करने की योग्यता पर प्रभाव****(Effects on Ability to Work, Save and Invest)**

साधारणतया यह कहा जाता है कि कर लगाने से लोगों की योग्यता और बचत करने की क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु यह सभी स्थितियों में ठीक नहीं है।

**(i) काम करने की योग्यता**—करारोपण का अर्थ है व्यक्तिगत हाथों में से सरकार की ओर को क्रयशक्ति (purchasing power) का स्थानान्तरण। अन्य शब्दों में इसका मतलब है करदाता की क्रयशक्ति में कमी होना तथा जीवन की अनिवार्य, आरामदायक एवं विलासिता की वस्तुओं को प्राप्त करने की उसकी योग्यता में कमी आना। करारोपण का यह प्रभाव निर्धन वर्ग के लोगों द्वारा अधिक महसूस किया जाता है। जब करों का भार निर्धन लोगों पर पड़ता है तो इससे उनकी अनिवार्य एवं आरामदायक वस्तुओं का उपभोग घट जाता है और उससे उनका जीवन-स्तर नीचा हो जाता है तथा इस प्रकार निर्धन लोगों की काम करने की योग्यता व क्षमता पर करारोपण का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत, अपेक्षाकृत धनी वर्ग के लोगों की काम करने की योग्यता तथा क्षमता पर करारोपण का इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। कारण यह है कि धनी व्यक्तियों पर लगाया गया करारोपण उनके केवल विलासितापूर्ण उपभोग को ही अवरुद्ध करता है जिसका उनकी काम करने की योग्यता व क्षमता पर कोई विशेष

## नोट

प्रभाव नहीं पड़ता। यही कारण है कि अधिकांश अर्थशास्त्रियों द्वारा समाज के निर्धन वर्ग के लोगों पर भारी कर लगाये जाने का कड़ा विरोध किया जाता है। अतः उचित यही है कि निर्धन वर्ग के लोगों पर यथा-सम्भव कम से कम कर लगाए जाने चाहिए ताकि उनके स्वास्थ्य तथा काम करने की योग्यता व क्षमता पर कराधान के प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। उत्पादन के हित में यह आवश्यक है कि कम आमदनियों पर तथा ऐसी वस्तुओं पर, जिनका कि अधिकतम उपभोग समाज के कम समृद्ध वर्ग द्वारा किया जाता है, कर नहीं लगाये जाने चाहिए।

किन्तु सभी कर लोगों की काम करने की योग्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हों, ऐसी बात नहीं है। शराब तथा अफीम जैसी वस्तुओं पर लगाये जाने वाले कर इसके उदाहरण हैं। ऐसी वस्तुओं का उपभोग श्रमिकों के स्वास्थ्य व उनकी कार्य क्षमता के लिए हानिकारक होता है। अतः ऐसी वस्तुओं के उपभोग पर रोक लगाकर कराधान अन्ततः उत्पादन पर अनुकूल रचनात्मक प्रभाव डालता है।

**(ii) बचत करने की योग्यता पर प्रभाव**—बचत आय पर निर्भर करती है और जब कराधान द्वारा आय कम हो जाती है तो बचतें फिर आप से आप ही कम होने लगती हैं। अतः सभी प्रकार के करों द्वारा ऐसे लोगों की बचत करने की योग्यता घटती ही है जिनकी आय इतनी अवश्य हो कि उसमें से थोड़ी या अधिक मात्रा में बचत करना सम्भव हो सकता हो। यदि कोई कर ऐसे हैं, जो कि लोगों की बचत करने की योग्यता को, कुछ सीमा तक, कम नहीं करते हैं, जो कि पूर्णतया ऐसे गरीब लोगों पर पड़ते हैं जिनकी आय इतनी कम है कि उसमें से बचत करना सम्भव नहीं है। इस प्रकार, स्पष्ट है कि यद्यपि धनी व्यक्तियों पर लगाये जाने वाले भारी करों को कुछ अन्य बातों के आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सकता है परन्तु यहाँ हमें यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि इससे बचत करने की योग्यता कम हो जाती है।

**निवेश (invest) करने की योग्यता** इस बात पर निर्भर होती है कि कितने साधन अर्थात् बचतें (savings) निवेश के लिए उपलब्ध हैं। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कराधान से बचतें कम हो जाती हैं, अतः बचतें कम हो जाती हैं तो निवेश करने की योग्यता भी आप से आप ही कम हो जाती है।

परन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि यह विवेचन भी पक्षपात से मुक्त नहीं कहा जा सकता। कारण यह है कि यहाँ कराधान के प्रभावों का तो विश्लेषण किया गया है किन्तु सरकारी खर्च से जो लाभ पहुँचते हैं उनको यहाँ कतई भी दृष्टिगत नहीं रखा गया है। काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की योग्यता कराधान से जितनी कम होती है, हो सकता है कि सरकारी खर्च के द्वारा यह योग्यता उससे भी अधिक अनुपात में बढ़ जाए। कराधान का उद्देश्य सामान्यतः यही होता है कि उसके द्वारा देश के आर्थिक कल्याण में वृद्धि की जाए। अतः जब कराधान के प्रभावों का मूल्यांकन किया जाए तो सरकारी खर्च के प्रभावों को भी अवश्य दृष्टिगत रखा जाना चाहिए।



क्या आप जानते हैं बचत आय पर निर्भर है।

#### 14.1.2 काम करने, बचत करने तथा विनियोग करने की इच्छा पर प्रभाव

##### (Effects on the Desire to Work, Save and Invest)

कराधान लोगों के काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की प्रेरणाओं (incentive) पर प्रभाव डालता है और इस स्थिति में उत्पादन तो स्वयमेव प्रभावित हो जाता है। अतः उत्पादन पर कराधान के प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए इस बात पर विचार करना होगा कि काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की प्रेरणाओं पर कराधान का क्या प्रभाव पड़ता है। आर्थिक प्रेरणाओं पर कराधान का प्रभाव—(1) करों की प्रकृति तथा (2) करदाताओं की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया पर निर्भर होता है।

##### (1) करों की प्रकृति (Nature of Taxes)

सामान्य रूप में, यह कहा जाता है कि कराधान का अन्तिम उद्देश्य लोगों को कठिन श्रम करने तथा अधिक बचत करने के लिए प्रेरित करना है। हाँ, यह अवश्य है कि विभिन्न करों के प्रभाव पृथक्-पृथक् हो सकते हैं। काम करने

## नोट

तथा बचत करने की इच्छा पर कुछ करों का बुरा प्रभाव या तो बहुत पड़ता है अथवा बिल्कुल ही नहीं पड़ता, किन्तु अन्य कर ऐसे भी होते हैं जो इस दिशा में विनाशकारी प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए, छप्परफाड़ लाभों (windfalls) पर कर, अर्थात् थोड़े समय में होने वाले असाधारण लाभों पर कर, उत्तराधिकार कर तथा भूमि के मूल्यों में होने वाली वृद्धि पर विशेष कर-निर्धारण आदि उक्त प्रथम वर्ग के करों में आते हैं। ये आमदनियाँ चूँकि अचानक होती हैं, अतः इन आमदनियों पर कर लगाने का कोई बुरा प्रभाव काम करने तथा बचत करने की इच्छा पर नहीं पड़ता। इसी प्रकार, एकाधिकारी लाभों (monopoly profits) पर लगाया जाने वाला कर भी तटस्थ प्रभाव छोड़ता है। कारण यह है कि एकाधिकारी उत्पादन अपने उत्पादन को ऐसे बिन्दु पर समायोजित करता है जहाँ कि सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय बराबर होती है और यही वह बिन्दु (point) होता है जिस पर कि वह अधिकतम लाभ कमाता है। अब यदि कराधान के कारण वह अपना उत्पादन कम करता है तो इससे उसके काम में भी काफी कमी आ जायेगी। इस स्थिति में, उसके लिए यही अच्छा होगा कि वह इस प्रकार कमाये गये एकाधिकारी लाभ में से कर अदा कर दे। इसके विपरीत, यदि एकाधिकारी व्यक्ति की उत्पादित वस्तु की कीमत में कमी होने के साथ ही उस पर कर भी कम कर दिया जाता है तो इससे उसे और अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहन मिलेगा तथा इस बात की प्रेरणा मिलेगी कि वह वस्तु की कीमत घटाकर अधिक माल बेचे तथा और अधिक लाभ कमाये। इससे तो उसकी काम करने तथा बचत करने की इच्छा और भी बढ़ेगी।

इसके अतिरिक्त, उत्पादन-कर तथा बिक्री-कर जैसे तर्कसंगत वस्तु करों का हो सकता है कि काम करने व बचत करने की इच्छा पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े। परन्तु यदि वस्तु करों के रूप में आय का एक बड़ा भाग सरकार द्वारा ले लिया जाता है तो सम्भव है बचतें (savings) इसलिए कम हो जाएँ क्योंकि उन पर कर लग गया है। कर लगने के कारण जिन वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होगी, उनकी माँग (demand) भी घट सकती है, और इसके फलस्वरूप यह भी हो सकता है कि उन वस्तुओं का उत्पादन ही घट जाये। आयात करों (import duties) का समर्थन इसलिए किया जाता है ताकि देशी उत्पादनों को विदेशी प्रतियोगिता के विरुद्ध संरक्षण दिया जा सके। ये कर काम करने तथा बचत करने की इच्छा में वृद्धि कर सकते हैं और ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में अधिक धन लगाने को प्रेरित कर सकते हैं जो कि आयात की जाती है। इसी प्रकार, हल्के निर्यात करों का समर्थन इसलिए किया जाता है ताकि निर्यात बढ़ाये जा सके और विदेशी बाजारों पर छाया जा सके। अतः हल्के निर्यात कर (low export duties) ऐसी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने को प्रोत्साहित कर सकते हैं जिनका कि निर्यात किया जाता है और इस प्रकार ये कर काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा में वृद्धि कर सकते हैं। स्पष्ट है कि यह कर की प्रकृति तथा उसकी किस्म ही होती है जो कि उत्पादन पर, अर्थात् काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा पर उसके प्रभावों का निर्धारण करती है।

इसी प्रकार आय-कर (income tax), धन-कर (wealth tax), उत्तराधिकार कर (inheritance tax) तथा व्यय कर (expenditure tax) के तुलनात्मक प्रभावों की प्रकृति भी भिन्न होती है। आय-कर और धन-कर तो सामान्यतः कठिन श्रम करने तथा अधिक बचत करने की लोगों की इच्छा को अवरुद्ध करते हैं। अत्यधिक आरोही आय-कर (highly progressive income tax) अधिकांश करदाताओं को कठिन श्रम करने तथा अधिक बचत करने के प्रति हतोत्साहित करता है। यही स्थिति धन-कर की होती है। हाँ, इतना अवश्य है कि आय-कर के मुकाबले धन-कर करदाता की काम करने की इच्छा पर कम प्रभाव डालता है। कारण यह है कि धन-कर व्यक्ति के पुरस्कार या पारिश्रमिक को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं करता है, किन्तु बचत करने की इच्छा पर आय-कर के मुकाबले धन-कर अधिक प्रतिकूल प्रभाव डालता है और वह इसलिए क्योंकि आय-कर अदा करने के बाद जो आय बच जाती है उस पर दुबारा आय-कर नहीं लगाया जाता।

इसी तरह आय-कर के मुकाबले उत्तराधिकार कर को प्रमुखता या तरजीह (preference) दी जाती है। इसका कारण यह है कि करदाता आय-कर तो अपनी वर्तमान आय में से देता है, किन्तु उत्तराधिकार कर उस आय तथा धन में से भविष्य में अदा किया जाता है जो कि व्यक्ति उत्तराधिकार में प्राप्त करता है। स्पष्ट है कि उसकी यह आय अनार्जित (unearned) प्रकृति की होती है। यद्यपि आयकर तथा उत्तराधिकार कर दोनों ही काम करने तथा

## नोट

बचत करने की इच्छा को प्रभावित करते हैं परन्तु इस इच्छा पर अर्थात् उत्पादन पर उत्तराधिकार कर की अपेक्षा आय-कर के प्रभाव अधिक प्रतिकूल होते हैं।

काम करने तथा बचत करने की इच्छा पर आय-कर की अपेक्षा व्यय-कर (expenditure tax) के प्रभाव अधिक अनुकूल (favourable) हो सकते हैं। एक आरोही व्यय-कर उपभोग पर किये जाने वाले व्यर्थ के खर्चों को हतोत्साहित करता है और बचत तथा निवेश (investment) को प्रोत्साहित करता है। व्यय-कर का उपयोग उपभोग के स्वरूप को परिवर्तित करने में भी किया जा सकता है। परन्तु एक विकसित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत, व्यय कर से मुद्रा-अवस्फीति सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ (deflationary tendencies) उत्पन्न होने की सम्भावना है। इसका कारण यह है कि उपभोग व्यय में कमी होने से समर्थ माँग (effective demand) कम हो जायेगी और लाभ की दर घट जायेगी जिसका बचत, निवेश तथा आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है बशर्ते कि सरकारी खर्च में वृद्धि करके उसकी पूर्ति न कर दी जाए।

काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की प्रेरणाओं पर अनुपाती कराधान के मुकाबले आरोही आय-कर, धन-कर तथा सम्पत्ति करों के अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि कर भिन्न-भिन्न प्रकृति के होते हैं और लोगों की प्रेरणाओं पर अर्थात् काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा पर उनके प्रभाव भी भिन्न-भिन्न ही पड़ते हैं।

## (2) करदाताओं की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया (Psychological Reaction of the Tax-payers)

प्रो. पीगू ने करदाताओं की मनोवैज्ञानिक अथवा मानसिक प्रतिक्रिया को “कराधान के घोषित प्रभाव” का नाम दिया है। इसका आशय यही है कि करदाता मनोवैज्ञानिक रूप से भी कराधान के भार से प्रभावित होता है। जब कर की घोषणा की जाती है तो करदाता एकदम यह अनुभव करता है कि उसकी आय घट गई है। करदाता की यह मनोदशा कठिन श्रम करने तथा अधिक बचत करने की इच्छा को प्रभावित कर सकती है।

कर के बारे में करदाताओं की मानसिक प्रतिक्रिया प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती है और यह प्रतिक्रिया इस बात से प्रभावित होती है कि आय के लिए व्यक्ति की माँग कितनी लोचदार है। डाल्टन के शब्दों में, “कराधान के प्रति किसी भी व्यक्ति की प्रतिक्रिया आय के प्रति उसकी माँग की लोच से निर्देशित होती है।” अब हम यह देखेंगे कि आय के लिए माँग की लोच का क्या तात्पर्य है तथा काम करने और बचत करने की इच्छा में इसका क्या योगदान हो सकता है।

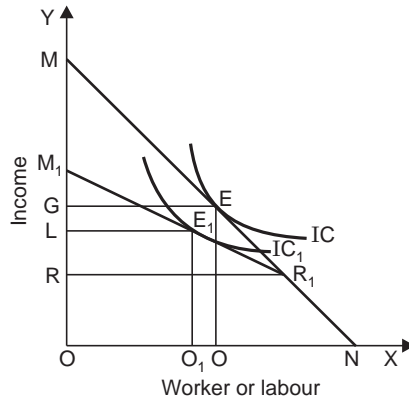
**आय के लिए माँग की लोच (Income Elasticity of Demand)–(i) लोचदार माँग**—आय के प्रति व्यक्ति की माँग को लोचदार (elastic) तब कहा जाता है जबकि व्यक्ति अपनी आय के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए अधिक उत्सुक नहीं होता और आय की उतनी ही मात्रा प्राप्त करने के लिए वह कड़ी मेहनत करने को तैयार नहीं होता। मान लीजिए, कोई व्यक्ति प्रति वर्ष 12,000 रु. की आय कमा रहा है और वह उस पर 1,200 रु. आय-कर देता है। इस स्थिति में आय के प्रति उसकी माँग को लोचदार तब कहा जायेगा जबकि हम यह पायेंगे कि आय को अपने वर्तमान स्तर पर बनाये रखने की उसकी इच्छा अधिक तीव्र नहीं है और अतिरिक्त आय कमाने के लिए वह अधिक काम नहीं करता है ताकि वह कराधान के प्रतिकूल प्रभाव की क्षति-पूर्ति कर सके और कर की अदायगी के बाद भी अपनी आय को 12,000 रु. के पूर्व स्तर पर बनाये रखे।

**(ii) बेलोचदार माँग**—आय के प्रति व्यक्ति की माँग को लोचहीन (inelastic) तब कहा जाता है जबकि अपनी निश्चित आय को बनाये रखने की इच्छा उसमें काफी तीव्र होती है और वह कर की अदायगी के बाद भी अपनी आय को 12,000 रु. के पूर्व स्तर पर ही बनाये रखने के लिए अधिक काम करने को कटिबद्ध है।

तटस्थता वक्र द्वारा आय की लोचदार और आय की बेलोचदार माँग का लोगों की कार्य करने व बचत करने की इच्छा पर प्रभाव को आसानी से समझाया जा सकता है—



नोट



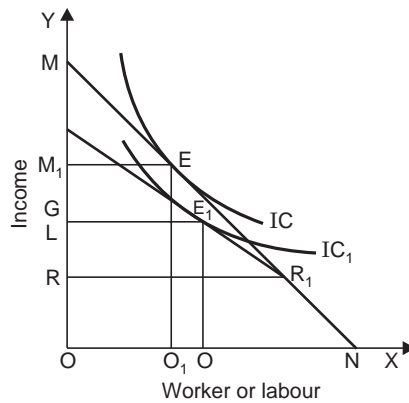
संलग्न चित्र में X-अक्ष पर कार्य अथवा आराम तथा Y-अक्ष पर आय (मजदूरी) मापी गई है। प्रत्येक श्रमिक को 24 घण्टे मिलते हैं जिसमें वह कार्य अथवा आराम कर सकता है। यदि वह 24 घण्टे कार्य करे तो वह अधिकतम OM आय अथवा मजदूरी प्राप्त कर सकते हैं। MN रेखा मजदूरी अथवा आय रेखा को प्रदर्शित करती है। इस रेखा का ढाल जितना अधिक होगा मजदूरी दर उतनी ही अधिक ऊँची होगी।



टास्क लोचदार माँग क्या है?

यदि सरकार उसकी आय पर कर नहीं लगाती है तो ऐसी स्थिति में उनकी आय रेखा MN होगी। सन्तुलन की स्थिति में वह E बिन्दु पर होगा क्योंकि इस बिन्दु पर इसका तटस्था वक्र तथा आय रेखा एक-दूसरे को स्पर्श करते हैं। इस स्थिति में उससे OG आय प्राप्त होगी। इसी अवस्था में वह OQ घण्टे आराम करेगा तथा QN घण्टे कार्य करेगा।

अब मान लीजिए सरकार OR आय को कर-मुक्त कर देती है तथा शेष आय पर कर लगा देती है। आयकर लगाने से श्रमिकों की आय, कर की मात्रा के बराबर अवश्य हो जायेगी। आय-कर देने के पश्चात् अब उसकी नई आय रेखा  $M_1R_1$  प्राप्त होगी। इस स्थिति में वह  $E_1$  बिन्दु पर सन्तुलन में होगा। अब वह  $N_1Q_1$  ( $NQ + Q_1O$ ) के बराबर कार्य करेगा तथा  $LO$  आय या मजदूरी प्राप्त करेगा। दूसरे शब्दों में, आय-कर लगने से वह अधिक घण्टे कार्य करना चाहता है। आयकर लगने से पूर्व वह OQ घण्टे आराम करता था किन्तु आयकर लगने के पश्चात् वह केवल  $OQ_1$  घण्टे ही आराम करता है। यदि यह मान लिया जाये कि कार्य के घण्टों तथा उत्पादन में प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया जाता है तो आय पर कर लगने के पश्चात् उत्पादन की मात्रा बढ़ जायेगी। यह इस मान्यता पर आधारित है कि आय की माँग लोच बेलोचदार है।



इसके विपरीत यदि आय की माँग को लोचदार की मान्यता मान लें तो ऐसी स्थिति को अग्र चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है। अग्रांकित चित्र में माना कर लगाने से पूर्व श्रमिक E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है। इस अवस्था में

## नोट

उसे OQ आय प्राप्त करने के लिए QN घण्टे कार्य करना पड़ता है। अर्थात् इस आय पर उसे OQ घण्टे आराम उपलब्ध रहता है। मान लीजिए सरकार आय पर कर लगा देती है। इस स्थिति में  $E_1$  संतुलन बिन्दु प्राप्त होगा, क्योंकि इस बिन्दु पर नई रेखा  $M_1R_1$  तटस्थता वक्र  $IC_1$  को स्पर्श करती है। इस स्थिति में उसे OL आय के लिए केवल  $Q_1N$  घण्टे ही कार्य करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, आय कर लगाने से पूर्व वह  $OQ_1$  घण्टे आराम करता था तथा QN घण्टे कार्य करता था। कर भुगतान करने के पश्चात् अब वह  $OQ_1$  आराम करता है तथा केवल  $Q_1N$  घण्टे ही कार्य करता है। इस प्रकार श्रमिक कर चुकाने के पश्चात् पहले की अपेक्षा अधिक आराम करता है। अब उसे अपने जीवन-स्तर गिरने की कोई चिन्ता नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आय की माँग का लोचदार स्थिति में व्यक्ति के काम करने की इच्छा पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार, यदि आय के प्रति व्यक्ति की माँग लोचदार है तो कर लगने से काम करने तथा बचत करने की उसकी प्रेरणा (incentive) अवरुद्ध हो सकती है जिससे उत्पादन को क्षति पहुँच सकती है। दूसरी ओर, यदि आय के प्रति व्यक्ति की माँग लोचदार नहीं है तो इससे उसकी काम करने तथा बचत करने की प्रेरणा पर कराधान का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि उनको और बढ़ाने का प्रोत्साहन मिलेगा।

**(iii) आय की माँग की लोच इकाई के बराबर होना**—आय के लिए व्यक्ति की माँग लोचदार या लोचहीन हो सकती है अथवा समान भी हो सकती है। आय के प्रति माँग को समान तब कहा जा सकता है जबकि कर लगाने के बाद भी व्यक्ति की काम करने व बचत करने की इच्छा वैसी ही बनी रहती है। ऐसा तब होता है जबकि व्यक्ति को अधिक काम करने के अतिरिक्त समय में काम करने के अथवा अतिरिक्त काम मिलने के अवसर प्राप्त नहीं होते। यही वह स्थिति है कि जिसके अन्तर्गत अधिकांश सरकारी कर्मचारी काम करते हैं। फिर, कुछ लोग ऐसे भी होते हैं कि उन पर कितना ही कर क्यों न लगे, वे तो काम करने तथा बचत करने के आदी होते हैं। ऐसे मामलों में, आय के लिए व्यक्ति की माँग समान अर्थात् एक-सी ही रह सकती है और हो सकता है कि कराधान काम करने तथा बचत करने की प्रेरणाओं पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न डाले।

किन्तु आय के लिए व्यक्ति की माँग की लोच (elasticity) का माप कर सकना कोई आसान काम नहीं है। कारण यह है कि माँग की यह लोच व्यक्ति-व्यक्ति में तथा विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न होती है। तथापि, व्यवहार में आमतौर पर यह देखा जाता है कि आय के लिए व्यक्ति की माँग सामान्यतः लोचहीन (inelastic) होती है अर्थात् लोगों में यह इच्छा सामान्यतः पाई जाती है कि जैसे भी सम्भव हो, आय के अपने एक निश्चित स्तर को बराबर बनाये रखें।

**आय के प्रति व्यक्ति की माँग लोचहीन होने के लिए निम्न तत्त्व उत्तरदायी होते हैं—**

- (1) **निश्चित न्यूनतम स्तर**—कुछ लोग प्रत्येक परिस्थिति में अपने परिवार के लिए रहन-सहन का एक निश्चित न्यूनतम स्तर बनाये रखने के लिए इच्छुक रहते हैं। ऐसे व्यक्ति कर लगाने पर अधिक काम करने तथा अधिक बचत करने के लिए निश्चित रूप से तैयार रहते हैं।
- (2) **भविष्य**—कुछ लोग यह चाहते हैं कि उनकी बचत से उनके लिए अथवा उनके आश्रितों के लिए भविष्य में एक निश्चित मात्रा में न्यूनतम आय अवश्य प्राप्त होनी चाहिए। ऐसे लोग भी कर लगाने पर अधिक काम करने तथा अधिक बचत करने के इच्छुक रहते हैं।
- (3) **समाज में विशिष्टता प्राप्त करना**—कुछ लोगों में इस बात की बड़ी तीव्र इच्छा पाई जाती है कि वे धन का संग्रह करें और उससे समाज में शक्ति तथा विशिष्टता प्राप्त करें। ये लोग भी कर लगाये जाने पर अधिक बचत करने के इच्छुक पाये जाते हैं।
- (4) **कार्य से लगाव**—जिन लोगों को काम तथा उद्यम से प्यार होता है वे लोग भी इसलिए कठिन श्रम तथा अधिक बचत करते हैं जिससे कर लगने पर वे अपनी आय को पूर्ववत् बनाये रख सकें।
- (5) **अधिक सन्तुष्टि प्राप्त करना**—सामान्यतः लोग अधिक काम करना तथा अधिक बचत करना इसलिए चाहते हैं ताकि वे अपनी कमाई हुई आय से एवं अपने एकत्र किये हुए धन से अन्य लोगों के मुकाबले अधिक सन्तुष्टि प्राप्त कर सकें अर्थात् वे अपनी आय व धन से अन्य लोगों के मुकाबले सापेक्षिक सन्तुष्टि अधिक मात्रा में प्राप्त

## नोट

कर सकें। इसी बात को प्रो. पीगू ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है, “धनी व्यक्तियों को अपनी आय से जो सन्तुष्टि (satisfaction) मिलती है, उसका एक बड़ा भाग उस आय की सम्पूर्ण मात्रा से नहीं, बल्कि उसकी सापेक्षिक मात्रा (relative amount) से प्राप्त होता है। यदि सभी धनी व्यक्तियों की आय एक साथ कम कर दी जाए तो भी उनकी सन्तुष्टि का वह भाग समाप्त नहीं होगा।”<sup>1</sup> लोग धनी होना नहीं चाहते बल्कि वे तो अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक धनी होना चाहते हैं। यदि कर की अदायगी के बाद भी A व्यक्ति B से अधिक धनी है तो कर लगने से A के कड़ा श्रम करने तथा अधिक बचत करने के मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी। इसका कारण यही है कि वह B के मुकाबले अपनी सापेक्षिक सन्तुष्टि को बढ़ाने अथवा अधिक बनाये रखने के लिए सदा प्रयत्नशील रहेगा।

कुछ और भी ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनके अन्तर्गत कराधान की प्रकृति करदाताओं की मनोदशा को प्रभावित करती है। ये निम्न प्रकार हैं—

( 1 ) तेजी व मन्दी में कराधान का प्रभाव (Effect of Taxation in Booms and Depression)—तेजी अथवा बढ़ती हुई कीमतों की अवधि में, व्यापारी और उत्पादक भविष्य में अधिक लाभ कमाने के बारे में सामान्यतः आशावादी रहते हैं। अतः भारी कराधान उनको कठिन श्रम करने तथा अधिक बचत व निवेश करने से नहीं रोकते। अतः तेजी अथवा कीमतों के बढ़ने की अवधियों में, लोगों की प्रेरणाओं पर कराधान के प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ते और इस प्रकार उत्पादन पर भी कराधान के बुरे प्रभाव नहीं पड़ते। इसके विपरीत, मन्दी अथवा गिरती हुई कीमतों की अवधि में, व्यापारी तथा उत्पादक भविष्य में हानियाँ होने के भय से सामान्यतः निराश बने रहते हैं। अतः कराधान उनकी काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा को हतोत्साहित करता है। इस प्रकार, मन्दी अथवा कीमतें गिरने की अवधियों में, कराधान लोगों की प्रेरणाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और उसका स्वरूप उत्पादन को क्षति पहुँचाता है।

( 2 ) युद्धकाल में कराधान का प्रभाव (Effect to Taxation in Times of War)—युद्ध का काल भी कीमतों के बढ़ने का ही काल होता है। युद्धकाल में कीमतों में बढ़ने की प्रवृत्ति इसलिए पाई जाती है क्योंकि एक ओर तो सरकारी खर्च भारी मात्रा में किया जाता है और दूसरी ओर वस्तुओं व सेवाओं की माँग उन दिनों में बहुत बढ़ जाती है। इस स्थिति में, उत्पादक तथा व्यापारी लाभ कमाने की दृष्टि से बड़े आशावादी बन जाते हैं जिससे उनकी काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा पर कराधान का प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त, जहाँ तक देश के नागरिकों का सवाल है, अपनी राष्ट्रीय भावनाओं के कारण, वे युद्धकाल में कराधान के रूप में अधिक अंशदान देने में भी कोई संकोच तथा परेशानी महसूस नहीं करते।

( 3 ) कराधान का प्रभाव तथा उद्योगों की किस्म (Effect of Taxation and the Type of Industries)—ऐसे उद्योग, जिनका कि आधार मजबूत है तथा जो काफी लाभ कमा रहे होते हैं, कराधान के भारी बोझ को उठाने में भी समर्थ होते हैं, मुकाबले उन उद्योगों के जो कि नये-नये स्थापित हुए होते हैं तथा अपने अस्तित्व मात्र के लिए ही संघर्ष कर रहे होते हैं। अतः शिशु उद्योगों (infant industries) के उत्पादन पर कराधान प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। इस स्थिति में यह उचित होगा कि ऐसे नये-नये स्थापित उद्योगों को कुछ समय के लिए कराधान से मुक्त कर दिया जाए ताकि उनका तीव्र गति से विकास हो सके और वे उन उद्योगों की प्रतियोगिता का सामना करने में समर्थ हो सकें, जो कि काफी लम्बे समय से कार्य कर रहे हैं।

( 4 ) निगम सदृश उद्यमों पर कराधान का प्रभाव (Effect of Taxation on Corporate Enterprise)—अब तक हमने इस बात का विवेचन किया है कि व्यक्तिगत करदाताओं, व्यापारियों तथा उत्पादकों आदि की प्रेरणाओं पर, अर्थात् उनकी काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा पर कराधान के क्या प्रभाव पड़ते हैं। परन्तु कुल बचतों तथा निवेशों का एक बड़ा भाग आजकल निगम सदृश उद्यमों द्वारा काम में लाया जाता है। यद्यपि कराधान से निगम (corporations) वैसे प्रभावित वही होते जैसे व्यक्ति होते हैं, फिर भी निवेश (investment), उत्पादन तथा विस्तार से सम्बन्धित उनकी नीतियाँ कराधान की प्रकृति से काफी प्रभावित होती हैं। उदाहरण के लिए, यदि लाभों की उन धनराशियों पर भारी मात्रा में कर लगाये जाते हैं जो कि पुनः उद्योगों में ही लगा दिये जाते हैं तो इसका

1. Pigou, *Economics of Welfare*, page 90.

## नोट

उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि भारी कराधान से निवेश की दर अवरुद्ध हो जायेगी। इसके विपरीत, यदि अंशधारियों (shareholders) को बाँटे जाने वाले लाभांशों (dividends) पर भारी कर लगाये जाते हैं और उनमें से पुनः निवेश कर दिये जाने वाले लाभांशों को कर-मुक्त कर दिया जाता है तो उससे उत्पादन वृद्धि को प्रोत्साहन मिलेगा, क्योंकि लाभांशों के पुनः निवेश पर दी गई कर मुक्ति से निवेश दर बढ़ जायेगी।

अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि कर लोगों की काम करने, बचत करने तथा निवेश की प्रेरणाओं पर सदा ही प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालते जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है। इसके अतिरिक्त, यह देखा जाता है कि कराधान लोगों की काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की लोगों की इच्छा को हतोत्साहित करने के बजाए प्रोत्साहित करता है। परन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि अत्यधिक आरोही कराधान, जैसे कि अत्यन्त ऊँचा धन-कर या सम्पत्ति-कर अथवा अत्यधिक क्रमवर्धी आय-कर (steeply graduated income-tax) उच्च आय वाले वर्ग के लोगों की काम करने तथा बचत करने की प्रेरणा को निश्चित रूप से समाप्त कर देता है, निवेश रूप में तब, जबकि इन करों का उद्देश्य लोगों की आम सम्पत्ति या धन को शनैः शनैः हड़प लेने का होता है।

### 14.1.3 उत्पादन के गठन तथा स्वरूप पर कराधान के प्रभाव

#### (Effects of Taxation on Composition and Production)

देश में उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय की मात्रा लोगों की काम करने तथा बचत करने की योग्यता व इच्छा पर निर्भर होती है किन्तु उत्पादन का गठन तथा प्रतिरूप इस बात पर निर्भर होता है कि विभिन्न उद्योगों के बीच तथा विभिन्न क्षेत्रों के बीच साधनों का बँटवारा किस प्रकार होता है। विभिन्न उद्योगों तथा क्षेत्रों के बीच साधनों का अन्तरण या दिशा-परिवर्तन (diversion) करने के लिए कराधान को राजकोषीय नीति (fiscal policy) के एक अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार, कराधान न केवल उत्पादन के आधार तथा वृद्धि को ही प्रभावित कर सकता है, बल्कि उत्पादन की रचना तथा उसके स्वरूप पर भी यथेष्ट प्रभाव डाल सकता है। अतः कराधान के द्वारा उत्पादन के गठन तथा प्रतिरूप में परिवर्तन किया जा सकता है।

जब कुछ उद्योगों की उत्पादित वस्तुओं पर कर लगाया जाता है तो उससे उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं। कीमतें बढ़ने से उन वस्तुओं की माँग कम हो जाती है तथा उसके फलस्वरूप लाभ भी घट जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इन उद्योगों के साधन (resources) ऐसे अन्य उद्योगों की ओर को हस्तान्तरित होने लगते हैं जिनकी उत्पादित वस्तुओं पर या तो कर बिल्कुल नहीं लगता अथवा बहुत हल्की दरों से लगता है। ऐसा या तो कराधान के भार को कम करने के लिए किया जाता है अथवा कर-भार से बिल्कुल बचने के लिए साधनों के इस दिशा-परिवर्तन से उद्योगों के उत्पादन की रचना तथा उसके प्रतिरूप में ही परिवर्तन लाया जा सकता है।

कर लगे उद्योगों की ओर से कर-रहित उद्योगों या कम कर लगे उद्योगों की ओर को होने वाला यह दिशा-परिवर्तन किस सीमा तक होगा, यह बात ऐसे उद्योगों के उत्पादित माल की माँग तथा पूर्ति की लोचशीलता पर निर्भर होती है। यदि कर लगी वस्तु की माँग (demand) बेलोचदार (inelastic) है और उसकी पूर्ति (supply) लोचदार है तो कर का भार (incidence of tax) अपेक्षाकृत क्रेता (buyer) पर ही अधिक पड़ेगा, जिसके परिणामस्वरूप साधनों का दिशा-परिवर्तन नहीं होगा। किन्तु इसके विपरीत, यदि उस उत्पादित वस्तु की माँग तो लोचदार है किन्तु उसकी पूर्ति लोचहीन है, तो कर का भार उत्पादन पर ही पड़ेगा। इस स्थिति में यदि उत्पादक यह देखता है कि कर लगे उद्योगों में उत्पादन को जारी रखना लाभदायक नहीं है अथवा अपेक्षाकृत कम लाभदायक है तो साधन उस उद्योग से कर-रहित उद्योगों की ओर को स्थानान्तरित हो सकते हैं।

(1) लाभकारी दिशा-परिवर्तन (Beneficial Diversion)–साधनों को कुछ अन्तरण या दिशा-परिवर्तन लाभकारी होते हैं। उपभोग के हानिकारक पदार्थों जैसे कि मादक पदार्थों पर लगाया गया कराधान उनके उत्पादन को हतोत्साहित कर देता है। इसका परिणाम यह होता है कि इन उद्योगों में जो पूँजी और श्रम लगा होता है वह अन्य उद्योगों की ओर स्थानान्तरित होने लगता है। मादक पदार्थों तथा अन्य हानिकारक पदार्थों पर कर लगने से उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं और कीमतें बढ़ जाने से ऐसे पदार्थों का उपभोग घट जाता है। इस स्थिति में, ऐसे पदार्थों के उपभोग में जो साधन लगे होते हैं वे अन्य पदार्थों के लाभकारी उपभोग की ओर को स्थानान्तरित होने लगते हैं।

**नोट**

हानिकारक पदार्थों के उपयोग पर रोक लगाने से उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य व उनकी कार्यक्षमता में भी सुधार होता है। अतः ऐसे पदार्थों पर कर लगाना सामाजिक दृष्टि से वाँछनीय माना जाता है। इसी प्रकार, विलासिता के पदार्थों के उत्पादन पर लगाया गया कर इनके श्रम और पूँजी को आवश्यकता की ओर को मोड़ देता है। साधनों के ऐसे दिशा-परिवर्तन को भी लाभदायक माना जाता है विशेष रूप से अल्पविकसित देशों में।

(2) **हानिकारक दिशा-परिवर्तन (Harmful Diversion)**—अनिवार्य आवश्यकताओं के पदार्थों तथा सामान्य उपभोग के पदार्थों पर लगाये जाने वाले करों को सामाजिक दृष्टि से वाँछनीय नहीं माना जाता। ऐसे पदार्थों पर कर लगाने से उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं और कीमतें बढ़ने से ऐसे पदार्थों का उपभोग घट जाता है। इसका लोगों के स्वास्थ्य एवं उनकी कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। फिर, ऐसे पदार्थों की कीमतों में वृद्धि होने से उसकी माँग कम हो जाती है जिससे उनका उत्पादन भी घटने लगता है, इससे लाभ कम हो जाते हैं और इस स्थिति में यह सम्भव हो सकता है कि जो साधन अब अनिवार्य आवश्यकता की वस्तुओं अथवा सामान्य उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन में लगे हैं, वे यहाँ से हटकर कुछ कम उपयोगी वस्तुओं के उत्पादन की ओर को स्थानान्तरित हो जाएँ। अतः साधनों का ऐसा दिशा-परिवर्तन या अन्तरण हानिकारक होता है और सामाजिक दृष्टि से इसे वाँछनीय माना जाता है।

(3) **वर्तमान उपयोगों से भावी उपयोगों की ओर को साधनों का अन्तरण या दिशा-परिवर्तन (Diversion of Resources from Present to Future Use)**—कभी-कभी कर इसलिए भी लगाये जाते हैं कि जिससे उपभोग हतोत्साहित हो और बचतों को प्रोत्साहन मिले। ऐसा आमतौर पर नियोजन (planning) तथा विकास की अवधियों में हुआ करता है जबकि कराधान के कारण उपभोग घटता है और बचत बढ़ती है इस प्रकार, कराधान के कारण साधन (resources) वर्तमान उपयोगों से हटकर भावी उपयोगों की ओर को स्थानान्तरित हो जाते हैं। फिर, जब बचतें बढ़ती हैं तो उससे निवेश में भी वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण रूप में समाज की उत्पादन शक्ति बढ़ती है। बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए जो कर माफियाँ (tax exemptions) या रियायतें (concessions) प्रदान की जाती हैं, उनका भी ऐसा ही प्रभाव होता है।

इसके विपरीत, जब कराधान बचतों को हतोत्साहित करता है तो उपभोग में वृद्धि होती है। इससे साधन भावी उपयोग से वर्तमान उपयोग की ओर को स्थानान्तरित होने लगते हैं और इसका उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। ऐसा उस स्थिति में अधिक होता है जबकि कराधान के द्वारा एकत्र की गई सरकारी आय को दिन-प्रतिदिन के प्रशासन पर तथा अनुत्पादक कार्यों में व्यय कर दिया जाता है, अन्यथा तो यह आय बचा ली जाती और उत्पादक कार्यों में लगा दी जाती है।

(4) **एक राज्य से दूसरे राज्य की ओर को साधनों का अन्तरण (Diversion of Resources from one State to Another)**—संघीय शासन की व्यवस्था में जबकि विभिन्न राज्य या प्रान्त विभिन्न प्रकार के कर लगाते हैं अथवा एक ही कर की विभिन्न दरें लागू करते हैं, तो साधनों का अन्तरण उस राज्य से, जहाँ कि करों का भार अधिक है, उस राज्य की ओर हो सकता है जहाँ करों का भार इतना अधिक नहीं है। तथापि इस कठिनाई को न्यूनतम किया जा सकता है बशर्ते कि देश भर में एक से कर तथा समान दरें लागू की जाएँ।

(5) **एक देश से दूसरे देशों की ओर को साधनों का अन्तरण (Diversion of Resources from one Country to Another)**—यदि करों का भार किसी देश में बहुत अधिक है तो उद्यमी (enterprisers) यह सोच सकते हैं कि उनके लिए पूँजी को उन देशों में लगाना अधिक लाभकारी होगा जहाँ कि करों का बोझ अधिक भारी नहीं है। परन्तु साधनों के इस अन्तरण को कुछ सीमा तक रोका जा सकता है, यदि व्यक्ति की सम्पूर्ण आय पर ही कर लगा दिया जाए, चाहे वह आय उसने देश में कमाई हो या विदेश में। इस प्रकार, एक देश से दूसरे देश को पूँजी के स्थानान्तरण को रोका जा सकता है, बशर्ते कि पूँजी का मालिक अपनी पूँजी के साथ स्वयं विदेश को न चला जाए।

(6) **संरक्षण तथा साधनों का अन्तरण (Protection and Diversion of Resources)**—जब सरकार कुछ उद्योगों को करों से छूट तथा अनुदान (grants) व अधिदान (bounties) आदि के रूप में संरक्षण देने का निश्चय

## नोट

इसलिए करती है ताकि वे उद्योग विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला कर सकें अथवा अपना विकास कर सकें, तो अन्य उद्योगों से इन उद्योगों की ओर को साधनों का स्थानान्तरण हो सकता है, परन्तु दीर्घावधि में (in the long run) औद्योगिक विकास इतनी अधिक तीव्र गति से होगा, जितना कि अन्य परिस्थितियों में सम्भव नहीं होता और यदि बेकार पड़े साधनों को संरक्षित उद्योगों की स्थापना की दिशा में मोड़ दिया गया, तब तो सम्पूर्ण रूप में औद्योगिक विकास और भी तेजी से होगा।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. किसी देश की अर्थव्यवस्था पर उस देश की कर प्रणाली का ..... प्रभाव पड़ता है।
2. कराधान का अर्थ है व्यक्तिगत हाथों में से सरकार की ओर को ..... का स्थानान्तरण।
3. कराधान का अंतिम उद्देश्य लोगों को कठिन श्रम करने तथा अधिक बचत करने के लिए ..... करना है।
4. आय के लिए व्यक्ति की माँग लोचदार या लोचहीन हो सकती है अथवा ..... भी हो सकती है।
5. साधनों को कुछ ..... या दिशा-परिवर्तन लाभकारी होते हैं।

**14.2 वितरण पर कराधान के प्रभाव (Effects of Taxation on Distribution)**

वर्तमान समय में आर्थिक कल्याण के लिए अधिकतम उत्पादन महत्वपूर्ण है किन्तु अधिकतम उत्पादन का वितरण यदि न्यायोचित एवं समान नहीं है तो वह किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए अच्छा नहीं माना जा सकता। कर प्रणाली वही अच्छी मानी जाती है जो उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना धन एवं आय की असमानताओं को कम कर सके। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों जैसे **एडम स्मिथ**, **रिकार्डो**, **मिल** आदि के अनुसार करारोपण का मुख्य उद्देश्य राजस्व प्राप्त करना है। जर्मन अर्थशास्त्री **वैगनर** (Wagner) को ऐसे सर्वप्रथम अर्थशास्त्रियों में गिना जा सकता है जिन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कराधान का उपयोग आय की असमानताओं को कम करने के एक अस्त्र के रूप में किया जाना चाहिए। उनके लोक वित्त के “सामाजिक-आर्थिक” दृष्टिकोण को यद्यपि अनेक अर्थशास्त्रियों ने पसन्द नहीं किया, परन्तु सैद्धान्तिक रूप से यह दृष्टिकोण बड़ा ठोस है और आधुनिक सरकारें इसका अधिकाधिक अनुसरण करती जा रही हैं। **डॉ. डाल्टन** का मत है कि जितना महत्व अधिक उत्पादन का है उससे कम महत्व वितरण का नहीं है। धन के आर्थिक उत्पादन के मुकाबले उसके कम असमान वितरण को कम वांछनीय नहीं माना जा सकता। अन्य शब्दों में, उत्पादन में वृद्धि के मुकाबले धन का समन्यायपूर्ण वितरण अधिक वांछनीय है।



**नोट्स** वैगनर सर्वप्रथम ऐसे अर्थशास्त्री हैं जिन्होंने कराधान को आय की असमानताओं को दूर करने का अस्त्र माना है।

किन्तु समाज के विभिन्न वर्गों में आय तथा धन के वितरण पर कराधान के प्रभाव निम्नलिखित दो तत्वों पर निर्भर होते हैं—

- (1) कराधान की प्रकृति अथवा कर की दरें।
- (2) करों के प्रकार।

**14.2.1 कराधान की प्रकृति अथवा कर की दरें (Nature of Taxation of Tax Rates)**

कराधान की प्रकृति से आशय है कि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच करों के भार का वितरण किस प्रकार किया जाता है, अर्थात् कराधान की प्रकृति आरोही है या अनुपाती है अथवा अवरोही है। इस प्रकार, किसी भी कर-प्रणाली के अन्तर्गत कराधान का प्रतिरूप या ढाँचा आरोही, अनुपाती अथवा अवरोही हो सकता है।

## नोट

किसी भी कर को **अनुपाती** तब कहा जाता है जबकि सभी करदाता अपनी आय (या सम्पत्ति) का एक समान अनुपात ही कर के रूप में देते हैं। कोई भी कर आरोही तब कहलाता है जबकि करदाता की आय (या सम्पत्ति) जितनी अधिक होती है उतने ही बड़े अनुपात में उसे कर की अदायगी करनी पड़ती है और कोई भी कर अवरोही तब होता है जबकि करदाता की आय (या सम्पत्ति) जितनी अधिक होती है उतने ही कम अनुपात में उसे कर देना पड़ता है।

यदि **अवरोही कराधान** (regressive taxation) का अनुसरण किया जाए तो आय तथा धन के वितरण की असमानताएँ और भी बढ़ जाती हैं क्योंकि इन करों की स्थिति में करों का बोझ धनियों के मुकाबले निर्धन लोगों पर अधिक पड़ता है। प्रति व्यक्ति कर (toll tax) सदा अवरोही ही होता है क्योंकि इसमें कर की राशि धनी तथा निर्धन सभी के लिए बराबर होती है जबकि कर के रूप में अदा किये जाने वाले द्रव्य (money) की उपयोगिता धनी के मुकाबले निर्धनों के लिए अधिक होती है, अतः इस कर की स्थिति में, करों का भार धनी व्यक्तियों के मुकाबले निर्धनों पर ही अधिक पड़ता है।

**अनुपाती कराधान** (Proportional taxation) के अन्तर्गत, यदि आय पूर्ववत् रहती है तो असमानताएँ भी पूर्ववत् जारी रहती हैं। परन्तु यदि आय असमान अनुपात में बदलती है तो उसमें आय की असमानताएँ और बढ़ जाती हैं। **उदाहरण के लिए**, मान लीजिए A की वर्तमान आय 500 रु. है और B की 1,000 रु.। अब यदि दोनों पर 10 प्रतिशत की दर से कर लगाया जाता है तो कर की अदायगी के बाद A और B की निबल आय (net income) क्रमशः 450 रु. और 900 रु. होगी। अब यदि A और B की आय बदलकर क्रमशः 600 रु. और 1,400 रु. हो जाती है, तो कर की अदायगी के बाद दोनों की निबल आय 540 रु. तथा 1,260 रु. रह जायेगी। स्पष्ट है कि अब बाद की स्थिति में आय के वितरण की असमानता में और भी वृद्धि हो गई है। अनुपाती कराधान के अन्तर्गत जैसे-जैसे आय बढ़ती है, करों का भार धनी व्यक्तियों के मुकाबले निर्धनों पर ही अधिक पड़ता है।

परन्तु **आरोही कराधान** (Progressive taxation) के अन्तर्गत, आय तथा धन की असमानताएँ कम हो जाती हैं और वह इसलिए क्योंकि करों के रूप में निर्धनों के मुकाबले धनी लोगों की आय तथा सम्पत्ति का अधिक बड़ा अनुपात किया जाता है। अतः अत्यधिक आरोही कर प्रणाली आय तथा धन के वितरण में पाई जाने वाली असमानताओं को काफी कम करती है और वस्तुस्थिति यह है कि करों के आरोहण या क्रमवर्द्धन की दर जितनी अधिक तीव्र होती है, उसमें आय की असमानताओं को कम करने की प्रवृत्ति भी उतनी ही अधिक पाई जाती है। स्पष्ट है कि आरोही कराधान को आय तथा धन का अधिक समन्यायपूर्ण वितरण करने की दृष्टि से वांछनीय माना जाता है। तार्किक दृष्टि से आय के समन्यायपूर्ण वितरण करने (equitable distribution) का उद्देश्य यह होता है कि कर बड़ी आमदनियों पर लगाया जाए और निश्चित स्तर के ऊपर की सभी आमदनियों को कराधान के द्वारा छॉट-छॉट कर एक स्तर पर ले आया जाए जिससे नीचे की आमदनियों पर कर लगाया ही नहीं जाता। **डाल्टन** ने कहा है कि “सभी लम्बी पोस्त (poppy) की डोडियों (heads) को कलम कर दिया जाए।” परन्तु ऐसा करना इसलिए व्यावहारिक नहीं होगा क्योंकि उत्पादन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

अतः कर-प्रणाली (tax system) **अदा करने की सामर्थ्य** के सिद्धान्त (principle of ability to pay) पर आधारित होनी चाहिए। व्यक्ति की आय जितनी अधिक होती है, उसकी कर देने की सामर्थ्य भी उतनी ही, अधिक होती है और विपरीत स्थिति में इससे उल्टा होता है। जो व्यक्ति अनुपार्जित आय (unearned income) प्राप्त करते हैं, उनकी कर अदा करने की सामर्थ्य उन लोगों के मुकाबले अधिक होती है जो अपनी व्यक्तिगत सेवाओं से अपनी आय प्राप्त करते हैं। अतः इस स्थिति में, दूसरे वर्ग के व्यक्तियों के मुकाबले प्रथम वर्ग के व्यक्तियों पर ऊँची दरों से कर लगाया जा सकता है। समन्यायपूर्ण वितरण की दृष्टि से आरोही कर-पद्धति का गठन ऐसे ढंग से किया जा सकता है कि उत्पादन पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। अन्य **शब्दों में** कहा जा सकता है कि सर्वोच्च आय वाले वर्गों पर अत्यधिक आरोही या क्रमवर्धी दरों से कर लगाया जाए, मध्यम आय वाले वर्गों पर निम्न दरों से कर लगाया जाए और निम्न आय वाले वर्गों को करों से मुक्त कर दिया जाए। कर लगाते समय परिवार के आधार तथा आय की प्रकृति (nature) को दृष्टिगत रखा जाना चाहिए।

## नोट

किन्तु यहाँ यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि प्रत्यक्ष कर आय तथा धन की असमानताओं को कम करने में केवल सभी सहायक हो सकते हैं जबकि वे आरोही प्रकृति के हों, अन्यथा नहीं। उदाहरण के लिए, अनुपाती दर से अथवा प्रत्येक करदाता पर समान मात्रा में लगाया जाने वाला प्रत्यक्ष कर, जैसे कि प्रति व्यक्ति कर (toll tax), अवरोही प्रकृति (regressive nature) का बन जाता है, विशेष रूप से तब, जबकि समाज में आय तथा धन का वितरण असमान हो। इस प्रकार, आधुनिक समाज के लिए ऐसे कर को उपयुक्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि ऐसे कर के अन्तर्गत, धनी व्यक्तियों के मुकाबले निर्धनों पर कर का अधिक बोझ पड़ता है। ऐसा कर तो आय की असमानताओं को कम करने की बजाय और बढ़ायेगा। इसी प्रकार, यदि **व्यक्तिगत खर्च पर अनुपाती कर** (proportional tax) लगाया जाता है तो वह अवरोही प्रकृति का ही सिद्ध होता है। कारण यह है ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है त्यों-त्यों आय पर व्यय का अनुपात घटता जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि धनी व्यक्तियों के मुकाबले निर्धन व्यक्तियों पर ऐसे कर का अधिक बोझ पड़ता है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है प्रत्यक्ष पर आय तथा धन का समन्यायपूर्ण (equitable) वितरण करने में केवल सभी सहायक होते हैं जबकि उन्हें अत्यधिक क्रमवर्धी (steeply graduated) या आरोही बना दिया जाता है।



क्या आप जानते हैं ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है त्यों-त्यों आय पर व्यय का अनुपात घटता जाता है।

### 14.3 कर की प्रगतिशीलता की माप (Measurement of Tax Progression)

कर के आरोहीपन (progressiveness) अथवा क्रमवर्धन (graduation) को मापने के लिये डाल्टन ने गणित की सहायता ली। उसके अनुसार, यदि **कर की दर** (rate of tax) को  $t$  से अंकित किया जाए तो **आय**  $x$  पर लगाई जाती है, तो कर आरोहण (progression) अथवा '**आरोहीपन की मात्रा**' (degree of progressiveness) को  $\frac{dt}{dx}$  द्वारा मापा जा सकता है।

अन्य शब्दों में, किसी कर के आरोहीपन की मात्रा को आय के परिवर्तन होने पर कर की दर में जो सापेक्षिक परिवर्तन (relative change) होगी उसके अनुपात द्वारा अर्थात्  $\frac{dt}{dx}$  द्वारा मापा जाता है।

$\frac{dt}{dx}$  = आय के परिवर्तन पर कर की दर का सापेक्षिक परिवर्तन।

अब यदि  $\frac{dt}{dx}$  सकारात्मक (positive) है, तो कराधान को आरोही कहा जायेगा।

यदि  $\frac{dt}{dx}$  शून्य है, तो कराधान अनुपाती होगा।

यदि  $\frac{dt}{dx}$  नकारात्मक (negative) है, तो कराधान अवरोही होगा।

माप की इन रीति की मर्यादा यह है कि यह अवरोहण का माप करके पैमाने (tax scale) के एक निश्चित अथवा विशिष्ट बिन्दु पर ही करती है, परन्तु उससे सम्पूर्ण रूप में, कर-पद्धति या कर के पैमाने में जो आरोहण की मात्रा पाई जाती है उस पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

डाल्टन ने एक सूत्र (formula) भी प्रस्तुत किया जिसके द्वारा कर-पद्धति में विद्यमान आरोहण की मात्रा (degree of progression) को मापा जा सकता है। यह सूत्र इस प्रकार है—

$$P = \delta - \delta' + k,$$



## नोट

जिसमें कि  $P =$  आरोहण की मात्रा,  
 $\delta =$  कर की अदायगी से पूर्व आमदनियों की असमानता का दायरा,  
 $\delta' =$  कर की अदायगी के पश्चात् आमदनियों की असमानता का दायरा,  
 $k =$  सकारात्मक नियतांक (positive constant)।

यहाँ इस तथ्य को दृष्टिगत रखा गया है कि असमानता में वृद्धि केवल अवरोहीपन या अनुपातीपन के कारण ही नहीं होती, बल्कि आरोहण की हल्की मात्रा से भी होती है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उपर्युक्त सूत्र के आधार पर असमानता केवल तभी कम की जा सकती है जबकि  $P$  सकारात्मक (positive) हो और  $k$  से अधिक हो। सूत्र यह भी बतलाता है कि आधुनिक कर-प्रणाली जो कि प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही प्रकार के करों को मिलाकर बनी है, अर्थात् वह कर-प्रणाली, जिसमें आरोहीपन, प्रगतिशीलता और अवरोहीपन दोनों ही प्रकार के तत्त्व विद्यमान हैं, वितरण सम्बन्धी वांछनीय प्रभाव केवल तभी डाल सकती है जबकि अवरोहीपन के तत्त्व (element of regressiveness) के प्रभावों की क्षतिपूर्ति आरोहीपन के तत्त्व (elements of progressiveness) के प्रभावों से कर दी जाए, और इस प्रकार, सम्पूर्ण रूप से (as a whole), कर प्रणाली (tax system) को आरोही बना दिया जाए।

#### 14.4 वितरण बनाम उत्पादन (Distribution vs Production)

यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है कि अत्यधिक क्रमवर्धी तथा भारी कराधान उत्पादन को हतोत्साहित करते हैं तथा घटाते हैं। यदि उत्पादन में वृद्धि न हो तो वितरण की समानता का मतलब गरीबी के समान वितरण से ही लिया जा सकता है, धन के समान वितरण से नहीं। अतः कराधान ऐसा भारी तथा तीव्र आरोही नहीं होना चाहिए कि जो उत्पादन को हतोत्साहित करे। अब यदि हम समस्या के दूसरे पहलू को देखें और समस्या पर वितरण के दृष्टिकोण से विचार करें तो आय तथा धन की असमानताओं को कम करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि अत्यधिक आरोही तथा भारी कर लगाये जाएँ। वास्तव में बात यह है कि उत्पादन में सुधार और वितरण में सुधार, कराधान के दो महत्वपूर्ण लक्ष्य हैं, यद्यपि व्यवहार में ये दोनों परस्पर टकरा भी जाते हैं। अतः कराधान के इन परस्पर टकराने वाले दोनों उद्देश्यों के बीच ऐसा तालमेल रखा जाना चाहिए कि कर प्रणाली, सम्पूर्ण रूप में, न तो उत्पादन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले और न वितरण पर, और यह बात कुछ उस बुद्धिमत्ता तथा तकनीक पर निर्भर करती है। जिनका कि उपयोग देश के कर ढाँचे के निर्माण में किया जाता है।

**विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश में**, जहाँ कि उत्पादन अपने इष्टतम स्तर (optimum level) पर पहुँच चुका होता है, कराधान का उद्देश्य यह होता है कि समाज में आय तथा धन का समन्यायपूर्ण वितरण किया जाए और उत्पादन के वर्तमान स्तर को बनाये रखा जाए। दूसरी ओर **एक अल्पविकसित देश में** समस्या इतनी आसान नहीं होती, बल्कि बड़ी जटिल होती है।

ऐसे देश के सामने एक ओर तो समस्या उत्पादन अथवा अर्थव्यवस्था में तीव्र गति से सुधार लाने की होती है और दूसरी ओर समस्या रहती है कि आय तथा धन की असमानताएँ कैसे दूर की जाएँ। फिर, एक अल्पविकसित देश में आय तथा धन की विषमताएँ (disparities) बड़ी तीव्र होती हैं और उत्पादन का स्तर नीचा होता है। इस स्थिति में, यदि अत्यधिक क्रमवर्धी एवं भारी कराधान के द्वारा उन विषमताओं को दूर किया जाता है तो उससे बचतें हतोत्साहित होती हैं और उनके परिणामस्वरूप उत्पादन को क्षति पहुँचती है और यदि बचतों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ही प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही प्रकार के करों द्वारा साधनों को गतिशील करके उत्पादन बढ़ाया जाता है तो उससे समानताओं या विषमताओं में वृद्धि होती है। इस दुविधाजनक स्थिति में, जहाँ तक विषमताओं को दूर करने का सम्बन्ध है, उसके बारे में तो एक जरा नरम रुख अपनाना होता है किन्तु अर्थ-व्यवस्था (economy) में तीव्र गति से सुधार के लिए दृढ़ निश्चय के साथ कदम उठाने होते हैं और साधनों को गतिशील करके तथा निवेश की मात्रा में वृद्धि करके उत्पादन में वृद्धि करनी होती है और अर्थव्यवस्था में प्राण फूँकने होते हैं। ऐसे प्रयत्नों में इस बात का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि उत्पादन-वृद्धि के लाभ समाज के धनी वर्ग की अपेक्षा निर्धन वर्ग के

लोगों तक अधिक मात्रा में पहुँचे। अतः वांछनीय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साथ-साथ वितरण का भी ध्यान रखा जाए।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

6. प्रति व्यक्ति कर सदा होता है—  
 (अ) अवरोही (ब) आरोही  
 (स) अनुपाती (द) समान।
7. आरोहीपन की मात्रा किसके द्वारा सूचित किया जाता है?  
 (अ)  $\frac{dx}{dt}$  (ब)  $\frac{dt}{dx}$   
 (स)  $\frac{dy}{dx}$  (द)  $\frac{dx}{dy}$ ।
8. यदि  $\frac{dt}{dx}$  सकारात्मक है, तो कराधान किस प्रकार का होगा?  
 (अ) अवरोही (ब) अनुपाती  
 (स) आरोही (द) समानुपाती।
9. अत्यधिक क्रमवर्धी तथा भारी कराधान उत्पादन पर क्या प्रभाव डालते हैं?  
 (अ) बढ़ाता है (ब) उत्साहित करता है  
 (स) हानि होती है (द) हतोत्साहित करते हैं।
10. किस देश में आय तथा धन की विषमताएँ बड़ी तीव्र होती हैं?  
 (अ) विकसित (ब) अल्पविकसित  
 (स) धनी (द) विकासशील।

### 14.5 कराधान के अन्य प्रभाव (Other Effects of Taxation)

#### रोजगार पर कराधान के प्रभाव (Effects of Taxation on Employment)

लोक वित्त का एक सबसे प्रमुख लक्ष्य आर्थिक स्थिरता (economic stability) अर्थात् आर्थिक क्रियाओं व रोजगार के स्तरों में स्थिरता बनाये रखना है। आर्थिक स्थिरता बनाये रखने में सरकारी खर्च का क्या योगदान है, इसका विवेचन पहले ही किया जा चुका है। अब तो केवल इस बात का विश्लेषण किया जाना है कि आर्थिक स्थिरता बनाये रखने में कराधान क्या योगदान करता है। इस सम्बन्ध में प्रो. लर्नर (Prof. Lerner) का यह कथन ठीक ही है कि कराधान में मुख्य उद्देश्य आर्थिक क्रियाओं के स्वरूप व परिणाम पर प्रभाव डालना होना चाहिए अन्य कोई ऐसा उद्देश्य नहीं जैसे कि राजस्व प्राप्ति आदि।

कराधान लोगों के हाथ में विद्यमान क्रयशक्ति को कम कर देता है और इस प्रकार उनका खर्च घटा देता है। उपभोग में कमी हो जाने से उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं व सेवाओं की समर्थ माँग (effective demand) भी कम हो जाती है और जब समर्थ माँग घट जाती है तो उससे आर्थिक क्रियाओं व रोजगार का स्तर भी गिर जाता है। इसके विपरीत, उपभोग में वृद्धि होने से व्यावसायिक क्रियाओं व रोजगार की मात्रा में वृद्धि होती है। विकसित देशों के बारे में यह बात अधिक सही सिद्ध होती है।

जब उपभोग घटता है तो बचतों में तथा निवेश में वृद्धि होती है। इससे उत्पादन की क्रियाओं, व्यवसाय तथा रोजगार में भी वृद्धि होती है। यह बात अल्प-विकसित देशों के बारे में अधिक सही सिद्ध होती है।

**नोट**

इस प्रकार, करधान जब उपभोग के सामान्य स्तर को गिराता है और बचतों को बढ़ाता है तो उससे व्यावसायिक क्रियाओं व रोजगार का स्तर गिरने लगता है, विशेष रूप से विकसित देशों में, इसी प्रकार, जब करधान बचतों व निवेश को हतोत्साहित करता है तो उससे व्यावसायिक क्रियाओं व रोजगार का स्तर गिरने लग जाता है, विशेष रूप से अल्पविकसित देशों में।



टास्क रोजगार पर करधान के प्रभाव का संक्षेप में उल्लेख करें।

## 14.6 करारोपण और आर्थिक स्थिरता (Taxation and Economic Stability)

किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आर्थिक स्थिरता का रहना आवश्यक है। समाज के आर्थिक जीवन का नियमन करने के लिए सरकार करारोपण का सहारा ले सकती है। इस सम्बन्ध में प्रो. लर्नर का मत है, “करारोपण का एकमात्र उद्देश्य देश में आर्थिक क्रियाओं अर्थात् उत्पादन, वितरण एवं उपभोग सम्बन्धी क्रियाओं के आकार को नियमित करना ही होना चाहिए।”

### 14.6.1 करधान तथा मुद्रास्फीति (Taxation and Inflation)

मुद्रास्फीति (Inflation) तथा मन्दी (depression) की अवधियों में करधान भिन्न-भिन्न प्रकार के योगदान कर सकता है। मुद्रास्फीति के दिनों में करधान का उद्देश्य लोगों के हाथों में से क्रयशक्ति को कम करना होता है। अतः नये कर लगाने तथा प्रचलित करों की दरों में वृद्धि करने से उपभोग पर रोक लगती है, जिससे समर्थ माँग का स्तर गिरता है और उससे कीमतों में स्थिरता लाने में मदद मिलती है। यही नहीं मुद्रा स्फीति के दिनों में, भारी कर लगाने से प्रचलित तथा करों की दरों में वृद्धि होने से क्रयशक्ति (purchasing power) लोगों के हाथों में से सरकार की ओर को स्थानान्तरित हो जाती है, जिसका कि यदि समुचित रूप से उत्पादन कार्यों के लिए उपयोग किया जाए तो उससे आर्थिक क्रियाओं व रोजगार का स्तर ऊँचा उठता है और वस्तुओं तथा सेवाओं की पूर्ति में वांछित वृद्धि होने से बढ़ती हुई कीमतें रुकने लगती हैं। मुद्रास्फीति के दिनों में कुछ कर सम्बन्धी छूटें तथा कर-रियायतें देना भी इसलिए जरूरी हो सकता है ताकि बचतों पर निवेश की दर में वृद्धि करके उत्पादन बढ़ाया जा सके। उदाहरण के लिए, बचतों को करधान से मुक्त किया जा सकता है अथवा उन बचतों को कर-मुक्त रखा जा सकता है जिनका उपयोग बीमे की किस्तें अदा करने में किया जाता हो। यही नहीं, उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए नये स्थापित होने वाले उद्योगों को या तो पूर्णतया कर-मुक्त रखा जा सकता है अथवा कुछ वर्षों तक उन पर हल्की दरों से कर लगाये जा सकते हैं।

### 14.6.2 करधान तथा मन्दी (Taxation and Depression)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, करधान लोगों के हाथ में विद्यमान क्रयशक्ति को कम कर देता है। इस प्रकार, करधान क्रयशक्ति को लोगों के हाथों में से सरकार की ओर को स्थानान्तरित कर देता है जिसके कारण उपभोग हतोत्साहित होता है और उससे वस्तुओं तथा सेवाओं की समर्थ माँग (effective demand) में कमी हो जाती है। समर्थ माँग के घटने से मन्दी की तीव्रता में वृद्धि होती है। अतः अवसाद काल (मन्दी की अवधि) में यदि करों की मात्रा तथा दरों में कमी कर दी जाए तो आर्थिक क्रियाओं व रोजगार के स्तर पर उससे अनुकूल प्रभाव पड़ सकते हैं। इसके अतिरिक्त, करों के द्वारा एकत्र सरकारी आय को सड़कों जैसी जनोपयोगी सेवाओं (public utility services) के निर्माण पर व्यय किया जा सकता है ताकि वस्तुओं और सेवाओं की समर्थ माँग में वृद्धि हो सके। यही नहीं, जो कर समाज के निर्धन वर्ग पर अधिक बोझ डालते हैं, जैसे कि सामान्यतः निर्धन लोगों द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं पर लगने वाले उत्पादन-कर तथा बिक्री-कर, यदि इन करों में, कमी कर दी जाए तो आर्थिक क्रियाओं व रोजगार के स्तर पर वांछनीय प्रभाव पड़ सकते हैं। इस प्रकार के करों के घटाने से एक ओर तो व्यक्तियों के उपभोग व्यय बढ़ेंगे और दूसरी ओर उत्पादकों व विक्रेताओं की आय भी बढ़ जायेगी और वे उत्पादन बढ़ाने को प्रेरित होंगे। परिणामस्वरूप आय, रोजगार एवं विनियोग में वृद्धि होगी।

## नोट

निर्धन आय वाले वर्गों से सम्बन्धित लोग सामान्यतः अपनी आय का अधिकांश भाग खर्च कर देते हैं। अतः यदि ऐसे करों में कमी की गई तो उससे कुल व्यय में ठोस वृद्धि होगी। इसके विपरीत, जो कर धनी वर्ग के लोगों पर अधिक प्रभाव डालते हैं उनसे उपभोग अधिक हतोत्साहित नहीं होता। अतः उनमें ऐसी ही कमी करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। वास्तव में, मन्दीकाल में कराधान का उद्देश्य यह होना चाहिए कि निर्धन लोगों की क्रय शक्ति में वृद्धि की जाए और यह उद्देश्य तब प्राप्त हो सकता है जबकि इन लोगों पर कराधान का कम बोझ डाला जाए और क्रय-शक्ति समाज के धनी वर्ग के पास से इन लोगों के पास को स्थानान्तरित की जाए। घाटे का बजट (deficit budget) बनाकर भी इन लोगों की क्रय-शक्ति में वृद्धि की जा सकती है। इन लोगों की क्रय-शक्ति में वृद्धि होने से कुल समर्थ माँग में भी वृद्धि होती है और उसके फलस्वरूप व्यावसायिक क्रिया तथा रोजगार का स्तर भी ऊँचा उठता है।

स्पष्ट है कि मुद्रास्फीति काल में नये करों को लगाकर एवं पुराने करों की दरों में वृद्धि कर तथा मुद्रा संकुचन में करों को हटाकर या करों को कम करके आर्थिक स्थिरता प्राप्त की जा सकती है। आधुनिक अर्थशास्त्री इसे कार्यात्मक वित्त (Functional Finance) के नाम से पुकारते हैं जो आर्थिक नीति का मुख्य अंग है।

### 14.7 कराधान के नियामकीय प्रभाव (Regulatory Effects of Taxation)

कराधान का उपयोग उत्पादन तथा उपभोग के नियमन (regulation) के एक साधन के रूप में भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, कुल वस्तुओं के उत्पादन को करों से मुक्त करके और कुछ अन्य वस्तुओं के उत्पादन पर भारी कर लगाकर उत्पादन की प्रकृति तथा मात्रा को नियमित किया जा सकता है। यही नहीं, कुछ वस्तुओं के उत्पादन तथा प्रयोग पर कर लगाकर उपभोग को नियन्त्रित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, कुछ करों का उद्देश्य यह हो सकता है कि शराब जैसी कुछ हानिकारक वस्तुओं के उपभोग तथा उत्पादन को कम किया जाए। इसी प्रकार, आयात तथा निर्यात कर देश के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को नियन्त्रित कर सकते हैं। तथापि, यहाँ यह उल्लेखनीय है कि देश के उपभोग तथा उत्पादन की मात्रा का नियमन करने के लिए अकेला कराधान ही सदा पर्याप्त होता हो, ऐसी बात नहीं। उपभोग तथा उत्पादन को नियन्त्रित करने के लिए कराधान के साथ-साथ नियन्त्रण के अन्य अनेक उपाय भी अपनाने होते हैं।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य कथन की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

11. लोक वित्त का एक सबसे प्रमुख लक्ष्य आर्थिक स्थिरता बनाये रखना है।
12. कराधान लोगों के हाथ में विद्यमान क्रयशक्ति को बढ़ा देता है।
13. जब उपभोग घटता है तो बचतों में तथा निवेश में वृद्धि होती है।
14. किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आर्थिक स्थिरता का रहना आवश्यक नहीं है।
15. मुद्रास्फीति के दिनों में कराधान का उद्देश्य लोगों के हाथों में से क्रयशक्ति को कम करना होता है।

### 14.8 सारांश (Summary)

- कर सम्बन्ध नीति अपनाते समय मुख्य उद्देश्य केवल आर्थिक लाभ या आधिक्य प्राप्त करना नहीं होना चाहिए अपितु अर्थव्यवस्था में स्थिरता बनाये रखना और तेजी से मन्दी को रोकना भी होना चाहिए।
- कराधान का अर्थ है व्यक्तिगत हाथों में से सरकार की ओर को क्रयशक्ति (purchasing power) का स्थानान्तरण। अन्य शब्दों में इसका मतलब है करदाता की क्रयशक्ति में कमी होना तथा जीवन की अनिवार्य, आरामदायक एवं विलासिता की वस्तुओं को प्राप्त करने की उसकी योग्यता में कमी आना।

## नोट

- निवेश (invest) करने की योग्यता इस बात पर निर्भर होती है कि कितने साधन अर्थात् बचतें (savings) निवेश के लिए उपलब्ध हैं।
- कराधान लोगों के काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की प्रेरणाओं (incentive) पर प्रभाव डालता है और इस स्थिति में उत्पादन तो स्वयमेव प्रभावित हो जाता है।
- काम करने तथा बचत करने की इच्छा पर आय-कर की अपेक्षा व्यय-कर (expenditure tax) के प्रभाव अधिक अनुकूल (favourable) हो सकते हैं। एक आरोही व्यय-कर उपभोग पर किये जाने वाले व्यर्थ के खर्चों को हतोत्साहित करता है और बचत तथा निवेश (investment) को प्रोत्साहित करता है। व्यय-कर का उपयोग उपभोग के स्वरूप को परिवर्तित करने में भी किया जा सकता है।
- आय के प्रति व्यक्ति की माँग को लोचदार (elastic) तब कहा जाता है जबकि व्यक्ति अपनी आय के वर्तमान स्तर को बनाये रखने के लिए अधिक उत्सुक नहीं होता और आय की उतनी ही मात्रा प्राप्त करने के लिए वह कड़ी मेहनत करने को तैयार नहीं होता।
- आय के प्रति व्यक्ति की माँग को लोचहीन (inelastic) तब कहा जाता है जबकि अपनी निश्चित आय को बनाये रखने की इच्छा उसमें काफी तीव्र होती है और वह कर की अदायगी के बाद भी अपनी आय को 12,000 ₹ के पूर्व स्तर पर ही बनाये रखने के लिए अधिक काम करने को कटिबद्ध है।
- देश में उत्पादन तथा राष्ट्रीय आय की मात्रा लोगों की काम करने तथा बचत करने की योग्यता व इच्छा पर निर्भर होती है किन्तु उत्पादन का गठन तथा प्रतिरूप इस बात पर निर्भर होता है कि **विभिन्न उद्योगों के बीच तथा विभिन्न क्षेत्रों के बीच साधनों का बँटवारा** किस प्रकार होता है। विभिन्न उद्योगों तथा क्षेत्रों के बीच साधनों का अन्तरण या दिशा-परिवर्तन (diversion) करने के लिए कराधान को राजकोषीय नीति (fiscal policy) के एक अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।
- साधनों को कुछ अन्तरण या दिशा-परिवर्तन लाभकारी होते हैं। उपभोग के हानिकारक पदार्थों जैसे कि मादक पदार्थों पर लगाया गया कराधान उनके उत्पादन को हतोत्साहित कर देता है।
- अनिवार्य आवश्यकताओं के पदार्थों तथा सामान्य उपभोग के पदार्थों पर लगाये जाने वाले करों को सामाजिक दृष्टि से वाँछनीय नहीं माना जाता। ऐसे पदार्थों पर कर लगाने से उनकी कीमतें बढ़ जाती हैं और कीमतें बढ़ने से ऐसे पदार्थों का उपभोग घट जाता है।
- प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों जैसे **एडम स्मिथ, रिकार्डो, मिल** आदि के अनुसार करारोपण का मुख्य उद्देश्य राजस्व प्राप्त करना है। जर्मन अर्थशास्त्री **वैगनर (Wagner)** को ऐसे सर्वप्रथम अर्थशास्त्रियों में गिना जा सकता है जिन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कराधान का उपयोग आय की असमानताओं को कम करने के एक अस्त्र के रूप में किया जाना चाहिए।
- **विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश में**, जहाँ कि उत्पादन अपने इष्टतम स्तर (optimum level) पर पहुँच चुका होता है, कराधान का उद्देश्य यह होता है कि समाज में आय तथा धन का समन्यायपूर्ण वितरण किया जाए और उत्पादन के वर्तमान स्तर को बनाये रखा जाए। दूसरी ओर **एक अल्पविकसित देश में** समस्या इतनी आसान नहीं होती, बल्कि बड़ी जटिल होती है।

### 14.9 शब्दकोश (Keywords)

- तरज़ीह (Preference)–प्रमुखता।
- निवेश (Invest)–कंपनी आदि में लाभ हेतु रकम लगाना।
- उद्यमी (Enterprisers)–परिश्रमी।

**14.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)**

नोट

1. उत्पादन के गठन तथा स्वरूप पर कराधान के प्रभावों का वर्णन करें।
2. करदाताओं की मनोदशा को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
3. लोचदार माँग एवं बेलोचदार माँग में क्या अंतर है?
4. करों की प्रकृति से आपका क्या अभिप्राय है?
5. आय के प्रति व्यक्ति की माँग लोचहीन होने के लिए उत्तरदायी तत्व कौन-कौन से हैं?

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)**

- |                 |              |            |           |
|-----------------|--------------|------------|-----------|
| 1. महत्त्वपूर्ण | 2. क्रयशक्ति | 3. प्रेरित | 4. समान   |
| 5. अंतरण        | 6. (अ)       | 7. (ब)     | 8. (स)    |
| 9. (द)          | 10. (ब)      | 11. सत्य   | 12. असत्य |
| 13. सत्य        | 14. असत्य    | 15. सत्य।  |           |

**14.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)**

पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## इकाई-15: लोक ऋण : सार्वजनिक और निजी ऋण के अर्थ एवं इसकी सीमाएँ (Public Debt : Meaning of Public and Private Debt and its Limitations)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

15.1 निजी (व्यक्तिगत) और लोक ऋण की तुलना (Comparison between Private and Public Debt)

15.2 लोक ऋण के उद्देश्य (Objects of Public Debt)

15.3 लोक ऋण का वर्गीकरण (Classification of Public Debt)

15.4 सारांश (Summary)

15.5 शब्दकोश (Keywords)

15.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

15.7 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- निजी और लोक ऋण की तुलनात्मक व्याख्या करने हेतु।
- लोक ऋण के उद्देश्य को जानने हेतु।
- लोक ऋण के वर्गीकरण को समझने हेतु।

### प्रस्तावना (Introduction)

सार्वजनिक ऋण, राज्य द्वारा आय प्राप्त करने का एक साधन है। लोक अथवा सार्वजनिक ऋण उस ऋण को कहते हैं जिसे कि राज्य (state) अपनी प्रजा से अथवा अन्य देशों के नागरिकों से लेता है। सरकार जब उधार लेती है तो उससे लोक ऋण का जन्म होता है। सरकार बैंकों, व्यावसायिक संगठनों, व्यवसाय गृहों तथा व्यक्तियों से उधार ले सकती है। सरकार देश के अन्दर से उधार ले सकती है और देश के बाहर से भी, अथवा दोनों जगहों से भी। लोक ऋण आमतौर पर बॉण्डों के रूप में (अथवा यदि ऋण थोड़े समय के लिए चाहिए, तो राजकोषीय-पत्र के रूप में) होता है। इन बॉण्डों में सरकार यह वायदा करती है कि वह निर्धारित समय में मूलधन की वापिसी के साथ ही, बॉण्डों के धारकों को पूर्ण निर्धारित दर से भी नियमित समयान्तरों पर अथवा अन्त में एकमुश्त धनराशि के रूप

में ब्याज की भी अदायगी करेगी। ऋण सरकार की आय का अन्तिम स्रोत होता है। डाल्टन के अनुसार, “सार्वजनिक अधिकारियों की आय प्राप्त करने का एक ढंग सार्वजनिक ऋण भी है।”

**प्रो. जे. के. मेहता** के अनुसार, “सार्वजनिक ऋण अपेक्षाकृत आधुनिक घटना है तथा विश्व में जनतान्त्रिक सरकारों के विकास के साथ व्यवहार में आया है।” **एडम स्मिथ** का कथन था कि “सार्वजनिक ऋण से युद्ध एवं फिजूलखर्ची जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री इसे बुरा नहीं मानते।”

### उधार लेने के कारण (Causes of Borrowing)

सरकार इसलिए उधार ले सकती है क्योंकि हो सकता है कि चालू आय उनके खर्चों को पूरा करने के लिए पर्याप्त न पड़ती हो। कुल आकस्मिक एवं असम्भावित खर्च सामने आ जाने के कारण भी सरकार को उधार लेना पड़ सकता है क्योंकि कर-आय में उस सीमा तक वृद्धि कर सकना एकदम सम्भव नहीं होता। सरकार पूँजीगत खर्चों की वित्तीय व्यवस्था के लिए भी उधार ले सकती है क्योंकि चालू आय (current revenue) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होगी।

मन्दी की अवधि में, जब निजी माँग (private demand) अपर्याप्त होती है तो सरकार लोगों की बेकार पड़ी हुई बचतों को आधार के रूप में ले लेती है और समर्थ माँग (effective demand) में वृद्धि करने के लिए उन्हें खर्च करती है और इस प्रकार समाज में अतिरिक्त आय तथा रोजगार पैदा कर देती है। इसके विपरीत, मुद्रा-स्फीति की स्थिति में जब समर्थ माँग चालू मूल्यों पर उपलब्ध वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति से अधिक होती है तो सरकार अपनी आवश्यकता से अधिक कर लगाती है और उसे खर्च करती है ताकि फालतू क्रय-शक्ति के सम्पूर्ण अथवा आंशिक भाग का रूप-परिवर्तन करके शुद्धिकरण हो सके। सरकार करों से प्राप्त इस फालतू राशि एक-दूसरे के पूरक हैं। इस कारण राजकोषीय नीति को सफलतापूर्वक क्रियान्वित नहीं किया जा सकता है।

(1) **राष्ट्रीय आय में करों का कम हिस्सा**—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय आय में चार गुनी से ज्यादा वृद्धि हुई है जबकि राष्ट्रीय आय में कर से होने वाली आय के प्रतिशत में उस अनुपात से कम वृद्धि हुई है। वर्तमान में राष्ट्रीय आय में कर का 20 प्रतिशत से भी कम हिस्सा है जबकि यह प्रतिशत अमेरिका में 22.42 प्रतिशत, स्वीडन में 26.3 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया में 27.9 प्रतिशत, नीदरलैंड में 29.2 प्रतिशत तथा इंग्लैंड में 30.4 प्रतिशत रहा है। इसके अतिरिक्त इन देशों में करों से प्राप्त आय का अधिकांश हिस्सा प्रत्यक्ष करों से प्राप्त होता है जबकि भारत में कर आय का ज्यादातर हिस्सा अप्रत्यक्ष करों का होता है। इस प्रकार की स्थिति में राजकोषीय उपाय अर्थव्यवस्था में विकास को बढ़ाने में अधिक सहायक सिद्ध नहीं हो सकते।

(2) **अप्रत्यक्ष करों की अधिकता**—भारतीय कर प्रणाली में अप्रत्यक्ष करों की अधिकता है जो न्यायसंगत नहीं है। योजनाकाल में अप्रत्यक्ष करों में इतनी तेजी से वृद्धि हुई है कि सम्पूर्ण कर व्यवस्था असंतुलित एवं अन्यायपूर्ण बन गई है। अप्रत्यक्ष करों का ज्यादातर भार धनी वर्ग की अपेक्षा निर्धनों को वहन करना पड़ता है जिससे समाज में आर्थिक विषमताएँ बढ़ी हैं। इस सम्बन्ध में **प्रो. के. टी. शाह** ने ठीक ही कहा है, “यद्यपि धनी वर्ग में कर क्षमता अधिक होती है जबकि उन पर कर-भार बहुत कम है। इसके विपरीत निर्धन वर्ग पर कर का भार शेर के हिस्से के बराबर है जबकि वहन करने की क्षमता भेड़ के बच्चे के बराबर है।”

(3) **अकुशल कर प्रणाली**—भारतीय कर प्रणाली कार्यकुशल नहीं है। भारत में कर वंचना आम है क्योंकि हमारी कर-प्रणाली दोषपूर्ण है। **प्रो. कैल्डोर** के अनुमान के अनुसार भारत में 200 से 300 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष कर वंचना होती है। इसके अतिरिक्त आय-कर का सम्पूर्ण हिस्सा वसूल नहीं किया जाता है। भारत में आयकर का 70 प्रतिशत से कम हिस्सा ही वसूल किया जाता है।

(4) **सार्वजनिक आय का अपव्यय**—भारत में सार्वजनिक व्यय का काफी भाग अपव्यय होता है। गैर-विकास परियोजनाओं पर काफी व्यय किया जाता है, इसके अतिरिक्त कुछ परियोजनाएँ केवल प्रतिष्ठा के आधार पर शुरू कर दी जाती हैं। उनमें बड़ी मात्रा में व्यय कर दिया जाता है जबकि जनता को इससे कोई लाभ नहीं प्राप्त होता है। सरकारी विभागों पर काफी मात्रा में व्यय किया जाता है जबकि वहाँ भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी एवं लालफीताशाही का राज्य कायम है और काम विलम्ब से होते हैं जिसके कारण उत्पादकता में गिरावट आती है।



## नोट

(5) बढ़ता हुआ सार्वजनिक ऋण—भारत में पंचवर्षीय योजनाओं को सफल बनाने के लिए बड़ी मात्रा में वित्तीय साधनों की आवश्यकता पड़ती है। इसकी पूर्ति के लिए सार्वजनिक ऋण का सहारा लिया जाता है। विगत वर्षों में इसके भार में निरन्तर वृद्धि हुई है। विदेशी ऋणों पर अत्यधिक निर्भरता के कारण आर्थिक विकास की योजनाओं में अनिश्चितता पैदा हो गई है। विदेशी ऋणों के भार बढ़ने से कुछ राजनैतिक खतरे भी उत्पन्न हो सकते हैं। अतः यह आवश्यक है कि विदेशी ऋणों से जल्दी से जल्दी मुक्ति पाकर आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हो।



नोट्स स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय आय में चार गुनी वृद्धि हुई है।

### राजकोषीय नीति में सुधार के सुझाव (Suggestions to Improve Fiscal Policy)

भारत में आर्थिक विकास को द्रुत गति देने के लिए राजकोषीय नीति में सुधार करना बहुत आवश्यक है। इसके लिए कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं—

(1) करारोपण से अधिक आय—आर्थिक विकास के लिए बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकार करारोपण से अधिक आय प्राप्त करने की कोशिश करे। इसके लिए करारोपण के नये क्षेत्र ढूँढने आवश्यक हैं। करों को वसूल करते समय मितव्ययिता बरतनी बहुत जरूरी है। अप्रत्यक्ष करों का भार जो निर्धनों पर पड़ता है कम किया जाए। कृषि आय पर कर लगाया जाना चाहिए जिससे सरकारी आय में वृद्धि होगी तथा कृषि तथा गैर-कृषि क्षेत्र के करों में समानता लाई जा सके।

(2) कर अपवंचन को रोकना—कर प्रणाली अधिक न्यायसंगत एवं व्यावहारिक बनायी जाए तथा कर-प्रशासन कुशल बनाया जाए ताकि करों में कम से कम चोरी हो। कर ढाँचे में परिवर्तन इस तरह से किया जाए ताकि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ करों का हिस्सा भी बढ़े।

(3) गैर-वेतन वर्ग पर कर-भार—गैर-वेतन वर्ग ऊँची आय प्राप्त करने के पश्चात् करों से बच जाता है या बहुत कम मात्रा में कर देता है। यह वर्ग अपनी आय का ज्यादातर भाग अनावश्यक उपभोग पर व्यय करता है। कर-प्रणाली में इस प्रकार के परिवर्तन किये जाएँ ताकि ये लोग करों से न बच सकें।

(4) सार्वजनिक उद्योगों की कार्यकुशलता में वृद्धि—दुर्भाग्यवश भारत में सार्वजनिक उद्योगों से पर्याप्त मात्रा में आय प्राप्त नहीं होती है। ज्यादातर उद्योग घाटे में ही रहते हैं। इसलिए जरूरी है कि उनकी कार्य-कुशलता में वृद्धि की जाए और इस आय को विकास कार्यों में व्यय किया जाए।

(5) सामाजिक सेवाओं एवं कल्याण पर अधिक व्यय—अप्रत्यक्ष करों का भार जो निर्धनों पर अधिक पड़ता है, यदि उसे नहीं टाला जा सकता है तो सार्वजनिक व्यय उन सामाजिक सेवाओं और कल्याण पर करें ताकि उसका अधिक लाभ निर्धनों को मिले। इस सम्बन्ध में शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सेवाओं पर अधिक व्यय किया जाए।

(6) बचत एवं पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन—भारत में आर्थिक विकास के लिए पूँजी निर्माण की बहुत आवश्यकता है। राजकोषीय नीति द्वारा उपभोग को हतोत्साहित किया जाए तथा बचत को प्रोत्साहित किया जाए।

(7) विदेशी ऋणों पर कम निर्भरता—राजकोषीय नीति में इस प्रकार परिवर्तन करने की आवश्यकता है कि हमारी विदेशी ऋणों पर निर्भरता कम हो सके। यह ठीक है कि आर्थिक विकास को द्रुतगति प्रदान करने के लिए विदेशी ऋण का उपयोग मन्दी के समय लिए गये ऋणों की अदायगी में अथवा भावी आवश्यकताओं की पूर्ति में किया जाता है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि एक विवेकपूर्ण सरकारी ऋण नीति का उपयोग मन्दी अथवा तेजी की स्थितियों का सामना करने में किया जा सकता है।

विगत कुछ वर्षों में, सरकार के कार्यों का असाधारण रूप से विस्तार हुआ है और इससे उसकी आय तथा पूँजीगत खर्चों में भी वृद्धि हुई है। आधुनिक युद्ध एवं उनके कारण प्रतिरक्षा-व्यय में होने वाली वृद्धि से भी सरकारी खर्च का विस्तार हुआ है और यह बढ़ा हुआ खर्च भी सरकारी ऋण में होने वाली व्यापक वृद्धि के लिए उत्तरदायी रहा है।

## 15.1 निजी (व्यक्तिगत) और लोक ऋण की तुलना (Comparison between Private and Public Debt)

निजी अथवा गैर-सरकारी ऋण और सरकारी ऋण के बीच अनेक समानताएँ तथा असमानताएँ पाई जाती हैं। प्राइवेट व्यक्ति और व्यवसाय-गृह उधार लिए गए धन का उपयोग कुछ साधनों की प्राप्ति के लिए करते हैं। अतः **निजी ऋण** धन को एक उपयोग से हटाकर दूसरे उपयोग की ओर स्थानान्तरित कर देता है। इसी प्रकार, **लोक ऋण** से आशय है कि उन उत्पादकीय उपयोगों (productive uses) का जिन्हें कि गैर-सरकारी क्षेत्र पसन्द करता है, उन उपयोगों के लिए बलिदान (sacrifice) करना जिन्हें कि सरकार पसन्द करती है। इस प्रकार सरकारी तथा गैर-सरकारी ऋण, दोनों में ही मूलतः धन का एक उपयोग से दूसरे उपयोग की ओर को स्थानान्तरण होता है।

लोक तथा निजी ऋण के बीच पाये जाने वाले मुख्य अन्तर निम्न प्रकार हैं—

- (1) सरकार के पास ऋण लेने के आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार के स्रोत होते हैं किन्तु व्यक्तियों को ऐसे स्रोत (sources) उपलब्ध नहीं होते।
- (2) सरकार द्वारा लिए गये ऋणों का उपयोग सम्पूर्ण समाज के लिए किया जाता है किन्तु निजी ऋणों के द्वारा प्राप्त धन का उपयोग केवल उधार लेने वाले व्यक्ति के लाभ के लिए ही किया जाता है।
- (3) सरकार लोगों को उधार देने के लिए बाध्य कर सकती है किन्तु व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता।
- (4) चूँकि राज्य की साख अच्छी होती है, अतः निजी ऋणों के मुकाबले सरकारी ऋणों पर ब्याज की दर नीची होती है, यद्यपि यह होता है कि कुछ निगम (corporations) सरकार जैसी ही सरल दरों पर ऋण प्राप्त कर लें।
- (5) सरकार तो साधारणतया उत्पादकीय कार्यों के लिए ही उधार लेती है किन्तु व्यक्ति उपभोग के लिए भी उधार ले सकता है।
- (6) लोक ऋणों की वापिसी अदायगी लोक आय से, जिसमें कि लोक उद्यमों की आय भी सम्मिलित होती है, की जाती है किन्तु व्यक्ति अपनी निजी कमाई में से ऋणों को अदायगी करता है। अतः लोक ऋण से भार की प्रकृति निजी ऋण के भार की प्रकृति (nature) से भिन्न होती है।
- (7) अन्त में, सरकार एक नीति (policy) के रूप में उधार (borrowing) का आश्रय ले सकती है, भले ही उसको धन की आवश्यकता हो या न हो। हो सकता है कि उधार से आर्थिक जीवन में कुछ स्थिरता लाने में मदद मिले। मुद्रा-स्फीति के दिनों में यह लोगों के हाथों में क्रय-शक्ति की मात्रा कम कर देता है जिससे कीमतों को नीचे लाने में मदद मिलती है। मन्दी के दिनों में सरकार उधार द्वारा कुछ किस्म के खर्चे करने में समर्थ हो जाती है जिससे व्यावसायिक क्रियाओं व रोजगार का स्तर ऊँचा उठाने में मदद मिलती है। परन्तु व्यक्ति को यदि धन की आवश्यकता न हो, तो वह उधार नहीं लेता।



क्या आप जानते हैं निजी ऋण धन को एक उपयोग से हटाकर दूसरे उपयोग की ओर स्थानान्तरित कर देता है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. सार्वजनिक ऋण राज्य द्वारा आय प्राप्त करने का एक ..... है।
2. स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय आय में ..... से भी ज्यादा वृद्धि हुई है।
3. भारतीय कर प्रणाली में ..... करों की अधिकता है।
4. .... ऋण धन को एक उपयोग से हटाकर दूसरे उपयोग की ओर स्थानान्तरित कर देता है।
5. लोक ऋण से भार की प्रकृति निजी ऋण के भार की प्रकृति से ..... होती है।

## नोट

**15.2 लोक ऋण के उद्देश्य (Objects of Public Debt)**

( 1 ) **आय तथा राजस्व (Revenue)**—लोक ऋण का उद्देश्य सामान्यतः उस खाई को पाटना होता है जो कि किसी वर्ष में प्रस्तावित खर्च तथा प्रत्याशित आय (expected revenue) के बीच उत्पन्न हो जाती है।

जब कभी भी बढ़े हुए प्रशासनिक व्यय के कारण अथवा बाढ़, अकाल, भूचाल, व छूट के रोग जैसे अप्रत्याशित आकस्मिक संकटों से निपटने के कारण सरकार की आय उसके व्यय से कम पड़ जाती है तो सरकार देशी अथवा विदेशी स्रोतों से धन उधार लेकर काम चलाती है। यह सरकार की वह आय होती है जो कि सभी करों तथा अन्य राजस्व स्रोतों से पृथक् होती है।

( 2 ) **मन्दी के दिनों में (In times of Depression)**—मन्दी उस दशा को कहते हैं जबकि कीमतें गिर रही होती हैं, लोगों में धन उद्यमों में लगाने के साहस का अभाव होता है और भविष्य में लाभ प्राप्ति की आशा नहीं होती। यह स्थिति तब दूर की जा सकती है जबकि वस्तुओं व सेवाओं की माँग में वृद्धि कर दी जाए और ऐसा तब हो सकता है जबकि देश में सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर अथवा अत्यावश्यक जनोपयोगी तथा अवस्थापना सेवाओं (infra structure services) पर किये जाने वाले लोक खर्च में वृद्धि कर दी जाए। पर, सरकारी खर्च में वृद्धि तो तभी हो सकती है जबकि सरकारी आय में वृद्धि हो और लोक आय में वृद्धि कराने के द्वारा नहीं की जा सकती क्योंकि इसके प्रभाव में काम करने तथा निवेश करने की प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जो कि समर्थ माँग में और कमी कर देता है। अतः सरकार के सामने उधार लेने का ही रास्ता बचता है। सरकार विशेष रूप से बैंकों से उधार लेती है ताकि निवेश के लिए वित्त प्राप्त कर सके और आय व रोजगार में तथा उसके फलस्वरूप समर्थ माँग में वृद्धि कर सके। इस प्रकार गिरती हुई कीमतों को रोका जा सकता है और सरकार अर्थव्यवस्था को मन्दी की स्थिति में उभारने में तथा समृद्धि लाने में समर्थ हो जाती है।

( 3 ) **मुद्रा-स्फीति को समाप्त करना (To Curb Inflation)**—मुद्रा-स्फीति बढ़ती हुई कीमतों की स्थिति का नाम है। अतः सरकार ऋण लेकर लोगों के हाथों में से काफी मात्रा में क्रय-शक्ति वापिस ले सकती है और इस प्रकार कीमतों को बढ़ने से रोक सकती है। किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि सरकारी ऋण के मुकाबले कराने का अधिक महत्वपूर्ण उपाय सिद्ध होता है, क्योंकि सरकारी उधार द्वारा प्राप्त धन को यदि उत्पादकीय उपयोग में न लगाया जाए, तो सरकार पर उसकी वापसी का उत्तरदायित्व अलग से बढ़ जाता है। परन्तु फालतू कर-आय को राजकोष में बड़ी आसानी से बेकार डाले रखा जा सकता है ताकि अर्थव्यवस्था में उत्पन्न स्फीतिजनक दबावों को समाप्त किया जा सके।

( 4 ) **विकास योजनाओं के लिए धन जुटाना (To Finance Development Plans)**—अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था में सदा ही धन की कमी बनी रहती है। ऐसे देशों में चूँकि लोगों की करदेय क्षमता कम होती है, अतः सरकार भारी कराने का भी आश्रय नहीं ले सकती। परन्तु देश से गरीबी दूर करने के लिए यह भी अत्यन्त आवश्यक तथा महत्वपूर्ण होता है कि विकास योजनाओं के लिए वित्त की व्यवस्था की जाए। ऐसी स्थिति में, एकमात्र रास्ता लोक ऋण का ही बचता है। अतः अल्पविकसित देशों की सरकारें विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए देश के अन्दर से अथवा विदेशों की सरकारों अथवा व्यक्तियों से उधार लेती है।

( 5 ) **सरकारी उद्यमों के लिए धन प्राप्त करना (To Finance Public Enterprises)**—सरकार अपने द्वारा चलाये जाने वाले वाणिज्यिक उद्यमों की वित्तीय व्यवस्था के लिए भी धन उधार लेती है। ऐसे उद्यम आमतौर पर उत्पादकीय उद्यम होते हैं और उन्हें कुशलता के साथ संचालित करने का दायित्व सरकार का ही होता है।

( 6 ) **शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार (Expansion of Education and Health Services)**—सरकार शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाओं एवं ऐसी ही अन्य सेवाओं के निर्माण व विस्तार के लिए भी उधार ले सकती है जो कि सामान्य सामाजिक कल्याण में तो वृद्धि करती है किन्तु उनसे कोई प्रत्यक्ष वित्तीय प्रतिफल प्राप्त नहीं होता और जो मौद्रिक दृष्टि से उत्पादक (productive) भी नहीं होती।

## नोट

(7) युद्ध के लिए धन प्राप्त करना (To Finance War)—सरकार प्रतिरक्षा कार्यों के लिए भी उधार ले सकती है। बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय तनाव तथा आणविक युद्ध के वर्तमान युग में किसी भी विदेशी आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए प्रतिरक्षा सेवाओं तथा आधुनिकतम साज-सज्जा की व्यवस्था हेतु बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। किन्तु केवल कराधान (taxation) के द्वारा ही आधुनिक युद्धों के लिए धन जुटाना बड़ा कठिन होता है। क्योंकि भारी कराधान का उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः इस स्थिति से निपटने के लिए सरकार देश के अन्दर से तथा देश के बाहर से लोक ऋणों का आश्रय ले सकती है।

(8) सामाजिक समाज की स्थापना के लिए—समाजवादी समाज की स्थापना के लिए वर्तमान समय में सरकार उद्योग व व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर रही है और उनका संचालन भी स्वयं कर रही है, लेकिन आधुनिक उद्योगों के संचालन के लिए बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है, जिनकी पूर्ति सरकार केवल ऋणों द्वारा ही करती है।

(9) आय प्राप्त होने तक प्रशासनिक कार्यों का व्यय पूरा करने हेतु—सरकार को करों से जो आय प्राप्त होती है वह वर्ष के अन्त में उपलब्ध हो पाती है परन्तु व्यय तो वर्ष के प्रारम्भ से ही करना पड़ता है। अतः वर्ष के शुरू में धन के अभाव में सरकार ऋण लेकर व्यय कर देती है तथा वर्ष के अन्त में आय प्राप्त होने पर उसका भुगतान कर देती है।

(10) लोकमत को अनुकूल बनाने के लिए—जब नागरिकों को कर देने की सामर्थ्य नहीं होती है तो सरकार को ऋण लेना पड़ता है। कभी-कभी जनता की करदान क्षमता अधिक होने पर भी सरकार जान-बूझकर करों में वृद्धि इसलिए नहीं करती है कि लोकमत अनुकूल बना रहे। अतः सरकार भारी कर लगाकर करदाताओं को कष्ट नहीं देती है।



टास्क मुद्रा-स्फीति पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

### बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

6. आकस्मिक संकट की स्थिति में सरकार किन स्रोतों से धन उधार लेकर काम चलाती है?
 

(अ) केवल देशी	(ब) केवल विदेशी
(स) देशी या विदेशी	(द) सभी।
7. मंदी किस दशा को कहते हैं?
 

(अ) जब कीमतें गिर रही होती हैं	(ब) जब कीमतें बढ़ रही होती हैं
(स) जब कीमतें समान रहती हैं	(द) उपरोक्त सभी।
8. अल्प-विकसित अर्थव्यवस्था में सदा किसकी कमी बनी रहती है?
 

(अ) श्रम की	(ब) संगठन की
(स) धन की	(द) साहस की।

## 15.3 लोक ऋण का वर्गीकरण (Classification of Public Debt)

अर्थशास्त्रियों ने ऋण के उपयोग, उद्देश्य, अवधि, भुगतान की शर्तों आदि के आधार पर इसे अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है। सार्वजनिक ऋण की विभिन्न किस्में अग्रलिखित हैं—

## नोट

**( 1 ) आन्तरिक तथा बाह्य ऋण (Internal and External Debt)**

आन्तरिक ऋण उन लोक ऋणों को कहते हैं जो देश के अन्दर से ही लिए जाते हैं, जबकि बाह्य ऋण विदेशी सरकारों, विदेशी व्यक्तियों, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रति देश की देनदारियों का प्रतीक होता है। डाल्टन के शब्दों में, “कोई ऋण आन्तरिक है यदि उन व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा दिया जाता है जो उस क्षेत्र में रहते हैं जो ऋण लेने वाले सार्वजनिक अधिकारी द्वारा नियन्त्रित किया जाता है, ऋण बाह्य है, यदि उन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा दिया जाता है जो उस क्षेत्र से बाहर रहते हैं।”<sup>1</sup> विदेशी ऋण पर ब्याज की अदायगी से ऋणी देश (debtor country) की निबल आय कम हो जाती है क्योंकि उसकी आय का एक भाग विदेशों को चला जाता है, किन्तु आन्तरिक ऋणों के ब्याज की अदायगी करने से ऐसा कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आन्तरिक ऋणों पर ब्याज चाहे करदाताओं पर छोड़ दिया जाए अथवा उनसे ले लिया जाए और युद्ध-कर्जों के ब्याज के रूप में अदा कर दिया जाए, देश की राष्ट्रीय आय पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह तो पूर्ववत् ही बनी रहती है। यह तो एक ऐसा गोल माल तरीका है जिसके द्वारा करदाता की एक जेब से धन लेकर उसी की दूसरी जेब में रख दिया जाता है। अतः ऐसे ब्याज की अदायगी का सम्पूर्ण रूप में देश की उत्पादन-क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, हाँ, यह अवश्य हो सकता है कि उत्पादन पर उसके कुछ परोक्ष प्रभाव पड़ें, तथापि, विदेशी कर्जों का उपयोग यदि उत्पादकीय कार्यों (productive purposes) के लिए किया जाए और यहाँ तक कि चाहे युद्ध कार्यों के लिए ही क्यों न किया जाए, तो उन्हें बुरा नहीं माना जा सकता। पहली स्थिति में तो उसकी अदायगी वहीं से की जा सकती है जहाँ कि उनका निवेश किया जायेगा और दूसरी स्थिति में वे देश की प्रतिष्ठा को बचाने में सहायक सिद्ध होंगे जिसके लिए कि किसी भी त्याग या बलिदान को बड़ा नहीं कहा जा सकता।

**( 2 ) उत्पादक तथा अनुत्पादक ऋण (Productive and Unproductive Debt)**

यह वर्गीकरण सार्वजनिक ऋणों के उपयोग पर आधारित है। ऋणों का उपयोग उत्पादक कार्यों के लिए भी किया जा सकता है और अनुत्पादक कार्यों के लिए भी। उत्पादक ऋण उन ऋणों को कहते हैं जिनका उपयोग ऐसी परियोजनाओं में किया जाता है जिनसे आय प्राप्त होती है, जैसे कि रेलवे, बिजली की योजनायें तथा सिंचाई की योजनायें। इन परियोजनाओं से होने वाली आय का उपयोग वार्षिक ब्याज को अदा करने में और अन्ततः मूलधन का भुगतान करने में किया जा सकता है। अतः उत्पादक अथवा पुनरुत्पादक (productive or reproductive) ऋण उन ऋणों को कहते हैं जिनके पीछे उतने ही मूल्य की अथवा अधिक मूल्य की परिसम्पत्तियाँ (assets) रखी जाती हैं। इस प्रकार, उत्पादक ऋण सरकार तथा करदाता पर कोई भार नहीं डालते।

दूसरी ओर, अनुत्पादक ऋण उन ऋणों को कहते हैं जो ऐसी परियोजनाओं में लगाये जाते हैं जिनसे कोई आय प्राप्त नहीं होती, उदाहरण के लिए, युद्ध (war)। अतः फलहीन या अनुत्पादक ऋण (debt weight of unproductive debt) वे ऋण होते हैं जिनके पीछे कोई परिसम्पत्तियाँ नहीं होतीं। अनुत्पादक ऋण का मुख्य कारण युद्ध ही नहीं होता किन्तु कुछ सीमा तक बजट के घाटे भी इसका कारण होते हैं।

**( 3 ) शोध्य तथा अशोध्य ऋण (Redeemable and Irredeemable Debt)**

शोध्य ऋण तथा अशोध्य ऋण उन ऋणों को कहते हैं जिनके बारे में सरकार यह वायदा करती है कि वह उन्हें एक निश्चित भावी तिथि पर अदा कर देगी। इन ऋणों को मियादी ऋण (terminable debt) भी कहा जाता है और जिन ऋणों के बारे में ऐसा कोई वायदा नहीं किया जाता, उन्हें अशोध्य या बेमियादी (irredeemable or perpetual debt) कहा जाता है। जब ऋण प्रतिदेय होता है तो सरकार को उसकी अदायगी की कुछ न कुछ व्यवस्था करनी होती है। यदि सरकार यह निश्चित करती है कि ऐसे ऋणों का भुगतान कर-आय में से किया जाना है, जो कि अधिकांश स्थितियों में भुगतान का सर्वोत्तम उपाय माना जाता है, तो इस कार्य के लिए नये कर लगाने होते हैं। अतः शोध्य या मियादी ऋणों की स्थिति में सरकार को ब्याज तथा मूलधन दोनों की ही अदायगी किसी

1. H. Dalton, Principles of Public Finance; page 176.

## नोट

भविष्य की तिथि में करनी होती है। परन्तु **अशोध्य या बेमियादी ऋण** की स्थिति में सरकार को केवल ब्याज की ही अदायगी नियमित रूप से करनी होती है।

शोध्य या मियादी ऋणों को **अल्पकालीन, मध्यकालीन** तथा **दीर्घकालीन** ऋणों के रूप में पुनः वर्गीकृत किया जा सकता है। अल्पकालीन ऋण (short term debts) 3 से 9 माह की अवधि के बीच परिपक्व (mature) हो जाते हैं, जैसे राजकोष पत्र (Treasury Bills)। ऐसे ऋणों पर ब्याज की दर सामान्यतः कम ही होती है। दीर्घकालीन ऋण (long term debts) आमतौर पर 10 वर्ष की अवधि के बाद देय या परिपक्व होते हैं और इन पर ब्याज की दर ऊँची होती है। मध्यकालीन ऋण (medium term debts) अल्पकालीन और दीर्घकालीन अवधि के बीच अर्थात् लगभग 5 वर्ष बाद परिपक्व होते हैं और इनकी ब्याज की दर भी मध्यम दर्जे की होती है, अर्थात् न बहुत अधिक और न बहुत कम।

#### ( 4 ) निधिजन्य तथा अनिधिजन्य ऋण (Funded and Unfunded Debt)

सरकारी ऋणों को निधिजन्य तथा अनिधिजन्य अथवा अस्थायी ऋण (funded and unfunded of floating debts) के रूप में भी वर्गीकृत किया जाता है। **निधिजन्य ऋण** दीर्घकालीन ऋण होते हैं। इन ऋणों की अदायगी या तो कम से कम एक वर्ष बाद की जा सकती है अथवा यह भी हो सकता है कि इस सम्बन्ध में बिल्कुल ही वायदा न किया जाए। अन्य शब्दों में, निधिजन्य ऋण वे ऋण होते हैं, जो या तो एक वर्ष बाद प्रतिदेय (redeemable) होते हैं अथवा बिल्कुल ही प्रतिदेय नहीं होते। **अनिधिजन्य ऋण** वे ऋण होते हैं, जिनका भुगतान एक वर्ष के अन्दर-अन्दर कर दिया जाता है। राजकोषीय बॉण्ड (treasury bonds) अनिधिजन्य ऋण होते हैं, क्योंकि ये तीन या छः माह के लिए दिये जाते हैं और इनकी अवधि एक वर्ष से अधिक तो होती ही नहीं।

तथापि, यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि **निधिजन्य ऋणों की स्थिति में**, सरकार पर इस बात का दायित्व होता है कि वह ऋणदाता को ब्याज की एक निश्चित रकम नियमित रूप से अदा करती रहे; हाँ उनके मूलधन की अदायगी की बात पूर्णतया सरकार की इच्छा पर छोड़ दी जाती है। अतः इन ऋणों की स्थिति में ऋणदाता या बॉण्ड के धारक को इसके अतिरिक्त और कोई अधिकार नहीं होता कि वह धनराशि पर ब्याज लेता रहे, जो कि उसने सरकार को उधार दी है।

#### ( 5 ) ऐच्छिक और अनिवार्य ऋण (Voluntary and Compulsory Loans)

सरकारी ऋण सामान्यतः ऐच्छिक प्रकृति के होते हैं और व्यक्तियों तथा संस्थाओं को ऐच्छिक रूप से सरकारी बॉण्ड खरीदने के लिए नियन्त्रित किया जाता है। आजकल अनिवार्य ऋणों का कोई विशेष प्रचलन नहीं है परन्तु युद्ध जैसे संकटकाल के अवसर पर सरकार ऋण देने के लिए लोगों पर दबाव डाल सकती है। सरकार मुद्रा-स्फीति की स्थिति में भी ऐसा कर सकती है, ताकि लोगों के हाथों में से क्रय-शक्ति की मात्रा कम हो सके और बढ़ती हुई कीमतों को रोका जा सके। अधिकांश मामलों में सरकार द्वारा लिए जाने वाले ऋण अतिदत्त (over-subscribed) होते हैं, क्योंकि सरकार की साख (credit) प्राइवेट व्यक्तियों अथवा कम्पनियों की अपेक्षा काफी अच्छी होती है और यही कारण है कि अन्य प्रकार के ऋण-पत्रों के मुकाबले सरकारी प्रतिभूतियों या ऋण-पत्रों (government securities) पर ब्याज की दर नीची होती है। सरकारी ऋण-पत्रों को निवेश (investment) के लिए सर्वोत्तम ऋण-पत्र या प्रतिभूति माना जाता है। किन्तु सरकारी प्रतिभूतियों पर जब ब्याज की दर बहुत कम होती है तो सरकार को जनता से ऐच्छिक रूप से ऋण मिलना कुछ कठिन हो जाता है और इस स्थिति में उसे अपने प्रभाव का उपयोग करना होता है।

#### ( 6 ) सूद सहित व सूद रहित ऋण (With rate of interest and Without rate of interest)

सूद सहित ऋणों पर सरकार निश्चित अवधि के पश्चात् ऋणदाताओं को निश्चित दर से ब्याज देती है, जबकि सूद-रहित ऋणों पर सरकार को कोई ब्याज नहीं देना पड़ता।

**नोट****( 7 ) क्रय योग्य व अक्रय योग्य ऋण (Purchasable and Non-purchasable Debt)**

क्रय योग्य ऋणों में सरकारी प्रतिभूतियों को सम्मिलित किया जाता है, जिनको स्वतन्त्रतापूर्वक खरीदा व बेचा नहीं जा सकता। इसके विपरीत अक्रय योग्य ऋणों में वे प्रतिभूतियाँ सम्मिलित की जाती हैं, जिनको बाजार में स्वतन्त्रतापूर्वक खरीदा व बेचा नहीं जा सकता और केवल पूर्व निश्चित दरों पर सरकार को ही लौटाया जा सकता है।

**( 8 ) कुल ऋण एवं शुद्ध ऋण (Total debt and Net debt)**

किसी भी समय विशेष पर सरकार के जितने ऋण होते हैं, उन सबके योग को कुल ऋण कहा जाता है। यदि सरकार ऋण का भुगतान करने के लिए कोई कोष एकत्रित करती है तो उस कोष की राशि को कुल ऋण की राशि में से निकालकर जो कुछ शेष बचता है, वह शुद्ध ऋण कहलाता है।

**( 9 ) अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋण (Short term and long term debt)**

जब सरकार थोड़े समय के लिए ऋण लेती है, तो उसे अल्पकालीन ऋण कहते हैं। इन ऋणों को एक वर्ष की अवधि में वापस कर दिया जाता है, जो कि बजट की अस्थायी कमी को पूर्ण करने हेतु प्राप्त किये जाते हैं।

जब सरकार बहुत लम्बे समय के लिए ऋण लेती है तो उसे दीर्घकालीन ऋण कहते हैं। इनके लौटाने का समय निश्चित नहीं होता है। जब तक ऋण का भुगतान नहीं किया जाता, तब तक ऋणदाता को ब्याज मिलता रहता है।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य कथन की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

9. आंतरिक ऋण उन लोक ऋणों को कहते हैं जो देश के अंदर से लिए जाते हैं।
10. विदेशी ऋण पर ब्याज की अदायगी से ऋणी देश की निबल आय बढ़ जाती है।
11. जब ऋण प्रतिदेय होता है तो सरकार को उसकी अदायगी की कुछ-न-कुछ व्यवस्था करनी होती है।
12. अनिधिजन्य ऋण वे होते हैं जिनका भुगतान एक वर्ष के अंदर-अंदर कर दिया जाता है।
13. किसी भी समय विशेष पर सरकार के जितने ऋण होते हैं, उन सबके योग को कुल ऋण कहा जाता है।

**15.4 सारांश (Summary)**

- स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत की राष्ट्रीय आय में चार गुनी से ज्यादा वृद्धि हुई है जबकि राष्ट्रीय आय में कर से होने वाली आय के प्रतिशत में उस अनुपात से कम वृद्धि हुई है। वर्तमान में राष्ट्रीय आय में कर का 20 प्रतिशत से भी कम हिस्सा है जबकि यह प्रतिशत अमेरिका में 22.42 प्रतिशत, स्वीडन में 26.3 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया में 27.9 प्रतिशत, नीदरलैंड में 29.2 प्रतिशत तथा इंग्लैंड में 30.4 प्रतिशत रहा है।
- आर्थिक विकास के लिए बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकार करारोपण से अधिक आय प्राप्त करने की कोशिश करे। इसके लिए करारोपण के नये क्षेत्र ढूँढने आवश्यक हैं।
- विगत कुछ वर्षों में, सरकार के कार्यों का असाधारण रूप से विस्तार हुआ है और इससे उसकी आय तथा पूँजीगत खर्चों में भी वृद्धि हुई है। आधुनिक युद्ध एवं उनके कारण प्रतिरक्षा-व्यय में होने वाली वृद्धि से भी सरकारी खर्च का विस्तार हुआ है और यह बढ़ा हुआ खर्च भी सरकारी ऋण में होने वाली व्यापक वृद्धि के लिए उत्तरदायी रहा है।

## नोट

- **निजी ऋण** धन को एक उपयोग से हटाकर दूसरे उपयोग की ओर स्थानान्तरित कर देता है। इसी प्रकार, **लोक ऋण** से आशय है कि उन उत्पादकीय उपयोगों (productive uses) का जिन्हें कि गैर-सरकारी क्षेत्र पसन्द करता है, उन उपयोगों के लिए बलिदान (sacrifice) करना जिन्हें कि सरकार पसन्द करती है।
- लोक ऋण का उद्देश्य सामान्यतः उस खाई को पाटना होता है जो कि किसी वर्ष में प्रस्तावित खर्च तथा प्रत्याशित आय (expected revenue) के बीच उत्पन्न हो जाती है।
- मुद्रा-स्फीति बढ़ती हुई कीमतों की स्थिति का नाम है। अतः सरकार ऋण लेकर लोगों के हाथों में से काफी मात्रा में क्रय-शक्ति वापिस ले सकती है और इस प्रकार कीमतों को बढ़ने से रोक सकती है।
- आन्तरिक ऋण उन लोक ऋणों को कहते हैं जो देश के अन्दर से ही लिए जाते हैं, जबकि बाह्य ऋण विदेशी सरकारों, विदेशी व्यक्तियों, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रति देश की देनदारियों का प्रतीक होता है। **डाल्टन** के शब्दों में, “कोई ऋण आन्तरिक है यदि उन व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा दिया जाता है जो उस क्षेत्र में रहते हैं जो ऋण लेने वाले सार्वजनिक अधिकारी द्वारा नियन्त्रित किया जाता है, ऋण बाह्य है, यदि उन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा दिया जाता है जो उस क्षेत्र से बाहर रहते हैं।”
- ऋणों का उपयोग उत्पादक कार्यों के लिए भी किया जा सकता है और अनुत्पादक कार्यों के लिए भी। उत्पादक ऋण उन ऋणों को कहते हैं जिनका उपयोग ऐसी परियोजनाओं में किया जाता है जिनसे आय प्राप्त होती है, जैसे कि रेलवे, बिजली की योजनायें तथा सिंचाई की योजनायें। इन परियोजनाओं से होने वाली आय का उपयोग वार्षिक ब्याज को अदा करने में और अन्ततः मूलधन का भुगतान करने में किया जा सकता है।
- शोध्य ऋण तथा अशोध्य ऋण उन ऋणों को कहते हैं जिनके बारे में सरकार यह वायदा करती है कि वह उन्हें एक निश्चित भावी तिथि पर अदा कर देगी। इन ऋणों को मियादी ऋण (terminable debt) भी कहा जाता है और जिन ऋणों के बारे में ऐसा कोई वायदा नहीं किया जाता, उन्हें अशोध्य या बेमियादी (irredeemable or perpetual debt) कहा जाता है।

### 15.5 शब्दकोश (Keywords)

- प्रत्याशित (Expected)–पूर्वानुमानित।
- ऋणी (Debtor)–कर्ज लेने वाला।

### 15.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें—  
(अ) राष्ट्रीय आय में करों का कम हिस्सा।  
(ब) अप्रत्यक्ष करों की अधिकता।
2. राजकोषीय नीति में सुधार के क्या सुझाव हैं?
3. निजी ऋण एवं लोक ऋण में क्या अंतर है?
4. लोक ऋण का क्या उद्देश्य है?
5. लोक ऋण का वर्गीकरण प्रस्तुत करें।

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |           |             |               |           |
|-----------|-------------|---------------|-----------|
| 1. साधन   | 2. चार गुनी | 3. अप्रत्यक्ष | 4. निजी   |
| 5. भिन्न  | 6. (स)      | 7. (अ)        | 8. (स)    |
| 9. सत्य   | 10. असत्य   | 11. सत्य      | 12. असत्य |
| 13. सत्य। |             |               |           |



नोट

### 15.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

---



पुस्तकें

1. लोक वित्त—एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन—मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस—नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस—नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## इकाई-16: लोक ऋण के प्रभाव : सार्वजनिक ऋण तथा आर्थिक विकास (Effect of Public Debt : Public Debt and Economic Growth)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 16.1 सार्वजनिक ऋण के अन्य प्रभाव (Other Effects of Public Debt)
- 16.2 लोक ऋण का भार (Burden of Public Debt)
- 16.3 कर्ज बनाम कर (Loans v/s Taxes)
- 16.4 कर तथा कर्ज में अन्तर (Difference between Taxes and Loans)
- 16.5 लोक ऋण की व्यवस्था (Public Debt Management)
- 16.6 लोक ऋण की व्यवस्था के सिद्धान्त (Principles of Public Debt Management)
- 16.7 लोक ऋण का शोधन या प्रतिपादन (Redemption of Public Debt)
- 16.8 ऋण-वापिसी की रीतियाँ (Methods of Repayment)
- 16.9 सार्वजनिक ऋणों से लाभ एवं हानियाँ (Advantages and Disadvantages of the Public Debt)
- 16.10 सार्वजनिक ऋण तथा आर्थिक विकास (Public Debt and Economic Development)
- 16.11 मुद्रा-स्फीति (Inflation)
- 16.12 अर्थव्यवस्था के नियंत्रण में भूमिका (Role in Regulating the Economy)
- 16.13 सारांश (Summary)
- 16.14 शब्दकोश (Keywords)
- 16.15 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 16.16 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- सार्वजनिक ऋण के विभिन्न प्रभावों को समझने में।
- लोक ऋण के भार संबंधी बातों की जानकारी प्राप्त करने हेतु।
- लोक ऋण की व्यवस्था को जानने में।

**नोट**

- सार्वजनिक ऋणों से लाभ एवं हानि संबंधी बातों को जानने हेतु।
- सार्वजनिक ऋण तथा आर्थिक विकास को समझने में।
- मुद्रा-स्फीति की जानकारी लेने हेतु।

**प्रस्तावना (Introduction)**

किसी देश का लोक ऋण उसकी अर्थव्यवस्था को दो प्रकार से प्रभावित करता है—‘आय सम्बन्धी प्रभाव’ (revenue effect) भी डालता है और ‘व्यय सम्बन्धी प्रभाव’ (expenditure effects) भी।

( 1 ) **आय सम्बन्धी प्रभाव (Revenue Effect)**—जब लोक ऋण के माध्यम से लोगों से रुपया लिया जाता है तो लोगों को अपने बजट में परिवर्तन करना होता है। यद्यपि यह हो सकता है कि लोक ऋण उपभोग-व्यय को प्रत्यक्ष रूप से वैसे प्रभावित न करे जैसे कि कराधान करता है, क्योंकि लोक सरकारी प्रतिभूतियों (securities) को खरीदने के लिए भूतकालीन अथवा वर्तमान बचतों का उपयोग करते हैं। परन्तु कुछ मामलों में यह हो सकता है कि लोग प्रतिभूतियाँ खरीदने के लिए अपने चालू व्यय में कटौती करके अपनी बचतों में वृद्धि करें। स्पष्ट है कि लोक ऋण उपभोग-व्यय को प्रभावित करते हैं, इसे लोक ऋण का **प्रथम प्रभाव** कहा जा सकता है।

( 2 ) **व्यय सम्बन्धी प्रभाव (Expenditure Effect)**—लोक ऋणों के रूप में प्राप्त धनराशि को व्यय करके लोगों को लाभ प्रदान किये जाते हैं। यह लोक ऋण का **दूसरा प्रभाव** है। ये लाभ उन लोभों से कुछ भिन्न नहीं होते, जोकि कर-आय को व्यय करके प्रदान किये जाते हैं बशर्ते कि उधार के रूप में प्राप्त धनराशि का भी वैसा ही उपयोग किया जाए जैसा कि कर-आय का किया जाता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि कुछेक मामलों को छोड़कर, उधार लिए हुए धन का उपयोग सदा ही उससे भिन्न रूप में किया जाता है जैसा कि कर-आय (tax revenue) का किया जाता है। परन्तु यह भिन्नता (difference) सदा ही कोई अधिक तीव्र नहीं होती। उदाहरण के लिए, कर-आय का उपयोग अध्यापकों के वेतन देने में किया जा सकता है तो ऋण की धनराशि का उपयोग स्कूल के भवनों के निर्माण में किया जा सकता है। कराधान और ऋण की प्राप्तियाँ (proceeds) को व्यय करने से जो प्रभाव सामने आते हैं, वे अधिकांशतः एक समान होते हैं। परन्तु कुछ मामलों में, इनमें स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है। उधार ली हुई धनराशियों का उपभोग पूँजीगत प्रकृति (capital nature) के व्यय की वित्तीय व्यवस्था के लिए किया जाता है, जैसे कि अणुशक्ति के उत्पादन के लिए संयंत्रों की स्थापना; किन्तु करों की प्राप्तियों का उपयोग चालू अथवा राजस्व व्यय (current or revenue expenditure) की वित्तीय व्यवस्था के लिए किया जाता है। स्पष्ट है कि प्रथम किस्म के व्यय का प्रभाव दूसरे किस्म के व्यय के प्रभावों से भिन्न होगा।

**16.1 सार्वजनिक ऋण के अन्य प्रभाव (Other Effects of Public Debt)**

अब हम इस बात का विवेचन करेंगे कि उपभोग, उत्पादन, वितरण तथा गैर-सरकारी क्षेत्र पर सरकारी ऋण के क्या प्रभाव पड़ते हैं। सार्वजनिक ऋण के अन्य प्रभाव का अध्ययन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

- (1) उपभोग पर प्रभाव,
- (2) उत्पादन पर प्रभाव,
- (3) वितरण पर प्रभाव,
- (4) गैर-सरकारी क्षेत्र पर प्रभाव,
- (5) उत्पादन लागत पर प्रभाव,
- (6) रोजगार पर प्रभाव,
- (7) विनियोग पर प्रभाव।

**( 1 ) उपभोग पर प्रभाव (Effect on Consumption)**

जब लोग सरकारी प्रतिभूतियाँ (government securities) खरीदते हैं तो सदा यह जरूरी नहीं होता कि वे इनका क्रय पिछली बचतों (past savings) में से ही करेंगे। कभी-कभी लोग इन प्रतिभूतियों को अपनी उस वर्तमान आय से भी खरीदते हैं, जिनका उपयोग अन्य स्थिति में वे दूसरी वस्तुओं के उपभोग पर करते हैं। चूँकि उन्हें छोटी-छोटी धनराशियों के सरकारी बॉण्ड खरीदने का अवसर मिलता है, अतः वे कुछ वस्तुओं के उपभोग को छोड़कर बॉण्ड खरीद लेते हैं। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए चालू की गई अल्प बचत योजना इसी प्रकृति की है। अतः राष्ट्रीय योजना प्रमाण-पत्रों (National Plan Certificates) में लगाये गये धन के कारण कुछ सीमा तक तो लोगों का वर्तमान व्यय कम होता ही है। इस स्थिति में तो उपभोग उसी प्रकार से प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित होता है जैसा कि वह करों द्वारा प्रभावित होता है। परन्तु जब लोग सरकारी प्रतिभूतियों को अपनी पिछली बचतों के धन से खरीदते हैं तो उसके विशेष प्रभाव होते हैं। इससे लोगों का वर्तमान व्यय प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं होता और जब लोग सरकारी प्रतिभूतियों को खरीद अपनी बेकार बड़ी बचतों से करते हैं, तो उसका वर्तमान व्यय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह पूर्ववत् बना रहता है। ऐसी स्थितियों में, निजी अथवा गैर-सरकारी निवेश भी अप्रभावित रहता है किन्तु यदि यह धनराशि बैंक की जमा रकमों से निकाली जाती है तो उससे बैंक के पास उपलब्ध धनराशि कम हो जाती है। ऐसी दशा में प्राइवेट व्यवसाय को उधार देने के लिए बैंक के पास कम धन रह जाता है अतः प्राइवेट निवेश उससे प्रभावित होता है।

**( 2 ) उत्पादन पर प्रभाव (Effect on Production)**

यदि लोग औद्योगिक संस्थाओं के शेयरों तथा ऋण-पत्रों (debentures) को बेचकर सरकारी प्रतिभूतियाँ (government securities) खरीदते हैं तो गैर-सरकारी निवेश पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। निवेश पर पड़ने वाला निबल प्रभाव (net effect) इस बात पर निर्भर होता है कि लोक ऋण के धन का उपयोग सरकार किस प्रकार करती है। यदि सरकार उस धन का उपयोग सरकारी उद्योग में करती है तो उत्पादन के लिए उपलब्ध कुछ निवेश पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु यदि सरकार उसका उपयोग अनुत्पादक कार्यों में करती है तो उससे कुछ निवेश निश्चय ही प्रभावित होगा।

यदि लोग अपने बेकार पड़े हुए धन से सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदते हैं तो उसका गैर-सरकारी निवेश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। परन्तु यदि वे प्रतिभूतियों की खरीद बैंक में से अपनी रकम निकाल कर करते हैं तो गैर-सरकारी निवेश पर उसका प्रतिकूल प्रभाव होगा, क्योंकि जमा राशि कम हो जाने के कारण बैंक की उधार देने की क्षमता भी घट जायेगी।

बैंक की उधार देने की क्षमता साधारणतः लोचदार (elastic) होती है। बैंकों की उधार देने की शक्ति उसके साधनों पर तथा देश के केन्द्रीय बैंकों की नीति पर निर्भर होती है। जब केन्द्र बैंकों के निर्माण (creation credit) को प्रोत्साहन देता है तो देश में ऋणों के विस्तार की सम्भावना स्पष्टतः ही अधिक होती है। बैंक तदर्थ (ad-hoc) अथवा नई निर्मित प्रतिभूतियों के बल पर साख का विस्तार कर सकता है। इस प्रकार, सरकारी उधार, गैर-सरकारी क्षेत्र के निवेश को कम नहीं करता, बशर्ते कि बाजार में पर्याप्त धन मौजूद हो और बशर्ते कि सरकार उधार लिए हुए धन का उपयोग उत्पादक कार्यों के लिए करे। इसके अतिरिक्त, यह भी हो सकता है कि सरकार ऋण की प्राप्तियों का उपयोग ठेकेदारों से खरीदे हुए माल की अदायगी में करे और अपने कर्मचारियों को वेतन देने में करे। इससे लोगों के हाथों में नई क्रयशक्ति पहुँचेगी और उससे बैंक की जमा धनराशियों में वृद्धि होगी तथा जिनका उपयोग गैर-सरकारी क्षेत्र को ऋण देने में किया जा सकेगा। अतः सरकार यदि बैंकों से उधार लेती है तो यह जरूरी नहीं है कि वह गैर-सरकारी क्षेत्र के निवेश को प्रभावित करे।

यदि सरकार उधार लिए हुए धन का उपयोग अनुत्पादक कार्यों के लिए करती है, तो भविष्य में उन ऋणों की अदायगी केवल अतिरिक्त कराधान द्वारा ही की जा सकती है और भविष्य में इस अतिरिक्त कराधान से उपभोग प्रभावित हो सकता है। किन्तु सभी अनुत्पादक ऋण उपभोग को प्रभावित करते हों, ऐसी बात नहीं है। जो ऋण कल्याणकारी योजनाओं के लिए काम में लिए जाते हैं वे कर्मचारियों व श्रमिकों की ओर अन्ततः उत्पादन की

**नोट**

कार्यक्षमता में वृद्धि करते हैं। जब उत्पादन बढ़ता है तो समाज की आय भी बढ़ती है और इस स्थिति में, अतिरिक्त कराधान का उपभोग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि ऋणों का उपयोग प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन कार्यों में किया जाता है तो इससे लोगों की आय में वृद्धि होती है। फलतः उपभोग पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता, अपितु वह तो और बढ़ता है। यही नहीं, इस बढ़ी आय में से मूलधन के साथ-साथ ब्याज तक भी अदा किया जा सकता है।

**( 3 ) वितरण पर प्रभाव (Effects on Distribution)**

सरकारी प्रतिभूतियों के खरीदार अधिकांशतः धनी वर्ग के लोग होते हैं। परन्तु उन ऋणों पर ब्याज देने के लिए सरकार जो कर लगाती है, उनका भार निर्धन वर्ग पर भी पड़ता है। अतः लोक ऋण आय की असमानताओं में और वृद्धि करते हैं। इस स्थिति में, स्पष्ट है कि लोक ऋण वितरण पर वांछनीय प्रभाव नहीं डाल सकते। बॉण्ड धारक (Bond holders) तथा करदाता एक ही हैं तो आय का कोई पुनर्वितरण नहीं होगा और उस स्थिति में आय की असमानताओं में भी कोई वृद्धि नहीं होगी। परन्तु आमतौर पर यह बात सही सिद्ध नहीं होती। अतः जब तक बॉण्ड-धारक तथा करदाता भिन्न-भिन्न वर्गों से सम्बन्धित रहेंगे, आय का थोड़ा-थोड़ा पुनर्वितरण अवश्य होगा और जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, आय की असमानताओं में वृद्धि अवश्य होगी।

यदि लोक ऋण का उपभोग अपेक्षाकृत निम्न आय वाले वर्गों के आर्थिक कल्याण के लिए किया जाता है तो आय की असमानताएँ कम होती हैं और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आय का अधिक समान वितरण हो जाता है। परन्तु यदि ऋण की वित्तीय व्यवस्था से मुद्रास्फीति (inflation) उत्पन्न होती है, तो कीमतों के बढ़ने के कारण आय के वितरण पर पड़ने वाले अच्छे प्रभाव निष्फल हो सकते हैं। इस प्रकार, यदि ऋण की प्राप्ति कल्याणकारी योजनाओं पर खर्च की गई, तो वितरण पर उनके प्रभाव हितकर ही होते हैं।

**( 4 ) गैर-सरकारी क्षेत्र पर प्रभाव (Effects on Private Sector)**

अब हम इस बात का विश्लेषण करेंगे कि अर्थव्यवस्था (economy) के प्राइवेट अथवा गैर-सरकारी क्षेत्र पर लोक ऋण के क्या प्रभाव पड़ते हैं। प्रत्येक प्रकार के सरकारी खर्च से चूँकि लोगों के पास क्रयशक्ति की मात्रा बढ़ जाती है और चलन (circulation) में भी अधिक मुद्रा आती है, अतः वस्तुओं की माँग में वृद्धि होती है जब इस खर्च की पूर्ति कराधान द्वारा की जाती है, तब तो चालू उपभोग (current consumption) घट जाता है किन्तु जब उसकी पूर्ति उधार (borrowing) द्वारा की जाती है तो उधार देने में लोग आमतौर पर बेकार पड़ी हुई बचतों को काम में लाते हैं; फलतः चालू उपभोग में कोई कमी नहीं आती। यदि सरकार उधार लिए गये धन का उपयोग निजी क्षेत्र में उत्पन्न की गई वस्तुओं को खरीदने में करती है तो निजी क्षेत्र की वस्तुओं की माँग उस सीमा तक अवश्य बढ़ेगी जहाँ तक कि सरकार उधार लिए हुए धन को इस कार्य के लिए खर्च करेगी। फिर, यह भी हो सकता है कि उधार लिए हुए धन का कुछ भाग सरकारी अधिकारियों को वेतन देने में लगा दिया जाए। इस स्थिति में भी ये अधिकारीगण गैर-सरकारी क्षेत्र में उत्पादित वस्तुएँ खरीद सकते हैं। अतः उधार लिए हुए धन के खर्च का प्रभाव यह होता है कि निजी अथवा गैर-सरकारी क्षेत्र के उद्योगों के उत्पादित माल की माँग में वृद्धि होती है और पूर्ति पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार, गैर-सरकारी क्षेत्र पर लोक ऋण के प्रभावों को अनुकूल कहा जा सकता है।

**( 5 ) उत्पादन लागत पर प्रभाव (Effect on Cost of Production)**

यहाँ इस बात का विवेचन करना भी उचित होगा कि उत्पादन-लागत (cost of production) पर लोक ऋणों का क्या प्रभाव पड़ता है। उत्पादन-लागत कच्चे माल (raw material) तथा उत्पादन के अन्य साधनों या उपादानों (factors or production) की कीमतों पर निर्भर करती है यह हो सकता है कि सरकार उधार लिए हुए धन का उपयोग उत्पादकों को समुचित दरों पर कच्चा माल प्रदान करने में तथा परिवहन व प्रशिक्षण की सुविधा मुहैया कराने में करे। सरकार उस धन का उपयोग औद्योगिक अनुसंधान करने में तथा निजी उद्यमों को उपादान देने में भी कर सकती है। ये सब ऐसे उदाहरण हैं जिनके अन्तर्गत कि उधार लिए धन को खर्च करने से उत्पादन-लागत में कमी आती है। अतः उधार लिए हुए धन के प्रभाव इस दिशा में भी अनुकूल ही होते हैं।

## नोट

किन्तु एक विचारणीय बात यह है कि जब उधार लिए हुए धन का उपयोग किया जाता है तो श्रम और पूँजी की माँग उत्पन्न हो जाती है। यदि श्रमिकों की कमी होती है तो इस स्थिति में मजदूरियाँ बढ़ जाती हैं। मजदूरियाँ बढ़ने से उत्पादन-लागत भी बढ़ जाती है और इसका प्राइवेट उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। परन्तु यदि कीमतें बढ़ने के बावजूद उत्पादित वस्तुओं की माँग पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता तो प्राइवेट उद्योगों पर भी कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। अन्य शब्दों में, यदि उधार लिए हुए धन को खर्च करने के कारण माँग में होने वाली आनुपातिक वृद्धि, श्रम (labour) की कमी के कारण उत्पादन-लागत में होने वाली आनुपातिक वृद्धि से अधिक होती है तो उद्योग पर उसका प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु श्रम की सदा ही की बनी रही हो, ऐसी बात भी नहीं है।



**नोट्स** यह भी हो सकता है कि बेकार श्रमिक काफी मात्रा में हों और यदि सरकार इन बेकार पड़े हुए श्रमिकों का उपयोग करती है तो उत्पादन-लागत की दृष्टि से प्राइवेट उद्योग पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

### (6) रोजगार पर प्रभाव (Effect on Employment)

मन्दीकाल में मूल्य, उपभोग व उत्पादन गिर जाता है। ऐसी स्थिति में सरकार अपनी प्रतिभूतियों के आधार पर केन्द्रीयकरण से धन प्राप्त करके उसे ऐसे कार्यों पर व्यय करती है जिससे रोजगार की मात्रा बढ़े तथा व्यापार की शिथिलता भी समाप्त हो सके।

### (7) विनियोग पर प्रभाव (Effects on Investment)

साधारणतः सार्वजनिक ऋणों का विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि सरकार बैंकों से ऋण प्राप्त करती है तो उससे जनता पर अतिरिक्त क्रय शक्ति आयेगी और विनियोग की राशि में कोई कमी नहीं होगी। परन्तु यदि ऋणों के लिए धन निजी बचतों या व्यापार से लिया जाता है तो उनसे विनियोग घटेंगे। यदि ब्याज दर स्थिर है तथा बॉण्डों में विशेष आकर्षण नहीं है तो निजी विनियोग में कमी होने की सम्भावना न्यूनतम हो जाती है।

## 16.2 लोक ऋण का भार (Burden of Public Debt)

लोक ऋण के भार से आशय उस त्याग (sacrifice) से होता है जोकि कराधान में वृद्धि के प्रभावों के कारण लोगों को करना होता है। कराधान में वृद्धि उस समय करनी होती है जबकि लोग ऋणों की वापसी की जाती है तथा वार्षिक ब्याज को अदायगियाँ की जाती हैं।

लोक ऋणों का भार प्रत्यक्ष भी हो सकता है और परोक्ष भी। प्रत्यक्ष द्रव्य भार (direct money burden) का माप ऋण-वापसी के धन की मात्रा से तथा उसके कारण कराधान में की जाने वाली वृद्धि की मात्रा से किया जाता है। प्रत्यक्ष वास्तविक भार (direct real burden) आर्थिक कल्याण की उस हानि (अर्थात् करादाताओं द्वारा किये जाने वाले वस्तुओं व सेवाओं के उस त्याग) के बराबर होता है जोकि बढ़े हुए कराधान के प्रत्यक्ष द्रव्य भार के कारण होती है। किन्तु ऋण के परोक्ष भार (indirect burden) से आशय उत्पादन के स्तर पर बढ़े हुए कराधान के प्रतिकूल प्रभावों की मात्रा से होता है।

लोक ऋण के भार का अनुमान लगाते समय इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि ऋण उत्पादक है या अनुत्पादक, वह आन्तरिक (internal) है या विदेशी (external) और यह कि अर्थव्यवस्था में कीमत-स्तर (Price level) की स्थिति क्या है।



**क्या आप जानते हैं** यदि कीमतों का स्तर गिरता है तो द्रव्य का मूल्य (value of money) बढ़ता है और विपरीत स्थिति में इससे उल्टा होता है। यदि कीमतों का स्तर गिरता है तो ब्याज का वास्तविक भार (real burden) बढ़ता है और विपरीत स्थिति में इससे उल्टा है।

## नोट

**लोक ऋण के भार का अनुमान (Estimation of the Burden on Public Debt)**

लोक ऋणों के तुलनात्मक भार का अनुमान लगाने की अनेक रीतियाँ हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में निष्कर्ष यह है कि यदि सभी बातों पर विचार किया जाए तो, किसी एक ही रीति को न अपनाकर विभिन्न रीतियों का सम्मिलित रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक उपयोगी रीतियाँ (methods) ये हैं—

(1) राष्ट्रीय धन तथा आय पर राष्ट्रीय ऋण का अनुपात ज्ञात करना, और (2) कुल सामान्य व्यय पर ऋण-भार (debt services) के व्यय का प्रतिशत ज्ञात करना। लोक ऋण के सापेक्षिक भार का अनुमान लगाने के लिए इन दोनों ही रीतियों के मिश्रण को उपयोगी माना जाता है।

**आन्तरिक ऋण का भार (Burden on Internal Debt)**

जहाँ तक आन्तरिक ऋण के भार का सम्बन्ध है, हो सकता है कि समाज पर, सम्पूर्ण रूप में, कोई प्रत्यक्ष द्रव्य भार (direct money burden) न पड़े, क्योंकि ब्याज और ऋण की अदायगियाँ तथा उनकी पूर्ति के लिए हुआ कराधान एक वर्ग के व्यक्तियों की ओर से दूसरे वर्ग के व्यक्तियों की ओर को क्रय-शक्ति का केवल स्थानान्तरण मात्र ही तो होता है। यदि ऋणदाता (अर्थात् बॉण्ड-धारक) तथा करदाता एक ही हैं तो हो सकता है कि समाज पर कतई भी कोई निबल भार न पड़े। परन्तु यदि ऋणदाता (अर्थात् बॉण्ड-धारक) और करदाता विभिन्न आय वाले वर्गों से सम्बन्ध रखते हैं, तो उस स्थिति में समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आय के वितरण में अवश्य परिवर्तन होंगे। किन्तु लोक ऋण के भार का अनुमान लगाते समय, ऋण के उद्देश्यों को भी अवश्य दृष्टिगत रखा जाना चाहिए। यदि किसी ऋण का उपयोग उत्पादन कार्यों (productive purposes) के लिए किया जाता है, तब तो उसकी अदायगी निवेश (investment) के लाभों में से की जा सकती है। परन्तु युद्ध की वित्तीय व्यवस्था के लिए, लिए जाने वाले ऋण फलहीन ऋण (dead weight debt) कहलाते हैं और उनका भुगतान कराधान में वृद्धि करके किया जाता है। स्पष्ट है कि ऊपर के प्रथम उदाहरण में कोई भार नहीं पड़ता। उदाहरण की स्थिति में भी, यह कहा जाता है कि करदाताओं पर कराधान के द्वारा जो भार पड़ता है वह उन लाभों से समाप्त हो जाता है जोकि करदाताओं को बॉण्डों के ब्याज के रूप में प्राप्त होते हैं। परन्तु यहाँ यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि यदि धनी लोग करों के रूप में आनुपातिक दृष्टि (proportionately) से उससे कम अदा करते हैं, जिस अनुपात में कि उन पर लोक प्रतिभूतियाँ विद्यमान होती हैं तो उसका समाज पर प्रत्यक्ष वास्तविक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, डाल्टन का निष्कर्ष है कि आन्तरिक ऋण का सदा ही प्रत्यक्ष वास्तविक भार (direct real burden) पड़ता है क्योंकि सरकारी प्रतिभूतियाँ मुख्यतः धनी लोगों द्वारा ली जाती हैं और “आरोही कराधान (progressive taxation) प्रायः इतना तीव्र आरोही या क्रमवर्ती नहीं होता कि जो धनी लोगों द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों से प्राप्त आय को प्रति सन्तुलित (counter balance) कर सके।” स्पष्ट है कि इस प्रकार समाज के भार में निबल वृद्धि (net increase) होती है और इस मत से हमें भी सहमति व्यक्त करनी ही होगी।

समाज द्वारा सरकारी ऋण का भार एक अन्य प्रकार से भी अनुभव किया जाता है और वह है इस प्रकार की सरकार ऋण की अदायगी के लिए साहसी, उद्यमी, देशभक्त, सक्रिय (active) तथा युवा लोगों पर कर लगाती है, परन्तु इस बढ़े हुए कराधान का लाभ उठाते हैं धनी, निष्क्रिय, बूढ़े तथा आरामतलब किस्म के लोग जो सरकार को दिये गये अपने ऋणों का ब्याज प्राप्त करते हैं।

अन्त में, ऋणों तथा उनके ब्याज के भुगतान के लिए बढ़ाया गया कराधान काम करने तथा बचत करने की इच्छा तथा क्षमता को भी प्रभावित कर सकता है। अतः बात बड़ी महत्वपूर्ण है कि ऋण वापिसी की व्यवस्था ऐसी रीति से की जानी चाहिए कि उत्पादन तथा वितरण पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आन्तरिक ऋण सम्पूर्ण रूप में (as a whole) समाज पर भार अवश्य डालते हैं और यह विश्वास कि आन्तरिक ऋण समाज पर कोई भार नहीं डालते, सैद्धान्तिक रूप से गलत तथा व्यावहारिक रूप में अवास्तविक (unrealistic) है।

## बाह्य अथवा विदेशी ऋण का भार (Burden of External Debt)

नोट

बाह्य अथवा विदेशी ऋण की प्रकृति आन्तरिक अथवा देशी ऋण की प्रकृति से भिन्न होती है किन्तु एक दृष्टि से विदेशी ऋण का भार वैसा है जैसा कि आन्तरिक ऋण का, अर्थात् सरकार को आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार के ऋणों की अदायगी अतिरिक्त कराधान द्वारा करनी होती है। डाल्टन के शब्दों में “एक सामान्य नियम के रूप में, सम्भावना यही रहती है कि आन्तरिक ऋण समाज पर एक अतिरिक्त तथा परोक्ष भार डालेगा, और विदेशी या बाह्य ऋण तो ऐसा करता ही है।”

तथापि एक अन्य दृष्टिकोण से विदेशी ऋण का भार आन्तरिक ऋण के भार से अधिक होता है। कारण यह है कि आन्तरिक ऋण की स्थिति में, मूलधन तथा ब्याज की अदायगी देश के अन्दर ही जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि ऋण और ब्याज की वापिसी तथा कर लगाने की प्रक्रिया में समाज के एक वर्ग से दूसरे वर्ग की ओर को केवल धन का स्थानान्तरण मात्र ही होता है और कभी-कभी तो करदाता और ब्याज प्राप्तकर्ता एक ही होते हैं। किन्तु विदेशी ऋण की स्थिति में, ऋण की वापिसी और ब्याज की अदायगी उन लोगों को ही जाती है जो दूर विदेशों में रहते हैं। अतः विदेशी ऋण के ब्याज की अदायगी से ऋणी देश की निबल आय (net income) कम हो जाती है क्योंकि उस देश की आय का एक भाग विदेशों को स्थानान्तरित हो जाता है। किन्तु आन्तरिक ऋणों के भुगतान के ऐसे कोई प्रभाव नहीं पड़ते। इस प्रकार स्पष्ट है कि विदेशी ऋण देशी ऋण की तुलना में अधिक भार डालते हैं। फिर, विदेशी ऋणों का प्रत्यक्ष द्रव्य भार (direct money burden) धन की उन अदायगियों को कहा जा सकता है जोकि ब्याज तथा मूलधन की वापिसी के लिए करनी होती है किन्तु प्रत्यक्ष वास्तविक भार (direct real burden) उस निबल हानि (net loss) को कहते हैं जोकि इन अदायगियों के कारण ऋणी देश को आर्थिक कल्याण के क्षेत्र में (वस्तुओं व सेवाओं के उपभोग के त्याग के रूप में) उठानी पड़ती है। अतः लोगों पर पड़ने वाला विदेशी ऋण का प्रत्यक्ष वास्तविक भार उस अनुपात के अनुसार भिन्न होगा जिसमें कि समाज के विभिन्न वर्ग सरकारी ऋण की अदायगी के लिए अपना अंशदान देंगे। चूँकि विदेशी ऋणदाताओं को धन की जो अदायगियाँ की जाती हैं वे कराधान द्वारा एकत्र की जाती हैं, अतः यदि कराधान का सापेक्षिक भार धनी लोगों पर अधिक पड़ता है तो सम्पूर्ण रूप में समाज पर प्रत्यक्ष वास्तविक भार की मात्रा उस स्थिति के मुकबले कम होगी जबकि कराधान का सापेक्षिक भार (relative burden) मुख्यतः गरीबों पर पड़ेगा।

इस बात को एक अन्य प्रकार से भी व्यक्त किया जा सकता है। विदेशी ऋणदाता ऋणों के बदले में जो धन प्राप्त करते हैं उनका उपयोग वे वस्तुओं व सेवाओं को खरीदने में करते हैं किन्तु अन्य स्थिति में यह धन ऋणी देश (debtor country) के ही नागरिकों के पास रहता है, अतः ऋणी देश के नागरिक वस्तुओं व सेवाओं की उतनी मात्रा से वंचित हो जाते हैं जितनी मात्रा की ऋणदाता देश (creditor country) के निवासी कर्ज के बदले में प्राप्त धन से खरीदते हैं। अतः वस्तुओं व सेवाओं की जितनी मात्रा से ऋणी देश वंचित हो जाता है वह मात्रा वहाँ के समाज पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष वास्तविक भार की सूचक होती है। यदि वह वंचित मात्रा मुख्यतः धनी लोगों के हिस्से में आती है तो सम्पूर्ण रूप में समाज पर पड़ने वाला प्रत्यक्ष वास्तविक भार उस स्थिति के मुकबले कम होता है जबकि वह वंचित मात्रा मुख्यतः निर्धन लोगों पर पड़ती।

विदेशी ऋण का प्रत्यक्ष वास्तविक भार (direct real burden) उस उद्देश्य या कार्य पर भी निर्भर होता है जिस पर कि वह ऋण खर्च किया जाता है। यदि विदेशी ऋण का उपयोग युद्ध-व्यय की पूर्ति के लिए किया जाता है तो इसे फलहीन ऋण (dead weight debt) कहा जाता है क्योंकि यह व्यय अनुत्पादक प्रकृति का होता है अथवा यह समाज के लिए उत्पादन-वृद्धि में कोई सहायता नहीं करता। यदि विदेशी ऋण अल्पावधि के लिए लिया जाता है तो भावी पीढ़ियाँ (posterity) उसके भार से बच जाती हैं क्योंकि वर्तमान पीढ़ी ही उसका भुगतान कर देती है। परन्तु विदेशी ऋण दीर्घावधि के लिए लिया जाता है तो उसका भार भावी पीढ़ियों पर पड़ता है। यदि विदेशी ऋण उत्पादक कार्यों पर खर्च कर दिये जाते हैं, अर्थात् यदि उन्हें कृषि व उद्योग तथा अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास के लिए मशीनरी, कच्चा माल, तकनीकी जानकारी व अन्य पूँजीगत माल खरीदने जैसे कार्यों में लगा दिया जाता है तो ऋणी देश (debtor country) कुछ सीमा तक विदेशी ऋण के वास्तविक भार को कम करने में समर्थ



**नोट**

हो जाता है। इस स्थिति में, भावी पीढ़ियाँ उत्तराधिकार में केवल विदेशी ऋण के भार को ही प्राप्त नहीं करतीं, बल्कि तीव्र गति से होने वाले आर्थिक विकास के लाभ एवं अतिरिक्त आय को प्राप्त करती हैं जिससे वे वर्षों पुराने विदेशी ऋण को बिना किसी प्रकार का वास्तविक भार अनुभव किये ही चुका देती हैं। एलेक्जेंडर हैमिल्टन (Alexander hamilton) ने, जोकि वाशिंगटन की मन्त्रि-परिषद् में राजकोषीय सचिव थे, विकास के लिए विदेशी पूँजी की आवश्यकता पर भारी जोर दिया था। उन्होंने कहा कि विदेशी पूँजी के विरुद्ध जो आपत्तियाँ उठाई जाती हैं वह तर्कहीन व अबुद्धिमत्तापूर्ण ईर्ष्या का फल है। **उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए विदेशी पूँजी अत्यन्त आवश्यक है। हाँ, यह सत्य है कि विदेशी पूँजी में कुछ खतरे अवश्य हैं जैसे कि विदेशी पूँजी शोषण (exploitation) को जन्म देती है और प्रतियोगिता का गला घोट देती है, परन्तु हैमिल्टन का विश्वास था कि इन खतरों से बचा जा सकता है।**

विदेशी ऋण का प्रत्यक्ष वास्तविक भार कीमतों पर निर्भर होता है जब कीमतें गिरती हैं तो यह बढ़ता है और कीमतों के बढ़ने पर यह घटता है। उदाहरण के लिए, यदि कीमतें गिरती हैं, तो संयुक्त राज्य अमेरिका को 100 डॉलर की अदायगी के लिए अधिक मात्रा में सेवाओं व वस्तुओं का निर्यात करना होगा।

विदेशी ऋण परोक्ष भार (indirect burden) केवल तभी उत्पन्न होता है जबकि समाज की उत्पादन-क्षमता को क्षति पहुँचती है और ऐसा तभी सम्भव होता है जबकि विदेशी ऋण को अनुत्पादक कार्यों में लगा दिया जाता है। इस स्थिति में, विदेशी ऋण समाज के लिए फलहीन ऋण (dead weight debt) बन जाता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उत्पादक कार्यों में लगाये जाने वाले विदेशी ऋण भार नहीं होते। अतः उनको उस समय तक हतोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। जब तक कि वे अर्थव्यवस्था की आर्थिक प्रगति को तेज करने में तथा सम्पूर्ण रूप में समाज के विकास में सहायक हों।

### **16.3 कर्ज बनाम कर (Loans v/s Taxes)**

कभी-कभी सरकार को ऐसी समस्या का सामना करना पड़ता है कि किसी खर्च की पूर्ति वह कर लगाकर करे अथवा कर्ज प्राप्त करके। भारी कराधान से तथा बिना सोच-विचार कर लिए गए उधार से यह भय रहता है कि कहीं वित्तीय ढाँचा ही अस्त-व्यस्त न हो जाए तथा यह सम्पूर्ण रूप में समाज के लिए दुर्भाग्य का कारण न बन जाए। अतः हम इस बात पर विचार करेंगे कि राजस्व प्राप्ति के सम्बन्ध में किस सामान्य सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।

सार्वजनिक ऋण अथवा कर कौन-सा अच्छा साधन है, इस प्रश्न का उत्तर देना जटिल है किन्तु फिर भी इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य महत्वपूर्ण हैं—

- ( 1 ) **चालू व्यय**—चालू व्यय से तात्पर्य पुलिस, नागरिक प्रशासन, शिक्षा तथा चिकित्सा आदि व्यय से है। चालू व्ययों को करों के द्वारा ही पूरा किया जाए क्योंकि चालू व्यय से किसी परिसम्पत्ति का निर्माण नहीं होता है अतः यदि चालू व्यय को ऋणों के द्वारा पूरा किया जाता है तो सार्वजनिक ऋण बढ़ता जायेगा और उसके भुगतान के लिए भारी कर लगाने पड़ेंगे।
- ( 2 ) **संकटकालीन व्यय**—संकटकालीन स्थिति जैसे अकाल, बाढ़, युद्ध से जनता को अपार कष्ट उठाने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में यदि करारोपण का सहारा लिया गया तो देश में आन्तरिक विद्रोह होने की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। अतः ऐसी स्थिति में वित्तीय व्यवस्था करने के लिए ऋणों पर ही निर्भर रहना उचित माना जाता है।
- ( 3 ) **युद्धकालीन व्यय**—युद्धकालीन व्यय दीर्घ आकार का होता है और सरकार को वित्तीय व्यवस्था करने के लिए कर एवं ऋण दोनों पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि किसी एक साधन से अपार मात्रा में धन प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है।

नोट

- (4) **पूँजीगत व्यय**—पूँजीगत व्यय से स्थायी परिसम्पत्ति का निर्माण होता है जैसे रेल, सड़कें, सिंचाई के साधन आदि। पूँजीगत व्यय बड़ी राशि में होता है और इसका लाभ भी भावी पीढ़ी को ही मिलता है। अतः पूँजीगत व्यय को ऋणों से पूरा करना चाहिए ताकि भावी पीढ़ी ही उस भार को सहे। परन्तु आधुनिक मत यह है कि पूँजीगत व्यय जिसे विकास व्यय भी कहते हैं, करों के द्वारा ही पूरा हो।
- (5) **आर्थिक विकास**—देश में आर्थिक विकास के लिए अनेक प्रकार की योजनाओं को क्रियान्वित करना पड़ता है। इन योजनाओं पर बहुत बड़ी राशि में धन व्यय होता है तथा यह धनराशि केवल करों से प्राप्त नहीं की जा सकती। इसलिए सरकार को ऋण लेना अनिवार्य हो जाता है।
- (6) **लोकोपयोगी सेवाएँ**—अविकसित देशों में सरकार को अनेक प्रकार की कल्याणकारी सेवाएँ सम्पन्न करनी पड़ती हैं जैसे परिवहन, डाक एवं तार आदि। इन सेवाओं को सम्पन्न करने के लिए काफी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति केवल करों से नहीं की जा सकती है, अतः ऋण लेने पड़ते हैं।

#### 16.4 कर तथा कर्ज में अन्तर (Difference between Taxes and Loans)

- (1) कराने वाला तो चालू आय (current income) पर भार है किन्तु उधार व्यय करने की भावी शक्ति में कटौती को प्रकट करता है।
- (2) कर वार्षिक आय में से दिए जाते हैं और उसका सम्बन्ध वर्तमान उपभोगों की कटौती से होता है किन्तु कर्ज बचतों में से दिये जाते हैं और गैर-सरकारी क्षेत्रों में उत्पादन के लिए उपलब्ध निधियों (funds) को कम कर देते हैं।
- (3) कर एक अनिवार्य अंशदान होता है किन्तु ऋण आमतौर पर ऐच्छिक ही होता है। कर का दबाव तत्काल प्रभावी होता है किन्तु कर्ज का दबाव (pressure) भविष्य पर पड़ता है।
- (4) भारी करों का भार, हो सकता है कि समन्यायपूर्ण न हो, किन्तु कर्जों का बोझ दीर्घकाल में फैलकर समन्यायपूर्ण बन जाता है।
- (5) कर लोगों की अन्धाधुन्ध खर्च करने की प्रवृत्ति पर रोक लगाते हैं किन्तु कर्ज लोगों को भविष्य में आय बढ़ने की आशा प्रदान करते हैं और यह आशा वर्तमान में व्यक्ति को अपव्ययी बना सकती है।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि कर्जों की वित्तीय व्यवस्था को एकदम से अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। वास्तव में बात तो यह है कि कराने वाला और ऋण दोनों को न्यायोचित रूप से संयुक्त कर दिया जाना चाहिए। एक अच्छी कर-पद्धति में काफी लोचशीलता पाई जाती है। अतः उचित यही है कि सरकारी आय में वृद्धि कराने के माध्यम से ही की जाए। किन्तु जब कराने की वृद्धि अपनी सीमा पर पहुँचे, तब सरकारी खर्च की वित्तीय व्यवस्था के लिए कर्जों का आश्रय लिया जाना चाहिए।



टास्क कर तथा कर्ज में क्या अंतर है?

**अनार्थिक कार्यों पर किये जाने वाले असाधारण व्यय की वित्तीय व्यवस्था के नियम संक्षेप में निम्न प्रकार हैं—**

- (1) जहाँ तक भी सम्भव तथा व्यावहारिक हो, चालू व्यय की पूर्ति वार्षिक प्राप्तियों में ही की जानी चाहिए और व्यय में वृद्धि हो जाए तो उसके साथ-साथ कराने में भी वृद्धि कर दी जानी चाहिए।
- (2) यदि कभी बड़ी मात्रा में अनावर्ती व्यय (non recurring) किया जाता हो तो उसकी वित्तीय व्यवस्था उधार द्वारा की जानी चाहिए। ऐसा करने से प्रचलित कर-प्रणाली के अस्त-व्यस्त होने की सम्भावना नहीं रहेगी।

## नोट

- (3) किन्तु जब यह सम्भावना हो कि असाधारण व्यय कई वर्षों तक चलेगा तो उसकी पूर्ति के लिए करों के ढाँचे में ही हेर-फेर किया जाना चाहिए।
- (4) यह सिद्धान्त वहाँ कार्य नहीं करता जहाँ कि : (i) बड़े करों का समन्यायपूर्ण वितरण न हो, (ii) विभिन्न करों की उत्पादकता अत्यधिक बढ़ानी पड़ जाए, अथवा (iii) जहाँ भारी कराधान राजनैतिक दृष्टि से अनुपयुक्त हों। इन परिस्थितियों में से किसी में भी, कराधान के साथ-साथ ऋण का भी आश्रय लिया जाना चाहिए।

#### 16.4.1 विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था में करों व कर्जों का योगदान

##### (Role of Taxes and Loans in Financing Development Plans)

अधिकांश अल्प-विकसित देशों को अपनी विकास योजनाओं के लिए धन की समस्या का सामना करना होता है। समस्या यह है कि विकास योजनाओं के लिए वित्त की व्यवस्था कराधान से की जाए अथवा कर्जों से।

अल्प-विकसित देशों में आमतौर पर भारी गरीबी पाई जाती है, प्रति व्यक्ति आय बहुत कम होती है, धन का वितरण असमान होता है, लोगों का जीवन-स्तर अत्यन्त नीचा होता है और लोगों की करदेय क्षमता कम होती है। इस स्थिति में, ऐसे देशों में विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए अतिरिक्त कराधान का क्षेत्र भी सीमित ही होता है। भारी कराधान चूँकि उपभोग को कम करता है और उत्पादन की प्रेरणाओं को हतोत्साहित करता है, अतः ऐसे देशों में यह विकास के उद्देश्य को भी क्षतिग्रस्त कर देता है। इसके अतिरिक्त, यह भी हो सकता है कि कुछ परियोजनाएँ इतनी खर्चीली हों कि व्यय की पूर्ति कराधान द्वारा न हो सके। इस स्थिति में, विकास परियोजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए आन्तरिक व बाह्य स्रोतों से ऋण लिए जाने चाहिए। चूँकि अल्प-विकसित देशों की आन्तरिक उधार लेने की क्षमता काफी गिरी हुई होती है, अतः बाह्य लोगों से उधार लेना उनके लिए बड़ा महत्वपूर्ण होता है।

कर्जों द्वारा विकास परियोजनाओं (development projects) की वित्तीय व्यवस्था को इस आधार पर भी उचित बताया जाता है कि परियोजनाएँ उत्पादक होती हैं और उनके लाभों का उपभोग भावी पीढ़ियाँ भी करती हैं। अतः उनका बोझ यदि भावी सन्तति पर पड़ भी जाए तो इसमें कोई बुरी बात नहीं है। ऐसे कर्जों की अदायगी उस समय की जा सकती है जबकि ये परियोजनाएँ उत्पादन आरम्भ कर देती हैं। किन्तु इस स्थिति में भी दीर्घकालीन ऋणों को ही प्रमुखता दी जानी चाहिए, क्योंकि अल्पकालीन ऋण तो ऋण न रहकर एक प्रकार से कराधान का कुछ समय के लिए स्थगन (Postponement) मात्र ही बन जाते हैं।

कर्जों द्वारा विकास परियोजनाओं की वित्तीय व्यवस्था की बात सैद्धान्तिक रूप से तो सही हो सकती है, परन्तु व्यावहारिक रूप से पूर्णतया कर्जों पर ही निर्भर रहने को अबुद्धिमत्तापूर्ण माना जाता है। ऐसे निवेशों (investments) में वित्तीय व्यवस्था के लिए बजट की बेशियों (budget surpluses) का भी उपयोग किया जाना चाहिए। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के लिए इस स्रोत की व्यवस्था की जाती है। यही नहीं, अन्य देश भी इस कार्य के लिए बजट-बेशी का उपयोग करते रहे हैं। अर्थशास्त्रियों का भी यह विश्वास है कि यदि आर्थिक पुनर्निर्माण की वित्तीय व्यवस्था बजट-बेशियों द्वारा नहीं की गई तो विभिन्न देशों की अर्थ-व्यवस्थाओं को भारी क्षति उठानी होगी। इसके अतिरिक्त, मुद्रास्फीति सम्बन्धी स्थितियों पर भी समुचित मात्रा में तभी रोक लगाई जा सकती है जबकि बजट-बेशियों का सहारा लिया जाए, क्योंकि विकास की अवधि में भारी निवेशों के कारण ऐसी बेशियाँ आमतौर पर निर्मित हो जाती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विकास-कार्यक्रमों की वित्तीय व्यवस्था करों व कर्जों; दोनों द्वारा ही की जानी चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कर्ज (loans) विकास-वित्त (development finance) में महत्वपूर्ण ध्यान रखते हैं परन्तु विकास-कार्यक्रमों के एक भाग की वित्तीय व्यवस्था निश्चित रूप से बजट-बेशियों द्वारा ही की जानी चाहिए। इससे समाज में चालू उपभोग पर इससे अधिक वास्तविक भार (real burden) नहीं पड़ेगा जितना कि उतनी ही मात्रा के सरकारी उधार से पड़ेगा।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. जब लोक ऋण के माध्यम से लोगों से रुपया लिया जाता है तो लोगों को अपने ..... में परिवर्तन करना होता है।
2. सरकारी प्रतिभूतियों के खरीदार अधिकांशतः ..... वर्ग के लोग होते हैं।
3. बाह्य ऋण की प्रकृति ..... ऋण की प्रकृति से भिन्न होती है।
4. कर एक अनिवार्य अंशदान होता है किंतु ऋण आमतौर पर ..... होता है।
5. अल्प-विकसित देशों में आमतौर पर भारी ..... पाई जाती है।

## 16.5 लोक ऋण की व्यवस्था (Public Debt Management)

लोक ऋण की व्यवस्था के लक्ष्य से आशय है कि सरकार द्वारा कर्ज लेने तथा उनकी वापसी की रीतियों का देश की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। इसके विपरीत, इन रीतियों (methods) से आर्थिक स्थिरता को बनाये रखने में मदद मिलनी चाहिए। अन्य शब्दों में सरकार द्वारा कर लेने तथा उसे वापिस करने का ढंग ऐसा होना चाहिए कि उससे अर्थव्यवस्था (economy) पर मुद्रास्फीति अथवा मुद्राअवस्फीति सम्बन्धी प्रभाव कम पड़े और सरकार को उसकी आवश्यकता हेतु धन प्राप्त हो जाए। अतः उन सब रीतियों या तरीकों को लोक ऋण व्यवस्था में सम्मिलित किया जाता है जोकि उधार लेने तथा उसको वापिस करने की प्रक्रिया के द्वारा इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार द्वारा अपनाये जाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि सरकार अपने सार्वजनिक ऋण को कम करती है तो उसके मुद्रास्फीति सम्बन्धी (inflationary) अथवा मुद्राअवस्फीति सम्बन्धी (deflationary) प्रभाव पड़ सकते हैं। यदि सरकार सार्वजनिक ऋण की वापसी घाटे की वित्त व्यवस्था (deficit financing) या पिछली बचतों द्वारा करती है तो इसके प्रभाव मुद्रास्फीतिजनक होते हैं। यदि बैंकों का ऋण वापिस करने के लिए करों में वृद्धि की जाती है तो उसके प्रभाव मुद्राअवस्फीतिजनक होते हैं। इन परिस्थितियों में लोक ऋण की व्यवस्था का योगदान यह होता है कि ऐसे तरीके अपनाये जाएँ कि उनसे न तो मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो और न मुद्राअवस्फीति की। अतः मुद्रास्फीति (inflation) के दिनों में सरकार ब्याज की दर बढ़ाकर अपने ऋण की मात्रा में वृद्धि कर देती है और मुद्रा अवस्फीति (deflation) की अवधि में इससे उल्टा करती है। यही नहीं, करों के रूप में एकत्रित बजट बेशियों का उपयोग मुद्राअवस्फीति के दिनों में ऋण-वापसी के लिए किया जा सकता है और मुद्रा-स्फीति के दिनों में अतिरिक्त कर लगाये जा सकते हैं। ये उपाय आर्थिक अस्थिरता उत्पन्न करने की बजाय आर्थिक स्थिरता लाते हैं।

### 16.5.1 परिभाषा तथा महत्व (Definition and Significance)

**लोक ऋण की व्यवस्था का सम्बन्ध** ऋण के सम्बन्ध में किये जाने वाले कुछ ऐसे निर्णयों से होता है कि जारी किये जाने वाले लोक ऋण का स्वरूप क्या हो, नये बॉण्ड किन शर्तों पर बेचे जाएँ, परिपक्व ऋणों (maturing debts) का शोधन या वापसी किस प्रकार हो, विभिन्न प्रकार के लोक ऋण किस अनुपात में जारी किये जाएँ, ऋणों के परिपक्व होने का प्रतिरूप क्या हो तथा ऋणों का स्वामित्व आदि। संक्षेप में इसका सम्बन्ध लोक ऋणों के ढाँचे सम्बन्धी विशेषताओं के निर्धारण से है। कुछ लोगों का यह कहना है कि लोक ऋण को कम नहीं किया जाना चाहिए और ब्याज की अदायगी या तो कर-प्राप्तियों में से कर दी जानी चाहिए अथवा नये नोट जारी करके। साथ ही, परिपक्व तिथि पर ऋणों की वापसी नई प्रतिभूतियाँ या ऋण-पत्र जारी करके कर दी जानी चाहिए। किन्तु कुछ अन्य लोगों का यह कहना है कि लोक ऋण जैसे ही परिपक्व (mature) हो; इसे कम कर दिया जाना चाहिए।

## नोट

लोक ऋण की सुचारु रूप से व्यवस्था करना इसलिए अतयन्त महत्वपूर्ण होता है क्योंकि अर्थव्यवस्था के संचालन पर लोक ऋणों के आकार में होने वाले परिवर्तनों के महत्वपूर्ण आर्थिक प्रभाव पड़ते हैं। ये परिवर्तन सरकार की मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों (monetary and fiscal policies) में जान भी डालते हैं और उन्हें अस्त-व्यस्त भी कर सकते हैं।



नोट्स

लोक ऋण नीति, राजकोषीय नीति तथा मौद्रिक नीति एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती हैं और ये सब मिलकर ही आर्थिक नीति का निर्धारण करती हैं। अतः इन सभी को एक दूसरे के साथ ताल-मेल बनाये रखते हुए कार्यशील होना चाहिए।

## 16.6 लोक ऋण की व्यवस्था के सिद्धान्त (Principles of Public Debt Management)

लोक ऋण की व्यवस्था के अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

### (1) लोक ऋण की ब्याज-लागत न्यूनतम होनी चाहिए

**(The Interest Cost of Servicing Public Debts must be Minimised)**

इस सिद्धान्त के अनुसार, सरकार इस स्थिति में होनी चाहिए कि सार्वजनिक ऋण ले सके तथा उन्हें वापिस कर सके परन्तु यह सब कार्य न्यूनतम ब्याज-लागत पर होना चाहिए। यही लोक ऋण की व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होना चाहिए क्योंकि ब्याज की अदायगी के लिए सरकार को या तो अतिरिक्त कर लगाने होते हैं अथवा चालू करों की दरों में वृद्धि करनी होती है। यदि ऋणों की ब्याज-लागत न्यूनतम होती है तो सरकार को थोड़ी मात्रा में अतिरिक्त कर लगाने होते हैं अन्यथा इससे उल्टा होता है और यदि थोड़ी मात्रा में कर लगाये जाते हैं तो विभिन्न आर्थिक प्रेरणाओं पर अर्थात् अधिक काम करने तथा अधिक बचत करने की इच्छा पर उनके प्रतिकूल प्रभाव भी कम ही पड़ते हैं।

लोक ऋणों की ब्याज-लागत उस स्थिति में न्यूनतम रखी जा सकती है जबकि देश के केन्द्रीय बैंक को इस बात के लिए प्रेरित किया जा सके कि वह अपनी मौद्रिक कार्यवाहियों (monetary operations) के द्वारा अर्थात् बैंक कर नीति आदि के माध्यम से ब्याज की दर को कम रखे। जब बाजार में ब्याज की दरें नीची होती हैं तो सरकार अपने बॉण्ड नीची ब्याज दरों पर जारी करने में समर्थ हो जाती है और इस प्रकार उसे कम ब्याज-लागत पर ऋण मिल जाता है।

परन्तु ऐसी ब्याज-दर की नीति में मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी दबाव उत्पादन होने की सम्भावना रहती है और ऐसा तब तो विशेष रूप से होता है जबकि अर्थव्यवस्था (economy) पहले से ही पूर्ण रोजगार की दशाओं में कार्य कर रही होती है। अतः कम ब्याज वाली ऋण नीति को, जोकि मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी दबाव तथा आर्थिक अस्थिरता उत्पन्न करती है, वांछनीय नहीं माना जा सकता।

### (2) निवेशकर्ताओं की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि

**(Satisfaction of the Needs of Investors)**

कुछ लोगों का यह विचार है कि सरकारी ऋणों का प्रबन्ध ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए कि लोक ऋण-पत्रों की किस्म तथा उनको जारी करने की शर्तों आदि के सम्बन्ध में निवेशकर्ताओं (investors) की इच्छाओं व आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जा सके।

यदि निवेशकर्ताओं की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट न किया जाए तो, लोक ऋण का प्रबन्ध करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि सरकार अपने अल्पकालीन ऋण को दीर्घकालीन ऋण के रूप रखना चाहती है तो दीर्घकालीन ऋण-पत्रों या प्रतिभूतियों (long term securities) पर उसे ऐसी आकर्षक शर्तें प्रस्तुत

## नोट

करनी होंगी जैसे कि ब्याज की ऊँची दरें आदि, अथवा सरकार यह भी कर सकती है कि वह प्रतिभूति या ऋण-पत्र धारकों (security holders) को ऐसी सुविधा प्रदान करे कि वे अपने ऋण-पत्रों को बिना किसी हानि के नकदी में बदल सकें और सरकार द्वारा जारी किये गये नये ऋण-पत्र खरीद सकें। ऐसी स्थिति में लोक ऋणों का सामान्य नकदी रूप न्यू सधिक रूप से पूर्ववत् ही रहता है।

परन्तु जब लोक ऋण के प्रबन्ध के माध्यम से निवेशकर्ताओं की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं किया जाता, तो हो सकता है कि प्रतिभूतियों या ऋण-पत्रों की बिक्री के कारण प्रतिभूति-बाजारों में अस्त-व्यस्तता उत्पन्न हो जाए और बॉण्डों के धारक अपने ऋण-पत्रों को कभी इस कार्य के लिए, कभी उस कार्य के लिए बेचना और नकदी प्राप्त करना आरम्भ कर दें। किन्तु यदि निवेशकर्ताओं के हित (interest) को ऊपर रखा गया तो सरकार के लिए सार्वजनिक ऋण की लागत बढ़ जायेगी। इसलिए कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि लोक ऋण जब परिपक्व हो जाएं तो उन्हें कम कर दिया जाना चाहिए। पर, यदि ऋणों को नई मुद्रा जारी करके चुकाया गया तो उससे मुद्रा-स्फीति उत्पन्न होगी और यदि अतिरिक्त कर लगाकर उसका भुगतान किया गया, तो उससे मुद्रा अवस्फीतिजनक प्रभाव उत्पन्न होंगे। अतः लोक ऋणों की अदायगी के तरीकों में समुचित सन्तुन बनाये रखकर इन दोनों ही स्थितियों से बचा जा सकता है।

### (3) अल्पकालीन ऋण का दीर्घकालीन ऋण में निधिकरण

#### (Funding of Short Term Debt into Long Term Debt)

एक तर्क यह भी दिया जाता है कि लोक ऋणों की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए कि वह अल्पकालीन ऋणों का दीर्घकालीन ऋणों के रूप में निधिकरण करने में अधिकाधिक सहायक हों। (विशेष रूप से अत्याधिक दीर्घावधि वाले ऋणों के रूप में, जैसे कि ब्रिटिश कन्सोल अर्थात् बेमियादी बॉण्ड जो कभी परिपक्व ही नहीं होते)। परन्तु निधिकरण की ये कार्यवाहियाँ (funding operations) इस प्रकार की जानी चाहिए कि जिससे आर्थिक स्थिरता को कोई क्षति न पहुँचे। किन्तु इस नीति के जो लाभ गिनाये गये हैं उनको बहुत अधिक नहीं मानना चाहिए, क्योंकि देश में प्राइवेट अल्पकालीन ऋण विद्यमान रहता है और वह तमाम मौद्रिक व्यवस्था (monetary management) को उलझा देता है।

इस नीति के कारण चूँकि दीर्घकालीन निधियों (long term funds) की माँग बढ़ जाने के कारण दीर्घकालीन ब्याज की दर में वृद्धि होने लगती है, अतः इससे भविष्य का बजट-व्यय भी बढ़ जाता है। इसके साथ, इनके कारण अल्पकालीन निधियों की माँग कम हो जाने के कारण अल्पकालीन ब्याज की दरें गिरने लगती हैं। परन्तु दीर्घकालीन ब्याज की दरों में होने वाली इस अनुचित वृद्धि के कारण गैर-सरकारी निवेश (private investment) की मात्रा तथा ब्याज की घट जाती है जिसके फलस्वरूप सुस्ती (recession) तथा बेराजगारी उत्पन्न हो जाती है। अतः यह आवश्यक है कि निधिकरण की कार्यवाहियाँ ऐसे ढंग से की जाएँ कि दीर्घकालीन ब्याज की दर में ऐसी अनुचित वृद्धि न हो कि जो गैर सरकारी निवेश की मात्रा तथा दर पर प्रतिकूल प्रभाव डाले। किन्तु यदि इस बात की आवश्यकता अनुभव की जाए कि गैर-सरकारी निवेश कम किया जाना चाहिए तो सरकार को अल्पकालीन ऋण का दीर्घकालीन ऋण में निधिकरण कर देना चाहिए।

यदि अल्पकालीन ब्याज की दरें नीची हैं तो उससे इस बात को प्रोत्साहन मिल सकता है कि अल्पकालीन पूँजी ऐसे देशों की ओर प्रवाहित हो जाए जहाँ कि अल्पकालीन ब्याज की दरें ऊँची हों। परन्तु यह देश-हित में नहीं होता। अतः अल्पकालीन ऋणों की दीर्घकालीन ऋणों में निधिकरण ऐसी रीति से किया जाना चाहिए कि वह निवेशकर्ताओं की जरूरतों को पूरा कर सके।

### (4) लोक ऋण नीति का राजकोषीय व मौद्रिक नीति के साथ तालमेल बना रहना चाहिए

#### (Public Debt Policy must be Co-ordinated with Fiscal and Monetary Policy)

आर्थिक स्थिरता बनाये रखने तथा आर्थिक विकास को तीव्र करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोक ऋण नीति का राजकोषीय व मौद्रिक नीति के साथ समन्वय या तालमेल (co-ordination) बना रहे। उदाहरण के लिए, यदि सरकार केन्द्रीय बैंक को इस बात के लिए बाध्य करती है कि नीची दर की ब्याज नीति को लागू करे ताकि

## नोट

लोक ऋण के ब्याज की अदायगी की लागत कम हो सके, तो उससे मुद्रा-स्फीति की दशाएँ उत्पन्न हो सकती हैं और उसके फलस्वरूप आर्थिक अस्थिरता उत्पन्न हो सकती है। अतः लोक ऋण नीति तथा मौद्रिक नीति के बीच समुचित तालमेल रखकर ऐसी आर्थिक अस्थिरता से बचा जा सकता है।

राजकोषीय तथा मौद्रिक नीति के साथ लोक ऋण नीति का संचालन ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए कि ये तीनों ही नीतियाँ आर्थिक स्थिरता तथा आर्थिक प्रगति के लिए अपना योगदान करें। अतः लोक ऋणों की वापिसी, चालू ऋणों की बदली (conversion) और वे शर्तें जिन पर कि नये ऋण-पत्र बेचे जाएँ-सभी को आर्थिक प्रगति तथा स्थिरता के लिए अपना अंशदान करना चाहिए।

### (5) परिपक्व होने पर ऋणों का वितरण तथा ऋण-धारकों की किस्में

#### (Maturity Distribution and Kinds of Debt Holders)

यदि कुल ऋण का एक बड़ा अनुपात अल्पकालीन ऋणों के रूप में है और कुल ऋण का एक बड़ा भाग बैंकों द्वारा रखा गया है तो ऋण के बढ़ी मात्रा में नकद रूप में रहने की सम्भावना रहती है। इससे ऐसे समय में मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी दबाव पड़ सकते हैं जबकि मुद्रा-स्फीति विरोधी नीति को लागू करना वांछनीय हो। इस प्रकार, ऋणों का अत्यधिक नकदीपन (high liquidity) मुद्रा-स्फीति के नियन्त्रण को कठिन बना देता है। ऐसे ऋणों को यदि क्रय भी कर लिया जाए तो वह भी मुद्रा-स्फीति विरोधी उपाय के रूप में अधिक प्रभावी नहीं होगा। व्यक्तियों द्वारा रखे गये अत्यधिक नकदी ऋण का उपयोग मुद्रा-अवस्फीति विरोधी (anti-deflationary) उपाय के रूप में किया जा सकता है। ऐसे ऋण-पत्रों की कीमतें बढ़ाकर तथा लोगों को इस बात के लिए ऋणों को नकदी में बदल ले। इस प्रकार, इन सिद्धान्तों के अध्ययन से स्पष्ट है कि लोक ऋण की व्यवस्था के सभी लक्ष्यों को प्राप्त करना, हो सकता है कि सम्भव न हो।



क्या आप जानते हैं ब्याज की दरों को नीची रखने की नीति से मुद्रा-स्फीति सम्बन्धी दशाएँ उत्पन्न हो सकती हैं जबकि अल्पकालीन ऋण का दीर्घकालीन ऋण में निधिकरण करने की नीति सुस्ती और बेरोजगारी उत्पन्न कर सकती है।

अतः लोक ऋण का प्रबन्ध ऐसे तरीके से किया जाना चाहिए कि उससे आर्थिक लाभ तो अधिक से अधिक प्राप्त हो और आर्थिक हानि कम से कम हो।

## 16.7 लोक ऋण का शोधन या प्रतिदान (Redemption of Public Debt)

ऋण के शोधन (redemption) से तात्पर्य है-ऋण की वापिस अदायगी। आत्म-निर्भर उद्योगों में लगे स्थायी निवेशों को छोड़कर सभी लोक ऋण यथाशीघ्र वापिस होना चाहिए। ऋणों के नियन्त्रण तथा उनके नियमित निस्तारण के विषय में आश्वस्त होने के लिए उनकी अदायगी का प्रावधान (provision) तभी कर दिया जाना चाहिए जबकि वे जारी किये गये हों। सरकार प्रायः अपने ऋणों की अदायगी को स्थगित करने के लिए अवसर ढूँढा करती है। परन्तु होना यह चाहिए कि ऋणों की नियमित अदायगी के विषय में आश्वस्त होने के लिए हर सम्भव सावधानी बरती जाए।

### 16.7.1 ऋण-शोधन के लाभ (Advantages of Debt Redemption)

- (1) यह सरकार को दिवालिया होने से बचाता है।
- (2) यह सरकार के अनाप-शनाप खर्चों को हतोत्साहित करता है।
- (3) इससे ऋणदाताओं का विश्वास सरकार में बना रहता है।
- (4) इससे भविष्य में सरकार के लिए ऋण जारी करना सरल हो जाता है।
- (5) यह ऋण-प्रबन्ध की लागत कम करता है।

नोट

- (6) यदि ऋण जल्दी चुका दिया जाता है तो यह भावी सन्तति को ऋण के भार से बचाता है।
- (7) जब लोक ऋणों का भुगतान किया जाता है, तो वह साधन गैर-सरकारी निवेश की ओर को स्थानान्तरित हो जाते हैं। इस स्थिति में गैर-सरकारी निवेश (private investment) के लिए वातावरण तैयार होता है।
- (8) ऋणों की वापिस अदायगी मुद्रा-अवस्फीति सम्बन्धी उपाय (deflationary measure) के रूप में कार्य कर सकती है।

## 16.8 ऋण-वापिसी की रीतियाँ (Methods of Repayment)

अब हम ऋण-वापिसी के विभिन्न तरीकों की रीतियों का अध्ययन करेंगे। ये रीतियाँ निम्न प्रकार हैं—

### ( 1 ) ऋण नकार (Debt Repudiation)

ऋण-नकार का अर्थ है सरकार द्वारा ऋण की अदायगी से इन्कार करना। सन् 1917 में सोवियत सरकार द्वारा ऐसा किया गया था जबकि उसने जार कालीन ऋणों को अदा करने से मना कर दिया था। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका के कुछ राज्यों ने भी सन् 1861-65 के गृह-युद्ध से पूर्व ऐसा ही किया था जिन्होंने अंग्रेज नागरिकों से लिए गये ऋणों की अदायगी से इन्कार कर दिया था।

जब सरकार ऋण की अदायगी से इन्कार करती है तो सरकार में लोगों तथा बैंकों का विश्वास हिल जाता है। इससे फिर निकट भविष्य में सरकार को नये ऋण जारी करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सरकार के इस पग को बड़ा अन्यायपूर्ण तथा भेदमूलक माना जाता है क्योंकि यह सम्पत्ति के मालिकों के केवल एक वर्ग को ही प्रभावित करता है, अर्थात् केवल उस वर्ग को जोकि लोक ऋण-पत्रों को खरीदता है और अन्य वर्गों को यह अप्रभावित ही छोड़ देता है। परन्तु एक इन्कारी (नकारी) के साथ ही साथ यदि सम्पत्ति के मालिकों को वापिसी से सम्बन्धित सभी करारों से सरकार इन्कार कर देती है तो अवश्य भेद-भाव की बात नहीं होती। यदि ऋण वापिसी के सभी समझौतों या करारों से इन्कार कर दिया जाता है तो उससे सामाजिक क्रान्ति का भय रहता है जिसके प्रभाव समाज के सभी वर्गों के लिए हानिकारक होते हैं।

यदि सरकार विदेशी ऋणों की वापिसी से इन्कार करती है तो इससे उस देश के सामने अनेक गम्भीर कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। विदेशी सरकारें अपने ऋणों को वसूल करने के लिए आर्थिक नाकेबन्दी तथा सैनिक कार्यवाही जैसे पगों का सहारा लेती हैं। इसके अतिरिक्त, यह कोई बुद्धिमानी की बात भी नहीं है कि सरकार द्वारा ऋण-नकार की नीति का अनुसरण किया जाए क्योंकि इसे एक अनैतिक (immoral) तथा बेईमानीपूर्ण पग माना जाता है।

### ( 2 ) ऋण-वापिसी (Refunding)

यदि सरकार अपने चालू ऋणों की अदायगी के लिए नये बॉण्ड जारी करती है तो इसे ऋण-वापिसी कहा जाता है। ऋण वापिसी उस प्रक्रिया का नाम है जिसके द्वारा परिपक्व होने वाले बॉण्डों (maturing bonds) के स्थान पर नये बॉण्ड बदल दिये जाते हैं। कभी-कभी अवधि पूर्ण होने की तिथि या परिपक्व तिथि (maturity date) से पूर्व ऋणों की अदायगी कर दी जाती है। ऐसा तब होता है जबकि ब्याज की दर कम होती है अथवा जब सरकार बाकी ऋणों की परिपक्व तिथि को बदलना चाहती है। परन्तु ऋण-वापिसी का आशय मुख्यतः इसलिए लिया जाता है ताकि ऋण के परिपक्व होने से सम्बन्धित आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। सामान्यतः अल्पकालीन ऋण, जोकि चालू व्यय की पूर्ति के लिए खर्च कर दिये जाते हैं बाद में जनता में दीर्घकालीन ऋणों की बिक्री द्वारा प्राप्त धन से अदा कर दिये जाते हैं ताकि उन अल्पकालीन ऋणों का स्थान दीर्घकालीन ऋण ले सकें।

### ( 3 ) ऋणों का परिवर्तन या बदली (Conversion of Debts)

ऋणों की बदली का अर्थ है पुराने ऋणों का नये ऋणों में परिवर्तन। इस रीति के अन्तर्गत, ऋण की वास्तव में अदायगी नहीं की जाती, बल्कि ऋण का केवल रूप बदल दिया जाता है। ऋण बदली की प्रक्रिया से मतलब होता



## नोट

है ऊँची ब्याज-दर वाले ऋण को कम ब्याज-दर वाले ऋण में परिवर्तित करना। हो सकता है कि सरकार ने जिस समय ऋण लिया था, उस समय ब्याज की दर बहुत ऊँची हो। किन्तु अब जबकि ब्याज की दर गिरी हुई होती है तो सरकार पुराने ऋणों को कम ब्याज वाले नये ऋणों में बदल लेती है ताकि राज्यों पर ऋणों का भार न्यूनतम हो सके। फिर लोक ऋणों पर अपेक्षाकृत नीची ब्याज दर का अर्थ होता है आय का कम असमान वितरण।

किन्तु ऋणों की बदली का कार्य सफलता से तभी सम्पन्न हो सकता है जब कि सरकार की साख (credit) अच्छी हो और उसके पास सामान्य से अधिक स्टॉक हो। इसके लिए लोक ऋण के कुशल प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। इस सम्बन्ध में डाल्टन का मत है कि ऋण-बदली से वस्तुतः ऋण का बोझ कम नहीं होता, क्योंकि ब्याज की दर में होने वाली कमी से बॉण्ड-धारकों की कर देने की सामर्थ्य भी कम हो जाती है जोकि सरकारी आय में कमी का कारण बनती है और सरकारी आय में कमी होने से ऋणों की अदायगी से सरकार की क्षमता घटती है।

ऋण-वापिसी (refunding) तथा ऋण-बदली (conversion) इन दोनों शब्दों के बीच प्रायः कोई भेद नहीं किया जाता और दुर्भाग्य से उन्हें एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता है। ऋण-वापिसी का अर्थ है ऋण की अदायगी का स्थगन (postponement); किन्तु ऋण-बदली का अर्थ होता है ऋण की परिपक्व तिथि के स्थगन के अलावा ब्याज की दरों तथा ऋण सम्बन्धी अन्य बातों की पुनर्व्यवस्था। ऋण-वापिसी तथा ऋण-बदली को किसी भी एक ही कार्यवाही के अन्तर्गत संयुक्त भी किया जा सकता है। इस स्थिति में इसे ऋण-वापिसी भी कहा जा सकता है और ऋण-बदली भी।



टास्क ऋण शोधन के क्या लाभ हैं?

### 16.8.1 ऋणों की वास्तविक अदायगी (Actual Repayment)

ऊपर जिन तीन तरीकों का उल्लेख किया गया है उनका ऋणों की वास्तविक अदायगी से कोई सम्बन्ध नहीं है। लोक ऋण की वास्तविक अदायगी के लिए निम्न उपाय अपनाये जा सकते हैं। यहाँ यह प्रश्न भी उठता है कि ऋण की वापिस अदायगी शनैः शनैः की जाए अथवा तेजी से। किन्तु यह बात तो साधारणतः उधार लेने वाले देश की आय तथा धन पर निर्भर होती है और विशेष रूप से तब जब अधिक ऋण विदेशों से लिया गया हो। किसी देश के पास धन की मात्रा जितनी अधिक होगी और ऋण की मात्रा जितनी कम होगी, उसकी ऋण की अदायगी की गति भी उतनी ही तेज होगी।

**(क) शोधन तिथि (Sinking Fund)**—ऋणों की नियमित अदायगी के लिए एक उपाय, जो आमतौर पर अपनाया जाता है, शोधन-निधि के निर्माण का है, अर्थात् एक ऐसी निधि (fund) का निर्माण जिसमें कि सरकारी आय का एक निश्चित भाग प्रतिवर्ष जमा किया जाता है और उस निधि से अवशिष्ट ऋणों का भुगतान किया जाता है। इस निधि का उपयोग अवशिष्ट या खड़े ऋणों की खरीद के लिए तथा जब उनकी अवधि पूर्ण हो जाए तो उनके अन्तिम भुगतान के लिए किया जाता है। पहले शोधन-निधियों में धन का संचय उस समय तक होता रहता था जब तक कि ऋणों की अवधि पूर्ण न हो जाए। परन्तु आजकल इन निधियों से जैसे ही धन उपलब्ध होता है तुरन्त ही ऋणों का निपटारा करने में उनका उपयोग कर लिया जाता है।

इस सम्बन्ध में डाल्टन का मत था कि शोधन-निधि का निर्माण राजकोष की चालू आय से किया जाना चाहिए, कर्ज (loans) आदि के द्वारा नहीं। जिस शोधन-निधि का निर्माण नये कर्ज लेकर किया जाता है, उसे वास्तव में सच्ची शोधन-निधि कहा ही नहीं जा सकता।

व्यवहार में, शोधन-निधियों में धन का संख्य वर्ष के वर्ष नहीं किया जाता। इसके बजाय चालू आय में से एक निश्चित रकम प्रतिवर्ष निकाल ली जाती है और उससे ऋण के कुछ भाग की अदायगी उसी वर्ष कर दी जाती है। उदाहरण के लिए, भारत सरकार अपने राजस्व-बजट में 5 करोड़ रुपये का वार्षिक प्रावधान ऋणों की अदायगी के लिए करती है।

## नोट

यदि शोधन-निधियों का निर्माण समुचित रूप से किया जाए तो ये ऋणों के नियमित निपटारे का अच्छा साधन बन सकती हैं। परन्तु ऋणों की अदायगी की यह धीमी प्रक्रिया (slow process) है और इसमें भय वह रहता है कि सरकार अपनी वित्तीय कठिनाइयों के समय इन निधियों का उपयोग कहीं अन्य कार्यों के लिए न कर ले।

**(ख) बेशी की आय (Surplus Revenues)**—लोक ऋणों का प्रतिवर्ष शनैः शनैः निपटारा करने के लिए बेशी के बजट (surplus budget) की नीति को भी अपनाया जा सकता है, बजाय इसके कि पहले एक निधि का निर्माण किया जाए और ऋणों की अवधि पूर्ण होने पर फिर उनका भुगतान किया जाए। परन्तु आजकल सरकारी खर्चों में चूँकि तेजी से वृद्धि हो रही है। अतः बेशी के बजट तो बहुत ही कम बनते हैं। इसके अतिरिक्त, मन्दी की अवधि में यदि सरकार बेशी का बजट बनाती है तो उसे सरकार का एक अबुद्धिमत्पूर्ण पग ही माना जायेगा। अतः मन्दी (depression) की अवधि में बेशी के बजट की नीति को लागू नहीं किया जा सकता और इस स्थिति में ऋणों की वापसी अदायगी का कार्य भी नहीं हो सकता।

**(ग) मियादी वार्षिकी (Terminal Annuities)**—सरकार ऐसी मियादी वार्षिकी जारी कर सकती है जिनका एक भाग प्रतिवर्ष एक क्रम संख्या के अनुसार परिपक्व होता रहता है और प्रतिवर्ष उनका भुगतान होता रहता है। क्रम संख्या का निर्धारण या तो प्रारम्भ में ही कर दिया जाता है अथवा लाटरी द्वारा कर लिया जाता है। इस पद्धति में प्रतिवर्ष ऋण तो कम होता ही रहता है, ब्याज का भार भी प्रतिवर्ष उतनी ही मात्रा में कम होता रहता है। इस प्रकार, यह ऋणों को किशतों में वापिस करने की एक रीति है। इस रीति के अनुसार ऋणों का भार प्रतिवर्ष कम होता रहता है और ऋणों का भार प्रतिवर्ष कम होता रहता है और ऋणों की अवधि के पूर्ण होने पर वे पहले ही पूर्ण रूप से निपटाये जा चुके होते हैं।

**(घ) अनावर्ती पूँजी कर (Capital Levy)**—अनावर्ती पूँजी कर सम्पत्ति तथा धन (property and wealth) पर अत्यन्त भारी करों का सूचक होता है। यह एक निश्चित मूल्य से अधिक की पूँजीगत परि-सम्पत्तियों पर केवल एक बार लगाया जाने वाला कर है। अनावर्ती पूँजी कर को युद्ध के एकदम बाद लगाने की वकालत की जाती है ताकि युद्धकालीन अनुत्पादक ऋणों का भुगतान किया जा सके। ये निबल सम्पत्ति पर आरोही या क्रमवर्धी दरों से लगाये जाते हैं।

**पक्ष में तर्क**—अनावर्ती पूँजी को निम्नलिखित तर्कों के आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सकता है—

- (1) युद्ध-कालीन ऋण जहाँ अनुत्पादक होता है वहाँ समाज के लिए फलहीन (dead weight) भी होता है। अतः यह अच्छा समझा जाता है कि कोई विशिष्ट कर अथवा अनावर्ती पूँजी कर लगाकर उस ऋण को एक बार में ही चुका दिया जाए, बजाय इसके कि उन ऋणों के भुगतान के लिए वर्ष के वर्ष निरन्तर अतिरिक्त कर लगाये जाएं।
- (2) अनावर्ती पूँजी कर को इस आधार पर भी न्यायोचित ठहराया जाता है कि जिन लोगों ने युद्ध-काल में भारी मुनाफे कमाये हैं, उन्हें ही बिना किसी प्रकार कष्ट अनुभव किये लोगों को ऋणों से निपटारा करने में अपना अंशदान देना चाहिए।
- (3) युद्ध काल में चूँकि धनिकों के मुकाबले निर्धनों को ही अधिक कष्ट उठाना पड़ता है अतः समता एवं न्याय के सिद्धान्त के अनुसार धनी लोगों को ही लोक ऋण की अदायगी के लिए अपना अंशदान देना चाहिए।
- (4) अनावर्ती पूँजी-कर का प्रभाव मुद्रास्फीति विरोधी होता है क्योंकि वह धनी लोगों के हाथों में से फालतू क्रय-शक्ति ले लेता है।
- (5) यदि युद्ध के बाद मन्दी (depression) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो वास्तविक रूप में लोक ऋण के भार में वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप लोक ऋण-पत्रों के धारकों को काफी लाभ होता है। इस स्थिति में ऋण के पूर्ण निपटारे के लिए अनावर्ती पूँजी कर को लगाना वांछनीय माना जाता है।
- (6) युद्ध-काल में, समाज में आय तथा धन का जो असमान वितरण होता है, अनावर्ती पूँजी-कर उसे घटाने में सहायक होता है। अतः यह आय तथा धन के वितरण को समन्यायपूर्ण बनाता है।

## नोट

- (7) अनावर्ती पूँजी-कर के द्वारा लोक-ऋणों को एकदम वापिस करने से लोगों का इस विषय में बड़ा मानसिक आराम-सा अनुभव होता है कि अब भविष्य में ऋणों की अदायगी के लिए उन पर और अधिक कर नहीं लगेंगे।
- (8) यदि युद्ध काल में लिए गये लोक ऋण को अनावर्ती पूँजी-कर लगाकर एकदम नहीं चुकाया गया, तो फिर उसके लिए वर्ष के वर्ष अतिरिक्त कर लगाने पड़ेंगे जिनका प्रभाव काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की प्रेरणाओं पर अनेक प्रकार से प्रतिकूल रूप में ही पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में डाल्टन का तो यह सुझाव है कि शान्तिकालीन लोक ऋणों की अदायगी के लिए भी अनावर्ती पूँजी-कर लगाया जाना चाहिए। यह कर सामाजिक न्याय की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, यह ऋणों की भी एकदम वापसी को सम्भव बनाता है और भावी सन्तति पर ऋण का कोई बोझ नहीं पड़ने देता। अपनी मुद्रा अवस्फीतिजनक (deflationary) विशेषता के कारण भी यह उपाय बड़ा उपयोगी माना जाता है।

**विपक्ष में तर्क**—किन्तु इस सबके बावजूद, अनावर्ती पूँजी-कर विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं—

1. इस बात का पता लगाना बड़ा कठिन होता है कि युद्ध-काल में संचित की गई सम्पत्ति का वास्तविक एवं न्यायोचित मूल्य कितना है। इस स्थिति में उसमें सम्पत्ति या धन लगना बड़ा कठिन होता है, जिसका कि युद्ध-काल में संचय किया गया है।
  2. यह विदेशों में पूँजी के अन्तःप्रवाह (inflow) में बाधा उत्पन्न करता है जिसका दीर्घकाल में उद्योग व वाणिज्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
  3. ऐसा लगता है कि अनावर्ती पूँजी-कर मानो किफायतशारी या मितव्ययिता का दण्ड है क्योंकि यह कर केवल उन्हीं पर लगाया जाता है जिन्होंने बचत की है और धन का संचय किया है और जिन लोगों ने युद्ध-काल में अनाप-शनाप खर्चे किए, उन्हें इस कर से मुक्त रखा जाता है।
  4. यह कर वित्त प्रशासन में लोगों के विश्वास को हिला सकता है और इससे कर-वंचन (tax-evasion) को बढ़ावा मिल सकता है।
  5. इससे लोगों की काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।
- पर सबके बावजूद यह सच है कि अनावर्ती पूँजी-कर ऋण की अदायगी का एक शीघ्रगामी एवं न्यायपूर्ण उपाय है। किन्तु इसके प्रतिकूल प्रभावों के कारण कुछ लोग ऋण अदायगी के अन्य उपायों को प्रमुखता देते हैं। उदाहरण के लिए, श्रीमती हिक्स का कहना है कि, “इस प्रकार लगाया गया अनावर्ती पूँजी-कर शरीर में किये गये एक बहुत बड़े ऑपरेशन के समान है जो शरीर को या तो समाप्त ही कर देता है अथवा ठीक भी कर देता है; इसकी प्रकृति तथा प्रभाव सामान्य करों के रूप में दी जाने वाली नियमित खुराकों के प्रभावों से बिल्कुल भिन्न होते हैं।”

## विदेशी ऋण की वापिस अदायगी (Repayment of External Debt)

विदेशी ऋणों का शोधन तो केवल तभी होता है जबकि उनकी अदायगी के लिए विदेशी मुद्रा कमाई जाए और विदेशी मुद्रा तब कमाई जा सकती है जबकि आयात के मुकाबले निर्यात-बेशियाँ (export surpluses) उत्पन्न की जाएं। यदि विदेशी ऋणों को ऐसे उद्योगों में निवेश कर दिया जाता है जो निर्यात किये जाने वाले पदार्थों की पूर्ति में वृद्धि करते हैं तब तो विदेशी ऋण बड़ी आसानी से चुका दिये जाते हैं। किन्तु यदि विदेशी ऋणों का उपयोग अनुत्पादक कार्यों के लिए किया जाता है तो निर्यात-बेशी केवल तभी उत्पन्न की जा सकती है जबकि घरेलू या देशी उपभोग में कटौती की जाए। इस स्थिति में लोग विदेशी ऋण का काफी बोझ महसूस करते हैं।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

6. लोक ऋण की ब्याज-लागत न्यूनतम होनी चाहिए।

नोट

7. यदि निवेशकर्ताओं की आवश्यकताओं को संतुष्ट न किया जाए, तो लोक ऋण का प्रबंध करने में कोई कठिनाइयाँ उत्पन्न नहीं हो सकती हैं।
8. आर्थिक स्थिरता बनाये रखने तथा आर्थिक विकास को तीव्र करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोक ऋण नीति का राजकोषीय व मौद्रिक नीति के साथ समन्वय या तालमेल बना रहे।
9. ऋण-नकार का अर्थ है सरकार द्वारा ऋण की अदायगी स्वीकार करना।
10. यदि सरकार अपने चालू ऋणों की अदायगी के लिए नये बॉण्ड जारी करती है तो इसे ऋण-वापिसी कहा जाता है।

## 16.9 सार्वजनिक ऋणों से लाभ एवं हानियाँ (Advantages and Disadvantages of the Public Debt)

### सार्वजनिक ऋणों से लाभ

सार्वजनिक ऋणों से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

- (1) **धनोत्पत्ति में वृद्धि**—सार्वजनिक ऋणों से देश के उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है, उत्पादन बढ़ता है, राष्ट्रीय आय बढ़ती है जिससे देश के नागरिकों का जीवन-स्तर ऊंचा होता है।
- (2) **अनुकूल भुगतान सन्तुलन**—ऋण लेने से व्यापार एवं भुगतान सन्तुलन पक्ष में हो जाते हैं तथा विदेशी विनिमय की समस्या हल हो जाती है।
- (3) **आर्थिक विकास**—सार्वजनिक ऋणों द्वारा अविकसित देश अपना आर्थिक विकास करने में समर्थ हो जाते हैं।
- (4) **प्राकृतिक विपदाओं पर नियन्त्रण**—प्राकृतिक विपत्तियों को नियन्त्रित करने के लिए सरकार सार्वजनिक ऋणों का सहारा लेती है।
- (5) **सफल युद्ध संचालन**—वर्तमान युग में युद्ध बहुत खर्चीले हो गये हैं। अतः युद्ध संचालन के लिए ऋण लेना आवश्यक है।
- (6) **पारस्परिक सद्भावना**—ऋणों द्वारा साधनों का सम्मान व समुचित वितरण होता है जिससे पारस्परिक सद्भावना एवं सहयोग बढ़ता है।
- (7) **सुरक्षित विनियोग**—सार्वजनिक ऋण विनियोग के सुरक्षित साधन हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति इसी में धन का विनियोग करना लाभप्रद मानता है।
- (8) **सार्वजनिक कार्य**—सार्वजनिक ऋणों की सहायता से सरकार द्वारा सार्वजनिक कार्य तथा योजनायें जैसे—सड़कें बनवाना, जल-विद्युत, नहरें, पुल आदि कार्यान्वित की जा सकती हैं।
- (9) **गैर-आर्थिक लाभ**—सार्वजनिक ऋणों से ऋण देने वाले और ऋण लेने वाले देशों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं।

### सार्वजनिक ऋणों से हानियाँ

- (1) **देश के साधनों का शोषण**—सार्वजनिक ऋण लेते समय ऐसी शर्तें रखी जाती हैं कि जिन उद्योगों के लिए ऋण का उपयोग किया जायेगा उन पर ऋणदाता का देश पर आंशिक नियन्त्रण रहेगा। इससे देश के साधनों का ऋणदाता देश के हित में शोषण होने लगता है और बहुत-सा धन विदेशों को ब्याज के रूप में चला जाता है।
- (2) **सरकार के दिवालिया होने का डर**—यदि सरकार को सरलता से ऋण प्राप्त हो जाता है तो यह भय रहता है कि सरकार कहीं इतना अधिक ऋण प्राप्त न कर ले कि उसका भुगतान करना ही असम्भव हो जाए।

**नोट**

- (3) **अपव्यय की प्रवृत्ति**—जब सार्वजनिक ऋण, आसानी से प्राप्त होने लगते हैं तो उनके अपव्यय का भय बना रहता है।
- (4) **राजनैतिक दबाव**—ऋणदाता देश अपने नागरिकों की पूँजी की रक्षा के लिए ऋणी देश की नीतियों में हस्तक्षेप करने लगता है और ऋणी देश अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता खो देते हैं।
- (5) **संकट**—सार्वजनिक ऋणों से राजनैतिक मतभेद तथा युद्ध जैसे संकट भी उत्पन्न होने का डर रहता है।
- (6) **जनता का भार**—जब ऋण अनुत्पादक कार्यों के हेतु लिए जाते हैं तो इसका भुगतान करने के लिए जनता पर कर भार बढ़ा दिया जाता है।
- (7) **आर्थिक पिछड़ापन**—विदेशी ऋण देश की अर्थव्यवस्था को कमजोर बना देते हैं और देश अपने आर्थिक विकास के लिए दूसरों पर निर्भर रहने लगता है।

### 16.10 सार्वजनिक ऋण तथा आर्थिक विकास (Public Debt and Economic Development)

सार्वजनिक ऋण तथा आर्थिक विकास के परस्पर संबंध के कई पहलू हैं—

**1. वित्तीय ढाँचे का विकास (Development of Financial System)**—आर्थिक विकास के साथ मुद्रा और साख की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है, जिसके दो कारण हैं। पहला, आर्थिक गतिविधियों में बढ़ती तथा मुद्राकृत गतिविधियों के अनुपात में वृद्धि। दूसरा, इस बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति के लिए सरकारी उधार देयताओं में वृद्धि करना अनिवार्य रहता है। इसका कारण यह है कि अर्थव्यवस्था में वित्तीय लेन-देन के सभी करार करेंसी की मात्राओं में होते हैं। करेंसी समस्त वित्तीय ढाँचे की बुनियाद का काम देती है; तथा सामान्यतः करेंसी की उपलब्धि बढ़ाने के लिए सरकार को उधार लेना पड़ता है (विशेषकर केंद्रीय बैंक से)।

यहाँ पर यह तथ्य स्मरणीय है कि यदि सरकार उधार लेने में लापरवाही बरते तो उससे अर्थव्यवस्था का वित्तीय ढाँचा लाभान्वित होने के स्थान पर क्षतिग्रस्त हो सकता है।

**2. बचत तथा पूँजी-निर्माण (Saving and Capital Formation)**—हर अर्थव्यवस्था को अपनी उत्पादन क्षमता बनाए रखने के लिए बचत और निवेश की आवश्यकता होती है। एक अल्पविकसित देश की ये आवश्यकताएँ और भी तीव्रतम होती हैं, क्योंकि उसमें पूँजी का अभाव होता है। परंतु ऐसी अर्थव्यवस्था को बचत और पूँजी निर्माण में सामान्य से अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। प्रति व्यक्ति आय के कम होने के कारण तथा गरीब लोगों की संख्या अधिक होने के कारण इसकी बचत क्षमता काफी कम होती है। इसलिए इस कमी को पूरा करने के लिए सरकार से कुछ प्रभावी कदमों की अपेक्षा की जाती है। सरकार यदि अपनी राजस्व प्राप्तियों से पर्याप्त बचत तथा पूँजी निवेश करने में असमर्थ हो तो उधार लेकर उन मदों पर व्यय कर सकती है जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से बचत, निवेश तथा अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करती हो।

कुछ दशाओं में सरकार द्वारा उधार लेकर पूँजी निवेश करने की नीति के परिणाम संदिग्ध भी हो सकते हैं। उदाहरणार्थ जब सरकार बाजार से उधार लेकर पूँजी-निर्माण के कार्यों में लगाती है, तो निवेश संसाधन निजी क्षेत्र से सार्वजनिक क्षेत्र में हस्तांतरित हो जाते हैं। इस कारण निजी क्षेत्र में निवेश की दर घट सकती है तथा देश के सकल निवेश पर पड़ने वाला प्रभाव अनिश्चित हो जाता है। इसी प्रकार, जब सरकार केन्द्रीय बैंक से उधार लेती है, तो इससे कीमतें बढ़ जाती हैं जिससे वित्तीय साधनों की उपलब्धि क्रयशक्ति घट जाती है। सरकार की इस क्रिया से निजी क्षेत्र अपनी वास्तविक बचत बढ़ाने को बाध्य हो जाता है तथा यह अतिरिक्त वास्तविक बचत सरकार के हाथ में आ जाती है।

सार्वजनिक ऋण अर्थव्यवस्था के निवेश संसाधनों के पुनरावंटन के द्वारा भी आर्थिक विकास में सहायक हो सकता है। आशा यह की जाती है कि सरकार वाणिज्यिक लाभ को महत्व न देते हुए अपने निवेश-निर्णय इस प्रकार लेगी जिससे देश की दीर्घकालीन उत्पादन-क्षमता में समुचित वृद्धि हो। उदाहरणार्थ सरकार अवसंरचनात्मक सुविधाओं

## नोट

(infrastructural facilities) के विकास हेतु निवेश करेगी, क्योंकि वाणिज्यिक दृष्टि से लाभकारी न होते हुए भी निवेश से अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी होती है। इसके विपरीत निजी क्षेत्र से यही अपेक्षा की जा सकती है कि इसकी निवेश गतिविधियाँ वाणिज्यिक लाभ की संभाविता से प्रभावित होंगी, जिससे अर्थव्यवस्था के कई आधारभूत सुविधाओं के वंचित रह जाने का भय रहेगा।

उपर्युक्त विवेचन के संदर्भ में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि यदि सरकार सार्वजनिक उधार द्वारा प्राप्त राशियों को उपभोग व्यय अथवा अन्य अनुत्पादक मदों पर लगा देती है, तो इससे आर्थिक विकास को मिलने वाले प्रोत्साहन की आशा करना निरर्थक होगा।



**नोट्स** जहाँ तक सार्वजनिक उधार से लोक कल्याण की योजनाओं के वित्त पोषण की बात है, इस नीति को अपनाया जाना ही एक विवादाग्रस्त विषय है। कई लोगों का यह मत है कि लोक कल्याण के लिए सरकार को वित्त पोषण उधार लेकर नहीं, बल्कि कर तथा कर-भिन्न राजस्व में वृद्धि द्वारा अथवा अपने अनावश्यक व्यय में कटौती द्वारा करना चाहिए।

### 16.11 मुद्रा-स्फीति (Inflation)

1. मुद्रा स्फीति अथवा कीमतों में वृद्धि तथा सार्वजनिक ऋण में एक गहरा संबंध है। परंतु एक ऋण लेती सरकार यह दर्शाने की चेष्टा करती है कि उसकी इस गतिविधि के कारण कीमतों में वृद्धि होने का कोई भय नहीं है। इस दावे की व्याख्या निम्न प्रकार से दी जाती है। जब सरकार निवेश व्यय के लिए उधार लेती है, तो उसका यह कथन रहता है कि इससे समग्र माँग में निबल-वृद्धि नहीं होती, केवल व्यय निजी क्षेत्र के स्थान पर सार्वजनिक क्षेत्र के हाथों में जाता है। सरकार यह दावा उस समय भी करती है जब यह सार्वजनिक ऋण द्वारा संयोजित साधनों को निवेश मदों में न लगाकर उन्हें अपने उपभोग के लिए व्यय कर रही हो। सरकार का यह तर्क रहता है कि इस दशा में भी समग्र माँग में कोई निबल वृद्धि नहीं होती, तथा इस कारण कीमतों पर भी कोई दबाव नहीं पड़ता।

2. उपर्युक्त तर्क के दोनों घटक भ्रामक हैं। यथार्थ यह है कि सरकार के घाटे के बजट के कारण समग्र माँग में भी बढ़ोत्तरी होती है, तथा संसाधनों के आबंटन में भी इस प्रकार का परिवर्तन आता है जिससे पूर्ति-प्रवाह स्थगित होते हैं। स्पष्ट है कि इन दोनों घटकों द्वारा कीमतों में वृद्धि की प्रवृत्ति सक्षम होती है। हमारे इस कथन की व्याख्या निम्नलिखित है—

(क) सरकारी निवेश बहुधा उपभोग वस्तुओं के उत्पादन के लिए न होकर पूँजी-वस्तुओं के उद्योगों में तथा अवसंरचनात्मक सुविधाओं के मुहैया करने में आता है। आर्थिक विकास में दीर्घकालीन बढ़ोतरी सुनिश्चित करने के लिए ऐसा करना अति उचित तथा लाभकारी है। परंतु कीमतों में वृद्धि के दृष्टिकोण से यह नीति विवादास्पद है। इस प्रकार के निवेश व्यय से लोगों की मौद्रिक आय तथा माँग में तो एकदम वृद्धि हो जाती है, परंतु इस माँग की तुष्टि के लिए वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति बढ़ने में काफी समय लग जाता है। स्पष्ट है कि माँग और पूर्ति में इस प्रकार का संतुलन आने के कारण कीमतों पर दबाव बढ़ता है।

(ख) जब सरकारी उधार केन्द्रीय बैंक से लिया गया हो, तो करेंसी की प्रचलित राशि उधार में निबल वृद्धि के बराबर बढ़ जाती है। यही स्थिति घाटे के बजट को 'रोकड़ शेष' में निबल कमी के द्वारा पूरा करने पर भी लागू होती है। करेंसी की प्रचलित राशि में वृद्धि से बैंकों की साख सृजन क्षमता में बढ़ोतरी होने के परिणाम-स्वरूप माँग और कीमत वृद्धि प्रोत्साहित होते हैं।

3. जब सरकार वाणिज्यिक बैंकों से उधार लेती है, तो उनकी साख क्षमता में तदनुसार बढ़ोत्तरी होने के फलस्वरूप 'बैंक मुद्रा' (अथवा बैंक साख) की राशि में वृद्धि हो जाती है।

## नोट

4. विभिन्न प्रशासनिक एवं अन्य प्रतिबंधों के कारण सरकारी व्यय उत्पादन सुविधाओं का सृजन करने तथा उनका समुचित उपयोग करने में समय लगता है। इससे सरकारी उत्पादन की औसत लागत बढ़ती है जिसके फलस्वरूप सरकार को सरकारी वस्तुओं (सेवाओं) की कीमतों को बढ़ाना पड़ता है।

### 16.12 अर्थव्यवस्था के नियंत्रण में भूमिका (Role in Regulating the Economy)

सार्वजनिक ऋण अर्थव्यवस्था के नियंत्रण हेतु सरकार के हाथों में एक सक्षम नीति हथियार का काम देती है। इसके माध्यम से निर्दिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु वित्तीय ढाँचे (संस्थाओं, बाजार आदि) को यथोचित ढंग से प्रभावित किया जा सकता है। सार्वजनिक ऋण अर्थव्यवस्था की समग्र साख पूर्ति का एक महत्वपूर्ण घटक होता है। 'तरलता' (liquidity) की समग्र उपलब्धि में इसका काफी बड़ा अनुपात होता है। एक अर्थानुसार 'तरलता' प्रयुक्त-योग्य क्रयशक्ति (readily usable purchasing power) का ही दूसरा नाम है। अतः सार्वजनिक ऋण की मात्रा तथा इसके घटकों में परिवर्तन द्वारा तरलता की मात्रा और इसके प्रवाहों में उपर्युक्त परिवर्तन किए जा सकते हैं। यदि सार्वजनिक ऋण का ब्यौरे-वार अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि अल्पावधिक ऋण दीर्घावधिक ऋणों की तुलना में अधिक तरल होते हैं। अतः सरकार उपर्युक्त जानकारी के आधार पर यह तय कर सकती है कि ऋण नीति का विस्तृत ढाँचा क्या हो, तथा उसके कालावधि ढाँचे में क्या परिवर्तन किया जाए, आदि।

उदाहरणार्थ, अर्थव्यवस्था में स्फीति के चरण में तरलता की उपलब्धता में कमी लाने के उद्देश्यों से अल्पकालीन ऋण के अनुपात में कमी तथा दीर्घकालीन ऋण की राशि में बढ़ोत्तरी करने की नीति होनी चाहिए। इसी प्रकार सरकार द्वारा अपने उधार में बढ़ोत्तरी के साथ व्यय में कमी करने से कीमतों पर दबाव घटने की आशा की जा सकती है। इसके विपरीत जब अर्थव्यवस्था को मंदी का सामना करना पड़ रहा है तो सार्वजनिक ऋण की कुल मात्रा में कमी के साथ-साथ दीर्घकालीन ऋण का अनुपात भी बढ़ा देना चाहिए। ऋण नीति के कार्यान्वयन में केन्द्रीय बैंक के खुले बाजार के संचालन (open market operations) की भी एक मुख्य भूमिका रहती है। इसी प्रकार सार्वजनिक ऋण द्वारा ब्याज की दरें तथा बैंक साख भी प्रभावित होते हैं। इस प्रभाव की जानकारी उपर्युक्त सर्वेक्षण तथा सैद्धांतिक विश्लेषण के द्वारा प्राप्त की जा सकती है तथा इसके आधार पर ऋण नीति में यथोचित संशोधन किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार की ऋण नीति तथा राजकोषीय नीति और केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीति में बुनियादी तालमेल होना चाहिए क्योंकि तीनों नीतियों के लक्ष्यों और उनमें संबंधित गतिविधियों में टकराव की स्थिति उत्पन्न होने की संभावना बड़ी प्रबल होती है। उदाहरणार्थ ऐसे टकराव की एक स्थिति वह है जिसमें केन्द्रीय बैंक मुद्रा और साख की प्रचलित मात्रा घटाना चाहता हो, परंतु सरकार अपना बजटीय घाटा पूरा करने के लिए केन्द्रीय बैंक से उधार लेना चाहती हो। इसी प्रकार यह भी संभव है कि सरकार अपनी ब्याज लागत को कम रखने के लिए अल्पकालीन सार्वजनिक ऋणों के पक्ष में हो, परंतु केन्द्रीय बैंक बाजार में तरलता को घटाने के लिए दीर्घकालीन देयताओं का अनुपात बढ़ाना चाहता हो तथा ब्याज की दर में वृद्धि चाहता हो।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पी प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

11. आर्थिक विकास के साथ मुद्रा और साख की आवश्यकता में क्या परिवर्तन होता है?
 

(अ) बढ़ती जाती है	(ब) घटती जाती है
(स) समान रहती है	(द) उपरोक्त में से कोई नहीं।
12. हर अर्थव्यवस्था को अपनी उत्पादन क्षमता बनाए रखने के लिए किसकी आवश्यकता होती है?
 

(अ) आय और व्यय की	(ब) बचत और निवेश की
(स) निवेश और व्यय की	(द) इनमें से कोई नहीं।

नोट

13. किसमें गहरा संबंध होता है?
- (अ) बचत और निवेश (ब) आय और लाभ
- (स) मुद्रा-स्फीति और सार्वजनिक ऋण (द) उपरोक्त सभी।

### 16.13 सारांश (Summary)

- किसी देश का लोक ऋण उसकी अर्थव्यवस्था को दो प्रकार से प्रभावित करता है—‘आय सम्बन्धी प्रभाव’ (revenue effect) भी डालता है और ‘व्यय सम्बन्धी प्रभाव’ (expenditure effects) भी।
- सरकारी प्रतिभूतियों के खरीदार अधिकांशतः धनी वर्ग के लोग होते हैं। परन्तु उन ऋणों पर ब्याज देने के लिए सरकार जो कर लगाती है, उनका भार निर्धन वर्ग पर भी पड़ता है।
- यदि सरकार उधार लिए हुए धन का उपयोग अनुत्पादक कार्यों के लिए करती है, तो भविष्य में उन ऋणों की अदायगी केवल अतिरिक्त कराधान द्वारा ही की जा सकती है और भविष्य में इस अतिरिक्त कराधान से उपभोग प्रभावित हो सकता है।
- अधिकांश अल्प-विकसित देशों को अपनी विकास योजनाओं के लिए धन की समस्या का सामना करना होता है। समस्या यह है कि विकास योजनाओं के लिए वित्त की व्यवस्था कराधान से की जाए अथवा कर्जों से।
- लोक ऋण की व्यवस्था के लक्ष्य से आशय है कि सरकार द्वारा कर्ज लेने तथा उनकी वापसी की रीतियों का देश की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।
- कुछ लोगों का यह विचार है कि सरकारी ऋणों का प्रबन्ध ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए कि लोक ऋण-पत्रों की किस्म तथा उनको जारी करने की शर्तों आदि के सम्बन्ध में निवेशकर्ताओं (investors) की इच्छाओं व आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जा सके।
- सार्वजनिक ऋणों से देश के उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है, उत्पादन बढ़ता है, राष्ट्रीय आय बढ़ती है जिससे देश के नागरिकों का जीवन-स्तर ऊंचा होता है।
- आर्थिक विकास के साथ मुद्रा और साख की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है, जिसके दो कारण हैं। पहला, आर्थिक गतिविधियों में बढ़ोतरी तथा मुद्राकृत गतिविधियों के अनुपात में वृद्धि। दूसरा, इस बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति के लिए सरकारी उधार देयताओं में वृद्धि करना अनिवार्य रहता है।
- हर अर्थव्यवस्था को अपनी उत्पादन क्षमता बनाए रखने के लिए बचत और निवेश की आवश्यकता होती है।
- मुद्रा स्फीति अथवा कीमतों में वृद्धि तथा सार्वजनिक ऋण में एक गहरा संबंध है।
- सार्वजनिक ऋण अर्थव्यवस्था के नियंत्रण हेतु सरकार के हाथों में एक सक्षम नीति हथियार का काम देती है। इसके माध्यम से निर्दिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु वित्तीय ढाँचे (संस्थाओं, बाजार आदि) को यथोचित ढंग से प्रभावित किया जा सकता है।

### 16.14 शब्दकोश (Keywords)

- राजस्व (Revenue)—आय।
- व्यय (Expenditure)—खर्च।

### 16.15 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अर्थव्यवस्था के नियंत्रण में सार्वजनिक ऋण की क्या भूमिका होती है?
2. सार्वजनिक ऋण तथा आर्थिक विकास पर प्रकाश डालें।



**नोट**

3. सार्वजनिक ऋण के गुण-दोषों का वर्णन करें।
4. ऋण-वापिसी की रीतियों का वर्णन करें।
5. लोक ऋण की व्यवस्था के सिद्धान्त का वर्णन करें।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)**

- |          |          |           |           |
|----------|----------|-----------|-----------|
| 1. बजट   | 2. धनी   | 3. आंतरिक | 4. ऐच्छिक |
| 5. गरीबी | 6. सत्य  | 7. असत्य  | 8. सत्य   |
| 9. असत्य | 10. सत्य | 11. (अ)   | 12. (ब)   |
| 13. (स)। |          |           |           |

**16.16 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)**

---



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
3. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
4. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस-सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
5. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
6. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
7. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## **इकाई-17: लोक व्यय**

### **(Public Expenditure)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 लोक व्यय में वृद्धि के कारण (Reasons for the Growth of Public Expenditure)

17.2 लोक व्यय तथा आर्थिक जीवन (Public Expenditure and Economic Life)

17.3 सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त (Principles of Public Expenditure)

17.4 सारांश (Summary)

17.5 शब्दकोश (Keywords)

17.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

17.7 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- लोक व्यय में वृद्धि के कारण को समझने हेतु।
- लोक व्यय तथा आर्थिक जीवन की जानकारी प्राप्त करने हेतु।
- सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त को भलीभाँति जानने में।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

लोक व्यय उस व्यय को कहते हैं, जो लोक सत्ताओं—अर्थात् केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों के द्वारा या तो नागरिकों की सामूहिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए किया जाता है अथवा उनके आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण में वृद्धि करने के लिए। आजकल सरकारी व्यय की मात्रा, संसार के प्रायः सभी देशों में निरन्तर बढ़ रही है। इसका कारण यही है कि विभिन्न क्षेत्रों तथा मोर्चों पर सरकार तथा अन्य लोक निकायों (Public bodies) के कार्यों का निरन्तर विस्तार हो रहा है। 19वीं शताब्दी में तो सरकारी व्यय के सिद्धान्त को अधिक आवश्यक नहीं माना जाता था क्योंकि उन दिनों सरकार के कार्यों का क्षेत्र बड़ा सीमित था, किन्तु 20वीं शताब्दी में, शिक्षा तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य जैसे सामाजिक मामलों में तथा वाणिज्यिक व औद्योगिक मामलों में जैसे—रेलवे, सिंचाई, बिजली तथा ऐसी ही अन्य प्रयोजनाओं के क्षेत्र में राज्य के कार्यों का अत्यधिक विस्तार हुआ है, अतः उनके कारण सरकारी व्यय में भारी वृद्धि हुई है। सरकारी व्यय की प्रकृति तथा मात्रा के कारण और इस कारण कि यह अनेक प्रकार से देश के

## नोट

आर्थिक जीवन को प्रभावित कर सकता है, इसका महत्त्व काफी बढ़ गया है। उदाहरण के लिए, सरकारी व्यय उत्पादन तथा वितरण के स्तर को और आर्थिक क्रियाओं के सामान्य स्तर को प्रभावित कर सकता है।

**प्राचीन विचारधारा (Classical Views)**

प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक व्यय पर बहुत कम ध्यान दिया था। तत्कालीन राज्य का कार्यक्षेत्र सीमित होने के कारण उन्होंने सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त को आवश्यक नहीं समझा। शास्त्रीय या प्राचीन अर्थशास्त्री व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रता पर जोर देते थे। वे नहीं चाहते थे कि राज्य अर्थव्यवस्था में अनावश्यक हस्तक्षेप करे। यही वह कारण है, जिससे शास्त्रीय अर्थशास्त्री राज्य के कार्यक्षेत्र की सीमित रखना चाहते थे। **जे. बी. से (J. B. Say)** के विचारानुसार—“वित्त की सारी योजनाओं में सर्वोत्तम वह है, जिसमें कम खर्च किया जाये।”<sup>1</sup> एडम स्मिथ का मत था कि राज्य के कार्य न्याय, प्रतिरक्षा और कुछ सार्वजनिक सेवाओं के प्रबन्ध तक ही सीमित रहने चाहिए। एक अमेरिकन आलोचक के मतानुसार “पुराने अंग्रेज लेखकों को व्यय के सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि सरकार के सम्बन्ध में उनका जो सिद्धान्त था, उसका तात्पर्य था सरकारी कार्यों की एक निश्चित सीमा।”<sup>2</sup>

**सर पारनेल** के शब्दों में—“सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने तथा विदेशी आक्रमणों से रक्षा के लिए अति आवश्यक व्यय से अधिक व्यय का प्रत्येक भाग अपव्यय है तथा जनता पर अन्यायपूर्ण तथा अत्याचारपूर्ण भार है।”<sup>3</sup> इस प्रकार प्राचीन अर्थशास्त्री राज्य के कार्यों को सीमित रखना चाहते थे, क्योंकि वे सरकारी कार्यों को प्रायः अनुत्पालक तथा समाज को कोई विशेष लाभ न देने वाले मानते थे।

**आधुनिक विचारधारा (Modern Views)**

आजकल प्राचीन अर्थशास्त्रियों की उपर्युक्त विचारधारा को सही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वर्तमान युग के राज्य प्राचीन युग के राज्यों की भाँति पुलिस राज्य न होकर, कल्याणकारी राज्य हैं। कल्याणकारी राज्य को जनता का अधिक कल्याण-कार्य करना पड़ता है, जिसमें सरकार को सामाजिक कल्याण और आर्थिक विकास के लिए अनेक उद्देश्यों को पूरा करने हेतु भारी मात्रा में व्यय करना पड़ता है। यही कारण है कि वर्तमान राज्यों के कार्यों में पर्याप्त वृद्धि हो गई है। आजकल सार्वजनिक व्यय प्रायः निम्नलिखित कार्यों के लिए किया जाता है—

- (अ) सुरक्षा के लिए,
- (आ) समाज के दलित वर्गों की रक्षा के लिए,
- (इ) समाज के विकास के लिए,
- (ई) सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना के लिए,
- (उ) व्यापार-चक्रों के प्रभावों को कम करने के लिए,
- (ऊ) प्राकृतिक प्रकोपों को दूर करने के लिए,
- (ए) जनोपयोगी सेवाओं के लिए,
- (ऐ) प्रशासनिक सेवाओं के लिए।

- 
1. “The very best of all plans of finance is to spend little.” —J.B. Say.
  2. “The older English workers did not need a theory of expenditure because the theory of government which they held implied a fixed limit to government functions.”  
—Quoted by Hugh Dalton, *op. cit.*, p. 139.
  3. “Every particle of expenditure beyond what necessity absolutely requires for the preservation of social order and for protection against foreign attack it waste and an unjust and oppressive imposition of the public.”  
—Quoted by Adams, *Science of Finance* p. 50.

## 17.1 लोक व्यय में वृद्धि के कारण

### (Reasons for the Growth of Public Expenditure)

(1) **राज्य की क्रियाओं में वृद्धि (Increase in the Activities of the State)**—सरकारें उपभोक्ताओं को निःशुल्क अथवा लागत से कम मूल्य पर जो सेवाएँ उपलब्ध कराती हैं, उनका क्षेत्र अब काफी बढ़ गया है। शिक्षा, जनता का स्वास्थ्य तथा जनता के लिए मनोरंजन की व्यवस्था इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। मकानों तथा चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था वे नये क्षेत्र हैं जिनमें सरकारें प्रविष्ट हो चुकी हैं। इन सेवाओं की व्यवस्था सरकार इस सिद्धान्त को दृष्टिगत रखकर करती है कि लाभ प्राप्तकर्ता अपने धन से इन सेवाओं का जितना उपयोग कर सकते हैं, उनके मुकाबले यदि सरकार इन सेवाओं का अधिक उपभोग करा सके तो वह जनहित में ही होगा।

सरकारों ने रेलों तथा सड़कों जैसे सार्वजनिक निर्माण के कार्यों पर किये जाने वाले खर्चों में इसलिए काफी वृद्धि की है, ताकि लोगों की कठिनाइयाँ कम की जा सकें और बेकार पड़े श्रम तथा साधनों का उपयोग किया जा सके। इस प्रकार का व्यय देश को मन्दी की स्थिति से उबारने की दृष्टि से भी वांछनीय माना जाता है। इस संदर्भ में, यह माना जा सकता है कि वर्तमान समय में राज्य की क्रियाओं में वृद्धि से सम्बन्धित **वैगनर का नियम (Wagner's law)** सार्वलौकिक रूप से सही है। **वैगनर का कहना था कि राज्य के कार्यों में व्यापक एवं गहन वृद्धि (extensive and intensive increase) की एक स्थायी प्रवृत्ति पाई जाती है। राज्य नये-नये कार्यों को निरन्तर अपने हाथ में लेते जा रहे हैं और पुराने कार्यों को और अधिक बड़े पैमाने पर अधिक कुशलता के साथ सम्पन्न कर रहे हैं।** अतः इस बढ़ते हुए कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अधिकाधिक सरकारी व्यय को आश्रय लिया जा रहा है।

(2) **औद्योगिक विकास (Industrial Development)**—औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) से संसार के अधिकांश देशों के केवल औद्योगिक ढाँचे में ही आमूल परिवर्तन नहीं हुआ अपितु उनका राजनैतिक व सामाजिक रूप भी काफी बदल गया है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् आविष्कारों की लम्बी शृंखला के कारण जहाँ उत्पादन की विधियों में भारी परिवर्तन हुए, वहाँ इन परिवर्तनों में राजनैतिक व सामाजिक कारणों ने भी अपना योगदान दिया। औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि के साथ ही साथ लोगों की आय तथा उनका जीवन-स्तर ऊँचा उठा, जनसंख्या के एक बड़े भाग को सहारा मिला और उनमें अपनी नई-नई आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की क्षमता आई। इन सब परिवर्तनों के साथ ही, समस्याओं का जन्म हुआ, जिसके फलस्वरूप श्रम-सम्बन्धों (labour relations), उद्योग-धन्धों के नियमन, उपभोक्ताओं के संरक्षण, धन तथा आय के वितरण और आर्थिक असुरक्षा से सम्बन्धित सरकार के कार्यों व खर्च में वृद्धि हुई।

(3) **सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि**—वर्तमान काल में राज्यों ने सामान्यतया कल्याणकारी राज्यों का रूप धारण कर लिया है और समस्त देश में अपने श्रमिकों को किसी न किसी रूप में सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। सरकारों की यह जिम्मेदारी है कि वे देखें कि उद्यमी श्रमिकों को वास्तविक मजदूरी दे रहे हैं या नहीं तथा उनके लिए पर्याप्त रूप से सामाजिक सुरक्षा प्रदान की गई है या नहीं। इस प्रकार वर्तमान सरकारें अपने नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा जैसे, औद्योगिक श्रमिकों के लिए वृद्धावस्था में पेन्शन, आश्रित लाभ, निःशुल्क शिक्षा, बीमारी में सहायता, दुर्घटना लाभ, चिकित्सा सुविधा आदि पर बड़ी मात्रा में व्यय करती हैं। इसके अलावा कई सरकारों ने गृह-निर्माण में सहायता तथा बेरोजगारी लाभ की योजनाएँ शुरू की हैं। आजकल सरकार अपने नागरिकों के लिए स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने के लिए काफी मात्रा में व्यय करती है। भारतवर्ष में भी सन् 1948 में राज्य अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारियों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं।

(4) **उद्योग-धन्धों तथा व्यापार का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Industries and Trades)**—व्यापार तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण सरकार की ओर से किया जाने वाला एक ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा सरकार जनता के लिए न्यूनाधिक रूप से वाणिज्यिक आधार पर वस्तुएँ सेवाएँ प्रदान करने की व्यवस्था करती है। सरकार ऐसे उत्तरदायित्व को अपने ऊपर कई कारणों से ले सकती है, जैसे एकाधिकारों (monopolies) अथवा अर्द्ध-एकाधिकारों के नियमन की कठिन समस्या के समाधान के लिए, उपभोक्ताओं को घटी कीमतों पर वस्तुएँ तथा

**नोट**

सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए अथवा गैर-सरकारी आर्थिक गतिविधियों की सीमा निर्धारित करने के लिए। इससे धन तथा आय के वितरण और श्रम की दशाओं में भी सुधार की सम्भावना रहती है। परन्तु राष्ट्रीयकरण किये गये उद्योगों की क्षति पूर्ति के भुगतान तथा उन उद्योगों की स्थापना व संचालन के लिए सरकार को भारी मात्रा में व्यय करने पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त, सरकार निजी व्यवसाय तथा व्यापार को भी इसलिए अपने अधिकार में ले सकती है जिससे वह समस्याओं को हल कर सके तथा राजकोष (treasury) के लिए अधिक लाभ कमा सके।

**( 5 ) कृषि विकास (Development of Agriculture)**—किसी देश विशेषकर भारत जैसे विकासशील देश की अर्थव्यवस्था का कृषि विकास उसकी अर्थव्यवस्था के विकास की धुरी होता है। आर्थिक विकास के लिए कृषि तथा गैर-कृषि दोनों क्षेत्रों के विकास करने के लिए सुविधाएँ प्रदान करनी आवश्यक होती हैं क्योंकि दोनों क्षेत्र परस्पर निर्भर करते हैं। उदाहरणार्थ, कृषि आय में वृद्धि होने से औद्योगिक वस्तुओं के उपभोग में वृद्धि हो जाती है जिसके फलस्वरूप औद्योगीकरण को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार कृषि तथा उद्योगों में परस्पर निर्भरता होती है। इस निर्भरता को निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है—कृषि क्षेत्र का कच्चा माल उद्योगों में आगतों (inputs) के रूप में काम में लाया जाता है। इसी प्रकार उद्योगों का निर्गत (output) कृषि क्षेत्र में आगतों के रूप में प्रयोग होता है। इस प्रकार भारत जैसे देश में आर्थिक एवं सामाजिक विकास को द्रुतगति प्रदान करने के लिए कृषि ढाँचे को मजबूत करना जरूरी है। इसलिए विकासशील देश अपने कृषि विकास के लिए बड़ी मात्रा में व्यय कर रहे हैं। सरकार किसानों को कम ब्याज दर पर ऋण प्रदान करना, निर्यातों को अनुदान, कृषिगत वस्तुओं का निर्धारित मूल्य पर क्रय, तटकर सुविधा प्रदान करना इत्यादि सुविधाओं पर व्यय करती है। इसके अतिरिक्त सरकार कृषि अनुसन्धान एवं कृषिगत साधनों के निर्माण पर काफी मात्रा में व्यय करती है।

**( 6 ) कीमतों के बढ़ने की प्रवृत्ति (Rising Trend of Prices)**—संसार के प्रत्येक देश में कीमतों में वृद्धि की जो प्रवृत्ति पाई जाती है, उसके कारण भी सरकारी व्यय बढ़ता नजर आता है। मूल्य-स्तर में वृद्धि होने के साथ ही सरकारें इस बात के लिए बाध्य हो जाती हैं कि वे उन वस्तुओं व सेवाओं के लिए अधिक धन का भुगतान करें जिन्हें कि वे चाहती हैं और सरकारी कर्मचारियों के वेतन तथा महँगाई भत्ते में वृद्धि करें। यह स्थिति सरकारी व्यय का और विस्तार करती है, यद्यपि इस विस्तार से यह आवश्यक नहीं है कि सरकारी क्रियाओं में भी वृद्धि हो। इस प्रकार सरकारी व्यय में जो वृद्धि होती है, वह जितनी वास्तविक होती है, उससे कुछ अधिक ही दिखाई देती है।

**( 7 ) प्रतिरक्षा की समस्या (Problem of Defence)**—इसमें कोई दो मत नहीं हैं कि देश की प्रतिरक्षा की समस्या सरकारी खर्च की वृद्धि का एक प्रमुख कारण बन गई है। कोई देश अपनी प्रतिरक्षा के लिए सेनाओं को शक्तिशाली बनाना चाहता है तो दूसरे केवल आत्मरक्षा के लिए ही ऐसा पग उठाने को विवश हो जाते हैं। युद्ध सम्बन्धी हथियारों के निर्माण तथा सेना के रख-रखाव पर भारी धनराशि व्यय करनी होती है। फिर, युद्ध लड़ने की विधियों में दिन-रात जो परिवर्तन होते रहते हैं उनके कारण भी सेना को नये-नये हथियारों की आवश्यकता होती है। इससे पुनः राज्य पर खर्च का भार बढ़ता है। प्रतिरक्षा व्यय में केवल सैनिकों तथा सैनिक सामग्री का व्यय ही सम्मिलित नहीं होता है बल्कि सैनिकों की पेन्शन तथा युद्ध हेतु लिए गये ऋण पर ब्याज भी शामिल होता है। युद्ध के विज्ञान और कला में इतनी अधिक प्रगति हुई है कि आज के शस्त्र कल पुराने तथा अप्रचलित हो जाते हैं जिससे युद्ध व्यवस्था बड़ी खर्चीली हो गयी है। काफी देश सुरक्षा पर अपनी राष्ट्रीय आय का बड़ी मात्रा में व्यय कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, पाकिस्तान अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग 15 प्रतिशत तथा भारत लगभग 5 प्रतिशत व्यय करते हैं। भारत में यह व्यय 1950-51 में केवल 164.13 करोड़ रु. था जो 1986-87 के बजट में 9728 करोड़ रुपया आँका गया है।

**( 8 ) नगरीकरण या शहरीकरण (Urbanisation)**—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जनसंख्या का बढ़ता हुआ शहरीकरण भी सरकारी खर्च की वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण है। नगरों पर बढ़ती हुई लागत का नियम पूर्णतया लागू होता है। नगर का आकार बढ़ने के साथ ही साथ जल-पूर्ति, यातायात सेवा व उसका नियन्त्रण, पुलिस संरक्षण, स्वास्थ्य तथा सफाई आदि सेवाओं पर किये जाने वाले खर्च की प्रति व्यक्ति लागत भी बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त अस्पतालों, सड़कों, गलियों, रोशनी, खेल के मैदान तथा सामुदायिक हॉल आदि के निर्माण व रख-रखाव के कारण

## नोट

तथा जीवनपयोगी अनिवार्य पदार्थों के वितरण व नियन्त्रण के कारण भी सरकारों पर खर्च का अतिरिक्त भार पड़ता है।

**( 9 ) सरकार के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन (Change in Attitude Towards Government)—**सरकारी खर्च में कुछ वृद्धि इस कारण भी हुई है क्योंकि पिछले वर्षों में सरकार के प्रति सामान्य दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन हुआ है। एक शताब्दी पूर्व तो लोग सरकार के नाम से भी डरते थे और उसे निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शक्ति का प्रतीक समझते थे। किन्तु आज इस सम्बन्ध में सर्वसामान्य दृष्टिकोण यह है कि सामान्य व्यक्ति के लिए अच्छी वस्तु तथा सभी व्यक्तियों के लिए अधिक सुविधापूर्ण जीवन तब तक उपलब्ध नहीं कराया जा सकता, जब तक कि काफी मात्रा में सरकार पर निर्भर न रहा जाये। **सरकार के प्रति दृष्टिकोण में इस परिवर्तन के अनेक कारण हैं**, जिनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण कारणों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

**( अ ) तकनीकी परिवर्तन—**तकनीकी परिवर्तनों के कारण भी परस्पर निर्भरता की भावना में वृद्धि हुई है तथा इस कारण भी अनेक लोग ऐसी शक्तियों के बीच कार्य करने में असमर्थ रहते हैं जो कि उनके नियन्त्रण से पूरी तरह बाहर होती हैं।

**( ब ) जब व्यवसाय तथा उत्पादन की छोटी-छोटी इकाइयाँ हुआ करती थीं—**आर्थिक पद्धति एक स्वयं चलित मशीनरी के रूप में अच्छी प्रकार कार्य करती दिखाई देती थी, वही आर्थिक पद्धति जब एकाधिकारी नियन्त्रण के अधीन दलदल में फँसी हुई तथा अनेक प्रकार से शोषण सी करती हुई दिखाई देती है। इसी के फलस्वरूप सरकार से यह माँग की जाने लगी कि वह व्यावसायिक मन्दी का प्रतिरोध करे तथा अर्द्ध-व्यवसाय को सन्तुलित रखे। कुछ लोग यहाँ तक जोर डालते हैं कि सरकार को आर्थिक स्थिरता बनाये रखने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी चाहिए, परन्तु ऐसा होना तभी सम्भव है जबकि सरकारी खर्च में वृद्धि की जाये।

**( स ) मानव कल्याण—**वर्तमान समय में मानवता की भावना के अधिकाधिक विकास के कारण किसी भी देश में विद्यमान व्यापक गरीबी को बहुत बुरा समझा जाता है और उसको मिटाने के लिए सामूहिक पग उठाने का सुझाव दिया जाता है। इस स्थिति में सरकार का सहयोग अनिवार्य हो जाता है। और सार्वजनिक कल्याण तथा सार्वजनिक निर्माण के कार्यों के लिए उसे भारी व्यय का आशय लेना होता है।

**( द ) आर्थिक व राजनीतिक जटिलताएँ—**यह भी अनुभव किया जाता है कि आजकल राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं की जटिलताएँ बहुत बढ़ गई हैं। अन्य कारणों में भी एक कारण है जो शिक्षा तथा अन्य अनेक ऐसी कल्याणकारी क्रियाओं के लिए बड़ी मात्रा में खर्च की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है जैसे कि चिकित्सा, मकान, पुलिस तथा गृह प्रशासन आदि।

**( 10 ) आर्थिक विकास (Economic Development)—**अल्पविकसित देशों में भी सरकारी व्यय तेजी से बढ़ रहा है। ऐसे देशों में अधिकतर देश अपने यहाँ तीव्र आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को लागू करते हैं। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत परिवहन, संचार तथा विद्युत जैसी मूलभूत आर्थिक सेवाओं की व्यवस्था की जाती है। राज्य के लिए यह आवश्यक होता है कि वह उच्च कोटि के आर्थिक व सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था करे ताकि उद्योग-धन्धे तेजी से विकसित हो सकें। इसके अतिरिक्त अधिकांश आधुनिक सरकारों की यह एक नीति बन गई है कि उत्पादन के प्रयासों में निजी व्यक्तियों की मदद की जाये। कृषकों तथा उद्योगपतियों को उपादान (bounties), कर्ज (loans) तथा सहायक अनुदान (grant-in-aid) देकर वे ऐसा करती हैं। यही नहीं, विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करके भी सरकार द्वारा उनकी सहायता की जाती है जैसे कि तकनीकी मार्ग-दर्शन तथा कच्चे माल आदि की सहायता।

**( 11 ) आर्थिक नियोजन—**सभी देशों ने रूस की आर्थिक नियोजन की सफलता से प्रभावित होकर अपने आर्थिक विकास नियोजित रूप में करने आरम्भ कर दिये हैं। आर्थिक नियोजन में इस प्रकार के प्रयास किये जाते हैं कि उपलब्ध साधनों का इस प्रकार से शोषण किया जाये ताकि चहुँमुखी आर्थिक विकास के साथ लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा उठे तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो। आर्थिक नियोजन के लिए सरकार को बड़ी-बड़ी परियोजनाएँ बनानी पड़ती हैं जिनको पूरा करने के लिए काफी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। देश व विदेशों से ऋण लेने के पश्चात् भी यदि व्यय की पूर्ति नहीं होती है तो घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रबन्ध करना पड़ता है। उदाहरण के लिये, भारत

**नोट**

में अब तक छः पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं और उन पर क्रमशः अधिक व्यय हुआ है। सातवीं योजना में पिछली योजनाओं से कहीं अधिक व्यय की व्यवस्था की गई थी। सातवीं योजना (1985-90) के लिए रखी गई राशि 1984-85 की कीमतों के आधार पर थी। छठी योजना में वास्तविक कुल व्यय 11,000 करोड़ रुपया हुआ है। सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 1,80,000 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। आठवीं योजना 1992-1997 के लिये है।

**( 12 ) जनसंख्या में वृद्धि**—सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण जनसंख्या वृद्धि दर भी है। बढ़ी हुई जनसंख्या के सुख और सुविधाओं के लिए सरकार को काफी मात्रा में व्यय करना पड़ता है।

विगत वर्षों में जनसंख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विगत 45 वर्षों में विश्व की जनसंख्या 155 करोड़ से बढ़कर 415 करोड़ हो गई है। भारत की जनसंख्या 1981 की जनगणना के अनुसार 68.38 करोड़ हो गई है। भारत की आबादी में लगभग 2.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हो रही है। जनसंख्या वृद्धि से न केवल राज्य के प्रशासन के व्यय में वृद्धि होती है बल्कि उनके सुख-सुविधाओं की वृद्धि करने पर राज्य के व्यय में वृद्धि हो जाती है। सरकार को बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, आवास आदि पर काफी मात्रा में व्यय करना पड़ता है।



**नोट्स** 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 1 अरब 21 करोड़ है।

**( 13 ) अन्य कारण—(i) मूल्यों में वृद्धि**—द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् प्रत्येक देश में कीमतों में बहुत वृद्धि हुई है। मूल्य स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप सरकार को पहले की अपेक्षा अधिक व्यय करना पड़ रहा है। एक तो सरकार को स्वयं कई वस्तुएँ एवं सेवाएँ खरीदनी पड़ती हैं तथा द्वितीयतः सरकार उत्पादन के लिए जो भी व्यय का अनुमान लगाती है, कीमतों में वृद्धि होने के कारण सरकार को उस उत्पादन पर पहले की अपेक्षा अधिक खर्च करना पड़ता है।

**(ii) राष्ट्रीय आय एवं जीवन-स्तर में वृद्धि**—पिछले वर्षों में आर्थिक विकास के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप लोगों के जीवन-स्तर में वृद्धि हुई है। सरकार को इस जीवन-स्तर के बढ़ने के साथ-साथ अधिक व्यय करना पड़ रहा है।

**(iii) प्रजातन्त्र का भार**—विश्व में अनेक देशों में प्रजातन्त्रीय सरकार है। इसके लिये सरकार को मुख्य चुनाव एवं मध्यावधि चुनाव कराने पड़ते हैं जिनको सम्पन्न कराने के लिए सरकार को काफी व्यय करना पड़ता है। इसके अलावा मन्त्री एवं अन्य चुने हुए प्रतिनिधियों पर सरकार को काफी व्यय करना पड़ता है। सरकारों को अन्य देशों से भी कूटनीतिक सम्बन्ध बनाये रखने पड़ते हैं। दूसरे देशों में राजदूतावास खोलने पड़ते हैं जिन पर भी सरकार को काफी व्यय करना पड़ता है।

**(iv) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग**—वर्तमान युग में प्रत्येक देश को दूसरे देशों से आर्थिक सहयोग करना पड़ता है। प्रत्येक सरकार किसी न किसी देश की ऋण, अनुदान एवं अन्य आर्थिक सहायता देती है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ जैसे—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, एशियन बैंक इत्यादि संस्थाओं को भी समय-समय पर सरकार को सदस्यता शुल्क देना होता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बनाये रखने के लिए सरकारों को काफी व्यय करना पड़ रहा है।

### 17.1.1 सार्वजनिक व्यय पर वैगनर के विचार (Wagner's views on Public Expenditure)

जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर (Wagner) का विचार था कि आर्थिक विकास के कारण सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होना आवश्यक है। वृद्धि का यह अनुपात व्यय के रूप में परिवर्तित होने पर प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ जाता है। इस प्रकार सकल राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से कुल उपभोग में वृद्धि हो जाती है।

डाल्टन के अनुसार वैगनर के नियम तीन दशाओं में लागू होते हैं—(i) आर्थिक प्रगति के कारण सार्वजनिक संस्थाओं की कार्य कुशलता, निजी संस्थाओं से अधिक हो जाती है क्योंकि (अ) सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा उत्पादित माल अच्छी किस्म का होता है, (ब) बाजार में वस्तुओं की कमी नहीं हो पाती है तथा (स) सार्वजनिक क्षेत्र में पूँजी

## नोट

आसानी से उपलब्ध हो जाती है। (ii) सार्वजनिक व्यय से ऐसी सेवाएँ उत्पन्न होती हैं जिनका उपयोग सम्पूर्ण समाज कर सकता है जैसे स्कूल, अस्पताल, पार्क इत्यादि। (iii) कुछ ऐसी नवीन सेवाएँ जिनको संस्थाएँ नहीं कर सकतीं उनको राज्य सम्पन्न कर सकता है। इस प्रकार सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती जा रही है।

वैगनर से पूर्व एंजिल का कहना था कि आय में वृद्धि होने से खाद्यान्न पर आय की लोच इकाई से कम हो जाती है, अर्थात् व्यक्ति की आय में वृद्धि होने पर खाद्यान्न पर व्यय घटता जाता है। आय में वृद्धि होने से लोग खाद्यान्न के स्थान पर आरामदायक एवं विलासिता की वस्तुओं पर अधिक व्यय करने लग जाते हैं। वैगनर के मतानुसार सरकारी सेवाओं के लिए आय की लोच इकाई से अधिक होती है।

### 17.1.2 सार्वजनिक व्यय तथा निजी व्यय में अन्तर

#### (Difference between Private and Public Expenditure)

सार्वजनिक व्यय तथा निजी व्यय की समस्या सामान्यतया एक जैसी होती है। दोनों ही आय-व्यय के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। दोनों ही पर आर्थिक नियम सामान्य रूप से लागू होते हैं। इस प्रकार दोनों ही स्थितियों में एक जैसी वित्तीय नीति लागू की जाती है किन्तु दोनों में कुछ मौलिक अन्तर होते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(1) **आय व्यय का समायोजन (Adjustment between Income and Expenditure)**—राज्य पहले अपने व्यय की मात्रा निश्चित कर लेता है, उसके बाद आय प्राप्त करने के प्रयास करता है, जबकि निजी व्यय प्रायः व्यक्ति की आय पर निर्भर करता है। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय के अनुसार ही व्यय करता है। डाल्टन (Dalton) के शब्दों में, “जबकि एक व्यक्ति अपनी आय के अनुसार व्यय को निश्चित करता है, एक राजकीय संस्था अपनी आय को व्यय के अनुसार निश्चित करती है।”

(2) **लोच का अन्तर (Difference of Elasticity)**—सार्वजनिक व्यय में लोच नहीं पायी जाती। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि तो सरलता से की जा सकती है, किन्तु उसे कम करना कठिन होता है। दूसरी ओर, निजी व्यय में लोच (elasticity) पायी जाती है, क्योंकि इसमें सरलतापूर्वक कमी और वृद्धि की जा सकती है।

(3) **क्षेत्र का अन्तर (Difference of Scope)**—सरकारी व्यय का क्षेत्र विस्तृत होता है, क्योंकि सरकार का कार्य-क्षेत्र पर्याप्त व्यापक होता है, जबकि निजी व्यय का क्षेत्र सीमित होता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का कार्य-क्षेत्र सीमित होता है।

(4) **व्यय की इच्छा (Willingness of Expenditure)**—सार्वजनिक व्यय ऐच्छिक नहीं होता। सरकारी आय को सामाजिक कल्याण के लिए व्यय करना आवश्यक होता है, किन्तु निजी व्यय व्यक्ति की अपनी इच्छा पर निर्भर करता है। निजी व्यय में व्यय की अनिवार्यता नहीं होती।

(5) **प्रत्यक्ष लाभ (Direct Benefit)**—सार्वजनिक व्यय में प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता जैसे—अकाल, बाढ़, युद्ध आदि पर किये गये व्यय से सरकार को कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता। व्यक्ति को अपने प्रत्येक व्यय से प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त होता है।

(6) **उद्देश्य (Object)**—सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य सामाजिक कल्याण (Social welfare) होता है, जबकि निजी व्यय का उद्देश्य सामाजिक कल्याण (Individual welfare) होता है।

(7) **नियन्त्रण (Control)**—सार्वजनिक व्यय पर संसद का नियन्त्रण होता है, जबकि निजी व्यय पर किसी व्यक्ति-विशेष का नियन्त्रण होता है।

(8) **मितव्ययिता (Economy)**—सार्वजनिक व्यय करते समय मितव्ययिता पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, जबकि निजी व्यय के संचालन में मितव्ययिता का पूरा ध्यान रखा जाता है।

(9) **प्रभाव (Effects)**—सार्वजनिक व्यय का प्रभाव पूरे समाज या राष्ट्र पर पड़ता है, जबकि निजी व्यय का प्रभाव किसी व्यक्ति विशेष पर ही पड़ता है।



## नोट

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. औद्योगिक उत्पादन की ..... के साथ ही साथ लोगों की आय तथा उनका जीवन-स्तर ऊँचा उठा।
2. भारतवर्ष में सन् ..... में राज्य अधिनियम के अंतर्गत कर्मचारियों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जा रही हैं।
3. संसार के प्रत्येक देश में कीमतों में वृद्धि की जो प्रवृत्ति पाई जाती है, उसके कारण भी सरकारी व्यय .. ..... नजर आता है।
4. सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण ..... वृद्धि दर भी है।
5. सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य सामाजिक ..... होता है।

**17.2 लोक व्यय तथा आर्थिक जीवन (Public Expenditure and Economic Life)**

सरकारी व्यय किसी देश के आर्थिक जीवन को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है। उत्पादन तथा वितरण के स्तर में सुधार लाने तथा आर्थिक स्थिरता बनाये रखने के लिए सरकारी व्यय का आश्रय लिया जा सकता है। कृषि तथा उद्योगों के लिए ऋण तथा उपादान स्वीकृत करके उत्पादन के स्तर में वृद्धि की जा सकती है। सरकारी खर्च के द्वारा तकनीकी जानकारी, परिवहन तथा संचार के साधन और बिजली आदि की व्यवस्था की जा सकती है ताकि उत्पादन वृद्धि को प्रोत्साहन मिले। सरकारी खर्च के द्वारा अत्यावश्यक जीवनोपयोगी पदार्थों तथा पूँजीगत माल का उत्पादन आरम्भ किया जा सकता है और निजी उद्यमों से प्रतियोगिता की जा सकती है। इस प्रकार, सरकारी खर्च के द्वारा वितरण के सम्पूर्ण ढाँचे में ही परिवर्तन किया जा सकता है। ऐसा एक ओर तो सरकारी कर्मचारियों का वेतन बढ़ाकर तथा सामाजिक सुरक्षा व चिकित्सा सुविधाओं आदि की व्यवस्था करके किया जा सकता है, और दूसरी ओर उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करके तथा भूमि का अधिग्रहण करके ऐसा किया जा सकता है। सरकारी व्यय आर्थिक स्थिरता बनाये रखने में भी पर्याप्त सहायक होता है। मन्दी काल में खर्च को बढ़ाकर तथा मुद्रा-स्फीति में इसे घटाकर ऐसा किया जा सकता है और इस प्रकार देश के आर्थिक जीवन में आने वाले उतार-चढ़ावों को रोका जा सकता है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि सरकारी खर्च सरकार की आर्थिक नीति का एक ऐसा महत्वपूर्ण अस्त्र बन सकता है कि जिसके द्वारा उत्पादन तथा वितरण में सुधार लाया जा सके और आर्थिक स्थिरता कायम रखी जा सके। परन्तु यहाँ यह नहीं मान लेना चाहिए कि आर्थिक नीति के केवल इस पहलू से ही वांछित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। अन्य भी बहुत से उपाय हैं जैसे कि मौद्रिक उपाय, आर्थिक नियन्त्रण तथा कराधान आदि; यदि आर्थिक नीति में उल्लिखित लक्ष्यों को प्राप्त करना है तो इन उपायों को भी इस दिशा में क्रियाशील बनाना होगा। इससे आर्थिक नीति अधिक कारगर तथा प्रभावशाली बन जायेगी।

**17.3 सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त (Principles of Public Expenditure)**

सरकारी व्यय के सिद्धान्तों का विवेचन उस समय पहले किया जा चुका है जब कि पीछे लोक वित्त के मूलभूत सिद्धान्तों का अध्ययन किया गया था और जिनमें अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त का विवेचन किया गया था। उनमें पहला सिद्धान्त तो उस सीमा की ओर संकेत करता है जहाँ तक कि कुल सरकारी व्यय बढ़ाया जाना चाहिए, और दूसरा सिद्धान्त विभिन्न मर्दों में साधनों के बँटवारे की ओर संकेत करता है ताकि शुद्ध सामाजिक लाभ को अधिकतम किया जा सके। इनका संक्षिप्त विवरण पुनः नीचे दिया जा रहा है—

( 1 ) “सरकारी व्यय प्रत्येक दिशा में ठीक उस सीमा तक किये जाने चाहिए कि जिससे किसी भी क्षेत्र में इस व्यय की थोड़ी-सी भी और वृद्धि से समाज को प्राप्त होने वाले लाभ में, और इसके विपरीत कराधान अथवा अन्य सरकारी आय के अन्य किसी साधन में की जाने वाली थोड़ी-सी वृद्धि से होने वाली हानि में, समान सन्तुलन स्थापित किया जा सके। यह नियम सरकारी व्यय तथा सरकारी आय दोनों की ही एक

## नोट

आदर्श सीमा प्रस्तुत करता है।” प्रो. पीगू ने भी इस सिद्धान्त की लगभग इन्हीं शब्दों में व्याख्या की है, “सभी दिशाओं में सरकारी व्यय एक ऐसे बिन्दु (Point) तक बढ़ाया जाना चाहिए जिस पर खर्च किये जाने वाले अन्तिम शिलिंग से जो सन्तुष्टि प्राप्त हो, वह उस सन्तुष्टि के बराबर हो जो कि सरकारी सेवाओं के लिए अन्तिम शिलिंग देने से नष्ट हो गई हो।” इस प्रकार यह सिद्धान्त सरकारी खर्च को ऐसे बिन्दु तक जारी रखने की अनुमति देता है जहाँ कि सरकार द्वारा खर्च किये गये अन्तिम रुपये से प्राप्त होने वाला सीमान्त सामाजिक लाभ उस सीमान्त त्याग के बराबर हो जो कि कराधान द्वारा वसूल किये जाने वाले अन्तिम रुपये के कारण करदाता को करना पड़े।

(2) “सभी दिशाओं में सरकारी व्यय एक ऐसे बिन्दु तक बढ़ाया जाना चाहिए जिस पर व्यय किये जाने वाले अन्तिम शिलिंग से जो सन्तुष्टि प्राप्त हो, वह उस सन्तुष्टि के बराबर हो जो कि सरकारी सेवाओं के लिए अन्तिम शिलिंग देने से नष्ट हो गई हो।” इसका अर्थ है कि “युद्ध पोतों (battle ships) तथा निर्धनों की सहायता (poor relief) की मदों के बीच खर्च का बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उनमें से प्रत्येक मद पर लगाये गये अन्तिम शिलिंग से सन्तुष्टि का समान प्रतिफल (return) प्राप्त हो।”

इसका अर्थ यह है कि सरकार को विभिन्न मदों के बीच अपने साधनों का बँटवारा इस प्रकार करना चाहिए जिससे कि प्रत्येक मद से प्राप्त होने वाला सीमांत तुष्टिगुण बराबर हो। इसको हम लोक वित्त के क्षेत्र में सम-सीमान्त तुष्टिगुण नियम या अधिकतम सन्तुष्टि के नियम के क्रियान्वयन का नाम देते हैं। इस प्रकार, स्पष्ट है कि अपने साधनों का विभिन्न मदों के बीच बँटवारा करते समय यदि सरकार द्वारा इस सिद्धान्त को दृष्टिगत रखा जाए तो सरकार अपने खर्च से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर सकती है।

यह भी पहले ही बताया जा चुका है कि प्रत्येक मद से प्राप्त सीमान्त सामाजिक लाभ को माप करने का कार्य यदि सम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।

प्रो. जी. पीगू (Prof. G. Pigou)—यदि हम समाज को एक इकाई प्राणी तथा सरकार को उसका मस्तिष्क मान लें, तो सभी दिशाओं में व्यय उस बिन्दु तक बढ़ाया जाना जहाँ व्यय की गई अन्तिम शिलिंग से प्राप्त सन्तोष राजकीय सेवा में लगाई अन्तिम शिलिंग से खोये गये सन्तोष के बराबर हो जाये।”

इस प्रकार, राज्य के लिए यह भी बड़ा कठिन है कि वह खर्च किये अन्तिम रुपये के सीमान्त सामाजिक लाभ को उस सीमान्त त्याग के बराबर कर सके जो कराधान द्वारा वसूल किये गये अन्तिम रुपये के कारण करदाता को करना पड़े। इस सम्बन्ध में और भी अनेक तर्क हैं जो यहाँ दिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, सरकारी कराधान तथा सरकारी खर्च की कार्यवाहियाँ सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा की जाती हैं, अतः यह और भी कठिन होता है कि खर्च किये गये अन्तिम रुपये से प्राप्त होने वाले सीमान्त लाभ की तुलना कराधान के द्वारा वसूल किये जाने वाले अन्तिम रुपये के कारण करदाता द्वारा किये जाने वाले सीमान्त त्याग से की जा सके। फिर सरकारी खर्च कई अनार्थिक कारणों, राजनैतिक दबावों, हड़तालों तथा प्रदर्शनों आदि से भी प्रभावित होता है।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऊपर सरकारी खर्च के जिन सिद्धान्तों का जिक्र किया गया है, वे केवल आदर्श (ideals) हैं और सैद्धान्तिक रूप से ही सत्य हैं। जहाँ तक व्यापार का प्रश्न है, उन्हें लागू करना बड़ा कठिन है।

### 17.3.1 लोक व्यय का मार्गदर्शन करने वाली बातें (Guidelines for Public Expenditure)

प्रो. एल्फर्ड जी. वुलचर ने सरकारी व्यय का मार्गदर्शन करने वाली कुछ ऐसी उपयोगी बातों का उल्लेख किया है, जिनका लोकसत्ताओं द्वारा व्यावहारिक जीवन में अनुसरण किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि “अभी तक व्यय के सिद्धान्त का उतना उच्चस्तरीय विकास नहीं हुआ है जितना कि कराधान का, किन्तु फिर भी कुछ ऐसे मूलभूत सिद्धान्त हैं जो कि तब तक सरकार तथा जनता के लिए मार्गदर्शन के रूप में कार्य कर सकते हैं जब तक कि इस क्षेत्र के लिए और अधिक उपयुक्त स्तरों की खोज न की जाये।” सरकारी व्यय के ये सिद्धान्त या मार्गदर्शक बातें अग्रलिखित हैं—

## नोट

- ( 1 ) **समाज कल्याण में वृद्धि** (Increase in Social Welfare)—सरकारी खर्च के द्वारा समाज कल्याण में वृद्धि होनी चाहिए यद्यपि यह हो सकता है कि कभी-कभी सरकारी खर्च की रूपरेखा का निर्धारण किसी विशेष वर्ग के कल्याण में वृद्धि के लिये ही किया जाये। परन्तु यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि सम्पूर्ण समाज की भलाई ही सर्वोच्च लक्ष्य है जो कि व्यक्तियों अथवा वर्गों के हितों के ऊपर है। अतः यह अवश्य देखा जाना चाहिए कि किसी वर्ग की सहायता करते समय सम्पूर्ण समाज के कल्याण को क्षति न पहुँचे।
- ( 2 ) **लाभ लागत से अधिक** (Profit is more than cost)—सरकारी अधिकारियों तथा निर्वाचित प्रतिनिधि द्वारा अत्यन्त सावधानी के साथ निर्णय लेकर इस विषय में आश्वस्त होना चाहिए कि प्रत्येक सेवा पर किये गये खर्च से जो लाभ प्राप्त हो वह उस खर्च की लागत से अधिक हो तथा सरकार द्वारा खर्च किये गये धन से प्राप्त होने वाला सामाजिक कल्याण उससे अधिक होना चाहिए जो कि तब प्राप्त होता जबकि उक्त धन निजी व्यक्तियों द्वारा खर्च किया जाता।
- ( 3 ) **सामाजिक कल्याण के कार्यों को वरीयता** (Preference to Social Welfare Activities)—ऐसी सेवाओं को सर्वप्रथम हाथ में लिया जाना चाहिए, जिनके द्वारा कि सामाजिक कल्याण में सर्वाधिक वृद्धि हो और जिनके द्वारा सामाजिक कल्याण (social welfare) में कम वृद्धि हो, उन सेवाओं पर बाद में खर्च किया जाना चाहिए।
- ( 4 ) **लाभ के परिणाम** (Results of Profit)—खर्चों से प्राप्त होने वाले लाभों के परिणामों को आँकने के लिए उन प्रतिकूल प्रभावों को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए जो कि उन खर्चों की पूर्ति के लिए लगाये जाने वाले करों तथा प्राप्त की जाने वाली अन्य आय के संग्रह के कारण उत्पन्न हों।
- ( 5 ) **प्रशासनिक व्यय** (Administrative Expenditure)—सरकार के प्रशासन आदि में जो व्यय होता है वह भी उन सेवाओं पर किया गया ही माना जाना चाहिए जो सरकार जन-कल्याण के लिए उपलब्ध करती है। यदि सरकारी प्रशासन आदि की लागत बहुत अधिक आती है तो यह माना जायेगा कि सम्पन्न की जाने वाली सेवाओं के चुनाव में अथवा उसको सम्पन्न करने के तरीके में कुछ कमी है।
- ( 6 ) **साधनों की उपलब्धि** (Availability of Resources)—सरकारी सेवाएँ केवल तभी हाथ में ली जानी चाहिए जबकि उनकी लागत को पूरा करने के लिए यथेष्ट साधन उपलब्ध हों। उधार द्वारा केवल अस्थायी प्राप्तियों (receipts) की ही व्यवस्था की जा सकती है क्योंकि इस प्रकार उधार लिए हुए धन को भी अन्ततः अन्य स्रोतों की आय से वापिस करना होता है और इन स्रोतों में कर मुख्य होते हैं।
- ( 7 ) **आय की सम्भावना** (Expectations of Income)—कुछ सेवाएँ स्थानान्तरणीय (transferable) प्रकृति की होती हैं, जैसे—सार्वजनिक निर्माण कार्य (public work)। ऐसी सेवाओं को सम्पन्न करने तथा उन पर धन व्यय करते समय यह भी देखा जाना चाहिए कि उनसे भावी आय की क्या सम्भावनाएँ हैं तथा क्या वे सामान्य व्यावसायिक दशाओं के अन्तर्गत सम्पन्न की जा रही हैं। ऐसी सेवाओं को सम्पन्न करने के लिए वह समय छाँटा जाना चाहिए जो कि समाज की दृष्टि से सर्वोत्तम तथा अनुकूल हो ताकि उन सेवाओं के प्रभावों को आर्थिक स्थिरता में वृद्धि करने के दिशा में मोड़ा जा सके।
- ( 8 ) **व्यय की सीमाएँ** (Limitations of Expenditure)—व्यय पर प्रारम्भ में तो नहीं, किन्तु अन्तिम रूप में कुछ सीमाएँ लागू की जाती हैं। वे हैं—जनसंख्या को देखते हुए समाज की आय व धन क्षेत्र, अन्य साधन तथा धन व आय का विशिष्ट वितरण।
- ( 9 ) **सेवा समन्वय** (Service Coordination)—सरकार की विभिन्न इकाइयों की सेवाओं के बीच कारगर ढंग से समन्वय (coordination) स्थापित किया जाना चाहिए, ताकि उन सेवाओं से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त किया जा सके और सरकारी प्रयत्नों से व्यर्थ का दोहराव (duplication) उत्पन्न न हो।
- ( 10 ) **प्रशासनिक श्रेष्ठता** (Administrative Ability)—सरकारी प्रशासन कुशल तथा ईमानदार होना चाहिए। केवल कानून-सम्मत खर्च किये जाने चाहिए, सभी खर्चों का समुचित रूप से हिसाब रखा जाना चाहिए और रिपोर्टें आदि के द्वारा सरकार की वित्तीय कार्यवाहियों का सरल ढंग से समुचित प्रयास किया जाना चाहिए।

ताकि जनता तथा साथ ही साथ सरकारी अधिकारी भी सरकारी सेवाओं की लागतों (costs) एवं लाभों की तुलना कर सकें।

### 17.3.2 लोक व्यय के सिद्धान्त का नियम (Canons of Public Expenditure)

प्रो. शिराज ने भी सरकारी व्यय के चार सिद्धान्तों का उल्लेख किया है जो कि निम्न प्रकार हैं—

(1) **लाभ का सिद्धान्त (Canon of Benefit)**—इस सिद्धान्त का आदर्श है अधिकतम सामाजिक लाभ की प्राप्ति, अर्थात् सरकारी खर्च की योजना इस प्रकार बनाई जानी चाहिए ताकि उससे समाज के किसी विशेष वर्ग के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण रूप में (as a whole) समस्त समाज के लिए अधिकतम सामाजिक लाभ तथा सामाजिक कल्याण प्राप्त किया जा सके। “यदि अन्य बातें समान रहें तो यह आवश्यक है कि सरकारी खर्च अपने साथ कई सामाजिक उपलब्धियाँ लाए, जैसे कि उत्पादन में वृद्धि, बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक अशान्ति से सम्पूर्ण समाज की सुरक्षा और जहाँ तक भी सम्भव हो सके आय की असमानताओं में कमी।” संक्षेप में कहा जा सकता है कि सरकारी धन उन मदों में खर्च किया जाना चाहिए जो कि जनहित की दृष्टि से सर्वाधिक अनुकूल हों। अन्य शब्दों में, सरकारी खर्च से अधिकतम तुष्टिगुण प्राप्त किया जाना चाहिए और ऐसा केवल तभी सम्भव हो सकता है जबकि सरकारें धन को इस प्रकार खर्च करें तथा विभिन्न उपयोगों के बीच साधनों का इस प्रकार बँटवारा करें ताकि सभी उपयोगों (uses) से प्राप्त होने वाला सीमान्त तुष्टिगुण बराबर हो। अन्य शब्दों में, ऐसा तब हो सकता है जबकि लोक वित्त के क्षेत्र में सम-सीमान्त तुष्टिगुण नियम अथवा अधिकतम सन्तुष्टि का नियम लागू किया जाये। इसका अर्थ है कि लोक-सत्ताओं को अपने साधनों का बँटवारा उपर्युक्त रीति से करना चाहिए जिससे कि—

- (क) सम्पूर्ण रूप में देश के कुल उत्पादन में वृद्धि हो;
- (ख) बाह्य तथा आन्तरिक खतरों से समाज की रक्षा करने के लिए पर्याप्त सेना तथा पुलिस बनायी रखी जा सके;
- (ग) नागरिकों के बीच आय की असमानताओं को कम किया जा सके; और
- (घ) किसी एक वर्ग के नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के ही कल्याण को अधिकतम किया जा सके।

अन्य शब्दों में, ‘अधिकाधिक लोगों का अधिकाधिक हित’ ही इस सिद्धान्त का एकमात्र लक्ष्य है। अतः सरकारी खर्च का यह सिद्धान्त बड़ा उपयोगी सिद्धान्त है और अर्थशास्त्र का कोई भी विद्यार्थी सरकार द्वारा अपनाये जाने वाले **आदर्श के रूप में इसका खण्डन नहीं कर सकता।** यह तो रही सिद्धान्त की बात, जहाँ तक व्यवहार का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि राज्य द्वारा इस सिद्धान्त के लक्ष्य अथवा आदर्श को प्राप्त कर सकना बड़ा कठिन है। इसका कारण यह है कि एक ओर तो सरकार के लिए यह असम्भव है कि वह खर्च की प्रत्येक मद से प्राप्त होने वाले सीमान्त सामाजिक लाभ को समान कर सके और दूसरी ओर सम्पूर्ण समाज को प्रदान किये जाने वाले कुछ लाभ की मात्रा का अनुमान लगा सके। इस सब विवेचन के अन्त में यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक सरकारी व्यय का उद्देश्य यह होना चाहिए कि देश के उत्पादन तथा वितरण में सुधार हो।

(2) **मितव्ययिता का सिद्धान्त (Canon of Economy)**—मितव्ययिता के सिद्धान्त से आशय है कि राज्य खर्च करने के मामले में किफायती दृष्टिकोण सामने रखे। इस सम्बन्ध में दो विचारणीय बातें उल्लेखनीय हैं। सर्वप्रथम, सरकार को किसी भी मद पर न्यूनतम आवश्यक धनराशि ही व्यय करनी चाहिए। दूसरे, उसे यथासम्भव समाज की उत्पादन शक्ति में वृद्धि भी करनी चाहिए। यही मितव्ययिता या किफायत (economy) का सकारात्मक पहलू है। इसमें पहले विचार का सम्बन्ध वर्तमान से है और दूसरे का सम्बन्ध भविष्य से। इस सिद्धान्त का एकमात्र उद्देश्य अतिव्ययता (extravagance) तथा भ्रष्टाचार (corruption) से बचना है। सामाजिक लाभ को तभी अधिकतम किया जा सकता है, जबकि व्यय में फिजूलखर्ची या बर्बादी न हो। अतः यह सिद्धान्त ऐसा अच्छा व्यावहारिक नियम है जिसका सरकारें अनुसरण कर सकती हैं। इस सन्दर्भ में, शिराज ने इसके एक-दूसरे पहलू पर भी जोर दिया है, और वह यह है कि, “**मितव्ययिता का अर्थ है करदाता के हितों की रक्षा करना—केवल खर्च की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करके ही नहीं बल्कि सरकारी आय को बढ़ाने की दृष्टि से भी।**” स्पष्टतः इसका अर्थ यही है

## नोट

कि सरकार अपना व्यय इस प्रकार करें कि उसमें सरकार की आय के विस्तार में भी मदद मिले। वस्तुतः यह भी इस सिद्धान्त का बड़ा महत्वपूर्ण पहलू है और सरकार जब अपने खर्च की रूपरेखा बनाए तो उसे इसका अनुसरण अवश्य करना चाहिए।

**( 3 ) स्वीकृति का सिद्धान्त (Canon of Sanction)**—स्वीकृति का सिद्धान्त यह है कि बिना उपयुक्त अधिकारों या सत्ता की स्वीकृति के कोई भी सरकारी खर्च नहीं किया जाना चाहिए। इसका आशय यह है कि कोई भी धनराशि उस समय तक खर्च नहीं की जानी चाहिए जब तक कि उस खर्च के लिए उपयुक्त अधिकृत व्यक्ति से स्वीकृति या अनुमति न मिल जाए। प्रत्येक सरकारी निकाय को इस बात की तो स्वाधीनता होनी चाहिए कि वह किसी विशेष मद पर एक निश्चित सीमा तक खर्च कर सके परन्तु उस सीमा से अधिक प्रत्येक खर्च तभी किया जाना चाहिए जबकि समुचित अधिकारी से उसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली जाये। अतः इस सिद्धान्त का उद्देश्य यही है कि सभी अविवेकपूर्ण तथा अन्धाधुन्ध खर्चों को रोका जा सके क्योंकि लोगों का अनुभव है कि सभी अनाधिकृत खर्च (unauthorised expenditures) अपव्यय तथा अति व्यय को प्रोत्साहन देते हैं। स्वीकृति के सिद्धान्त के अन्तर्गत यह भी देखना जरूरी होता है कि व्यय करने वाले अधिकारी धन का उसी कार्य में खर्च करें जिसके लिए उसकी स्वीकृति मिली है। यह देखने के लिए कि स्वीकृत खर्च की धनराशि का दुरुपयोग तो नहीं हुआ है, वित्तीय वर्ष के अन्त में सरकारी खातों का सदा लेखा-परीक्षण (audit) तथा निरीक्षण (inspection) किया जाता है। प्रो. शिराज का यह सिद्धान्त सरकारी खर्च की नीति निर्धारित करने के लिए उपयुक्त कार्य पद्धति प्रस्तुत करता है तथा सरकारी खर्च के प्रशासन में कुछ निहित स्वार्थों (vested interests) के प्रवेश तथा मनमानेपन पर रोक लगाता है।

वर्तमान समय में स्वीकृति के इस सिद्धान्त का काफी विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिए लोकतंत्रीय देशों में स्वयं सरकार को भी खर्च करने से पहले संसद (Parliament) या विधान-मण्डल की स्वीकृति लेनी पड़ती है। सरकार के प्रत्येक मन्त्रालय या विभाग को वित्त-मन्त्रालय की स्वीकृति लेनी पड़ती है। एक विभाग के अन्तर्गत भी विभागाध्यक्ष की अनुमति लेनी पड़ती है। इसी प्रकार खर्च के लिए पूर्व स्वीकृति लेने का यह सिलसिला बराबर आगे भी चलता रहता है। यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि अनुमति लेने की इस व्यापक व्यवस्था के कारण कभी-कभी कार्य देरी से सम्पन्न होता है और प्रशासन में लाल फीताशाही (red-tapism) जन्म ले लेती है। परन्तु इसको इसलिए सहन करना होता है ताकि खर्च के प्रशासन में ईमानदारी और मितव्ययिता बनी रहे और अपव्यय एवं अति व्यय को रोका जा सके।



क्या आप जानते हैं? कोई भी धनराशि उस समय तक खर्च नहीं की जानी चाहिए जब तक कि उस खर्च के लिए उपयुक्त अधिकृत व्यक्ति से स्वीकृति या अनुमति न मिल जाए।

**( 4 ) बचत या बेशी का सिद्धान्त (Canon of Surplus)**—बेशी के सिद्धान्त के अनुसार सरकारी खर्च में घाटे की स्थिति से बचा जाना चाहिए। प्रो. शिराज के ही शब्दों में, “सरकारों को अपनी आय प्राप्त करने तथा खर्च करने के मामलों में सामान्य नागरिकों के समान ही आचरण करना चाहिए। निजी व्यक्ति जिस प्रकार अपने खर्च को आय से अधिक नहीं होने देते, उसी प्रकार सरकारों को भी सन्तुलित बजट बनाने की आदत डालनी चाहिए। वार्षिक व्यय को बिना नये उधार लिए ही सन्तुलित कर लेना चाहिए।” यह सिद्धान्त बड़ा ठोस तथा सुरक्षित प्रतीत होता है। यह सिद्धान्त बताता है कि प्राइवेट व्यक्ति के समान सरकार को भी अपने साधनों की परिधि में रहकर ही खर्च करना चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सरकार को कभी ऋण लेना ही नहीं चाहिए। वस्तुतः यदि आवश्यकता हो तो उसे उधार ले लेना चाहिए। परन्तु उसकी आय इतनी होनी चाहिए कि वह उस ऋण का ब्याज अदा कर सके और ऋण की वापसी के लिए एक शोधन निधि (Sinking Fund) का निर्माण कर सके।

किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री सन्तुलित बजट को सदैव अच्छा नहीं समझते। वस्तुतः बजट कैसा बनाया जाए, यह बात देश की अर्थव्यवस्था की दशा पर निर्भर होती है। मुद्रास्फीति की दशा में बेशी के बजट (surplus budget) को अच्छा माना जाता है, क्योंकि यह लोगों की क्रयशक्ति (purchasing power) को कम कर देता है जिससे कुल

## नोट

समर्थ माँग (effective demand) मात्रा कम हो जाती है और इस प्रकार यह चालू माँग और चालू उत्पादन में संतुलन कायम रखने में सहायक होता है। इसके विपरीत, मन्दी के दिनों में घाटे के बजट (deficit budget) को वांछनीय माना जाता है और वह इसलिए, क्योंकि यह लोगों की क्रयशक्ति में वृद्धि करके कुल समर्थ माँग में वृद्धि कर देता है और इस प्रकार चालू माँग तथा चालू उत्पादन के बीच संतुलन स्थापित कर देता है।

इसी प्रकार, संतुलित बजट (balanced budget) को उस समय वांछनीय माना जाता है जबकि अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत पूर्ण रोजगार तथा मूल्यों में स्थिरता की स्थिति वर्तमान हो। इसके अतिरिक्त एक विकासशील देश में घाटे के बजट को पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि करने के एक अस्त्र के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है, बशर्ते कि घाटा बहुत अधिक न हो, अन्यथा तो इस कार्यवाही से अर्थव्यवस्था (economy) में स्फीतिजन्य प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जायेंगी।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि बेशी या बजट के सिद्धान्त को आधुनिक लोक वित्त में वह महत्ता प्राप्त नहीं है जो कि इसे प्राचीन समय में प्राप्त थी।

### 17.3.3 लोक व्यय के अन्य सिद्धान्त (Other Canons of Public Expenditure)

सरकारी व्यय के उपर्युक्त सिद्धान्तों के अलावा, कुछ अर्थशास्त्रियों ने कुछ अन्य सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। ये सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं—

(1) **लोच का सिद्धान्त (Canon of Elasticity)**—इस सिद्धान्त का कहना है कि राज्य की व्यय-नीति ऐसी होनी चाहिए कि जो देश की बदलती हुई परिस्थितियों के साथ स्वयं को परिवर्तित कर सके, अर्थात् देश की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार सरकारी खर्च में घटा-बढ़ी करना सम्भव हो सके। वास्तव में, इस सिद्धान्त का उद्देश्य यह है कि सरकारी खर्च की नीति में ऐसी लोच होनी चाहिए कि वह युद्ध जैसे संकटकालीन अवसरों पर तथा व्यापक विकास कार्यक्रमों के लिए वित्त का प्रबन्ध करने में असफल न हो जाये। अन्य शब्दों में, सरकारी खर्च की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि संकटकाल में यदि साधनों को एक मद से दूसरी मद में स्थानान्तरित किया जाये तो उससे देश का आर्थिक जीवन अस्त-व्यस्त न हो जाए। उदाहरणार्थ—युद्धकाल में खर्च को मकानों के निर्माण से हटाकर युद्ध कार्यों में लगाये जाने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

(2) **समन्यायपूर्ण वितरण का सिद्धान्त (Canon of Equitable Distribution)**—यह सिद्धान्त बताता है कि सरकारी व्यय इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उससे आय के वितरण की समानताएँ कम हों। अन्य शब्दों में, सरकारी व्यय समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आय के समन्यायपूर्ण वितरण के विषय में हमें आश्वस्त करे। यह लक्ष्य तब प्राप्त किया जा सकता है जबकि सरकारी खर्च के द्वारा समाज के निर्धन वर्गों को अधिक लाभ पहुँचाए जायें। ये लाभ चिकित्सा, शिक्षा, गृह-निर्माण तथा वृद्धावस्था पेंशन आदि के रूप में पहुँचाये जा सकते हैं। यह सिद्धान्त उन देशों के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण है जहाँ कि आय के वितरण में भारी असमानताएँ पाई जाती हैं। यही कारण है कि भारत जैसे विकासशील देशों में राज्य की आर्थिक क्रियाओं एवं राजकोषीय नीतियों के क्रियान्वयन में इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप से लागू किया गया है। उदाहरणार्थ—ऐसे देशों में समाज के कुछ पिछड़े वर्गों को रोजगार में प्राथमिकता प्रदान की जाती है तथा शिक्षा सम्बन्धी अनेक सुविधाएँ व छात्रवृत्तियाँ आदि प्रदान की जाती हैं। इसी प्रकार, कुछ संस्थाएँ केवल छोटे-छोटे किसानों के लाभ एवं विकास के लिए ही स्थापित की गई हैं, उदाहरणार्थ—‘लघु किसान विकास अभिकरण’ (Small Farmers Development Agency)।

(3) **उत्पादकता का सिद्धान्त (Canon of Productivity)**—इस सिद्धान्त का आशय है कि राज्य की व्यय नीति ऐसी होनी चाहिए जो कि सम्पूर्ण रूप में देश के उत्पादन को प्रोत्साहित करे। स्पष्ट है कि इस सिद्धान्त के अनुसार, अधिकाधिक सरकारी व्यय उत्पादन तथा विकास सम्बन्धी कार्यों में ही किया जाना चाहिए। अल्पविकसित देशों के लिए तो यह सिद्धान्त बड़ा ही अनुकूल है, क्योंकि ऐसे देशों में, “सामाजिक तथा सरकारी सेवाओं की उपज में तथा सामुदायिक उपभोग की सुविधाओं में वृद्धि करने के लिए सरकारी खर्च में व्यापक विस्तार की आवश्यकता होती है।” अतः अधिकतम रोजगार, अधिकतम पैदावार तथा अधिकतम आय ही सरकारी खर्च का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

## नोट



टास्क लोच के सिद्धान्त को स्पष्ट करें।

### 17.3.4 भारत का लोक व्यय : सिद्धान्तों की कसौटी पर

अब यदि भारत के लोक-व्यय को सिद्धान्तों की कसौटी पर कसते हैं तो पाते हैं कि भारतीय लोक-व्यय कुछ सिद्धान्तों के अनुकूल है किन्तु फिर भी उसमें अभी काफी सुधार करने की आवश्यकता है। देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् भारी उद्योगों की स्थापना, आर्थिक एवं सामाजिक पूँजी निर्माण की वृद्धि, सामाजिक कल्याण की योजनाओं में वृद्धि इत्यादि कार्यों पर काफी सार्वजनिक व्यय हुआ है और यही कारण है कि पिछले दो दशकों से भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक सुदृढ़ता आई है। योजनाओं के अन्तर्गत अपनायी गयी क्षेत्रीय विकास की नीति 'लाभ के सिद्धान्त' के अनुरूप है क्योंकि इससे पिछड़े क्षेत्रों, विशेषकर ग्रामीण जनसंख्या को काफी लाभ पहुँचा है। किन्तु प्रशासनिक शिथिलता के कारण 'मितव्ययिता' एवं 'स्वीकृति' के सिद्धान्तों का पूरी तरह पालन नहीं हुआ है। घाटे का बजट हमारी सरकार की परम्परागत कमजोरी रही है और स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि न केवल केन्द्र सरकार ही अपना अर्थ-प्रबन्ध घाटे के बजट से पूर्ण करती है बल्कि राज्य सरकारों की भी यह एक दिनचर्या बन गयी है। आज वास्तविकता यह है कि लोगों की करदान क्षमता लगभग समाप्त हो चुकी है और लोक व्यय में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। लोक-व्यय में 'लोच' की अनुपस्थिति के साथ-साथ लोगों की कर देने की योग्यता कम होने के कारण सरकार ने अपने अर्थ-प्रबन्ध के लिए नये नोटों को छापा है इसके परिणामस्वरूप देश महँगाई के दौर से गुजर रहा है। पिछले दशक से तो यह स्थिति और भी अधिक गम्भीर हो गयी है। यह बात अवश्य सराहनीय है कि सरकार की व्यय नीति 'उत्पादकता' एवं 'न्यायपूर्ण' वितरण के सिद्धान्तों को अपनाने में काफी सफल रही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत सरकार की व्यय नीति में अभी भी काफी सुधार करने की गुंजाइश है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य कथन की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

6. सरकारी व्यय किसी देश के आर्थिक जीवन को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है।
7. सरकारी खर्च के द्वारा वितरण के सम्पूर्ण ढाँचे में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।
8. सरकारी खर्च के द्वारा समाज कल्याण में वृद्धि होनी चाहिए।
9. सभी सेवाएँ स्थानान्तरणीय प्रकृति की होती हैं।
10. भारत सरकार की व्यय नीति में अभी भी काफी सुधार करने की गुंजाइश है।

### 17.4 सारांश (Summary)

- वैगनर का कहना था कि राज्य के कार्यों में व्यापक एवं गहन वृद्धि (extensive and intensive increase) की एक स्थायी प्रवृत्ति पाई जाती है। राज्य नये-नये कार्यों को निरन्तर अपने हाथ में लेते जा रहे हैं और पुराने कार्यों को और अधिक बड़े पैमाने पर अधिक कुशलता के साथ सम्पन्न कर रहे हैं।
- औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) से संसार के अधिकांश देशों के केवल औद्योगिक ढाँचे में ही आमूल परिवर्तन नहीं हुआ अपितु उनका राजनैतिक व सामाजिक रूप भी काफी बदल गया है।
- किसी देश विशेषकर भारत जैसे विकासशील देश की अर्थव्यवस्था का कृषि विकास उसकी अर्थव्यवस्था के विकास की धुरी होता है। आर्थिक विकास के लिए कृषि तथा गैर-कृषि दोनों क्षेत्रों के विकास करने के लिए सुविधाएँ प्रदान करनी आवश्यक होती हैं क्योंकि दोनों क्षेत्र परस्पर निर्भर करते हैं।

## नोट

- सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण जनसंख्या वृद्धि दर भी है। बढ़ी हुई जनसंख्या के सुख और सुविधाओं के लिए सरकार को काफी मात्रा में व्यय करना पड़ता है।
- सार्वजनिक व्यय तथा निजी व्यय की समस्या सामान्यतया एक जैसी होती है। दोनों ही आय-व्यय के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। दोनों ही पर आर्थिक नियम सामान्य रूप से लागू होते हैं।
- सरकारी व्यय किसी देश के आर्थिक जीवन को कई प्रकार से प्रभावित कर सकता है। उत्पादन तथा वितरण के स्तर में सुधार लाने तथा आर्थिक स्थिरता बनाये रखने के लिए सरकारी व्यय का आश्रय लिया जा सकता है।
- सरकारी व्यय प्रत्येक दिशा में ठीक उस सीमा तक किये जाने चाहिए कि जिससे किसी भी क्षेत्र में इस व्यय की थोड़ी-सी भी वृद्धि से समाज को प्राप्त होने वाले लाभ में, और इसके विपरीत कराधान अथवा अन्य सरकारी आय के अन्य किसी साधन में की जाने वाली थोड़ी-सी वृद्धि से होने वाली हानि में, समान सन्तुलन स्थापित किया जा सके। यह नियम सरकारी व्यय तथा सरकारी आय दोनों की ही एक आदर्श सीमा प्रस्तुत करता है।
- यदि हम समाज को एक इकाई प्राणी तथा सरकार को उसका मस्तिष्क मान लें, तो सभी दिशाओं में व्यय उस बिन्दु तक बढ़ाया जाना जहाँ व्यय की गई अन्तिम शिलिंग से प्राप्त सन्तोष राजकीय सेवा में लगाई अन्तिम शिलिंग से खोये गये सन्तोष के बराबर हो जाये।
- अभी तक व्यय के सिद्धान्त का उतना उच्चस्तरीय विकास नहीं हुआ है जितना कि काराधान का, किन्तु फिर भी कुछ ऐसे मूलभूत सिद्धान्त हैं जो कि तब तक सरकार तथा जनता के लिए मार्गदर्शन के रूप में कार्य कर सकते हैं जब तक कि इस क्षेत्र के लिए और अधिक उपयुक्त स्तरों की खोज न की जाये।
- सभी खर्चों का समुचित रूप से हिसाब रखा जाना चाहिए और रिपोर्टें आदि के द्वारा सरकार की वित्तीय कार्यवाहियों का सरल ढंग से समुचित प्रयास किया जाना चाहिए ताकि जनता तथा साथ ही साथ सरकारी अधिकारी भी सरकारी सेवाओं की लागतों (costs) एवं लाभों की तुलना कर सकें।
- यदि अन्य बातें समान रहें तो यह आवश्यक है कि सरकारी खर्च अपने साथ कई सामाजिक उपलब्धियाँ लाए, जैसे कि उत्पादन में वृद्धि, बाह्य आक्रमण तथा आन्तरिक अशान्ति से सम्पूर्ण समाज की सुरक्षा और जहाँ तक भी सम्भव हो सके आय की असमानताओं में कमी।
- मितव्ययिता का अर्थ है करदाता के हितों की रक्षा करना—केवल खर्च की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करके ही नहीं बल्कि सरकारी आय को बढ़ाने की दृष्टि से भी।
- सामाजिक तथा सरकारी सेवाओं की उपज में तथा सामुदायिक उपभोग की सुविधाओं में वृद्धि करने के लिए सरकारी खर्च में व्यापक विस्तार की आवश्यकता होती है।

### 17.5 शब्दकोश (Keywords)

- एकाधिकार (Monopoly)—एक ही व्यक्ति या संस्था का अधिकार।
- प्रतिफल (Return)—परिणाम।
- अभिकरण (Agency)—अधीनस्थ काम करने वाली संस्था।

### 17.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सार्वजनिक व्यय किन-किन कार्यों के लिए किया जाता है?
2. लोक व्यय में वृद्धि के क्या कारण हैं?
3. सार्वजनिक व्यय तथा निजी व्यय में क्या अंतर है?



**नोट**

4. सार्वजनिक व्यय के सिद्धांतों की व्याख्या करें।
5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें—
  - (a) प्रशासनिक व्यय
  - (b) सेवा समन्वय।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)**

- |           |           |          |             |
|-----------|-----------|----------|-------------|
| 1. वृद्धि | 2. 1948   | 3. बढ़ता | 4. जनसंख्या |
| 5. कल्याण | 6. सत्य   | 7. असत्य | 8. सत्य     |
| 9. असत्य  | 10. सत्या |          |             |

**17.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)**

---



पुस्तकें

1. लोक वित्त—न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन—मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस—नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस—नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

## **इकाई-18: लोक व्यय के प्रभाव**

### **(Effects of Public Expenditure)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 18.1 लोक व्यय का महत्व (Significance of Public Expenditure)
- 18.2 आरोही, अनुपाती तथा अवरोही व्यय का योगदान (Role of Progressive, Proportional and Regressive Expenditure)
- 18.3 प्रगतिशील अथवा आरोही व्यय के रूप (Forms of Progressive Expenditure)
- 18.4 उत्पादन बनाम वितरण (Production vs Distribution)
- 18.5 बेरोजगारी आर्थिक अस्थिरता का ही परिणाम है (Unemployment is the Result of Economic Instability)
- 18.6 मन्दी तथा लोक व्यय (Depression and Public Expenditure)
- 18.7 आर्थिक विकास तथा उन्नति में लोक व्यय का योगदान (Role of Public Expenditure in Economic Development and Growth)
- 18.8 सारांश (Summary)
- 18.9 शब्दकोश (Keywords)
- 18.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 18.11 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- लोक व्यय के महत्व को समझने में।
- आरोही, अनुपाती तथा व्यय योगदान को जानने हेतु।
- प्रगतिशील अथवा आरोही व्यय के रूप समझने में।
- उत्पादन बनाम वितरण को भलीभाँति जानने के लिए।
- मन्दी तथा लोक व्यय की जानकारी प्राप्त करने में।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

आजकल सरकारी व्यय को केवल वित्तीय प्रबन्ध मात्र ही नहीं माना जाता बल्कि सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति का एक महत्वपूर्ण साधन भी माना जाता है। यदि हम समाजवाद (socialism) के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं तो ऐसा

**नोट**

केवल तभी हो सकता है जबकि हम सरकारी व्यय के संग्रह पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करने की अपेक्षा सम्पूर्ण रूप में सरकारी व्यय की एक उपयुक्त एवं ठोस नीति अपनाएँ।

**परम्परागत अर्थशास्त्रियों** (Traditional Economists)–का यह विचार था कि राज्य को आर्थिक क्रियाओं में कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए और यह कि सरकार तो जनता की एजेन्ट मात्र है जिसका कार्य केवल राजनैतिक संगठन को सही-सलामत बनाये रखना है। इसलिए **एडम स्मिथ** ने राज्य की न्यूनतम क्रियाओं का समर्थन किया और राज्य की क्रियाओं को केवल न्याय, पुलिस तथा सेना तक ही सीमित रखने की वकालत की। **एडम स्मिथ** का विचार था कि सरकारी व्यय तो सामान्यतः एक अपव्यय (waste) ही है। सरकारी व्यय केवल जनता के पास से सरकार की ओर को स्थानान्तरित किया हुआ धन होता है और यह धन यदि सरकार की अपेक्षा जनता द्वारा ही खर्च किया जाए तो अधिक उपयोगिता या तुष्टिगुण प्रदान कर सकता है। अतः एडम स्मिथ का विचार था कि सरकार के लिए यही अच्छा है कि अपनी आर्थिक क्रियाओं को यथासम्भव सीमित रखे।

इसके विपरीत, **आधुनिक अर्थशास्त्रियों** ने सरकारी व्यय की नई धारणा का प्रतिपादन किया है। आजकल तो सरकारी खर्च में हर प्रकार से वृद्धि करने के वैगनर के नियम को सार्वलौकिक रूप से सही तथा सत्य माना जाता है। वर्तमान समय में सरकारी खर्च में वृद्धि का रुख केवल किसी विशेष देश में ही पाया जाता हो, ऐसी बात नहीं है, बल्कि यह तो संसार के लगभग सभी देशों में पाया जाता है, भले ही वहाँ की सामाजिक व आर्थिक रचना राजनैतिक ढाँचा कैसा ही क्यों न हो। एक विकासशील देश में तो सरकारी व्यय की कोई स्पष्ट सीमा निर्धारित कर सकना सम्भव नहीं है। आजकल ऐसे प्रत्येक सरकारी खर्च को वाँछनीय माना जाता है जो अपव्ययी (wasteful) न हो, अपितु उत्पादन तथा वितरण पर ठोस प्रभाव डालता हो, और इस प्रकार, सम्पूर्ण रूप में, देश के आर्थिक व सामाजिक कल्याण को अधिकतम करता हो।

### 18.1 लोक व्यय का महत्त्व (Significance of Public Expenditure)

जहाँ तक सरकारी व्यय की महत्ता का प्रश्न है वह तो इसी तथ्य से प्रकट होता है कि सरकार जनता के लिए उन सेवाओं की व्यवस्था करती है, जिनकी व्यवस्था निजी व्यक्तियों द्वारा या तो की जानी सम्भव ही नहीं होती अथवा यदि की भी जाती है, तो उतनी यथेष्ट मात्रा में तथा उतना व्यय करके नहीं की जाती, जितना कि सरकार कर सकती है। सरकारी व्यय की महत्ता इस तथ्य से भी प्रकट होती है कि सरकार समस्त देश के उपयोग एवं लाभ के लिए प्रतिरक्षा सेवाओं तथा प्रशासन व विकास सम्बन्धी क्रियाओं को सम्पन्न करती है और इनको सम्पन्न करने के लिए उसे प्राइवेट व्यक्तियों अथवा फर्मों से वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदनी पड़ती हैं जिससे प्राइवेट व्यक्तियों की आय बढ़ती है। इन सेवाओं की व्यवस्था करने के लिए यदि सरकार उन साधनों (resources) का प्रयोग करती है जो अन्य स्थिति में बेकार पड़े रहते हैं, तो इससे राष्ट्रीय आय तथा रोजगार में वृद्धि ही तो होती है। सरकार का कुछ खर्च ऐसा भी होता है जो कि स्थानान्तरणीय प्रकृति का होता है। अतः ऐसा खर्च समाज के एक वर्ग से दूसरे वर्ग की ओर को क्रयशक्ति (purchasing power) का स्थानान्तरण कर देता है। यदि आय या क्रयशक्ति का यह स्थानान्तरण निर्धन व्यक्तियों की ओर को अथवा ऐसे व्यक्तियों की ओर को होता है जिनका उपभोग के प्रति रुझान अधिक होता है, बशर्ते कि अन्य बातें पूर्ववत् रहे, तो उससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने लगती है और स्थानान्तरण न होने पर परिणाम इसके विपरीत रहता है। अतः इस बात का अध्ययन तथा विश्लेषण करना बड़ा महत्त्वपूर्ण है कि देश में रोजगार के स्तर पर, उत्पादन पर तथा आय के वितरण पर सरकारी व्यय के क्या-क्या प्रभाव पड़ते हैं।

#### 18.1.1 प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभाव (Direct and Indirect Effects)

सरकारी व्यय देश के उत्पादन को दो प्रकार से प्रभावित कर सकता है; एक तो प्रत्यक्ष रूप से और दूसरे परोक्ष रूप से। सरकारी क्षेत्र (public sector) के उद्योग उत्पादन अथवा राष्ट्रीय आय में प्रत्यक्ष रूप से अंशदान करते हैं। भारत में रेलवे तथा सिंचाई आदि पर किया जाने वाला व्यय प्रत्यक्ष रूप से उत्पादक (productive) है।

सामान्य प्रशासन, डाक व तार तथा सड़कों आदि पर किया जाने वाला व्यय परोक्ष रूप में उत्पादक होता है। लोकतन्त्रीय देशों में, अधिकांश सरकारी व्यय उत्पादन में परोक्ष रूप से सहायक होता है। अब हम उत्पादन पर सरकारी व्यय के पड़ने वाले विभिन्न प्रकार के प्रभावों का अध्ययन करेंगे—

## नोट

## 18.1.2 उत्पादन पर लोक व्यय के प्रभाव

## (Effects of Public Expenditure on Production)

सरकारी व्यय के प्रभावों का विश्लेषण करते समय डाल्टन ने यह ठीक ही कहा है कि “कराधान तो ऐसा होना चाहिए कि जो उत्पादन में न्यूनतम कमी करे और सरकारी खर्च ऐसा होना चाहिए जो उत्पादन में अधिकतम वृद्धि करे, बशर्ते कि अन्य बातें समान रहें।” डाल्टन का यह भी कहना है कि उत्पादन पर सरकारी खर्च के प्रभावों का सही अध्ययन केवल तभी किया जा सकता है जबकि निम्नलिखित तत्त्वों पर इसके प्रभावों का मूल्यांकन किया जाए—

1. काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की योग्यता पर प्रभाव।
  2. काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा पर प्रभाव।
  3. विभिन्न उपयोगों तथा क्षेत्रों के बीच आर्थिक साधनों के स्थानान्तरण (diversion) पर पड़ने वाले प्रभाव।
- इन सभी तत्त्वों पर सरकारी व्यय का प्रभाव अनुकूल भी हो सकता है और प्रतिकूल भी। अब हम इन सभी तत्त्वों पर सरकारी खर्च के प्रभावों का अध्ययन करेंगे।

## 1. काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की योग्यता पर प्रभाव

## (Effects on Ability to Work Save and Invest)

सरकारी व्यय लोगों की काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की योग्यता में कई प्रकार से वृद्धि करता है। शिक्षा, चिकित्सा सेवाओं, सस्ते मकानों की सुविधाओं तथा परिवहन व संचार के साधनों आदि पर किया गया व्यय लोगों की कार्य करने की क्षमता को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त, इनमें से कुछ प्रकार के खर्च जैसे कि निःशुल्क शिक्षा, बेरोजगार के लाभों तथा निःशुल्क चिकित्सा सुविधाओं आदि पर किये गये खर्च लोगों की विशेष रूप से निम्न आय वाले वर्ग के लोगों की क्रयशक्ति में वृद्धि कर देते हैं जिससे उनकी काम करने व बचत करने की योग्यता व क्षमता में वृद्धि होती है। यही नहीं लोगों के वेतनों तथा मजदूरियों की वृद्धि पर किया जाने वाला और उन्हें सस्ती दरों पर खाद्य व अन्य आवश्यक पदार्थ प्रदान करने वाला सरकारी व्यय लोगों की क्रयशक्ति क्षमता तथा उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठा देता है जिससे उनकी काम करने तथा बचत करने की योग्यता में वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार, कानून व व्यवस्था की स्थापना पर किया गया सरकारी व्यय लोगों के मन में आत्म-विश्वास पैदा करता है; अतः यह उन्हें उत्पादकीय क्रियाओं में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करता है। जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है, वैसे-वैसे ही लोगों की आय में भी वृद्धि होती है और जब लोगों के हाथ में अधिक आय आ जाती है तो उससे उनकी काम करने, तथा बचत करने तथा निवेश (invest) करने की योग्यता में भी वृद्धि हो जाती है।

सार्वजनिक व्यय के हानिकारक प्रभाव की समस्या को दो प्रकार से दूर किया जा सकता है—(i) निर्धन वर्ग की आय में तुरन्त वृद्धि न करके धीरे-धीरे वृद्धि करनी चाहिए तथा (ii) सरकारी सहायता नकद रूप में न देकर वस्तुओं एवं सेवाओं के रूप में दी जानी चाहिए ताकि उनके दुरुपयोग की सम्भावना न रहे।

इसके विपरीत, यदि सरकारी खर्च का एक बड़ा भाग सामाजिक कार्यों पर तथा मादक पदार्थों एवं अन्य ऐसे पदार्थों के उत्पादन पर किया जाता है जो कि लोगों के स्वास्थ्य तथा उनकी कार्य-क्षमता के लिए हानिकारक होते हैं और वह भी सस्ते मूल्य पर, तो उसका लोगों की काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की योग्यता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसी प्रकार उत्पादन में सहायक होने वाली सड़कों, रेलों तथा परिवहन व संचार के अन्य साधनों के निर्माण तथा इंजीनियरिंग व चिकित्सा आदि के ट्रेनिंग कॉलेज खोलने की बजाय यदि सरकारी खर्च भारी मात्रा में फिल्म स्टूडियो, सिनेमाघरों, होटलों व मद्यपान गृहों आदि के निर्माण पर किया जाता है, तो सरकारी खर्च का ऐसा स्थानान्तरण लोगों की काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की योग्यता पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा।



नोट्स

सरकारी खर्च इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह सम्पूर्ण समुदाय के लिए अधिकाधिक लाभकारी सिद्ध हो।

## नोट

## 2. काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा पर प्रभाव (Effects on Willingness to Work, Save and Invest)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार व्यय दो प्रकार के होते हैं—भविष्य सम्बन्धी व्यय तथा वर्तमान सम्बन्धी व्यय।

(i) **भविष्य सम्बन्धी व्यय**—जहाँ तक काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा का सम्बन्ध है, यह काफी सीमा तक सरकारी व्यय की प्रकृति तथा सरकार की नीति पर निर्भर होता है। उदाहरण के लिए, वृद्धावस्था पेंशन, भविष्य निधि के लाभ (provident fund benefits) तथा बीमारी व बेरोजगारी के विरुद्ध राजकीय व्यय पर बीमे आदि की सुविधाएँ व्यक्ति को सुरक्षा तथा निश्चितता प्रदान करती हैं; अतः ये उसकी काम करने व बचत करने की इच्छा घटाती हैं। स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति कठिन श्रम क्यों करेगा तथा अधिक क्यों बचायेगा जबकि उसे मालूम है कि कमाने के लिए असमर्थ हो जाने की स्थिति में सरकार ही उसकी देखभाल करेगी। अन्य शब्दों में, वह देखता है कि सरकार ने उसका भविष्य सुरक्षित बना दिया है, अतः वह क्यों अधिक मेहनत करे। अतः यह आवश्यक है कि सरकारी खर्च का इस प्रकार नियमन किया जाए कि लोगों की काम करने की प्रेरणा पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

(ii) **वर्तमान सम्बन्धी व्यय**—इसी प्रकार, उस समय भी व्यक्ति काम करना तथा बचत करना पसन्द नहीं करेगा, यदि वह समझता है कि उसकी वर्तमान बचतों (savings) तथा निवेश (investment) से भविष्य में उसे कोई आय प्राप्त नहीं होगी। अन्य शब्दों में, यदि वह अपने भविष्य को असुरक्षित समझता है तो उसकी बचत करने व निवेश करने की इच्छा कम हो जायेगी। किन्तु यदि कार्य व बचतों में वृद्धि होने के साथ-साथ ही सरकार द्वारा प्रदान किये जाने वाले लाभ बढ़ाये जाते हैं तो अवश्य काम करने व बचत करने की इच्छा में वृद्धि होगी, अन्यथा इससे उल्टा ही होगा। काम करने तथा बचत करने की इच्छा में तब भी वृद्धि हो सकती है, यदि लोगों को इस बात का पूर्ण विश्वास हो कि उनकी वर्तमान बचतें तथा निवेश सुरक्षित हैं और यह कि उनसे उन्हें अच्छे लाभांशों की प्राप्ति होगी। यह भी कहा जाता है कि सामाजिक सुरक्षा की कार्यवाहियाँ (social security measures) व्यक्ति को काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा को कम कर देती हैं। परन्तु व्यावहारिक रूप में, इनका कोई ऐसा प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। इंग्लैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका का उदाहरण हमारे सामने है। वहाँ सरकार द्वारा सामाजिक या कार्मिक सुरक्षा की सुविधाएँ प्रदान की गईं जिनसे बचतें हतोत्साहित होने की बजाएँ बचतों को बढ़ाने में ही मदद मिली है। ये कार्यवाहियाँ सामाजिक दृष्टि से वांछनीय मानी जाती हैं और इनके सम्बन्ध में सही दृष्टिकोण यही है कि सामाजिक या कार्मिक की सुविधाएँ उस सीमा तक प्रदान की जानी चाहिए जहाँ तक कि वह बचतों तथा निवेशों को हतोत्साहित न करें। अतः सरकारी खर्च इस प्रकार किया जाना चाहिए कि सरकार अधिक मात्रा में सामाजिक सुरक्षा की सुविधाएँ प्रदान कर सके किन्तु बचत तथा निवेश के व्यय पर उसका कोई प्रत्यक्ष या प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। सरकारी व्यय द्वारा ऐसे अवसर भी मुहैया कराये जाने चाहिए कि जिनके अन्तर्गत की गई बचतों तथा निवेशों को समुचित रूप से पुरस्कृत किया जाए तथा उनसे असमानताओं में कोई वृद्धि न हो।

## 3. आर्थिक साधनों के अन्तरण पर प्रभाव

### (Effects on Diversion of Economic Resources)

सार्वजनिक व्यय से आर्थिक संसाधनों के उचित उपयोग पर भी प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है—

(अ) **अप्रत्यक्ष तथा परोक्ष स्थानान्तरण**—सरकारी व्यय आर्थिक साधनों को निजी उपयोग से सरकारी उपयोग की ओर को स्थानान्तरण कर देता है और ऐसा वह कई प्रकार से करता है उदाहरणार्थ, प्रतिकक्षा, पुलिस तथा नागरिक प्रशासन आदि पर किया गया सरकारी व्यय, साधनों के रुख को गैर-सरकारी क्षेत्र (private sector) से सरकारी क्षेत्र (public sector) की ओर मोड़ देता है। कभी-कभी ऐसे व्यय को आर्थिक अपव्यय (economic waste) कहा जाता है। जैसा कि डाल्टन ने कहा है कि “प्रत्येक प्रतिकक्षा कार्यक्रम आर्थिक साधनों को अन्य ऐसे उपयोगों से हटाता है, जिसमें कि यदि वे साधन लगे रहते तो आर्थिक कल्याण से अधिक प्रत्यक्ष योगदान कर सकते थे।”<sup>1</sup>

1. Dalton Public Finance, Page 153.

## नोट

परन्तु यह भी मान लेना सही नहीं है कि गैर-सरकारी उपयोग से सरकारी उपयोग की ओर को किया जाने वाला साधनों का यह अन्तरण लोगों द्वारा किये जाने वाले वस्तुओं के उपभोग को कम कर देता है और उसके फलस्वरूप लोगों के आर्थिक कल्याण में कमी हो जाती है। उदाहरण के लिए, प्रतिरक्षा पर किया जाने वाला सरकारी व्यय इसलिए अनुत्पादक नहीं होता है क्योंकि किसी भी राष्ट्र में आन्तरिक शान्ति उसकी बाह्य सुरक्षा की दृष्टि से वह अत्यन्त आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण होता और इसके बिना उस देश के आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि नहीं की जा सकती। अतः प्रतिरक्षा, पुलिस तथा न्याय आदि की व्यवस्था पर किया जाने वाला सरकारी खर्च इसलिए आवश्यक होता है क्योंकि इसके द्वारा एक ऐसे वातावरण का निर्माण होता है जिसमें कि देश के चालू एवं विकासशील साधनों का श्रेष्ठतम एवं अनुकूलतम उपयोग करना सम्भव हो जाता है। परन्तु यहाँ यह बात भी दृष्टिगत रखी जानी चाहिए कि इन सेवाओं पर बहुत मात्रा में किया जाने वाला सरकारी खर्च, यदि अन्य बातें समान रहें तो, उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव भी डाल सकता है। अतः उचित यही है कि ऐसा सरकारी व्यय न तो बहुत अधिक ही होना चाहिए और न बहुत कम, बल्कि इतना पर्याप्त होना चाहिए कि जिससे देश में आन्तरिक शान्ति व बाह्य सुरक्षा की स्थिति बनी रहे।

कुछ आधारभूत सेवाओं, जैसे कि सड़कों, रेलों व सिंचाई परियोजनाओं आदि के निर्माण पर किया जाने वाला सरकारी व्यय देश का आर्थिक विकास करने में बड़ा सहायक होता है। अतः एक विकासशील देश के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि ऐसी आधारभूत सेवाओं की व्यवस्था के लिए यह साधनों को गैर-सरकारी क्षेत्र से सरकारी क्षेत्र की ओर को स्थानान्तरित कर दिया जाए। इस प्रकार का सरकारी खर्च विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं के बाजारों के आकार में वृद्धि करके निजी निवेशकर्ताओं को विभिन्न आर्थिक कार्यों में धन लगाने की प्रेरणा देता है। वास्तविकता यह है कि किसी देश में इन आधारभूत आर्थिक सेवाओं की विद्यमानता तथा मात्रा ही इस बात को प्रकट करती है कि उस देश में आर्थिक विकास की कितनी सम्भावनाएँ मौजूद हैं।

सरकार द्वारा नये तथा चालू उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता के तौर पर अधिदान (bounties) तथा उपादान (subsidies) दिये जाते हैं और इस प्रकार किया गया यह सरकारी खर्च लोगों के साधनों को नये-नये उद्योगों को खोलने में लगाने के लिए तथा चालू उद्योगों का उत्पादन बढ़ाने के लिए सहायक होता है। इस प्रकार, शिक्षा, प्रशिक्षण (training), जन-स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा की योजनाएँ तथा वृद्धावस्था पेंशन आदि सामाजिक महत्त्व की मदों पर किया गया सरकारी व्यय मानवीय पूँजी (human capital) की क्षमता एवं कुशलता में तथा सामाजिक कल्याण (social welfare) में वृद्धि करता है और इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में अपना योगदान करता है। विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में ऐसा और भी अधिक तेजी से होता है। अतः इन महत्त्वपूर्ण सामाजिक सेवाओं को सम्पन्न करने के लिए यदि आर्थिक साधनों को गैर-सरकारी उपयोग से हटाकर सरकारी उपयोगों में लगाया जाये तो उसे अनुत्पादक (unproductive) नहीं माना जाना चाहिए, विशेष रूप से अल्पविकसित तथा विकासशील देशों (under-developed and developing countries) में। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आर्थिक व सामाजिक आधारभूत सेवाओं को सम्पन्न करने के लिए किया गया सरकारी खर्च इसलिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि यह उद्योगों को बाह्य किफायतें (external economies) प्रदान करता है तथा मानवीय पूँजी के सामाजिक कल्याण में वृद्धि करता है। इस प्रकार यह गैर-सरकारी धन को तीव्रगति से उद्योगों में लगाने के लिए प्रोत्साहन देता है तथा सम्पूर्ण समुदाय के आर्थिक विकास में सहायक होता है।

इसके अतिरिक्त डाल्टन ने कुछ ऐसे किस्म के खर्चों का उल्लेख किया है जो उत्पादन शक्ति में वृद्धि करते हैं तथा सामाजिक दृष्टि से वांछनीय होते हैं। ऐसे खर्च निम्नलिखित हैं—(1) ऋण-शोधन (debt redemption), जहाँ कि वापिस किया गया अधिकांश धन सामान्यतः पुनर्निवेश (re-invest) कर दिया जाता है। (2) उत्पादकीय प्रायोजनयें जैसे कि सिंचाई, वन लगाना, भूमि का उपयोगीकरण (land reclamation), बिजली तथा परिवहन का विकास आदि। ये प्रायोजनएँ दीर्घकाल में तो भारी लाभ प्रदान करती हैं किन्तु तत्काल या निकट भविष्य में चूँकि कोई प्रतिफल नहीं देती अतः निजी निवेशकर्ता (private) इनमें धन लगाने को प्रेरित नहीं होते (3) शिक्षा, प्रशिक्षण, अनुसंधान, आविष्कार तथा सूचनायें प्राप्त या प्रदान करने पर किया गया सरकारी खर्च।

## नोट

(4) सार्वजनिक या जन-स्वास्थ्य। (5) सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं में सहायता के लिए किया गया सरकारी खर्च। ये खर्च चूँकि कुछ सीमा तक कार्य-क्षमता में वृद्धि करते हैं, अतः उत्पादन-वृद्धि में सहायक होते हैं। डाल्टन का यह भी मत था कि इन मदों के रूप में किया गया सरकारी खर्च सामाजिक दृष्टि से वांछनीय होता है क्योंकि प्राइवेट हाथों में छोड़े जाने के मुकाबले यह धन उत्पादन शक्ति में अधिक वृद्धि करता है।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो यह कहते हैं कि सार्वजनिक खर्चों में कटौती की जानी चाहिए, जबकि कुछ अन्य लोगों का मत है कि इन खर्चों का क्षेत्र तथा मात्रा बढ़ाई जानी चाहिए। कुछ भी हो, उचित यह है कि सार्वजनिक व्यय में इस प्रकार में उसी के अनुरूप किये जाने वाले परिवर्तन के प्रभावों के बीच सन्तुलन स्थापित किया जाए।



क्या आप जानते हैं सड़कों, रेलों व सिंचाई परियोजनाओं आदि के निर्माण पर किया जाने वाला सरकारी व्यय देश के आर्थिक विकास में सहायक होता है।

अन्य शब्दों में, प्रत्येक मद पर किया जाने वाला व्यय उस बिन्दु (point) तक बढ़ाया जाना चाहिए जहाँ कि प्रत्येक मद से प्राप्त होने वाला सीमान्त सामाजिक लाभ (marginal social benefit) उस सीमान्त सामाजिक लागत (marginal social cost) के बराबर हो जो कि सरकारी क्षेत्र की ओर को साधनों का स्थानान्तरण होने के कारण निजी क्षेत्र में आर्थिक या सामाजिक कल्याण अथवा उत्पादन में कमी से उत्पन्न हुई है। किन्तु अधिकांश आधुनिक राजकोषीय विद्वानों का मत है कि इन दिशाओं में बढ़ाया जाने वाला सरकारी खर्च वर्तमान तथा भावी लाभों की दृष्टि से अत्यन्त उचित है। जैसा कि डाल्टन ने कहा है कि “ऐसी अनेक दिशाओं में किया जाने वाला अधिकाधिक सरकारी खर्च इसलिए वांछनीय है ताकि विभिन्न उपयोगों के बीच समुदाय के साधनों का ऐसा वितरण किया जा सके वितरण किया जा सके जिसके सर्वोत्तम परिणाम हों और जो बिना किसी पक्षपात के वर्तमान व भविष्य के बीच सन्तुलन रख सके।”<sup>1</sup> अतः यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि साधनों का अन्तरण उत्पादन बढ़ाने में तथा उसके फलस्वरूप देश के आर्थिक व सामाजिक कल्याण को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान करता है और इस प्रकार बढ़ा हुआ सरकारी खर्च आर्थिक प्रगति तथा सामाजिक कल्याण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होता है।

**( ब ) आर्थिक स्थिरता एवं साधनों का स्थानान्तरण—आर्थिक स्थिरता (economic stability) अर्थात् पूर्ण रोजगार तथा मूल्यों के स्थायित्व को बनाये रखने के लिए भी आर्थिक साधनों के स्थानान्तरण (diversion) को महत्वपूर्ण माना जाता है।** किसी भी निश्चित अवधि में, यह हो सकता है। कि नये निवेश या विनियोग की मात्रा नई बचतों की मात्रा से मेल न खाये अर्थात् निवेश (investment) स्वयमेव बचतों (savings) के बराबर न हो। इस अनुरूपता का अभाव (lack of coincidence) ही मूल्य-स्तर की अस्थिरता, मुद्रास्फीति (inflation), मुद्रा अवस्फीति (deflation) तथा बेरोजगारी का एक कारण है। इस अनुरूपता को लाने के लिए आर्थिक बचत तथा निवेश के बीच समान सन्तुलन आने व बनाये रखने के लिए प्रायः सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। जब बचतों की मात्रा निवेश से अधिक होती है तो अर्थव्यवस्था में सुस्ती उत्पन्न हो जाती है जो अन्ततः मन्दी को जन्म देती है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि सरकारी खर्च सरकारी राजस्व से अधिक हो और सरकारी घाटे की बजट नीति अपनाये।

मन्दी के समय में सरकार के अतिरिक्त व्यय की वित्तीय व्यवस्था बैंकों से उधार लेकर की जानी चाहिए और इस व्यय का रुख सार्वजनिक निर्माण के कार्यक्रमों की ओर को मोड़ देना चाहिए। सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर किये जाने वाले व्यय से लोगों के हाथों में द्रव्य-आय की मात्रा बढ़ जाती है और उससे कुल समर्थ या प्रभावी माँग (aggregate effective demand) भी बढ़ जाती है। इस बढ़ी माँग को पूरा करने के लिए गैर-सरकारी क्षेत्र में निवेश की मात्रा भी बढ़ती है। परिणामस्वरूप, पूर्ण रोजगार की दशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अन्य शब्दों में, सरकारी व्यय की मदद से निवेश बचतों के बराबर हो जाते हैं।

इसके विपरीत, जब निवेश बचतों से अधिक हो जाते हैं तो मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में यह आवश्यक है कि सरकारी व्यय सरकारी आय के स्तर से नीचा रहे, अर्थात् सरकारी बेशीय बजट की

1. Dalton Public Finance, Page 158.

## नोट

नीति अपनाये। यदि जोखिम पूँजी (risk capital) की कमी दिखाई दे, तो सरकार को चाहिए कि यह बजट की बेशी का धन लोक निकायों (public bodies) को अथवा कुछ चुने हुए निजी उद्यमों को उधार दे दे। यह भी हो सकता है कि इन कर्जों के बदले में सरकार इन उद्यमों में अंशधारी (share-holder) बन जाए। परन्तु यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यह दृष्टिकोण विकासशील देशों की अपेक्षा विकसित देशों के लिए अधिक सही है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सरकारी व्यय में इस प्रकार विभिन्नता रखी जानी चाहिए जिससे कि आर्थिक स्थिरता अर्थात् पूर्ण रोजगार तथा मूल्य-स्थिरता बनी रहे।

( स ) विभिन्न क्षेत्रों के बीच साधनों का स्थानान्तरण कभी-कभी सरकारी खर्च के द्वारा आर्थिक साधनों का विभिन्न क्षेत्रों के बीच भी स्थानान्तरण किया जाता है। इसमें उत्पादन-शक्ति बढ़ती है और प्रायः प्रादेशिक या क्षेत्रीय असमानताओं में भी कमी आती है। सरकार पिछड़े क्षेत्रों के लिए विशेष व्यय कर सकती है ताकि सम्पूर्ण देश के आर्थिक विकास में सन्तुलन बनाये रखा जा सके। पिछड़े क्षेत्रों का औद्योगिक विकास तीव्र गति से करने के लिए सरकार ऐसे क्षेत्रों में स्थापित किये गये उद्योगों को विशेष ऋण, उपादान (subsidies) तथा अन्य सुविधाएँ दे सकती है। विभिन्न क्षेत्रों के बीच साधनों में इस प्रकार का विभेदीकरण (diversification) आमतौर पर सहायक अनुदानों के माध्यम से संघीय राज्य में लागू किया जाता है। सहायक अनुदान (grants-in-aid) केन्द्र सरकार द्वारा राज्य को और राज्य सरकारों द्वारा स्थानीय सरकारों को इसलिए दिये जाते हैं ताकि आर्थिक साधन विकसित क्षेत्रों से कम विकसित क्षेत्रों की ओर को स्थानान्तरित हो जायें। इससे पिछड़े क्षेत्रों की उत्पादन शक्ति बढ़ती है और क्षेत्रीय असमानताएँ दूर होती हैं।

डाल्टन ने यह ठीक ही कहा है कि निजी उपयोग से सरकारी उपयोग की ओर तथा विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक साधनों के स्थानान्तरण में सरकारी खर्च का योगदान केवल तभी महत्त्वपूर्ण माना जाता है जबकि लोक-सत्ताओं (Public authorities) की आर्थिक क्रियाओं का क्षेत्र छोटा हो। अन्य शब्दों में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में ही इस योगदान का अधिक महत्त्व होता है। यह क्षेत्र (range) ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, त्यों-त्यों सरकारी खर्च का महत्त्व कम होता जाता है और ऐसा समाजवादी अर्थव्यवस्था (socialistic economy) में होता है। उदाहरण के लिए, सोवियत संघ में, जहाँ उत्पादन के साधनों पर राज्य का ही स्वामित्व तथा नियन्त्रण है, लोक वित्त (Public Finance) सम्पूर्ण सरकारी अर्थव्यवस्था में ही विलीन रहता है। यहाँ राज्य ही सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण रखता है। ऐसी अर्थव्यवस्था में, निजी उपयोग से सरकारी उपयोग की ओर को साधनों के स्थानान्तरण का प्रश्न ही नहीं उठता है। वहाँ तो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का निर्देशन केन्द्रीय नियोजन प्रधिकरण (Central Planning Authority) द्वारा कुछ विशेष रूप से चुने हुए लक्ष्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है।

भारत जैसी मिश्रित अर्थव्यवस्था (mixed economy) के अन्तर्गत, जहाँ कि सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही क्षेत्र महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं, साधनों के स्थानान्तरण तथा काम करने, बचत करने व निवेश की योग्यता व इच्छा पर सरकारी खर्च के प्रभाव का सम्पूर्ण देश के आर्थिक विकास की दृष्टि से भार महत्त्व है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लोक व्यय द्वारा आर्थिक साधनों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर अथवा एक उपयोग से दूसरे उपयोग में स्थानान्तरित किया जा सकता है। आर्थिक साधनों को किसी विशेष व्यवसाय में स्थानान्तरित करने पर उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। यह स्थानान्तरण अनुदान देकर निजी उद्योगों की स्थापना करके किया जा सकता है। निजी उद्योग के उत्पादन से उत्पत्ति के विभिन्न साधन निजी उद्योग की ओर ही खिंच जायेंगे, जिससे उत्पादन निरन्तर बढ़ता चला जायेगा। विभिन्न साधनों का यह उपयोग मनुष्यों की वर्तमान अथवा भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला होता है।

सरकारी व्यय द्वारा आर्थिक साधनों का स्थानान्तरण विभिन्न स्थानों पर भी हो सकता है तथा उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। उदाहरणार्थ—यदि केन्द्र सरकार स्थानीय सरकारों को अनुदान देती है, तो स्थानीय सरकारों द्वारा उस



## नोट

अनुदान का समुचित उपयोग करने से उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होगी तथा उत्पत्ति के विभिन्न साधन भी उसी ओर आकृष्ट होते जायेंगे।

कुछ ऐसे स्थानों पर, जहाँ औद्योगीकरण नहीं हुआ है, सरकार द्वारा यातायात-सुविधाएँ, बिजली, पानी, आवास, बैंकिंग आदि की सुविधाएँ प्रदान करने पर उद्योगपति इन स्थानों पर उद्योगों की स्थापना करेंगे, जिसके परिणामस्वरूप उत्पत्ति के साधन भी उसी ओर आकृष्ट होंगे।

**निष्कर्ष**—उत्पादन पर सार्वजनिक व्यय के प्रभाव के सम्बन्ध में डाल्टन का मत है कि “उत्पादन के दृष्टिकोण से सार्वजनिक व्यय के वे प्रकार समाज के लिए अच्छे माने जाते हैं जो यदि आवश्यक रकम को निजी हाथों में छोड़ दिया जाता तो उसकी तुलना में वह (सार्वजनिक क्षेत्र में) उत्पादन शक्ति में अधिक वृद्धि करते।”<sup>1</sup>

डाल्टन यह भी मानते हैं कि अकेले करारोपण ही उत्पादन पर नियन्त्रण कर सकता है। उन्हीं के शब्दों में—“इसमें थोड़ी भी शंका नहीं हो सकती कि बुद्धिमानी से किये गये सार्वजनिक व्यय की व्यवस्था द्वारा उत्पादन को प्राप्त प्रोत्साहन, करारोपण तथा व्यवस्था को पूरा करने के लिए आवश्यक अन्य तरीकों से की गई उत्पादन में कमी की अपेक्षा बहुत ही अधिक होना चाहिए, यदि इनका भी अच्छी तरह चुनाव किया जाये।”<sup>2</sup>

### वितरण पर लोक व्यय के प्रभाव (Effects of Public Expenditure on Distribution)

सार्वजनिक व्यय केवल उत्पादन पर ही प्रभाव नहीं डालता, बल्कि यह धन का समान एवं न्यायपूर्ण वितरण करने के लिए सरकार के हाथों का एक अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्र होता है। धन का समान एवं न्यायोचित वितरण करने के लिए, सरकार केवल अपनी कराधान नीति (taxation policy) का ही उपयोग नहीं करती, बल्कि उद्देश्य की पूर्ति में सरकारी, व्यय भी बड़ा महत्वपूर्ण योगदान करता है। वास्तव में बात यह है कि आय की विषमताओं को दूर करने में कराधान तथा सरकारी व्यय का योगदान पूरक (Complementary) तथा अनुपूरक (Supplementary) होता है। सरकार जब अपनी व्यय-नीति का निर्धारण करती है तो उसे निश्चय करना होता है कि समाज के किस वर्ग को उसे सर्वाधिक लाभ पहुँचाना है। यदि सरकार अपना अधिकांश व्यय धनी लोगों के कल्याण पर ही व्यय करती है, तब तो उसके देश में आय की असमानताओं में और भी अधिक वृद्धि होगी। इसके विपरीत, यदि अधिकांश सरकारी धन निर्धन लोगों के कल्याण पर खर्च किया जाता है, तो उससे समाज में आय तथा धन का अधिक समान एवं न्यायपूर्ण वितरण करना सम्भव होगा।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. सरकारी व्यय देश के उत्पादन को दो प्रकार से प्रभावित कर सकता है; एक तो प्रत्यक्ष रूप से और दूसरा ..... रूप से।
2. सार्वजनिक व्यय से ..... संसाधनों के उचित उपयोग पर भी प्रभाव पड़ता है।
3. जब बचतों की मात्रा निवेश से अधिक होती है तो अर्थव्यवस्था में सुस्ती उत्पन्न हो जाती है जो अन्ततः ..... को जन्म देती है।
4. आर्थिक साधनों को किसी विशेष व्यवसाय में स्थानांतरित करने पर ..... में वृद्धि की जा सकती है।
5. आय की विषमताओं को दूर करने में कराधान तथा सरकारी व्यय का योगदान पूरक तथा ..... होता है।

1. “From the Point of view of production those forms of public expenditure are socially desirable which will increase productive power more than it would be increased if the funds required were left in private hands.”  
—Dalton.

2. “There can be little doubt that the stimulate to production afforded by a wise system of public expenditure should far outweigh the check. If any to production result from the taxation and other devices required to finance this system, provided that these too are well chosen.”  
—Dalton.

## 18.2 आरोही, अनुपाती तथा अवरोही व्यय का योगदान

### (Role of Progressive, Proportional and Regressive Expenditure)

उत्पादन तथा रोजगार पर सरकारी खर्च के प्रभावों के प्रश्न के सम्बन्ध में डाल्टन का निष्कर्ष यह है कि, “जहाँ केवल कराधान को लिया जायेगा तो उससे उत्पादन अवरुद्ध होगा और जहाँ केवल सरकारी खर्च को लिया जायेगा, वहाँ उससे उत्पादन में निश्चित वृद्धि होगी” डाल्टन का यह दृढ़ विश्वास था कि सरकारी खर्च से उत्पादन में सदा ही वृद्धि होगी, बशर्ते कि उसे इतनी बुद्धिमत्ता के साथ किया जाये कि कराधान के कारण यदि उत्पादन में कोई अवरोध आ गया हो तो वह उससे (सरकारी व्यय से) समाप्त हो जाये।

अवरोही अनुपात और आरोही सार्वजनिक व्यय का आशय-यदि सरकारी खर्च उच्च आय वाले वर्ग के लोगों को अधिक लाभ पहुँचाये और समाज के निर्धन वर्ग के लोगों को कम, तो खर्च को **अवरोही सार्वजनिक व्यय** (Regressive Public Expenditure) कहा जायेगा। यदि सरकारी खर्च समाज के निर्धन वर्ग के लोगों को अधिक और धनी वर्ग के लोगों को कम लाभ पहुँचाये, तो उसे **प्रगतिशील सार्वजनिक व्यय** (Progressive Public Expenditure) कहा जायेगा और यदि सरकारी व्यय इस प्रकार किया जाए कि वह समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों को उनकी आमदनियों के अनुपात में ही लाभ पहुँचाये, तो ऐसे खर्च को अनुपाती व्यय कहा जाता है। अनुपाती व्यय (proportional expenditure) में आय में वृद्धि के साथ ही साथ लाभ भी बढ़ते हैं परन्तु लाभों की वृद्धि आय के अनुपात में ही होती है। अवरोही व्यय (regressive expenditure) में लाभ आय की वृद्धि की दर से भी तीव्र गति से बढ़ते हैं। किन्तु अवरोही व्यय (regressive expenditure) में, जिस गति से आय बढ़ती है उससे भी तीव्र गति से सार्वजनिक व्यय के लाभ (benefits) घटते हैं।

(1) **अवरोही या प्रतिगामी व्यय** (Regressive Expenditure)—एक वर्ग की जितनी आय कम होती है सार्वजनिक व्यय से यदि उस वर्ग को उतना ही लाभ कम अनुपात में प्राप्त होता है तो वह सार्वजनिक व्यय अवरोही कहलायेगा। उदाहरण-यदि भारत सरकार निर्धनों के बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा पर व्यय न करके उच्च वर्ग के बच्चों के लिए शिक्षा संस्थाओं पर व्यय करती है तो यह अवरोही व्यय कहलायेगा।

(2) **अनुपाती व्यय** (Proportional Expenditure)—यदि विभिन्न वर्गों को उनकी आय के अनुपात में ही सार्वजनिक व्यय से लाभ प्राप्त होता है तो इस व्यय को अनुपाती व्यय कहेंगे। उदाहरणार्थ—कर्मचारियों के वेतनमानों में वृद्धि होने के साथ-साथ उन्हें सार्वजनिक व्यय से प्राप्त होने वाला लाभ भी उसी अनुपात में प्राप्त हो।

(3) **प्रगतिशील अथवा आरोही व्यय** (Progressive Expenditure)—किसी वर्ग की आय जितनी कम है सार्वजनिक व्यय से होने वाले लाभ का अनुपात यदि उतना ही अधिक मिलता है तो उसे आरोही व्यय कहेंगे। जैसे-निर्धन वर्ग के लिए निःशुल्क शिक्षा, चिकित्सा पर व्यय, वृद्धावस्था पेन्शन आदि।

असमानताओं में कमी करने में आरोही व्यय को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सार्वजनिक व्यय जितना अधिक होगा, आय की असमानता उतनी अधिक बढ़ जायेगी और व्यय जितना आरोही होगा आय की असमानता उतनी अधिक तेजी से कम होगी। अधिकतम सामाजिक कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु भी यह आवश्यक है कि सार्वजनिक व्यय में आरोही अनुदान नीति को ही अपनाया जाये। आरोही व्यय के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं—

अतः वितरण में सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य यह होना चाहिए कि आय की असमानताएँ कम हों जिससे देश के आर्थिक व सामाजिक कल्याण में अधिकतम वृद्धि हो। डाल्टन के ही शब्दों में, “सरकारी खर्च की वह पद्धति सर्वोत्तम है जिसमें आय की विषमताओं को कम करने की सबसे दृढ़ प्रवृत्ति पाई जाती है।”<sup>1</sup> इस प्रकार स्पष्ट है कि खर्च की आरोही प्रवृत्ति आय की असमानताओं को कम करती है। यही नहीं व्यय में आरोहण (Progression) की दर जितनी तीव्र होती है, उसमें आय की असमानताओं को कम करने की अर्थात् धनी व निर्धन वर्गों के बीच की खाई को पाटने की प्रवृत्ति भी उतनी अधिक दृढ़ होती है। ऐसी स्थिति में, सरकारी खर्च उच्च आय वाले वर्गों के मुकाबले निम्न आय वाले वर्गों को अधिक लाभ पहुँचाता है। अतः यदि कोई सरकार इन असमानताओं को कम करना चाहती है तो आरोही व्यय का आश्रय लेना चाहिए।

1. Ibid.

## नोट



टास्क अनुपाती व्यय को स्पष्ट करें।

### 18.3 प्रगतिशील अथवा आरोही व्यय के रूप (Forms of Progressive Expenditure)

आरोही व्यय के अनेक रूप हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

(1) **नकद अनुदान (Cash Grants)**—नकद अनुदान धन की वह अदायगी है जो कि सरकार द्वारा प्राप्तकर्ता को नकद रूप में दी जाती है। वृद्धावस्था पेन्शन तथा बीमारी, बेरोजगारी तथा दुर्घटना के समय मिलने वाले लाभ नकद अनुदानों के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। ये सभी अनुदान चूँकि निम्न आय वाले वर्गों के पक्ष में आय का पुनर्वितरण करते हैं, अतः ये आरोही प्रकृति के हैं। प्राप्तकर्ताओं को ये भुगतान या लाभ उस स्थिति में प्राप्त होते हैं जबकि उन्हें उसकी भारी आवश्यकता होती है। ऐसा सरकारी व्यय निःसन्देह आय की असमानताओं को कम करता है और लोगों के आर्थिक व सामाजिक कल्याण में वृद्धि करता है। इन लक्ष्यों की पूर्ति उस स्थिति में और भी अधिक होती है जबकि ऐसे अनुदान व्यक्ति के परिवार के आकार तथा जीवन की विभिन्न अवधियों में उसकी आवश्यकता के अनुसार दिये जाते हैं। संसार के अधिकांश देशों में अनेक सामाजिक सुरक्षा की कार्यवाहियों—जैसे की वृद्धावस्था पेन्शन, बीमारी के लाभ (sickness benefits), बेरोजगारी के लाभ, उद्योगजनित क्षति के लाभ (industrial injury benefits), मातृत्वकालीन लाभ (maternity benefits), विधवा पेन्शन (widows pension), बच्चों का भत्ता (children's allowance) तथा निःशुल्क स्वास्थ्य सेवा आदि की व्यवस्था—के लिए जो विधान या कानून बनाये जाते हैं उनका लक्ष्य भी यही रहता है। यदि “लाभ प्राप्त करने की योग्यता के अनुसार सरकारी खर्च और अदा करने की योग्यता के अनुसार कराधान”<sup>1</sup> के सिद्धान्त को लागू किया जाये, तो अधिकतम सामाजिक कल्याण (maximum social welfare) के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

(2) **निःशुल्क अथवा सस्ती वस्तुयें तथा सेवायें (Free or Cheap Goods and Services)**—जो वस्तुयें अथवा सेवायें सरकार द्वारा निःशुल्क अथवा सस्ती कीमतों पर दी जाती हैं, उससे धनी वर्ग के मुकाबले समाज के निर्धन वर्गों को अधिक लाभ पहुँचता है। इन लाभों के कारण चूँकि निर्धन वर्ग के लोगों की वास्तविक आय (real income) बढ़ जाती है अतः उससे आय की असमानताएँ कुछ कम होती हैं। निःशुल्क प्राइमरी शिक्षा, उच्च शिक्षा के लिए आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए फीस माफी तथा निर्धन वर्ग के स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए मुफ्त दूध या भोजन की व्यवस्था आदि पर किया जाने वाला सरकारी खर्च आरोही प्रकृति का होता है। और यह धनी वर्ग के मुकाबले समाज के निर्धन वर्गों की वास्तविक आय में आर्थिक व सामाजिक कल्याण में अधिक वृद्धि करता है। इसी प्रकार, सस्ते अनाज की व्यवस्था पर किया जाने वाला सरकारी खर्च भी आरोही (progressive) होता है बशर्ते कि धनी वर्ग की तुलना से निर्धन वर्ग के लोग अपने व्यय का एक बड़ा अनुपात इसकी खरीदारी पर लगायें<sup>2</sup> समाज के सभी सदस्यों के लिए निःशुल्क स्वास्थ्य सेवा की व्यवस्था आरोही व्यय का अन्य उदाहरण है जो कि आय की असमानताओं को कम करता है, “ठीक वैसे ही जैसे कि निःशुल्क स्वास्थ्य सेवा की असमानता के क्षेत्र को छोटा करती है।”<sup>3</sup> परन्तु यह कहा जाता है कि “कम असमान समाज के लक्ष्य तक पहुँचने की यह केवल एक सड़क है।”<sup>4</sup> इस प्रकार डाल्टन ने उन अधिकांश आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मत का समर्थन किया है जो. प्रो. टॉनी (Towney) के विचारों के मुकाबले अधिक आरोही व्यय में विश्वास करते हैं।

1. Ibid., Page 167.
2. Ibid., page 165.
3. Prof. Towney's—Quoted by Dalton, page 166.
4. Dalton, Public Finance, page 166.

## नोट

अब यह बात बिल्कुल स्पष्ट होती जा रही है कि निर्धन लोगों की आय बढ़ाने तथा असमानताओं को कम करने में आरोही सरकारी व्यय महत्वपूर्ण योगदान करता है। परन्तु इसकी भी कुछ सीमाएँ हैं। ये हैं— (i) सरकारी व्यय से काम करने तथा बचत करने से लोगों के प्रयत्नों को चोट पहुँच सकती है। (ii) दूसरे, यह भी हो सकता है कि तीव्र प्रगतिशील सार्वजनिक व्यय के लिए लगाये गये तीव्र आरोही या प्रगतिशील कराधान से करदाताओं की कठिन श्रम करने व अधिक बचाने की इच्छा हतोत्साहित हो जाये। डाल्टन के ही शब्दों में, “यदि किसी अनुदान के कारण कोई व्यक्ति उसके मुकाबले कम काम तथा बचत करता है जितना कि वह अन्य स्थिति में करता, तो इससे उसकी आय बढ़ाने में अनुदान का प्रभाव कम हो जायेगा, और उसके विपरीत दशा में अनुदान के प्रभावों में वृद्धि हो जायेगी।”<sup>1</sup>

इस प्रकार, यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रगतिशील व्यय तथा प्रगतिशील कराधान के द्वारा कहीं लोगों के मस्तिष्क में यह बात न बैठ जाये कि उन्हें अपनी भलाई के लिए स्वयं काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की आवश्यकता नहीं है, और यह सरकार का काम है कि वह उनके जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। अतः यह इस बात आमतौर पर स्वीकार की जाती है कि सरकारी व्यय की योजना इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि काम करने, बचत करने तथा निवेश करने की इच्छा पर उसका प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

#### 18.4 उत्पादन बनाम वितरण (Production vs Distribution)

कुछ लोगों का विचार है कि सरकारी व्यय के द्वारा आय के पुनर्वितरण के लक्षण का उत्पादन बढ़ाने के लक्ष्य से टकराव हो सकता है। अतः यह कहा जाता है कि तीव्र प्रगतिशील सार्वजनिक व्यय के कारण तीव्र आरोही कर लगाने पड़ते हैं जिससे बचतें तथा निवेश हतोत्साहित हो सकते हैं और वह इस प्रकार क्योंकि लोग सोचने लगते हैं कि बचतों व निवेश से उनकी जो आय बढ़ेगी, उसका अधिकांश भाग सरकार करों के रूप में ले लेगी। इस प्रकार, अत्यधिक आरोही या प्रगतिशील कराधान (highly progressive taxation) कठिन श्रम करने, बचत करने तथा निवेश करने की लोगों की प्रेरणा को समाप्त कर सकता है तथा आर्थिक प्रगति के लिए अनुत्पादक (unproductive) सिद्ध हो सकता है और जब सरकारी खर्च के द्वारा समाज के निर्धन वर्गों की सुविधाएँ बढ़ाने तथा धन का समान एवं न्यायपूर्ण वितरण करने के लिए अधिक कर लगाये जाने के कारण उत्पादन ही घट जायेगा तो उस स्थिति में सरकारी खर्च के द्वारा ऐसे पुनर्वितरण से गरीबी का ही वितरण होगा, धन या आय का नहीं। अल्पविकसित देशों में उस समय विशेष रूप से ऐसा होता है जबकि धनी लोगों की आय करों के रूप में ली जाती है और वह उत्पादन कार्यों में नहीं लगाई जाती तथा आय तथा धन के वितरण की असमानताओं को दूर करने के लिए कल्याण कार्यों में खर्च कर दी जाती है।

पर इसके बावजूद, इसका यह अर्थ नहीं है कि उत्पादन तथा आर्थिक प्रगति के लिए सभी प्रकार के कराधान अवांछनीय होते हैं। बल्कि इसके विपरीत, होना यह चाहिए कि तर्कसंगत कराधान की एक ऐसी नीति अपनाई जानी चाहिए जो कि अदा करने की योग्यता के सिद्धान्त (principle of ability to pay) पर आधारित हो। ऐसे कराधान से उत्पादन हतोत्साहित नहीं होता। इसी प्रकार, समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सरकारी खर्च का वितरण भी प्राप्त करने की योग्यता के सिद्धान्त (principle of ability to receive) के अनुसार तथा प्रत्येक परिवार के आकार व व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाना चाहिए। इससे एक ओर तो उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा और दूसरी ओर यह आय तथा धन के समुचित वितरण में भी ठीक योगदान करेगा। अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि ये दोनों लक्ष्य सदा ही एक दूसरे से टकराते हों, ऐसी बात नहीं है; बल्कि इसके विपरीत तथ्य यह है कि यदि सरकार इन दोनों लक्ष्यों के बीच समुचित सन्तुलन बनाये रखे तो ये दोनों परस्पर एक दूसरे के लिए पूरक (complementary) अथवा आवश्यक (necessary) बन जाते हैं।

1. Ibid.

## नोट

**18.4.1 लोक व्यय और आर्थिक स्थिरता (Public Expenditure and Economic Stability)**

आर्थिक स्थिरता अथवा अस्थिरता (या आर्थिक प्रगति) के विश्लेषण (analysis) के लिए उसको मापने की एक उपयुक्त पद्धति की आवश्यकता होती है। आर्थिक अस्थिरता (economic instability) एक संख्यात्मक या मात्रात्मक धारणा (quantitative concept) है जो कि किसी आदर्श से विचलित होने की मात्रा तथा गति से सम्बद्ध होती है। दो प्रकार की आर्थिक अस्थिरता का महत्त्व बहुत अधिक होता है: एक तो पैदावार की अस्थिरता (instability of output) (अथवा आय या रोजगार की अस्थिरता) तथा दूसरी कीमतों की अस्थिरता (instability of prices)। ये ही वे मुख्य अस्थिरताएँ हैं जिन पर सरकारी खर्च के प्रभावों का विश्लेषण किया जाता है।

**आर्थिक अस्थिरता का आशय (Meaning of Economic Instability)**—आर्थिक स्थिरता का अर्थ है स्थिर मूल्य स्तरों (stable price levels) पर पूर्ण रोजगार की स्थिति से विचलन (departure)। पूर्ण रोजगार तथा मूल्य स्तर स्थिरता की महत्त्वपूर्ण दशा, कीन्स के अनुसार, तब होती है, जबकि बचतें (savings) निवेश (investments) के बराबर होती हैं। (अर्थात्  $S = I$ )। जब बचतें निवेश से अधिक हो जाती हैं तो उससे अर्थव्यवस्था में सुस्ती (recession) आ जाती है जिससे मन्दी (depression) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके विपरीत, जब निवेश या विनियोग बचतों से अधिक हो जाते हैं तो उससे तेजी या मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। तेजी और मन्दी (booms and depressions) की ये स्थितियाँ एक शताब्दी से भी अधिक समय तक पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं का मुख्य लक्षण बनी रही हैं। बढ़ती कीमतों तथा व्यावसायिक समृद्धि अर्थात् मुद्रास्फीति (inflation) की स्थिति के बाद घटती कीमतों, व्यावसायिक हानियों तथा बेरोजगारी की अर्थात् मुद्रा अवस्फीति (deflation) की स्थिति आती है।



नोट्स

तेजी से मन्दी और मन्दी से तेजी के इन चक्रों की न तो अवधि ही एक समान होती है और न इनकी तीव्रता की मात्रा ही एक समान होती है।

ये चक्रीय उतार-चढ़ाव सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को ही अस्त-व्यस्त कर देते हैं और अधिकांश लोगों के लिए भारी कठिनाइयाँ पैदा कर देते हैं। बढ़ती हुई कीमतें निश्चित आय वाले वर्ग के लोगों के सामने मुसीबतों का पहाड़ खड़ा कर देती हैं। उधर गिरती हुई कीमतों से भी भारी व्यावसायिक हानियाँ तथा विनाश होता है और व्यापक बेरोजगारी फैल जाती है।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

6. जहाँ केवल कराधान को लिया जायेगा तो उससे उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
 

(अ) उत्पादन अवरुद्ध होगा	(ब) उत्पादन बिना किसी बाधा के चलता रहेगा
(स) उत्पादन नहीं होगा	(द) उत्पादन पूर्णरूपेण रुक जाएगा।
7. किस व्यय में आय में वृद्धि के साथ ही साथ लाभ भी बढ़ते हैं?
 

(अ) समानुपाती	(ब) अनुपाती
(स) आरोही	(द) अवरोही।
8. किसी वर्ग की आय जितनी कम है सार्वजनिक व्यय से होने वाले लाभ का अनुपात यदि उतना ही अधिक मिलता है तो उसे क्या कहेंगे?
 

(अ) अनुपाती व्यय	(ब) अवरोही व्यय
(स) आरोही व्यय	(द) उपरोक्त सभी।

## 18.5 बेरोजगारी आर्थिक अस्थिरता का ही परिणाम है

### (Unemployment is the Result of Economic Instability)

बेरोजगारी को आर्थिक कुसंगठन (economic disorganisation) का एक मुख्य प्रतीक माना जाता है। यह केवल तभी उत्पन्न होती है जबकि उत्पादन के विभिन्न साधनों के बीच कुसमायोजन (maladjustment) अथवा कुव्यवस्था (disorder) उत्पन्न हो जाती है। यह अर्थव्यवस्था (economy) के लिए सर्वाधिक अरुचिकर स्थिति होती है; कारण यह है कि जो लोग इनके शिकार होते हैं उसके लिए यह बड़े कष्ट तथा मुसीबतें खड़ी कर देती है और उनका नैतिक पतन करा देती है। अतः यह सरकार का उत्तरदायित्व होता है कि वह पूर्ण रोजगार की स्थिति उत्पन्न करे व उसे बनाये रखे और यह जहाँ तक भी सम्भव हो, अर्थव्यवस्था को बेरोजगारी के अभिशाप से मुक्त कराये। कीन्स का रोजगार का सामान्य सिद्धान्त (general theory of employment) बेरोजगारी के कारणों की व्याख्या करता है और बताता है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति कैसे प्राप्त की जा सकती है। यहाँ हमें रोजगार के सिद्धान्तों की अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है, अपितु केवल यह देखना है कि रोजगार की मात्रा का निर्धारण करने तथा पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने में सरकारी खर्च क्या योगदान कर सकता है।

#### 18.5.1 आर्थिक अस्थिरता कैसे उत्पन्न होती है?

##### (How does Economic Instability Occur?)

यहाँ कीन्स के रोजगार सिद्धान्त का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना इसलिए आवश्यक है ताकि यह जाना जा सके कि देश में आर्थिक क्रियाओं का सामान्य स्तर किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है; अन्य शब्दों में, यह जाना सके कि आर्थिक अस्थिरता कैसे उत्पन्न होती है अथवा बेरोजगारी का जन्म कैसे होता है?

कीन्स का रोजगार सिद्धान्त इस सीधे से तर्क पर आधारित है कि जो एक आदमी का खर्च होता है, वह दूसरे आदमी की आय होती है। कोई भी खर्च या तो उपभोग की वस्तुओं की खरीद पर किया जाता है अथवा ऐसी वस्तुओं व सेवाओं की खरीद पर जो और धन के उत्पादन में लगाई जाती हैं, जैसे कि फैक्ट्री के लोक व्यय के प्रभाव के लिए श्रमिकों को जुटाना, इस्पात, सीमेंट या शक्ति का उत्पादन तथा नहरों व नालों आदि का निर्माण।

उपयोग की वस्तुओं अथवा निवेश की वस्तुओं का उत्पादन करके व्यक्ति जो आय कमाता है, वह या तो सारी आय उपभोग पर खर्च कर सकता है अथवा उसका कुछ भाग वह बचा सकता है जिसका अर्थ यही है कि वह भाग उसने खर्च नहीं किया। यदि वह अपनी सम्पूर्ण आय खर्च कर देता है तो उससे अन्य किसी व्यक्ति की उतनी ही आय बढ़ती है; और यदि प्रत्येक व्यक्ति ही अपनी सम्पूर्ण आय को खर्च कर देता है तो यह माना जाता है कि आमदनियों और खर्चों का चक्र स्थिर है अर्थात् उसमें उतार-चढ़ाव नहीं है। इसे ही हम पूर्ण रोजगार की या स्थिर कीमतों की अथवा आर्थिक स्थिरता की स्थिति कहते हैं।

परन्तु व्यक्ति द्वारा प्राप्त की जाने वाली आय का एक भाग यदि खर्च नहीं किया जाता है और खर्च की यह कमी निवेश व्यय (investment expenditure) द्वारा भी पूरी नहीं की जाती है, तो एक व्यक्ति का यह घटा हुआ खर्च अन्य व्यक्तियों की आय को कम कर देगा। कम आय होने से वे लोग भी कम खर्च करेंगे जिसके फलस्वरूप और अन्य लोगों की आय भी कम हो जायेगी। इससे आमदनियों व खर्चों के घेरे (circles) की परिधि (circumference) कम हो जायेगी जिसके कारण बेरोजगारी उत्पन्न होगी।

कीन्स के अनुसार बचतें सदा ही निवेश को बराबर करने की प्रवृत्ति रखती हैं।

$$Y = \text{कुल आय} = C + I$$

यहाँ C उपभोग्य वस्तुओं से होने वाली आय का प्रतीक है, I निवेश की वस्तुओं से होने वाली आय का प्रतीक है। आय को या तो उपभोग में खर्च किया जा सकता है अथवा उसे बचाया जा सकता है। अतः

$$Y = C + S$$

**नोट**

यहाँ C अक्षर उपभोग में लगायी जाने वाली आय को प्रकट करता है। और S अक्षर बचायी हुई आय का सूचक है। अतः

$$Y = C + I \text{ तथा } Y = C + S$$

$$\therefore C + I = C + S$$

$$\therefore I = S$$

इस प्रकार, स्पष्ट है कि निवेश सदा ही बचतों के बराबर होते हैं। इसे ही हम आर्थिक स्थिरता या पूर्ण रोजगार की स्थिति कहते हैं। ऐसी स्थिति में, कुल आय (Y) या तो उपभोग वस्तुओं (C) की खरीद पर व्यय कर दी जाती है अथवा ऐसी वस्तुओं व सेवाओं (I) की खरीद पर, जो कि धन के अधिक उत्पादन में लगाई जाती हैं। परन्तु जैसे-जैसे आय बढ़ती है वैसे ही वैसे लोगों की उपभोग-प्रवृत्ति (propensity to consume) कम होती है; अन्य शब्दों में चूँकि अतिरिक्त आय का एक बड़ा भाग खर्च न करके बचा लिया जाता है अतः लोगों की बचत-प्रवृत्ति (propensity to save) बढ़ने लगती है। यह बचाई हुई आय अर्थव्यवस्था (economy) में अस्थिरता उत्पन्न करती है। अतः आर्थिक स्थिरता बनाये रखने के लिए, अन्य शब्दों में, आय तथा रोजगार को प्रचलित स्तर पर बनाये रखने के लिए, यह अत्यन्त आवश्यक है कि घटे हुए उपभोग के कारण उत्पादित वस्तुओं की माँग में कमी के प्रभावों को जाता है। इस स्थिति में सरकारी खर्च का लक्ष्य यह होना चाहिए कि बचतों व निवेश के बीच या आय और व्यय के बीच अथवा माँग और पूर्ति के बीच सन्तुलन बनाये रखा जा सके।

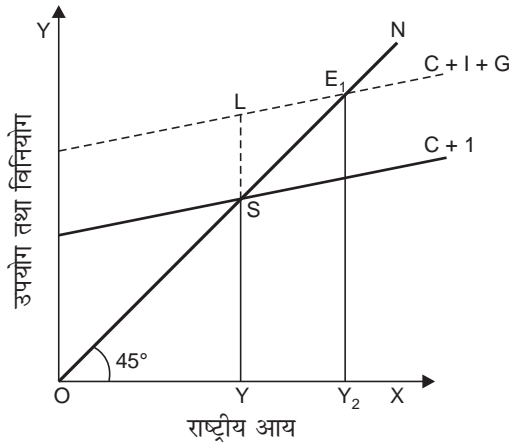


क्या आप जानते हैं कौन्स के अनुसार बचतें सदा ही निवेश को बराबर करने की प्रवृत्ति रखती हैं।

## 18.6 मन्दी तथा लोक व्यय (Depression and Public Expenditure)

जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, मन्दी (depression) अर्थव्यवस्था की वह स्थिति है जिसमें कि बचतें निवेश से अधिक होती हैं। इसका परिमाण यह होता है कि कुल प्रभावी समर्थ माँग (aggregate effective demand) कम हो जाती है जिससे कीमतें गिरने लगती हैं। गिरती हुई कीमतों से व्यवसायियों एवं विनिर्माताओं को इसकी हानि होती है जिससे भविष्य में उत्पादन करने के प्रति उनका विश्वास कम हो जाता है। इसका परिमाण यह होता है कि वे उत्पादन में कटौती करते हैं जिससे रोजगार कम होता है। इस प्रकार, बड़ी संख्या में कर्मचारियों व श्रमिकों की छंटनी कर दी जाती है। इसका परिमाण यह होता है कि इन बेरोजगार श्रमिकों व कर्मचारियों का उपभोग घट जाता है। इससे फिर कुल प्रभावी माँग कम हो जाती है और उत्पादन तथा रोजगार में पुनः कटौतियाँ की जाती हैं। इसके फलस्वरूप, कुल उपभोग तथा कुल माँग में और कमी होती है तथा यही क्रम पुनः आगे चलता रहता है। इस स्थिति में, सरकार को चाहिए कि वह सार्वजनिक निर्माण की परियोजनाओं (public work projects) पर लोगों को काम दे। काम पर लगे हुए इन लोगों को सरकार से मजदूरी मिलती है और उससे विभिन्न वस्तुओं की उनकी माँग में वृद्धि हो जाती है। यह बढ़ी हुई माँग उत्पादन की मात्रा की वृद्धि में सहायक होती है और जब उत्पादन बढ़ता है तो उससे रोजगार की मात्रा भी बढ़ती है और लोगों को काम मिलता है। लोगों को अधिक रोजगार मिलने से विभिन्न वस्तुओं के लिए उनकी कुल प्रभावी माँग बढ़ जाती है जिससे उत्पादन की मात्रा तथा रोजगार के अवसरों में भी और वृद्धि होती है। वृद्धि का यह क्रम इसी प्रकार आगे चलता रहता है। इस प्रकार घटे हुए उपभोग के कारण उत्पादित वस्तुओं की माँग में कमी के प्रभावों को सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर निवेश व्यय में उतनी ही वृद्धि करके समाप्त किया जा सकता है और इस तरह, सरकारी खर्च आर्थिक स्थिरता बनाये रखने में मदद कर सकता है।

नोट



समाप्त किया जा सकता है और इस तरह, सरकारी खर्च आर्थिक स्थिरता बनाये रखने में मदद कर सकता है। आय स्तर और रोजगार की मात्रा पर सार्वजनिक व्यय के पड़ने वाले प्रभाव को एक चित्र द्वारा भी आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में Y- अक्ष पर उपभोग एवं विनियोग की मात्राएँ मापी गई हैं तथा X- अक्ष पर आय स्तर को लिया गया है। ON आय रेखा है जो उपभोग एवं विनियोग रेखा  $C + I$  को E बिन्दु पर काटती है जो प्रारम्भिक सन्तुलन स्तर है अर्थात् जब सरकार के द्वारा किसी प्रकार का व्यय नहीं किया जाता है, व्यय उस अवस्था में OY आय स्तर पर रोजगार है। मान लीजिए सरकार EL के बराबर आय बढ़ा देती है और स्वाभाविक है कि नयी उपभोग एवं विनियोग रेखा  $C + I + G$  हो जायेगी। इस अवस्था में नया सन्तुलन E होगा। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय आय OY से बढ़कर  $OY_1$  हो जायेगी और परिणामस्वरूप रोजगार का स्तर आय-वृद्धि अनुपात में बढ़ोतरी हो जायेगी। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सार्वजनिक व्यय के माध्यम में मंदीकाल को आय एवं रोजगार में वृद्धि करके समाप्त किया जा सकता है।

### 18.6.1 प्रतिकारी या क्षतिपूरक व्यय (Compensatory Expenditure)

मन्दी की अवधि में गैर-सरकारी खर्च की कमी को पूरा करने के लिए तथा आर्थिक स्थिरता अथवा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को उसके अनुकूलतम स्तर पर बनाये रखने के लिए जो सरकारी खर्च किया जाता है वह आमतौर पर **प्रतिकारी या क्षतिपूरक** कहा जाता है। क्षतिपूरक व्यय करने की पद्धति यह होती है कि मन्दी के समय में भारी मात्रा में सरकारी व्यय किये जाते हैं और ज्यों-ज्यों अर्थव्यवस्था (economy) मन्दी के चक्रव्यूह से निकलती जाती है त्यों-त्यों ऐसे व्यय में शनैः शनैः कमी होती रहती है।

अतः सरकार के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि मन्दी की स्थिति में आगे बढ़े और मन्दी के प्रभावों को दूर करने के लिए अथवा प्राइवेट व्यक्तियों में बढ़ती हुई निःसंचय की प्रवृत्ति (propensity to hoard) के प्रभावों को समाप्त करने के लिए वह अपने खर्च करे।

**मन्दी की अवधि में**, सरकार द्वारा क्षतिपूर्ति व्यय का अर्थ होता है घाटे की वित्त-व्यवस्था को अपनाना। क्षतिपूरक व्यय के लिए धन की व्यवस्था करने के तीन उपाय ये हैं-कराधान (taxation), उधार (borrowing) तथा नई मुद्रा का निर्माण (Creation of new money)। अधिक कराधान का पहला उपाय ऐसे समय में सम्भव नहीं होता जबकि बेरोजगारी बढ़ी हुई हो और आमदनियों के स्तर नीचे हों। परन्तु यदि सरकार निःसंचय करने वालों पर कर लगाकर धन प्राप्त करे तो हो सकता है कि उसके प्रतिकूल प्रभाव न हों। घाटे की खर्च की पूर्ति के लिए यदि सरकार उधार लेकर धन प्राप्त करती है और यदि ये उधार गैर-सरकारी उपभोग तथा निवेश के लिए उपलब्ध धन में कमी कर देते हैं तो उसके कोई लाभकारी प्रभाव नहीं होंगे। यदि सरकार कम ब्याज पर बैंकों से उधार लेती है तो क्षतिपूर्ति व्यय के प्रभाव मुद्रा प्रसार जैसे ही होते हैं। ये उधार उन धनराशियों को कम नहीं करते जो कि प्राइवेट निवेशकर्ताओं के लिए आवश्यक होती हैं। अतः व्यक्तिगत बचतों से उधार, बशर्ते कि वे उपयोग को प्रभावित न करें, और बैंकों द्वारा नई मुद्रा के निर्माण से उधार, दोनों ही क्षतिपूरक व्यय की वित्तीय व्यवस्था में बढ़े सहायक होते हैं।



## नोट



टास्क प्रतिकारी या क्षतिपूरक व्यय से क्या तात्पर्य है?

**सीमायें (Limitations)–अर्थशास्त्रियों न इन खतरों की ओर भी ध्यान दिलाया है** जो कि उत्पादन बढ़ाने तथा अधिक रोजगार मुहैया कराने के लिए सरकारी व्यय का उपयोग किये जाने में निहित हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है–

(i) **सर्वप्रथम** यह हो सकता है कि सरकार के पास सार्वजनिक निर्माण की समुचित योजनायें न हों और अधिक रोजगार उपलब्ध कराने के नाम पर वह ऐसी परियोजनाओं को हाथ में ले ले जो बेकार हों, अनुत्पादक हों तथा समाज के कल्याण में कोई बढ़ोत्तरी न करती हों, बल्कि इसके विपरीत जो समुदाय के स्वास्थ्य तथा कार्यक्षमता के लिए हानिकारक हों।

(ii) **दूसरे** यह हो सकता है कि वाणिज्यिक उद्यमों का संचालन करने में सरकार पर्याप्त कुशल सिद्ध न हो। **तीसरे**, सरकारी खर्च के लिये धन का प्रबन्ध यदि घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा किया गया तो उससे उस समय मुद्रास्फीति की दशायें उत्पन्न हो सकती हैं जबकि सरकार को इस बात का ज्ञान न हो कि जब अर्थव्यवस्था मन्दी के चक्रव्यूह से बाहर निकल आये तो निवेश (investment) की दर में किस प्रकार कमी की जाए। कभी-कभी सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम ऐसी प्रकृति के होते हैं (जैसे कि बहु-उद्देश्यीय जल विद्युत परियोजनाएं) जिन्हें आरम्भ करके पूरा ही करना होता है तथा बीच में नहीं छोड़ा जा सकता है। इन्हें बीच में छोड़ देने से इन पर किया गया व्यय अनुत्पादक व्यय बन जाता है। क्षतिपूरक सरकारी व्यय से चूँकि सरकार द्वारा लिए जाने वाले ऋणों की मात्रा तथा उनके ब्याज का खर्च बढ़ जाता है और सरकार एक अनावश्यक बोझ के नीचे दब जाती है। अतः अनेक विद्वान यह पसन्द नहीं करते कि रोजगार का स्तर ऊँचा उठाने तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए सरकारी खर्च का उपयोग किया जाए। तथापि, अनुभव यह बताता है कि मन्दी की स्थिति में उत्पादन बढ़ाने में तथा अधिक रोजगार मुहैया कराने में सरकारी खर्च बड़ा अनुकूल प्रभाव डालता है, बशर्ते कि इसका उपयोग अत्यन्त सावधानी तथा बुद्धिमता के साथ किया जाए।

### 18.6.2 मुद्रास्फीति में लोक व्यय (Public Expenditure in Inflation)

सरकारी व्यय मुद्रास्फीति अर्थात् बढ़ती हुई कीमतों को नियन्त्रित करने में सहायक हो सकता है। मुद्रास्फीति उस दशा का नाम है जबकि निवेश बचतों से अधिक हो जाते हैं। इस स्थिति में सरकार को चाहिए कि वह बेशी का बजट (surplus budget) बनाये, अर्थात् अपनी आय से कम खर्च करे और इस प्रकार बेशी के बजट से जो अतिरिक्त धन प्राप्त हो उसका उपयोग उसे अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों में पूँजी उपलब्ध कराने के लिए करना चाहिए जिनमें कि पूँजी की कमी अनुभव की जा रही हो ताकि अर्थव्यवस्था (economy) की कुल उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सके। देश में वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा में वृद्धि करके बढ़ती हुई कीमतों को भी रोका जा सकता है। अतः सरकारी खर्च उन परियोजनाओं पर किया जाना चाहिए जिससे कि अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता (productive capacity) में तीव्रगति से वृद्धि हो। कृषि के क्षेत्र में यदि ऐसा करना है तो वह लघु सिंचाई परियोजनाओं पर तथा अच्छे किस्म के बीजों व अच्छी किस्म की खाद आदि के उत्पादन पर किया जा सकता है। उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में यदि ऐसा सरकारी खर्च करना है तो वह नये-नये उद्योगों की स्थापना तथा चालू उद्योगों के विस्तार के लिए सुविधाएँ प्रदान करने में किया जा सकता है। तथापि, समस्या के समाधान का यह पहलू केवल अल्पविकसित अथवा विकासशील देशों के लिए ही सही सिद्ध हो सकता है जहाँ कि उत्पाद के अनेक विभिन्न साधन, अर्थात् अनेक कृषि-फार्म तथा फैक्टरियाँ आदि, अपनी उत्पादन क्षमता के इष्टतम स्तर (optimum level) तक न पहुँची हों। परन्तु जहाँ उत्पादन के विभिन्न साधन, अर्थात् कृषि-फार्म तथा फैक्टरियाँ आदि, पहले से ही अपनी उत्पादन-क्षमता के इष्टतम स्तर पर कार्य कर रहे हों वहाँ ऐसे सरकारी व्यय से अर्थव्यवस्था पर मुद्रास्फीति सम्बन्धी दबाव ही पड़ने की सम्भावना रहती है। इसका कारण यह है कि ऐसा करने से लोगों के हाथों से अतिरिक्त क्रयशक्ति तो बढ़ जायेगी किन्तु उत्पादन में उतनी वृद्धि नहीं होगी क्योंकि ऐसे देशों की उत्पादन-क्षमता तो पहले ही इष्टतम स्तर तक पहुँच

चुकी होती है। इस स्थिति से सरकार को चाहिए कि वह अपनी आय से कम खर्च करे और करों को स्थिर बनाये रखे, ताकि बेशी का बजट बन सके और मुद्रास्फीति सम्बन्धी दबावों को रोका जा सके।

### 18.7 आर्थिक विकास तथा उन्नति में लोक व्यय का योगदान (Role of Public Expenditure in Economic Development and Growth)

आर्थिक विकास (economic development) शब्द का प्रयोग अन्य कई ऐसे ही शब्दों के साथ मिले-जुले रूप में किया जाता है जैसे कि आर्थिक उन्नति (economic growth), आर्थिक कल्याण (economic welfare), आर्थिक प्रगति (economic progress) तथा दीर्घकालीन परिवर्तन (secular change) आदि। परन्तु शुम्पीटर (Schumpeter) तथा श्रीमती उर्सुला हिक्स (Mrs. Ursula Hicks) जैसे अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक विकास एवं आर्थिक उन्नति जैसे आमतौर पर प्रयुक्त होने वाले शब्दों के बीच भेद किया है आर्थिक विकास (economic development) शब्द का प्रयोग अल्पविकसित देशों की समस्याओं के सम्बन्ध में किया जाता है और आर्थिक उन्नति (economic growth) शब्द उन्नत देशों की समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। श्रीमती हिक्स का कहना है कि अल्पविकसित देशों (underdeveloped countries) की समस्यायें अप्रयुक्त साधनों के विकास से सम्बन्धित होती हैं किन्तु उन्नत देशों (advanced countries) की समस्याएँ पहले से ही प्रयुक्त किये जा रहे साधनों की ओर अधिक उन्नति से सम्बन्धित होती हैं। अल्पविकसित देशों की समस्या तीव्रगति से आर्थिक विकास करने की अर्थात् समाज की आय तथा पैदावार में तीव्र वृद्धि करने की होती है किन्तु उन्नत तथा विकसित देशों की समस्या का सम्बन्ध आर्थिक स्थिरता को बनाये रखने से तथा समाज की आय तथा पैदावार में एक क्रमिक एवं लगातार वृद्धि करने से होता है। अतः यह बात तो स्पष्ट है कि जहाँ तक समाज की आय तथा पैदावार में वृद्धि का प्रश्न है, अल्पविकसित देशों की समस्याएँ विकसित देशों की समस्याओं से भिन्न होती हैं। तथापि, आर्थिक विकास तथा आर्थिक उन्नति में सरकारी खर्च के योगदान का संक्षिप्त विवेचन यहाँ भी किया जायेगा।

विकसित तथा अल्पविकसित देशों को जिस सबसे बड़ी समस्या का सामना करना होता है वह है, रोजगार तथा आमदनियों में वृद्धि करने की समस्या। सरकारी व्यय का कार्यक्रम अनेक लोगों को रोजगार प्रदान करने में प्रत्यक्ष रूप से सहायक होता है। इससे वस्तुओं व सेवाओं के लिए इन लोगों की माँग में वृद्धि होती है जिससे रोजगार के अवसर भी और बढ़ते हैं कारण यह है कि माँग बढ़ने से उत्पादन में भी वृद्धि होती है जिससे और अधिक लोगों को रोजगार मिलता है। परन्तु यह बात केवल तभी सत्य होती है जब कि कृषि तथा उद्योगों में लगे उत्पादन के साधन उतनी क्षमता से उत्पादन नहीं कर रहे होते हैं जितना कि वे कर सकते हैं। यह वे पहले से ही उच्चतम या इष्टतम स्तर पर उत्पादन कर रहे होते हैं, तो उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। इस प्रकार, सरकारी खर्च के कार्यक्रम इस प्रकार बनाये जाने चाहिए कि जिनसे उत्पादन तो बढ़े किन्तु उसके साथ ही साथ उत्पादित वस्तुओं की माँग भी बढ़े। अन्य शब्दों में, 'आर्थिक स्थिरता के साथ आर्थिक प्रगति' के सिद्धान्त को अपनाया जाना चाहिए। अतः सरकारी व्यय का उद्देश्य केवल माँग में वृद्धि कर देना ही नहीं, बल्कि गैर-सरकारी प्रेरणा व साहस को प्रोत्साहन देना तथा उसकी न्यूनतापूर्ति करना भी होना चाहिए। सरकार उत्पादन क्रियाओं तथा उद्यमों में प्रत्यक्ष रूप से प्रवेश करने के लिये भी सरकारी व्यय कर सकती है ताकि माँग और पूर्ति (संभरण) के बीच सन्तुलन बनाये रखने के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

यदि सरकारी खर्च को उदारता के साथ कुछ आर्थिक व समाजिक महत्वपूर्ण मदों-अर्थात् शिक्षा तथा जन-स्वास्थ्य, परिवहन व संचार तथा बिजली आदि के साधनों की व्यवस्था पर व्यय किया जाए, तो गैर-सरकारी क्षेत्र को तीव्रगति से निवेश करने तथा उत्पादन वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। संक्षेप में, सरकारी खर्च को चाहिए वह उत्पादन को बाह्य किफायतों (external economies) की व्यवस्था करने के लिए आगे आये और आन्तरिक किफायतों (internal economies) की व्यवस्था करने में मदद करे। इससे उत्पादन तथा माँग दोनों में ही वृद्धि

**नोट**

होगी। अन्य शब्दों में, इससे उत्पादन तथा उपभोग बढ़ेगा और लोगों को श्रेष्ठतर आय तथा श्रेष्ठतर जीवन-स्तर प्राप्त होगा।

सरकार को चाहिए कि वह ऐसे उद्यमों (enterprises) को अपने हाथ में लेने के लिए भी सरकारी खर्च करने को तैयार रहे जो गैर-सरकारी क्षेत्र को आकर्षित नहीं करते अथवा जिनमें जाते हुए प्राइवेट पूँजी इसलिए शरमाती है क्योंकि उनमें लाभ की सम्भावनाएँ बहुत कम होती हैं अथवा जिनमें भारी मात्रा में पूँजी निवेश की आवश्यकता होती है और प्रतिफल एक लम्बे समय के बाद प्राप्त होता है। इस प्रकार तीव्र गति से आर्थिक विकास करने के लिए जिन मूलभूत तथा आधारभूत उद्योगों की आवश्यकता होती है, जैसे कि लोहा व इस्पात, अणु-शक्ति, बहु-उद्देशीय जल-विद्युत परियोजनाएँ, भारी विद्युत तथा इन्जीनियरिंग आदि, वे इसी वर्ग के उद्यमों में गिने जाते हैं। किन्तु मिश्रित अर्थव्यवस्था (mixed economy) के अन्तर्गत, सरकारी खर्च का उद्देश्य गैर-सरकारी क्षेत्र की मदद करके ही पूरा नहीं हो पाता बल्कि उसे गैर-सरकारी क्षेत्र के पूरक तथा अनुपूरक के रूप में भी कार्य करना होता है।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य कथन की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

9. बेरोजगारी को आर्थिक कुसंगठन का मुख्य प्रतीक माना जाता है।
10. निवेश सदा ही व्यय के बराबर होते हैं।
11. सरकार द्वारा क्षतिपूर्ति व्यय का अर्थ होता है घाटे की वित्त-व्यवस्था को अपनाना।
12. सरकारी व्यय मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने में सहायक नहीं हो सकता।
13. आर्थिक स्थिरता के साथ आर्थिक प्रगति के सिद्धांत को अपनाया जाना चाहिए।

**18.8 सारांश (Summary)**

- सरकारी व्यय के प्रभावों का विश्लेषण करते समय डाल्टन ने यह ठीक ही कहा है कि “कराधान तो ऐसा होना चाहिए कि जो उत्पादन में न्यूनतम कमी करे और सरकारी खर्च ऐसा होना चाहिए जो उत्पादन में अधिकतम वृद्धि करे, बशर्ते कि अन्य बातें समान रहें।”
- प्रतिरक्षा पर किया जाने वाला सरकारी व्यय इसलिए अनुत्पादक नहीं होता है क्योंकि किसी भी राष्ट्र में आन्तरिक शान्ति उसकी बाह्य सुरक्षा की दृष्टि से वह अत्यन्त आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण होता और इसके बिना उस देश के आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि नहीं की जा सकती।
- कुछ आधारभूत सेवाओं, जैसे कि सड़कों, रेलों व सिंचाई परियोजनाओं आदि के निर्माण पर किया जाने वाला सरकारी व्यय देश का आर्थिक विकास करने में बड़ा सहायक होता है।
- सरकार द्वारा नये तथा चालू उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता के तौर पर अधिदान (bounties) तथा उपादान (subsidies) दिये जाते हैं और इस प्रकार किया गया यह सरकारी खर्च लोगों के साधनों को नये-नये उद्योगों को खोलने में लगाने के लिए तथा चालू उद्योगों का उत्पादन बढ़ाने के लिए सहायक होता है।
- ऐसी अनेक दिशाओं में किया जाने वाला अधिकाधिक सरकारी खर्च इसलिए वांछनीय है ताकि विभिन्न उपयोगों के बीच समुदाय के साधनों का ऐसा वितरण किया जा सके जिसके सर्वोत्तम परिणाम हों और जो बिना किसी पक्षपात के वर्तमान व भविष्य के बीच सन्तुलन रख सके।”
- आर्थिक स्थिरता (economic stability) अर्थात् पूर्ण रोजगार तथा मूल्यों के स्थायित्व को बनाये रखने के लिए भी आर्थिक साधनों के स्थानान्तरण (diversion) को महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

## नोट

- विभिन्न क्षेत्रों के बीच साधनों का स्थानान्तरण कभी-कभी सरकारी खर्च के द्वारा आर्थिक साधनों का विभिन्न क्षेत्रों के बीच भी स्थानान्तरण किया जाता है। इसमें उत्पादन-शक्ति बढ़ती है और प्रायः प्रादेशिक या क्षेत्रीय असमानताओं में भी कमी आती है।
- भारत जैसी मिश्रित अर्थव्यवस्था (mixed economy) के अन्तर्गत, जहाँ कि सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही क्षेत्र महत्वपूर्ण योगदान करते हैं, साधनों के स्थानान्तरण तथा काम करने, बचत करने व निवेश की योग्यता व इच्छा पर सरकारी खर्च के प्रभाव का सम्पूर्ण देश के आर्थिक विकास की दृष्टि से भारी महत्त्व है।
- जहाँ केवल कराधान को लिया जायेगा तो उससे उत्पादन अवरुद्ध होगा और जहाँ केवल सरकारी खर्च को लिया जायेगा, वहाँ उससे उत्पादन में निश्चित वृद्धि होगी।
- “सरकारी खर्च की वह पद्धति सर्वोत्तम है जिसमें आय की विषमताओं को कम करने की सबसे दृढ़ प्रवृत्ति पाई जाती है।” इस प्रकार स्पष्ट है कि खर्च की आरोही प्रवृद्धि आय की असमानताओं को कम करती है। यही नहीं व्यय में आरोहण (Progression) की दर जितनी तीव्र होती है, उसमें आय की असमानताओं को कम करने की अर्थात् धनी व निर्धन वर्गों के बीच की खाई को पाटने की प्रवृत्ति भी उतनी अधिक दृढ़ होती है।
- यदि किसी अनुदान के कारण कोई व्यक्ति उसके मुकाबले कम काम तथा बचत करता है जितना कि वह अन्य स्थिति में करता, तो इससे उसकी आय बढ़ाने में अनुदान का प्रभाव कम हो जायेगा, और उसके विपरीत दशा में अनुदान के प्रभावों में वृद्धि हो जायेगी।
- मन्दी की अवधि में गैर-सरकारी खर्च की कमी को पूरा करने के लिए तथा आर्थिक स्थिरता अथवा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को उसके अनुकूलतम स्तर पर बनाये रखने के लिए जो सरकारी खर्च किया जाता है वह आम तौर पर प्रतिकारी या क्षतिपूरक कहा जाता है।
- मुद्रास्फीति उस दशा का नाम है जबकि निवेश बचतों से अधिक हो जाते हैं। इस स्थिति में सरकार को चाहिए कि वह बेशी का बजट (surplus budget) बनाये, अर्थात् अपनी आय से कम खर्च करे और इस प्रकार बेशी के बजट से जो अतिरिक्त धन प्राप्त हो उसका उपयोग उसे अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों में पूँजी उपलब्ध कराने के लिए करना चाहिए जिनमें कि पूँजी की कमी अनुभव की जा रही हो ताकि अर्थव्यवस्था (economy) की कुल उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सके।

### 18.9 शब्दकोश (Keywords)

- निवेश (Invest)–पूँजी लगाना
- अपव्यय (Waste)–फिजूलखर्ची
- अवस्फीति (Deflation)–मुद्रा और मूल्यों में कमी।

### 18.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभाव से आपका क्या तात्पर्य है?
2. व्यय कितने प्रकार के होते हैं? वर्णन करें।
3. आरोही, अनुपाती तथा अवरोही व्यय के योगदानों का वर्णन करें।
4. सिद्ध करें कि बेरोजगारी आर्थिक अस्थिरता का ही परिणाम है।
5. आर्थिक स्थिरता कैसे उत्पन्न होती है?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |            |           |          |            |
|------------|-----------|----------|------------|
| 1. परोक्ष  | 2. आर्थिक | 3. मंदी  | 4. उत्पादन |
| 5. अनुपूरक | 6. (अ)    | 7. (ब)   | 8. (स)     |
| 9. सत्य    | 10. असत्य | 11. सत्य | 12. असत्य  |
| 13. सत्या  |           |          |            |

### 18.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

---



पुस्तकें

1. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस-सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
4. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।

नोट

## **इकाई-19: सार्वजनिक बजट**

### **(Public Budget)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

- 19.1 बजट की परिभाषा (Definition of Budget)
- 19.2 बजट के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Budget)
- 19.3 बजट प्रक्रिया (Budgetary Process)
- 19.4 बजट सिद्धांत (Budgetary Theory)
- 19.5 बजट वर्गीकरण (Budgetary Classification)
- 19.6 सारांश (Summary)
- 19.7 शब्दकोश (Keywords)
- 19.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
- 19.9 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- बजट की परिभाषा जानने हेतु।
- बजट के आवश्यक तत्व को समझने हेतु।
- बजट निर्माण की प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करने के लिए।
- बजट संबंधी सिद्धांतों से अवगत होने में।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में बजट का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। इसका कारण यह है कि इससे सरकार की आर्थिक क्रियाओं की छाया नज़र आती है। बजट एक ही साथ एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा एक प्रस्ताव है। यह एक ऐसा उपकरण है जिससे वित्तीय प्रशासन की सभी क्रियाएँ जुड़ी होती हैं।

वर्तमान सदी में बजट के स्वरूप एवं सरकार के कार्य में आमूल बदलाव हुए हैं। इन बदलावों पर राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक सिद्धांत, प्रबंधकीय दृष्टिकोण, लेखा सिद्धांत तथा लोक प्रशासन का भी प्रभाव पड़ा है। आधुनिक बजट विधायिका के प्रति उत्तरदायी तो होता ही है, साथ ही इसमें योजना तथा प्रबंध के तत्व को भी शामिल कर लिया गया है।

## नोट

**19.1 बजट की परिभाषा (Definition of Budget)**

देश की अर्थव्यवस्था में बजट का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि बजट से सरकार की आर्थिक क्रियाओं का प्रतिबिम्ब झलकता है। साधारण शब्दों में, बजट गत वर्ष के लेखों का वार्षिक वित्तीय विवरण तथा आने वाले वर्ष के लिए राजस्व और व्यय का अनुमान है।

वर्तमान में बजट को गुप्त नहीं रखा जाता वरन् इसे संसद में प्रस्तुत किया जाता है एवं समस्त समाचार-पत्रों में इसे प्रकाशित किया जाता है। ऐसा माना जाता है कि वर्तमान अर्थ में बजट का प्रयोग 1773 में शुरू किया गया। यहाँ हम बजट की कुछ प्रमुख परिभाषाओं पर विचार करेंगे—

**फिण्डले शिराज (Findlay Shirras)** के अनुसार, “संक्षेप में बजट पिछले वर्ष की प्राप्तियों और व्यय का विवरण एवं आने वाले वर्ष की प्राप्तियों तथा व्यय का अनुमान है। यदि बजट में घाटा है तो बजट में उसकी पूर्ति के प्रस्ताव भी शामिल होते हैं तथा यदि आधिक्य रहता है तो उसके विभाजित किए जाने का भी विवरण होता है।”

**प्रो. टेलर (Taylor)** के शब्दों में, “बजट सरकार की अति महत्वपूर्ण वित्तीय योजना है। **बजट**, प्रत्याशित आय एवं प्रस्तावित व्यय के आकलनों को बजट वर्ष के लिए एक साथ प्रस्तुत करता है।”

**प्रो. डाल्टन (Dalton)** का विचार है कि “सन्तुलित बजट की सामान्य धारणा यह है कि एक समयावधि में आय में आधिक्य होता है अथवा कम-से-कम वह व्यय की तुलना में कम नहीं होती।”

**विलोबी (W. F. Willoughby)** के अनुसार, “बजट एक ही साथ एक प्रतिवेदन, एक अनुमान तथा एक प्रस्ताव है। साथ ही यह एक ऐसा उपकरण है जिसके साथ वित्तीय प्रशासन की समस्त प्रक्रियाएँ सहसम्बन्धित होती हैं, उनकी तुलना की जाती है एवं समन्वय किया जाता है।”

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि “बजट सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक आय का अनुमान है जो सामान्यतः वित्तीय वर्ष के अन्त में आगामी वर्ष के लिए बनाया जाता है। इसमें निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार की स्पष्ट नीतियों का उल्लेख होता है।”



**नोट्स** ऐसा माना जाता है कि बजट का प्रयोग 1775 में शुरू किया गया।

**19.2 बजट के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Budget)**

बजट की परिभाषा जान लेने के बाद संक्षेप में बजट के आवश्यक तत्वों का विवेचन इस प्रकार है—

- (1) **बजट अवधि**—सामान्य रूप से बजट की अवधि एक वर्ष होती है। यह बात दूसरी है कि व्यय के आधिक्य को देखते हुए उसी वर्ष में पूरक बजट भी प्रस्तुत किया जाये।
- (2) **बजट का आधार नकद राशि**—बजट बहीखाते के आधार पर नहीं वरन् नकदी के आधार पर तैयार किया जाता है अर्थात् सरकार को समस्त आय रोकड़ में प्राप्त होगी तथा व्यय भी रोकड़ में करना होगा।
- (3) **समन्वित रूप**—इसका अर्थ यह है कि बजट सरकार की समस्त क्रियाओं के लिए समन्वित रूप से प्रस्तुत किया जाता है जिससे देश की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति की जानकारी मिल सके।
- (4) **लेखों की समानता**—न केवल केन्द्र सरकार के लेखों में प्रत्येक वर्ष समानता रहनी चाहिए वरन् राज्यों के लेखे भी समान होने चाहिए ताकि विभिन्न राज्यों के बजट की तुलना की जा सके।
- (5) **सकल (Gross) राशि का उल्लेख**—बजट शुद्ध राशि के आधार पर नहीं वरन् सकल राशि के आधार पर तैयार किया जाता है। आय को व्यय घटाकर नहीं दिखाया जाता वरन् आय और व्यय का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया जाता है।

## नोट

- (6) **आय-व्यय मदों का विभाजन**—सामान्य रूप में बजट में आय-व्यय की मदों को दो भागों में विभाजित किया जाता है—पूँजी लेखा तथा राजस्व लेखा, इसे आगे स्पष्ट किया गया है।
- (7) **व्यय समाप्ति (Lapse) नियम**—बजट की यह मान्यता रहती है कि यदि स्वीकृत राशि को उस विशेष वर्ष में व्यय न किया जाय तो वह राशि सरकार को वापस करनी होती है। उसे अगले वर्ष के लिए आधिक्य के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता।
- (8) **वैज्ञानिक आधार तथा कुशल वित्तीय प्रबन्ध**—बजट का आधार वैज्ञानिक होना चाहिए अर्थात् उसका निर्माण निश्चित नियमों के अनुसार होना चाहिए तथा अनुमानों का कुशल वित्तीय प्रबन्ध किया जाना चाहिए जिससे अनुमान एवं वास्तविकता में अधिकतम समानता रहे।
- (9) **आर्थिक प्रगति का सूचक**—बजट का निर्माण इस दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए कि उससे देश की आर्थिक प्रगति का सही प्रतिबिम्ब ज्ञात हो सके।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. बजट का प्रयोग ..... में शुरू किया गया।
2. .... सरकार की अति महत्वपूर्ण वित्तीय योजना है।
3. सामान्य रूप से बजट की अवधि ..... वर्ष होती है।
4. बजट ..... राशि के आधार पर तैयार किया जाता है।
5. बजट का आधार ..... होना चाहिए।

**19.3 बजट प्रक्रिया (Budgetary Process)**

बजट निर्माण की प्रक्रिया निम्न चार चरणों से होकर गुजरती है—

- (क) **बजट की तैयारी (Preparation of the Budget)**—इसे सूचीकरण (Formulation) भी कहा जा सकता है। बजट निर्माण की तैयारी कई महीनों तक चलती रहती है, किन्तु विकासशील देशों में यह प्रक्रिया कुछ ही सप्ताहों में समाप्त हो सकती है। इस चरण में कार्यपालिका द्वारा राजस्व तथा व्यय का अग्रिम अनुमान लगाया जाता है।
- (ख) **अनुमोदन (Authorization)**—द्वितीय चरण में कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत बजट को विधायिका की स्वीकृति लेनी पड़ती है।
- (ग) **अनुपालन (Implementation)**—विधायिका की स्वीकृति मिल जाने के पश्चात् प्रशासन द्वारा राजस्व एकत्र किया जाता है तथा स्वीकृत मदों पर स्वीकृत राशि खर्च की जाती है।
- (घ) अन्तिम चरण में इस बात की जाँच की जाती है कि विधायिका द्वारा स्वीकृति प्राप्त होने के बाद बजट का क्रियान्वयन सही ढंग से हुआ या नहीं। यह नियन्त्रण कार्य है और इसे लेखा (accounts) तथा लेखा-परीक्षा (audit) के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है। विधायिका की समितियाँ भी इस कार्य को करती हैं।

**19.3.1 बजट के उद्देश्य (Objectives of Budget)**

बजट के माध्यम से कई उद्देश्यों को प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। निम्न प्रमुख उद्देश्य हैं—

- (क) नीति निर्माण के लिए बजट ढाँचा तैयार करता है। इसके लिए उद्देश्यों तक पहुँचने के लिए जो कार्य करना होगा उनके सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है। निर्णय यह लेना होता है कि विभिन्न प्रतिस्पर्धी वैकल्पिक प्रस्तावों में से किसे चुना जाये ताकि विशेष राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। इस बात का भी निर्णय लेना है कि क्या अनेक उद्देश्यों को एक साथ प्राप्त किया जा सकता है।



**नोट**

- (ख) नीति को लागू करने का बजट एक माध्यम है? यहाँ कार्यक्षमता तथा मितव्ययिता के मापदण्ड को लागू किया जाता है अर्थात् नीति-सम्बन्धी निर्णयों को न्यूनतम लागत द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है।
- (ग) बजट कानूनी नियन्त्रण का एक माध्यम है। बजट-सम्बन्धी सभी निर्णय अधिनियमों का रूप लेते हैं। कानूनी नियन्त्रण पर बल देने का कारण है अधिकारों का दुरुपयोग रोकना तथा सार्वजनिक फण्ड को गलत इस्तेमाल से बचाना।
- (घ) बजट दस्तावेज अतीत की क्रियाओं, वर्तमान निर्णयों तथा भावी सम्भावनाओं के विषय में लोगों को जानकारी प्रदान करने का स्रोत हो सकता है। बजट प्रक्रिया कार्यपालिका तथा विधायिका को अवसर प्रदान करती है कि वे अपने निर्णयों तथा कार्यों के औचित्य को समझा सकें।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि बजट के अनेक उद्देश्य होते हैं तथा कभी-कभी उनमें संघर्ष हो सकता है। चूँकि सभी उद्देश्य महत्वपूर्ण हैं, अतः उनसे आपसी संघर्ष को समझौते के द्वारा सुलझाना जरूरी है।



टास्क

बजट निर्माण की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का उल्लेख करें।

**19.3.2 बजट का बदलता स्वरूप (Changing Character of Budgeting)**

वर्तमान सदी में बजट के स्वरूप एवं सरकार के कार्य में आमूल परिवर्तन हुए हैं। किन्तु, यह विकास कोई योजनाबद्ध रूप में नहीं हुआ है, बल्कि स्वतः हुए हैं। इन परिवर्तनों पर अनेक तत्त्वों का प्रभाव पड़ा है, जैसे, राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक सिद्धान्त, प्रबन्धकीय दृष्टिकोण, लेखा सिद्धान्त तथा लोक प्रशासन का आचरण। इन सामान्य तत्त्वों के अतिरिक्त कुछ विशेष घटनाओं का भी प्रभाव पड़ता है। निम्न प्रमुख घटनाएँ हैं—

- (क) दो विश्वयुद्ध तथा इनके परिणामस्वरूप लोक व्यय में वृद्धि;
- (ख) 1930 की महान् आर्थिक मंदी और इसके फलस्वरूप राज्य तथा राजकोषीय नीति के दृष्टिकोण में परिवर्तन;
- (ग) द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् लोक-व्यय में अत्यधिक वृद्धि;
- (घ) आर्थिक स्थिरीकरण की आवश्यकता तथा पूर्ण रोजगार की प्राप्ति; और
- (ङ) आर्थिक विकास तथा वृद्धि तथा उसमें राज्य की भूमिका।

सरकारी बजट के पारम्परिक अध्ययन में दो तत्त्वों पर विशेष ध्यान दिया जाता था, यथा, (क) सरकारी बजट तथा लेखा व्यवस्था का पूर्ण विवरण, तथा (ख) विधायिका तथा ऑडिट के क्रियाकलाप। इस वर्ग में स्टोर्म (Stourm) की फ्रांसीसी व्यवस्था, डॅयूरेल (Durell) की ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था तथा विलोबी (Willoughby) की अमरीकी व्यवस्था के अध्ययन को रखा जा सकता है। 1920 तथा 1930 के दशकों में सरकारी बजटों में निम्न विषयों का अध्ययन किया जाता था—

- (क) प्रशासकीय प्रक्रिया का विश्लेषण;
- (ख) बजट तथा वित्तीय एजेन्सियों के तथा व्यय करने वाले विभागों के मध्य सम्बन्ध; तथा
- (ग) स्वायत्तता के मामले एवं कार्यपालिका तथा विधायिका के मध्य और कार्यपालिका की विभिन्न शाखाओं के मध्य अधिकारों को सौंपना।

केन्स की क्रान्ति के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय लेखा का विशद अध्ययन शुरू हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि बजट का निर्माण समष्टि आर्थिक ढांचे के अन्तर्गत किया जाने लगा। दो विश्वयुद्धों के मध्य की एक और प्रमुख घटना थी, 1920 के दशक के उत्तरार्द्ध में केन्द्रीय योजना का अपनाया जाना। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विकासशील देशों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विकास योजना को अपनाया। इस कारण बजट के समक्ष नये मसले आ गये। इन सबका परिणाम यह हुआ कि औद्योगिक तथा विकासशील देशों में बजट प्रक्रिया में सुधार किये गये। इसी सिलसिले में निष्पादन बजट (Performance Budgeting), योजनाकरण, प्रोग्रामिंग तथा बजेटिंग व्यवस्था (PPBS) एवं शून्य आधार बजट (Zero Base Budgeting) का विकास हुआ।

## नोट

पारम्परिक बजट में निम्न बातों पर बल दिया जाता था-

- (i) **एकता (Unity)**-सरकार की सभी प्राप्तियों (receipt) को समेकित रूप में एक सामान्य निधि के अन्तर्गत सभी लोक व्यय के वित्त पोषण के लिए रखना।
- (ii) **नियमितता (Regularity)**-प्रतिवर्ष बजट का निर्माण।
- (iii) **यथार्थता (Accuracy)**-किसी ठोस वित्तीय व्यवस्था के लिए बजट अनुमान का सही तथा विश्वासी होना जरूरी है। बजट अनुमानों को जानबूझकर न तो कम दिखाना चाहिए और न ही अधिक। भारतीय बजट के सम्बन्ध में अक्सर यह कहा जाता है कि राजस्व अनुमान को कम करके दिखाया जाता है तथा लोक व्यय को बढ़ा-चढ़ाकर बताया जाता है। यह अनुचित है। अतः यह जरूरी है कि यथासंभव कर एवं व्यय सम्बन्धी बजट अनुमान वास्तविकता के निकट हों।
- (iv) **स्पष्टता (Clarity)**-बजट इस तरह से तैयार किया जाना चाहिए कि समाज तथा जनता के प्रतिनिधि इसे समझ सकें तथा इसकी विवेचना कर सकें।
- (v) **प्रचार (Publicity)**-चूँकि बजट सार्वजनिक दस्तावेज है, अतः इसकी विषय-सूची की जानकारी समाज को होनी चाहिए।
- (vi) **परिचालन पर्याप्तता (Operational Adequacy)**-चूँकि बजट सरकार के अन्तर्गत प्रशासन का यन्त्र है, अतः इसे परिचालन योग्य होना चाहिए।
- (vii) **उत्तरदायित्व (Accountability)**-राजस्व एवं व्यय अनुमानों की विधायिका द्वारा स्वीकृति।



क्या आप जानते हैं? दो महायुद्धों के मध्य की एक और प्रमुख घटना थी, 1920 के दशक के उत्तरार्द्ध में केन्द्रीय योजना का अपनाया जाना।

आधुनिक बजट विधायिका के प्रति उत्तरदायी तो होता ही है, साथ ही इसमें योजना तथा प्रबन्ध के तत्त्व को भी शामिल कर लिया गया है। इनके अतिरिक्त, बजट राष्ट्रीय नीति निर्धारण का प्रमुख यंत्र भी हो गया है। ऐसे बजट निम्न उद्देश्यों को सन्तुष्ट करते हैं-

(क) **उत्तरदायित्व (Accountability)**-बजट के इस पहलू पर लोक प्रशासन, राजनीति शास्त्र तथा लेखा का प्रभाव है। लोक प्रशासन का प्रभाव मन्त्रालयों, लेखा तथा लेख-परीक्षा एजेन्सियों पर पड़ता है। राजनीतिशास्त्र की सहायता से विधायिका सरकार के सम्बन्धों, साधनों के आबन्धन के निर्धारण की राजनीतिक प्रक्रिया आदि की विवेचना की जाती है। लेखा में ऑडिट, प्रबन्धकीय लेखा आदि शामिल हैं।

(ख) **कार्यक्षमता-सम्बन्धी नियन्त्रण (Efficiency Control)**-बजट के इस पहलू पर अर्थशास्त्र, लेखा, लोक-प्रशासन तथा राजनीति शास्त्र का प्रभाव पड़ता है। आबन्धन में कार्यक्षमता, उत्पादन तथा वितरण जैसे क्षेत्र अर्थशास्त्र के दायरे में आते हैं। लागत की माप लेखा के उपयोग लोक प्रशासन से सम्बन्धित हैं। राजनीति शास्त्र के क्षेत्र में जो विषय आते हैं, वे हैं-सरकार का दायरा, लोक व्यय की सीमा तथा निजीकरण।

(ग) **आर्थिक नियन्त्रण (Economic Control)**-यह केवल अर्थशास्त्र के दायरे में आता है। यहाँ राजकोषीय नीति, वार्षिक बजट का आर्थिक ढाँचा, कर तथा व्यय भार एवं वितरण सम्बन्धी मामलों की विवेचना की जाती है। यद्यपि बजट प्रक्रिया का विश्लेषण राजनीति शास्त्र का अंग है तथापि अर्थशास्त्रियों के लिए आर्थिक नीति के यन्त्र के रूप में अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

#### 19.4 बजट सिद्धान्त (Budgetary Theory)

इस शीर्षक के अन्तर्गत इस विषय का अध्ययन किया जाता है कि बजट सन्तुलित होना चाहिए अथवा असन्तुलित। इस सम्बन्ध में दो दृष्टिकोणों की चर्चा की जाती है-

## नोट

**19.4.1 क्लासिकल दृष्टिकोण (Classical Viewpoint)–संतुलित बजट (Balanced Budget)**

क्लासिकल लेखकों के अनुसार बजट का सार है राजस्व तथा व्यय के मध्य सन्तुलन। यह धारणा व्यक्तिगत आचरण के सादृश्य (analogy) पर आधारित है। जिस प्रकार व्यक्ति को अपनी आय से अधिक खर्च नहीं करना चाहिए उसी प्रकार सरकार को चाहिए कि वह अपने व्यय को आय की सीमा के अन्दर ही सीमित रखे। एडम स्मिथ के शब्दों में, “प्रत्येक सीमित परिवार के आचरण में जो समझदारी है वह एक बड़े राज्य के सम्बन्ध में शायद ही मूर्खता हो सकती है।”<sup>1</sup> युद्ध जैसी संकटकालीन स्थिति ही इस सिद्धान्त का अपवाद हो सकती है। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदियों के चिन्तन को इसी धारणा ने प्रभावित किया। बैस्टेवल ने निम्न शब्दों में इस विचार को स्पष्ट किया है— “सामान्य परिस्थितियों में, वित्तीय क्रियाओं के इन दो पक्षों के मध्य सन्तुलन होना चाहिए। आय की तुलना में व्यय को अधिक नहीं होना चाहिए .... कर राजस्व को उतना ही वसूल करना चाहिए जितना व्यय की अदायगी के लिए जरूरी है।”

बजट में घाटा की सम्भावना से बचने के लिए बैस्टाबुल ने सलाह दी कि सरकार को बजट में मामूली अतिरेक (surplus) का लक्ष्य रखना चाहिए। ऐसा बताया गया कि यदि सन्तुलित बजट के लक्ष्य को त्याग दिया गया तो परिणाम होगा अपव्यय जिससे देश की समृद्धि रुक जायेगी और अन्ततः वित्तीय सर्वनाश की ओर कदम बढ़ेगा। फ्रांस में एडम स्मिथ को लोकप्रिय बनाने वाले अर्थशास्त्री जे. बी. से (J. B. Say) भी असन्तुलित बजट के उतने ही कट्टर विरोधी थे। उनका कहना था कि अपव्ययी (Wasteful) लोक खर्च के कारण ही बजट में घाटा होता है। लुट्ज ने सन्तुलित बजट को वित्तीय स्थिरता का प्रतीक माना। साथ ही, यह भी बताया कि ऐसा बजट निजी प्रयासों को दीर्घकालीन प्रेरणा प्रदान करता है असन्तुलित बजट ऐसा करने में अक्षम है।

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का सन्तुलित बजट सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है। इन अर्थशास्त्रियों की मान्यता थी कि पूर्ण रोजगार सामान्य स्थिति है। पूर्ण रोजगार की स्थिति में बजट घाटा के लिए वित्त लोक उधार से प्राप्त होता है। लोक ऋण का अर्थ है निजी रोजगार से हटाकर साधनों को सार्वजनिक रूप में लगाना। सम्पूर्ण क्लासिकल अर्थशास्त्र की यही मान्यता रही है कि सार्वजनिक उपयोग की तुलना में निजी क्षेत्र में साधनों का अधिक उत्पादक उपयोग होता है। दूसरा तर्क यह था कि ऋण के द्वारा घाटे की वित्त व्यवस्था कर की तुलना में कम कष्टदायक है। अतः बजट घाटा उत्तरदायित्वहीनता को जन्म देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि असन्तुलित बजट के अन्तर्गत लोक व्यय का अनावश्यक विस्तार होगा। तीसरी बात यह है कि क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की धारणा लोक व्यय के सम्बन्ध में आधुनिक अर्थशास्त्रियों से भिन्न है। लोक ऋण के कारण लोक व्यय के लिए और अधिक वित्त जुटाना कठिन हो जाता है। कारण यह है कि ऋण पर न केवल ब्याज का भुगतान करना पड़ता है, बल्कि मूलधन को वापस भी करना होता है और इन सब के लिए अतिरिक्त कर लगाने की जरूरत होती है।

सन्तुलित बजट के सिद्धान्त में यह स्वीकार नहीं किया गया कि बेरोजगारी का समाप्त करना बजट नीति का लक्ष्य है। इसलिए बजट-सम्बन्धी इस धारणा को किसी विशेष समस्या का सामना करना नहीं पड़ा किन्तु केन्सियन क्रान्ति ने यह स्पष्ट कर दिया कि सन्तुलन में होते हुए भी अर्थव्यवस्था में अनैच्छिक बेरोजगारी बढ़े पैमाने पर विद्यमान रह सकती है। यह भी बताया कि पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए मौद्रिक नीति भी अधिक कारगर नहीं होती है। अतः बजट नीति की सहायता लेनी पड़ेगी और तब सन्तुलित बजट के सिद्धान्त का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। संतुलित बजट में लोक व्यय लोक राजस्व से अधिक नहीं होता है। डाल्टन<sup>2</sup> (Dalton) का कहना है कि यहाँ तीन प्रारम्भिक प्रश्न उठते हैं। (i) लोक व्यय में क्या-क्या शामिल करना चाहिए? (ii) ‘राजस्व’ में क्या-क्या शामिल करना चाहिए? (iii) किस अवधि में बजट को संतुलन में रहना चाहिए?

लोक व्यय के सम्बन्ध में डाल्टन का कहना है कि इससे लोक ऋण के सभी भुगतान को पृथक् रखना चाहिए। उसी तरह जैसे लोक निर्माण (public works) पर खर्च, जिसका वित्त पोषण ऋण के द्वारा होता है, को भी शामिल नहीं करना चाहिए। उनका कहना है कि बजट का चालू बजट (Current Budget) तथा पूँजी बजट में विभाजन

1. “What is prudence in the conduct of every private family can scarcely be folly in that of a great kingdom.”  
—Adam Smith, *Wealth of Nations*.
2. H. Dalton, *Principles of Public Finance*, 1947, p. 301.

## नोट

कठिन नहीं है। डाल्टन के कहने का तात्पर्य यह है कि सिर्फ चालू बजट को ही संतुलित होना चाहिए। राजस्व के सम्बन्ध में अधिक कठिनाई है। कर राजस्व को तो शामिल करना ही है, किन्तु सभी पूँजीगत प्राप्तियों को अलग रखना चाहिए। सार्वजनिक पूँजीगत सम्पत्ति (public capital assets) में कमी मृतक भार लोक ऋण (dead weight public debt) में वृद्धि के समान है। इसलिए उन्होंने संतुलित बजट की निम्न परिभाषा की— हम उसे संतुलित बजट कहेंगे जिसमें लेखा अवधि में शुद्ध मृतक भार सार्वजनिक ऋण में वृद्धि नहीं होती है।<sup>1</sup> अनेक विकासशील तथा कुछ विकसित देशों में सरकारी बजट को दो भागों में विभाजित किया जाता है यथा, चालू या राजस्व बजट (Current or revenue budget) तथा पूँजी या विनियोग बजट (Capital or investment Budget) अर्थात् प्राप्ति (Receipt) पक्ष तथा व्यय (Expenditure) पक्ष हैं। नीचे दोनों बजटों की प्राप्ति तथा व्यय पक्षों में शामिल विभिन्न मदों को दिखाया गया है—

## राजस्व बजट (Revenue Budget)

राजस्व (Revenue)	व्यय (Expenditure)
1. कर राजस्व 2. गैर-कर राजस्व (क) लोक उद्यमों के लाभ (ख) प्रशासनिक फीस (ग) जुर्माना तथा जब्ती (घ) सरकारी सम्पत्ति की बिक्री (ङ) अन्य	1. वस्तुओं तथा सेवाओं की चालू खरीद 2. ब्याज का भुगतान 3. लोक उद्यमों को सब्सिडी तथा हस्तान्तरण भुगतान 4. पूँजी उपयोग व्यय 5. अन्य

राजस्व – व्यय = निबल चालू अतिरेक या घाटा = निबल बचत या घाटा

## पूँजी बजट (Revenue Budget)

प्राप्तियाँ (Receipts)	व्यय (Expenditure)
1. चालू राजस्व से प्राप्त अतिरेक 2. पूँजी उपभोग भत्ता 3. निबल ऋण (Net Borrowing) 4. विदेशों से प्राप्त अनुदान	1. भौतिक निवेश 2. मौजूदा परिसम्पत्ति की खरीद 3. निबल उधार (Net loans)



नोट्स प्राप्तियाँ – व्यय = नकद शेष में परिवर्तन

पूँजी उपभोग भत्ता (Capital Consumption allowance) भौतिक पूँजी के मूल्य-हास का अनुमान है जो अप्रचलन (obsolescence) तथा घिसावट (depreciation) के परिणाम होते हैं। यह राजस्व बजट के लिए व्यय है, तो पूँजी बजट के लिए आय। कई देशों में इस मद को बजट में दिखाया ही नहीं जाता है।

संतुलित बजट के निम्न अर्थ हो सकते हैं—

1. “We may defined a budget as being balanced if during the accounting period there is no increase in the net deadweight public debt.”  
—*Ibid.*, pp. 302-3.

**नोट**

(i) राजस्व बजट में राजस्व का व्यय के बराबर होना। अतः इस बजट में न तो अतिरेक होगा और न ही घाटा। यदि व्यय की तुलना में राजस्व अधिक हो तो उसे अतिरेक बजट (Surplus Budget) कहा जाएगा। इसके विपरीत राजस्व की तुलना में व्यय के अधिक होने पर उसे घाटे का बजट (Deficit debt) कहा जाता है। सन्तुलित बजट की स्थिति में निधिक ऋण (Funded debt) की आवश्यकता नहीं होती है। (निधिक ऋण वह है जिसे एक वर्ष के अन्दर ही वापस कर दिया जाता है।)

(ii) संतुलित बजट के सम्बन्ध में दूसरी धारणा यह है कि चालू व्यय का वित्त पोषण चालू राजस्व (कर राजस्व + गैर कर राजस्व) के द्वारा होता है तथा पूँजी बजट दोनों ही संतुलन में रहते हैं।

(iii) संतुलित बजट की तीसरी धारणा वह है जहाँ समग्र संतुलन (overall balance) की बात कही जाती है। ऐसे संतुलन में विश्लेषण में राजस्व एवं पूँजी बजटों को साथ मिलाकर देखा जाता है तथा राजस्व एवं पूँजी बजटों में अलग-अलग संतुलन की बात नहीं कही जाती है। ऐसे ही संतुलन को नीचे की तालिका में दिखाया गया है। संतुलित बजट की इस धारणा के अनुसार राजस्व बजट में अतिरेक या घाटा हो सकता है। ऐसा अतिरेक या घाटा पूँजी बजट में हस्तान्तरित (transfer) हो जाएगा।

**समग्र बजट संतुलन**

प्राप्तियाँ (Receipts)	व्यय (Expenditure)
A. राजस्व (कर एवं गैर-कर)	D. वास्तविक एवं वित्तीय परिसम्पत्ति का अर्जन (नकद को छोड़कर)
B. निबल ऋण (net borrowing)	E. नकद में वृद्धि (+) या कमी (-)
C. चालू व्यय	

$$\text{संतुलन : } A + B = C + D + E$$

अब समय के प्रश्न को लें। पारम्परिक धारणा यह है कि प्रतिवर्ष बजट में संतुलन होना चाहिए। डाल्टन का कहना है कि वार्षिक संतुलन में कोई विशेष गुण नहीं है, यद्यपि यही सर्वाधिक उपयुक्त अवधि है।<sup>1</sup> वाइनर का कहना है कि “आर्थिक परिस्थिति पर ध्यान दिये बिना बजट में वार्षिक संतुलन की बात करना एक भ्रांति है। यदि प्रतिवर्ष संतुलन की जरूरत है, तो प्रति मास या प्रति सप्ताह या प्रति घंटा क्यों नहीं?”<sup>2</sup> आर्थिक परिस्थितियों पर विचार करते हुए बजट में चक्रीय संतुलन (cyclical balance) की धारणा का जन्म हुआ। इसके अनुसार व्यापार चक्र की सम्पूर्ण अवधि को देखना चाहिए और सम्पूर्ण अवधि में कुल मिलाकर बजट को संतुलन में रखना चाहिए— व्यापार चक्र के समृद्धि काल में बजट में अतिरेक तथा मन्दी काल में घाटा।

**19.4.2 आधुनिक धारणा—असंतुलित बजट**

संतुलित बजट की धारणा की चमक उस समय कम हो जाती है जब बड़े पैमाने पर अनैच्छिक बेरोजगारी विद्यमान रहती है। इसलिए केन्स, हान्सेन, बेवरीज, डाल्टन आदि का कहना है कि बजट नीति का उद्देश्य पूर्ण रोजगार की प्राप्ति होना चाहिए यह विचार क्लासिकल अर्थशास्त्रियों की धारणा से भिन्न है क्योंकि पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए बजट नीति के उपयोग की बात नहीं करते।

क्लासिकल तथा आधुनिक विचारों के अन्तर को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सार्वजनिक बचत के सम्बन्ध में दो धारणाओं में फर्क को समझा जाये। क्लासिकल व्यवस्था में पूर्ण रोजगार के स्तर पर प्राप्त सम्पूर्ण आय को उपभोग तथा विनियोग पर फिर से खर्च कर दिया जाता है। बचत स्वतः विनियोग में परिवर्तित हो जाती है। अतः

1. “There is no special virtue in a year, though this is the most usual period.”  
—Dalton, *op. cit.*, p. 303.
2. “It is a mouldy fallacy that regardless of circumstances, the government must balance its budget in each year why not in each month or week or hour?”

## नोट

आयोजित बचत हमेशा आयोजित विनियोग के बराबर होती है। ऐसी व्यवस्था में सभी सरकारी राजस्व-कर तथा ऋण-निजी व्यय में कमी करते हैं। यह कमी उपभोग या विनियोग में कटौती के माध्यम से होती है। इसलिए लोक व्यय के माध्यम से समग्र माँग में कोई वृद्धि नहीं हो सकती।

केन्सीय व्यवस्था में बचत की धारणा पृथक् है। इसमें न तो निजी क्षेत्र के द्वारा स्वतः पूर्ण रोजगार की स्थापना होती है और न ही बचत स्वतः आयोजित विनियोग के समान हो जाती है। इसलिए बजट में घाटा बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए जरूरी है। बजट घाटा समग्र आय में वृद्धि करने के लिए एक सकारात्मक यन्त्र के रूप में देखा जाने लगा ताकि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को अधिक व्यय करने के लिए प्रेरणा मिल सके।

बजट में घाटा असंतुलित बजट का एक रूप है। दूसरा रूप है बजट में अतिरेक (Surplus) केन्स, हान्सेन, बेवरीज, डाल्टन आदि अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि पूर्ण रोजगार बजट नीति का उद्देश्य होना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बजट में घाटे को स्वीकार किया जा सकता है।

### 19.4.3 विकासशील देशों में बजट की भूमिका

विकासशील देशों में बजट की भूमिका औद्योगिक देशों की तुलना में काफी भिन्न है। विकसित देशों में बजट के द्वारा समग्र माँग के सही स्तर को काम रखते हुए व्यापार चक्रीय उतार-चढ़ाव को न्यूनतम किया जा सकता है। विकासशील देशों में बेरोजगारी की प्रकृति चक्रीय नहीं होती है, बल्कि चिरकालीन (Chronic) है जो अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक अवरोध का परिणाम है। इसलिए इसका समाधान समग्र माँग में वृद्धि नहीं है, अपितु पूँजी निर्माण तथा विनियोग के स्तर में वृद्धि है। इसलिए इन देशों में बजट विकास योजना का एक अभिन्न अंग हो जाता है। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि विकासशील देशों में मौद्रिक नीति की अपेक्षा बजट नीति (राजकोषीय नीति) की भूमिका अधिक सबल है। इन देशों में वित्तीय बाजार या तो अनुपस्थित है या अच्छी तरह विकसित नहीं है। अर्थव्यवस्था के एक बड़े भाग में मुद्रा का प्रयोग नहीं होता है। अतः मौद्रिक नीति की कार्यक्षमता घट जाती है। दूसरी ओर, सार्वजनिक क्षेत्र को आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की जाती है। विकासशील देशों के समक्ष मुद्रा-स्फीति तथा भुगतान शेष की समस्याएँ भी काफी गम्भीर हैं। इन सभी मसलों पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि मौद्रिक नीति की तुलना में बजट नीति अधिक कारगर होगी।

बजट नीति के महत्त्व को देखते हुए अब इस पर विचार किया जाये कि विकासशील देशों में यह नीति कैसी रही है। कुछ विकासशील देशों में ऐसे नियम बनाये गये जिनके अनुसार राष्ट्रीय बजट का संतुलित होना जरूरी है। ऐसे नियम कमजोर आर्थिक तर्कों पर आधारित हैं। आवश्यकता इस बात की है कि बजट का मुद्रा-स्फीति, लोक-ऋण तथा निजी क्षेत्र की विकास-दर के लक्ष्यों के साथ मेल होना चाहिए। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बजट का सन्तुलित होना जरूरी नहीं है। अनुभव यह भी बताते हैं कि इन नियमों का पालन अत्यधिक कठिन कार्य है। एक कठिनाई का सम्बन्ध इस बात से है कि बजट सन्तुलन की परिभाषा किस तरह की जाये? लोक उद्यमों के लेखा को बजट में शामिल किया जाये या नहीं? फिर बजट का किस अवधि में सन्तुलित होना जरूरी है—प्रतिवर्ष या व्यापार चक्र के दौरान या अन्य किसी अवधि में?

यदि बजट सन्तुलित नहीं रहता है, तो इसमें घाटा होने की ही अधिक सम्भावना है और वास्तविकता भी यही है। अब प्रश्न यह उठता है कि किस मात्रा में बजट घाटा को समझदारीपूर्ण घाटा कहा जायेगा। इसका एक उत्तर यह हो सकता है कि बाह्य विश्वसनीयता, निजी विनियोग की वृद्धि तथा स्फीति के नियन्त्रण जैसे समष्टि आर्थिक उद्देश्यों के साथ बजट घाटा का मेल होना चाहिए। इसके लिए वित्त व्यवस्था को इसके घटकों (Components) में विभाजित करने की जरूरत है। महत्वपूर्ण विभाजन का इस बात से सम्बन्ध है कि अर्थव्यवस्था में किये जाने वाले सभी विनियोगों को जोड़ नागरिकों तथा विदेशियों की बचत के योग के बराबर होना चाहिए। इसे नीचे प्रस्तुत किया गया है—

- (1) सार्वजनिक विनियोग + निजी विनियोग = सार्वजनिक बचत + निजी बचत + विदेशी बचत;
- (2) बचत घाटा = सार्वजनिक विनियोग - सार्वजनिक बचत;

**नोट**

(3) निजी अतिरेक = निजी बचत – निजी विनियोग;

(4) चालू लेखा घाटा = विदेशी बचत;

(5) बजट घाटा = निजी अतिरेक + बजट का चालू घाटा।

विदेशियों की बचत से तात्पर्य विदेशियों की घरेलू अर्थव्यवस्था में प्राप्त आय तथा उनका इसी अर्थव्यवस्था में किये गये खर्च का अन्तर है। यही अन्तर भुगतान शेष के चालू घाटा के बराबर होता है। निजी बचत को प्राप्त करने के लिए समग्र राष्ट्रीय आय में से करों तथा निजी उपभोग को घटाना पड़ता है। सार्वजनिक बचत सार्वजनिक चालू राजस्व तथा सार्वजनिक चालू व्यय का अन्तर है। इसलिए सार्वजनिक बचत के अन्तर को बजट घाटा कहा जाता है। समझदारी पूर्ण बजट घाटा जिन तत्त्वों पर निर्भर करेगा वे हैं निजी बचत का स्तर, निजी विनियोग का वांछित स्तर तथा चालू लेखा घाटा का वांछित स्तर। निर्यात, मुद्रा की वास्तविक माँग तथा समस्त वित्तीय बचत की दर जितनी अधिक होगी बजट का घाटा उतना ही अधिक हो सकता है। सामान्यतः आर्थिक विकास की ऊँची दर की स्थिति में बजट का घाटा भी ज्यादा हो सकता है क्योंकि इस स्थिति में निर्यात तथा मुद्रा की माँग अधिक तेजी से बढ़ेगी। धीमी गति से विकसित होने वाली अर्थव्यवस्था में बजट घाटा का विवेकपूर्ण स्तर (prudent level) निम्न होगा क्योंकि ऐसी स्थिति में वित्तीय बचत का स्तर नीचा होगा तथा निर्यात अवरुद्ध रहेगा।



टास्क विकासशील देशों में बजट की क्या भूमिका है?

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

6. बजट की तैयारी को क्या कहा जाता है?
 

(अ) सूचीकरण	(ब) वर्गीकरण
(स) एकीकरण	(द) उपरोक्त सभी।
7. महान आर्थिक मंदी कब हुई थी?
 

(अ) 1948	(ब) 1930
(स) 1936	(द) 1830
8. एडम स्मिथ को लोकप्रिय बनाने वाले अर्थशास्त्री कौन थे?
 

(अ) मार्शल	(ब) केन्स
(स) जे.बी. से	(द) इनमें से कोई नहीं।

**19.5 बजट वर्गीकरण (Budgetary Classification)**

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में बजट के महत्त्व को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि बजट सम्बन्धी लोक व्यय एवं राजस्व के आंकड़ों को ऐसे व्यवस्थित ढंग से रखा जाये कि उनका समस्त आर्थिक महत्त्व स्पष्ट हो जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बजट का वर्गीकरण जरूरी हो जाता है।

**19.5.1 बजट वर्गीकरण के प्रकार**

बजट का वर्गीकरण कई उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया जाता है। इसलिए यह वर्गीकरण कई प्रकार से हुआ है; यथा—

## नोट

- (क) क्रियात्मक वर्गीकरण (Functional classification);
- (ख) संगठनात्मक वर्गीकरण (Organisational classification);
- (ग) विषय-सम्बन्धी वर्गीकरण (Object classification);
- (घ) आर्थिक वर्गीकरण (Economic classification);
- (ङ) प्रोग्राम तथा निष्पादन वर्गीकरण (Programme and Performance classification)।

**(क) क्रियात्मक वर्गीकरण**

बजट को विधायिका के समक्ष स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करते समय वित्त मन्त्री के लिए यह देखना आवश्यक हो जाता है कि मुद्रा का आबंटन ऐसे ढंग से हो ताकि सरकार की इच्छाओं को पूरा करना आसान हो जाये। यह बजट का व्यय पक्ष है। राजस्व पक्ष में इस बात पर ध्यान देना पड़ता है कि कर के भार का वितरण सामाजिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार हो। बजट के ये उद्देश्य उस समय पूरे हो सकते हैं जब लोक व्यय का वर्गीकरण प्रदत्त सेवाओं के आधार पर किया जाये। इसे क्रियात्मक वर्गीकरण कहा जाता है। इस वर्गीकरण का एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया गया है-

1. सामान्य लोक सेवाएँ (प्रतिरक्षा, न्याय, पुलिस तथा सामान्य प्रशासन);
2. सामुदायिक सेवाएँ (सड़क एवं पुल, सफाई आदि);
3. सामाजिक सेवाएँ (शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा तथा अन्य);
4. आर्थिक सेवाएँ (कृषि, खनन, निर्माण, बिजली, परिवहन, संचार आदि)।

लोक व्यय की ही तरह राजस्व का भी वर्गीकरण होता है, यथा, (क) कर राजस्व (आय कर, निगम कर, बिक्री कर आदि) तथा (ख) गैर-कर राजस्व।

क्रियात्मक वर्गीकरण सामान्य लेन-देन का उनके उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण है। इस वर्गीकरण का उद्देश्य यह देखना होता है कि सरकारी आय का सर्वोत्तम लाभ के लिए खर्च किया जाता है। ऐसे वर्गीकरण से उन उद्देश्यों के विषय में उपयोगी जानकारी मिलती है जिन्हें लोक व्यय के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इसके लिए सरकारी प्रोग्राम तथा क्रियाओं को उनके द्वारा प्रदत्त आधारभूत सेवाओं के अनुसार वर्गों में बाँटा जाता है।

**(ख) संगठनात्मक वर्गीकरण**

इसके अन्तर्गत सरकार की संगठनात्मक इकाइयों (जैसे, विभागीय मंत्रालय) के अनुसार बजट को बाँटा जाता है। ये इकाइयाँ ही सरकार की "कार्य करने वाली इकाइयाँ" (doers) कहलाती हैं। ये ही बजट प्रोग्राम की योजना बनाती हैं तथा उन्हें कार्यान्वित भी करती हैं। भारत में, अनुदान माँग (Demand for Grants) को संसद के समक्ष मन्त्रालय के अनुसार रखा जाता है। लोक व्यय का इस प्रकार का वर्गीकरण काफी आसान है, किन्तु राजस्व पक्ष कठिनाइयाँ प्रस्तुत करता है।

**(ग) विषय-सम्बन्धी वर्गीकरण**

लोक व्यय का वर्गीकरण व्यय करने वाली एजेन्सियों के अनुसार हो सकता है जिसे संगठनात्मक या एजेन्सी वर्गीकरण कहा जाता है। इस प्रकार के साथ विषय भी जोड़े जा सकते हैं। बर्कहैड का कहना है कि विषयानुसार वर्गीकरण उस युग की देन है जब विधायकों तथा नागरिकों को प्रशासकों पर विश्वास की कमी थी। इस वर्गीकरण के द्वारा बजट व्यवस्था में लेखा पद्धति का समावेश किया गया ताकि गबन (defalcation) पर अंकुश रखा जा सके। लोक व्यय के सम्बन्ध में इस वर्गीकरण का नीचे एक उदाहरण दिया गया है-

1. कार्मिक क्षतिपूर्ति
  - पूर्णकालिक स्थायी स्थान
  - अन्य स्थान
  - अन्य कार्मिक क्षतिपूर्ति



**नोट**

2. कार्मिक लाभ
  - व्यक्तियों का यात्रा एवं परिवहन
  - वस्तुओं का परिवहन
  - संचार, उपयोगिताएँ तथा लगान
  - मुद्रण एवं पुनरुत्पादन
3. अन्य सेवाएँ
  - आपूर्ति एवं सामग्री
  - साज-सामान
  - अनुदान, सब्सिडी तथा दान
  - बीमा आदि
4. प्रतिमूर्ति मद
  - कुल व्यय

जैसा ऊपर कहा गया, इस वर्गीकरण के साथ एजेन्सी या संगठनात्मक वर्गीकरण का उपयोग किया जाता है। विधायिका के प्रति वित्तीय दायित्व ही ऐसे वर्गीकरण का प्रमुख उद्देश्य है।



क्या आप जानते हैं लोक व्यय का वर्गीकरण व्यय करने वाली एजेंसियों के अनुसार हो सकता है जिसे संगठनात्मक या एजेन्सी वर्गीकरण कहा जाता है।

**(घ) आर्थिक वर्गीकरण**

यह एक ऐसा वर्गीकरण है जिसके अनुसार लोक व्यय तथा राजस्व को आर्थिक वर्गों के अनुसार बाँटा जाता है। इस वर्गीकरण का प्रमुख उद्देश्य है अर्थव्यवस्था की क्रिया पर सरकारी लेन-देन के अल्पकालिक प्रभाव का विश्लेषण। सरकारी लेन-देन के आर्थिक एवं क्रियात्मक वर्गीकरण से सभी आर्थिक आँकड़े प्राप्त किये जा सकते हैं। ये आँकड़े आर्थिक नीति निर्धारण के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। राष्ट्रीय आय लेखा के सिलसिले में भी आर्थिक वर्गीकरण का महत्व है। विकास योजनाओं के निर्माण में भी इसकी उपादेयता है। इस वर्गीकरण को एक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया गया है—

- (i) चालू व्यय
  - वस्तुओं और सेवाओं पर व्यय
  - मजदूरी और वेतन
  - अन्य खरीद
  - ब्याज का भुगतान
  - सब्सिडी तथा अन्य चालू हस्तान्तरण
- (ii) पूँजी व्यय
  - नये एवं विद्यमान स्थिर पूँजी परिसम्पत्ति की प्राप्ति
  - स्टॉक की खरीद
  - भूमि तथा अमूर्त परिसम्पत्ति की खरीद
  - पूँजी हस्तान्तरण
- (iii) शुद्ध (Net) उधार

## नोट

## (iv) ज्ञापन मद

- घरेलू व्यय
- विदेशों में व्यय
- घरेलू उधार
- विदेशों में उधार

**(ड) प्रोग्राम एवं निष्पादन वर्गीकरण-बजट नव-प्रवर्तन**

1950 के दशक की एक महत्वपूर्ण देन है प्रायः सभी देशों में योजना का अपनाया जाना। इस सन्दर्भ में पारम्परिक बजट व्यवस्था अधिक उपयोगी नहीं रह पाती है। इस बजट में नव-प्रवर्तन (Innovations) की आवश्यकता होती है। इसी नव-प्रवर्तन का परिणाम है प्रोग्राम तथा निष्पादन वर्गीकरण।

**19.5.2 पारम्परिक बजट की त्रुटियाँ (Shortcoming of Traditional Budgeting)**

बजट नव-प्रवर्तन को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम पारम्परिक बजट के दोषों से अवगत हो जाएँ। निम्न प्रमुख कमजोरियाँ हैं-

**(क) नियन्त्रण तथा उत्तरदायित्व की प्रमुखता (Dominance of Control and Responsibility)**

पारम्परिक बजट में नियन्त्रण तथा उत्तरदायित्व जैसे उद्देश्यों पर बल दिया जाता है। इसलिए इस बजट में राष्ट्रीय आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने वाले प्रोग्रामों तथा प्रोजेक्टों पर सार्वजनिक क्षेत्र में सीमित साधनों के आबंटन पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। नियन्त्रण तथा उत्तरदायित्व पर बल देने के निम्न परिणाम हुए हैं-

- (i) बजट का ढाँचा इस प्रकार तैयार किया जाता है कि इससे वेतन, यात्रा, फर्नीचर, जैसे व्यय के विषय के सम्बन्ध में जानकारी के अभाव में अर्थव्यवस्था पर बजट के प्रभाव का विश्लेषण संभव नहीं है।
- (ii) वेतन, स्टेशनरी, जैसे विशेष कार्यों पर सरकारी साधनों के उपयोग पर अधिक महत्व दिया जाता है, प्रोग्राम, विकास, उद्देश्यों आदि जैसे प्रश्नों की तुलना में। प्रोग्राम समन्वय जैसे महत्वपूर्ण मामले की भी अवहेलना की जाती है। लोक व्यय के पिछले स्तर को दिया हुआ मान लिया जाता है तथा केवल अतिरिक्त व्यय के अनुरोध की जाँच की जाती है। इसे बढ़ोत्तरी (incrementalism) कहा जा सकता है। यह एक ऐसा तत्त्व है जो साधनों के उचित आबंटन के लिए हानिकारक समझा जाता है।
- (iii) व्यय के मूल्यांकन की उपेक्षा की जाती है।
- (iv) पारम्परिक बजट एक अति स्थिर दस्तावेज होता है क्योंकि इसमें सामान्यतः परिवर्तनों का विरोध किया जाता है।
- (v) प्रोग्राम के निष्पादन (performance) की जाँच केवल मौद्रिक रूप में की जाती है। इसलिए व्यय के परिणाम तथा लाभों का निर्धारण कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, यह जानकारी मिल जाती है कि शिक्षा पर दस करोड़ रुपये खर्च किये गये, किन्तु यह नहीं कि इस व्यय से कितने शिक्षकों की नियुक्ति हुई, कितने लड़कों को शिक्षा मिली तथा स्कूल के कितने कमरे बने।
- (vi) चालू व्यय-सम्बन्धी निर्णयों के भावी वर्षों में पड़ने वाले प्रभावों के अनुमान लगाने की कोशिश नहीं की जाती है।
- (vii) पारम्परिक बजट व्यवस्था का प्रभाव स्टाफिंग पैटर्न पर भी पड़ता है। बजट अधिकारी तथा लेखापालों को नियन्त्रणोन्मुख प्रशिक्षण (Control oriented training) दिया जाता है। ऐसे कर्मचारी योजना तथा साधनों के आबंटन के सन्दर्भ में उपयुक्त नहीं होते हैं।

**(ख) बजट अपखण्डन (Budget Fragmentation)**

बजट, विशेषकर विकासशील देशों में, सार्वजनिक क्षेत्र के न तो सभी व्ययों को शामिल करता है न ही सभी सार्वजनिक क्रियाओं को। इसे अलबर्ट वाटर्सटन ने बजट अपखण्डन तथा कायडेन एवं विल्डेवस्की ने गायब होने वाला बजट कहा है। बजट अपखण्डन कई कारणों का परिणाम है। कर राजस्व को विशिष्ट उद्देश्यों तथा एजेंसियों

**नोट**

से अलग रखना ऐसा ही एक कारण है। ऐसा करने से बजट साधनों का आवंटन कार्य काफी कम हो जाता है तथा वैकल्पिक प्रोग्रामों के मध्य चयन के अवसर कम हो जाते हैं।

स्वायत्त एजेंसियाँ तथा निगम दूसरे ऐसे तत्व हैं। इन स्वायत्त एजेंसियों की स्थापना से राजस्व को इनके लिए पृथक् करके रख लिया जाता है तथा एकमुश्त हस्तान्तरण होता है। इससे बजट की व्याकुलता घट जाती है। याद रहे कि व्यापकता (comprehensiveness) बजट की एक विशेषता है।

**(ग) खण्डित बजट (Divided Budget)**

प्रोग्रामों को दो या अधिक बजटों के मध्य खण्डित कर दिया जाता है तथा उनकी पृथक्-पृथक् जांच होती है। वर्तमान व्यय का समन्वय नहीं होता है तथा भावी आवृत्ति व्यय (Recurring expenditure) की अवहेलना की जाती है।

**(घ) निष्पादन माप का अभाव (Lack of Performance Measurement)**

पारम्परिक बजट में केवल वित्तीय रूप में ही निष्पादन (Performance) की माप होती है, भौतिक रूप में शायद ही इसकी माप होती है। इसलिए व्यय के माध्यम से वास्तविक प्राप्ति की जानकारी नहीं मिलती है। मानलें कि “स्वास्थ्य” के मद में 10 करोड़ रुपये खर्च किये गये। पारम्परिक बजट में इस बात की जानकारी नहीं दी जाती है कि अस्पताल में कितने मरीजों के लिए बैड लगे, कितने डॉक्टरों की नियुक्ति हुई आदि। दूसरे शब्दों में, पारम्परिक बजट भौतिक लक्ष्यों के विषय में चुप रहता है।

**(ङ) प्रोग्राम विश्लेषण की अनुपस्थिति (Absence of Programme Analysis)**

पारम्परिक बजट में बजट अनुमानों को कार्य के भौतिक प्रोग्राम के रूप में नहीं दिखाया जाता। विकासशील देशों में आर्थिक विकास के लिए योजना किसी न किसी रूप में अपनाया गया है। इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि व्यापक, बहुक्षेत्रीय एवं बहुवर्षीय योजना को वार्षिक आधार पर विशेष प्रोग्राम एवं परियोजना (Project) में बदला जाये। इस कार्य के लिए जिस यन्त्र की सहायता ली जाती है वह बजट ही है। पारम्परिक बजट द्वारा इस कार्य का सम्पादन सही ढंग से नहीं हो पाता है।

पारम्परिक बजट के उपरोक्त दोषों की विवेचना करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि इनमें नव-प्रवर्तन (innovations) की आवश्यकता है। वस्तुतः आर्थिक योजना में सुधार के पूर्व एक ऐसी बजट व्यवस्था की जरूरत है जो योजना-सम्बन्धी निर्णयों को वास्तविकता में बदल दे। कायडेन एवं विल्डेवस्की के शब्दों में, “योजनाकरण तब तक अधिक ध्यान देने योग्य नहीं है जब तक वार्षिक बजट को अधिक अर्थपूर्ण न बनाया जाये।”<sup>1</sup>

जॉन बेयर (John Bayer) का कहना है कि पारम्परिक बजट में नव-प्रवर्तन का निर्माण निम्न तीन आधारों पर होना चाहिए—

- (i) व्यवहार में बजट सरकार के विकास प्रोग्राम तथा नीति-सम्बन्धी निर्णयों की मूल अभिव्यक्ति है।
- (ii) आर्थिक योजना की सफलता एक ऐसी बजट व्यवस्था पर निर्भर करती है जो योजना-सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावी ढंग से वास्तविकता में बदल दे।
- (iii) बजट यन्त्र ऐसा संभाव्य अवसर प्रदान करता है जिससे दीर्घकालीन व्यापक योजना की प्रभावकारिता को सीमित करने वाले अवरोधों को हटाया जा सकता है।

उपरोक्त परिणामों को पारम्परिक बजट द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसलिए बजट-प्रक्रिया के लिए एक नये दृष्टिकोण की आवश्यकता है और इसी को प्रोग्राम एवं निष्पादन बजट व्यवस्था (PPBS) का नाम दिया गया है।

1. “Planning is not worth much attention until the annual budget is made more meaningful.”  
—Naomi Caiden and Aaron Wildavsky, quoted in K.S. Sastry, *Performance Budgeting for Planned Development*, Radiant Publishers, 1979, p. 27.

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य कथन की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

9. क्रियात्मक वर्गीकरण सामान्य लेन-देन का उनके उद्देश्यों के आधार पर वर्गीकरण है।
10. कर के भार का वितरण सामाजिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार नहीं होना चाहिए।
11. लोक व्यय का वर्गीकरण व्यय करने वाली एजेंसियों के अनुसार हो सकता है जिसे संगठनात्मक या एजेंसी वर्गीकरण कहा जाता है।
12. पारंपरिक बजट में नियन्त्रण तथा उत्तरदायित्व जैसे उद्देश्यों पर बल नहीं दिया जाता है।
13. पारंपरिक बजट एक स्थिर दस्तावेज होता है।

## 19.6 सारांश (Summary)

- देश की अर्थव्यवस्था में बजट का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि बजट से सरकार की आर्थिक क्रियाओं का प्रतिबिम्ब झलकता है। साधारण शब्दों में, बजट गत वर्ष के लेखों का वार्षिक वित्तीय विवरण तथा आने वाले वर्ष के लिए राजस्व और व्यय का अनुमान है।
- बजट सरकार की अति महत्वपूर्ण वित्तीय योजना है। **बजट**, प्रत्याशित आय एवं प्रस्तावित व्यय के आकलनों को बजट वर्ष के लिए एक साथ प्रस्तुत करता है।
- बजट सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक आय का अनुमान है जो सामान्यतः वित्तीय वर्ष के अन्त में आगामी वर्ष के लिए बनाया जाता है। इसमें निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार की स्पष्ट नीतियों का उल्लेख होता है।
- विधायिका की स्वीकृति मिल जाने के पश्चात् प्रशासन द्वारा राजस्व एकत्र किया जाता है तथा स्वीकृत मदों पर स्वीकृत राशि खर्च की जाती है।
- बजट कानूनी नियन्त्रण का एक माध्यम है। बजट-सम्बन्धी सभी निर्णय अधिनियमों का रूप लेते हैं। कानूनी नियन्त्रण पर बल देने का कारण है अधिकारों का दुरुपयोग रोकना तथा सार्वजनिक फण्ड को गलत इस्तेमाल से बचना।
- क्लासिकल लेखकों के अनुसार बजट का सार है राजस्व तथा व्यय के मध्य सन्तुलन। यह धारणा व्यक्तिगत आचरण के सादृश्य (analogy) पर आधारित है।
- प्रत्येक सीमित परिवार के आचरण में जो समझदारी है वह एक बड़े राज्य के सम्बन्ध में शायद ही मूर्खता हो सकती है।
- राजस्व बजट में राजस्व का व्यय के बराबर होना। अतः इस बजट में न तो अतिरेक होगा और न ही घाटा। यदि व्यय की तुलना में राजस्व अधिक हो तो उसे अतिरेक बजट (Surplus Budget) कहा जाएगा। इसके विपरीत राजस्व की तुलना में व्यय के अधिक होने पर उसे घाटे का बजट (Deficit debt) कहा जाता है।
- क्लासिकल व्यवस्था में पूर्ण रोजगार के स्तर पर प्राप्त सम्पूर्ण आय को उपभोग तथा विनियोग पर फिर से खर्च कर दिया जाता है। बचत स्वतः विनियोग में परिवर्तित हो जाती है। अतः आयोजित बचत हमेशा आयोजित विनियोग के बराबर होती है। ऐसी व्यवस्था में सभी सरकारी राजस्व-कर तथा ऋण-निजी व्यय में कमी करते हैं।
- विकासशील देशों में बजट की भूमिका औद्योगिक देशों की तुलना में काफी भिन्न है। विकसित देशों में बजट के द्वारा समग्र मांग के सही स्तर को काम रखते हुए व्यापार चक्रीय उतार-चढ़ाव को न्यूनतम किया जा सकता है। विकासशील देशों में बेरोजगारी की प्रकृति चक्रीय नहीं होती है, बल्कि चिरकालीन (Chronic)

## नोट

है जो अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक अवरोध का परिणाम है। इसलिए इसका समाधान समग्र मांग में वृद्धि नहीं है, अपितु पूँजी निर्माण तथा विनियोग के स्तर में वृद्धि है। इसलिए इन देशों में बजट विकास योजना का एक अभिन्न अंग हो जाता है।

- कुछ विकासशील देशों में ऐसे नियम बनाये गये जिनके अनुसार राष्ट्रीय बजट का संतुलित होना जरूरी है। ऐसे नियम कमजोर आर्थिक तर्कों पर आधारित हैं। आवश्यकता इस बात की है कि बजट का मुद्रा-स्फीति, लोक-ऋण तथा निजी क्षेत्र की विकास-दर के लक्ष्यों के साथ मेल होना चाहिए।
- 1950 के दशक की एक महत्वपूर्ण देन है प्रायः सभी देशों में योजना का अपनाया जाना। इस सन्दर्भ में पारम्परिक बजट व्यवस्था अधिक उपयोगी नहीं रह पाती है। इस बजट में नव-प्रवर्तन (Innovations) की आवश्यकता होती है। इसी नव-प्रवर्तन का परिणाम है प्रोग्राम तथा निष्पादन वर्गीकरण।

## 19.7 शब्दकोश (Keywords)

- निष्पादन (Performance)–पूरा करना।
- परिचालन (Operation)–संचालन।
- आवृत्ति (Recurring)–दुहराव।

## 19.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. बजट की परिभाषा लिखें।
2. बजट के आवश्यक तत्वों का वर्णन करें।
3. बजट के क्या उद्देश्य हैं?
4. पारंपरिक बजट में किन-किन बातों पर बल दिया जाता है?
5. बजट के प्रमुख सिद्धांतों का वर्णन करें।
6. बजट का वर्गीकरण प्रस्तुत करें।

## उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |              |           |          |           |
|--------------|-----------|----------|-----------|
| 1. 1773      | 2. बजट    | 3. एक    | 4. सकल    |
| 5. वैज्ञानिक | 6. (अ)    | 7. (ब)   | 8. (स)    |
| 9. सत्य      | 10. असत्य | 11. सत्य | 12. असत्य |
| 13. सत्य।    |           |          |           |

## 19.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक-वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक-वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
3. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
4. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस-सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
5. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
6. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
7. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

## इकाई-20: संघीय वित्त व्यवस्था (The Federal Finance)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

20.1 संघीय वित्त की समस्याएँ (Problems of Federal Finance)

20.2 संघीय वित्त-व्यवस्था के सिद्धांत (Principles of Federal Finance)

20.3 वित्तीय साधनों में असंतुलन की समस्या (Problem of Imbalance in Financial Resources)

20.4 संघीय वित्त की आधुनिक प्रवृत्तियाँ (Recent Trends in Federal Finance)

20.5 संघीय वित्त व्यवस्था के सिद्धांत तथा भारतीय संघीय व्यवस्था (Principles of Federal Finance and Indian Federal Systems)

20.6 सारांश (Summary)

20.7 शब्दकोश (Keywords)

20.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

20.9 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- संघीय वित्त संबंधी समस्याओं से अवगत हेतु।
- संघीय वित्त-व्यवस्था के सिद्धांत की जानकारी प्राप्त करने में।
- वित्तीय साधनों में असंतुलन की समस्या संबंधी जानकारी प्राप्त करने हेतु।
- संघीय वित्त की आधुनिक प्रवृत्तियों को समझने में।

### प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक संघीय राज्य है। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्ध संघीय वित्त सिद्धान्त (Principal of Federal Finance) पर निर्भर करते हैं। संघीय शासन व्यवस्था में केन्द्रीय शासन अथवा केन्द्रीय सरकार के साथ-साथ विभिन्न राज्यों में राज्य सरकारें भी होती हैं। अतः जब एक ही देश में एक से अधिक सरकारें होती हैं तो उसे 'संघीय शासन व्यवस्था' कहते हैं। श्री आर. एल. वाट ने संघीय शासन-व्यवस्था को इस प्रकार परिभाषित किया है, "संघीय शासन व्यवस्था एक प्रकार का राजनैतिक संघ है। जिसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक राज्य मिलकर एक सरकार बनाते हैं, किन्तु ये सदस्य राज्य अपनी आन्तरिक सुरक्षा बरकरार रखते हैं।" एनसाइक्लोपीडिया

**नोट**

के अनुसार, “संघ एक प्रकार की सरकार है, जिसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि इसमें दो या दो अधिक राज्य मिलकर कुछ स्थाई उद्देश्यों के लिए एक केन्द्रीय सरकार बनाते हैं।” **सर रॉबर्ट गेरन (Sir Robert Garran)** ने संघ की परिभाषा इस प्रकार की है, “संघ एक प्रकार की सरकार है, जिसमें सर्वोत्तम सत्ता अथवा राजनैतिक शक्ति (Sovereignty of political power) का वितरण केन्द्रीय और स्थानीय सरकारों में इस प्रकार होता है, जिसमें कि प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र में कार्य करने के लिए स्वतन्त्र होता है।”

इस प्रकार स्पष्ट है कि संघीय शासन व्यवस्था में, देश में एक केन्द्रीय सरकार होती है तथा विभिन्न राज्यों अथवा प्रान्तों में राज्य सरकारें होती हैं, जो अपनी-अपनी भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत प्रशासनिक कार्यों के लिए स्वतन्त्र होती हैं। केन्द्रीय सरकार उनके कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करती है, किन्तु कुछ मामलों में ये केन्द्र से सम्बन्धित होती हैं। विभिन्न सरकारों के अधिकारों एवं कर्तव्यों में टकराव को रोकने के लिए संविधान में इन सब सरकारों के अधिकारों और कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर दिया जाता है।

### 20.1 संघीय वित्त की समस्याएँ (Problems of Federal Finance)

संघीय वित्त की मुख्य समस्या केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय साधनों का वितरण है, क्योंकि ये अपने आर्थिक तथा भावी विकास के कार्यक्रमों को बिना वित्तीय प्रबन्ध द्वारा सम्भव नहीं कर सकते। इस प्रकार यह समस्या उनके लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है। इन तथ्यों को निम्न आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) **कार्यों का विभाजन वित्तीय साधनों के अनुरूप**—संघवाद के अन्तर्गत संविधान में केन्द्र तथा राज्यों को लगभग एक दूसरे से स्वतन्त्र कार्य सौंपे गये हैं। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक सरकार को अपने-अपने कार्य सम्पन्न करने के लिए पर्याप्त मात्रा में वित्तीय साधनों की आवश्यकता होगी, उन्हें पर्याप्त मात्रा में साधन उपलब्ध कराये जाएं। संविधान में केन्द्र सरकार को राष्ट्रीय हित के कार्य जैसे सुरक्षा, अन्तर्राज्यीय एवं विदेशी व्यापार, डाक-तार एवं संचार, रेल इत्यादि सौंपे गए हैं, जबकि राज्य सरकारों को स्थानीय अथवा क्षेत्रीय हित के कार्य जैसे-शिक्षा चिकित्सा, सामाजिक सेवाएँ, आन्तरिक कानून व्यवस्था इत्यादि सौंपे गए हैं। इन सब कार्यों के अनुरूप वित्तीय साधन उपलब्ध हों तथा जिसमें केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय निकाय अपनी आय प्राप्त करने एवं व्यय करने में स्वतन्त्र हों। किन्तु यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि किसी भी संघ व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य निरपेक्ष रूप में स्वतन्त्र तथा समन्वित स्तर स्थापित नहीं हो सकता है।

(2) **कार्यों तथा साधनों में असन्तुलन**—संघीय वित्त की यह भी एक समस्या है कि कार्यों तथा साधनों के मध्य सन्तुलन में भावी सामाजिक तथा तकनीकी परिवर्तनों के कारण विघ्न उत्पन्न हो जाता है। संघीय व्यवस्था में यह देखा गया है कि केन्द्र सरकार के आय के साधन तो धीरे-धीरे बढ़ते जाते हैं, किन्तु राज्यों के कार्यों के अनुरूप न केवल साधन ही बढ़ पाते हैं, बल्कि उनकी स्वतन्त्रता को भी खतरा हो जाता है। वर्तमान में कल्याणकारी राज्य की धारणा से राज्यों के कार्यों में अत्यधिक वृद्धि हो गई है, किन्तु उनको पर्याप्त मात्रा में धन उपलब्ध नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में एक इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता होती है, जो बदलती हुई परिस्थितियों में साधनों का पुनर्वितरण एवं समन्वय कर सके। इस व्यवस्था को समवर्ती शक्तियों को स्थापित, केन्द्रीय कर राजस्व में राज्यों को अधिक हिस्सा प्रदान करके तथा अनुदान की व्यवस्था करके बनाए रखा जा सकता है।

(3) **राज्यों की सापेक्ष निर्धनता**—कुछ राज्यों की सापेक्ष निर्धनता भी वित्तीय समस्या को उत्पन्न करती है। आर्थिक विकास एवं प्राकृतिक साधनों की विभिन्नता के कारण सब राज्य समान स्तर पर नहीं होते हैं, अतः उनकी वित्तीय समस्याएँ भी भिन्न-भिन्न होंगी। वित्तीय समस्या भिन्न होने के कारण उनकी सामाजिक एवं प्रशासनिक समस्याओं में भी विषमताएँ पायी जाएंगी। प्रत्येक संघीय व्यवस्था के लिए इन विषमताओं को दूर करना आवश्यक है। इस समस्या को संघ द्वारा राज्यों को आर्थिक अनुदान देकर हल किया जा सकता है। निर्धन राज्यों को अन्य राज्यों की अपेक्षाकृत अधिक अनुदान दिया जाना चाहिए। हमारे देश में इन असमानताओं को दूर करने के लिए वित्त आयोग कर-राजस्व तथा अनुदान सामान्यता जनसंख्या एवं प्रति व्यक्ति आय के आधार पर सिफारिश करता है।

## 20.2 संघीय वित्त-व्यवस्था के सिद्धान्त (Principles of Federal Finance)

नोट

प्रो. बी. पी. अदारकर (Prof. B. P. Adarkar) ने अपनी पुस्तक 'संघीय वित्त की समस्याएँ' (Problems of Federal Finance) में संघीय वित्त के तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। इनका तथा इनके अतिरिक्त जिन सिद्धान्तों का पालन उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाना चाहिए, उसका विश्लेषण निम्न प्रकार किया गया—

(1) स्वतन्त्रता एवं जिम्मेदारी का सिद्धान्त (Principles of Independence and Responsibility)—इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम प्रो. बी. पी. अदारकर का यह कहना है कि संघ तथा राज्य दोनों सरकारों को अपनी वित्तीय व्यवस्था करने की पूरी व्यवस्था दी जानी चाहिए, जिससे कि उनको अपने रोजाना के कार्य करने में तथा अपनी सामाजिक और आर्थिक आकांक्षाओं को पूरा करने में और उनकी उन्नति करने में कोई रुकावट न आये। इसका अर्थ यह है कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों में से प्रत्येक के पास अपने निजी एवं स्वतन्त्र वित्तीय साधन हों, जो उसके कार्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त होने चाहिए। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें अपने क्षेत्र में वित्तीय मामलों में स्वतन्त्र होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक सरकार को अपने क्षेत्र पर कर लगाने, ऋण एकत्रित करने और आय के अन्य साधनों में वृद्धि करने की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर लेनी चाहिए, जिससे कि वह अपने क्षेत्र के कार्यों को सुचारू रूप से कर सके। इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि जिस सत्ता के पास आय को व्यय करके प्रसन्न करने वाला कार्य है, उसी सत्ता के पास आय को एकत्रित करने का कष्टदायक कार्य भी करना चाहिए।



**नोट्स** कर लगाने की स्वतन्त्रता और व्यय करने की स्वतन्त्रता साथ-साथ चलनी चाहिए।

इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह भी विश्वास है कि यदि प्रत्येक स्तर पर सरकार उस आय को एकत्रित करती है, जिसे उसे व्यय करना है, तब प्रत्येक राज्य के सार्वजनिक व्यय की श्रेणी (quality) एवं आकार में भारी विभिन्नता होगी। जिस राज्य में धनी जनसंख्या रहती है तथा जहाँ करों से पर्याप्त मात्रा में आय उपलब्ध हो सकती है, वह सामाजिक दायित्वों को निर्धन राज्यों की अपेक्षाकृत भली प्रकार पूरा कर सकते हैं। अतः अर्द्ध-विकसित देशों में राज्यों की वित्तीय स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का पालन करना कठिन हो जाता है, क्योंकि संघ के सभी राज्यों में कर की दरों को समान रखना, सबका समान रूप से आर्थिक विकास करना, आन्तरिक और बाह्य स्थिरता को बनाए रखना तथा सभी राज्यों में आर्थिक व सामाजिक उन्नति का सन्तुलन बनाए रखने जैसे उद्देश्यों की अवहेलना नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दों में, ये विद्वान यह कहना चाहते हैं कि कर लगाने और आय को एकत्रित करने की स्वतन्त्रता एवं स्वायत्तता (autonomy) केन्द्र सरकार के पास होनी चाहिए तथा राज्य सरकारों के पास व्यय करने की स्वतन्त्रता एवं स्वायत्तता होनी चाहिए।

उपरोक्त विचार, कि अर्द्ध-विकसित देशों में आय के स्रोत केन्द्रीय सरकार के हाथ में केन्द्रित होने चाहिए, कुशलता व सन्तुलित विकास के सिद्धान्तों की कसौटी पर ठीक हो सकता है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण भी झुठलाया नहीं जा सकता। यदि वित्तीय व्यवस्था के लिए राज्य सरकारों को केन्द्रीय सरकार पर अत्यधिक निर्भरता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाता है तब राज्य सरकारों का स्तर व्यय करने वाली संस्थाओं जैसा हो जायेगा और राज्य की उन्नति में वह अपनी कोई दायित्व नहीं समझेगी।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संघ की प्रत्येक इकाई को आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता होनी चाहिए। राज्यों को अपने कार्य करने के लिए पर्याप्त धन प्राप्त के अधिकार होने चाहिए। वे कर भी लगा सकें और ऋण भी सकें, इसमें उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। किन्तु व्यवहार में पूर्ण स्वतन्त्रता सम्भव नहीं होती। इसके दो कारण हैं, एक तो यह कि केन्द्रीय सरकार अपने पास आय के महत्वपूर्ण स्रोत रखती है, जो आमतौर पर लोचपूर्ण होते हैं, दूसरे कुछ स्रोत ऐसे होते हैं, जिनको टुकड़ों में बाँटा नहीं जा सकता, इसलिए केन्द्रीय सरकार उनको अपने पास रखती है। अतः प्रत्येक इकाई को संघ पर निर्भर रहना पड़ता है। उदाहरण के लिए, भारत में आय-कर,



**नोट**

कॉरपोरेशन कर तथा उत्पादन-कर के स्रोत केन्द्र के अधीन हैं, जो लोचपूर्ण हैं। इस प्रकार के साधन राज्य सरकारों के पास नहीं हैं। अतः वित्तीय सहायता के लिए राज्यों को केन्द्र सरकार का मुँह देखना पड़ता है।

(2) **यथेष्टता एवं लोच का सिद्धान्त** (Principle of Adequacy and Elasticity)–संघीय वित्त व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रो. बी. पी. अदारकर (Prof. B. P. Adarkar) ने जिस दूसरे सिद्धान्त पर बल दिया है, यह यथेष्टता व लोच का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त का यह अर्थ है कि केन्द्रीय व राज्य सरकारों के पास वित्तीय साधन यथेष्ट मात्रा में होने चाहिए, जिससे प्रत्येक स्तर की सरकार अपने दायित्वों को सुगमता से पूरा कर सके। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक सरकार के पास आय के इतने साधन होने चाहिए, जो उनके कार्यों एवं कर्तव्यों को पूरा करने के लिए पर्याप्त होने चाहिए, जिन्हें उनको सौंपा गया है। आस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश सर जॉन लाथम ने कहा है कि, “अगर एक संघीय व्यवस्था पूर्ण स्वतन्त्रता के रूप में कायम रहना चाहती है तो राज्यों के पास इतने साधन होने चाहिए, जो उनके उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए यथेष्ट हों।”

यथेष्टता के अतिरिक्त, वित्तीय साधनों में लोच (elasticity) का होना भी आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि वित्तीय आवश्यकता के तेजी से बढ़ने पर आय के साधनों में भी वृद्धि हो जाए अर्थात् आय भी बढ़ जाए। अन्यथा संघीय वित्त व्यवस्था, आर्थिक तथा सुरक्षात्मक संकट में एक समस्या उत्पन्न कर देती है। अधिकांशतः ऐसा होता है कि राज्य के कार्य तो ऐसे होते हैं कि उनके खर्चें तो बढ़ते हैं किन्तु आय लोचपूर्ण नहीं होती, अर्थात् आय खर्चों के अनुसार नहीं बढ़ पाती है। अतः डॉ. आर. एन. भार्गव का यह कहना उपर्युक्त ही है कि आर्थिक साधनों का विभाजन लोचपूर्ण व्यवस्था के रूप में होना चाहिए। क्योंकि कोई भी योजना चाहे वह कितनी भी अच्छी क्यों न हो, आने वाले प्रत्येक समय के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती।

(3) **प्रबन्ध में मितव्ययिता एवं कुशलता का सिद्धान्त** (Principle of Administrative Economy)– प्रो. बी. पी. अदारकर (Prof. B. P. Adarkar) ने जिस तीसरे सिद्धान्त पर बल दिया है वह संघीय वित्त व्यवस्था के प्रबन्ध एवं कुशलता का सिद्धान्त है। उनका कहना है कि संघ राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों की सफलता के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वित्तीय साधनों के प्रबन्ध में कम से कम लागत आये तथा इसमें किसी प्रकार का कर-वंचन एवं जालसाजी नहीं होनी चाहिए। साधनों का विभाजन करते समय भी यह देखना चाहिए कि कौन से साधन का केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के द्वारा अच्छा प्रबन्ध किया जा सकता है। भ्रष्टता तथा घुसपैठ को समाप्त किया जाना चाहिए तथा प्रत्येक साधन का आय की वृद्धि के लिए उपयोग किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त कर इस प्रकार लगाये जाएँ कि उद्योग तथा व्यापार पर उसका बुरा प्रभाव न पड़े, बल्कि इससे व्यापार तथा रोजगार की वृद्धि हो तथा कर-वंचन (Tax evasion) कम से कम हो।

प्रो. सेलिगमैन ने प्रशासनिक कुशलता के सिद्धान्त बताते हुए कहा है कि, “चाहे कोई योजना कितनी भी उपयुक्त क्यों न हो, यदि इसका प्रशासन ठीक नहीं है तो यह अवश्य ही असफल हो जायेगी।”

(4) **एकरूपता का सिद्धान्त** (Principle of Uniformity)–संघीय वित्त व्यवस्था में एकरूपता का यह अर्थ है कि संघ की प्रत्येक संघ सरकार को कर के रूप में समानता के आधार पर अपना-अपना अंशदान दे। जो कार्य सब राज्यों के लिए आवश्यक है उसका भार सहन करने के लिए, सभी राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार को समानता के आधार पर अपना-अपना अंशदान दें, अर्थात् समानता के आधार पर इस भार को सहन करें तथा केन्द्र सरकार द्वारा समस्त राज्यों के निवासियों पर समान दर से कर लगाये जाएँ। करों के भुगतान के लिए सभी नागरिकों के साथ एक-सा व्यवहार किया जाए। केन्द्रीय सरकार को अपना सार्वजनिक व्यय करते समय भी सभी राज्यों के नागरिकों के साथ एक-सा व्यवहार करना चाहिए। किन्तु राजकोषीय नीति में इस प्रकार की समानता लाना सम्भव नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक इकाई के पास न तो एक से साधन होते हैं और न उनका व्यय समान होता है। प्रत्येक राज्य के साधन तथा आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। हाँ, यह सम्भव हो सकता है कि संघ सरकार द्वारा लगाये गये करों का भुगतान करते समय किसी एक राज्य के व्यक्तियों को दूसरे राज्य के व्यक्तियों की तुलना में न तो कोई विशेष सुविधा दी जाए और न ही कोई विशेष छूट दी जाए।

## नोट

(5) **समानता और सिद्धान्त (Principle of Equity)**—समानता का सिद्धान्त करारोपण में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, जो एडम स्मिथ (Adam Smith) ने प्रतिपादित किया था। इस सिद्धान्त को संघीय वित्त व्यवस्था में लागू करना भी महत्वपूर्ण बात है, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार संघ तथा राज्यों में साधनों का बँटवारा असमानता की स्थिति उत्पन्न कर सकता है, जो समस्त ढाँचे को खराब कर सकता है। एक संघ के विभिन्न राज्यों के आर्थिक विकास के स्तर में विभिन्नता हो सकती है, किन्तु यदि करारोपण इस सिद्धान्त के अनुसार किया जाए, तब विभिन्न राज्यों में करों का भार विभिन्न होगा। क्योंकि विभिन्न राज्यों में सीमान्त त्याग अलग-अलग होगा। धनी राज्यों के करदाताओं का सीमान्त त्याग उन राज्यों की तुलना में कम होगा जो अपेक्षाकृत निर्धन हैं। अतः इस बात की आवश्यकता उत्पन्न होती है कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के करों का इस प्रकार समन्वय किया जाए जिससे प्रत्येक करदाता पद दोनों प्रकार के करों के कारण सीमान्त त्याग बराबर हो या लगभग बराबर हो, चाहे वह किसी राज्य में क्यों न रहते हों। कहने का अभिप्राय यह है कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के करों का समावेश इस प्रकार से किया जाए, जिससे प्रत्येक नागरिक पर करों का भार समान रूप से पड़े या लगभग समान रूप से पड़े।



क्या आप जानते हैं? चाहे कोई योजना कितनी भी उपयुक्त क्यों न हो, यदि इसका प्रशासन ठीक नहीं है तो यह अवश्य ही असफल हो जाएगी।

(6) **समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Integration and Coordination)**—एक संघ की सारी वित्त-व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए, जिसमें संघ की प्रत्येक इकाई एक दूसरे से समन्वित हो तथा कोई भी इकाई सारी व्यवस्था से अलग न हो। संघीय व्यवस्था के कुशलता एवं सुचारू रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि संघ की सभी इकाइयाँ समन्वित हों। इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि संघ तथा राज्यों में समन्वय का सिद्धान्त केवल कर लगाने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। संघ तथा राज्यों के बजट, पूँजीगत व्यय तथा साख सम्बन्धी क्रियाओं में भी समन्वय होना चाहिए और यह समन्वय सम्बद्ध क्रियाओं के साथ भी होना चाहिए।

(7) **लेखे का सिद्धान्त (Principle of Accountability)**—संघीय वित्त-व्यवस्था और प्रजातन्त्र एक संघ की दो संस्थाएँ हैं जो दो बहनों के समान हैं। अतः एक संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक सरकार के कर लगाने व व्यय करने के निर्णयों को अपने विधायकों को लेख देने का भी उत्तरदायित्व है। इसका अर्थ यह है कि संघीय वित्त-व्यवस्था में प्रत्येक सरकार के कर लगाने व व्यय करने के निर्णयों के बारे में उनके विधायकों का लेखा-जोखा लेने का अधिकार है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक सरकार को कर लगाने व व्यय करने के निर्णय इस बात को ध्यान में रखते हुए करने चाहिए कि इनका अन्य सरकारों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

(8) **राज-कोष में वृद्धि का सिद्धान्त (Principle of Fiscal Access)**—केन्द्रीय व राज्य सरकारों को अपने-अपने क्षेत्र में नये आय के साधनों को विकसित करने पर अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि सरकार के उत्तरदायित्वों में वृद्धि के साथ-साथ साधनों में भी वृद्धि होनी चाहिए।

(9) **हस्तान्तरण का सिद्धान्त (Principle of Transfer of Resources)**—इस सिद्धान्त का अभिप्राय यह है कि जो राज्य धनी हैं, उन राज्यों से आय प्राप्त करके निर्धन राज्य को दिया जाना चाहिए, जिससे प्रत्येक राज्य के व्यक्ति एक न्यूनतम जीवन स्तर पर अपना जीवन बिता सकें। इसका उद्देश्य है कि देश के किसी भी व्यक्ति का जीवन स्तर इस न्यूनतम जीवन स्तर से कम न हो सके अर्थात् देश के किसी भी व्यक्ति का जीवन स्तर राष्ट्रीय न्यूनतम स्तर से कम नहीं होना चाहिए। अतः डॉ. बी. आर. मिश्रा (Dr. B. R. Mishra) ने अपनी पुस्तक 'Indian Federal Finance' में लिखा है कि संघ तथा राज्यों में साधनों का विभाजन "राष्ट्रीय न्यूनतम" के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिए। धनी राज्यों में निर्धन राज्यों की आय का हस्तान्तरण करके ऐसा हो सकता है। इस हस्तान्तरण का मुख्य उद्देश्य उत्तराञ्चलीय असमानताओं को कम करना है, क्योंकि आर्थिक असमानताएँ राष्ट्रीय समृद्धि के हित में नहीं होती हैं। राजस्व की क्रियाओं का प्रयोग करके इस प्रकार की असमानताओं को दूर किया जा सकता है।

**नोट**

(10) **वित्तीय साधनों का पुनर्विभाजन (Re-allocation of Resources)**—प्रत्येक देश द्वारा साधनों को इस प्रकार विभाजित करने का प्रयास किया जाता है जिससे संघ तथा राज्यों को उनकी आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त धन प्राप्त हो सके और वे अपने उत्तरदायित्वों को कुशलतापूर्वक पूरा कर सकें, किन्तु इस प्रकार से साधनों का विभाजन करना सरल नहीं होता है। ऐसी कोई ठोस कसौटी नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि साधनों का बंटवारा अनुकूलतम है। संघ सरकार के साधनों और राज्य सरकार के साधनों के बीच एक विभाजन रेखा खींचना भी कठिन होता है।

जब केन्द्र तथा राज्यों के बीच साधनों का बंटवारा किया जाता है तो इसमें कुछ साधन ऐसे होते हैं जिन पर केन्द्र का पूर्ण अधिकार होता है तथा कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें राज्यों को दिया जाता है तथा कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें केन्द्र तथा राज्य दोनों को सौंपा जाता है। ऐसे साधनों को समवर्ती (Concurrent) सूची में रखा जाता है। समवर्ती क्षेत्रों में मतभेद उत्पन्न होते रहते हैं जिन्हें संविधान द्वारा तय किया जाता है। आमतौर पर ऐसा पाया जाता है कि केन्द्रीय अथवा एवं सरकार को यह अधिकार दे दिया जाता है कि वह कर का रूप, कर की विधि एवं व्यवस्था के लिए सामान्य शर्तें निर्धारित कर दे और राज्य उन शर्तों के अनुसार कार्य करें। इस प्रकार स्पष्ट है कि समवर्ती (concurrent) सूची के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार अथवा संघ सरकार ढाँचा तैयार करती है और राज्य सरकारें उसी के अन्तर्गत नियम बनाती हैं तथा कर निर्धारित करती हैं।

यहाँ यह फिर स्पष्ट किया जाता है कि समय के साथ-साथ परिस्थितियाँ भी बदलती रहती हैं और इसलिए केन्द्र व राज्यों में साधनों का कोई निश्चित विभाजन नहीं किया जा सकता। अतः साधनों के बंटवारे का कोई भी हल एक अन्तिम हल नहीं हो सकता। बदलती हुई परिस्थितियों में साधनों का पुनर्विभाजन भी किया जा सकता है। अन्त में यह भी कहा जा सकता है कि साधनों का बंटवारा इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे देश के साधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सके तथा आर्थिक विकास की दर में वृद्धि हो सके और आय के असमानतायें कम हो सकें।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :**

1. भारत एक ..... राज्य है।
2. जब एक ही देश में एक से अधिक सरकारें होती हैं तो उसे ..... कहते हैं।
3. संघीय वित्त की मुख्य समस्या केन्द्र तथा राज्यों के मध्य ..... साधनों का वितरण है।
4. संघ की प्रत्येक इकाई को ..... क्षेत्र में स्वतंत्रता होनी चाहिए।
5. समानता का सिद्धांत करारोपण में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है जो ..... ने प्रतिपादित किया था।

**20.3 वित्तीय साधनों में असन्तुलन की समस्या****(Problem of Imbalance in Financial Resources)**

यह देखने में आया है कि केन्द्र तथा राज्य सरकारों के कार्यों और उनके वित्तीय साधनों में अक्सर असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। विभिन्न सरकारों की आय के साधन उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल भी रह सकते हैं तथा उनसे कम या अधिक भी रह सकते हैं।

**20.3.1 असन्तुलन के कारण (Causes of Imbalance)**

आय के साधनों और आवश्यकताओं में असन्तुलन का मुख्य कारण यह पाया जाता है कि आय के सभी महत्वपूर्ण व लोचपूर्ण साधन प्रबन्ध की कुशलता एवं राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार को सौंप दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए भारत में, सीता शुल्क (customs), आय कर (Income Tax), उत्पादन कर (Excise Duty) व कॉर्पोरेशन कर केन्द्रीय सरकार को दिये गये हैं। ये सभी कर लोचपूर्ण हैं अर्थात् इनके द्वारा आय में

## नोट

दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। दूसरी ओर, राज्य सरकारों को स्वतन्त्रता एवं स्वायत्तता (autonomy) के आधार पर आर्थिक एवं सामाजिक विकास के दायित्व सौंपे जाते हैं। फलस्वरूप उनके असर्वजनिक व्ययों में तीव्रता से वृद्धि होती जाती है। अतः व्यावहारिक जीवन में यह देखा जाता है कि केन्द्रीय सरकार के आय के साधनों में राज्य सरकार के आय के साधनों की अपेक्षा तेजी से वृद्धि होती है तथा राज्य सरकार के व्यय में केन्द्रीय सरकारों की अपेक्षा तेजी से वृद्धि होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि केन्द्रीय सरकार के पास आय के साधन हैं तथा राज्य सरकार के पास उत्तरदायित्व हैं, फलस्वरूप संघीय वित्त-व्यवस्था में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।

इस सम्बन्ध में दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि प्रत्येक सरकार के कार्य एवं उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गये हैं; किन्तु जब केन्द्रीय सरकार के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों में वृद्धि होती है तब स्थानीय सरकारों के आय के साधनों में से हिस्सा लेने लगती है। फलस्वरूप स्थानीय सरकारों के आय के साधन और उनके कार्यों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है।

कार्यों और आय के साधनों में असन्तुलन का तीसरा कारण आर्थिक असमानताओं को बताया जाता है। जब सारे देश का सन्तुलित रूप से आर्थिक व सामाजिक विकास करने की नीति को अपनाया जाता है तब अपेक्षाकृत निर्धन राज्यों के साधनों पर अत्यधिक दबाव पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना में बाधा पड़ती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उन क्षेत्रों में आय के साधनों में कमी होती है जहाँ पर इनकी अत्यधिक आवश्यकता होती है। इन क्षेत्रों में कार्यों एवं आय के साधनों में असन्तुलन होता है।



टास्क आय के साधनों और आवश्यकताओं में असन्तुलन का मुख्य कारण क्या है?

### 20.3.2 असन्तुलन को किस प्रकार दूर किया जाए? (How to Remove Imbalance?)

संघ तथा राज्यों में वित्तीय असन्तुलन को अधोलिखित प्रकार से दूर किया जा सकता है—या तो राज्य सरकारों के कुछ कार्य केन्द्रीय सरकार को हस्तान्तरित कर दिये जाएँ, या केन्द्रीय सरकार के कुछ आय के साधन राज्य सरकारों को हस्तान्तरित कर दिये जाएँ। संघ तथा राज्यों के बीच वित्तीय असन्तुलन को केन्द्रीय सरकार के कुछ करों को राज्य सरकारों को हस्तान्तरित करके भी किया जा सकता है। किन्तु इस दृष्टिकोण का विरोध एकरूपता (uniformity) एवं प्रबन्ध की कुशलता (administrative efficiency) के आधार पर किया गया है। इसके अतिरिक्त केन्द्र तथा राज्यों के बीच असन्तुलन को, केन्द्र से कुछ धनराशि राज्यों को हस्तान्तरित करके, दूर किया जा सकता है। संघीय व्यवस्थाओं में आमतौर पर यही पद्धति प्रचलित है। आस्ट्रेलिया के कॉमनवैल्थ अनुदान आयोग ने कहा है कि हमने कॉमनवैल्थ से राज्यों को बड़ी और बढ़ती हुई मात्रा में धनराशियों को हस्तान्तरित करना स्वीकार कर लिया है, क्योंकि कॉमनवैल्थ आसानी से आय में वृद्धि कर सकती है।

### 20.3.3 वित्तीय साधनों को सरकारों के बीच हस्तान्तरित करने के तरीके

#### (Forms of Inter-government Financial Transfers)

संघ तथा राज्यों में वित्तीय असन्तुलन को दूर करने के लिए निम्न उपाय किये जाते हैं जिससे संघ की प्रत्येक इकाई कार्यों एवं साधनों की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो सके। केन्द्र व राज्यों में तथा अन्तरराज्यों के वित्तीय साधनों का समायोजन इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि संघ की सब इकाइयों को आय के समान स्रोतों से समान आय प्राप्त नहीं होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि संघ की सभी इकाइयाँ आर्थिक दृष्टि से एक-सी नहीं होतीं, कुछ इकाइयों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है तथा कुछ की कमजोर। फलस्वरूप, आय के एक ही स्रोत से विभिन्न राज्यों को असमान आय प्राप्त होती है क्योंकि उनकी सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियाँ समान नहीं हैं। किन्तु देश के सन्तुलित विकास के लिए समुचित वित्तीय समायोजन होना आवश्यक है, इसके लिए निम्न विधियों को अपनाया जाता है—

## नोट

**(1) कर आय का बंटवारा (Distribution of Tax Proceeds)**

इस प्रणाली के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार कुछ कर लगाती है और इनसे प्राप्त आय को एकत्रित करती है तथा एकत्रित आय को संघीय इकाइयों में विभाजित कर देती है। इस विधि को समर्पण (Assignment) विधि कहते हैं अथवा 'आय कुण्ड वितरण विधि' (Distributive Pool Method) कहते हैं। इस विधि को लागू करते समय तीन समस्याएँ आती हैं—

(i) कौन से करों की आय का विभाजन किया जाए?

(ii) करों की आय के कौन से हिस्से अथवा आय के किस प्रतिशत को राज्य सरकारों में बाँटा जाए?

(iii) प्रत्येक राज्य का हिस्सा किस प्रकार अथवा किस आधार पर निश्चित किया जाए?

(1) **करों से करों की आय विभाजित की जाए**—जहाँ तक इस बात का प्रश्न है कि कौन-से करों की आय को राज्यों में बाँटा जाए, इस सम्बन्ध में संघ के संविधान में यह लिखा होता है कि कौन-कौन से करों से प्राप्त आय को राज्यों में बाँटा जाए।

(2) **करों से प्राप्त आय के कौन-से हिस्से को अथवा करों से प्राप्त आय के किस प्रतिशत को राज्यों में बाँटा जाए और किस प्रतिशत को केन्द्रीय सरकार अपने पास रखे**—इस सम्बन्ध में भी संविधान में दिया हुआ हो सकता है। भारत और अफ्रीकन संघों के संविधान में इस बात की व्यवस्था है, कि वित्त आयोग का गठन किया जाना चाहिए, जो राज्यों के हिस्से के बारे में निर्माण करेगा। कनाडा में इस सम्बन्ध में केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच पाँच वर्ष के लिए समझौता (agreement) होता है। इस मामले में भारतीय व्यवस्था में ही अपेक्षाकृत अधिक लचीलापन है। यहाँ वित्त आयोग करों से प्राप्त आय को राज्यों का हिस्सा उनकी आवश्यकता के आधार पर निश्चित करता है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि संविधान में राज्यों के हिस्से का अनुपात अथवा प्रतिशत भी दिया हुआ है, तो इस व्यवस्था में लचीलापन जो एक बहुत आवश्यक गुण है लगभग समाप्त हो जाएगा, क्योंकि संविधान में आसानी से परिवर्तन सम्भव नहीं होते।

**प्रो. वी. पी. अदारकर** ने इस समस्या को, कि करों से प्राप्त आय का केन्द्र तथा राज्यों में किस प्रकार बंटवारा करें, हल करने की निम्नलिखित विधियाँ बताई हैं—

(i) संघीय सरकार कर आय का एक निश्चित प्रतिशत अपने पास रख ले और शेष राशि को आनुपातिक ढंग से संघ की इकाइयों के बीच बाँट दे।

(ii) संघीय सरकार कर आय की सम्पूर्ण राशि एक निश्चित अनुपात में संघ की इकाइयों के बीच बाँट दे।

(iii) संघीय सरकार के लिए निश्चित राशि बचा ली जाए और शेष राशि अन्य सरकारों के बीच बाँट दी जाए।

(iv) केन्द्रीय सरकार केवल करों को आरोपित और एकत्रित करे और उनसे प्राप्त आय को राज्य सरकारों को सौंप दे।

(3) **कर-आय के बंटवारे की तीसरी समस्या यह है कि प्रत्येक राज्य का हिस्सा किस आधार पर निश्चित किया जाए**—यह वास्तव में एक जटिल समस्या है। भारत व कुछ अफ्रीकन संघ में राज्य सरकारों का हिस्सा कुछ ऐसे तत्त्वों पर उसे जनसंख्या का आकार, आर्थिक और सामाजिक पिछड़ापन तथा प्रत्येक इकाई के एकत्रित आय में योगदान के आधार पर वित्तीय आयोग द्वारा निश्चित किया जाता है। किन्तु आजकल अन्तिम तत्त्व के महत्त्व पर बल दिया जाता है। अतः प्रत्येक राज्य का हिस्सा, जनसंख्या, आर्थिक व सामाजिक पिछड़ापन और राज्य की जिम्मेदारियों अथवा उत्तरदायित्वों के आधार पर निश्चित किया जाता है।

**20.3.4 लाभ और दोष (Advantages and Defects)**

इस व्यवस्था के कुछ लाभ व दोष भी हैं जो निम्न प्रकार दिये गये हैं—

**लाभ (Advantages)****नोट**

- इसमें केन्द्रीय सरकार का सर्वोच्च महत्त्व बना रहता है तथा राज्य सरकारों की स्वायत्तता भी समाप्त नहीं होती है।
- यह प्रणाली सरल है।
- यह प्रणाली आय की कुशलता व समानता के आधार पर बंटवारा करने में सफल रही है।
- राज्य सरकारें वह कार्य करने के लिए प्रोत्साहित होंगी जिन्हें केन्द्रीय सरकार महत्त्व दे रही है। केन्द्रीय सरकार उन कार्यों को महत्त्व देगी, जिससे संघ के सभी राज्य समान स्तर पर आ जाएँ।
- केन्द्रीय सरकार की आय में वृद्धि के साथ-साथ राज्य सरकारों की आय में भी वृद्धि होती जाएगी।

**दोष (Defects)**

- यदि संग्रह करने वाली इकाई को उसके उपयोग का अधिकार नहीं होगा, तो वह इकाई आय एकत्रित करने में रुचि नहीं लेगी।
- यदि संग्रह करने वाली इकाई का अंश पहले से ही निश्चित कर दिया जाए, तो भी वह इकाई कर आय एकत्रित करने में रुचि नहीं लेगी।
- संघीय इकाइयाँ दुर्बल इकाइयों का ध्यान न रखकर स्वयं अधिकाधिक धन प्राप्त करने का प्रयास करने लगती हैं। यह स्थिति अन्य इकाइयों में असन्तोष पैदा करती है।
- कुछ इकाइयाँ जनसंख्या के आधार पर अधिक अंश माँगती हैं तो कुछ एकत्रित आय में अपने योगदान पर अधिक अंश माँगती हैं तथा आर्थिक व सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर अधिक अंश माँगती हैं अतः कर-आय वे बंटवारे में किसी भी आधार को क्यों न अपनाया जाए, प्रत्येक दशा में किसी न किसी इकाई को थोड़ा-बहुत असन्तोष अवश्य रहता है।
- कर-आय के बंटवारे के आधार पर परिवर्तन होने पर, इकाइयों की आय के आधार में भी परिवर्तन हो जाता है। इस स्थिति में भी संघ की कुछ इकाइयों में असन्तोष उत्पन्न होता है।

**( 2 ) अनुपूरक या अतिरिक्त कर (Supplementary Levies or Taxes)**

आय और साधनों के बीच असन्तुलन को दूर करने की दूसरी विधि अनुपूरक या अतिरिक्त कर-प्रणाली है। इस प्रणाली के अन्तर्गत एक सरकार (प्रायः संघ सरकार) मुख्य कर (Principal Tax) लगाती है, अन्य सरकारें उस पर अतिरिक्त कर लगाती हैं। इस प्रकार राज्य सरकारें अपने आय के साधनों में वृद्धि कर सकती हैं और आवश्यकताओं एवं साधनों में सन्तुलन स्थापित कर सकती हैं यह भी हो सकता है कि केन्द्रीय सरकार किसी कर-विशेष को लागू करे और राज्य-सरकारें उस पर अतिरिक्त कर (Supplementary levy or tax) लगाकर अपनी आय में वृद्धि कर लें या विभिन्न राज्य सरकारें कोई कर लगायें और केन्द्रीय सरकार उस पर अतिरिक्त कर लगाकर अपनी आय में वृद्धि कर ले। इस प्रणाली में उपरोक्त दोनों विधियों में से किसी भी एक को अपनाया जा सकता है। किन्तु आमतौर पर केन्द्रीय सरकार कोई मुख्य कर लगाती है तथा राज्य सरकारें उस पर अतिरिक्त कर लगाकर अपनी आय में वृद्धि करती हैं।

इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों द्वारा लगाये गये करों की दर प्रायः असमान होती है। इसलिए जब राज्य सरकारों द्वारा आरोपित करों के ऊपर केन्द्र द्वारा अतिरिक्त कर लगाये जाते हैं तब न तो कर-प्रणाली में एकरूपता रहती है और न ही उसे न्यायसंगत समझा जा सकता है।

संघ सरकार द्वारा लगाये गये करों पर विभिन्न राज्य सरकारें जिस दर से चाहें कर लगा सकती हैं, किन्तु यह दर साधारणतः निश्चित कर दी जाती है और आमतौर पर अतिरिक्त कर का भार मुख्य कर के भार से अधिक नहीं रहता है। अतिरिक्त कर केन्द्रीय सरकार द्वारा ही एकत्रित किया जाता है और इसकी आय को विभिन्न राज्यों को दे दिया जाता है।

**नोट**

**आलोचनाएँ**—वित्तीय समायोजन की इस प्रणाली की अनेक विद्वानों ने आलोचना की है। (1) उनका कहना है कि दो बार कर लगाने से व्यक्तियों पर कर का भार बहुत अधिक हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप देश के उत्पादन, वितरण और बचत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। (2) इसके अतिरिक्त केन्द्र तथा राज्यों में प्रगतिद्वन्द्विता आरम्भ हो जाती है क्योंकि प्रत्येक केवल अपने लाभ व हितों को महत्त्व देने लगता है। (3) करदाता पर कर का भार इतना अधिक होने की सम्भावना बन जाती है जिसको वह वहन करने में असमर्थ हो जाता है तथा उसके जीवन-स्तर पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

**(3) संघीय आर्थिक सहायता (Federal Grant-in-aid)**

विभिन्न राज्यों में वित्तीय सन्तुलन स्थापित करने की एक महत्त्वपूर्ण विधि है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत संघ राज्यों को आर्थिक सहायता देता है। ये सहायताएँ एक विधान के अन्तर्गत दी जाती हैं। ये सहायताएँ शर्तसहित तथा शर्तहीन दोनों, प्रकार की हो सकती हैं। ये सहायताएँ स्थाई भी हो सकती हैं तथा अस्थायी अथवा परिवर्तनशील भी होती हैं। इन सहायताओं का मुख्य उद्देश्य राज्यों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार आय के साधन प्रदान करना होता है तथा विभिन्न राज्यों की स्थिति में एकरूपता लाना होता है। इसके अतिरिक्त संघीय सरकार पिछड़े क्षेत्रों की उन्नति तथा पिछड़े वर्गों की शिक्षा के लिए विशेष सहायता (special grants) भी देती है। इतना ही नहीं संघीय सरकार किसी विशेष योजना को कार्यान्वित करने के लिए भी राज्यों को अनुदान (Grants-in-aid) के रूप में आर्थिक सहायता प्रदान करती है जिसके खर्च की देखभाल संघ-सरकार स्वयं करती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि संघीय सरकार राज्य सरकारों को अनेक प्रकार की आर्थिक सहायताएँ प्रदान करती है।



**नोट्स** आय और साधनों के बीच असन्तुलन को दूर करने की दूसरी विधि अनुपूरक या अतिरिक्त कर प्रणाली है।

**किन सिद्धान्तों पर आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए**

**प्रो. ए. एच. हैन्सन (A. H. Hansen)** तथा **एच. एस. परलोफ (H. S. Perloff)** के अनुसार राज्यों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के सम्बन्ध में निम्न सिद्धान्त अपनाने चाहिए—

- (i) आर्थिक सहायता निर्धारित करते समय संघ को प्रत्येक राज्य की आय तथा जनसंख्या को ध्यान में रखना चाहिए।
- (ii) संघ द्वारा राज्यों को आर्थिक सहायता उसके आय के साधन आवश्यकताओं के आधार पर देनी चाहिए। जिन राज्यों के साधन कम और आवश्यकताएँ अधिक हैं उन्हें अपेक्षाकृत आर्थिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
- (iii) संघीय आर्थिक सहायता इतनी दी जानी चाहिए जो किसी सेवा को एक अच्छे स्तर पर समस्त देश में बनाये रखने के लिए पर्याप्त हो।
- (iv) आर्थिक दृष्टि से कमजोर राज्यों को विशेष आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए, जिससे वे देश के न्यूनतम स्तर को प्राप्त करने में समर्थ हो सकें।
- (v) इस प्रकार की आर्थिक सहायता का अपव्यय नहीं होना चाहिए।
- (vi) राज्यों को संघ पर आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए निर्भर नहीं होना चाहिए, उन्हें स्वयं भी आर्थिक साधनों में वृद्धि करने के लिए प्रयास करने चाहिए।
- (vii) केन्द्रीय सरकार को इन अनुदानों को राज्य सरकारों को देने में एक सरल व कार्यशील नीति को अपनाना चाहिए, जिससे देश के समस्त राज्यों को समान आर्थिक व सामाजिक स्तर पर लाया जा सके तथा उनमें असन्तोष की भावना को कम किया जा सके।

## नोट

इस प्रकार के अनुदान संघीय व्यवस्था के विभिन्न घटकों (केन्द्र एवं राज्य सरकार) के मध्य वित्तीय सम्बन्धों की असमानताओं में कमी करने में सहायक हो सकते हैं। ये अनुदान केन्द्र सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों में शिक्षा, चिकित्सा इत्यादि मदों पर व्यय करके प्रदान किये जा सकते हैं। इस प्रकार अनुदान केन्द्र सरकार अथवा वित्त आयोग के अधिकार क्षेत्र में हो सकते हैं।

अमेरिका तथा भारत में कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिए केन्द्र सरकार राज्यों को सहायता प्रदान करती है। इस प्रकार के अनुदान कुछ निश्चित कार्यक्रमों के लिए ही दिये जाते हैं तथा केन्द्र सरकार उस परियोजना की शेष लागत का एक निश्चित अनुपात ही आर्थिक सहायता देती है। परियोजना की शेष लागत उन राज्य को अपने साधनों द्वारा पूरी करनी पड़ती है।



क्या आप जानते हैं? राज्यों को केवल केन्द्र द्वारा प्रदान की गयी सहायता पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए, बल्कि उन्हें अपने आय के साधनों में भी वृद्धि करनी चाहिए।

#### (4) राज्यों का संघ सरकार के लिए अंशदान

इस प्रणाली के अन्तर्गत, जिस प्रकार संघ सरकार राज्यों को आर्थिक सहायता अथवा अनुदान देती है उसी प्रकार राज्य सरकारें भी केन्द्रीय सरकार को उसके खर्चों की पूर्ति के लिए अनुदान देती है। किस राज्य को किस आधार पर तथा कितना अनुदान केन्द्र सरकार को उसके खर्चों की पूर्ति के लिए देना चाहिए, यह एक जटिल समस्या है। इसके अन्तर्गत राज्य सरकारें अपनी आय का एक निश्चित प्रतिशत भी केन्द्र सरकार को अनुदान के रूप में दे सकती हैं।

किन्तु वित्तीय समायोजना (Financial adjustment) अथवा केन्द्र तथा राज्यों में आय के साधनों और उनकी आवश्यकता के बीच सन्तुलन स्थापित करने के लिए इस विधि को अच्छा नहीं समझा जाता है क्योंकि इसमें अनेक दोष हैं। इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष है कि केन्द्रीय सरकार को अपने खर्चों के लिए राज्य सरकारों पर निर्भर रहना पड़ता है, जो बिल्कुल अनुपयुक्त है, क्योंकि केन्द्रीय सरकार को देश की रक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। यदि इन उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए वह राज्यों पर निर्भर रहती है तो वह कभी भी कुशलता व आत्मविश्वास के साथ कार्य नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त राज्यों का कार्य-क्षेत्र बहुत सीमित होता है। वे पर्याप्त रूप में केन्द्र को आर्थिक सहायता प्रदान नहीं कर सकते।

### 20.4 संघीय वित्त की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

#### (Recent Trends in Federal Finance)

संघीय सरकार का यह दायित्व है कि वह संघीय व्यवस्था में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करे। इसके लिए उसे पर्याप्त शक्ति प्रदान की जाए। प्रो. एफ. जी. कारनल (F.G. Carnell) के अनुसार, “वर्तमान दशाओं में केन्द्र सरकार को पर्याप्त मात्रा में शक्ति प्रदान करनी चाहिए ताकि वह उन आर्थिक एवं सामाजिक दायित्वों को निभा सके, जो आधुनिक केन्द्र सरकार से आशा की जाती है।”<sup>1</sup> सामाजिक सेवाएँ जैसे बेरोजगारी सुरक्षा, बीमारी सुरक्षा, वृद्धावस्था में पेंशन, विधवाओं तथा अनाथों को पेंशन इत्यादि सभी राज्यों में समान स्तर तथा समान सिद्धान्तों पर प्रदान की जाएं। इसके लिए आवश्यक है कि इसके लिए केन्द्र सरकार व्यवस्था स्थापित करे तथा इनको कार्यान्वित करने में सभी राज्य सहयोग प्रदान करें। इस प्रकार स्पष्ट है कि केन्द्र सरकार को अधिक शक्ति प्रदान की जाए। ये प्रवृत्तियाँ संघीय वित्त को प्रभावित करती हैं तथा इनमें से कुछ प्रवृत्तियाँ वित्तीय नीति को विकसित करने में सहायक हो सकती हैं—

1. F.G. Carnell —Federalism in India. Page 29.



**नोट**

- (i) केन्द्र सरकार विकास के लिए साधन प्रदान करे तथा राज्य सरकार उन विकास योजनाओं को कार्यान्वित रूप प्रदान करे। इस प्रकार सरकार वित्तीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने की मुख्य वित्तीय एजेन्सी के रूप में कार्य करती है तथा राज्य सरकारें आर्थिक विकास को करने में केन्द्र सरकार की सहायक के रूप में कार्य करती हैं।
- (ii) हाल के वर्षों में केन्द्र सरकार से राज्य सरकारों को वित्तीय साधनों का स्थानान्तरण तेजी से हुआ है वर्तमान में राज्य सरकारें वित्तीय स्थिति में केन्द्र सरकार पर पहले की अपेक्षा अधिक निर्भर हो रही हैं क्योंकि विकास परियोजनाएँ केन्द्र की सहायता बिना सम्भव नहीं हो सकतीं।
- (iii) राज्य सरकारों से अधिकतर व्यय की पूर्ति केन्द्र सरकार करती हैं। अतः केन्द्र सरकार का दायित्व हो जाता है वह राज्य सरकारों के सार्वजनिक व्यय को नियन्त्रित करने के लिए नीति निर्धारित करे।
- (iv) केन्द्र सरकार निर्धन राज्यों को विभिन्न राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से पर्याप्त मात्रा में वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

यदि किसी संघीय वित्त में ये प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं तो उनका सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिवर्तन पर काफी प्रभाव पड़ता है। यदि परिस्थितियों के अनुसार वित्तीय नीति में परिवर्तन नहीं होता है तो संघीय वित्त अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकेगा।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

- 6. कॉरपोरेशन कर है—
  - (अ) लोचपूर्ण
  - (ब) बेलोचपूर्ण
  - (स) संकीर्ण
  - (द) दिए गए सभी।
- 7. “हमने कॉमनवैल्थ से राज्यों को बड़ी और बढ़ती हुई मात्रा में धनराशियों को हस्तांतरित करना स्वीकार कर लिया है”। यह किसका कथन है?
  - (अ) भारत के कॉमनवैल्थ आयोग का
  - (ब) ऑस्ट्रेलिया के कॉमनवैल्थ आयोग का
  - (स) ब्रिटेन के कॉमनवैल्थ आयोग का
  - (द) उपरोक्त सभी।
- 8. संघीय सरकार का यह दायित्व है कि वह संघीय व्यवस्था में किसको प्रोत्साहित करे?
  - (अ) सामाजिक विकास को
  - (ब) राजनीतिक विकास को
  - (स) सांस्कृतिक विकास को
  - (द) आर्थिक विकास को।

**20.5 संघीय वित्त व्यवस्था के सिद्धांत तथा भारतीय संघीय व्यवस्था (Principles of Federal Finance and Indian Federal Systems)**

अब तक हम वित्त सिद्धान्तों जैसे स्वतन्त्रता एवं जिम्मेदारी, यथेष्टता एवं लोच, प्रबन्ध में मितव्ययिता, एकरूपता समानता, समन्वय, लेखा, राजकोष में वृद्धि इत्यादियों की विवेचना कर चुके हैं। यहाँ हम भारतीय संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय साधनों के बँटवारे में इन वित्तीय सिद्धान्तों का विश्लेषण करेंगे। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मध्य करों के बँटवारे के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता एवं जिम्मेदारी के सिद्धान्त को अपनाया गया है। क्योंकि संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के कर बँटवारे तथा कार्यों की पृथक् रूप में व्याख्या की गई है। वे कर जिनका आधार अन्तःराज्य (inter-state) है उनको एकत्रित एवं लगाने का दायित्व केन्द्र सरकार पर है तथा जिन करों का आधार स्थानीय है, उनका दायित्व राज्य सरकारों को सौंपा गया है।

## कर दायित्वों का स्पष्ट रूप में बँटवारा (Clear Cut Division of Taxing Powers)

नोट

केन्द्रीय सूची (सूची-I) में केन्द्र की शक्ति एवं कार्य की विवेचना की गई है। इस सूची में केन्द्र सरकार द्वारा लगाए गये कर एवं लेवी सम्मिलित की गई हैं। राज्य (सूची-II) में राज्य सरकार द्वारा लगाये गये कर एवं लेवी को सम्मिलित किया गया है। (सूची-III) समवर्ती सूची (Concurrent) होती है।

सूची-I में सम्मिलित सभी वित्तीय साधनों पर केन्द्र सरकार का पूर्ण अधिकार होता है तथा सूची-II में सम्मिलित साधनों पर राज्य सरकार का पूर्ण अधिकार होता है तथा सूची-III में सम्मिलित साधनों पर राज्य का केवल समवर्ती अधिकार होता है। इस प्रकार संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कर दायित्वों का स्पष्ट रूप में बँटवारा किया गया है।

### 20.5.1 राज्यों को समर्पण करने वाला केन्द्रीय राजस्व कर भार

#### (A Part of the Central tax Revenue is Assigned to the States)

केन्द्र सरकार की सूची में 12 मदों पर कर लगाने का प्रावधान है। यद्यपि ये सभी कर केन्द्रीय सूची में होते हैं किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि इन मदों से प्राप्त सभी राजस्व का प्रयोग केन्द्र सरकार करती है। केन्द्रीय सूची में सम्मिलित करों को निम्न चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

- (1) वे कर जिनको लगाने का तथा उनसे प्राप्त राजस्व को रखने का पूर्ण अधिकार केन्द्र सरकार को होता है। इसमें सीमा शुल्क, नियम कर तथा पूँजी कर (कृषि भूमि को छोड़कर) इत्यादि सम्मिलित होते हैं। इस भाग में सम्मिलित मदों से प्राप्त आय को राज्यों में नहीं बाँटा जाता है।
- (2) कुछ ऐसे कर जिन्हें लगाने व वसूल करने का अधिकार केन्द्र सरकार को है किन्तु इनसे प्राप्त आय में राज्यों का भी हिस्सा होता है। कृषि आय के अतिरिक्त सभी आयों पर तथा तम्बाकू एवं अन्य निर्माणकारी वस्तुओं (शराब तथा नशीली दवाओं को छोड़कर) पर लगाये जाने वाले कर इस समूह में सम्मिलित होते हैं।
- (3) ऐसे कर जिन्हें केन्द्र सरकार लगाती है तथा वसूल भी केन्द्र सरकार करती है किन्तु उनसे प्राप्त राजस्व का सम्पूर्ण भाग राज्यों में विभाजित कर दिया जाता है। कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सभी प्रकार की सम्पत्तियों पर उत्तराधिकारी कर (अथवा आस्ती कर), रेल के किराये तथा भाड़े पर कर, रेल, जल तथा वायु मार्गों के आने-जाने वाले माल व यात्रियों पर टर्मिनल टैक्स, अन्तरराज्य व्यापार में सम्मिलित वस्तुओं पर बिक्री-कर (समाचार-पत्रों को छोड़कर) इत्यादि इस मद में सम्मिलित होते हैं।
- (4) कुछ कर जो केन्द्र सरकार द्वारा लगाये जाते हैं किन्तु वसूल राज्यों की सरकार द्वारा किये जाते हैं तथा उनसे प्राप्त राजस्व का उपभोग भी राज्य ही करते हैं। स्टाम्प ड्यूटी, चिकित्सा एवं टॉयलेट उपकरणों पर उत्पादन-कर इस मद में सम्मिलित होते हैं।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि केन्द्र सरकार अपने कर राजस्व का कुछ भाग राज्य सरकारों में विभाजित कर देती है। राज्य सरकारों का हिस्सा उनकी आवश्यकताओं के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। इसके अतिरिक्त करों का विभाजन कर राजस्व को एकत्रित करने में कुशलता एवं मितव्ययिता से भी सम्बन्धित होता है। इस प्रकार यह यथेष्टता एवं लोच तथा प्रबन्ध में मितव्ययिता एवं कुशलता के सिद्धान्तों का पालन करता है।



टास्क केंद्रीय सूची में सम्मिलित करों को कितने भागों में बाँटा गया है?

### 20.5.2 वित्त आयोग की स्थापना (Setting of Finance Commission)

कर राजस्व का केन्द्र तथा राज्य सरकारों में स्पष्ट रूप से विभाजन करने के पश्चात् भी विभिन्न सरकारों के वित्तीय साधनों तथा उनके द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों के मध्य असन्तुलन दृष्टिगोचर होता है। इन असन्तुलों को दूर करने के लिए संविधान में यह प्रावधान रखा गया है कि केन्द्र सरकार के कुछ कर राजस्व का भाग तथा आर्थिक अनुदान राज्य सरकारों को दिया जाना चाहिए।

**नोट**

भारतीय संविधान की धारा 280-A में केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों को संतुलित बनाये रखने के लिए प्रत्येक पाँच वर्ष के पश्चात् एक वित्त आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है। संविधान में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि यह आवश्यकतानुसार इस प्रकार के वित्त आयोग को पाँच वर्ष से पूर्व भी नियुक्त कर सकता है। वित्त आयोग अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपता है और विचार के बाद उस पर केन्द्र सरकार निर्णय लेती है। वित्त आयोग की स्थापना का उद्देश्य यह है कि वह संघीय साधनों में से अर्थात् उन साधनों में से जो इस समय संघ के अधिकार में हैं तथा जिसमें से राज्यों को हिस्सा दिया जा सकता है इन साधनों में से राज्य सरकारों का हिस्सा इस प्रकार तथा इस आधार पर निश्चित करें, जिससे संघ और राज्यों के बीच उनके आय के साधनों तथा आवश्यकताओं के सन्तुलन बने रहें तथा संघ के सभी राज्यों का भी सन्तुलित विकास हो सके।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत में केन्द्र एवं राज्यों के बीच आर्थिक सन्तुलन बनाये रखने में वित्तीय आयोग महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। भारत के संविधान में (सन् 1950 के संविधान में) संघ तथा राज्यों में सन्तुलन स्थापित करने के लिए तीन तत्त्वों का उल्लेख किया गया है।

1. **आय-कर तथा संघीय उत्पादन करों का बँटवारा**—संविधान की धारा-270 में कुछ कर ऐसे हैं जिनसे प्राप्त आय का बँटवारा संघ एवं राज्यों में करने की व्यवस्था की गई है। इसमें सभी आय-कर (कृषि आय को छोड़कर) सम्मिलित होते हैं। भारत सरकार एक्ट 1935 की अनुसूची 140(1) में प्रावधान है कि उत्पादन करों का कुछ और सम्पूर्ण भाग राज्य सरकारों में बाँटा जा सकता है। इन करों से प्राप्त आय का बँटवारा वित्तीय आयोग की सलाह पर संघ एवं राज्यों के बीच किया जाता है। इस प्रकार हर पाँच वर्ष बाद वित्त-आयोग संघ एवं राज्यों की आवश्यकताओं का अवलोकन कर इस आय में उनका हिस्सा निश्चित करता है।

2. **संघ द्वारा राज्यों को आर्थिक सहायता**—संघ एवं राज्यों के बीच वित्तीय सन्तुलन बनाये रखने के लिए दूसरा महत्वपूर्ण तरीका संघ द्वारा राज्यों को आर्थिक सहायता देकर अपनाया जाता है। यह आर्थिक सहायता केन्द्र सरकार द्वारा अपने संचित कोष में से उन राज्यों को दी जाती है जिनको इनकी आवश्यकता होती है। अतः भिन्न राज्यों के लिए भिन्न राशि निश्चित की जाती है। केन्द्रीय सरकार वित्त आयोग की सलाह पर राज्यों को यह आर्थिक सहायता अथवा अनुदान देती है। स्पष्ट है कि वित्त उन सिद्धान्तों को निर्धारित करता है जिन पर राज्यों को आर्थिक सहायता अथवा अनुदान किये जाते हैं। वित्त आयोग इन सिद्धान्तों के आधार पर भिन्न राज्यों के लिए अनुदान की राशि भी भिन्न निश्चित करता है।

3. **अधिभार लगाकर आय में वृद्धि करना**—भारतीय संविधान में आर्थिक सन्तुलन बनाये रखने की तीसरी व्यवस्था यह की गई है कि संघ सरकार अधिभार (surcharge) लगाकर ऐसे किसी भी कर में अभिवृद्धि कर सकती है जिससे प्राप्त आय का कुछ भाग राज्यों में बाँटा जाता हो अथवा जिसकी समस्त आय राज्यों को दे दी जाती हो। इस प्रकार स्पष्ट है कि संघ सरकार राज्यों की सूची में निश्चित किये गये करों पर अधिभार लगा सकती है तथा इन अधिभारों से जो आय प्राप्त होगी उसका उपयोग करने का केन्द्र सरकार को पूर्ण अधिकार होगा। भारत में केन्द्रीय सरकार इस प्रकार के अधिभार आय-कर पर लगाती है।

4. **ऋण लेने का अधिकार**—इसके अतिरिक्त संविधान में संघ सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह संसद द्वारा निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत अपने देश से तथा विदेशों से ऋण ले सकती है। इसी प्रकार राज्य को भी विधानसभा के द्वारा निश्चित की गई सीमाओं के अन्तर्गत देश के अन्दर से ऋण लेने का अधिकार प्राप्त है। राज्य सरकार संघ सरकार से भी आवश्यकता पड़ने पर ऋण ले सकती है।

वित्तीय क्षेत्र के सन्दर्भ में भारतीय संविधान ने बहुत खर्चीला रुख अपनाया है। इस प्रकार का प्रावधान किसी भी संघीय संविधान में नहीं पाया जाता है। हमारे संविधान में सभी संघीय वित्त के सिद्धान्तों का पालन किया गया है। यह इसलिए किया गया है ताकि विभिन्न सरकारों के कार्यों एवं वित्तीय साधनों के मध्य असन्तुलन को दूर किया जा सके। राज्य सरकारों को संघीय कोष की आवश्यकता होती है। राज्यों की यह निर्भरता उनको केन्द्र सरकार की नीतियों से समन्वय स्थापित करने के लिए मजबूर करती है। इसके विपरीत केन्द्र सरकार को भी उनसे सामंजस्य स्थापित करना होता है।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False):

9. केन्द्र तथा राज्य सरकारों के मध्य करों के बँटवारे के संबंध में स्वतंत्रता एवं जिम्मेदारी के सिद्धांत को अपनाया गया है।
10. केन्द्रीय सूची में केन्द्र की शक्ति एवं कार्य की विवेचना नहीं की गई है।
11. केन्द्र सरकार की सूची में 12 मदों पर कर लगाने का प्रावधान है।
12. भारतीय संविधान की धारा 280-A के अनुसार प्रत्येक छः वर्ष के पश्चात् एक वित्त आयोग की व्यवस्था की गई है।
13. भारतीय संविधान की धारा 280-A के अनुसार प्रत्येक पाँच वर्ष बाद एक वित्त आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था है।

## 20.6 सारांश (Summary)

- संघीय वित्त की मुख्य समस्या केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय साधनों का वितरण है, क्योंकि ये अपने आर्थिक तथा भावी विकास के कार्यक्रमों को बिना वित्तीय प्रबन्ध द्वारा सम्भव नहीं कर सकते। इस प्रकार यह समस्या उनके लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होती है।
- प्रत्येक सरकार को अपने क्षेत्र पर कर लगाने, ऋण एकत्रित करने और आय के अन्य साधनों में वृद्धि करने की जिम्मेदारी भी अपने ऊपर लेनी चाहिए, जिससे कि वह अपने क्षेत्र के कार्यों को सुचारु रूप से कर सके।
- संघ की प्रत्येक इकाई को आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्रता होनी चाहिए। राज्यों को अपने कार्य करने के लिए पर्याप्त धन प्राप्ति के अधिकार होने चाहिए। वे कर भी लगा सकें और ऋण भी सकें, इसमें उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए।
- आर्थिक साधनों का विभाजन लोचपूर्ण व्यवस्था के रूप में होना चाहिए। क्योंकि कोई भी योजना चाहे वह कितनी भी अच्छी क्यों न हो, आने वाले प्रत्येक समय के लिए उपयुक्त नहीं हो सकती।
- आय के साधनों और आवश्यकताओं में असन्तुलन का मुख्य कारण यह पाया जाता है कि आय के सभी महत्वपूर्ण व लोचपूर्ण साधन प्रबन्ध की कुशलता एवं राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय सरकार को सौंप दिए जाते हैं।
- आय और साधनों के बीच असन्तुलन को दूर करने की दूसरी विधि अनुपूरक या अतिरिक्त कर-प्रणाली है। इस प्रणाली के अन्तर्गत एक सरकार (प्रायः संघ सरकार) मुख्य कर (Principal Tax) लगाती है, अन्य सरकारें उस पर अतिरिक्त कर लगाती हैं।
- वर्तमान दशाओं में केन्द्र सरकार को पर्याप्त मात्रा में शक्ति प्रदान करनी चाहिए ताकि वह उन आर्थिक एवं सामाजिक दायित्वों को निभा सके, जो आधुनिक केन्द्र सरकार से आशा की जाती है।
- केन्द्र सरकार की सूची में 12 मदों पर कर लगाने का प्रावधान है। यद्यपि ये सभी कर केन्द्रीय सूची में होते हैं किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि इन मदों से प्राप्त सभी राजस्व का प्रयोग केन्द्र सरकार करती है।
- वित्तीय क्षेत्र के सन्दर्भ में भारतीय संविधान ने बहुत खर्चीला रुख अपनाया है। इस प्रकार का प्रावधान किसी भी संघीय संविधान में नहीं पाया जाता है।

नोट

### 20.7 शब्दकोश (Keywords)

- समवर्ती (Concurrent)–एक सा व्यवहार करने वाला।
- अधिभार (Surcharge)–अतिरिक्त कर।

### 20.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. संघ तथा राज्यों में संतुलन स्थापित करने के लिए कौन-कौन से तत्त्व उल्लेखनीय हैं?
2. केंद्रीय सूची में सम्मिलित करों को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है?
3. अनुपूरक या अतिरिक्त कर से क्या अभिप्राय है?
4. वित्तीय साधनों को सरकारों के बीच हस्तान्तरित करने के क्या तरीके हैं?
5. वित्तीय साधनों में असंतुलन के क्या कारण हैं?

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |           |                        |            |
|-----------|------------------------|------------|
| 1. संघीय  | 2. संघीय शासन व्यवस्था | 3. वित्तीय |
| 4. आर्थिक | 5. एडम स्मिथ           | 6. (अ)     |
| 8. (द)    | 9. सत्य                | 10. असत्य  |
| 12. असत्य | 13. सत्य।              | 11. सत्य   |

### 20.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त–न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस–सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस–नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस–सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
5. पब्लिक फाइनेंस–नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## इकाई-21: भारत में संघीय वित्त का विकास (Development of Federal Finance in India)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 भारत में संघीय वित्त का विकास (Development of Federal Finance in India)

21.2 ऋण (Loans)

21.3 सारांश (Summary)

21.4 शब्दकोश (Keywords)

21.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

21.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- भारत में संघीय वित्त के विकास संबंधी बातों की जानकारी प्राप्त करने हेतु।
- सरकारी आय के वितरण को समझने हेतु।
- आय-कर तथा जूट के निर्यात-कर के वितरण की जानकारी में।

### प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक संघीय राज्य है। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्ध संघीय वित्त सिद्धान्तों पर निर्भर करते हैं। संघ (Federation) सरकार के उस स्वरूप को कहते हैं, जिसमें कि प्रभुसत्ता (sovereignty) अथवा राजनैतिक शक्ति केन्द्र तथा स्थानीय सरकारों के बीच बाँट दी जाती है, जिससे उनमें से प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्रता से कार्य कर सके। प्रो. आर. एन. भार्गव (Prof. R. N. Bhargava) के शब्दों में, “संघीय वित्त का अर्थ संघ तथा राज्य सरकारों के वित्त एवं दोनों के बीच सम्बन्ध है।” संघीय वित्त व्यवस्था (federal system) में केन्द्र (संघीय) और राज्य (इकाई) सरकारों के बीच कर्तव्यों, अधिकारों और साधनों का संवैधानिक विभाजन कर दिया जाता है। ये दोनों ही प्रकार की सत्ताएँ या सरकारें, जहाँ तक कि उनके कार्यों व अधिकार-क्षेत्रों का सम्बन्ध है, परस्पर स्वतन्त्र होती हैं।

केन्द्र सरकार और इकाई या राज्य सरकारों के बीच कार्यों का जो विभाजन होता है, वह विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। सामान्यतः वे कार्य जो कि सम्पूर्ण देश के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं, केन्द्र सरकार को सौंप दिए जाते हैं और जिन कार्यों का स्थानीय महत्त्व अधिक होता है, वे इकाई या राज्य सरकारों को सौंप दिए जाते हैं। इस

**नोट**

प्रकार प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, संचार साधन तथा मुद्रा आदि केन्द्रीय विषय बन जाते हैं और शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा कानून व व्यवस्था की स्थापना आदि के विषय सामान्यतः इकाई या राज्य सरकारों (unit of state government) के प्रबन्ध-क्षेत्र में आते हैं। परन्तु इस विभाजन के बावजूद केन्द्र या राज्य सरकारों की नीतियों के बीच पूर्ण तालमेल (coordination) बना रहना चाहिए ताकि उनके लक्ष्य एक-दूसरे से टकराये नहीं।

**21.1 भारत में संघीय वित्त का विकास****(Development of Federal Finance in India)**

भारत में आजकल संघीय शासन तथा साथ ही वित्त की संघीय व्यवस्था वर्तमान है। परन्तु संघीय वित्त की वर्तमान व्यवस्था विकेन्द्रीयकरण (decentralisation) की लम्बी प्रक्रिया की उपज है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से, भारत में संघीय वित्त के इतिहास को अग्रलिखित कालों (periods) में बाँटा गया है—

**( 1 ) प्रथम अवधि—( केन्द्रीयकरण ) ( सन् 1833 से 1871 तक )****(Centralisation from 1833 to 1871)**

“सन् 1871 तक, देश के सम्पूर्ण राजस्व एवं व्यय पर केन्द्र सरकार का ही पूर्ण नियन्त्रण रहता था। प्रान्तों के वित्त पर भारत सरकार द्वारा जो कड़ा नियन्त्रण लागू किया जाता था, उसका सारांश निम्न शब्दों में रखा जा सकता है।”

स्थानीय सरकारें (local government) जो कि व्यावहारिक रूप से देश का सम्पूर्ण शासन-कार्य चलाती थीं, बिल्कुल शक्तिहीन बना दी गई थीं और उन्हें अपने-अपने प्रान्तों के मामलों में वित्तीय नियन्त्रण के कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे और न ही उनका कोई वित्तीय उत्तरदायित्व था।

यह पद्धति बड़ी दोषपूर्ण थी। वित्तीय मामलों में प्रशासनिक उत्तरदायित्व के अभाव के कारण इससे फिजूलखर्ची को प्रोत्साहन मिलने लगा। प्रान्तों (provinces) के बीच धनराशियों का वितरण करते समय भारत सरकार किन्हीं निश्चित अथवा तर्कसंगत सिद्धान्तों का अनुसरण नहीं करती थी। परिणामस्वरूप, “सरकारी आय के वितरण से ऐसी कुव्यवस्था एवं छीना-झपटी की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती थी, जिसमें सबसे अधिक तेज व हाथ-पाँव फेंकने वाले प्रान्त ही लाभ उठाते थे और तर्क की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता था।” इस प्रकार, प्रान्तीय सरकारें केन्द्र द्वारा प्रदान किये जाने वाले बेकारी अनुदानों (doles) पर ही निर्वाह करती थीं और ये अनुदान भी सदा किन्हीं सुनिश्चित सिद्धान्तों के अनुसार नहीं दिये जाते थे। इस सम्बन्ध में अशोक चन्द्रा का यह कथन ठीक ही है कि “धनराशियों के वितरण की व्यवस्था केवल अतर्कसंगत (irrational) ही नहीं थी, अपितु उससे अनेक प्रशासनिक कठिनाइयाँ भी उत्पन्न हो जाती थीं।” इसी कारण सन् 1871 में विकेन्द्रीयकरण की कुछ व्यवस्थाएँ लागू की गईं।

**( 2 ) द्वितीय अवधि—( वित्तीय अधिकारों का हस्तान्तरण ) ( 1871-1919 )****(Financial Devolution 1871—1919)**

वित्तीय अधिकारों के हस्तान्तरण की दिशा में सबसे पहला पग सन् 1871 में तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड मेयो (Lord Mayo) द्वारा उठाया गया, जबकि कुछ सेवाओं, जैसे कि जेल, पुलिस, चिकित्सा सेवा (चिकित्सा संस्थानों को छोड़कर), रजिस्ट्रेशन, शिक्षा, सड़कें तथा असैनिक निर्माण कार्यों आदि विभागों के प्रशासन के लिए प्रान्तीय सरकारों को ही उत्तरदायी बना दिया गया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत, प्रत्येक विभाग (department) को प्राप्त होने वाली आय के अतिरिक्त, केन्द्र द्वारा एक निश्चित एकमुश्त अनुदान प्रत्येक प्रान्त को दिया जाता था, ताकि वहाँ की सरकार अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने में समर्थ हो सके। साथ ही कराधान के कुछ सीमित अधिकार भी प्रान्तों को दे दिये गये थे। सरकारी आय की कुछ शाखाएँ पूर्णतः केन्द्रीय अधिकार में रखी गईं, जैसे रेलवे, पोस्ट ऑफिस तथा राज्यों से प्राप्त होने वाले कर (tributes)। इन स्रोतों के अलावा सीमा शुल्क, नमक व अफीम भी केन्द्र के ही अधीन रहे। मालगुजारी (land revenue), उत्पादन कर, स्टाम्प तथा रजिस्ट्रेशन से होने वाली आय कुछ निश्चित अनुपातों में केन्द्र तथा राज्य सरकार के बीच बाँट जाती थी।

## नोट

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि इस व्यवस्था ने पहले से प्रचलित पूर्णतया केन्द्रीकृत प्रणाली में काफी सुधार किया था। किन्तु इस व्यवस्था में भी कई गम्भीर दोष थे। उदाहरणतः प्रान्तीय वित्त में बड़ी असमानताएँ थीं। इसका कारण यह था कि सन् 1971 में जो बन्दोबस्त (settlement) किया गया था, वह प्रान्तों में होने वाले वास्तविक व्यय पर आधारित था। अतः कुछ प्रान्तों को तो काफी अधिक वित्तीय सहायता मिल जाती थी, जबकि कुछ अन्य के पास वित्त की कमी रहती थी।



**नोट्स** इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए, सन् 1877 में लॉर्ड लिंटन (Lord Lynton) के वायसराय काल में केन्द्रीय अनुदानों के अतिरिक्त आबकारी या उत्पादन शुल्क, मालगुजारी तथा स्टाम्प जैसी सरकारी आय की कुछ मदें भी प्रान्तों को दे दी गईं।

वित्तीय अधिकारों के हस्तान्तरण की दिशा में अगला कदम लॉर्ड रिपन (Lord Ripon) के वायसराय काल में सन् 1882 में लॉर्ड क्रोमर द्वारा उठाया गया। इस कदम के अनुसार, निश्चित अनुपात देने की योजना को रद्द कर दिया गया। सरकारी आय को तब तीन भागों में बाँटा गया “साम्राज्य या केन्द्र मदें” (Imperial or central heads), “प्रान्तीय मदें” (Provincial heads), “विभाजित मदें” (Divided heads), (क) साम्राज्य अथवा केन्द्रीय मदों में वाणिज्य विभागों से प्राप्त होने वाले लाभ तथा अफीम, नमक और सीमा शुल्कों से प्राप्त होने वाली आय सम्मिलित थीं, (ख) प्रान्तीय मदों में असैनिक विभागों तथा प्रान्तीय निर्माण कार्यों से होने वाली प्राप्तियाँ सम्मिलित थीं और (ग) विभाजित मदों में उत्पादन शुल्क, निर्धारित कर (assessed taxes), स्टाम्प, वन तथा रजिस्ट्रेशन जैसी मदें सम्मिलित की गईं। मदों से होने वाली आय को केन्द्र और राज्यों के बीच बराबर बाँट लिया जाता था। प्रत्येक पाँच वर्ष पश्चात् स्थिति की समीक्षा की गई और सन् 1887, 1892 तथा 1897 में नये बन्दोबस्त किये गये। किन्तु प्रत्येक पाँच वर्ष के पश्चात् नये बन्दोबस्त की व्यवस्था से बड़ी अनिश्चितता की स्थिति बनी रही और निरन्तरता का अभाव रहा। अतः इन बाधाओं को दूर करने के लिए सन् 1904 में बन्दोबस्त (settlement) को अस्थायी और सन् 1912 में स्थायी (Permanent) बना दिया गया।

### (3) तृतीय अवधि—(मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार) (1919-1935)

#### (Montagu Chelmsford Reform 1919-1935)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सन् 1971 में 1919 तक की अवधि में वित्तीय अधिकारों के हस्तान्तरण की क्रमिक योजनाओं के अन्तर्गत प्रान्तों को कुछ वित्तीय स्वायत्तता (financial autonomy) प्रदान की गई थी, परन्तु इस स्वायत्तता को पर्याप्त और ठोस नहीं माना जाता था। अतः संवैधानिक सुधारों पर प्रस्तुत की गई मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट के अनुसार, “विभाजित मदों” को समाप्त करके प्रान्तों की वित्तीय स्वायत्तता काफी बढ़ा दी गई। सन् 1919 का भारत का भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act, 1919) इसी रिपोर्ट पर आधारित था। इसके अनुसार केन्द्र और प्रान्तों के बीच आय के साधनों का पूर्णरूप से विभाजन कर दिया गया। विभाजित मदों में आय कर तथा सामान्य स्टाम्प केन्द्र को सौंप दिए गए और उत्पादन शुल्क, अदालती स्टाम्प, मालगुजारी तथा सिंचाई की मदें प्रान्तों को सौंप दी गईं।

**मैस्टन निर्णय (Meston Award)**—मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में किये गये प्रस्तावों का अध्ययन करने के लिए लॉर्ड मैस्टन की अध्यक्षता में एक वित्तीय समिति (Financial Committee) बनाई गई। इस समिति की रिपोर्ट को मैस्टन बन्दोबस्त (Meston Settlement) अथवा मैस्टन निर्णय कहा जाता है।

मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के बीच साधनों के जिन बंटवारों का सुझाव दिया गया था, समिति ने उनमें कुछ संशोधनों का प्रस्ताव रखा। समिति ने औद्योगिक प्रान्तों विशेषकर बम्बई के इस दावे की जाँच की कि आयकर की प्राप्तियों में उन्हें भी कुछ हिस्सा दिया जाए। परन्तु अन्ततः समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि आयकर को तो केन्द्रीय मद ही बना रहना चाहिए।



**नोट**

समिति ने यह भी सिफारिश की कि स्टाम्प (stamps) को केन्द्र तथा प्रांतों के बीच बाँटे जाने के बजाय पूर्णतया प्रांतीय मद ही बना दिया जाना चाहिए। इससे निर्धन प्रांतों को सहायता मिलेगी और विभाजित मदों (divided heads) की व्यवस्था भी अन्तिम रूप से समाप्त हो जायेगी।

मैस्टन बन्दोबस्त की कई राज्यों ने विशेष रूप से मद्रास, बम्बई व बंगाल ने तीव्र आलोचना की। यद्यपि, मैस्टन समिति की सिफारिशों को संसद किये गए कुछ संशोधनों के बाद स्वीकार कर लिया गया और उन्हें सन् 1919 के भारत सरकार अधिनियम में सम्मिलित कर लिया गया।

**(4) चतुर्थ अवधि-1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत संघीय वित्त (प्रांतीय स्वायत्तता) (Federal Finance Under the Government of India Act, 1935—Provincial Autonomy)**

सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम के द्वारा संघीय वित्त के सिद्धान्त को लागू करने हेतु प्रांतों की राजकोषीय स्थिति में काफी सुधार कर दिया गया। इस अधिनियम में प्रांतीय स्वायत्तता की व्यवस्था की गई। केन्द्र तथा प्रांतों की आय के स्रोत पूर्णतया पृथक् कर दिये गए। प्रांतीय और केन्द्रीय आय के मुख्य स्रोतों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया—

**(क) वे कर जो प्रांतों द्वारा लगाये तथा एकत्र किये जायेंगे (Taxes Levied and Collected by Provinces)–**(1) मालगुजारी (Land revenue), (2) सिंचाई, (3) (अ) मानवीय उपभोग के लिए काम में लाई जाने वाली मदिरा, (ब) अफीम, भारतीय भाँग व अन्य नशीली दवाइयों तथा (स) मद्य से युक्त औषधियों व शृंगार सम्बन्धी सामग्रियों अथवा गद्यांश 'ब' में सम्मिलित अन्य किसी वस्तु पर उत्पादन कर, (4) कृषि-आय पर कर, (5) भूमि, भवन व खिड़कियों आदि पर कर, (6) कृषि भूमि के उच्चाधिकार पर कर, (7) खनिज अधिकारों पर कर, (8) व्यक्ति कर (Capitation tax), (9) व्यवसाय, व्यापार, पेशे और रोजगार पर कर, (10) पशुओं तथा नावों पर कर, (11) माल की बिक्री तथा विज्ञापन पर कर, (12) किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग (Consumption), उपभोग (use) तथा बिक्री के लिए आने वाले माल के प्रवेश पर उप-कर, (13) विलासिता की वस्तुओं पर कर, जिनमें कि मनोरंजन कर, बाजी कर (betting tax) और जुआ-कर सम्मिलित हैं, (14) स्टाम्प तथा रजिस्ट्रेशन, (15) आन्तरिक जल मार्गों द्वारा लाने-ले जाने वाले यात्रियों व माल पर कर और (16) पथ-कर या चुँगी आदि।

**(ख) वे कर जो लगाये और उगाहे तो संघ द्वारा जायेंगे किन्तु उनकी प्राप्तियाँ प्रांतों को सौंप दी जायेंगी (Taxes Levied and Collection by the Federation but Assigned to Provinces)–**(1) कृषि-भूमि के अतिरिक्त सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, (2) विनियम-पत्रों, चैकों, प्रतिज्ञा-पत्रों तथा बीमे की पॉलिसियों आदि पर लगाये जाने वाले स्टाम्प शुल्क की दरें, (3) रेलों द्वारा ले जाये जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमा-कर या चुँगी (terminal taxes), (4) रेल किरायों तथा भाड़ों पर कर।

**(ग) संघ, प्रांतों तथा संघीय राज्यों के बीच बाँटे जाने वाले कर (Taxes Divided between the Federation and the Provinces and the Federated States)–**(1) कृषि आय के अलावा अन्य आमदनियों पर कर, (2) नमक कर, (3) भारत में निर्मित अथवा उत्पादित तम्बाकू तथा अन्य वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क (किन्तु ऊपर वर्ग 'क' के अन्तर्गत कर नं. 3 के अन्तर्गत आने वाली वस्तुओं को छोड़कर) (4) निर्यात-कर, किन्तु अधिनियम में उल्लिखित धाराओं के अधीन।

**(घ) संघ द्वारा ही लगाये तथा रखे जाने वाले कर (Taxes Levied and Retained by the Federation)–**(1) निगम कर (Corporation tax), (2) मुद्रा तथा सिक्का ढलाई, (3) संघीय रेलें, (4) डाक व तार-टेलीफोन, बेतार के तार, प्रसारण (broadcasting) तथा ऐसे ही संचार के अन्य साधनों सहित, (5) आयात तथा निर्यात शुल्क, (6) सैनिक प्राप्तियाँ।

**(ङ) अन्य–**इसके अतिरिक्त, ऊपर वर्ग 'ग' में आय के जिन स्रोतों का उल्लेख किया गया है, उनसे होने वाली सम्पूर्ण तथा आंशिक आय को भी संघीय सत्ता अपने पास रख सकती है।

## नोट

सन् 1935 का भारत सरकार अधिनियम कानूनी मसौदे की दृष्टि से एक शानदार चीज थी। लगभग पाँच वर्षों तक ब्रिटेन के सर्वश्रेष्ठ विधि मसौदाकार (legal draftmen) इस अधिनियम की धाराओं की रूपरेखा निर्धारित करने में लगे रहते थे। इसके बाद ही यह सम्भव हो पाया कि 1935 के अधिनियम के द्वारा प्रान्तों को समुचित स्वायत्तता प्रदान करने के साथ-साथ एक शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था की गई।

**सर ओटो नीमेयर की सिफारिशें** (Recommendations of Sir Otto Niemeyer)—सन् 1935 के अधिनियम (Act) में यह भी व्यवस्था की गई थी कि प्रांतीय स्वयत्तता को लागू करने से पूर्व एक और वित्तीय जाँच की जाए। अतः इस कार्य के लिए सर **ओटो नीमेयर** की नियुक्ति की गई और उनसे कहा गया कि वे आयकर की प्राप्तियों व जूट निर्यात-कर के विभाजन, केन्द्र द्वारा प्रान्तों को दिये जाने वाले सहायक अनुदान तथा भारत को केन्द्र सरकार एवं प्रांतीय सरकारों के बीच वित्तीय लेन-देन से सम्बन्धित अन्य किसी भी मामले के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें दें।

नीमेयर ने सिफारिश की कि आय-कर निबल प्राप्तियों (net proceeds) का 50 प्रतिशत भाग राज्यों को दिया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक प्रान्त के हिस्से का निर्धारण अंशतः तो उस प्रान्त में किये गये आयकर के संग्रह के आधार पर किया जाना चाहिए और अंशतः जनसंख्या के आधार पर।



क्या आप जानते हैं? जूट निर्यात के बारे में नीमेयर ने सुझाव दिया कि जूट पर लगाये जाने वाले निर्यात-कर  $62\frac{1}{2}$  प्रतिशत भाग जूट उत्पन्न करने वाले प्रान्तों—बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा में बाँट दिया जाना चाहिए।

**राजकीय सहायता** (Sub-ventions)—सर ओटो नीमेयर ने यह भी सुझाव दिया कि सिन्ध, उड़ीसा, आसाम तथा उ.प्र. सीमा प्रान्त जैसे घाटा उठाने वाले राज्यों को अपने बजट सन्तुलित करने के लिए कुछ वार्षिक अनुदान (Annual grants) दिए जाने चाहिए। घाटे वाले प्रान्तों के कुछ विशिष्ट मामलों के अतिरिक्त, अन्य प्रान्तों को भी कुछ आर्थिक सहायता देने की सिफारिश की गई।

**प्रान्तीय ऋणों की समाप्ति** (Cancellation of Provincial Debts)—सर ओटो नीमेयर ने यह भी सिफारिश की कि प्रान्तों पर केन्द्र सरकार के जो ऋण हैं उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। उनका विचार था कि केन्द्र की आर्थिक स्थिति पर इसका प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

**द्वितीय विश्व-युद्ध तथा देश का विभाजन** (War and Partition)—सन् 1939 में द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ गया। अतः युद्ध के कारण केन्द्र सरकार के व्यय में वृद्धि हो जाने के कारण सन् 1940 में उस अधिनियम (Act)

में एक संशोधन किया गया जिसके अनुसार केन्द्र को आय-कर के प्रांतीय हिस्से में से  $4\frac{1}{2}$  करोड़ रुपये लेने का अधिकार दे दिया गया। यह प्रावधान (provision) सन् 1945-46 तक चलता रहा। इसके बाद उसमें फिर कुछ संशोधन करने की आवश्यकता उस समय हुई जबकि सन् 1947 में देश के विभाजन के फलस्वरूप सिन्ध तथा उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त पाकिस्तान में चले गये और बंगाल व पंजाब प्रान्त जनसंख्या तथा आकार में घट गये। अतः यह मामला विचार के लिए श्री सी. डी. देशमुख को सौंपा गया और यह स्वीकार कर लिया गया कि उनकी सिफारिशें एक निर्णय के रूप में मानी जायेंगी। किन्तु श्री देशमुख ने विभिन्न प्रान्तों के बीच आयकर के वितरण के लिए किन्हीं नये सिद्धान्तों का सुझाव दिया, क्योंकि निकट भविष्य में ही वित्त आयोग की स्थापना होनी थी और आयोग को समस्त मामले पर विस्तृत रूप से विचार करना ही था। अतः उन्होंने अपना कार्य सीमित ही रखा और सुझाव दिया कि आय-कर को कुछ प्रस्तावित मामूली हेर-फेर के साथ मुख्यतः जनसंख्या के आधार पर ही बाँट दिया जाए ताकि अपेक्षाकृत कमजोर राज्यों का भी ध्यान रखा जा सके।

## नोट

श्री देशमुख ने यह भी सिफारिश की कि निम्नलिखित चार राज्यों को जूट के निर्यात करके उनके हिस्से के बदले में सहायता अनुदानों के रूप में निश्चित मात्रा में वार्षिक धनराशियाँ दी जाएँ—

राज्य	(रुपये लाखों में)
पश्चिमी बंगाल	106
आसाम	40
बिहार	35
उड़ीसा	5

देशमुख निर्णय 1 अप्रैल, 1050 से 31 मार्च, 1952 तक लागू रहा। नीमेयर निर्णय के समान ही कुछ राज्यों ने देशमुख निर्णय की भी आलोचना की। बम्बई ने फिर यही शिकायत की कि उसको अब भी बिना किसी अनुपात के ही आय-कर का थोड़ा-सा भाग ही प्राप्त रहेगा, जबकि कुल प्राप्तियों का एक बड़ा भाग वहीं उगाह कर देता है। इसी प्रकार, पश्चिमी बंगाल की शिकायत थी कि नीमेयर निर्णय में उसके साथ जो अन्याय किया गया था उसको अब भी दूर नहीं किया गया है। बिहार और आसाम ने यह अनुभव किया कि इस तथ्य की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया कि वे अपेक्षाकृत निर्धन राज्य हैं। किन्तु इस सबके बावजूद, श्री देशमुख की सिफारिशों को न्यायोचित मानकर स्वीकार कर लिया गया।



टास्क सर ओटो नीमेयर की सिफारिशें क्या थीं?

### (5) भारतीय संविधान के अन्तर्गत व्यवस्थाएँ

भारतीय संविधान में केन्द्र तथा राज्य सरकारों में वित्तीय सम्बन्ध (Provisions Under the Constitution)—संविधान के अन्तर्गत संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों (Legislative Powers) का त्रिमुखी वितरण किया गया अर्थात् प्रशासनिक कार्यों को तीन सूचियों में विभाजित किया गया—संघ सूची (Union List), राज्य सूची (State List) और समवर्ती सूची (Concurrent List) (धारा 246)। जिन मामलों में संसद (Parliament) को कानून बनाने की पूर्ण शक्ति प्रदान की गई, उन्हें संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ सूची के अन्तर्गत रखा गया है।

दूसरी सूची अर्थात् राज्य सूची में वे मामले सम्मिलित किये गये, जिनके बारे में कानून बनाने का पूर्ण अधिकार सम्बन्धित राज्यों के विधान-मण्डलों को दिया गया। तीसरी सूची अर्थात् समवर्ती सूची में जो विषय सम्मिलित किये गये, उनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार संसद तथा सम्बन्धित राज्य के विधानमण्डलों को दिया गया।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि संविधान बनाने की अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Powers) संसद को ही प्रदान की गईं। इस प्रकार ऐसे किसी भी मामले में कानून बनाने का पूर्ण अधिकार संसद को दिया गया जिसका उल्लेख राज्य सूची अथवा समवर्ती सूची में नहीं किया गया था।

कार्यों का वितरण (Distribution of Function)—भारतीय संविधान में संघ शक्तियों (Union Powers), राज्य शक्तियों (State Powers) तथा समवर्ती शक्तियों को लम्बी सूचियाँ दी गई हैं और यदि इन सूचियों के विषय में सम्बन्धित कानून बनाने में यदि कभी कोई टकराव की स्थिति उत्पन्न होती है तो उसमें संघीय कानून ही सर्वोपरि रहता है। इसमें कुछ कार्य तो ऐसे हैं जो पूर्णतया संघ सरकार को सौंपे गये हैं, कुछ पूर्णतया राज्य सरकारों को सौंपे गये हैं और कुछ कार्य ऐसे हैं जिनके सम्बन्ध में संघ तथा राज्य सरकार को कानून बनाने का समवर्ती अधिकार प्राप्त है। इन तीनों सूचियों के अलावा भी यदि कोई कार्य बचता है तो उस अवशिष्ट विषय पर कानून बनाने का अधिकार संघ को दिया गया है।

## नोट

संघ सरकार की सूची में लगभग 97 कार्य सम्मिलित हैं जिनमें मुख्य हैं—प्रतिरक्षा, अणु-शक्ति, प्रतिरक्षा उद्योग, विदेशी मामले, नागरिकता, रेल, राष्ट्रीय सड़क मार्ग, जहाजरानी व नौ-चालन, वायु-मार्ग, डाक व तार, मुद्रा तथा विदेशी विनिमय, विदेशी ऋण, विदेशी तथा अन्तर्राज्यीय व्यापार, महत्वपूर्ण उद्योग तथा राष्ट्रीय महत्व की संस्थाएँ आदि।

राज्य सरकार के कार्यों में लगभग 66 मदें सम्मिलित की गई हैं जिनमें मुख्य हैं—सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस, न्याय का प्रशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि वन, मत्स्य-पालन तथा अन्य उद्योग आदि।

समवर्ती सूची में लगभग 47 विषय हैं जिनके सम्बन्ध में संघ तथा राज्य सरकारें दोनों ही कानून बना सकती हैं। ये विषय हैं—वाणिज्यिक तथा औद्योगिक एकाधिकार, श्रम-विवाद, सामाजिक या कार्मिक सुरक्षा, दान, विवाह तलाक जैसे सामाजिक कानून तथा आर्थिक व सामाजिक कानून आदि।

**सरकारी आय का वितरण (Distribution of Revenues)**—संविधान के अन्तर्गत सरकारी आय का बँटवारा काफी मात्रा में उसी रूप में किया गया है जैसा कि सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत किया गया था। भूतपूर्व भारतीय रियासतों के संघ में प्रवेश के साथ ही सरकारी आय के बँटवारे तथा सहायक अनुदानों के वितरण का प्रश्न और भी अधिक कठिन तथा महत्वपूर्ण हो गया। संविधान के अन्तर्गत सरकारी आय का बँटवारा निम्न प्रकार किया गया है—

**(क) राज्यों की आय के स्रोत (State Sources of Revenue)**

- (1) मालगुजारी या भू-राजस्व (land revenue) का निर्धारण तथा संग्रह, (मद 45)।
- (2) कृषि आय पर कर (मद 36)।
- (3) कृषि भूमि के उत्तराधिकार पर कर (मद 47)।
- (4) कृषि भूमि के सम्बन्ध में आस्ति कर (Estate duty) (मद 48)।
- (5) भूमि तथा भवन पर कर (मद 49)।
- (6) संसद द्वारा खनिज विकास के सम्बन्ध में कानून द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों के अन्तर्गत, खनिज अधिकारों पर (मद 50)।
- (7) राज्यों में निर्मित अथवा उत्पादित निम्नलिखित वस्तुओं पर उत्पादन-कर तथा भारत में कहीं भी निर्मित ऊँची वस्तुओं पर ऊँची अथवा नीची दरों से जवाबी कर (Countervailing duties)—
  - (क) मानवीय उपभोग के लिए काम में लाई जाने वाली मदिरा।
  - (ख) अफीम, भारतीय भाँग व अन्य नशीली दवाइयाँ, किन्तु इनमें इन तत्त्वों से युक्त औषधियों सम्बन्धी सामग्रियाँ सम्मिलित नहीं हैं (मद 51)।
- (8) किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, उपभोग तथा बिक्री के लिए आने वाली वस्तुओं के प्रवेश पर कर (मद 52)।
- (9) बिजली के उपभोग तथा विक्रय पर कर (मद 53)।
- (10) समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय तथा विक्रय पर कर (मद 54)।
- (11) सड़कों तथा आन्तरिक जलमार्गों द्वारा ले जाए जाने वाले माल तथा यात्रियों पर कर (मद 56)।
- (12) समवर्ती सूची की 33वीं प्रविष्टि की व्यवस्थाओं के अधीन, वाहनों (vehicles) पर कर, चाहे वे यन्त्रचालित हों अथवा गैर-यन्त्रचालित पर सड़कों पर चलने के लिए उपयुक्त हों, जिसमें ट्रामकारों भी सम्मिलित हैं (मद 57)।
- (13) पशुओं तथा नावों पर कर (मद 58)।
- (14) पथ-कर अथवा चुँगी (Tolls) (मद 59)।
- (15) वृत्ति, व्यापार, पेशे तथा रोजगार पर कर (मद 60)।

**नोट**

- (16) व्यक्ति कर (Capitation tax) (मद 61)।
- (17) विलासिताओं (Luxuries) पर कर, जिसमें मनोरंजन-कर, बाजी-कर (betting tax) तथा जुआ-कर भी सम्मिलित हैं (मद 62)।
- (18) स्टाम्प शुल्क की दरों के सम्बन्ध में प्रथम सूची में जो व्यवस्थाएँ दी गई हैं उनको छोड़कर अन्य प्रपत्रों के सम्बन्धों में स्टाम्प शुल्क की दरें (मद 63)।
- (19) द्वितीय सूची (List II) के किसी भी विषय के सम्बन्ध में शुल्क या फीस, परन्तु किसी भी न्यायालय में ली जाने वाली फीस को छोड़कर (मद 36)।

**(ख) केन्द्रीय आय स्रोत (Central Sources of Revenue)**

- (1) कृषि आय को छोड़कर अन्य आमदनियों पर कर (मद 82)।
- (2) सीमा शुल्क (Customs duties) जिनमें निर्यात शुल्क भी सम्मिलित हैं (मद 83)।
- (3) भारत में निर्मित अथवा उत्पादित तम्बाकू तथा अन्य वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क (excise duties), किन्तु निम्नलिखित को छोड़कर—
  - (क) मानवीय उपभोग के लिए काम में लाई जाने वाली मदिरा।
  - (ख) अफीम, भारतीय भाँग तथा अन्य नशीली दवाइयाँ तथा मादक पदार्थ, जिसमें निम्न तत्त्वों से युक्त औषधियाँ व शृंगार सम्बन्धी सामग्रियाँ सम्मिलित हैं (मद 84)।
- (4) निगम कर (मद 85)।
- (5) व्यक्तियों तथा कम्पनियों की कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य परिसम्पत्तियों (assets) के पूँजित मूल्य पर कर; कम्पनियों की पूँजी पर कर (मद 86)।
- (6) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों पर आस्ति कर (estate duty) (मद 87)।
- (7) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों के उत्तराधिकार पर कर (मद 88)।
- (8) रेल, समुद्र तथा वायु मार्ग द्वारा आने-जाने वाले तथा यात्रियों पर सीमान्त कर या चुँगी, रेल किरायों तथा भाड़ों पर कर (मद 89)।
- (9) स्टाम्प शुल्क को छोड़कर शेयर बाजारों (Stock exchange) तथा वायदा बाजारों (future markets) के सौदों पर कर (मद 90)।
- (10) विनिमय-पत्रों (bills of exchange), चैकों, प्रतिज्ञा-पत्रों, लदान-पत्रों (bills of loading), उधार-पत्रों बीमे की पॉलिसियों, शेयरों के हस्तान्तरण, डिबेंचरी, प्रति-पत्रों तथा रसीदों पर स्टाम्प शुल्क की दरें (मद 91)।
- (11) समाचार-पत्रों के क्रय-विक्रय एवं उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर (मद 92)।
- (12) अन्तर्राज्यीय व्यापार व वाणिज्य के संदर्भ में समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर कर (मद 92 अ)।

इस प्रकार संघीय सूची में कर-आय के 11 स्रोत दिखाये गये हैं, यद्यपि इनमें थोड़े ही ऐसे हैं जो पूर्णतया संघ सरकार से सम्बन्धित कहे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, संघ सरकार की आय के अन्य स्रोत निम्नलिखित हैं—

- (1) रेलें (मद 22)।
- (2) वायुमार्ग (मद 29)।
- (3) डाक व तार, टेलीफोन, बेतार के तार, प्रसारण (broadcasting) तथा संचार के अन्य साधन (मद 31)।
- (4) संघ की सम्पत्ति तथा उससे होने वाली आय (मद 32)।

## नोट

- (5) संघ सूची के अन्य किसी भी विषय के सम्बन्ध में शुल्क या फीस परन्तु न्यायालयों में ली जाने वाली फीस को छोड़कर (मद 96)।
- (6) संघ के सार्वजनिक ऋण (मद 35)।
- (7) मुद्रा, मुद्रा की ढलाई (coinage) तथा वैध मुद्रा व विदेशी मुद्रा (मद 36)।
- (8) विदेशी कर्जे (मद 37)।
- (9) भारतीय रिजर्व बैंक (मद 38)।
- (10) भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार द्वारा संचालित लॉटरियाँ (मद 40)।

(ग) वे कर जो संघ द्वारा लगाये तथा वसूल किये जाते हैं किन्तु प्राप्तियाँ राज्यों को सौंप दी जाती हैं (Taxes Levied and Collected by the Union but Assigned)—निम्नलिखित कर तथा शुल्क भारत सरकार द्वारा लगाये तथा वसूल किये जायेंगे परन्तु किसी भी वित्तीय वर्ष में ऐसे किसी भी कर अथवा शुल्क की निबल प्राप्तियों को उन सिद्धान्तों के अनुसार राज्यों में वितरित कर दिया जायेगा जो कि संसद द्वारा कानून बनाकर निर्धारित किये जायेंगे—

- (1) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों के उत्तराधिकार पर शुल्क (duties)।
- (2) कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों पर आस्ति कर (estate duty)।
- (3) रेल, समुद्र तथा वायुमार्ग द्वारा लाये-ले जाये जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर (terminal tax)।
- (4) रेल किरायों तथा भाड़ों पर कर।
- (5) स्टाम्प शुल्क को छोड़कर शेयर बाजारों तथा वायदा बाजारों के सौदों पर कर।
- (6) समाचार-पत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमें प्रकाशित विज्ञापनों पर कर।

(घ) वे कर जो संघ द्वारा लगाये जाते हैं किन्तु राज्यों द्वारा वसूल किये जाते हैं और उन्हीं के द्वारा रख लिये जाते हैं (Duties Levied by the Union but Collected and Appropriated by the States)—संविधान के अन्तर्गत संघ सूची में उल्लिखित कुछ कर ऐसे हैं, जैसे कि स्टाम्प शुल्क तथा चिकित्सा व श्रृंगार सम्बन्धी सामग्रियों पर उत्पादन शुल्क जो कि भारत सरकार द्वारा लगाये जायेंगे किन्तु उनका संग्रह राज्यों द्वारा किया जायेगा और राज्य ही उन्हें रख लेंगे, किन्तु निम्न परिस्थितियों को छोड़कर—

- (क) उस स्थिति में जबकि ऐसे कर संविधान की प्रथम अनुसूची के वर्ग 'ग' में उल्लिखित किसी राज्य में लगाये जायेंगे तो उनका संग्रह भारत सरकार करेगी।
- (ख) अन्य मामलों में उनका संग्रह वे राज्य ही करेंगे जहाँ कि वे कर लगाये जायेंगे।

(ङ) वे कर जो संघ द्वारा लगाये तथा वसूल किये जायेंगे किन्तु उनकी प्राप्तियाँ संघ तथा राज्यों के बीच बँट जायेंगी (Taxes which shall be levied and collected by the Union but the proceeds shall be distributed between the Union and the States)

- (1) कृषि आय को छोड़कर अन्य आमदनियों पर कर।
- (2) संघीय उत्पादन शुल्क, किन्तु संघ सूची में उल्लिखित उन उत्पादन-शुल्कों को छोड़कर जो चिकित्सा तथा श्रृंगार-सम्बन्धी सामग्रियों पर लगाये तथा भारत सरकार द्वारा वसूल किये जाते हैं।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. भारत में आजकल संघीय शासन तथा साथ ही वित्त की ..... व्यवस्था वर्तमान है।
2. सन् ..... तक देश के सम्पूर्ण राजस्व एवं व्यय पर केंद्र सरकार का ही पूर्ण नियंत्रण रहता है।

**नोट**

3. वित्तीय अधिकारों के हस्तांतरण की दिशा में सबसे पहला पग सन् 1871 में तत्कालीन गवर्नर ..... द्वारा उठाया गया।
4. सन् ..... के भारत सरकार अधिनियम के द्वारा संघीय वित्त के सिद्धांत को लागू करने हेतु प्रांतों की राजकोषीय स्थिति में काफी सुधार कर दिया गया।
5. द्वितीय विश्वयुद्ध ..... में हुआ।
6. समवर्ती सूची में लगभग ..... विषय हैं।

**21.2 ऋण (Loans)**

देश के अन्दर से तो उधार केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों ही प्रकार की सरकारें ले सकती हैं। संघ सरकार राज्यों के मुकाबले सामान्यतः अधिक उधार लेती है। संघ सरकार का चूँकि बैंकों पर काफी नियन्त्रण रहता है और इसकी आर्थिक स्थिति भी अपेक्षाकृत अच्छी रहती है, अतः अधिकांश राज्यों की तुलना में वह बड़ी मात्रा में तथा अधिक अच्छी शर्तों पर ऋण लेने में समर्थ हो जाती है। राज्य केन्द्र सरकार की सहमति के बिना स्वतन्त्र रूप से उधार ले सकते हैं बशर्ते कि उन पर केन्द्र सरकार का कोई ऋण बाकी न हो। पिछले कुछ वर्षों में चूँकि राज्यों ने केन्द्र से भारी मात्रा में उधार लिया है, अतः यह धारा महत्वहीन हो जाती है और इसका अर्थ है कि अब राज्य केवल केन्द्र सरकार की सहमति से ही उधार ले सकते हैं। राज्यों की उधार लेने की सीमित क्षमता एक गम्भीर तथा बड़ी बाधा है जो उनके उधार लेने पर रोक लगाती है। जहाँ तक देश के बाहर से उधार लेने का प्रश्न है, चूँकि इस कार्य में पग-पग पर विदेशी सम्बन्धों की आवश्यकता होती है, अतः इस क्षेत्र में भी संघ सरकार को ही विशेष सुविधाएँ प्राप्त हैं। यद्यपि, राज्य सरकारों द्वारा उधार लेने का मुख्य स्रोत केन्द्र सरकार ही है और राज्य सरकारें अनेक विकास कार्यक्रमों की वित्तीय व्यवस्था के लिए ही उधार होती हैं जैसे कि कृषि तथा उद्योगों का विकास व उनसे सम्बन्धित मामले।

**21.2.1 सहायक अनुदान (Grants-in-Aid)**

कर-अधिकारों के इस सोच-विचार कर किये गये वितरण ने राज्य सरकारों को संघ सरकार का अत्यधिक निर्भर बना दिया। अतः राज्यों के साधनों की कमी को दूर करने के लिए तथा राज्यों द्वारा सामाजिक सेवाओं एवं कल्याणकारी क्रियाओं (welfare activities) के सम्बन्ध में अपने बहुमुखी उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए संविधान में यह व्यवस्था की गई कि केन्द्र द्वारा राज्यों को सहायक अनुदान दिए जाएँ। अनुदानों (grants) को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है: 'योजना-अनुदान' और 'गैर-योजना अनुदान'। किन्हीं आकस्मिक परिस्थितियों के लिए तदर्थ आधार (ad hoc basis) पर दिये जाने वाले अनुदान को छोड़कर, गैर-योजना अनुदानों (non-plan grants) का निर्धारण वित्त आयोग (Finance Commission) द्वारा किया जाता है और योजना-अनुदानों (plan grants) का निर्धारण योजना आयोग (Planning Commission) द्वारा किया जाता है। इस स्थिति में योजनाओं पर खर्च बढ़ने का मतलब अनिवार्यतः यही है कि योजना-अनुदानों में भी टोस वृद्धि की जाए। अनुदान केन्द्र से राज्यों की ओर को साधनों का स्थानान्तरण करते हैं ताकि राज्यों की आय व व्यय के बीच की खाई को पाटा जा सके। अनुदान साधनों की अन्तर्राज्यीय विषमताओं को भी दूर करते हैं। चूँकि पिछड़े तथा अल्पविकसित राज्यों को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिक अनुदान दिए जाते हैं, अतः अनुदान देश का सन्तुलित विकास करने भी बड़े सहायक सिद्ध होते हैं।

**21.2.2 आय-कर तथा जूट के निर्यात-कर का वितरण****(Distribution of Income Tax and Jute Export Duty)**

**आय-कर का वितरण**—सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम ने केन्द्र और राज्यों के बीच आय-कर के वितरण के लिए कुछ निश्चित प्रतिशतों का निर्धारण कर दिया था। सर ओटो नीमेयर ने आय-कर का 50 प्रतिशत भाग प्रान्तों

## नोट

के लिए निर्धारित किया। संविधान में यह कहा गया कि किसी भी वित्तीय वर्ष में आय-कर की निबल प्राप्तियों (net proceeds) का कितना प्रतिशत राज्यों को दिया जाए, इस बात का निर्धारण संसद द्वारा किया जाया करेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राष्ट्रपति द्वारा एक वित्त आयोग की नियुक्ति की जायेगी और वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार कर राष्ट्रपति इस बात का निर्धारण करेंगे कि आय-कर की कितनी निबल प्राप्तियों का वितरण किया जाए। अतः राज्यों को अब आय-कर के किसी निश्चित प्रतिशत के बारे में संवैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं, अपितु यह प्रतिशत वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार बदलता रहता है।

**जूट पर लगने वाले निर्यात-कर का वितरण**—सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम में यह व्यवस्था थी कि प्रतिवर्ष जूट पर लगने वाले निर्यात-कर निबल प्राप्तियों का कम से कम आधा भाग अवश्य ही उन प्रान्तों को दिया जायेगा जिनमें कि जूट उगाया जाता है और यह उगाये गये जूट की सम्बन्धित मात्रा के अनुपात में दिया जायेगा।

सर ओटो नीमेयर ने सिफारिश की कि इस कर की कुल अनुमानित प्राप्तियों का  $62\frac{1}{2}$  प्रतिशत भाग राज्यों के लिए निश्चित कर दिया जाना चाहिए। संविधान में कहा गया कि जूट तथा जूट से बने माल पर लगे निर्यात-कर संघ तथा जूट उत्पादक राज्यों के बीच नहीं बाँटे जायेंगे, बल्कि जूट निर्यात-कर के बदले में असम, बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल जैसे जूट उत्पादक राज्यों को प्रतिवर्ष भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) में से सहायक अनुदान दिये जायेंगे जिनका निर्धारण राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त वित्त आयोग करेगा अथवा उस आयोग की नियुक्ति से पूर्व स्वयं राष्ट्रपति। अतः आजकल जूट निर्यात-कर के बदले में दिये जाने वाले सहायक अनुदानों की सिफारिश वित्त आयोग द्वारा की जाती है।

### 21.2.3 भारत में संघीय वित्त व्यवस्था सिद्धान्तों के अनुरूप

यदि हम भारत में केन्द्र एवं राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों का अध्ययन करें तो पाते हैं कि इन सम्बन्धों में संघीय वित्त के सिद्धान्तों को सम्मिलित किया गया है। इसे निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता है—

- (1) समस्त राज्यों को समान कार्य तथा समान साधन प्रदान करके एकरूपता के सिद्धान्त का पालन करने का प्रयास किया गया है।
- (2) केन्द्र द्वारा पिछड़े हुए राज्यों को अतिरिक्त आर्थिक अनुदान दिया जाता है जो हस्तान्तरण सिद्धान्त के अनुरूप है।
- (3) जहाँ तक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का प्रश्न है, इस दृष्टि से यद्यपि केन्द्र राज्यों को स्वतन्त्र साधन प्रदान करता है किन्तु वह स्वतन्त्रता सीमित है।
- (4) भारत सरकार ने वित्त आयोग स्थापित करके प्रशासकीय मितव्ययिता के सिद्धान्त का पालन करने का प्रयास किया है क्योंकि वित्त आयोग समय-समय पर विभिन्न राज्यों की आवश्यकताओं के अनुसार साधन देने की सिफारिश करता है।
- (5) वित्त आयोग के गठन से पर्याप्तता तथा लोच का सिद्धान्त परोक्ष रूप में सम्मिलित हो जाता है।

### निष्कर्ष (Conclusion)

संविधान द्वारा संघ तथा राज्यों के बीच साधनों का जो बाँटवारा तथा कार्यों का जो विभाजन किया गया है, उसकी आलोचना के भी वही आधार रहे हैं जो कि सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम की आलोचना के थे। इसके द्वारा विकास व्यय जो कि निरन्तर ही बढ़ रहा है, का मुख्य भार राज्यों पर ही डाल दिया गया है, जबकि आय के मुख्य-मुख्य उत्पादक तथा लोचदार स्रोत संघ सरकार को सौंप दिये गए हैं। अतः राज्य आपने कार्यों को सम्पन्न करने तथा अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए केन्द्र पर आश्रित हो गये हैं। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि इस व्यवस्था से “राज्य की हैसियत घटाकर एक ऐसे अनाथ लड़के की सी कर दी गई है। जो हाथ में भीख माँगने का कटोरा लिए सरकार से धन तथा सहायता की माँग करता रहता है।” यही नहीं, इस व्यवस्था ने राज्यों की विकास योजनाओं को बड़ी अनिश्चितता की स्थिति में डाल दिया है।



## नोट

सर ए. रामास्वामी मुदालियर ने तर्कों द्वारा यह सिद्ध किया था कि संविधान के मसौदे में दिया गया वित्तीय शक्ति का सन्तुलन राज्यों के लिए अनुकूल नहीं है। उन्होंने कहा कि एक तो प्रान्तों पर जहाँ राष्ट्र-निर्माण के कार्यों का भारी बोझ डाल दिया गया है वहाँ उनके वित्तीय साधन उन उत्तरदायित्वों से मेल नहीं खाते।

विश्वनाथ दास का भी यह मत था कि प्रान्तों की आवश्यकताएँ तो असीमित हैं, विशेष रूप से कल्याण-सेवाओं एवं उनके विकास कार्यक्रमों की दृष्टि से। यदि इन सेवाओं का जिन पर कि मानव की समृद्धि तथा देश की उत्पादन-क्षमता काफी मात्रा में निर्भर रहती है, नियोजन तथा निष्पादन समुचित रूप से किया जाना है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रान्तीय सरकारों के पास पर्याप्त साधन छोड़े जाएँ और उन्हें केन्द्र की घटती-बढ़ती दानशीलता पर निर्भर रहने से बचाया जाए।

किन्तु संविधान के अन्तर्गत साधनों के वितरण की जो व्यवस्थाएँ की गई हैं वे बड़े महत्त्व की हैं तथा आर्थिक विकास व राष्ट्रीय एकीकरण की केन्द्र व राज्यों की नीतियों के बीच समन्वय (Coordination) के दृष्टिकोण से तथा इस विचार से उनका सोच-समझकर निर्माण किया गया है कि सम्पूर्ण देश के सन्तुलित विकास से लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। संविधान द्वारा संघ सरकार को यद्यपि काफी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं किन्तु फिर भी संघ ने अपने देशों की तुलना में बहुत कम मात्रा में उनका उपयोग किया है और संघ सरकार ने राज्यों को उनके आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए काफी अधिक साधन हस्तान्तरित किए हैं। यही नहीं, व्यापक आर्थिक विभिन्नताओं वाले हमारे जैसे लोकतन्त्रीय एवं बड़े देश में केन्द्र को शक्तिशाली बनाने की इच्छा केवल हमारी ही नहीं है, अपितु विश्वव्यापी बन चुकी है फिर भी संविधान-निर्माताओं ने राज्यों की स्वायत्तता के दृष्टिकोण को जो स्थान दिया है यह अपर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. देश के अन्दर से उधार केंद्रीय और प्रांतीय दोनों ही सरकारें ले सकती हैं।
8. गैर-योजना अनुदानों का निर्धारण योजना आयोग द्वारा किया जाता है।
9. सर ओटो नीमेयर ने आय-कर का 50 प्रतिशत भाग प्रान्तों के लिए निर्धारित किया।

## 21.3 सारांश (Summary)

- भारत में आजकल संघीय शासन तथा साथ ही वित्त की संघीय व्यवस्था वर्तमान है। परन्तु संघीय वित्त की वर्तमान व्यवस्था विकेन्द्रीयकरण (decentralisation) की लम्बी प्रक्रिया की उपज है।
- सन् 1871 तक, देश के सम्पूर्ण राजस्व एवं व्यय पर केन्द्र सरकार का ही पूर्ण नियन्त्रण रहता था। प्रान्तों के वित्त पर भारत सरकार द्वारा जो कड़ा नियन्त्रण लागू किया जाता था, उसका सारांश निम्न शब्दों में रखा जा सकता है।
- सरकारी आय के वितरण से ऐसी कुव्यवस्था एवं छीना-झपटी की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती थी, जिसमें सबसे अधिक तेज व हाथ-पाँव फेंकने वाले प्रान्त ही लाभ उठाते थे और तर्क की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता था।
- मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में किये गये प्रस्तावों का अध्ययन करने के लिए लॉर्ड मैस्टन की अध्यक्षता में एक वित्तीय समिति (Financial Committee) बनाई गई। इस समिति की रिपोर्ट को मैस्टन बन्दोबस्त (Meston Settlement) अथवा मैस्टन निर्णय कहा जाता है।
- सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम के द्वारा संघीय वित्त के सिद्धान्त को लागू करने हेतु प्रान्तों की राजकोषीय स्थिति में काफी सुधार कर दिया गया।

## नोट

- सन् 1935 का भारत सरकार अधिनियम कानूनी मसौदे की दृष्टि से एक शानदार चीज थी। लगभग पाँच वर्षों तक ब्रिटेन के सर्वश्रेष्ठ विधि मसौदाकार (legal draftmen) इस अधिनियम की धाराओं की रूपरेखा निर्धारित करने में लगे रहते थे।
- संघ सरकार की सूची में लगभग 97 कार्य सम्मिलित हैं जिनमें मुख्य हैं—प्रतिरक्षा, अणु-शक्ति, प्रतिरक्षा उद्योग, विदेशी मामले, नागरिकता, रेल, राष्ट्रीय सड़क मार्ग, जहाजरानी व नौ-चालन, वायु-मार्ग, डाक व तार, मुद्रा तथा विदेशी विनिमय, विदेशी ऋण, विदेशी तथा अन्तर्राज्यीय व्यापार, महत्त्वपूर्ण उद्योग तथा राष्ट्रीय महत्त्व की संस्थाएँ आदि।
- समवर्ती सूची में लगभग 47 विषय हैं जिनके सम्बन्ध में संघ तथा राज्य सरकारें दोनों ही कानून बना सकती हैं। ये विषय हैं—वाणिज्यिक तथा औद्योगिक एकाधिकार, श्रम-विवाद, सामाजिक या कार्मिक सुरक्षा, दान, विवाह तलाक जैसे सामाजिक कानून तथा आर्थिक व सामाजिक कानून आदि।

### 21.4 शब्दकोश (Keywords)

- समन्वय (Coordinates)—मेल।
- चुंगी (Tolls)—महसूल (माल ले जाने से पहले चुंगी देना)।

### 21.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत में संघीय वित्त के विकास का वर्णन करें।
2. जो कर प्रांतों द्वारा लगाये तथा एकत्र किये जाते हैं, उनके नाम लिखें।
3. समवर्ती सूची तथा राज्य सूची में क्या अंतर है?
4. राज्यों के आय के स्रोतों को लिखें।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें:
 

(क) आय-कर का वितरण	(ख) जूट के निर्यात कर का वितरण।
--------------------	---------------------------------

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |          |         |               |          |
|----------|---------|---------------|----------|
| 1. संघीय | 2. 1871 | 3. लार्ड मेमो | 4. 1935  |
| 5. 1939  | 6. 47   | 7. सत्य       | 8. असत्य |
| 9. सत्य। |         |               |          |

### 21.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त—न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन—मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस—नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस—सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।

नोट

## इकाई-22: भारतीय वित्त आयोग (Indian Finance Commission)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

22.1 भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्ध (Financial Relation between Centre and States in India)

22.2 सिफारिशों का कार्यान्वयन (Implementation of the Recommendations)

22.3 प्रथम वित्त आयोग (First Finance Commission)

22.4 करों का वितरण (Distribution of Taxes)

22.5 द्वितीय वित्त आयोग (Second Finance Commission)

22.6 तृतीय वित्त आयोग (Third Finance Commission)

22.7 चतुर्थ वित्त आयोग (Fourth Finance Commission)

22.8 पाँचवाँ वित्त आयोग (Fifth Finance Commission)

22.9 सारांश (Summary)

22.10 शब्दकोश (Keywords)

22.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

22.12 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय संबंध की जानकारी हेतु।
- सिफारिशों के कार्यान्वयन को समझने में।
- प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम वित्त आयोग की जानकारी हेतु।
- करों के वितरण को स्पष्ट रूप से समझने हेतु।

### प्रस्तावना (Introduction)

संविधान में केन्द्र तथा राज्यों में वित्तीय साधनों में जितनी अलग-अलग स्वतंत्रता दी जा सकती है, देने का प्रयास किया है। आय-कर की प्राप्तियों का केन्द्र और राज्यों के बीच अनिवार्य रूप से विभाजन, उत्पादन शुल्कों का वैकल्पिक अथवा ऐच्छिक बँटवारा तथा केंद्र द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान, ये ऐसे प्रश्न थे जिनके निपटारे के लिए संविधान की धारा 280 में यह प्रावधान किया गया कि एक वित्त-आयोग का गठन किया जाए।

## नोट

आय-करों का बँटवारा वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद राष्ट्रपति के आदेश से होता है। संविधान की धारा 272 के अनुसार वित्त आयोग की सिफारिशें केवल संस्तुति मात्र ही होती हैं और संघ सरकार को इस बात की छूट होती है कि उत्पादन शुल्कों के संबंध में वह वित्त आयोग की सिफारिशों की उपेक्षा कर सके।

प्रथम वित्त आयोग सन् 1952 में श्री के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया। जब इसकी नियुक्ति हुई थी, तब आयकर का 50% भाग राज्यों को सौंपा जाता था। ऐसा निमेयर तथा देश-विभाजन के बाद देशमुख-निर्णय के अनुसार किया जाता था।

जून, 1956 में श्री के. संधानम की अध्यक्षता में द्वितीय वित्त आयोग की नियुक्ति की गई, जिसने नवम्बर 1956 में अपनी अंतरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की।

दिसम्बर, 1960 में श्री ए.के. चंदा की अध्यक्षता में तृतीय वित्त आयोग, मई 1964 में श्री पी.वी. राजमन्नार की अध्यक्षता में चौथे वित्त आयोग तथा मार्च 1968 में श्री महावीर त्यागी की अध्यक्षता में पाँचवें वित्त आयोग की स्थापना हुई।

## 22.1 भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्ध

### (Financial Relation between Centre and States in India)

केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय साधनों का बँटवारा अत्यधिक महत्वपूर्ण है किन्तु यह एक सर्वाधिक कठिन संघीय समस्या है। संविधान में केन्द्र तथा राज्यों में वित्तीय साधनों में जितनी अलग-अलग स्वतन्त्रता दी जा सकती है, देने का प्रयास किया है। किन्तु संघ तथा राज्यों के बीच बँटवारे की विशुद्ध तथा व्यापक व्यवस्था होते हुए भी सभी परिस्थितियों एवं सभी समयों में सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता, अतः भारतीय संविधान में एक स्वतन्त्र एजेन्सी की स्थापना करने का प्रावधान रखा गया है जो समय-समय पर केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों की विवेचना कर सके। वह एजेन्सी ही वित्त आयोग है।

आय-कर की प्राप्तियों का केन्द्र और राज्यों के बीच अनिवार्य रूप से विभाजन, उत्पादन शुल्कों का वैकल्पिक अथवा ऐच्छिक बँटवारा तथा केन्द्र द्वारा राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान, ये ऐसे प्रश्न थे जिनके निपटारे के लिए संविधान की धारा 280 में यह प्रावधान किया गया कि एक वित्त-आयोग का गठन किया जाए। इस धारा में कहा गया है कि संविधान लागू होने के दो वर्ष के भीतर ही और उसके पश्चात् प्रत्येक पाँच वर्ष की समाप्ति पर अथवा यदि उचित समझा जाए तो उसके पूर्व ही राष्ट्रपति एक वित्त आयोग की नियुक्ति करेंगे जिसमें एक अध्यक्ष (Chairman) तथा चार अन्य सदस्य होंगे।

संसद कानून बनाकर इस बात का निश्चय करेगी कि नियुक्ति के लिए आयोग के सदस्यों की आवश्यक योग्यताएँ क्या हों तथा संसद ही उस रीति का निर्धारण करेगी जिसके द्वारा कि उनका चुनाव किया जायेगा।

#### 22.1.1 आयोग के कार्य (Functions of the Commission)

आयोग का कार्य निम्नलिखित के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश करना होगा—

- (क) संघ तथा राज्यों के बीच उन करों को निबल या शुद्ध प्राप्तियों का वितरण जो कि उनके बीच बाँटे जाने हैं और ऐसी प्राप्तियों में प्रत्येक राज्य के हिस्से का निर्धारण।
- (ख) उन सिद्धान्तों का निर्धारण, जिनके आधार पर भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायक अनुदान दिये जा सकें।
- (ग) भारत सरकार तथा धारा 306 अथवा 278 के उपबन्ध 1 की प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' में उल्लिखित किसी भी राज्य के बीच हुए किसी समझौते की शर्तों में संशोधन अथवा उनका यथापूर्व जारी रहना।
- (घ) अन्य कोई भी मामला जो देश की सुचारु वित्त-व्यवस्था के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपा जाए।

इस प्रकार, वित्त आयोग निम्न मामलों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगा—

- (1) उन करों की निबल या शुद्ध प्राप्तियों का प्रतिशत, जो कि संघ तथा राज्यों के बीच बाँटे जाने हैं।

**नोट**

- (2) ऐसे करों की प्राप्तियों में प्रत्येक राज्य के हिस्से का बँटवारा प्रतिशत में।
- (3) आन्तरिक सीमा शुल्कों को लगाने के सम्बन्ध में भारत सरकार द्वारा भाग 'ख' के किसी भी राज्य के साथ हुए समझौते की शर्तों में संशोधन करना अथवा उसका यथापूर्व जारी रहना।
- (4) उन सिद्धान्तों का निर्धारण जिनके आधार पर भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायक अनुदान दिए जा सकें।
- (5) जनजाति अथवा कबीले क्षेत्रों (tribal areas) के लिए सहायक अनुदान।
- (6) किसी राज्य-विशेष के लिए विशिष्ट अनुदान।

आयोग अपनी कार्य-पद्धति का स्वयं निर्धारण करेगा और उसे अपने कार्यों के सम्पादन में ऐसी शक्तियाँ प्राप्त होंगी जो कि संसद कानून बनाकर उसे देगी।

राष्ट्रपति आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को उस पर की जाने वाली कार्यवाही की व्याख्यात्मक टिप्पणी के साथ संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखेंगे।

**अनिवार्य कार्य**—निम्नलिखित कार्य वित्त आयोग के अनिवार्य कार्य घोषित किये गये—(1) संघ तथा राज्य के बीच उन करों की निबल प्राप्तियों का वितरण, जो कि उनके बीच बाँटे जाने हों, (2) उन सिद्धान्तों का निर्धारण, जिनके आधार पर भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायक अनुदान दिए जा सकें। आय-कर एकमात्र ऐसा कर है जिसको अनिवार्य रूप से बाँटा जाता है जबकि उत्पादन शुल्कों के बँटवारे को ऐच्छिक कहा जा सकता है।



**नोट्स**

भारत सरकार तथा धारा 306 अथवा 278 के उपबन्ध 1 की प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' में उल्लिखित किसी भी राज्य के बीच हुए किसी समझौते की शर्तों में संशोधन अथवा उनका यथापूर्व जारी रखने का प्रावधान है।

## 22.2 सिफारिशों का कार्यान्वयन

### (Implementation of the Recommendations)

आय-करों का बँटवारा वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद राष्ट्रपति के आदेश से होता है। यह परम्परा सी बन गई है कि भारत सरकार इस सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशों स्वीकार कर लेती है कि विभाज्य करों का कितना प्रतिशत राज्यों को दिया जाना है और यह कि यह प्रतिशत राज्यों में किस प्रकार बाँटा जाना है। राज्यों के हिस्से को संघ की संचित निधि का भाग नहीं बनाया जाता बल्कि उन्हें सीधे राज्यों की संचित निधियों (Consolidated Funds) में डाल दिया जाता है।

संविधान की धारा 272 के अनुसार, वित्त आयोग की सिफारिशों केवल संस्तुति मात्र ही होती हैं और संघ सरकार को इस बात की छूट होती है कि उत्पादन-शुल्कों (excise duties) के सम्बन्ध में वह वित्त आयोग की सिफारिशों की उपेक्षा कर सके। यदि वह सिफारिश न होने के बावजूद उत्पादन-शुल्कों का कोई भाग राज्यों को देना चाहती है तो वह इच्छानुसार इसके लिए कानून बना सकती है। परन्तु व्यवहार में संघ सरकार उत्पादन-शुल्कों के सम्बन्ध में वित्त आयोग की सिफारिशों को उस कानून के आधार के रूप में स्वीकार कर लेती है जिसे कि वह उत्पादन शुल्कों के बँटवारे के लिए संसद के समक्ष रखती है।

**संवैधानिक स्थिति (Constitutional Position)**—अतः इस सम्बन्ध में संवैधानिक स्थिति इस प्रकार है—

- (1) वित्त आयोग को केवल उन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सिफारिशें करनी होती हैं जिनके द्वारा कि सहायक अनुदानों का निर्धारण होता है।
- (2) तब यदि राज्यों को सहायता की आवश्यकता होगी तो संसद कानून बनाकर विशिष्ट अनुदानों का निर्धारण कर सकती है।

## नोट

(3) संसद ऐसा कानून बनाये तब तक के लिए राष्ट्रपति वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद ऐसे अनुदानों की विशिष्ट धनराशि देने का आदेश दे सकता है।

वास्तव में, यह सब भ्रम इस कारण उत्पन्न हुआ है क्योंकि वित्त आयोगों ने सिद्धान्तों के निर्माण में कुछ व्यर्थ के प्रयास किये हैं जैसे कि वित्त आयोग ने कुछ विशिष्ट धनराशियों की सिफारिश कर दी और राष्ट्रपति ने तदनुसार ही उन धनराशियों के बराबर अनुदान देने के आदेश दे दिये। संघ सरकार ने आज तक कभी यह ठीक नहीं समझा कि धारा 275 (1) अन्तर्गत संसद से इस सम्बन्ध में कानून बनाने को कहे और न संसद के किसी वर्ग से ही संसद को इस अधिकार का उपयोग करने के लिए कहा है।



क्या आप जानते हैं व्यवहार में, आय-कर के भाग, उत्पादन-शुल्कों की प्राप्तियों तथा सहायक अनुदानों के वितरण के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिशें ही अन्तिम होती हैं और वे संघ सरकार द्वारा स्वीकार कर ली जाती हैं।

### 22.3 प्रथम वित्त आयोग (First Finance Commission)

प्रथम वित्त आयोग सन् 1952 में श्री के. सी. नियोगी की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया। आयोग का विचार था कि राज्यों की आय में ठोस वृद्धि करने की भारी आवश्यकता है। इसलिए उसने अधिक अंशदान देने की राज्यों की माँग को स्वीकार कर लिया। परन्तु ऐसा करते समय उसने निम्नलिखित तीन बातों को दृष्टिगत रखा—

- (1) केन्द्र के पास के साधनों का अतिरिक्त स्थानान्तरण इस प्रकार होना चाहिए कि देश की प्रतिरक्षा तथा आर्थिक स्थिरता के प्रति केन्द्र की जिम्मेवारियों को देखते हुए स्थानान्तरण का उससे साधनों पर कोई अनुचित बोझ न पड़े तथा यह उस भार को सहन कर सके।
- (2) अनुदानों के वितरण से सम्बन्धित सिद्धान्त सभी राज्यों पर समान रूप से लागू किए जाने चाहिए।
- (3) वितरण की योजना का उद्देश्य यह होना चाहिए विभिन्न राज्यों के बीच पाई जाने वाली असमानताएँ कम हों।



टास्क प्रथम वित्त आयोग की स्थापना कब और किसकी अध्यक्षता में हुई?

### 22.4 करों का वितरण (Distribution of Taxes)

सभी आयोगों को सौंपा जाने वाला सबसे पहला कार्य यह था कि वे संघ और राज्यों के बीच उन करों की निबल प्राप्तियों के वितरण का निर्धारण करें जोकि उनके बीच बाँटे जाने हैं अथवा बाँटे जाने चाहिए। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, ये कर हैं—आय-कर तथा उत्पादन-शुल्क।

जब प्रथम वित्त आयोग की नियुक्ति हुई थी, तब आय-कर का 50% भाग राज्यों को सौंपा जाता था। ऐसा निमेयर निर्णय तथा देश-विभाजन के बाद देशमुख-निर्णय के अनुसार किया जाता था। यह कहा गया कि आय-कर के वितरण की जो प्रतिशत निर्धारित की गई है वह अंशतः तो संग्रह (Collection) के आधार पर है और अंशतः जनसंख्या के आधार पर। नियोगी आयोग तथा अन्य आयोगों से पूर्व बम्बई तथा बंगाल यह कहते रहे हैं कि यह वितरण संग्रह के आधार पर होना चाहिए, जब कि अन्य राज्यों का यह कहना था कि आय-कर एक केन्द्रीय कर है और उसका संग्रह किस स्थान पर हुआ है, यह बात आय-कर के वास्तविक मूल स्रोत को प्रकट नहीं करती। अतः आय-कर का वितरण पूर्णतया जनसंख्या के आधार पर होना चाहिए।

इन सभी बातों पर विचार करने के बाद, नियोगी आयोग ने सुझाव दिया कि आय-कर की निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 50 प्रतिशत से बढ़ाकर 55 प्रतिशत कर दिया जाना चाहिए और विभाज्य धनराशि में राज्यों के भाग के 20 प्रतिशत हिस्से को तो राज्यों में किये गये सापेक्षिक संग्रह के आधार पर वितरित किया जाना चाहिए और 80

**नोट**

प्रतिशत हिस्से को राज्यों में सन् 1951 की जनगणना (Census) के अनुसार उनकी जनसंख्या के आधार पर वितरण करना चाहिए। आयोग ने कहा कि इस बात की आवश्यकता नहीं है कि भारत सरकार राज्यों को दिए जाने वाले प्रतिशत का प्रतिवर्ष हिसाब लगाये बल्कि इसके स्थान पर उसने पिछले तीन वर्षों के वास्तविक संग्रहों के आधार पर कुछ निश्चित प्रतिशतों की सिफारिश की और कहा कि ये प्रतिशत 1952-53 से 1956-57 तक के पाँच वर्षों तक लागू रहेंगे।

धारा 270 के अनुसार आय-कर की कुल निबल प्राप्तियों में से संघ-शासित क्षेत्रों को देय भाग तथा संघीय रोजगारों के सम्बन्ध में देय-कर घटा दिये जाते हैं। यह महालेखा परीक्षक (Auditor-general) का काम होता है कि वह संघीय रोजगारों के सम्बन्ध में देय-करों का हिसाब लगाये और निबल प्राप्तियों की घोषणा करे। नियोगी आयोग ने निबल या शुद्ध प्राप्तियों का  $2\frac{1}{4}$  भाग वर्ग 'ग' (Part C) के राज्यों के लिए निर्धारित किया और उसने सुझाव दिया कि शेष 55 प्रतिशत भाग राज्यों को दिया जाए 50 प्रतिशत नहीं, जैसा कि पहले दिया जाता था।

**उत्पादन-शुल्कों का वितरण**—यद्यपि सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम की धारा 140 (1) में उत्पादन-शुल्कों के वितरण का प्रावधान किया गया था, परन्तु उस पर अमल नहीं किया जा सका था और वह इसलिए क्योंकि संघीय भाग अस्तित्व में भी नहीं आया था कि द्वितीय विश्व-युद्ध छिड़ गया था। अतः इस व्यवस्था को लागू करने का कार्य प्रथम वित्त आयोग पर डाला गया।

उत्पादन-शुल्कों के सम्बन्ध में संविधान में दी गई व्यवस्थाओं से कुछ भ्रम सा उत्पन्न होता है क्योंकि धारा 272 तो इस मामले को पूर्णतया संसद पर छोड़ती है जब कि धारा 280 में वित्त आयोग को आदेश दिया गया है कि वह उनका करों के वितरण पर विचार करे जिनका कि बँटवारा होना है। इस सम्बन्ध में आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह पूर्णतया उसकी क्षमता की परिधि में था कि वह संघीय उत्पादन-शुल्कों के विभाजन के बारे में राष्ट्रपति को अपनी सिफारिश प्रस्तुत करे, यद्यपि ऐसी सिफारिशें संसद के कानून द्वारा ही लागू होती थीं। चूँकि आयोग इस सम्बन्ध में एक नये आधार की नींव रख रहा था। अतः वह केन्द्रीय बजट को बहुत अधिक अस्त-व्यस्त करना नहीं चाहता था। अतः उसने वितरण की योजना को कुछ थोड़े से चुनिंदा उत्पादन-शुल्कों तक ही सीमित करने का निश्चय किया।

आयोग ने सुझाव दिया कि तम्बाकू (सिगरेट व सिगार आदि सहित), दियासलाई तथा वनस्पति तेलों पर लगे उत्पादन-करों की निबल प्राप्तियों का 40 प्रतिशत भाग राज्यों में बाँट दिया जाना चाहिए। यहाँ फिर, वितरण के आधार के बारे में काफी मत-विभिन्नता रही। चूँकि विभिन्न राज्यों में इन वस्तुओं में से प्रत्येक के उपभोग के बारे में विश्वसनीय आँकड़ें उपलब्ध नहीं थे, अतः आयोग ने जनसंख्या के आधार पर वितरण की सिफारिश की और इस व्यवस्था ने निश्चित प्रतिशतों का रूप धारण कर लिया जो कि 5 वर्ष की अवधि के लिए वैध (valid) थी।

**सहायक अनुदान (Grants-in-aid)**—सभी वित्त-आयोगों के लिए तीसरा सामान्य विचारणीय विषय धारा 275 (1) के अधीन सहायक अनुदानों के सिद्धान्तों के निर्धारण का था। प्रथम वित्त-आयोग ने राज्यों के सहायक अनुदानों का निर्धारण करते समय कुछ निर्देशक सिद्धान्तों (guiding principles) को दृष्टिगत रखने का सुझाव दिया जैसे कि राज्यों की बजट सम्बन्धी आवश्यकताएँ, कर-प्रयास (tax efforts), सामाजिक सेवाओं का स्तर, राज्यों को सौंपे गये विशेष दायित्व तथा राष्ट्रीय महत्त्व के मुख्य कार्य।

**जूट निर्यात-कर के बदले में सहायक अनुदान**—आयोग ने जूट उत्पन्न करने वाले राज्यों को जूट निर्यात-कर के उनके भाग के बदले में अधिक अनुदान देने की सिफारिश की। इस सम्बन्ध में आयोग ने जिस धनराशि का सुझाव दिया, वह उस रकम पर आधारित थी जो कि जूट तथा जूट के सामान पर लगे निर्यात-कर के अपने भाग के रूप में उन्होंने 1943 व 1950 के मध्य प्राप्त की थी। आयोग ने सिफारिश की कि निम्न राज्यों को जूट निर्यात के बदले में निम्नलिखित वार्षिक सहायक अनुदान मिलने चाहिए—

पश्चिमी बंगाल	150 लाख ₹	बिहार	75 लाख ₹
असम	75 लाख ₹	उड़ीसा	15 लाख ₹

## नोट

**आयोग को सौंपे गये अन्य मामले**—इन तीन सामान्य विषयों के अलावा, प्रत्येक आयोग को कुछ विशेष विचारणीय विषय भी सौंपे गए। प्रथम वित्त-आयोग से इस सम्बन्ध में भी अपनी सिफारिश देने को कहा गया कि भारत सरकार द्वारा भाग 'ख' (Part B) के राज्यों के साथ किये गये किसी भी समझौते की शर्तों को यँ ही जारी रहने दिया जाए अथवा उनमें कुछ संशोधन किया जाए।<sup>1</sup> चूँकि भारतीय रियासतों की राजस्व व्यवस्था (revenue system) ब्रिटिश प्रान्तों की व्यवस्था से भिन्न थी, अतः इस सम्बन्ध में कुछ ऐसी अन्तःकालीन व्यवस्था की आवश्यकता थी कि जिसके द्वारा भाग 'ख' के राज्य भूतपूर्व ब्रिटिश भारत के प्रांतों के समकक्ष आ जाएँ। सन् 1948 में श्री वी. टी. कृष्णामाचारी की अध्यक्षता में जो समिति गठित की गई थी, उसकी सिफारिशों के अनुसार, केन्द्र ऐसे राज्यों को अन्तःकालीन अवधि के लिए अनुदान देने को राजी हो गया था जो कि रियासतों के एकीकरण के कारण घाटे की स्थिति में आ गये थे। ये अनुदान राजस्व-घाटा अनुदान कहलाते थे।

ये राज्य वित्त-आयोग के प्रस्तावों के कारण प्राप्त होने वाले सभी लाभों के अधिकारी थे। अब उनको राजस्व-घाटा अनुदान अधिक मात्रा में मिलते थे। प्रथम आयोग का यह विचार था कि अब केवल मैसूर, सौराष्ट्र तथा ट्रावनकोर, कोचीन राज्यों को ही राजस्व-घाटा अनुदान दिए जाने की आवश्यकता थी, क्योंकि अन्य सभी राज्य अब पूर्णतया 'क' राज्यों के स्तर तक लाए जा चुके थे।



**नोट्स** सभी वित्त-आयोगों के लिए तीसरा सामान्य विचारणीय विषय धारा 275 (1) के अधीन सहायक अनुदानों के सिद्धांतों के निर्धारण का था।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. राष्ट्रपति आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को उस पर की जाने वाली कार्यवाही की व्याख्यात्मक टिप्पणी के साथ ..... के प्रत्येक सदन के समक्ष रखेंगे।
2. आय-करों का बँटवारा वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद ..... के आदेश से होता है।
3. संविधान की धारा ..... के अनुसार, वित्त आयोग की सिफारिशें केवल संस्तुति भाग ही होती हैं।
4. जब प्रथम वित्त आयोग की नियुक्ति हुई थी, तब आय-कर का ..... भाग राज्यों को सौंपा जाता था।
5. आयोग ने जूट उत्पन्न करने वाले राज्यों को जूट निर्यात-कर के उनके भाग के बदले में ..... देने की सिफारिश की।

## 22.5 द्वितीय वित्त आयोग (Second Finance Commission)

जून 1956 में श्री के. सन्थानम की अध्यक्षता में द्वितीय वित्त आयोग की नियुक्ति की गई, जिसने नवम्बर 1956 में अपनी अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। अन्तरिम रिपोर्ट (interim report) में केवल कुछ ऐसे न्यूनतम परिवर्तनों का सुझाव दिया गया, जो राज्यों का पुनर्गठन होने के कारण तथा जम्मू व कश्मीर का भारत के साथ वित्तीय एकीकरण होने के कारण आवश्यक हो गए थे। सितम्बर 1957 में आयोग ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट (final report) प्रस्तुत की।

**करों का वितरण (Distribution of Taxes)**—आयोग को कर-संग्रह तथा जनसंख्या के दावों पर पुनः विचार करना पड़ा। आयोग का विचार था कि बिक्री-कर, मोटर-गाड़ी कर, बिजली-कर व मनोरंजन-कर आदि से आय में वृद्धि हो जाने के कारण बंगाल तथा बम्बई जैसे औद्योगिक दृष्टि से उन्नत राज्य अन्य कृषि प्रधान राज्यों के

1. यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भाग 'ख' और 'ग' राज्यों का भेद अब समाप्त कर दिया गया है।



**नोट**

मुकाबले वित्तीय दृष्टि से अधिक मजबूत हो गये हैं। अतः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वितरण के आधार के रूप में संग्रह (Collection) का स्थान पूर्णतया जनसंख्या (Population) को दे दिया जाना चाहिए। तथापि परिवर्तन को सरल बनाने की दृष्टि से आयोग ने यह सिफारिश की कि राज्यों में वितरित की जाने वाली निबल प्राप्तियों का 10 प्रतिशत भाग तो संग्रह के आधार पर और 90 प्रतिशत भाग जनसंख्या के आधार पर बाँटा जाना चाहिए। आयोग ने यह भी आशा प्रकट की कि आगे आने वाला आयोग संग्रह के आधार को पूर्णतया ही समाप्त कर देगा।

आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि आय-कर की निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 55 प्रतिशत से बढ़ाकर 60 प्रतिशत कर दिया जाना चाहिए। राज्यों के बीच वास्तविक विवरण पहले की तरह ही निश्चित प्रतिशतों के रूप में निर्धारित किया गया जो कि 1957-58 से 1961-62 तक ही पाँच वर्षों की अवधि के लिए लागू करना था।

द्वितीय वित्त आयोग ने जब अपनी रिपोर्ट दी, तब तक भाग 'ख' और 'ग' के राज्य समाप्त हो चुके थे और उनका पुनर्गठन हो चुका था। अतः आयोग ने सुझाव दिया कि आय-कर की निबल या शुद्ध प्राप्तियों का 1 प्रतिशत भाग संघ शासित क्षेत्रों (Union Territories) को दिया जाना चाहिए और शेष 60 प्रतिशत भाग राज्यों (States) को सौंप दिया जाना चाहिए।

सन् 1959 के वित्त अधिनियम (Finance Act) द्वारा कम्पनियों द्वारा दिए जाने वाले आय-कर को निगम-कर (Corporation Tax) की श्रेणी में रख दिया गया। इस स्थिति में अब यह विभाज्य कोष (Divisible Pool) का अंग नहीं रहा। इससे विभाज्य कोष का आकार घट गया। अतः इस क्षतिपूर्ति के लिए एक विशेष क्षतिपूर्ति अनुदान की भी सिफारिश की गई।

**उत्पादन-शुल्कों का वितरण (Distribution of Excise Duties)**—द्वितीय वित्तीय आयोग ने अनेक राज्यों की इस माँ पर विचार किया कि सभी उत्पादन-करों का वितरण होना चाहिए। परन्तु वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ऐसा तीव्र परिवर्तन न तो आवश्यक है और न वाँछनीय ही। अतः आयोग ने तम्बाकू, दियासलाई तथा वनस्पति तेलों पर लगने वाले एवं पहले ही से बाँटे जाने वाले तीन उत्पादन-करों में कुछ और करों को सम्मिलित करके उनका दायरा बढ़ा दिया। ये बढ़ाये जाने वाले कर थे—चीनी, चाय, कॉफी, कागज तथा वनस्पति के आवश्यक तेलों पर उत्पादन-शुल्क। परन्तु आयोग ने यह भी आवश्यक समझा कि इन करों की निबल प्राप्तियों का बाँटा जाने वाला प्रतिशत 40 से घटाकर 25 कर दिया जाना चाहिए ताकि संघ व राज्यों के बीच वित्तीय सन्तुलन बना रहे।

इस आयोग के लिए उपभोग (consumption) से सम्बन्धित कुछ आँकड़े भी तैयार किये गये, परन्तु आयोग ने यह अनुभव किया कि उपभोग को वितरण का आधार बनाने के लिए इन आँकड़ों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अतः आयोग ने सिफारिश की कि संघीय उत्पादन-शुल्कों में राज्यों के हिस्से का 90 प्रतिशत भाग तो जनसंख्या के आधार पर बाँटा जाना चाहिए और शेष 10 प्रतिशत का उपभोग कमी बेशी के लिए किया जाना चाहिए।

द्वितीय वित्त आयोग ने यह आवश्यक नहीं समझा कि संघ-शासित क्षेत्रों के लिए भी कोई प्रतिशत निर्धारित किया जाए क्योंकि धारा 272 में ऐसे किसी बँटवारे का उल्लेख उस प्रकार नहीं किया गया है जैसा कि आय-कर के सम्बन्ध में संविधान की धारा 270 में किया गया है।

**सहायक अनुदान (Grants-in-aid)**—प्रथम वित्त आयोग ने सहायक अनुदानों के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त निर्धारित किये थे, सामान्यतः उन्हीं को आगे बढ़ाते हुए द्वितीय वित्त आयोग ने यह विचार प्रकट किया कि, “ऐसी संघीय व्यवस्था में जहाँ कि केन्द्र और राज्य योजनाबद्ध विकास के लिए परस्पर सहयोग करते हैं, सहायक अनुदानों को इस लक्ष्य की पूर्ति में सहायक होना चाहिए।” आयोग का यह मत था कि राज्यों की सामान्य आय तथा उनके सामान्य एवं अनिवार्य व्यय के बीच के अन्तर को, जहाँ तक भी हो सके, करों के बँटवारे द्वारा ही पूरा किया जाना चाहिए। अतः सहायक अनुदानों को सहायता का एक अवशिष्ट रूप ही बनाए रखना चाहिए और वे बिना शर्त के तथा सामान्य रूप से दिए जाने चाहिए। अतः अनुदानों को देने की बात किसी विशिष्ट कार्यक्रम को लागू करने पर ही निर्भर नहीं रहनी चाहिए।

आयोग का यह भी कहना था कि धारा 275 (1) के अनुसार विशिष्ट उद्देश्यों के लिए भी अनुदान दिये जा सकते हैं। परन्तु ऐसे अनुदानों की अधिक गुँजाइश इसलिए नहीं थी, क्योंकि ऐसे सभी उद्देश्य व्यापक योजना में सम्मिलित कर दिये गए थे।

## नोट

आयोग ने सन् 1957-58 से 1961-62 तक के अगले पाँच वर्षों के लिए 11 राज्यों के लिए अलग-अलग अनुदान निर्धारित किए। इस अवधि के लिए कुल अनुदानों की मात्रा 187.75 करोड़ रुपये निर्धारित की गई थी। बम्बई, मद्रास और उत्तर प्रदेश के लिए किन्हीं अनुदानों की सिफारिश नहीं की गई, क्योंकि यह समझा गया कि आयोग की योजना के अन्तर्गत इन राज्यों को आय-कर का जो भाग दिया जा रहा था, वह उनके चालू व योजना व्यय की पूर्ति के लिए काफी था।

**जूट निर्यात-कर के बदले में सहायक अनुदान**—आयोग ने जूट उत्पन्न करने वाले राज्यों को जूट निर्यात-कर के भाग के बदले में दिये जाने वाले अनुदानों में किसी परिवर्तन का सुझाव नहीं दिया। हाँ, राज्यों का पुनर्गठन होने के कारण चूँकि बिहार से प. बंगाल को कुछ क्षेत्रों को स्थानान्तरण किया गया था, अतः इन दोनों राज्यों के अनुदानों में कुछ हेर-फेर अवश्य किया गया। इस सम्बन्ध में प्रत्येक राज्य के लिए निर्धारित धनराशियाँ निम्न प्रकार थीं—

असम	75.00 लाख ₹
बिहार	72.31 लाख ₹
उड़ीसा	15.00 लाख ₹
पश्चिमी बंगाल	152.69 लाख ₹

**आयोग को सौंपे गये अन्य कार्य**—इन तीन सामान्य विचारणीय विषयों के अलावा, आयोग को निम्न विषय विचारार्थ सौंपे गये—

- (1) इस बात की सिफारिश करना कि किसी भी वित्तीय वर्ष में कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्तियों पर लगने वाले आस्ति-कर (estate duty) की निबल प्राप्तियों का, धारा 269 के अधीन, किन सिद्धान्तों के अनुसार वितरण किया जाए।
- (2) 15 अगस्त, 1947 और 31 मार्च, 1956 के बीच भारत सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों को दिए गए कर्जों की वापिसी की शर्तों तथा ब्याज की दरों के सम्बन्ध में किये जाने वाले संशोधन, यदि कोई आवश्यक हों तो।
- (3) मिल के बने कपड़े, चीनी, तम्बाकू पर राज्य सरकारों द्वारा लगाए जाने वाले बिक्री-कर के स्थान पर जो अतिरिक्त उत्पादन-शुल्क लगाया जा रहा था, उसका वितरण कैसे किया जाए।
- (4) सन् 1957 से रेल किरायों पर लगाए जाने वाले कर की निबल प्राप्तियों के वितरण का मार्गदर्शन करने वाले सिद्धान्तों की सिफारिश करना।

**रेल किरायों पर लगाये जाने वाले करों का वितरण**—इसमें से धारा 269 के अन्तर्गत रेल किरायों पर लगाये जाने वाले कर को सन् 1961 में समाप्त कर दिया गया, परन्तु भारत सरकार ने 12.5 करोड़ रु. प्रति वर्ष क्षति-पूर्ति (compensation) के रूप में देना जारी रखा। आयोग ने सुझाव दिया कि प्रत्येक राज्य के अन्दर रेलों की वास्तविक सवारी यात्रा की निबल प्राप्तियों के आधार पर ही प्रत्येक राज्य का हिस्सा तय किया जाना चाहिए। चूँकि सवारी यात्रा के राज्यानुसार सही आँकड़े उपलब्ध नहीं थे, अतः आयोग द्वारा सभी उपलब्ध तथ्यों पर विचार करने के बाद कुछ निबल प्राप्तियों का 1/4 प्रतिशत भाग निर्धारित किया गया।

**आस्ति-कर का वितरण**—आस्ति-कर (estate duty) के सम्बन्ध में आयोग ने यह सिफारिश की कि उसका 1 प्रतिशत भाग तो संघ-शासित क्षेत्रों के लिए रख लिया जाना चाहिए और शेष भाग को अचल (immovable) तथा चल (movable) सम्पत्तियों के आधार पर दो भागों में बाँटा जाना चाहिए। आधार के लिए आयोग ने सुझाव दिया कि अचल सम्पत्ति पर लगे आस्ति-कर की प्राप्तियाँ उन सभी सम्पत्तियों के कुल मूल्य के अनुपात में बाँट दी जानी चाहिए, जिन पर कि उस वर्ष कर-निर्धारण किया गया हो। इस प्रकार, राज्यों को दी जाने वाली धनराशियों का वितरण प्रत्येक राज्य में स्थित अचल सम्पत्ति के कुल मूल्य के अनुपात में बाँटा जाना था और चल सम्पत्ति (movable property) प्राप्तियों को जनसंख्या के अनुपात में बाँटा जाना था।

**राज्यों को दिये जाने वाले संघीय कर्जों**—राज्यों को दिये जाने वाले संघीय कर्जों के सम्बन्ध में आयोग ने सुझाव दिया कि 15 अगस्त, 1947 तथा 31 मार्च, 1956 के बीच में भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों को दिए गए सभी

## नोट

कर्जों का (पुनर्वास तथा ब्याज-मुक्त कर्जों को छोड़कर) 31 मार्च, 1957 को जो बकाया राशियाँ थीं, उनका निम्न प्रकार एकीकरण किया जाना चाहिए—

- (1) उन सभी कर्जों की धनराशियाँ जिनकी ब्याज की वार्षिक दर 3 प्रतिशत अथवा उससे अधिक हो और जिसकी अदायगी 1 अप्रैल, 1977 को अथवा उससे पूर्व होनी हो, एक ऐसे कर्जों के रूप में एकीकृत की जानी चाहिए, जिनकी ब्याज की दर 3 प्रतिशत हो और जो 31 मार्च, 1978 को अदा किये जाएँ (दीर्घकालीन कर्जों)।
- (2) उन सभी कर्जों की धनराशियाँ जिनकी ब्याज की सालाना दर 3 प्रतिशत या उससे अधिक हो और जिसकी अदायगी 31 मार्च, 1977 को अथवा उससे पूर्व होनी हो, एक ऐसे कर्जों के रूप में एकीकृत कर दी जानी चाहिए, जिनकी ब्याज की दर 3 प्रतिशत वार्षिक हो और जो 31 मार्च, 1972 को अदा किये जाएँ (मध्यकालीन कर्जों)।
- (3) उन सभी कर्जों की धनराशियाँ, जिनकी ब्याज की दर 3 प्रतिशत से कम हो और जिनकी अदायगी 9 अप्रैल, 1977 या उसके बाद होनी हो, एक ऐसे कर्जों के रूप में एकीकृत कर दी जानी चाहिए, जिनकी ब्याज की दर  $2\frac{1}{2}$  प्रतिशत हो और जो 31 मार्च, 1977 को अदा किये जाएँ (दीर्घकालीन कर्जों)।
- (4) उन सभी कर्जों की धनराशियाँ, जिनकी ब्याज की वार्षिक दर 3% से कम हो और जिनकी अदायगी 31 मार्च, 1977 को अथवा उससे पूर्व होनी हो, एक ऐसे कर्जों के रूप में एकीकृत कर दी जानी चाहिए, जिनकी ब्याज की वार्षिक दर  $2\frac{1}{2}$ % हो तथा जो 31 मार्च, 1972 को अदा किये जाएँ (मध्यकालीन कर्जों)।

इस प्रकार, कर्जों का दो मुख्य वर्गों में वर्गीकरण किया गया, अर्थात् दीर्घकालीन कर्जों और मध्यकालीन कर्जों। दीर्घकालीन कर्जों (long term loans) 31 मार्च, 1978 को अदा किये जाने थे और मध्यकालीन कर्जों (medium term loans) 31 मार्च, 1972 को। कुछ दीर्घकालीन कर्जों की ब्याज की दर 3% है और अन्य दीर्घकालीन कर्जों की  $2\frac{1}{2}$ %। इस प्रकार, कुछ मध्यकालीन कर्जों के लिए ब्याज की दर 3% निर्धारित की गई, जबकि ऐसे ही कुछ अन्य कर्जों के लिए यह प्रतिशत  $2\frac{1}{2}$ % रखा गया।

इस प्रकार पुनर्वास तथा ब्याजमुक्त कर्जों को छोड़कर राज्यों को दिये जाने वाले सभी संघीय कर्जों चार प्रकार के कर्जों में परिवर्तित कर दिए। आयोग ने यह भी सिफारिश की कि इस योजना में जो मूलभूत विशेषता निहित है, उसको भावी कर्जों के सम्बन्ध में भी अपनाया जाना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्य से भारत सरकार ने इन सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया, यद्यपि सभी राज्यों ने उनका हार्दिक समर्थन किया था। परिणाम यही हुआ कि राज्यों को दिए गये अनेक ऐसे छोटे-बड़े कर्जों बराबर जारी रहे, जिनकी परिपाक तिथियाँ अलग-अलग पड़ती थीं।

**अतिरिक्त उत्पादन-शुल्कों का वितरण**—राज्य सरकारों के परामर्श से भारत सरकार ने यह निश्चय किया कि मिलों में बने कपड़े, चीनी तथा तम्बाकू पर राज्य सरकारों द्वारा लगाये जाने वाले बिक्री-करों के स्थान पर एक अतिरिक्त उत्पादन-शुल्क (additional excise duty) लगा दी जाए और उसकी निबल प्राप्तियों को राज्यों में बाँट दिया जाए। इस सन्दर्भ में, आयोग ने सबसे पहले इन करों से प्रत्येक राज्य को होने वाली 'वर्तमान आय' पर विचार किया, क्योंकि वितरण की योजना में प्रत्येक राज्य को इतनी ही धनराशि का आश्वासन दिया जाना था। आयोग ने इन वस्तुओं पर लगाये जाने वाले बिक्री-करों से सन् 1956-67 में होने वाली आय को 'वर्तमान आय' (present income) के रूप में स्वीकार किया। निबल प्राप्तियों का कुछ भाग यदि शेष रहे, तो उसके वितरण के लिए आयोग ने कुछ निश्चित प्रतिशत निर्धारित कर दिये।



क्या आप जानते हैं? जून 1956 में श्री के. संधानम की अध्यक्षता में द्वितीय वित्त आयोग की स्थापना हुई।

## 22.6 तृतीय वित्त आयोग (Third Finance Commission)

नोट

दिसम्बर, 1960 में श्री ए. के. चन्दा की अध्यक्षता में तृतीय वित्त आयोग की स्थापना की गई। आयोग ने दिसम्बर, 1962 में भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

**करों का वितरण**—आयोग ने सुझाव दिया कि संघ-शासित क्षेत्रों को दिया जाने वाला प्रतिशत 1 से बढ़ाकर  $2\frac{1}{2}\%$  कर दिया जाना चाहिए और यह भी कहा कि आय-कर को निबल प्राप्तियों का  $66\frac{2}{3}$  प्रतिशत भाग राज्यों को मिलना चाहिए। आयोग ने यह भी सिफारिश की कि यह वितरण 20% तो संग्रह के आधार पर और 80% जनसंख्या के आधार पर किया जाना चाहिए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रथम वित्त आयोग ने भी आय-कर के वितरण के इसी आधार की सिफारिश की थी किन्तु द्वितीय वित्त आयोग ने संग्रह (collection) के आधार को 20% से घटाकर 10% कर दिया था। तृतीय वित्त आयोग का मत था कि इस वितरण के आधार के रूप में यद्यपि जनसंख्या को मुख्य तत्व बनाये रखना चाहिए, किन्तु दो कारणों से संग्रह के तत्व को पहले की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। प्रथम तो इसलिए क्योंकि कम्पनियों द्वारा दिये जाने वाले आय-कर को विभाज्य कोष (divisible pool) से पृथक् कर दिया गया था। दूसरे, औद्योगिक राज्यों को, जो कि विभाज्य कोष को आय-कर के संग्रह की अधिक धनराशियाँ प्रदान करते थे। प्रशासनिक तथा सामाजिक सेवाओं पर अपेक्षाकृत अधिक व्यय करना पड़ता था। इसी कारण आयोग ने यह सिफारिश की कि आय-करों का वितरण 20% संग्रह के आधार पर और 80% जनसंख्या के आधार पर किया जाना चाहिए।

**उत्पादन-शुल्कों का वितरण**—प्रथम वित्त आयोग ने यह सिफारिश की थी कि तम्बाकू, दियासलाई तथा चीनी पर लगाये जाने वाले उत्पादन-शुल्कों (excise duties) की निबल या शुद्ध प्राप्तियों (net proceeds) का 40% भाग राज्यों को दिया जाना चाहिए। किन्तु द्वितीय वित्त आयोग ने राज्यों के भाग प्रतिशत तो 40 से घटाकर 25 कर दिया, परन्तु वस्तुओं की संख्या तीन से बढ़ाकर आठ कर दी। साथ ही द्वितीय आयोग ने यह भी सिफारिश की थी कि विभाज्य धनराशियों का 90% भाग तो जनसंख्या के आधार पर बाँटा जाए और 10% भाग हेर-फेर या कमीवेशी के लिए रख लिया जाए।

तृतीय वित्त आयोग ने उत्पादन-कर लग सकने योग्य पदार्थों की संख्या 8 से बढ़ाकर 35 कर दी। उसने इनमें उन सभी वस्तुओं को सम्मिलित कर लिया, जिन पर कि सन् 1960-61 से कर लगाये जाते थे, परन्तु इनमें उसने उन वस्तुओं को छोड़ दिया, जिन पर करों की प्राप्तियों की मात्रा 50 लाख रु. वार्षिक से कम थी। आयोग ने विभाज्य कोष से राज्यों को मिलने वाला भाग घटाकर 20% कर दिया। परन्तु आयोग ने यह भी बताया कि राज्यों के बीच इस 20% के वितरण का सही आधार क्या हो? हाँ, उसने राज्यों के लिए कुछ प्रतिशत अवश्य निर्धारित किए और कहा कि यद्यपि इन प्रतिशतों के निर्धारण का मुख्य आधार जनसंख्या को ही बनाया गया है, किन्तु इसके साथ ही कुछ अन्य बातों का भी ध्यान रखा गया है, जैसे कि राज्यों की सापेक्षिक वित्तीय कमजोरी, विकास के स्तरों पर पाई जाने वाली असमानता तथा जनसंख्या में परिगणित जातियों (Scheduled castes), परिगणित जनजातियों (scheduled tribes) तथा पिछड़े वर्गों का प्रतिशत आदि।

उत्पादन-शुल्कों की सम्पूर्ण प्राप्तियों में राज्यों के भाग में सिफारिश करते समय आयोग ने कहा कि “राज्यों में सर्वोत्तम जीवन-क्षमता संघीय उत्पादन-शुल्कों का अधिकाधिक हस्तान्तरण करके लाई जा सकती है और ऐसा तब हो सकता है, जबकि संघीय उत्पादन शुल्कों की प्राप्तियों में परम्परागत रूप से राज्यों के हिस्से की व्यवस्था की जाए।” अतः आयोग राज्यों के इस दावे का बड़ी कठिनाई से प्रतिरोध कर सका कि चूँकि राज्यों के खर्चों में तेजी से वृद्धि हो रही है, अतः उन्हें उत्पादन-शुल्कों की सम्पूर्ण प्राप्तियों में से ही हिस्सा दिया जाए।

**अतिरिक्त उत्पादन-शुल्क**—आयोग ने निबल अथवा शुद्ध प्राप्तियों का 1% भाग संघशासित प्रदेशों के हिस्से के रूप में नियत किया तथा जम्मू व कश्मीर के हिस्से को बढ़ाकर  $1\frac{1}{2}$  प्रतिशत कर दिया। अन्य राज्यों के सम्बन्ध में आयोग ने गारन्टी की गई वार्षिक धनराशि में थोड़ी-सी वृद्धि करने की सिफारिश की और इस धनराशि को 32.50 करोड़ रु. से बढ़ाकर 32.54 करोड़ रु. कर दिया। गारन्टी की गई धनराशि की पूर्ति करने के पश्चात् शेष धन को राज्यों

**नोट**

के बीच बाँटा जाना था और यह वितरण अंशतः तो प्रत्येक राज्य में बिक्री-कर के संग्रह में होने वाली प्रतिशत वृद्धि के आधार पर और अंशतः जनसंख्या के आधार पर किया जाना था।

**आस्ति-कर (Estate Duty)**—आयोग ने आस्ति कर के वितरण से सम्बन्धित उन सिद्धान्तों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने का प्रस्ताव नहीं किया, जो कि द्वितीय आयोग ने सुझाये थे। फिर भी, इसने प्रत्येक राज्य को दिये जाने वाले प्रतिशत हिस्से से जनसंख्या के आधार पर संशोधन कर दिया।

**रेल यात्री किराये पर कर के बदले में अनुदान**—रेलयात्री किरायों पर कर के विभिन्न राज्यों के अपने-अपने हिस्से के बदले में आयोग ने सिफारिश की कि क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त के आधार पर 1.25 करोड़ रु. अनुदान के रूप में राज्यों में वितरित किया जाए, ताकि राज्यों को उसी स्तर पर लाया जा सके, जिस पर कि वे तब थे जब अप्रैल, 1961 में उक्त कर समाप्त किया गया था।

**सहायक अनुदान (Grants-in-aid)**—आयोग ने केवल इस विषय में विचार किया कि जिन अनुदानों की सिफारिश की गई है, वे राज्यों की योजना सम्बन्धी आवश्यकताओं व राजस्व सम्बन्धी घाटे को कहाँ तक पूरा कर सकते हैं। अतः आयोग ने अनुदान सम्बन्धी जो सिफारिशें की, वे केवल राज्यों के राजस्व घाटे (revenue gap) की पूर्ति के लिए ही नहीं थीं अपितु तृतीय योजना के 75% राजस्व भाग की पूर्ति के लिए भी थीं।

**आयोग का सौंपा गया अन्य कार्य**—तृतीय वित्त आयोग को कोई नया कार्य नहीं सौंपा गया था अपितु उससे इस सम्बन्ध में सिफारिशें देने को कहा गया था कि आस्ति-कर, अतिरिक्त उत्पादन-कर तथा रेल किरायों पर कर के वितरण से सम्बन्धित सिद्धान्तों में क्या कोई परिवर्तन किये जाने वांछनीय हैं। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, आयोग ने इनमें से किसी के विषय में किसी भी उल्लेखनीय परिवर्तन की सिफारिश नहीं की।

## 22.7 चतुर्थ वित्त आयोग (Fourth Finance Commission)

मई, 1964 में श्री पी. वी. राजमन्नार की अध्यक्षता में, चौथे वित्त आयोग की नियुक्ति की गई, जिसने अगस्त, 1965 में भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

आयोग द्वारा की गई मुख्य सिफारिशें निम्न प्रकार हैं—

**करों के वितरण**—चौथे वित्त आयोग ने सिफारिश की कि आय-कर की निबल या शुद्ध प्राप्तियों का 75% भाग राज्यों को दिया जाना चाहिए। राज्यों के बीच विभाज्य कोष (divisible pool) के इस वितरण के आधार के सम्बन्ध में, आयोग का विचार था कि राज्यों के बीच वितरण के सिद्धान्तों के बारे में निश्चितता एवं स्थिरता होनी चाहिए। अतः चतुर्थ आयोग ने अपने पूर्ववर्ती (predecessor) आयोग द्वारा सुझाये गये वितरण के आधार का ही समर्थन किया, अर्थात् 80% जनसंख्या के आधार पर और 20% संग्रह (collection) के आधार पर, जैसी कि तृतीय वित्त आयोग ने सिफारिश की थी। इसका अर्थ यह हुआ कि चौथे आयोग ने आय-कर की शुद्ध प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा तो  $66\frac{2}{3}\%$  से बढ़ाकर 75% कर दिया, किन्तु वितरण के आधार को पूर्ववत् ही बनाये रखा। संघशासित क्षेत्रों का हिस्सा 2.5% तय किया गया।

**संघीय उत्पादन-करों का वितरण**—राज्यों की आवश्यकताओं पर विचार करके चतुर्थ वित्त आयोग ने उत्पादन-करों की प्राप्तियों के बँटवारे की परिधि का उन सभी पदार्थों तक विस्तार कर दिया, जिन पर किसी वर्ष में उक्त कर लगाया तथा उगाहा जाता हो। यही नहीं, आयोग ने इस वितरण में राज्यों का भाग 20% तय किया। आयोग ने कहा कि विगत अवधि में उत्पादन-कर लगाये जाने वाली वस्तुओं की संख्या में तथा उत्पादन-करों की दरों में चूँकि भारी वृद्धि हुई है, अतः उसकी वास्तविक सिफारिश तो उन 35 वस्तुओं की शुद्ध प्राप्तियों की लगभग 30% बैठेगी, जिन पर कि तृतीय वित्त आयोग की रिपोर्ट के आधार पर उत्पादन-शुल्क लगाये गये थे।

राज्यों के बीच वितरण के आधार के सम्बन्ध में, आयोग ने यह सिफारिश की कि विभाज्य कोष में प्रत्येक राज्य के हिस्से का निर्धारण 80% तो जनसंख्या के आधार पर किया जाना चाहिए और 20% आर्थिक व सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर।

## नोट

**बिक्री-कर के बदले में अतिरिक्त उत्पादन-कर**—आयोग ने सुझाव दिया कि वर्ष 1966-67 से 1970-71 तक के लिए बिक्री-कर के बदले में लगाये जाने वाले अतिरिक्त उत्पादन-करों की शुद्ध प्राप्तियों का 1 प्रतिशत भाग संघशासित क्षेत्रों को, 1½ प्रतिशत जम्मू व कश्मीर को तथा 1 प्रतिशत  $\frac{1}{20}$  भाग नागालैंड को दिया जाना चाहिए। शुद्ध प्राप्तियों के शेष में से 32.54 करोड़ रुपये की गारन्टी शुदा रकम अलग रख दी जानी चाहिए, ताकि बिक्री-कर के बदले में राज्यों के बीच उसका वितरण हो सके। शेष धनराशि का वितरण सन् 1961-62 से 1963-64 तक प्रत्येक राज्य में वसूल किये गये बिक्री-कर के अनुपात के आधार पर किया जाना चाहिए।

**आस्ति-कर (Estate Duty)**—द्वितीय आयोग ने आस्ति-कर के वितरण को निर्धारित करने वाले जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं तृतीय आयोग ने समर्थन किया था, चतुर्थ आयोग ने उनमें किसी भी परिवर्तन का सुझाव नहीं दिया और उन्हें ज्यों-का-त्यों आगे बढ़ाया। किन्तु संघ-शासित क्षेत्रों का हिस्सा अवश्य 1 से बढ़ाकर 2 प्रतिशत करने का सुझाव दिया।

**सहायक अनुदान (Grants-in-aid)**—तृतीय वित्त आयोग ने इस बात पर विचार किया था कि जिन अनुदानों की सिफारिश की गई है, वे योजनाओं की जरूरतों को कहाँ तक पूरा कर सकते हैं। इसी दृष्टि से उसने सहायक अनुदानों के सम्बन्ध में जो सिफारिशें कीं, उनके द्वारा राज्यों के राजस्व-घाटे की पूर्ति की ही व्यवस्था नहीं की गई, अपितु तृतीय योजना के 75% राजस्व-घाटे की पूर्ति की ही व्यवस्था की गई। किन्तु चतुर्थ आयोग ने योजना-अनुदानों (plan grants) तथा विशिष्ट उद्देश्य अनुदानों (special purpose grants) को उसमें सम्मिलित करने की सिफारिश नहीं की। आयोग का विचार था कि किसी भी वित्त-आयोग के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह अपने थोड़े से निर्धारित समय में राज्यों की कराधान नीतियों का विश्लेषण करे अथवा उनके किसी भी खर्च के न्यायोचित होने या न होने के सम्बन्ध में अपना निर्णय दे। यह मानना ही चाहिए कि राज्यों को तो स्वयं ही अपने कर्तव्य का पूर्ण भाग होता है, किन्तु फिर भी यदि कोई राज्य अपने राजस्व-बजट को सन्तुलित करने में असमर्थ रहता है और उसे धन की आवश्यकता होती है तो वित्त-आयोग को यथासम्भव उसकी सहायता करनी चाहिए।

**रेलयात्री किराये पर कर के बदले में अनुदान**—रेल यात्री किरायों पर कर के बदले में अनुदानों के सम्बन्ध में, चतुर्थ आयोग ने अपने पूर्ववर्ती आयोग द्वारा सुझाये गये सिद्धान्तों का ही समर्थन किया। आयोग ने राज्यों के हिस्सों का निर्धारण प्रतिशतों के रूप में किया, वास्तविक धनराशियों के रूप में नहीं। आयोग ने प्रत्येक राज्य के हिस्से का निर्धारण करने के लिए, प्रत्येक राज्य के हर एक गेज (gauge) के अन्तर्गत रेलमार्ग की लम्बाई के नवीनतम उपलब्ध आँकड़ों का और सन् 1964 में समाप्त होने वाले तीन वर्षों के यात्री यातायात से होने वाली औसत वार्षिक कमाई का उपयोग किया।

आयोग ने राज्यों के इन विचारों का भी उल्लेख किया कि एक विशिष्ट स्तर पर अनुदानों के निर्धारण ने उनको राजस्व के एक शक्तिशाली एवं लोचदार स्रोत से वंचित कर दिया है और यह कि अनुदान की मात्रा उस अनुपात में बढ़ाई जानी चाहिए जितनी की कर का रेल किराये में विलय होने के पश्चात् से रेल यात्री आय में वृद्धि हुई है।

**आयोग को सौंपे गये अन्य मामले**—आयोग से इस सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट देने को कहा गया था कि जिन पदार्थों एवं उत्पादित माल पर लगे करों का केन्द्र व राज्यों के बीच बँटवारा होता है, उनके उत्पादन, उपभोग या निर्यात पर लगने वाले राज्य बिक्री-कर तथा संघीय उत्पादन-करों की सम्मिलित वाह्यता (Combined incidence) का क्या प्रभाव होगा? यही नहीं, आयोग से इस सम्बन्ध में भी सिफारिश देने को कहा गया कि संघीय उत्पादन-करों के राज्यों के भाग में क्या हेर-फेर किये जाएँ, यदि ऐसे हेर-फेर करने आवश्यक हों तो, विशेष रूप से उस स्थिति में, जबकि राज्यों द्वारा लगाये गये बिक्री-करों की दरें आयोग द्वारा उल्लिखित सीमा से आगे बढ़ गई हों।

इन बातों के सम्बन्ध में आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वाह्यता के सम्मिलित प्रभाव का निर्धारण करने के लिए जिन आँकड़ों की आवश्यकता थी वे पर्याप्त रूप में उपलब्ध नहीं थे। अतः संघीय उत्पादन-करों तथा राज्य बिक्री-करों की सम्मिलित वाह्यता के पता लगाने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अतः आयोग ने ऐसी किसी योजना की सिफारिश नहीं की कि जिनके द्वारा उत्पादन-कर लगने योग्य पदार्थों (exciseable commodities) के बिक्री-करों की दरों की सीमाएँ बाँध दी जाएँ और इसी कारण, किसी ऐसे सूत्र (formula) का सुझाव देने का भी प्रश्न उपस्थित नहीं होता जिसके द्वारा संघीय उत्पादन-करों में राज्यों के अंश के भाग में हेर-फेर किया जाए।

## नोट

**22.8 पाँचवाँ वित्त आयोग (Fifth Finance Commission)**

पाँचवें वित्त आयोग की स्थापना मार्च सन् 1968 में की गई थी। श्री महावीर त्यागी इस आयोग के अध्यक्ष थे। आयोग ने अक्टूबर सन् 1968 में अपनी अन्तरिम रिपोर्ट (interim report) और जुलाई सन् 1969 में अपनी अन्तिम रिपोर्ट (final report) प्रस्तुत की। आयोग को सौंपे गये विचारणीय विषय लगभग वैसे ही थे जैसे कि इससे पूर्व के आयोगों को सौंपे गये थे।

आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई सिफारिशें निम्न प्रकार थीं—

**आय-कर का वितरण**—पाँचवें वित्त आयोग ने आय-कर की शुद्ध प्राप्तियों के राज्यों के प्रतिशत भाग में कोई परिवर्तन नहीं किया और चौथे वित्त आयोग की सिफारिश के समान ही उसे 75% बनाये रखा। किन्तु प्रतिशत पूर्ववत् बने रहने के बावजूद, पाँच वर्षों की अवधि में धन का वास्तविक हस्तान्तरण काफी अधिक होने की सम्भावना थी, क्योंकि संग्रह (collection) के वर्ष के विभाज्य कोष (divisible pool) में अग्रिम-कर संग्रहों (advance tax collection) को भी सम्मिलित कर लिया जाना था। इसी प्रकार, आयकर की शुद्ध या निबल प्राप्तियों का 2.5% भाग संघ-शासित क्षेत्रों (Union Territories) को दिया जाना था। विभाज्य कोष का राज्यों के बीच वितरण चौथे वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार तो 80% जनसंख्या के आधार पर और 20% संग्रह के आधार पर किया गया था। किन्तु पाँचवें वित्त आयोग ने यह सिफारिश की कि यह वितरण 90% तो जनसंख्या के आधार पर और 10% संग्रह के आधार पर किया जाना चाहिए।

**संघीय उत्पादन-शुल्कों का वितरण**—चौथे वित्त आयोग ने यह सिफारिश की थी कि सभी वस्तुओं पर लगाने वाले संघीय उत्पादन-शुल्कों की शुद्ध प्राप्तियों का 20% भाग राज्यों को दिया जाना चाहिए। पाँचवें वित्त आयोग ने राज्यों का भाग तो 20% ही बनाये रखा परन्तु उसने सिफारिश की कि राज्यों के भाग में उन विशिष्ट उत्पादन-शुल्कों की प्राप्तियाँ भी सम्मिलित की जानी चाहिए जो कि अब तक विभाज्य कोष से बाहर रखे जाते थे। चौथे आयोग ने सिफारिश की थी कि 80% वितरण जनसंख्या के आधार पर और 20% राज्यों के सापेक्षिक आर्थिक एवं सामाजिक पिछड़ेपन के आधार पर किया जाना चाहिए। पाँचवें आयोग ने वितरण सम्बन्धी इन्हीं सिफारिशों को जारी रखा, किन्तु पिछड़ेपन के लिए निर्धारित की गई इस 20% राशि में से दो-तिहाई भाग उन राज्यों को दिया जाना था जिनकी प्रति व्यक्ति आय सभी राज्यों की औसत आय से कम थी और शेष एक-तिहाई भाग सभी राज्यों में पिछड़ेपन के एक एकीकृत माप के अनुसार बाँटा जाना था। इस एकीकृत माप का निर्धारण करते समय जिन बातों को दृष्टिगत रखा जाना था, वे हैं—अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या, प्रति एक लाख की जनसंख्या पर कारखानों के मजदूरों की संख्या, प्रति किसान सिंचित क्षेत्र की मात्रा, प्रति 100 वर्ग किलोमीटर में रेलों व सड़कों की लम्बाई, स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या और प्रति हजार जनसंख्या के पीछे अस्पताल के बिस्तरों की संख्या।



**टास्क** पाँचवें वित्त आयोग की स्थापना कब और किसकी अध्यक्षता में हुई?

**आस्ति-कर (Estate duty)**—पाँचवें वित्त आयोग ने राज्यों के बीच आस्ति-कर के वितरण का निर्धारण करने वाले प्रचलित सिद्धान्तों में किसी भी परिवर्तन का प्रस्ताव नहीं किया। वितरण का प्रचलित सिद्धान्त यह था कि अचल सम्पत्ति से प्राप्त होने वाली धनराशि का एक भाग राज्यों में सम्पदा की स्थिति के अनुसार, अर्थात् प्रत्येक राज्य में स्थिति सम्पत्ति के मूल्य के अनुपात में बाँटा जाना चाहिए। शेष धनराशि का वितरण राज्यों में उनकी जनसंख्या के अनुपात में कर दिया जाना चाहिए। द्वितीय वित्त आयोग ने यही सिफारिश की थी और तृतीय, चतुर्थ व पाँचवें वित्त आयोग ने इन्हीं सिफारिशों को बनाये रखा। किन्तु आयोग ने यह सुझाव अवश्य दिया, कि संघ-शासित क्षेत्रों को मिलने वाला भाग, जो कि शुद्ध प्राप्तियों का 2% था, बढ़ाकर 3% कर दिया जाना चाहिए और शेष भाग को राज्यों में वितरण के लिए विभाज्य कोष में डाल देना चाहिए।

**रेल यात्री किरायों पर कर के बदले में अनुदान**—आयोग ने रेल यात्री किरायों पर कर के बदले में राज्यों को दिये जाने वाले अनुदानों का निर्धारण करने वाले सिद्धान्तों में कोई परिवर्तन नहीं किया और वितरण की उसी प्रचलित

## नोट

योजना को बनाये रखा, जिसकी द्वितीय वित्त आयोग ने सिफारिश की थी और बाद में तृतीय और चतुर्थ आयोगों ने जिसका समर्थन किया था। किन्तु आयोग ने नवीनतम उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर प्रत्येक राज्य के प्रतिशत भाग को निश्चित कर दिया।

**सहायक अनुदान (Grants-in-aid)**—अपने पूर्ववर्ती आयोग के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए, आयोग ने 10 राज्यों को पाँच वर्षों की अवधि के लिए कुल 637.85 करोड़ रु. देने की सिफारिश की। सहायक अनुदानों की वार्षिक अदायगी, जो कि सन् 1969-79 में 152.73 करोड़ रु. थी धीरे-धीरे घटकर सन् 1973-74 में 102.41 करोड़ रु. रह जायेगी।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

**बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

6. द्वितीय वित्त आयोग की नियुक्ति कब की गई?
 

(अ) जून, 1956	(ब) दिसंबर, 1960
(स) मई, 1964	(द) अक्टूबर, 1968
7. तृतीय वित्त आयोग की स्थापना किसकी अध्यक्षता में हुई?
 

(अ) श्री के. सन्थानम	(ब) श्री ए.के. चन्दा
(स) श्री पी. वी. राजमन्नार	(द) श्री महावीर त्यागी।
8. श्री पी. वी. राजमन्नार की अध्यक्षता में कौन-से वित्त आयोग की स्थापना हुई?
 

(अ) प्रथम	(ब) द्वितीय
(स) तृतीय	(द) चतुर्थ।
9. पाँचवें वित्त आयोग की स्थापना कब हुई?
 

(अ) मार्च, 1968	(ब) जून, 1956
(स) दिसंबर, 1960	(द) मई, 1964।
10. पाँचवें वित्त आयोग की अध्यक्षता किसने की?
 

(अ) श्री के. सन्थानम	(ब) श्री ए.के. चन्दा
(स) श्री महावीर त्यागी	(द) श्री पी.वी. राजमन्नार।

### 22.9 सारांश (Summary)

- प्रथम वित्त आयोग सन् 1952 में श्री के. सी. नियोगी की अध्यक्षता में नियुक्त किया गया। आयोग का विचार था कि राज्यों की आय में ठोस वृद्धि करने की भारी आवश्यकता है।
- सभी आयोगों को सौंपा जाने वाला सबसे पहला कार्य यह था कि वे संघ और राज्यों के बीच उन करों की निबल प्राप्तियों के वितरण का निर्धारण करें जोकि उनके बीच बाँटे जाने हैं अथवा बाँटे जाने चाहिए। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, ये कर हैं—आय-कर तथा उत्पादन-शुल्क।
- धारा 270 के अनुसार आय-कर की कुल निबल प्राप्तियों में से संघ-शासित क्षेत्रों को देय भाग तथा संघीय रोजगारों के सम्बन्ध में देय-कर घटा दिये जाते हैं। यह महालेखा परीक्षक (Auditor-general) का काम होता है कि वह संघीय रोजगारों के सम्बन्ध में देय-करों का हिसाब लगाये और निबल प्राप्तियों की घोषणा करे। नियोगी आयोग ने निबल या शुद्ध प्राप्तियों का  $2\frac{1}{4}$  भाग वर्ग 'ग' (Part C) के राज्यों के लिए निर्धारित किया और उसने सुझाव दिया कि शेष 55 प्रतिशत भाग राज्यों को दिया जाए 50 प्रतिशत नहीं, जैसा कि पहले दिया जाता था।
- जून 1956 में श्री के. सन्थानम की अध्यक्षता में द्वितीय वित्त आयोग की नियुक्ति की गई, जिसने नवम्बर 1956 में अपनी अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। अन्तरिम रिपोर्ट (interim report) में केवल कुछ ऐसे



**नोट**

न्यूनतम परिवर्तनों का सुझाव दिया गया, जो राज्यों का पुनर्गठन होने के कारण तथा जम्मू व कश्मीर का भारत के साथ वित्तीय एकीकरण होने के कारण आवश्यक हो गए थे। सितम्बर 1957 में आयोग ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट (final report) प्रस्तुत की।

- दिसम्बर, 1960 में श्री ए. के. चन्दा की अध्यक्षता में तृतीय वित्त आयोग की स्थापना की गई। आयोग ने दिसम्बर, 1962 में भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।
- मई, 1964 में श्री पी. वी. राजमन्नार की अध्यक्षता में, चौथे वित्त आयोग की नियुक्ति की गई, जिसने अगस्त, 1965 में भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।
- पाँचवें वित्त आयोग की स्थापना मार्च सन् 1968 में की गई थी। श्री महावीर त्यागी इस आयोग के अध्यक्ष थे। आयोग ने अक्टूबर सन् 1968 में अपनी अन्तरिम रिपोर्ट (interim report) और जुलाई सन् 1969 में अपनी अन्तिम रिपोर्ट (final report) प्रस्तुत की। आयोग को सौंपे गये विचारणीय विषय लगभग वैसे ही थे जैसे कि इससे पूर्व के आयोगों को सौंपे गये थे।

**22.10 शब्दकोश (Keywords)**

- उपभोग (Consumption)—वस्तुओं का उपयोग
- संग्रह (Collection)—इकट्ठा करना।

**22.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)**

1. पाँचवें वित्त आयोग द्वारा प्रस्तुत की गई सिफारिशों को लिखें।
2. तृतीय वित्त आयोग का वर्णन करें।
3. द्वितीय वित्त आयोग की स्थापना कब और किसकी अध्यक्षता में हुई? इसमें करों के वितरण का क्या प्रावधान था?
4. प्रथम वित्त आयोग की स्थापना किन-किन बातों को ध्यान में रखकर की गई?
5. आयोग के क्या कार्य हैं?
6. चतुर्थ वित्त आयोग में संघीय उत्पादन-करों के वितरण को स्पष्ट करें।

**उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)**

- |                |               |        |        |
|----------------|---------------|--------|--------|
| 1. संसद        | 2. राष्ट्रपति | 3. 272 | 4. 50% |
| 5. अधिक अनुदान | 6. (अ)        | 7. (ब) | 8. (द) |
| 9. (अ)         | 10. (स)।      |        |        |

**22.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)**

पुस्तकें

1. लोक वित्त—न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक वित्त—एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
3. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस—सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
4. पब्लिक फाइनेंस—सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
5. पब्लिक फाइनेंस—नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## **इकाई-23: बारहवें एवं तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशें**

### **(Implementation of XIIth and XIIIth Finance Commission)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

23.1 बारहवें वित्त आयोग की सिफारिशें (Implementation of XIIth Finance Commission)

23.2 तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशें (Implementation of XIIIth Finance Commission)

23.3 सारांश (Summary)

23.4 शब्दकोश (Keywords)

23.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

23.6 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- बारहवें वित्त आयोग की सिफारिशों को समझने में।
- तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों को जानने हेतु।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

बारहवें वित्त आयोग की सिफारिशों में लोक वित्त की पुनर्संरचना संबंधित योजना, केंद्रीय कर राजस्वों की हिस्सेदारी तथा स्थानीय निकायों की भूमिका को सम्मिलित किया गया। तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों में केन्द्र और राज्यों के वित्त साधन, वस्तु और सेवा कर, राजकोषीय समेकन हेतु संशोधित रूपरेखा आदि को सम्मिलित किया गया। इसके साथ-साथ स्थानीय निकाय, आपदा राहत, प्राथमिक शिक्षा तथा पर्यावरण आदि को भी ध्यान में रखा गया।

#### **23.1 बारहवें वित्त आयोग की सिफारिशें**

##### **(Implementation of XIIth Finance Commission)**

#### **लोक वित्त की पुनर्संरचना से सम्बन्धित योजना**

1. वर्ष 2009-10 तक, केन्द्र और राज्यों का सम्मिलित कर-जीडीपी अनुपात 17.6 प्रतिशत तक, प्राथमिक व्यय जीडीपी के 23 प्रतिशत तक और पूंजी व्यय जीडीपी के लगभग 7 प्रतिशत तक बढ़ाया जाए।

## नोट

2. परम्परागत विनिमय दरों पर मापित विदेशी ऋण सहित सम्मिलित ऋण-जीडीपी अनुपात न्यूनतम स्तर पर वर्ष 2009-10 के अन्त तक 75 प्रतिशत नीचे लाया जाएगा।
3. आगे उधार देने की व्यवस्था को आने वाले समय में समाप्त किया जाए तथा ऋण-जीडीपी अनुपात सम्बन्धी केन्द्र और राज्यों के दीर्घकालिक लक्ष्य प्रत्येक के लिए 28 प्रतिशत होना चाहिए।
4. केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्ध में जीडीपी अनुपात से सम्बन्धित राजकोषीय घाटे का लक्ष्य प्रत्येक के लिए 3 प्रतिशत निर्धारित किया जाए।
5. राजस्व प्राप्तियों के सापेक्ष केन्द्र का ब्याज भुगतान वर्ष 2009-10 तक लगभग 28 प्रतिशत तक होना चाहिए। राज्यों के मामले में, राजस्व प्राप्तियों के सापेक्ष ब्याज भुगतान के स्तर में वर्ष 2009-10 तक 15 प्रतिशत की गिरावट आनी चाहिए।
6. केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्ध में उनके सम्मिलित तथा वैयक्तिक लेखों के सम्बन्ध में जीडीपी का सापेक्ष राजस्व घाटा वर्ष 2008-09 तक शून्य स्तर तक नीचे लाया जाए।
7. राज्यों को भर्ती तथा मजदूरी नीति का पालन इस प्रकार करनी चाहिए कि राजस्व व्यय के सापेक्ष कुल वेतन बिल ब्याज भुगतान तथा पेंशन को घटाकर 35 प्रतिशत से अधिक न हो।
8. प्रत्येक राज्य एक राजकोषीय दायित्व विधान अधिनियमित करे जो कम-से-कम निम्नलिखित की व्यवस्था करे-
  - (क) वर्ष 2008-09 तक राजस्व घाटे को समाप्त करना;
  - (ख) राजकोषीय घाटे को जीएसडीपी के 3 प्रतिशत तक अथवा इसके समकक्ष घटाया जाए जिसे राजस्व प्राप्तियों के सम्बन्ध में ब्याज भुगतान के अनुपात के रूप में परिभाषित किया गया है;
  - (ग) राजस्व तथा राजकोषीय घाटों के वार्षिक गिरावट लक्ष्यों को स्पष्ट करना;
  - (घ) राज्य अर्थव्यवस्था तथा सम्बन्धित राजकोषीय रणनीति के सम्बन्ध में सम्भावनाओं को दर्शाने वाला वार्षिक विवरण प्रकाशित करना; और
  - (ङ) बजट के साथ विशेष विवरणों का प्रकाशन जिसमें सरकारी, सार्वजनिक तथा सहायता प्राप्त संस्थानों के कर्मचारियों की संख्या तथा उनके वेतन का ब्योरा दिया हो।



नोट्स

केन्द्र तथा राज्यों के संबंध में उनके सम्मिलित तथा वैयक्तिक लेखों के संबंध में जीडीपी का सापेक्ष राजस्व घाटा वर्ष 2008-09 तक शून्य स्तर तक नीचे लाने का प्रावधान था।

## केन्द्रीय कर राजस्वों की हिस्सेदारी

9. साझा योग्य केन्द्रीय करों की निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 30.5 प्रतिशत होगा। इस प्रयोजनार्थ, बिक्री कर के बदले अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों को केन्द्रीय करों के सामान्य पूल के एक भाग के रूप में माना जाता है। यदि कर किराया प्रबन्ध को समाप्त किया जाता है तथा राज्यों को इन वस्तुओं पर बिना किसी निर्धारित सीमा के बिक्री कर (अथवा वैट) लगाने की अनुमति प्रदान की जाती है तो साझा योग्य केन्द्रीय करों की निबल प्राप्तियों में राज्यों का भाग 29.5 प्रतिशत तक घट जाएगा।
10. यदि अठासीवें संविधान संशोधन को अधिसूचित करने के बाद सेवा कर के सम्बन्ध में कोई विधान अधिनियमित किया जाता है तो यह सुनिश्चित किया जाए कि इस विधान के अन्तर्गत किसी राज्य को प्राप्त राजस्व यदि सम्पूर्ण सेवा कर प्राप्तियाँ साझा योग्य पूल का भाग होती तो इसके अर्जित भाग की अपेक्षा कम होती।
11. राज्यों को समग्र अन्तरणों की निर्देशित राशि केन्द्रीय सकल राजस्व प्राप्तियों का 38 प्रतिशत निर्धारित की जा सकती है।

12. राज्यों को, नीचे सारणी में यथाविनिर्णित भाग में से वर्ष 2005-06 से 2009-10 की अवधि के दौरान प्रत्येक पाँच वित्तीय वर्षों में सभी सांझा योग्य केन्द्रीय शुल्कों की निबल प्राप्तियाँ दी जाएँगी।

नोट

राज्य	हिस्सा ( सेवाकर को छोड़कर सभी साझा योग्य कर ) ( प्रतिशत )	सेवा कर का भाग ( प्रतिशत )
1	2	3
आन्ध्र प्रदेश	7.356	7.453
अरुणाचल प्रदेश	0.288	0.292
असम	3.235	3.277
बिहार	11.028	11.173
छत्तीसगढ़	2.654	2.689
गोआ	0.259	0.262
गुजरात	3.569	3.616
हरियाणा	1.075	1.089
हिमाचल प्रदेश	0.522	0.529
जम्मू और कश्मीर	1.297	शून्य
झारखंड	3.361	3.405
कर्नाटक	4.459	4.518
केरल	2.665	2.700
मध्य प्रदेश	6.711	6.799
महाराष्ट्र	4.997	5.063
मणिपुर	0.362	0.367
मेघालय	0.371	0.376
मिजोरम	0.239	0.242
नागालैंड	0.263	0.266
उड़ीसा	5.161	5.229
पंजाब	1.299	1.316
राजस्थान	5.609	5.683
सिक्किम	0.227	0.230
तमिलनाडु	5.305	5.374
त्रिपुरा	0.428	0.433
उत्तर प्रदेश	19.264	19.517
उत्तरांचल	0.939	0.952
पश्चिम बंगाल	7.057	7.150
<b>सभी राज्य</b>	<b>100.000</b>	<b>100.000</b>

## नोट

### स्थानीय निकाय

13. सभी राज्यों को वर्ष 2005-10 की समयावधि के लिए पंचायती राज संस्थानों हेतु 20000 करोड़ रुपए और शहरी स्थानीय निकायों के लिए 5000 करोड़ रुपए का कुल अनुदान पारस्परिक वितरण सहित प्रदान किया जाए।
14. पंचायतीराज संस्थाओं को जलापूर्ति तथा स्वच्छता से सम्बन्धित परिसम्पत्तियों के अधिग्रहण के लिए तथा मरम्मत। जीर्णोद्धार और साथ ही ओएंडएम लागतों पर अनुदानों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। तथापि, पंचायती राज संस्थाएँ प्रयोक्ता प्रभारों के रूप में आवर्ती लागतों के कम से कम 50 प्रतिशत भाग की वसूली करें।
15. पंचायतों के लिए आवंटित अनुदानों में से, जलापूर्ति तथा स्वच्छता की ओएंडएम लागतों पर व्यय को प्राथमिकता दी जाए। इससे पंचायतों के लिए योजनाओं का अधिग्रहण करने तथा उन्हें संचालित करने का कार्य सुगम हो जाएगा।
16. शहरी स्थानीय निकायों हेतु प्रत्येक राज्य को उपलब्ध कराए गए कम से कम 50 प्रतिशत अनुदान को सार्वजनिक निजी भागीदारी के माध्यम से ठोस अपशिष्ट प्रबन्ध योजना के लिए निर्धारित किया जाए। नगरपालिकाएँ ठोस अपशिष्ट के संग्रहण, पृथक्करण तथा परिवहन पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। इन गतिविधियों की लागत, भले ही वे देश के भीतर पूरी की जाएँ अथवा उनकी आउटसेर्सिंग हो, अनुदानों से पूरी की जाएगी।
17. ग्रामीण इलाकों में जलापूर्ति तथा स्वच्छता की और शहरी इलाकों में ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन स्कीमों पर ओएंडएम लागतों पर किए जाने वाले व्यय के अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं तथा शहरी स्थानीय निकाय आवंटित अनुदानों में से आँकड़ा आधार तैयार कराने पर होने वाले व्यय तथा जहाँ सम्भव हो, वहाँ आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा प्रबन्ध प्रणालियों के उपयोग से लेखों के रख-रखाव को उच्च प्राथमिकता दें। शहरी क्षेत्रों में सम्पत्तियों के मानचित्रण के लिए जीआईएस (भौगोलिक सूचना प्रणाली) जैसी कुछ आधुनिक विधियों तथा वित्तीय प्रबन्धन की आधुनिक प्रणाली अपनाने हेतु कम्प्यूटरीकरण के उपयोग से ठोस स्थानीय सरकारों के गठन का मार्ग प्रशस्त होगा और 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन की भावना की पूर्ति होगी।
18. राज्य हमारे द्वारा उल्लिखित सिद्धान्तों के आधार पर प्रत्येक स्थानीय निकाय की आवश्यकता का मूल्यांकन करेंगी और तदनुसार हमारे द्वारा संस्तुत कुल आवंटन में से निधियाँ निर्धारित करेंगी।
19. संविधान की पाँचवीं तथा छठी अनुसूची के अन्तर्गत सामान्य तथा शामिल न किए गए क्षेत्रों के लिए पृथक् से अनुदानों की सिफारिश की गयी है। ऐसे क्षेत्रों वाले राज्य हमारे द्वारा संस्तुत अनुदानों को बाह्य क्षेत्रों सहित सभी स्थानीय निकायों को उपयुक्त तरीके से आवंटित कर सकते हैं।
20. केन्द्र सरकार, इन अनुदानों को जारी करने अथवा उपयोग हेतु हमारे द्वारा निर्धारित शर्त के अलावा और कोई ऐसी शर्त नहीं।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. वर्ष 2009-10 तक केंद्र और राज्यों का सम्मिलित कर-जीडीपी अनुपात ..... प्रतिशत तक बढ़ाने की सिफारिश की गयी।
2. राजस्व प्राप्तियों के सापेक्ष केंद्र का ब्याज भुगतान वर्ष 2009-10 तक लगभग ..... प्रतिशत तक होना चाहिए।
3. साझा योग्य केंद्रीय करों की निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा ..... प्रतिशत होगा।
4. राज्यों को समग्र अंतरणों की निर्देशित राशि ..... सकल राजस्व प्राप्तियों का 38 प्रतिशत निर्धारित की जा सकती है।

नोट

5. संविधान की पाँचवीं तथा छठी अनुसूची के अंतर्गत सामान्य तथा शामिल न किए गए क्षेत्रों के लिए पृथक् से अनुदानों की ..... की गयी है।

## 23.2 तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशें (Implementation of XIIIth Finance Commission)

### केन्द्र और राज्यों के वित्त साधन

1. वित्त मंत्रालय यह सुनिश्चित करे कि वित्तीय लेखाएं, संगत शीर्षों के अनुसार, उपकरणों और अधिभारों के अन्तर्गत संग्रहणों को पूर्णतः प्रदर्शित करे ताकि किसी वर्ष राज्यों को जारी की गयी राशियों के मध्य और उस सम्बद्ध वर्ष के लिए वित्त आयोग द्वारा संस्तुत निवल केन्द्रीय करों में सम्बद्ध प्रतिशत भागीदारी में कोई असंगतियाँ न हों।
2. राज्यों को समयबद्ध तरीके से विद्युत क्षेत्र में होने वाले नुकसान की समस्या का समाधान करने की आवश्यकता है।
3. केन्द्रीय प्रायोजित योजनाओं की संख्या घटाने और फार्मूला आधारित आयोजना अन्तरणों की प्रधानता बहाल करने के प्रयास किए जाएँ।
4. 2008-09 और 2009-10 के बढ़ते राजकोषीय घाटे से बाहर निकलने की एक सुविचारित नीति केन्द्र की मुख्य कार्यसूची हो।

### वस्तु और सेवा कर ( जीएसटी )

5. केन्द्र और राज्यों दोनों जीएसटी मॉडल को कार्यान्वित करने हेतु एक “बड़ा समझौता” निष्पादित करे। इस बड़े समझौते में छह कारक मौजूद हों—
  - (i) जीएसटी-मॉडल का डिजाइन पैरा 5.25 से 5.35 में सुझाया गया है।
  - (ii) इसको संचालित करने के तौर-तरीकों को पैरा 5.36 से 5.41 में रेखांकित किया गया है।
  - (iii) केन्द्र और राज्यों के मध्य प्रस्तावित समझौता परिवर्तनों हेतु आकस्मिकताओं के साथ पैरा 5.49 से 5.51 में उपलब्ध है।
  - (iv) अनुपालन न करने की स्थिति में हतोत्साहनों को पैरा 5.52 में वर्णित किया गया है।
  - (v) कार्यान्वयन अनुसूची पैरा 5.57 से 5.59 में वर्णित है।
  - (vi) क्षतिपूर्ति दावा करने की प्रक्रिया पैरा 5.60 में दी गयी है।
6. किसी भी अपनाए जाने वाले जीएसटी मॉडल में बड़े समझौते में निहित सभी कारक हों। इस बड़े समझौते के कार्यान्वयन को प्रोत्साहन देने हेतु यह आयोग 50,000 करोड़ रुपए के अनुदान की स्वीकृति प्रदान करने की सिफारिश करता है। इस अनुदान का उपयोग बड़े समझौते के अनुरूप 2010-11 और 2014-15 के मध्य जीएस टी के कार्यान्वयन के कारण राजस्व हानियों के लिए राज्य सरकारों को प्रतिपूर्ति दावों की पूर्ति हेतु किया जाएगा। इस पूल में अव्ययित शोध राशियों को अंतरण फार्मूले के अनुसार सभी राज्यों में 1 जनवरी, 2015 को वितरित किया जाएगा।
7. राज्य वित्त मंत्रियों की सशक्त समिति (ईसी) को सांविधिक परिषद् में परिवर्तित किया जाए। सचिव, राजस्व विभाग, भारत सरकार, ईसी सचिव तथा लोक वित्त में अनुभव प्राप्त किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति से बनी तीन सदस्यीय क्षतिपूर्ति द्वारा की गयी सिफारिश के आधार पर यह क्षतिपूर्ति तिमाही किस्तों में संवितरित की जाए।
8. यदि किसी स्थिति में, जब बड़े समझौते के सभी कारकों के कार्यान्वयन के सम्बन्ध में सर्वसम्मति प्राप्त नहीं हो पाती और अन्तिम रूप से अपनाया गया जीएसटी तंत्र हमारे द्वारा सुझाए गए जीएसटी मॉडल से भिन्न हो, तो यह आयोग सिफारिश करता है कि 50,000 करोड़ रुपए की यह राशि संवितरित नहीं की जाएगी।

## नोट

9. राज्यों को माल वाहनों के परिवहन समय को घटाने के उपाय करने चाहिए जो पड़ोसी राज्यों की मिली पुलिस चौकियों द्वारा उनकी सीमाओं में प्रवेश कर रहे हैं और राज्य परिवहन हेतु इलेक्ट्रॉनिक रूप में जारी प्रवेश पक्ष जैसे प्रयोक्ता अनुकूल विकल्पों को अपनाए।

## केन्द्र सरकार के वित्त साधन

10. विनिवेश आवश्यकताओं से प्राप्तियों के उपयोग के सम्बन्ध नीति को उदार बनाने की आवश्यकता है जिसमें महत्वपूर्ण ढाँचागत क्षेत्र और पर्यावरण पर पूँजी व्यय को भी शामिल किया जाए।
11. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के जोत रिकार्डों को अच्छी तरह रखने की आवश्यकता है ताकि इस बात का सुनिश्चय हो कि इस दुर्लभ संसाधन को उत्पादक उपयोग हेतु रखा जाए, अथवा अन्य सार्वजनिक परियोजनाओं हेतु उपलब्ध कराया जाए, अथवा अन्यथा विक्रय किया जाए।



क्या आप जानते हैं समझौते के अनुरूप 2010-11 और 2014-15 के मध्य जीएसटी के कार्यान्वयन के कारण राजस्व हानियों के लिए राज्य सरकारों को प्रतिपूर्ति दावों की पूर्ति हेतु किया जाएगा।

## राज्य के वित्त साधन

12. विशेष श्रेणी वाले राज्यों की आयोजना-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आयोजना सहायता को दूसरी दिशा में मोड़ने की प्रथा समाप्त की जाए।
13. सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के सन्दर्भ में—
  - (i) सभी राज्यों को यह सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए कि उनके सभी सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) के लेखों की निकासी हो।
  - (ii) राज्य पीएसयू लेखों के बकाया निपटान हेतु नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक द्वारा उपलब्ध करायी गयी लोचशीलता का उपयोग करें।
  - (iii) सभी राज्यों को मार्च, 2011 तक सभी रूग्ण पीएसयू को बन्द करने का खाका तैयार करने की आवश्यकता है। पीएसयू के विनिवेश तथा निजीकरण पर विचार किया जाए और उस पर त्वरित कार्रवाई की जाए।
  - (iv) कारपोरेट कार्य मंत्रालय अपने सांविधिक दायित्वों के साथ राज्य तथा केन्द्र के पीएसयू की निकटता से मॉनीटरिंग तथा अनुपालन करें।
  - (v) विनिवेश/निजीकरण तथा प्रक्रिया पर निगरानी रखने हेतु एक उपयुक्त रणनीति तैयार करने हेतु कार्यबल का गठन किया जाए। पुनर्संरचना सम्बन्धी स्थायी समिति के मुख्य सचिव की अध्यक्षता में गठन किया जाए ताकि कार्यबल की सिफारिशों को लागू किया जाए। एक स्वतंत्र तकनीकी सचिवालय की भी स्थापना की जाए जो राज्यों के वित्त विभागों को पुनर्संरचना/विनिवेश प्रस्तावों पर सलाह दे।
14. विद्युत क्षेत्र के सम्बन्ध में—
  - (i) प्रेषण और वितरण नुकसान में कमी लाने के प्रयास मीटरिंग, फीडर सेपरेशन, हाईवोल्टेज वितरण प्रणालियों की शुरुआत, वितरण ट्रांसफार्मरों की मीटरिंग तथा चोरी रोकने हेतु कठोर उपायों के जरिए किए जाएँ। कार्यक्षमता में सुधार लाने के लिए वितरण फ्रेंचाइजिंग तथा विद्युत सेवा कम्पनी (ईएससीओ) आधारित संरचनाओं पर विचार किया जाए।
  - (ii) अव्यक्त आवश्यकताओं को प्राथमिकता आधार पर पूरा किया जाए और प्रेषण तक मुक्त पहुँच को सुदृढ़ किया जाए। राज्य लोड प्रेषण केन्द्रों के जरिए अभिशासन में सुधार लाया जाए और इस कार्य को अन्ततः स्वायत्त बनाया जाए।

## नोट

- (iii) पन परियोजनाओं के पूर्ण होने में देरी से बचने के लिए उपयुक्त प्रणालियों को सामने लाया जाए।
- (iv) तापीय विद्युत संयंत्रों को कोयले के स्रोतों से सुदूर स्थानों में स्थापित करने के बजाय, राज्य कोयला समृद्ध राज्यों में अथवा उसके निकट संयुक्त उपक्रमों की स्थापना के बारे में विचार करें।
- (v) केस 1 बोली प्रक्रिया को चरम माँग अवधियों के दौरान उच्च लागत खरीदों की अनिश्चतता से बचने हेतु उपयोग में लाया जाए।
- (vi) विनियामक संस्थाओं को क्षमता निर्माण, उपभोक्ता शिक्षा और मल्टी ईयर टैरिफ (एमवाईटी) जैसे टैरिफ सुधारों के माध्यम से सुदृढ़ किया जाए। कारपोरेट अभिशासन की सर्वोच्च प्रक्रियाओं को विद्युत क्षेत्र में लागू किया जाए।
15. नई पेंशन प्रणाली की दिशा में आगे बढ़ने को यथासम्भव पूरा किया जाए।
16. बड़ी मात्रा में नकदी शेष वाले राज्यों को नए सिरे से उधार लेने से पहले इनके उपयोग करने की दिशा में प्रयास करने चाहिए।
17. लेखांकन सुधारों के सम्बन्ध में—
- (i) भारत सरकार को सभी राज्यों में बजटीय वर्गीकरण कोड में एक-साम्यता बनाए रखने में सुनिश्चित करना चाहिए। राज्यों के वित्त लेखों से सम्बन्ध परिशिष्टों की सूची को मानकीकृत बनाए जाने की आवश्यकता है।
- (ii) लोक लेखे तथा समेकित निधि के मध्य दुतरफा प्रविष्टियों तथा लेन-देनों का सारांश का विवरण राज्यों के वित्त लेखों में पृथक् अनुबंध के रूप में उपलब्ध कराया जाए।
- (iii) राज्यों के समेकित निधि से बाहर निधियों के सृजन के जरिए सार्वजनिक व्यय को हतोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है। ऐसी निधियों तथा सिविल जमा राशियों के जरिए व्यय को सी एंड एजी के लेखा परीक्षा के क्षेत्राधिकार में लाया जाए।
- (iv) निम्नलिखित विवरणों को राज्यों के वित्त लेखों के साथ उपलब्ध कराने की आवश्यकता है—
- (क) सभी सब्सिडियों के सम्बन्ध में व्यापक आँकड़ें।
- (ख) प्रत्येक स्तर पर कर्मचारियों की संख्या से सम्बद्ध समेकित सूचना जिसमें वेतन पर वचनबद्धता भी शामिल हो। इस विवरण में कर्मचारियों सम्बन्धी सूचना और उनका वेतन भी शामिल हो जहाँ ऐसा व्यय अनुदानों के रूप में दिखाया गया हो अथवा अन्य व्यय के तहत दर्ज हो।
- (ग) अनुरक्षण व्यय का विवरण।

## केन्द्र के कर राजस्वों की भागीदारी

18. भागीदारी योग्य केन्द्रीय करों की निवल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 2010-11 से 2014-15 के प्रत्येक वित्तीय वर्ष में 32 प्रतिशत होगा। उत्पाद (विशेष महत्त्व की वस्तुओं) के अतिरिक्त शुल्क अधिनियम, 1957 के अन्तर्गत, सभी वस्तुओं को 1 मार्च, 2006 से शुल्क भुगतान से छूट प्राप्त है। इसके परिणामस्वरूप, केन्द्र ने चीनी तथा तम्बाकू-उत्पादों पर उत्पाद के आधारिक शुल्कों को समायोजित किया था। इन गतिविधियों के प्रकाश में, राज्यों का भागीदारी योग्य केन्द्रीय करों की निवल प्राप्तियों में हिस्सा 32 प्रतिशत पर अपरिवर्तित बना रहेगा, भले ही राज्य इन वस्तुओं पर बिक्री कर अथवा मूल्यवर्धित कर (वैट) लगाते हों।
19. संविधान के 88वें संशोधन की अधिसूचना की स्थिति में और ऐसी अधिसूचना के फलस्वरूप किसी विधान के अधिनियम पर, इस बात का सुनिश्चय किया जाए कि इस विधान के तहत राज्य को उचित राजस्व उस भाग से कम नहीं होना चाहिए जो इस राज्य को उपचित हो, भले ही सम्पूर्ण सेवा कर केन्द्रीय करों के भागीदारी योग्य पूल का भाग रहा है।



**नोट**

20. केन्द्र सरकार उपकरों/और अधिभारों को लगाने की समीक्षा करे ताकि उनकी हिस्सेदारी अपने सकल कर राजस्व में घटे।
21. राज्यों को राजस्व लेखे में समग्र अन्तरणों से सम्बद्ध निर्देशात्मक उच्चतम सीमा को केन्द्र के सकल राजस्व प्राप्तियों के 39.5 प्रतिशत पर निर्धारित किया जाए।
22. वर्ष 2010-11 से 2014.15 तक के प्रत्येक वित्तीय वर्ष में समस्त भागीदारी योग्य केन्द्रीय करों की निवल प्राप्तियों में प्रत्येक राज्य का हिस्सा सारणी में 23.1 में यथाविनिर्दिष्ट अनुसार होगा।

**राजकोषीय समेकन हेतु संशोधित रूपरेखा**

23. केन्द्र के राजस्व घाटे को उत्तरोत्तर रूप में घटाए जाने और समाप्त किए जाने की आवश्यकता है जिससे आगे चलकर 2014-15 तक राजस्व अधिशेष की स्थिति उभरकर सामने आए।
24. केन्द्र और राज्यों के संयुक्त ऋण के सम्बन्ध में जीडीपी का 68 प्रतिशत लक्ष्य 2014-15 तक प्राप्त किया जाए। राजकोषीय समेकन के मार्ग में केन्द्र के वर्धित ऋण स्टॉक में 2014-15 तक जीडीपी के 45 प्रतिशत तक और राज्यों के सम्बन्ध में 2014-15 तक जीडीपी में 25 प्रतिशत तक सतत् कमी लाना है।

**सारणी 23.1 : राज्यों की पारस्परिक हिस्सेदारी**

राज्य	सेवा कर को छोड़कर समस्त भागीदारी योग्य करों का हिस्सा ( प्रतिशत )	सेवा कर का हिस्सा ( प्रतिशत )
आंध्र प्रदेश	6.937	7.047
अरुणाचल प्रदेश	0.328	0.332
असम	3.628	3.685
बिहार	10.917	11.089
छत्तीसगढ़	2.470	2.509
गोवा	0.266	0.270
गुजरात	3.041	3.089
हरियाणा	1.048	1.064
हिमाचल प्रदेश	0.781	0.793
जम्मू और कश्मीर	1.551	शून्य
झारखण्ड	2.802	2.846
कर्नाटक	4.328	4.397
केरला	2.341	2.378
मध्य प्रदेश	7.120	7.232
महाराष्ट्र	5.199	5.281
मणिपुर	0.451	0.458
मेघालय	0.408	0.415
मिजोरम	0.269	0.273
नागालैंड	0.314	0.318
उड़ीसा	4.779	4.855
पंजाब	1.389	1.411
राजस्थान	5.853	5.945

नोट

सिक्किम	0.239	0.243
तमिलनाडु	4.969	5.047
त्रिपुरा	0.511	0.519
उत्तर प्रदेश	19.677	19.987
उत्तराखण्ड	1.120	1.138
पश्चिम बंगाल	7.264	7.379
<b>सभी राज्य</b>	<b>100.00</b>	<b>100.00</b>

25. मध्यावधि राजकोषीय कार्ययोजना (एमटीएफपी) को संशोधित किया जाए और आशय विवरण की अपेक्षा वचनबद्ध विवरण तैयार किया जाए। एमटीएफपी और वार्षिक बजट प्रक्रिया द्वारा उपलब्ध कराए गए बहुवर्षीय फ्रेमवर्क के मध्य ठोस एकीकरण की अपेक्षा है।
26. निम्नलिखित प्रकटन वार्षिक केन्द्रीय बजट/एमटी-एफपी के साथ किया जाए—
- आयोजना-भिन्न तथा आयोजना अनुदानों की समग्र श्रेणी के अन्तर्गत राज्यों को अनुदानों का विस्तृत ब्योरा।
  - कर व्यय के विवरण को सुव्यवस्थित रखा जाए और तौर-तरीकों को सुनिश्चित किया जाए।
  - प्रमुख कर प्रस्तावों की अनुपालन लागत को सूचित की जाए।
  - पूँजी व्यय के राजस्व परिणामों का एमटीएफपी में अनुमान लगाया जाए।
  - एमटीएफपी में मुख्यनीति परिवर्तनों के राजकोषीय परिणाम को शामिल किया जाए।
  - एमटीएफपी के साथ सार्वजनिक निजी भागीदारी देयताओं को सूचित किया जाए।
  - एमटीएफपी मानदंड मूल्यों को सुनिश्चित करे जिसमें प्राप्तियों और व्यय के अनुमान निहित हों और लक्ष्यों के अनुरूप रहते हुए जिस सीमा के अन्तर्गत वे भिन्न हो सकते हैं।
27. लोक लेखे में विनिवेश प्राप्तियों के अंतरण को समाप्त किया जाए और सभी विनिवेश प्राप्तियों को समेकित निधि में बनाए रखा जाए।
28. भारत सरकार ऐसे समस्त सरकारी क्षेत्र के उद्यमों की सूची तैयार करे जिनमें परिसम्पत्तियों पर प्रतिफल की निम्न दर प्राप्त होती है तथा जो विशेषज्ञ समिति द्वारा निर्धारित मानदण्डों से कम है।
29. एफआरबीएम अधिनियम को उन आघातों के स्वरूप को विनिर्दिष्ट किए जाने की आवश्यकता है जिन्हें एफआरबीएम लक्ष्यों में छूट देना अपेक्षित है।
30. स्थूल आर्थिक आघातों के मामले में, राज्यों की उधार सीमाओं में छूट देने तथा उन्हें अधिक उधार की अनुमति देने के बजाय केन्द्र राज्यों के मध्य पारस्परिक वितरण हेतु वित्त आयोग कर अन्तरण फार्मूले का उपयोग करते हुए उधार दे और संसाधनों का अन्तरण करे।
31. वेतन आयोग की सिफारिशों के कारण बकाया राशि जैसे संरचनात्मक आघातों से बचा जाए, बकाया राशि के मामले में, वेतन का भुगतान उसी तिथि से किया जाए जिस तारीख से वह स्वीकृत है।
32. केन्द्र द्वारा एक स्वतंत्र समीक्षा तंत्र की स्थापना की जाए इसके राजकोषीय सुधार प्रक्रिया का मूल्यांकन करें। स्वतंत्र समीक्षा तंत्र में राजकोषीय परिषद को शामिल किया जाए जिसके पीछे विधायी शक्ति है।
33. 2008-09 और 2009-10 के अपवादात्मक परिस्थितियों को देखते हुए, राज्यों की राजकोषीय समेकन प्रक्रिया बाधित हुई। आशा है कि राज्य 2011-12 तक अपने राजकोषीय सुधार के मार्ग पर वापस आने में समर्थ होंगे जिसमें 2010-11 में उन्हें एक वर्ष हेतु समायोजन की अनुमति दी जाएगी।
- (i) ऐसे राज्य जिन्होंने 2007-08 में शून्य राजस्व घाटा किया है अथवा राजस्व अधिशेष प्राप्त किया है, उन्हें 2011-12 तक राजस्व घाटा समाप्त कर लेना चाहिए तथा राजस्व शेष बनाए रखना चाहिए अथवा उसके बाद वे अधिशेष प्राप्त करेंगे। अन्य राज्यों को 2014-15 तक राजस्व घाटा समाप्त करना चाहिए।

**नोट**

- (ii) सामान्य श्रेणी के राज्य जिन्होंने 2007-08 में शून्य राजस्व घाटा अथवा राजस्व अधिशेष प्राप्त किया है, उन्हें 2011-12 तक सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) के 3 प्रतिशत का राजकोषीय घाटा प्राप्त करना चाहिए तथा ऐसे घाटे को उसके बाद बनाया रखना चाहिए। अन्य सामान्य श्रेणी के राज्यों को 2013-14 तक 3 प्रतिशत राजकोषीय घाटा प्राप्त करने की आवश्यकता है।
- (iii) 2007-08 में जीएसडीपी के 3 प्रतिशत से कम के राजकोषीय घाटे के आधार वाले सभी विशेष श्रेणी के राज्य 2011-12 में 3 प्रतिशत का राजकोषीय घाटा कर सकते हैं तथा उसके बाद इसे बनाए रख सकते हैं। मणिपुर, नागालैंड, सिक्किम और उत्तराखण्ड 2013-14 तक अपने जीएसडीपी के 3 प्रतिशत तक राजकोषीय घाटा कम करेंगे।
- (iv) जम्मू और कश्मीर तथा मिजोरम को 2014-15 तक अपने राजकोषीय घाटे को जीएसडीपी के 3 प्रतिशत तक सीमित करना चाहिए।
34. राज्यों को राजकोषीय सुधार का रास्ता अपनाने के लिए एफआरबीएम अधिनियमों में संशोधन/अधिनियमन करना चाहिए। किसी राज्य के लिए संयुक्त राज्य विशिष्ट अनुदान अनुपालन हेतु जारी करना चाहिए।
35. एफआरबीएम अधिनियमों के अन्तर्गत स्वतंत्र समीक्षा/मॉनीटरिंग तंत्र की स्थापना राज्यों द्वारा करनी चाहिए।
36. वित्त मंत्रालय द्वारा राजकोषीय सुधार मार्ग का उपयोग करते हुए राज्यों के लिए उधार सीमाओं पर कार्रवाई करनी चाहिए। इस प्रकार राज्यों द्वारा राजकोषीय सुधार हेतु प्रवर्तन तंत्र के बतौर कार्य करना चाहिए।
37. 2006-07 तक सविदा किए गए राष्ट्रीय लघु बचत निधि (एनएसएसएफ) से राज्यों को दिए गए ऋण और 2009-10 के अन्त में बकाया राशि को निर्धारित शर्तों के अधीन ब्याज की 9 प्रतिशत की दर पर पुनः निर्धारित किया जाएगा।
38. राष्ट्रीय लघु बचत योजना को बाजार सम्बद्ध योजना में रूपांतरित किया जाएगा। राज्य सरकारों से यह भी अपेक्षित है कि वे अपने स्तर पर संगत सुधार करें।
39. 2009-10 के अन्त में बकाया भारत सरकार से राज्यों को प्रदत्त और वित्त मंत्रालय से भिन्न मंत्रालयों/विभागों द्वारा प्रशासित को निर्धारित शर्तों के अधीन बट्टे-खाते डाला जाएगा।
40. राजकोषीय दृष्टि से कमजोर राज्यों के लिए जो बाजार से ऋण जुटाने में अक्षम हैं, केन्द्र सरकार से उधार हेतु विंडो की व्यवस्था करना आवश्यक है।
41. ऋण समेकन तथा राहत सुविधा (डीसीआरएफ) के अन्तर्गत समेकन लाभ प्राप्त न किए राज्यों के सम्बन्ध में, यह सुविधा, समेकन तथा ब्याज दर कटौती तक सीमित रहते हुए एफआरबीएम अधिनियम के अधिनियम के अधीन विस्तारित की जानी चाहिए।
42. एनएसएसएफ दर ब्याज राहत का लाभ और बट्टे खाते को राज्यों को तभी उपलब्ध कराया जाए जब वे एफआरबीएम के सम्बन्ध में आवश्यक संशोधन/अधिनियम की व्यवस्था करें।

**स्थानीय निकाय**

43. सविधान के अनुच्छेद 280 (3) (ख) और (ग) में संशोधन इस प्रकार किया जाए कि इसमें प्रयुक्त शब्दों राज्यों वित्त आयोग की सिफारिश के आधार पर “राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों को ध्यान में रखने के बाद” से परिवर्तित किया जाए।
44. सविधान के अनुच्छेद 243(1) में संशोधन “प्रत्येक पांचवें वर्ष” शब्दों के बाद “अथवा पहले” वाक्यांश को शामिल कर लिया जाए।
45. स्थानीय निकाय, अनुदानों की प्रमात्रा उपलब्ध करायी जाए, सामान्य आधार्किक अनुदान तथा विशेष क्षेत्र आधार्किक अनुदान यथानिर्दिष्ट राज्यों में आवंटित किया जाए। इन अनुदान के सम्बन्ध में राज्यवार पात्रता अनुबंध 10.15 क और 10.15 ग में दिखायी गयी है।

## नोट

46. राज्य सरकारें सामान्य निष्पादन अनुदान और विशेष क्षेत्र निष्पादन हेतु तभी पात्र होंगी जब वे निर्धारित शर्तों का अनुपालन करते हैं। इन अनुदानों को विनिर्दिष्ट तरीके से संवितरित किया जाएगा। इन अनुदानों के सम्बन्ध में राज्यवार पात्रता अनुबंध 10.15 ख और 10.15 घ में दी गयी है।
47. राज्यों को सामान्य आधारीक अनुदान और सामान्य निष्पादन अनुदान के अपने हिस्से के भाग का आवंटन विशेष क्षेत्रों को इन क्षेत्रों में जनसंख्या के अनुपात में करना चाहिए। यह आवंटन हमारे द्वारा संस्तुत विशेष क्षेत्र आधार के अनुदान और विशेष क्षेत्र निष्पादन अनुदान के अतिरिक्त होगा।
48. राज्य सरकारों को उपयुक्त तरीके से अपने स्थानीय निधि लेखा परीक्षा विभागों को क्षमता निर्माण तथा कार्मिकों में बढ़ोतरी के जरिए सुदृढ़ करना चाहिए।
49. राज्य सरकारों को कुछ अथवा सभी स्थानीय करों के अधिदेश को लेवी के शून्यतर दरों पर बाध्यकारी रूप में, स्थानीय निकायों के अन्तरण पात्रता से स्व राजस्व संग्रहण में कटौती द्वारा, अथवा समतुल्य अनुदानों की प्रणाली के जरिए स्थानीय निकायों द्वारा राजस्व संग्रहण को प्रोत्साहित करना चाहिए।
50. लेखांकन प्रणाली को सुदृढ़ बनाने हेतु, वित्त लेखे में एक पृथक् विवरण शामिल होना चाहिए जिसमें पंचायत राज्य संस्थाओं (पीआरआई) तथा शहरी स्थानीय निकाय (यूएलबी) दोनों के सम्बन्ध में बजट में यथा उपयोग किए उन्हीं शीर्षों के अन्तर्गत वास्तविक व्यय का शीर्षवार ब्योरा उल्लिखित हो। हम सिफारिश करते हैं कि इन परिवर्तनों को 31 मार्च, 2012 से प्रभावी बनाया जाए।
51. भारत सरकार तथा राज्य सरकारें कार्यकारी अनुदेश जारी करें ताकि उनके सम्बद्ध विभाग स्थानीय निकायों को उपयुक्त सेवा प्रभार को भुगतान कर सकें।
52. राज्य सरकारों की रायल्टियों से प्राप्त वर्धित आय को देखते हुए, उन्हें इस आय के हिस्से की भागीदारी उन स्थानीय निकायों के साथ करनी चाहिए जिनके क्षेत्राधिकार में ऐसी आय सृजित होती है।
53. राज्य सरकारों को सुनिश्चित करना चाहिए कि राज्य वित्त आयोगों (एसएफसी) की सिफारिशों अविलम्ब कार्यान्वित की जाए तथा की गयी कार्रवाई रिपोर्ट (एटीआर) को तुरंत विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।
54. एसएफसी अनुबंध 10.5 में सुझायी गयी उस प्रणाली पर विचार करे जो उनकी रिपोर्टों का आधार हो।
55. एसएफसी सदृश निकाय राज्यों में स्थापित की जाए जिन्हें संविधान के भाग ix द्वारा कवर नहीं किया गया है।
56. स्थानीय निकाय पहचान की गयी सर्वोत्तम प्रक्रियाओं के कार्यान्वयन पर विचार करें।
57. शहरी स्थानीय निकायों को हमारे द्वारा उपलब्ध कराए गए अनुदान का भाग उनके क्षेत्राधिकार के भीतर अग्नि सेवाओं में सुधार हेतु किया जाए।
58. स्थानीय निकायों को शहरी नियोजन कार्यों से सहयोजित किया जाए, जहाँ कहीं अन्य विकास प्राधिकारी इस कार्य के लिए अधिदेशित हैं। इन प्राधिकारियों को स्थानीय निकायों के साथ अपने राजस्व का भी वहन करना चाहिए।
59. छावनी क्षेत्रों (बलों के सक्रिय नियंत्रण के अन्तर्गत क्षेत्रों को छोड़कर) के अन्तर्गत सिविलियन क्षेत्रों हेतु विकास योजनाएँ जिला नियोजन समितियों के समक्ष लायी जाएँ।
60. राज्य सरकारें नगर पंचायतों के गठन हेतु दिशानिर्देश तैयार करें।

## आपदा राहत

61. राष्ट्रीय आपदा आकस्मिकता निधि (एनसीसीएफ) को राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया निधि और आपदा राहत निधि (सीआरएफ) को सम्बद्ध राज्यों के राज्य आपदा अनुक्रिया निधि (एसडीआरएफ) में मिला दिया जाए। एसडीआरएफ के लिए अंशदान का वहन सामान्य श्रेणी के राज्यों के सम्बन्ध में केन्द्र और राज्यों के बीच 75:25 के अनुपात में और विशेष श्रेणी के राज्यों के सम्बन्ध में 90:10 के अनुपात में किया जाए।

**नोट**

62. सीआरएफ और एनसीसीएफ के अन्तर्गत 31 मार्च, 2010 की स्थिति के अनुसार शेष राशि का अन्तरण सम्बद्ध एसडीआरएफ और एनडीआरएफ को किया जाए।
63. एनडीआरएफ के लिए बजटीय प्रावधान को निधि से पिछले वर्ष के व्यय से सम्बद्ध किए जाने की आवश्यकता है। जीएसटी के प्रारम्भ होने पर उपकरणों को उसमें मिलाने से; वित्तपोषण के वैकल्पिक स्रोतों की पहचान करने की आवश्यकता है।
64. एसडीआर का कुल आकार 33,381 करोड़ आंका गया है जिसे क्षमता निर्माण के लिए 525 करोड़ रुपए के अतिरिक्त अनुदान के साथ उपर्युक्त दिए गए अनुपात में वहन किया जाएगा।
65. राष्ट्रीय आपदा अनुक्रिया बल को त्वरित राहत हेतु अपेक्षित मदों के स्टॉक को बनाए रखने के लिए 250 करोड़ रुपए की सहायता दी जाएगी।
66. आपदा प्रबन्धन (डीएम) अधिनियम में जिला आपदा अनुक्रिया निधि (डीडीआरएफ) से सम्बद्ध प्रावधानों की समीक्षा की जाए और इन निधियों के सृजन को सम्बद्ध राज्यों के विवेकाधिकार पर छोड़ दिया जाना चाहिए।
67. एफसी अनुदानों के जरिए निधिपोषित योजनाओं को शमन और पुनर्निर्माण गतिविधियों से बाहर रखा जाए और केन्द्र तथा राज्यों की समग्र विकास आयोजना निधि की पूर्ति की जाए।
68. एफसी अनुदानों के जरिए निधिपोषित योजनाओं के तहत कवर की जाने वाली आपदाओं की सूची यथावत बनी रहनी चाहिए। तथापि, एनडीआरएफ निधिपोषण के लिए उच्च तीव्रता की मानव निर्मित आपदाओं को ध्यान में रखा जाए, एक बार मानदण्ड तय कर दिए जाएँ और अपेक्षित अतिरिक्त आवंटन एनडीआरएफ को किया जाए।
69. डीएम अधिनियम अर्थात् केन्द्र स्तर पर राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एनडीएमए)/राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद् (एनईसी) तथा राज्य स्तर पर राज्य आपदा प्रबन्धन एजेंसी (एसडीएमए)/राज्य कार्यकारी परिषद् (एसईसी) के अन्तर्गत निर्धारित किए जाने वाले आपदा राहत के लिए प्रशासनिक तंत्र। वित्तीय मामले वित्त मंत्रालय द्वारा मौजूदा प्रक्रिया अनुसार निपटाए जाएँगे।
70. एससीआरएफ के लिए केन्द्रीय सहायता जारी रखने हेतु निर्धारित लेखांकन मानदण्डों का अनुसरण किया जाए।



टास्क तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिश में आपदा राहत से संबंधित क्या प्रावधान थे?

**राज्यों को सहायता अनुदान**

**एनपीआरडी और निष्पादन प्रोत्साहन**

71. आठ राज्यों हेतु पंचाट अवधि के लिए 51,800 करोड़ रुपए की कुल आयोजना-भिन्न राजस्व अनुदान की सिफारिश की गयी है।
72. ऐसे तीन विशेष श्रेणी वाले राज्यों के लिए 1500 करोड़ रुपए के निष्पादन अनुदान की सिफारिश की जाती है जिन्हें आयोजना-भिन्न राजस्व घाटा (एनपीआरडी) स्थिति से क्रमबद्ध किया गया है।

**प्राथमिक शिक्षा**

73. पंचाट अवधि हेतु प्राथमिक शिक्षा के लिए 24,068 करोड़ रुपए के अनुदान की सिफारिश की गयी है।
74. शिक्षा अनुदान प्राथमिक शिक्षा के लिए राज्यों को दिए जाने वाले सामान्य व्यय के अतिरिक्त होगा। संस्तुत अनुदानों सहित प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत व्यय (आयोजना + आयोजना-भिन्न) अर्थात् मुख्य शीर्ष - 2202, उप मुख्य शीर्ष-01, वर्ष 2010-15 के दौरान कम से कम 8 प्रतिशत की दर पर पड़ेगा।

**पर्यावरण****नोट**

75. पंचाट अवधि हेतु वन अनुदान के रूप में 5000 करोड़ रुपए की राशि की सिफारिश की गयी है।
76. पहले दो वर्षों के लिए अनुदानें शर्त रहित हैं लेकिन कार्य आयोजनाओं की तैयारी को प्राथमिकता दी जाए। पिछले तीन वर्षों के लिए अनुदानों की निर्मुक्ति को अनुमोदित कार्य आयोजनाओं की संख्या में प्रगति से सम्बद्ध किया जाए।
77. पिछले तीन वर्षों में अनुदानों का पच्चीस प्रतिशत भाग वन संपदा के संरक्षण के लिए है। ये अनुदान वानिकी तथा वन्य जीव (मुख्य शीर्ष-2406) सम्बन्धी आयोजना भिन्न राजस्व व्यय के अतिरिक्त है और अनुबंध 12.3 में दी गयी शर्तों के अधीन होगा। पिछले तीन वर्षों में अनुदानों के पचहत्तर प्रतिशत का उपयोग विकास उद्देश्यों हेतु किया जाएगा।
78. ग्रिड से जुड़े नवीकरणीय ऊर्जा के लिए 5000 करोड़ रुपए के प्रोत्साहन अनुदान की सिफारिश की जाती है जो 1 अप्रैल, 2010 से 31 मार्च, 2014 तक नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता परिवर्धन में राज्यों की उपलब्धियों पर आधारित है। इस सम्बन्ध में राज्यों के निष्पादन की राज्यों द्वारा क्षमता परिवर्धन पर भारत सरकार द्वारा प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है।
79. चार वर्षों अर्थात् 2011-12 से 2014-15 की पंचाट अवधि हेतु जल क्षेत्र प्रबन्धन अनुदान के तौर पर 5000 करोड़ रुपए की राशि की स्वीकृति की गयी है।
80. जल क्षेत्र अनुदान की निर्मुक्ति जल विनियामक प्राधिकरण की स्थापना और सामान्य रूप से मूल्यांकित जल प्रभागों की राज्य विशिष्ट वसूली प्राप्त करने के अधीन होगी।
81. जल क्षेत्र अनुदान सामान्य अनुरक्षण व्यय के लिए अतिरिक्त राशि के बतौर होने चाहिए जिन्हें राज्यों द्वारा देखा जाएगा और अनुबंध 12.8 में दी गयी शर्तों के अनुसार उन्हें निर्मुक्त तथा मॉनीटर किया जाएगा।

**परिणामों में सुधार**

82. राज्यों को अपने ऐसे निवासियों का नामांकन करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए जो विशिष्ट पहचान (यूआईडी) कार्यक्रम के अन्तर्गत कल्याणकारी योजनाओं में भाग लेते हैं। उस सम्बन्ध में राज्य सरकारों को 2987 करोड़ रुपए का अनुदान देना प्रस्तावित है जैसा अनुबंध 12.9 में दर्शित है।
83. राज्यों को 31 दिसम्बर 2009 से आगे उनके निष्पादन के आधार पर अपनी शिशु मृत्यु पर (आईएमआर) को घटाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इस प्रयोजनार्थ 5000 करोड़ रुपए के अनुदान की सिफारिश की गयी है।
84. न्याय प्रशासन में कई पहलुओं में सुधार को सहायता प्रदान करने हेतु 5000 करोड़ रुपए का अनुदान प्रस्तावित है। इनमें प्रातः/सायं न्यायालयों का प्रचालन, वैकल्पिक विवाद समाधान (एडीआर) तंत्र को प्रोत्साहन देना, लोक अदालतों की सहायता बढ़ाना तथा विधिक सहायता और प्रशिक्षण देना शामिल है।
85. राज्यों में सार्वजनिक सेवाओं में नवाचारों की पहचान दस्तावेज तथा प्रोत्साहन के लिए सार्वजनिक नवाचार प्रणाली केन्द्र (सीआईपीएस) की स्थापना द्वारा नवाचार प्रोत्साहन हेतु 20 करोड़ रुपए के अनुदान की सिफारिश की जाती है। 1 करोड़ रुपए प्रति जिले का दूसरी अनुदान जिला नवाचार निधि (डीआईएफ) के सृजन के लिए है जिसका उद्देश्य पहले से सृजित पूँजी परिसम्पत्तियों की कार्यक्षमता को बढ़ाना है।
86. सांख्यिकीय प्रणाली की गुणवत्ता को बढ़ाने हेतु, हम भारतीय सांख्यिकीय परियोजना (आईएसपी) द्वारा पहचान न किए गए क्षेत्रों में सांख्यिकीय ढाँचागत अन्तर की पूर्ति हेतु प्रत्येक जिले के लिए 1 करोड़ रुपए भी दर पर राज्य सरकारों को 616 करोड़ रुपए के अनुदान की सिफारिश करते हैं।
87. कर्मचारी तथा पेंशनर डाटाबेस की स्थापना के लिए 10 करोड़ रुपए का अनुदान प्रत्येक सामान्य श्रेणी राज्य और 5 करोड़ रुपए प्रत्येक विशेष श्रेणी राज्य को उपलब्ध कराया जाएगा। हम भारत सरकार से यह भी आग्रह करते हैं कि वह अपने स्वयं के कर्मचारियों तथा पेंशनरों हेतु डाटाबेस तैयार करने के लिए समानान्तर प्रयास प्रारम्भ करे।

**नोट**

**सड़कों तथा पुलों का रखरखाव**

88. हमारे पंचाट अवधि के चार वर्षों (2011-12 से 2014-15) के लिए सड़कों तथा पुलों के रख-रखाव हेतु अनुदान के रूप में 19,930 करोड़ रुपए की राशि की सिफारिश की गयी है।
89. सड़कों तथा पुलों के लिए रख-रखाव अनुदान उस सामान्य रख-रखाव व्यय के अतिरिक्त होगा जो राज्यों द्वारा किया जाता है। इस अनुदान की निर्मुक्ति तथा व्यय अनुबंध 12.17 में दर्शित शर्तों के अधीन होगा।

**राज्य विशिष्ट आवश्यकताएँ**

90. राज्य विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए 27,945 करोड़ रुपए के कुल अनुदान की सिफारिश की जाती है।
91. पैरा 5.52 तथा 9.82 में वर्णित शर्तों के अतिरिक्त राज्य विशिष्ट अनुदान निम्नलिखित शर्तों के अधीन होंगे—
- (i) राज्यों द्वारा भूमि अधिग्रहण हेतु किसी राज्य विशिष्ट अनुदान से किसी निधि का उपयोग नहीं किया जाएगा। जहाँ कहीं भी परियोजना/निर्माण हेतु भूमि अपेक्षित है, ऐसी भूमि को राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कराया जाएगा।
- (ii) सारणी 23.2 में दिए गए राज्य विशिष्ट अनुदानों की स्थिति केवल निर्देशात्मक है; राज्य अपनी अपेक्षित स्थिति से केन्द्र सरकार को सूचित कर सकते हैं। यह अनुदान प्रतिवर्ष अधिकतम दो किशतों में जारी की जा सकती है।
- (iii) लेखों का रख-रखाव तथा उपयोग प्रमाणपत्र (यूसी/व्यय विवरण (एसओई) को सामान्य वित्तीय नियम (जीएफआर) 2005 के अनुसार उपलब्ध कराया जाएगा।

**मॉनीटरिंग**

92. मुख्य सचिव की अध्यक्षता में उच्च स्तरीय मॉनीटरिंग समिति अनुदानों के उपयोग की समीक्षा करेगी सुधारात्मक उपाय करेगी। इसे 12वें वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार स्थापित किया गया है जो आगे बनी रहेगी।
93. पंचाट अवधि हेतु राज्यों को संस्तुत कुल सहायता अनुदान राशि-सारणी 23.2 में दी गयी है।

**सारणी 23.2 राज्यों की सहायता अनुदान**

(करोड़ रुपए)

<b>I</b>	स्थानीय निकाय	87519
<b>II</b>	आपदा राहत (जिसमें क्षमता निर्माण शामिल है)	26373
<b>III</b>	पश्च-अन्तरण आयोजना-भिन्न राजस्व घाटा	51800
<b>IV</b>	निष्पादन प्रोत्साहन	1500
<b>V</b>	प्राथमिक शिक्षा	24068
<b>VI</b>	पर्यावरण	15000
	(क) वनों का संरक्षण	5000
	(ख) नवीकरणीय ऊर्जा	5000
	(ग) जल क्षेत्र प्रबंधन	5000
<b>VII</b>	परिणामों में सुधार	14446
	(क) शिशु मृत्यु दर में कमी	5000
	(ख) न्याय प्रदान करने में सुधार	5000
	(ग) यूआईडी जारी करने हेतु प्रोत्साहन	2989
	(घ) जिला नवाचार निधि	616

नोट

	(ड) राज्य तथा जिला स्तर पर सांख्यिकीय प्रणालियों में सुधार 616	
	(च) कर्मचारी तथा पेंशन डाटाबेस	225
VIII	सड़क तथा पुलों का रख-रखाव	19930
IX	राज्य विशिष्ट	27945
X	जीएसटी मॉडल का कार्यान्वयन	50000
	<b>जोड़</b>	<b>318581</b>

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

- भारत सरकार को सभी राज्यों में बजटीय वर्गीकरण कोड में एक-साम्यता बनाए रखने में सुनिश्चित करना चाहिए।
- केंद्र के राजस्व घाटे को उत्तरोत्तर रूप में घटाए जाने और समाप्त किए जाने की आवश्यकता नहीं है।
- एफ.आर.बी.एम अधिनियम को उन आघातों के स्वरूप को विनिर्दिष्ट किए जाने की आवश्यकता है जिन्हें एफ.आर.बी.एम लक्ष्यों में छूट देना अपेक्षित है।
- राज्य सरकारों को उपयुक्त तरीके से अपने स्थानीय निधि लेखा परीक्षा विभागों को क्षमता निर्माण तथा कार्मिकों में बढ़ोतरी के जरिए सुदृढ़ नहीं करना चाहिए।
- पंचाट अवधि हेतु वन अनुदान के रूप में 5000 करोड़ रुपए की राशि की सिफारिश की गयी है।

### 23.3 सारांश (Summary)

- वर्ष 2009-10 तक, केन्द्र और राज्यों का सम्मिलित कर-जीडीपी अनुपात 17.6 प्रतिशत तक, प्राथमिक व्यय जीडीपी के 23 प्रतिशत तक और पूंजी व्यय जीडीपी के लगभग 7 प्रतिशत तक बढ़ाया जाए।
- साझा योग्य केन्द्रीय करों की निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 30.5 प्रतिशत होगा। इस प्रयोजनार्थ, बिक्री कर के बदले अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों को केन्द्रीय करों के सामान्य पूल के एक भाग के रूप में माना जाता है।
- पंचायती राज संस्थाओं को जलापूर्ति तथा स्वच्छता से सम्बन्धित परिसम्पत्तियों के अधिग्रहण के लिए तथा मरम्मत। जीर्णोद्धार और साथ ही ओएंडएम लागतों पर अनुदानों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। तथापि, पंचायती राज संस्थाएँ प्रयोक्ता प्रभागों के रूप में आवर्ती लागतों के कम से कम 50 प्रतिशत भाग की वसूली करें।
- राज्य वित्त मंत्रियों की सशक्त समिति (ईसी) को सांविधिक परिषद् में परिवर्तित किया जाए। सचिव, राजस्व विभाग, भारत सरकार, ईसी सचिव तथा लोक वित्त में अनुभव प्राप्त किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति से बनी तीन सदस्यीय क्षतिपूर्ति द्वारा की गयी सिफारिश के आधार पर यह क्षतिपूर्ति तिमाही किस्तों में संवितरित की जाए।
- भागीदारी योग्य केन्द्रीय करों की निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 2010-11 से 2014-15 के प्रत्येक वित्तीय वर्ष में 32 प्रतिशत होगा। उत्पाद (विशेष महत्व की वस्तुओं) के अतिरिक्त शुल्क अधिनियम, 1957 के अन्तर्गत, सभी वस्तुओं को 1 मार्च, 2006 से शुल्क भुगतान से छूट प्राप्त है।
- संविधान के 88वें संशोधन की अधिसूचना की स्थिति में और ऐसी अधिसूचना के फलस्वरूप किसी विधान के अधिनियम पर, इस बात का सुनिश्चय किया जाए कि इस विधान के तहत राज्य को उचित राजस्व उस



## नोट

भाग से कम नहीं होना चाहिए जो इस राज्य को उचित हो, भले ही सम्पूर्ण सेवा कर केन्द्रीय करों के भागीदारी योग्य पूल का भाग रहा है।

- ऐसे राज्य जिन्होंने 2007-08 में शून्य राजस्व घाटा किया है अथवा राजस्व अधिशेष प्राप्त किया है, उन्हें 2011-12 तक राजस्व घाटा समाप्त कर लेना चाहिए तथा राजस्व शेष बनाए रखना चाहिए अथवा उसके बाद वे अधिशेष प्राप्त करेंगे।
- राज्य सरकारों की रायल्टियों से प्राप्त वर्धित आय को देखते हुए, उन्हें इस आय के हिस्से की भागीदारी उन स्थानीय निकायों के साथ करनी चाहिए जिनके क्षेत्राधिकार में ऐसी आय सृजित होती है।

### 23.4 शब्दकोश (Keywords)

- आयोग (Commission)–नियुक्ति।
- सिफारिश (Implement)–संस्तुति।

### 23.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. बारहवें वित्त आयोग की सिफारिशों का संक्षेप में वर्णन करें।
2. तेरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों का संक्षिप्त परिचय दें।
3. राज्यों की सहायता अनुदान को सारणी द्वारा प्रस्तुत करें।

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |            |           |          |             |
|------------|-----------|----------|-------------|
| 1. 17.6    | 2. 28     | 3. 30.5  | 4. केंद्रीय |
| 5. सिफारिश | 6. सत्य   | 7. असत्य | 8. सत्य     |
| 9. असत्य   | 10. सत्य। |          |             |

### 23.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## **इकाई-24: भारतीय लोक ऋण**

### **(Indian Public Debt)**

#### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

24.1 भारत में लोक ऋण के विकास का इतिहास (Historical Development of Public Debt in India)

24.2 स्वतन्त्रता के बाद से लोक ऋण (Public Debt since Independence)

24.3 सारांश (Summary)

24.4 शब्दकोश (Keywords)

24.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

24.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

#### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- भारत में लोक ऋण के विकास के इतिहास की जानकारी प्राप्त करने में।
- स्वतंत्रता के बाद से लोक ऋण के महत्व संबंधी बातों की जानकारी प्राप्त करने में।
- बाह्य लोक ऋण की संरचना को समझने में।

#### **प्रस्तावना (Introduction)**

संविधान संघ सरकार (Union Government) को यह अधिकार देता है कि वह भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) की जमानत पर संसद (Parliament) द्वारा निर्धारित की गई सीमाओं के अधीन रहते हुए उधार ले सके। इसी प्रकार कोई भी राज्य (State) विधानमण्डल (Legislature) द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत उधार ले सकता है। परन्तु भारत सरकार की सहमति के बिना कोई भी राज्य उधार नहीं ले सकता।

#### **24.1 भारत में लोक ऋण के विकास का इतिहास**

##### **(Historical Development of Public Debt in India)**

##### **स्वतन्त्रता से पूर्व लोक ऋण (Public Debt before Independence)**

अन्य सभी सरकारों के समान ही, भारत सरकार ने भी उधार लिया है और वर्तमान में भी ले रही है। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक दिनों में भारत सरकार का उधार (borrowings) मुख्यतः युद्ध कार्यों के लिए होता था। किन्तु फिर

**नोट**

भी उस समय भारतीय लोक ऋण का एक बड़ा भाग उत्पादक (Productive) होता था और उसका उपयोग पूँजीगत खर्चों के लिए ही किया जाता था जैसे कि रेलों व सिंचाई योजनाओं आदि के निर्माण के लिए। सन् 1939 में कुल भारतीय लोक ऋण की मात्रा 1,206 करोड़ रु. थी जिसमें से लगभग 925 करोड़ रुपये ऋण ब्याजोत्पाद परिसम्पत्तियों (Interest yielding assets) तथा अन्य प्रतिभूतियों या ऋण-पत्रों (securities) में सुरक्षित था, शेष धन असुरक्षित तथा अनुत्पादक (unproductive) था। 1,206 करोड़ रु. के कुल ऋण में से लगभग 736 करोड़ रु. का ऋण तो आन्तरिक या देशी ऋण था और लगभग 470 करोड़ रु. इंग्लैण्ड में भारत के दायित्वों (India's obligations) के रूप में था।

द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि में भारत को अपने स्टर्लिंग ऋणों को चुकाने का अवसर मिला, यद्यपि इस कार्य के लिए विकास कार्यों का जो बलिदान किया गया, वह कम बड़ा नहीं था। युद्धकाल में भारत ने इंग्लैण्ड को भारी मात्रा में सैनिक एवं असैनिक सामग्री का निर्यात किया, जिसके भुगतान में हमें भारतीय रिजर्व बैंक की तिजोरियों में रखने को केवल स्टर्लिंग परिसम्पत्तियाँ (sterling assets) ही मिलीं। अतः अनुकूल अदायगी-शेषों (favourable balances) के कारण भारत के पास काफी मात्रा में पौण्ड-पावनों (Sterling balances) का संग्रह हो गया। सन् 1945-46 तक इन पौण्ड-पावनों की मात्रा 2,300 करोड़ रु. हो गई। भारत सरकार द्वारा इन स्टर्लिंग परिसम्पत्तियों अथवा पौण्ड-पावनों के एक भाग का उपयोग इंग्लैण्ड में रखे हुए उसके स्टर्लिंग ऋणों के भुगतान के लिए किया गया।

**रुपये तथा स्टर्लिंग ( करोड़ों में )**

वर्ष	रुपया ऋण	स्टर्लिंग ऋण
1914	179.77	265.81
1947	2,142.00	36.61
1948	2,134.97	30.21

इस प्रकार युद्धकाल में भारत के स्टर्लिंग ऋण में तो कमी हुई किन्तु रुपया-ऋण (rupee debt) बढ़ा। युद्धकाल में रुपये के रूप में कुल ऋण 736 करोड़ रुपये से बढ़कर 1,937 करोड़ रुपये हो गया अर्थात् इसमें लगभग 1,200 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई। सरकार ऋण में वृद्धि का मुख्य कारण युद्ध-व्यय था जिसमें प्रतिरक्षा पर किया जाने वाला पूँजीगत व्यय तथा प्रत्यावर्तित स्टर्लिंग ऋण के बदले में जारी रुपया-प्रतिपण (rupee counterpart) भी सम्मिलित था। सरकार ने इन कर्जों का एक बड़ा भाग नीची ब्याज दर अर्थात् लगभग 3% के ब्याज पर प्राप्त किया था।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :**

1. ब्रिटिश शासन के प्रारंभिक दिनों में भारत सरकार का उधार मुख्यतः ..... कार्यों के लिए होता था।
2. सन् ..... में कुल भारतीय लोक ऋण की मात्रा 1,206 करोड़ रु. थी।
3. 1,206 करोड़ रु. के कुल ऋण में से लगभग ..... करोड़ रु. का ऋण आंतरिक या देशी ऋण था।
4. द्वितीय ..... की अवधि में भारत को अपने स्टर्लिंग ऋणों को चुकाने का अवसर मिला।
5. युद्धकाल में भारत के ..... ऋण में तो कमी हुई किन्तु रुपया-ऋण बढ़ा।

## 24.2 स्वतन्त्रता के बाद से लोक ऋण (Public Debt since Independence)

नोट

मार्च, 1947 में भारत सरकार का कुल लोक ऋण 2,381.39 करोड़ रुपये था। सन् 1946 में भारत के विभाजन के कारण अविभाजित भारत सरकार की परिसम्पत्तियों तथा देयताओं (assets and liabilities) को बाँटने की समस्या उठ खड़ी हुई।

12 दिसम्बर, 1947 को पाकिस्तान के साथ सम्पन्न हुए एक वित्तीय करार (financial agreement) के अन्तर्गत यह निश्चित किया गया कि अविभाजित भारत के वे समस्त ऋण तथा वित्तीय दायित्व, जो कि 15 अगस्त, 1947 को वर्तमान थे, भारत सरकार द्वारा अपने ऊपर ले लिये जायेंगे। इसका अर्थ यह था कि उन सभी लोगों को, जिन्होंने कि अविभाजित भारत के ऋण-पत्र (securities) खरीद रखे थे, ब्याज तथा मूलधन का भुगतान भारत सरकार द्वारा ही किया जायेगा, भले ही वह व्यक्ति भारत में रह रहा हो अथवा पाकिस्तान चला गया हो। किन्तु पाकिस्तान सरकार कुल सरकारी ऋण के अपने देय भाग के 300 करोड़ रुपये 50 वार्षिक किस्तों में भारत सरकार को अदा करेगी और इन किस्तों को प्रारम्भ सन् 1952 से होगा। किन्तु खेद है कि पाकिस्तान ने अपने भाग (300 करोड़ रुपये) की अदायगी की किस्तें अभी तक भी देनी शुरू नहीं की है और दोनों देशों के बीच जिस प्रकार के राजनैतिक सम्बन्ध चल रहे हैं, उनसे यह आशा करना व्यर्थ ही है कि पाकिस्तान अपने इन वायदों का सम्मान करेगा।



नोट्स मार्च 1947 में भारत सरकार का कुल ऋण 2,381.39 करोड़ रुपये था।

भारत के लोक ऋण को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(1) आन्तरिक ऋण, (2) बाह्य लोक ऋण तथा (3) अन्य दायित्व।

### 24.2.1 आन्तरिक ऋण (Internal Debt)

आन्तरिक ऋण में खुले बाजार से उधार लिया जाता है। इसका मुख्य रूप में निम्न प्रकार वर्गीकरण किया जाता है—

- (1) **स्थायी ऋण (Permanent Loans)**—इन्हें कोषित ऋण (Funded debt) या दिनांकित ऋण (Dated loans) भी कहते हैं। ये ऋण निर्गमन तिथि से 12 महीने अथवा अधिक के होते हैं। इन ऋणों के अन्तर्गत अल्पकालीन दायित्वों (जैसे—ट्रेजरी बिल्स) के स्थान पर दीर्घकालीन ऋण जारी किये जाते हैं। इस प्रकार के ऋण प्रायः ब्याज वाले होते हैं।
- (2) **अस्थायी अथवा चालू ऋण (Temporary or Floating Loans)**—इस प्रकार के ऋणों में निम्नलिखित ऋण सम्मिलित किये जाते हैं—
  - (i) **राजकोष बिल्स (Treasury Bills)**—ये बिल्स भारत सरकार के घाटे के बजट की बिल व्यवस्था के मुख्य साधन माने जाते हैं। इन बिलों की 13 सप्ताह की परिपक्वता होती है। यह बिल बट्टे पर जारी किये जाते हैं तथा सममूल्य (at par) पर अदा किये जाते हैं।
  - (ii) **राजकोषीय प्राप्तियाँ (Treasury Deposit Receipts)**—कोषागार जमा रसीदों का मुख्य उद्देश्य अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा व्यावसायिक बैंकों की अतिरिक्त तरलता को समेटना है। इन्हें 6, 9 तथा 12 महीने की परिपक्वता के लिए केवल व्यावसायिक बैंकों को ही जारी किया जाता है तथा इन पर ब्याज की दर नीची होती है।
  - (iii) **अर्थोप्राय ऋण (Ways and Means Loans)**—वित्त की अस्थायी पूर्ति के लिए रिजर्व बैंक से लिया गया अल्पकालीन ऋण है।


**नोट**

(iv) विशेष अस्थायी ऋण (Special Floating Debts)–ये प्रतिभूतियाँ (securities) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास परिषद् और अन्य विश्व वित्तीय संस्थाओं के दायित्वों को पूरा करने के लिए जारी किये जाते हैं।

(3) अन्य दायित्व (Other Obligations)–इनमें क्षतिपूरक बॉण्ड, प्राइज बॉण्ड्स, लघु बचतें, राज्य प्रोविडेन्ट फण्ड इत्यादि सम्मिलित होते हैं।

**आन्तरिक लोक ऋण का विकास (Growth of Internal Public Debt)**

भारत का आन्तरिक लोक ऋण जो 1950-51 में 2,022.36 करोड़ था वह 1990-91 में बढ़कर 1,54,003.77 करोड़ हो गया। इस प्रकार भारत का आन्तरिक लोक ऋण 1950-51 के मुकाबले 1990-91 में लगभग 76 गुना बढ़ गया। भारत का विभिन्न वर्षों में आन्तरिक लोक ऋण अग्रलिखित सारणी द्वारा दर्शाया गया है। भारत का आन्तरिक लोक ऋण 2001-2002 (R.E.) में 9,13,061.13 करोड़ रुपये व 2002-2003 (R.E.) में 10,94,812.93 करोड़ रुपये आंका गया है तथा वर्ष 2003-2004 का कुल आन्तरिक ऋण का बजट अनुमान 12,19,570.32 करोड़ रुपये है। भारत में वर्तमान लोक ऋण की स्थिति अग्र तालिका में दिखायी गयी है।

  
क्या आप जानते हैं? स्थायी ऋण को कोषित ऋण भी कहते हैं।

**कुल आन्तरिक लोक ऋण ( करोड़ रुपयों में )**

वर्ष ( मार्च के अन्त में )	कुल आन्तरिक ऋण
1950-51	2,022.30
1980-81	29,008.49
1990-91	1,54,003.77
1995-96	3,07,868.60
1997-98	3,88,997.78
1998-99	4,58,842.40
1999-2000	7,14,254.23
2000-2001	8,03,697.63
2001-2002	9,13,061.13
2002-2003 (R.E.)	10,94,812.93
2003-2004 (B.E.)	12,19,570.32

**बाजार ऋणों में प्रतिवर्ष विशुद्ध वृद्धि**–सन् 1980-81 में भारत सरकार पर कुल बाजार के उधार का दायित्व 2,949.00 करोड़ रुपये का था जिसमें से 270.00 करोड़ रुपये का वापिस भुगतान कर दिया गया। इस प्रकार 1980-81 में आन्तरिक ऋण में विशुद्ध बढ़ोत्तरी 2,679.00 करोड़ रुपये की थी। इसी प्रकार सन् 1990-91 में कुल आन्तरिक ऋण का दायित्व 8,988.00 करोड़ था जिसमें से 987.00 करोड़ वापिस भुगतान कर दिया गया। इस प्रकार इस वर्ष में सरकार के आन्तरिक ऋण में 8,001 करोड़ रुपये की विशुद्ध वृद्धि हो गई। विभिन्न वर्षों में भारत सरकार के आन्तरिक ऋणों में विशुद्ध बढ़ोत्तरी अग्रलिखित सारणी द्वारा दर्शायी जा सकती है–

नोट

## आन्तरिक ऋण में प्रत्येक वर्ष की विशुद्ध वृद्धि ( करोड़ रुपयों में )

वर्ष	बाजार ऋण ( सकल उधार )	ऋणों का भुगतान	विशुद्ध वृद्धि
(1)	(2)	(3)	(4)
1971-72	631.47	833.74	257.73
1977-78	1,309.99	124.55	1,185.44
1980-81	2,949.00	270.00	2,679.00
1990-91	8,988.00	987.00	8,001.00
1997-98	43,390.00	10,891.00	32,499.00
1998-99	79,714.00	14,803.00	64,911.00
1999-2000	86,608.00	16,331.00	70,277.00
2000-2001	1,00,206.00	27,275.00	72,931.00
2001-2002	1,14,213.00	26,489.00	87,724.00
2002-2003 (R.E.)	1,27,373.00	27,420.00	99,953.00
2003-2004 (B.E.)	1,39,887.00	32,693.00	1,07,194.00

## भारत सरकार का लोक ऋण ( करोड़ रुपयों में )

ऋणों के प्रकार	1950-51	2001-2002	2002-2003	2003-2004 संशोधित	2004-2005 बजट अनुमान
<b>1. आन्तरिक ऋण</b>					
1. बाजार ऋण	1,444.95	5,16,517.48	6,19,105.46	7,04,902.01	8,25,403.19
2. 91 दिवसीय राजकोषीय हुण्डियाँ	358.02	5,046.65	9,672.88	6,983.88	25,983.88
3. विशेष प्रतिभूतियों में जमा की गई 91 दिवसीय राजकोषीय हुण्डियाँ	-	1,01,817.95	61,817.95	-	-
4. विक्रय योग्य प्रतिभूतियों में परिवर्तित	-	20,000.00	55,000.00	1,16,817.95	1,11,817.95
5. भारतीय रिजर्व बैंक को जारी अन्य विशेष प्रतिभूतियाँ	-	3,221.74	3,595.95	3,595.95	1,725.23
6. 14 दिवसीय राजकोषीय हुण्डियाँ	-	2,494.27	5,628.04	5,628.04	5,628.04
7. 182 दिवसीय राजकोषीय (Treasury Bills) हुण्डियाँ	-	3,000.00	3,000.00	3,000.00	3,000.00
8. अर्थोपाय अग्रिम	-	5,176.00	-	-	-
9. 364 दिवसीय राजकोषीय हुण्डियाँ	-	16,584.16	23,122.45	22,996.45	38,860.45
10. स्वर्ण बॉण्ड, 1988	-	-	-	-	-
11. क्षतिपूर्ति और अन्य बॉण्ड	6.73	14,380.86	27,624.22	45,547.12	53,406.84
12. अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को जारी की गई प्रतिभूतियाँ	212.60	22,551.41	23,616.81	22,246.20	22,149.44
13. लघु बचतों के एवज में प्रतिभूतियाँ	-	2,02,270.61	1,88,505.03	2,02,302.75	2,03,652.75
<b>जोड़ आन्तरिक ऋण</b>	<b>2,022.30</b>	<b>9,13,061.12</b>	<b>10,20,688.79</b>	<b>11,34,020.35</b>	<b>12,91,627.77</b>

## नोट

## 24.2.2 बाह्य लोक ऋण (External Public Debt)

एक आदर्श विकसित देश को विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विदेशी सहायता की अधिक आवश्यकता होती है। इस प्रकार की सहायता विदेशों से पूँजीगत साधनों तथा औद्योगिक कच्चा माल खरीदने के लिये उपयोग में लायी जा सकती है। भारत को भी अपने नियोजित आर्थिक विकास के लिये विदेशी पूँजी की आवश्यकता हुई है। इस प्रकार भुगतान सन्तुलन एवं विनियोग अन्तराल की पूर्ति के लिए भारत ने बड़ी मात्रा में विदेशों से ऋण प्राप्त किया। सन् 1950-51 में भारत पर कुल बाह्य ऋण भार केवल 32.03 करोड़ रुपये था जो बढ़कर सन् 1990-91 में 31,524.97 करोड़ रुपये हो गया। इस प्रकार 1950-51 के मुकाबले 1990-91 में बाह्य लोक ऋण से 100 गुने के लगभग की वृद्धि हो गयी। 2000-2001 के बजट अनुमान के अनुसार कुल बाह्य ऋण 65,945.23 करोड़ रुपये आंका गया। यह बढ़कर 2002-2003 (R.E.) में 57,649.58 करोड़ रुपये तथा 2003-2004 (B.E.) में 60,931.12 करोड़ रुपये आंका गया है।

## बाह्य लोक ऋण (करोड़ रुपये में)

वर्ष	कुल बाह्य ऋण (संचय वृत्ति में)
1950-51	32.03
1980-81	10,782.39
1990-91	31,524.97
1995-96	51,248.74
1998-99	57,254.33
1999-2000	58,437.19
2000-2001	65,945.23
2001-2002	71,545.79
2002-2002 (R.E.)	57,649.58
2003-2004 (B.E.)	60,931.12

**बाह्य लोक ऋण में विशुद्ध वृद्धि (Net Increase in External Public Debt)**—भारत सरकार का सन् 1980-81 में कुल विदेशी उधार 1,728.00 करोड़ रुपये था जिसमें सरकार ने 447.00 करोड़ रुपये का ऋण वापिस कर दिया। इस प्रकार इस वर्ष विशुद्ध विदेशी ऋण 1,281.00 करोड़ रुपये था। सन् 1990-91 में बाह्य लोक ऋण 5,339.00 करोड़ रुपये था, जिसमें 2,158.00 करोड़ रुपये का वापिस भुगतान कर दिया। इस प्रकार इस वर्ष विशुद्ध बाह्य लोक ऋण में 3,582 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई। कुल बाह्य लोक ऋण जो सन् 2000-2001 के बजट अनुमानों में 17,328 करोड़ रुपये आंका गया, उनमें से 9,823.00 करोड़ रुपये वापिस भुगतान कर दिया गया था। इस प्रकार वर्ष में 1,180.00 करोड़ रुपये की विशुद्ध बाह्य लोक ऋण में वृद्धि हुई।



टास्क भारत सरकार का सन् 1980-81 में कुल विदेशी उधार कितना था?

नोट

## बाह्य लोक ऋण की प्रत्येक वर्ष में विशुद्ध वृद्धि

( करोड़ रुपये में )

वर्ष	कुल बाह्य लोक ऋण	पुनर्भुगतान	बाह्य लोक ऋण में विशुद्ध वृद्धि
( 1 )	( 2 )	( 3 )	( 4 )
1980-81	1,728.00	447.00	1,281.00
1985-86	2,145.00	630.00	1,515.00
1990-91	5,339.00	2,158.00	3,181.00
1998-99	10,015.00	8,095.00	1,920.00
1999-2000	9,893.00	8,713.00	1,180.00
2000-2001	17,328.00	9,823.00	7,505.00
2001-2002	14,790.00	9,189.00	5,601.00
2002-2003	11,713.00	25,209.00	-13,496.00
2003-2004	13,203.00	9,621.00	3,582.00

**बाह्य लोक ऋण की संरचना (Composition of External Debt)**

भारत में बाह्य लोक ऋण कई रूपों में प्राप्त किया जाता है। ये ऋण शर्त सहित ऋण, रुपये में अदायगी वाले ऋण एवं विदेशी मुद्रा के रूप में अदायगी वाले ऋण हो सकते हैं। सामान्यतः कृषि आधिक्य वस्तुएँ रुपये के भुगतान के रूप में प्राप्त हुई। स्थगित साख विदेशियों द्वारा दी गयी। तकनीकी सहायता भी विभिन्न रूपों एवं विभिन्न देशों द्वारा प्राप्त हुई। भुगतान सन्तुलन को ठीक करने के लिए अल्पकालीन ऋण अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से प्राप्त हुए।

भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं जैसे-अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, अन्तर्राष्ट्रीय विकास एवं पुनर्निर्माण बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष, एशियन विकास बैंक आदि से भी बाह्य ऋण प्राप्त किया है। इनके अतिरिक्त सरकार ने अमेरिका, रूस, इंग्लैण्ड, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस एवं जापान आदि देशों से ऋण अनुदान, वस्तु अनुदान एवं विशेष ऋण के रूप में प्राप्त किया है।

जहाँ तक विभिन्न देशों से ऋण प्राप्त करने की बात है भारत को अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को छोड़कर अमेरिका से सबसे अधिक ऋण प्राप्त हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से जो ऋण प्राप्त किया जाता है उसमें अन्य विदेशी देशों के मुकाबले राजनैतिक तत्व का कुछ कम दखल होता है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण विकास बैंक से प्राप्त होने वाले ऋण की ब्याज दर बहुत ऊँची है तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ को विकसित देशों से कम सहायता मिलने के कारण वह कम ब्याज पर ऋण थोड़ी मात्रा में ही दे पाता है। एशियन विकास बैंक एक नया संगठन है जिसे कोष एकत्रित करने में समय लगेगा।

**24.2.3 अन्य दायित्व (Other Outstanding Liabilities)**

सरकार के भी कुछ दायित्व होते हैं जिनकी अदायगी करनी होती है। इन दायित्वों के भुगतान हेतु सरकार को ऋणों की आवश्यकता होती है। ये अन्य दायित्व तीन वर्गों में बाँटे जा सकते हैं—

- अल्प बचत योजनाएँ,
- सार्वजनिक प्रोविडेंट फण्ड योगदान, राज्य प्रोविडेंट फण्ड, गैर-सरकारी प्रोविडेंट फण्ड योगदान तथा
- रिजर्व कोष तथा विभिन्न विभागों में जमा राशियाँ।



नोट

(i) अल्प बचत योजनाएँ (Small Savings Schemes) – भारत सरकार पोस्ट ऑफिस बचतें, बैंक जमा, संचयी समयाविधि, राष्ट्रीय बचत सर्टिफिकेट तथा 7-वर्षीय राष्ट्रीय बचत पत्र आदि की सहायता से अल्प बचतें एकत्रित करती हैं। सन् 1950-51 में केवल 336.87 करोड़ रुपये की अल्प बचतें प्राप्त थीं जो बढ़कर सन् 1990-91 में 50,100.18 करोड़ रुपये हो गईं। यह वर्ष 2002-2003 (R.E.) में 1,49,166.07 करोड़ रुपये अल्प बचत प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया था वर्ष 2003-2004 (B.E.) में 2,85,545.63 करोड़ रुपये का अनुमान है।

वर्ष	भारत सरकार का लोक ऋण						( करोड़ रुपयों में )	
	आन्तरिक ऋण	विदेशी ऋण	अन्य ऋण	कुल ऋण	पाकिस्तान पर बकाया ( विभाजित होने से पूर्व )	केन्द्र सरकार पर विशुद्ध ऋण	देनदारियों की अपेक्षा पूंजी परिव्यय और ऋणों की अधिकता	पूंजी तथा ऋण
( 1 )	( 2 )	( 3 )	( 4 )	( 5 )	( 6 )	( 7 )	( 8 )	( 9 )
1950-51	2,022.30	32.03	811.06	2,865.40	-300.00	2,565.40	-	-2,565.40
1960-61	3,978.00	760.26	1,805.28	6,544.24	-300.00	6,244.24	-	-6,244.24
1977-78	19,025.29	8,984.74	12,193.92	40,203.95	-300.00	39,903.95	906.41.0**	38,907.54
1980-81	29,008.49	11,316.35	18,393.38	58,723.22	-300.00	58,423.22	575.59**	57,847.63
1990-91	1,54,003.00	31,524.97	1,29,029.12	3,14,557.86	-300.00	3,14,257.86	77,517.56	2,36,740.30
1995-96	3,07,868.96	51,248.74	2,47,115.01	6,06,233.22	-300.00	6,05,932.32	-	6,05,932.32
1999-2000	7,14,254.23	58,437.19	2,48,337.19	10,21,029.38	-300.00	10,20,729.38	-	10,20,729.38
2000-2001	8,03,697.63	65,945.23	2,98,898.16	11,68,541.02	-300.00	11,68,241.02	-	11,68,241.02
2001-2002	9,13,061.13	71,545.79	3,81,801.51	13,66,408.00	-300.00	13,66,108.43	-	13,66,108.43
2002-2003 (R.E.)	10,37,163.43	57,649.50	4,67,062.58	15,61,875.51	-300.00	15,61,575.51	-	15,61,575.51
2003-2004 (R.E.)	11,58,639.20	60,931.12	5,60,493.55	17,80,063.87	-300.00	17,79,763.87	-	17,79,763.87

\* अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण।

\*\* आधिक्य पूंजी व्यय ऋण ऋण में सम्मिलित है।

## नोट

(ii) **प्रोविडेंट फण्ड योगदान (Provident Fund Contribution)**—भारत सरकार के प्रोविडेंट फण्ड योगदान तीन शीर्षको से सम्बन्धित हैं—(अ) राज्य प्रोविडेंट फण्ड योगदान, (ब) सार्वजनिक प्रोविडेंट फण्ड तथा (स) गैर-सरकार प्रोविडेंट फण्ड के लिए विशेष जमा।

प्रोविडेंट फण्ड योगदान के रूप में भारत सरकार का जो दायित्व 1950-51 में केवल 95.05 करोड़ रुपये था वह सन् 1990-91 में बढ़कर 11,670.34 करोड़ रुपये हो गया। सन् 2000-2001 में इस दायित्व का अनुमान 41,723.74 करोड़ रुपये लगाया गया था। यह 2002-2003 (R.E.) में 54,394.43 करोड़ रुपये तथा 2003-2004 (B.E.) में 61,894.43 करोड़ रुपये हो गया।

(iii) **अन्य खाते में (Other Accounts)**—इसमें गैर सरकारी (Non Government) प्रोविडेंट फण्ड विशेष जमा राशि आती है यह वर्ष 1950-51 में 16.00 करोड़ रुपये थी जो बढ़कर 1990-91 में 45,336.43 करोड़ रुपये हो गई। वर्ष 2000-2001 में इनका 1,44019.61 करोड़ रुपये का अनुमान है। वर्ष 2002-2003 (B.E.) में 1,77,466.60 करोड़ रुपये का व 2003-2004 (B.E.) में 1,91,802.62 करोड़ रुपये का अनुमान है।



**नोट्स** सन् 1950-51 में केवल 336.87 करोड़ रुपये की अल्प बचतें प्राप्त थीं जो बढ़कर सन् 1990-91 में 50,100.18 करोड़ रुपये हो गईं।

(iv) **रिजर्व कोष एवं जमा राशियाँ (Reserve Funds and Deposits)**—इसमें वार्षिक आय कर जमा योजना तथा विशेष जमा योजनाएँ मूल्य हास; रेलवे एवं पोस्ट ऑफिस के रिजर्व फण्ड पर ब्याज आदि सम्मिलित होती हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय कोष की जमा तथा निजी जमा राशियाँ एवं पुराने ऋणों पर गैर-दावे भुगतान भी सम्मिलित होते हैं। सन् 1950-51 में यहाँ इस मद के दायित्व के लिए 36,305 करोड़ रुपये का ऋण प्राप्त किया गया था। वह बढ़कर सन् 1990-91 में 21,922.17 करोड़ रुपये हो गया। वर्ष 2000-2001 के लिए इसका अनुमान 58,535.19 करोड़ रुपये है। 2002-2003 (R.E.) में यह बढ़कर 86,035.48 करोड़ रुपये हुआ तथा वर्ष 2003-2004 (B.E.) का अनुमान 1,01,250.87 करोड़ रुपये का है।

## कुल अन्य दायित्व (संचय वृत्ति)

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	अल्प बचतें	सार्वजनिक प्रोविडेंट फण्ड एवं राज्य प्रोविडेंट फण्ड	अन्य खाते	रिजर्व कोष एवं जमा राशियाँ	कुल योग
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1950-51	336.87	95.05	16.10	363.05	811.07
1960-61	969.99	289.14	262.23	283.02	1,805.28
1990-91	50,100.18	11,670.34	45,336.43	21,922.17	1,29,029.12
1998-99	1,76,220.92	30,237.47	1,26,802.38	41,594.76	3,74,885.53
1999-2000	29,591.64	36,814.03	1,34,424.62	47,507.67	2,48,337.96
2000-2001	54,619.62	41,723.74	1,44,019.61	58,535.19	2,98,898.16
2001-2002	98,617.28	45,894.43	1,64,156.95	73,132.85	3,81,801.51
2002-2003	1,49,166.07	54,394.43	1,77,466.60	86,035.48	4,67,062.58
2003-2004	2,05,545.63	61,894.43	1,91,802.62	1,01,250.87	5,60,493.55

## नोट

**भारतीय अर्थव्यवस्था पर लोक ऋण भार (Burden of Public Debt on Indian Economy)**

भारतीय अर्थव्यवस्था पर लोक ऋण का भार बढ़ता जा रहा है, इस सम्बन्ध में विशेषकर संसद, विधान सभाओं एवं अन्य मंचों पर वाद-विवाद का विषय रहा है कि भार में लोक ऋण प्राप्त करने की अधिकतम सीमा आ चुकी है, अब आगे ऋण का भार न बढ़ाया जाए। यह इस तथ्य पर आधारित है कि लोक ऋण अधिक मात्रा में लिया जा चुका है और इसका भार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। भारतीय संविधान की धारा 292 में यह निश्चित है कि संसद को सरकार के लिए लोक ऋण प्राप्त करने की एक अधिकतम सीमा बाँध देनी चाहिए। किन्तु दुर्भाग्यवश संसद ने अभी तक इस प्रकार का कोई कानून नहीं बनाया है जो सरकार को लोक ऋण प्राप्त करने में एक अधिकतम सीमा में बाँध दे। इस प्रकार का सवाल अनुमान समिति (Estimate Committee) ने अपनी 20वीं रिपोर्ट में उठाया था। इस सम्बन्ध में वित्त मन्त्रालय ने अधिकतम सीमा न बाँधने के पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किये हैं—

- (1) सरकार लोक ऋण की मात्रा का वर्णन अपनी पंचवर्षीय योजना तथा बजट में करती है। संसद जब पंचवर्षीय योजनाओं तथा बजट पर बहस करती है, उस समय लोक ऋण प्राप्त करने पर नियन्त्रण लगा सकती है;
- (2) लोक ऋण के सम्बन्ध में कोई भी अधिकतम सीमा निश्चित करना व्यावहारिक नहीं होगा;
- (3) आन्तरिक ऋण की सीमा तो रिजर्व बैंक निश्चित कर सकता है किन्तु विदेशी ऋण के सम्बन्ध में यह सम्भव नहीं है।

**आन्तरिक लोक ऋण का भार (Burden of Interest of Internal Public Debt)**

आन्तरिक लोक ऋण के वर्तमान आकार से अर्थव्यवस्था पर भार है या नहीं, इसका परीक्षण राष्ट्रीय आय, सार्वजनिक राजस्व तथा सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में करेंगे—

( 1 ) **राष्ट्रीय आय तथा लोक ऋण (National Income and Public Debt)**—राष्ट्रीय आय लोक ऋण के भार की विवेचना के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण कारक है। यदि लोक ऋण में वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो कोई परेशानी की बात नहीं है और यदि लोक ऋण की वृद्धि दर राष्ट्रीय आय वृद्धि से अधिक है तो वह अर्थव्यवस्था के लिए भार है। हम इसकी विवेचना संलग्न तालिका में करेंगे—

**राष्ट्रीय आय में आन्तरिक लोक ऋण अनुमान ( करोड़ रुपयों में )**

वर्ष	कुल आन्तरिक लोक ऋण	चालू कीमतों पर राष्ट्रीय आय (G.N.P)	आन्तरिक लोक ऋण का राष्ट्रीय आय में प्रतिशत
(1)	(2)	(3)	(4)
1950-51	2,002.30	9,157.00	22.06%
1960-61	3,978.00	13,999.00	28.90%
1980-81	29,008.49	1,13,907.00	26.55%
1990-91	1,54,004.00	2,91,647.00	19.00%
1998-99	4,59,696.32	15,83,159.00	29.00%
1999-2000	7,14,254.23	17,46,501.00	40.00%
2000-2001	8,03,697.63	19,00,310.00	42.00%
2001-2002	9,13,061.13	20,81,350.00	43.00%

सन् 1951 में राष्ट्रीय आय में आन्तरिक लोक ऋण का प्रतिशत 22 था जो बढ़कर 1990-91 में 52.00 प्रतिशत हो गया। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस अनुपात में 1950-51 से निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस तथ्य की

## नोट

यदि दूसरे विकसित देशों जैसे-इंग्लैण्ड (78.8%), आयरलैण्ड (68%), अमेरिका (41.2%) तथा आस्ट्रेलिया (40.8%) आदि से तुलना की जाए तो पाते हैं कि भारत का आन्तरिक लोक ऋण का भार अधिक नहीं है। किन्तु भारत एक अल्पविकसित देश है। इसकी तुलना विकसित देशों से करना उपयुक्त नहीं है।

किन्तु दूसरे अर्थशास्त्रियों का कहना है कि यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर तथा लोक ऋण में वृद्धि दर में तुलना करें तो पाते हैं कि लोक ऋण की वृद्धि दर राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर से अधिक है। ऐसी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि भारत में लोक ऋण का भार अधिक है।

यद्यपि लोक ऋण की वृद्धि दर राष्ट्रीय आय से अधिक है, किन्तु समस्या लोक ऋण के बढ़ने की नहीं है बल्कि राष्ट्रीय आय की कम वृद्धि दर की है। अतः लोक ऋण की वृद्धि दर को नियन्त्रित करने के लिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर बढ़ाना बहुत आवश्यक है तथा लोक ऋण का भार करना भी आवश्यक है।

(2) आन्तरिक लोक ऋण पर ब्याज दर एवं राष्ट्रीय आय (Interest on Internal Debt and National Income)-जहाँ तक आन्तरिक लोक ऋण पर ब्याज दर एवं राष्ट्रीय आय में सम्बन्ध का प्रश्न है सरकार द्वारा राष्ट्रीय आय के रूप में ब्याज दर के भुगतान में निरन्तर वृद्धि हो रही है, जिसे निम्नांकित तालिका द्वारा दर्शाया जा सकता है-

## राष्ट्रीय आय में आन्तरिक लोक ऋण के ब्याज का अनुपात (करोड़ रुपयों में)

वर्ष	आन्तरिक लोक ऋण पर ब्याज का भुगतान	राष्ट्रीय आय (G.N.P)	राष्ट्रीय आय व ब्याज भुगतान का प्रतिशत
(1)	(2)	(3)	(4)
1950-51	32.40	9,157.00	0.35
1960-61	118.80	13,999.00	0.75
1977-78	1,521.34	80,493.00	1.90
1980-81	2,604.00	1,13,882.00	2.34
1990-91	21,471.00	2,91,647.00	7.36
1998-99	77,882.00	15,83,159.00	5.0
1999-2000	90,249.00	17,46,501.00	5.0
2000-2001	99,314.00	19,00,310.00	5.2
2001-2002	1,07,460.00	20,81,350.00	5.1

तालिका से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय व ब्याज भुगतान का प्रतिशत निरन्तर बढ़ता जा रहा है। सन् 1950-51 में यह अनुपात 0.35 प्रतिशत था जो बढ़कर 1980-81 में 2.34 प्रतिशत हो गया तथा यह आगे के वर्षों में निरन्तर बढ़कर 1990-91 में 7.36 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि आन्तरिक लोक ऋण का भार बढ़ता जा रहा है किन्तु लोक ऋण की ब्याज की दर का ज्यादा भार नहीं है क्योंकि सरकार बाजार की तुलना में बहुत कम ब्याज दर पर उधार लेती है। फिर भी लोक ऋण के भार को अधिक ही कहा जा सकता है, क्योंकि राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर कम है जिसकी वजह से राष्ट्रीय आय व ब्याज भुगतान का अनुपात अथवा प्रतिशत बढ़ता जा रहा है।



क्या आप जानते हैं सन् 1951 में राष्ट्रीय आय में आन्तरिक लोक ऋण का प्रतिशत 22% था जो बढ़कर 1990-91 में हो 52% हो गया।

## नोट

( 3 ) कर आगम तथा ऋण सेवायें (Tax Revenue and Debt Services)–लोक ऋण का भार आखिरकार कर को बढ़ाने में सहायक होता है क्योंकि इसके भुगतान के लिए वित्तीय प्रबन्ध जनता से कर वसूल द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार का आगम ऋण भार को निर्धारित करने का महत्वपूर्ण कारक है। अग्रांकित तालिका में इसे स्पष्ट किया गया है—

**कर आगम का ब्याज भुगतान अनुपात**  
(Ratio of Interest to Tax Revenue) ( करोड़ रुपयों में )

वर्ष	ब्याज भुगतान	कर राजस्व	कर राजस्व व ब्याज भुगतान का प्रतिशत
(1)	(2)	(3)	(4)
1950-51	32.40	314.60	9.50
1960-61	118.00	703.60	16.90
1977-78	1,512.34	7,060.28	21.50
1980-81	2,604.00	9,358.00	27.05
1990-91	21,471.00	42,978.00	49.90
1997-98	65,637.00	95,672.00	60.10
1999-2000	90,249.00	1,71,752.00	53.00
2000-2001	99,314.00	1,88,603.00	52.00
2001-2002	1,07,460.00	1,87,060.00	56.00
2002-2003 (R.E.)	1,15,994.00	2,21,918.00	52.00
2003-2004 (B.E.)	1,23,223.00	2,51,527.00	48.00

तालिका से स्पष्ट है कि कर का ब्याज भुगतान अनुपात सन् 1950-51 से निरन्तर बढ़ता जा रहा है। 1950-51 में यह अनुपात केवल 9.50 प्रतिशत था जो बढ़कर 1980-81 में 27.05 प्रतिशत हो गया। आगे के वर्षों में भी यह अनुपात बढ़ता चला गया और 1990-91 में यह अनुपात बढ़कर 49.90 प्रतिशत हो गया। यह प्रतिशत 1997-98 में 60.0% व 1999-2000 में 61.0% हो गया इससे स्पष्ट है कि भारत में सार्वजनिक आन्तरिक ऋण का भार बढ़ता जा रहा है।

अब वर्ष 2000-2001 से आन्तरिक ऋण का भार कुछ कम होता दिखाई पड़ रहा है क्योंकि सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दर कम हुई है। अतः राजस्व आय का कम भाग ब्याज की अदायगी में जाने लगा है। यह इस बात को स्पष्ट करती है कि जितनी ब्याज की दर अधिक होंगी उतना ही ऋण का भार अधिक होगा तथा ब्याज की दर कम होने पर इसके विपरीत स्थिति होगी।

किन्तु यदि सार्वजनिक ऋण का प्रयोग उपलब्ध साधनों के अधिकतम उपयोग करके आर्थिक विकास किया जा रहा है तो यह ऋण का भार अधिक महसूस नहीं होगा। अतः आवश्यकता इस बात की है कि एक तरफ ऋण के भार को कम किया जाए और दूसरी ओर इसका प्रयोग विकास कार्यों में किया जाए। विकास कार्य ऐसे हों जो देश का उत्पादन शीघ्र बढ़ाने में सहायक हों।

## नोट

(4) **ब्याज भुगतान का सार्वजनिक व्यय में अनुपात** (Ratio of Interest Payments to Public Expenditure)—ब्याज भुगतान का सार्वजनिक व्यय में अनुपात भी ऋण सेवाओं के भार का एक महत्वपूर्ण कारक है। निम्न तालिका में यह स्पष्ट किया गया है—

नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट है कि राजस्व खाते में ब्याज भुगतान के अनुपात में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सन् 1950-51 में यह अनुपात 9 प्रतिशत था वह सन् 1980-81 में बढ़कर 18.00 प्रतिशत हो गया। इस समयावधि के पश्चात् भी यह अनुपात निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यह अनुपात 1990-91 में बढ़कर 29.20 प्रतिशत हो गया। सन् 1998-99 में यह प्रतिशत बढ़कर 31.11% व 1999-2000 में यह प्रतिशत 41.00% हो गया। इस प्रकार यह बढ़ा हुआ अनुपात इस बात को स्पष्ट करता है कि लोक ऋण का भार निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

यह तालिका यह भी बताती है कि सार्वजनिक व्यय का बहुत बड़ा भाग ब्याज भुगतान में किया जाता है। अगर यह व्यय लोक ऋणों की अदायगी में न व्यय किया जाता तो विकास कार्यों पर किया जाता।

**ब्याज भुगतान का सार्वजनिक व्यय में अनुपात**  
(Ratio of Interest Payment and Revenue Public Expenditure)  
( करोड़ रुपयों में )


वर्ष	ब्याज भुगतान	राजस्व खाते में कुल सार्वजनिक व्यय	राजस्व खाते का ब्याज भुगतान प्रतिशत
( 1 )	( 2 )	( 3 )	( 4 )
1950-51	32.40	346.00	9.00%
1960-61	118.80	926.00	9.84%
1965-66	183.20	1,974.00	9.20%
1977-78	1,521.34	9,362.29	16.20%
1980-81	2,604.00	14,410.00	18.00%
1990-91	21,471.00	73,516.00	29.20%
1996-97	59,478.00	1,58,933.00	36.80%
1999-2000	90,249.00	2,49,078.00	41.00%
2000-2001	99,314.00	2,77,839.00	39.50%
2001-2002	1,07,460.00	3,01,611.00	36.00%
2002-2003	1,15,994.00	3,41,648.00	35.00%
2003-2004	1,23,223.00	3,66,227.00	34.50%

वर्ष 2000-2001 से ऋण का भार कम होता दिखाई पड़ रहा है क्योंकि ब्याज भुगतान और सार्वजनिक व्यय का अनुपात कम हो रहा है क्योंकि ब्याज दर कम हो जाने से भुगतान की मात्रा व अनुपात भी कम हो गए हैं।

(5) **लोक ऋण तथा परिसम्पत्ति निर्माण** (Public Debt and Asset creation)—अर्थव्यवस्था पर सार्वजनिक ऋण का भार इस पर भी निर्भर करता है कि इन ऋणों का उपयोग किस प्रकार से किया गया है। उदाहरणार्थ, यदि बढ़ते हुए लोक ऋण की क्षतिपूर्ति परिसम्पत्ति निर्माण से हो जाती है तो लोक ऋण का भार कम महसूस होता है। भारत में ज्यादाकर आन्तरिक ऋणों से प्राप्त पूँजी का प्रयोग सार्वजनिक क्षेत्र में पूँजी निर्माण करने के लिये किया गया है। अग्र तालिका में यह दर्शाया गया है कि सन् 1990-91 में भारत का लोक ऋण का कुल दायित्व 3,14,257.81 करोड़ रुपये था, उनमें से 2,36,740.30 करोड़ रुपये का प्रयोग पूँजीगत सम्पत्ति को निर्माण

**नोट**

करने में प्रयोग किया गया। इस प्रकार सरकार पर 77,5170.56 करोड़ रुपये का अतिरिक्त दायित्व रह गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय अर्थव्यवस्था पर लोक ऋण का बुरा प्रभाव नहीं पड़ रहा है। इस दायित्व को अधिक भार के रूप में नहीं आंका जाना चाहिए।

 टास्क ब्याज भुगतान का सार्वजनिक व्यय में अनुपात को स्पष्ट करें।

**लोक ऋण तथा पूँजीगत व्यय ( करोड़ रुपयों में )**

वर्ष	लोक ऋण के रूप में कुल दायित्व	राज्यों तथा यू.टी. को ऋण तथा पूँजीगत व्यय	पूँजीगत व्यय पर अतिरिक्त दायित्व तथा ऋण ( राज्यों तथा यू.टी. को दिया गया अग्रिम )	कुल योग
( 1 )	( 2 )	( 3 )	( 4 )	( 5 )
1950-51	2,565.40	1,709.69	856.71	2,566.40
1980-81	58,998.36	58,998.81	—	58,998.81
1990-91	3,14,257.81	2,36,740.30	77,517.56	3,14,257.86
1995-96	6,05,932.32	3,96,978.88	2,08,953.47	6,05,932.35
1996-97	6,68,518.99	4,33,129.57	2,42,246.31	6,75,375.88
1999-2000	10,20,729.00	6,07,705.47	4,13,023.91	10,20,729.38
2000-2001	11,68,241.02	6,76,581.12	4,91,659.90	11,68,241.02
2001-2002	13,66,108.43	7,60,592.44	6,05,515.99	13,66,108.43
2002-2003	15,61,575.51	8,54,760.18	7,06,815.33	15,61,575.51
2003-2004	17,79,763.00	9,56,444.48	8,23,319.39	17,79,763.87

**विदेशी ऋण भार (Burden of External Debt)**

आन्तरिक ऋण की भाँति सरकार का विदेशी ऋण भी तेजी से बढ़ा है और इसके परिणामस्वरूप उसका भुगतान का भार भी बढ़ता जा रहा है। विदेशी ऋण का भुगतान करना अपने आप में एक जटिल समस्या है क्योंकि इसके अदा करने में न केवल देश की वस्तुओं एवं सेवाओं का दूसरे देश में स्थानान्तरण होता है बल्कि देश के नागरिकों की क्रय शक्ति में भी गिरावट आ जाती है जिसका उपयोग देश में उपभोग अथवा विनियोग बढ़ाने में हो सकता है। इसके अतिरिक्त इसका प्रभाव बजट क्रियाओं एवं भुगतान सन्तुलन पर भी पड़ता है। रुपये का विदेशी मुद्राओं में प्रतिस्थापन देश के भुगतान सन्तुलन पर बुरा प्रभाव डालता है क्योंकि निर्यात आधिक्य तो केवल विदेशी ऋण के भुगतान में ही शोषित हो जाता है। सरकार को जब विदेशी ऋण का भुगतान करना होता है तो उसको अपने विनियोग तथा विकास कार्यक्रमों में कटौती करनी पड़ती है।

भारत सरकार द्वारा विदेशी ऋण भुगतान प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में 13.5 करोड़ रुपये था जो तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में बढ़कर 237.00 करोड़ रुपये हो गया। इसी दौरान कुल ऋण सेवाओं का शुल्क ( अर्थात् पूँजी तथा ब्याज ) 23.6 करोड़ रुपये से बढ़कर 542.6 करोड़ रुपये हो गया। सन् 1989-90 में कुल ब्याज भुगतान बढ़कर 3,566.00 करोड़ रुपया हो गया तथा कुल ऋण सेवायें शुल्क 8,864.00 करोड़ रुपये हो गया। विभिन्न योजनाओं एवं वर्षों में बाह्य ऋण सेवाएँ संलग्न तालिका में दर्शायी गयी हैं।

नोट

## बाह्य ऋण सेवाएँ

अवधि	परिशोधन	ब्याज भुगतान	कुल ऋण सेवाएँ
1. प्रथम योजना	10.5	13.5	23.5
2. द्वितीय योजना	55.2	64.2	119.4
3. तृतीय योजना	305.6	237.0	542.7
4. 1977-78	524.7	271.3	796.0
5. 1980-81	517.8	286.1	803.9
6. 1987-88	3,658.00	2,254.00	5,912.00
7. 1988-89	4,298.00	2,709.00	7,007.00
8. 1989-90	4,898.00	3,566.00	8,864.00

\* आर्थिक सर्वे

तालिका से स्पष्ट है कि बाह्य ऋण के ब्याज भुगतान की राशि बड़ी मात्रा में बढ़ती जा रही है जिसका हमारे भुगतान सन्तुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। भारत सरकार कठिन शर्तों पर और अधिक बाह्य ऋण नहीं ले सकती। बाह्य ऋण सेवाओं के बदले शुल्क चुकाने के लिए निर्यातों को प्रोत्साहन एवं आयात प्रतिस्थापना करना होगा। भारत आयातों के प्रतिस्थापन के लिए कठिन प्रयास कर रहा है।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

- मार्च, 1947 में भारत सरकार का कुल लोक ऋण कितना था?
  - 2,381.39 करोड़ ₹
  - 3,381.39 करोड़ ₹
  - 4,381.39 करोड़ ₹
  - 5,381.39 करोड़ ₹।
- भारत के लोक ऋण को कितने वर्गों में बाँटा जा सकता है?
  - एक
  - दो
  - तीन
  - चार।
- स्थायी ऋण को अन्य किस ऋण के रूप में जाना जाता है?
  - अस्थायी
  - सार्वजनिक
  - कोषित
  - स्थायी।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर लोक ऋण के भार में क्या परिवर्तन हो रहा है?
  - घटता जा रहा है
  - समान है
  - असमान है
  - बढ़ता जा रहा है।
- लोक ऋण का भार क्या बढ़ाने में सहायक है?
  - कर
  - आय
  - व्यय
  - लाभा

**24.3 सारांश (Summary)**

- द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि में भारत को अपने स्टर्लिंग ऋणों को चुकाने का अवसर मिला, यद्यपि इस कार्य के लिए विकास कार्यों का जो बलिदान किया गया, वह कम बढ़ा नहीं था। युद्धकाल में भारत ने इंग्लैण्ड



## नोट

को भारी मात्रा में सैनिक एवं असैनिक सामग्री का निर्यात किया, जिसके भुगतान में हमें भारतीय रिजर्व बैंक की तिजोरियों में रखने को केवल स्टर्लिंग परिसम्पत्तियाँ (sterling assets) ही मिलीं।

- मार्च, 1947 में भारत सरकार का कुल लोक ऋण 2,381.39 करोड़ रुपये था। सन् 1946 में भारत के विभाजन के कारण अविभाजित भारत सरकार की परिसम्पत्तियों तथा देयताओं (assets and liabilities) को बाँटने की समस्या उठ खड़ी हुई।
- कोषागार जमा रसीदों का मुख्य उद्देश्य अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा व्यावसायिक बैंकों की अतिरिक्त तरलता को समेटना है। इन्हें 6, 9 तथा 12 महीने की परिपक्वता के लिए केवल व्यावसायिक बैंकों को ही जारी किया जाता है तथा इन पर ब्याज की दर नीची होती है।
- भारत का आन्तरिक लोक ऋण जो 1950-51 में 2,022.36 करोड़ था वह 1990-91 में बढ़कर 1,54,003.77 करोड़ हो गया। इस प्रकार भारत का आन्तरिक लोक ऋण 1950-51 के मुकाबले 1990-91 में लगभग 76 गुना बढ़ गया।
- सन् 1980-81 में भारत सरकार पर कुल बाजार के उधार का दायित्व 2,949.00 करोड़ रुपये का था जिसमें से 270.00 करोड़ रुपये का वापिस भुगतान कर दिया गया। इस प्रकार 1980-81 में आन्तरिक ऋण में विशुद्ध बढ़ोत्तरी 2,679.00 करोड़ रुपये की थी।
- एक आदर्श विकसित देश को विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विदेशी सहायता की अधिक आवश्यकता होती है। इस प्रकार की सहायता विदेशों से पूँजीगत साधनों तथा औद्योगिक कच्चा माल खरीदने के लिये उपयोग में लायी जा सकती है।
- सन् 1950-51 में भारत पर कुल बाह्य ऋण भार केवल 32.03 करोड़ रुपये था जो बढ़कर सन् 1990-91 में 31,524.97 करोड़ रुपये हो गया। इस प्रकार 1950-51 के मुकाबले 1990-91 में बाह्य लोक ऋण से 100 गुने के लगभग की वृद्धि हो गयी।
- भारत सरकार का सन् 1980-81 में कुल विदेशी उधार 1,728.00 करोड़ रुपये था जिसमें सरकार ने 447.00 करोड़ रुपये का ऋण वापिस कर दिया। इस प्रकार इस वर्ष विशुद्ध विदेशी ऋण 1,281.00 करोड़ रुपये था।
- भारत में बाह्य लोक ऋण कई रूपों में प्राप्त किया जाता है। ये ऋण शर्त सहित ऋण, रुपये में अदायगी वाले ऋण एवं विदेशी मुद्रा के रूप में अदायगी वाले ऋण हो सकते हैं। सामान्यतः कृषि आधिक्य वस्तुएँ रुपये के भुगतान के रूप में प्राप्त हुईं।
- भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं जैसे—अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, अन्तर्राष्ट्रीय विकास एवं पुनर्निर्माण बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष, एशियन विकास बैंक आदि से भी बाह्य ऋण प्राप्त किया है।
- जहाँ तक विभिन्न देशों से ऋण प्राप्त करने की बात है भारत को अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को छोड़कर अमेरिका से सबसे अधिक ऋण प्राप्त हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से जो ऋण प्राप्त किया जाता है उसमें अन्य विदेशी देशों के मुकाबले राजनैतिक तत्त्व का कुछ कम दखल होता है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण विकास बैंक से प्राप्त होने वाले ऋण की ब्याज दर बहुत ऊँची है तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ को विकसित देशों से कम सहायता मिलने के कारण वह कम ब्याज पर ऋण थोड़ी मात्रा में ही दे पाता है।
- भारतीय अर्थव्यवस्था पर लोक ऋण का भार बढ़ता जा रहा है, इस सम्बन्ध में विशेषकर संसद, विधान सभाओं एवं अन्य मंचों पर वाद-विवाद का विषय रहा है कि भार में लोक ऋण प्राप्त करने की अधिकतम सीमा आ चुकी है, अब आगे ऋण का भार न बढ़ाया जाए। यह इस तथ्य पर आधारित है कि लोक ऋण अधिक मात्रा में लिया जा चुका है और इसका भार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।
- सन् 1951 में राष्ट्रीय आय में आन्तरिक लोक ऋण का प्रतिशत 22 था जो बढ़कर 1990-91 में 52.00 प्रतिशत हो गया। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस अनुपात में 1950-51 से निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस तथ्य की यदि दूसरे विकसित देशों जैसे—इंग्लैण्ड (78.8%), आयरलैण्ड (68%), अमेरिका

## नोट

(41.2%) तथा आस्ट्रेलिया (40.8%) आदि से तुलना की जाए तो पाते हैं कि भारत का आन्तरिक लोक ऋण का भार अधिक नहीं है।

- आन्तरिक ऋण की भाँति सरकार का विदेशी ऋण भी तेजी से बढ़ा है और इसके परिणामस्वरूप उसका भुगतान का भार भी बढ़ता जा रहा है। विदेशी ऋण का भुगतान करना अपने आप में एक जटिल समस्या है क्योंकि इसके अदा करने में न केवल देश की वस्तुओं एवं सेवाओं का दूसरे देश में स्थानान्तरण होता है बल्कि देश के नागरिकों की क्रय शक्ति में भी गिरावट आ जाती है जिसका उपयोग देश में उपभोग अथवा विनियोग बढ़ाने में हो सकता है।

## 24.4 शब्दकोश (Keywords)

- विधानमण्डल (Legislature)—राज्य के दोनों सदनों, विधान सभा और विधान परिषद् का सामूहिक नाम।
- सममूल्य (At par)—समान भाव।

## 24.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत में लोक ऋण के विकास के इतिहास का संक्षिप्त परिचय दें।
2. भारत में लोक ऋण को कितने वर्गों में बाँटा जा सकता है? प्रत्येक का संक्षिप्त परिचय दें।
3. बाह्य लोक ऋण की संरचना का वर्णन करें।
4. कर आगम तथा ऋण सेवाओं को स्पष्ट करें।
5. अल्प बचत योजनाएँ क्या हैं?

## उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |              |          |        |               |
|--------------|----------|--------|---------------|
| 1. युद्ध     | 2. 1939  | 3. 736 | 4. विश्वयुद्ध |
| 5. स्टर्लिंग | 6. (अ)   | 7. (स) | 8. (स)        |
| 9. (द)       | 10. (अ)। |        |               |

## 24.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त—न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक वित्त—एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
3. भारतीय लोक वित्त प्रशासन—मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
4. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस—सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
5. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस—नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
6. पब्लिक फाइनेंस—सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
7. पब्लिक फाइनेंस—नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## **इकाई-25: भारतीय कर प्रणाली** **(Indian Tax System)**

### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 भारतीय कर प्रणाली के मुख्य लक्षण (Salient Features of Indian Tax System)

25.2 भारतीय कर संरचना (Indian Tax Structure)

25.3 सारांश (Summary)

25.4 शब्दकोश (Keywords)

25.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

25.6 सन्दर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- भारतीय कर प्रणाली के मुख्य लक्षणों से अवगत होने में।
- भारतीय कर की संरचना को समझने में।
- केन्द्र सरकार की आय के स्रोत को जानने हेतु।
- राज्य सरकारों के मुख्य करों की जानकारी प्राप्त करने में।
- स्थानीय शासन के मुख्य करों को स्पष्ट करने हेतु।

### **प्रस्तावना (Introduction)**

भारतीय कर प्रणाली में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना के उद्देश्य से आय की विषमताओं को कम करने पर बल दिया गया। इसी उद्देश्य से भारतीय कर प्रणाली को प्रगतिशील करारोपण संरचना पर केन्द्रित किया गया।

भारत में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार के कर लगाए जाते हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति पर करों का कुछ-न-कुछ भार पड़ता है। भारत में संघीय वित्त व्यवस्था है जिसके अनुसार संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के आय के साधनों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

कृषि आय को छोड़कर अन्य स्रोतों से प्राप्त जो कर केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाया जाता है, उसे आय-कर कहते हैं। जहाँ तक आय-कर वितरण पर प्रभाव का प्रश्न है, इसे काफी प्रभावशील स्वीकार किया जाता है क्योंकि इसे प्रगतिशील बनाकर असमानताओं को दूर किया जा सकता है। साथ ही आर्थिक स्थिरता बनाए रखने में आय का बहुत महत्त्व है।

## 25.1 भारतीय कर प्रणाली के मुख्य लक्षण (Salient Features of Indian Tax System)

भारतीय कर प्रणाली में स्वतंत्रता के बाद सुधार लाने के लिए भारत सरकार ने समय-समय पर कर जाँच आयोग एवं कर जाँच समितियों की स्थापना की है। वर्ष 1953 में **डॉ. जॉन मथाई** की अध्यक्षता में कर प्रणाली में सुधार लाने और आय की विषमताओं को दूर करने के लिए कर जाँच आयोग की स्थापना की गई। इसके बाद कर प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन लाने के लिए कैम्ब्रिज अर्थशास्त्री **प्रो. कोल्डर** की अध्यक्षता में एक सदस्यीय समिति बनाई गई। **प्रो. कोल्डर** ने देश में नवीन कर प्रणाली लागू करने का सुझाव दिया इसके बाद जून 1958 में **महावीर त्यागी** की अध्यक्षता में प्रत्यक्ष कर जाँच समिति की नियुक्ति की गई। प्रत्यक्ष कराधान को सरल एवं युक्ति संगत बनाने के लिए मार्च 1968 में भुतलिंगम समिति गठित की गई। देश में कर चोरी एवं कर-वंचना को रोकने के लिए 1970 में वान्चू समिति गठित की गई। अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में सुधार लाने के लिए जुलाई 1976 में **श्री एल. के. झा** की अध्यक्षता में अप्रत्यक्ष कर जाँच समिति गठित की गई। इसके बाद 1977 में प्रत्यक्ष कर नियमों के सरलीकरण के लिए **श्री सी. सी. चौकसी** की अध्यक्षता में प्रत्यक्ष कर चौकसी जाँच समिति गठित की गई। इसी प्रकार आगामी वर्षों में भारतीय कर प्रणाली में सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करने के लिए **राजा चलैया समिति**, **रेखी समिति** आदि का गठन किया गया।

उपर्युक्त अनेक समितियों के सुझावों के आधार पर समय-समय पर भारतीय कर प्रणाली में संशोधन किए गए हैं। इन संशोधनों के बाद भारतीय कर प्रणाली में निम्नांकित प्रमुख लक्षण दिखाई देते हैं—

- (1) **करारोपण के सिद्धान्त के अनुकूल**—भारतीय कर प्रणाली करारोपण के सिद्धान्तों के अनुकूल है। भारतीय कर प्रणाली में समानता, प्रगतिशीलता, निश्चितता, लोचता, मितव्ययिता, उत्पादकता आदि सभी प्रमुख सिद्धान्तों का समावेश है।
- (2) **आय प्राप्ति का मुख्य स्रोत**—भारतीय कर प्रणाली भारतीय संघीय व्यवस्था में केन्द्र और राज्य दोनों सरकारों के लिए पर्याप्त आय के स्रोत उत्पन्न करने का माध्यम है।
- (3) **उच्चतम आयकर सीमा में कमी**—आरम्भ में भारत में आयकर की उच्चतम दर एक सीमा के बाद 97.75 प्रतिशत थी जिसे वान्चू समिति की सिफारिशों के आधार पर घटाया गया। वर्तमान में आयकर की उच्चतम सीमा को घटाकर 30 प्रतिशत तक ले आया गया है। आयकर की इस उच्चतम सीमा में कटौती से भारतीय कर प्रणाली कर की चोरी को रोकने में काफी सफल रही है।
- (4) **आय की असमानताओं को घटाने का समाजवादी उद्देश्य**—स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना के उद्देश्य से आय की विषमताओं को कम करने पर बल दिया गया। इसी उद्देश्य से भारतीय कर प्रणाली को प्रगतिशील करारोपण संरचना पर केन्द्रित किया गया। प्रत्यक्ष करों से निर्धनतम वर्ग को छूट प्रदान की गई और धनी वर्ग पर प्रगतिशील दर से करारोपण किया गया। इसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष करों में भी गरीब वर्ग द्वारा उपभोग की जा रही आवश्यक वस्तु को कर मुक्त रखा गया तथा आरामदायक और विलासितापूर्ण वस्तुओं के उपभोग पर प्रगतिशील दर से करारोपण किया गया। इन प्रयासों का उद्देश्य आय की विषमताओं को कम करना रहा है।



**नोट्स** मार्च 1968 में भुतलिंगम समिति गठित की गई।

इन प्रयत्नों के बावजूद आय की असमानता को कम करने में भारतीय कर प्रणाली सफल नहीं रही इसके कई कारण रहे हैं, यथा—

- भारतीय कर ढाँचे में परोक्ष करों का बोलबाला। 1990 के दशक सुधारों के कारण इस स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ है।

**नोट**

- आय कर के भुगतान करने वालों की संख्या काफी कम। 100 करोड़ की जनसंख्या वाले देश में आय-कर दाताओं की संख्या 1 प्रतिशत भी नहीं है।
  - बड़े पैमाने पर कर की चोरी।
  - कुल घरेलू उत्पाद में कर राजस्व का हिस्सा 20 प्रतिशत से भी कम। इसलिए कर कुल आय के वितरण को प्रभावित करने में अधिक सक्षम नहीं रहा है।
- (5) **प्रत्यक्ष करों की तुलना में अप्रत्यक्ष करों का अधिक होना**—प्रत्यक्ष करों का कर वंचन सम्भव है, किन्तु अप्रत्यक्ष करों का नहीं। इसी कारण भारतीय कर प्रणाली को अधिक व्यापक बनाने के लिए भारतीय कर प्रणाली में अप्रत्यक्ष करों को प्रतिशत प्रत्यक्ष करों की तुलना में अधिक है। व्यापकता की दृष्टि से भारतीय कर प्रणाली उपयुक्त है।
- (6) **अधिकतम सामाजिक लाभ**—भारतीय कर प्रणाली का उद्देश्य केवल आय प्राप्त करना ही नहीं है बल्कि देश में अधिकतम सामाजिक लाभ की दशा भी सुनिश्चित करना है। भारतीय कर प्रणाली में इस बात का ध्यान रखा गया है कि करारोपण का विनियोग, बचत एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और जनता को अधिकतम सन्तुष्टि एवं कल्याण मिल सके।
- (7) **बहुकर प्रणाली**—भारतीय कर प्रणाली में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का समावेश होने के कारण भारतीय कर प्रणाली व्यावहारिक रूप में बहुकर प्रणाली है।

**क्या भारतीय कर प्रणाली में अच्छी कर प्रणाली की विशेषताएँ हैं?**

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय कर प्रणाली में अच्छी कर प्रणाली की विशेषताएँ हैं क्योंकि इसमें अपेक्षित निम्न गुण विद्यमान हैं—

- (1) **समानता पर आधारित**—भारत में लगाए गए प्रत्यक्ष कर यथा आय-कर, सम्पत्ति कर, मृत्यु कर आदि प्रगतिशील होने के कारण समानता पर आधारित हैं।
- (2) **विविधता विद्यमान है**—भारतीय कर प्रणाली में विविधता विद्यमान है अर्थात् यहाँ अनेक प्रकार के कर लगाए जाते हैं—जैसे केन्द्र सरकार द्वारा आय-कर, सम्पत्ति कर, निगम कर, आयात-निर्यात कर, उत्पादन शुल्क आदि कर लगाए जाते हैं, वहीं राज्य सरकारों द्वारा विक्रय-कर, मनोरंजन कर, मोटर वाहनों पर कर, लगान इत्यादि कर लगाए जाते हैं।
- (3) **निश्चितता का सिद्धान्त**—भारतीय कर प्रणाली में विविधता का गुण भी है क्योंकि बजट प्रस्तुत करते समय करों की दर, सरकार को प्राप्त होने वाली सम्भावित आय आदि का उल्लेख कर दिया जाता है। सरकार द्वारा समय-समय पर प्रचार-प्रसार के माध्यम से भुगतान की विधि की सूचना भी दे दी जाती है।
- (4) **कर प्रणाली लोचपूर्ण है**—भारतीय कर प्रणाली लोचपूर्ण है क्योंकि प्रतिवर्ष करों की दर में परिवर्तन करके सरकार अपने राजस्व में परिवर्तन करती रहती है।
- (5) **उत्पादकता का गुण है**—भारतीय कर प्रणाली में इस अर्थ में उत्पादकता का गुण विद्यमान है कि करों से होने वाली आय में निरन्तर वृद्धि हो रही है। केन्द्रीय सरकार, संघ-शासित क्षेत्र एवं राज्य सरकारों को करों (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर) से प्राप्त होने वाली आय निरन्तर बढ़ रही है।
- (6) **प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर विद्यमान हैं**—भारत में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर दोनों ही प्रकार के कर लगाए जाते हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति पर करों का कुछ-न-कुछ भार पड़ता है। जहाँ धनी वर्ग पर प्रत्यक्ष कर लगाए जाते हैं अन्य वर्ग भी अप्रत्यक्ष करों का भुगतान कर सरकार के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करते हैं। भारत में कर राजस्व में अप्रत्यक्ष करों का योगदान अधिक है।
- (7) **अधिकतम सामाजिक लाभ का सिद्धान्त**—कर लगाते समय सरकार इस बात का ध्यान रखती है कि करों का विनियोग, बचत एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े तथा लोगों की अधिकतम सन्तुष्टि हो जिससे कल्याण में वृद्धि हो।

## नोट

## भारतीय कर प्रणाली में कुछ दोष भी हैं।

उपर्युक्त गुणों के होने पर भी भारतीय कर प्रणाली में कुछ दोष भी विद्यमान हैं जो यहाँ की अच्छी कर प्रणाली में कुछ प्रश्न लगा देते हैं। इनका विवेचन निम्न प्रकार है—

- (1) **मितव्ययी नहीं**—भारत में करों की वसूली का खर्च अधिक है जो राजस्व की तुलना में निरन्तर बढ़ रहा है। करों से जितना राजस्व वसूल किया जाना चाहिए, उतना वसूल नहीं हो पा रहा है क्योंकि बीच में काफी भ्रष्टाचार होता है।
- (2) **प्रशासनिक अकुशलता**—करों की वसूली से सम्बन्धित जो प्रशासन तन्त्र भारत में विद्यमान है, उसमें अपेक्षित कुशलता नहीं है जिससे कुशलतापूर्वक करों की वसूली नहीं हो पाती तथा भारी मात्रा में अपवंचन होता है।
- (3) **करों की चोरी**—भारत में करों की चोरी (Tax Evasion) एक आम बात है। सम्पन्न एवं धनी वर्ग के लोग जिन्हें सरकारी खजाने से आय नहीं मिलती प्रायः अपनी आय के झूठे तथ्य प्रस्तुत करके कर की चोरी करने में सफल हो जाते हैं।
- (4) **अप्रत्यक्ष करों का अधिक बोझ**—भारत में प्रत्यक्ष करों से पूरी वसूली का प्रयास नहीं किया जा रहा है यही कारण है कि आय-कर की बड़े पैमाने पर चोरी हो रही है। आँकड़े बताते हैं कि पिछले वर्षों में अप्रत्यक्ष करों का प्रतिशत बढ़ा है। अप्रत्यक्ष करों की बहुलता ने निर्धन वर्ग पर अधिक बोझ डाला है जबकि सम्पन्न वर्ग पात्रता के अनुसार बोझ का वहन नहीं कर रहा है।
- (5) **ग्रामीण क्षेत्र पर अपेक्षित कम भार**—भारत में कृषि आय को कर-मुक्त रखा गया है जबकि ग्रामीण क्षेत्र में कृषि आय का प्रमुख स्रोत है और भूस्वामियों का ऐसा बड़ा वर्ग है जो कृषि कर का भुगतान कर सकता है। इसके विपरीत शहरी क्षेत्र पर करों का भार बढ़ता जा रहा है।
- (6) **सामाजिक न्याय की प्राप्ति अनुकूल नहीं**—भारत जैसे देश में करों को सामाजिक न्याय (Social justice) की प्राप्ति का अस्त्र माना गया है, किन्तु भारत में करारोपण अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ है। जहाँ सम्पन्न वर्ग में अधिक कर सहने की क्षमता है वे थोड़े भार के साथ बच जाते हैं और निर्धन वर्ग को अधिक कर का बोझ सहना पड़ता है जबकि उनकी कर देय क्षमता कम होती है।

उपर्युक्त कमियों के होते हुए भी भारतीय कर प्रणाली सुधारों की ओर उन्मुख है। भारत सरकार इसी उद्देश्य से समय-समय पर विभिन्न कर समितियों की स्थापना करती है और वर्तमान में भी भारतीय कर प्रणाली को अधिक व्यावहारिक एवं उपादेय बनाने के लिए प्रगतिशील है।



क्या आप जानते हैं भारतीय कर प्रणाली व्यावहारिक रूप में बहुकर प्रणाली है।

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. वर्ष 1953 में ..... की अध्यक्षता में कर प्रणाली में सुधार लाने और आय की विषमताओं को दूर करने के लिए कर जाँच आयोग की स्थापना की गई।
2. .... ने देश में नवीन कर प्रणाली लागू करने का सुझाव दिया।
3. प्रत्यक्ष करारधान को सरल एवं युक्ति संगत बनाने के लिए मार्च ..... में भुतलिंगम समिति की नियुक्ति की गई।
4. भारतीय कर प्रणाली ..... के सिद्धांतों के अनुकूल है।
5. भारत जैसे देश में करों को सामाजिक न्याय की प्राप्ति का ..... माना गया है।

नोट

## 25.2 भारतीय कर संरचना (Indian Tax Structure)

भारत में संघीय वित्त व्यवस्था है जिसके अनुसार संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के आय के साधनों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। आय प्राप्त करने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों को कुछ कर लगाने का अधिकार संविधान में दिया गया है। इसी प्रकार राज्यों में जो स्थानीय संस्थाएँ जैसे, ग्राम पंचायत, नगरपालिका, जिला बोर्ड एवं नगर-निगम कार्यरत होती हैं इन्हें भी आय प्राप्त करने के लिए कुछ-न-कुछ कर लगाने का अधिकार दिया गया है जो स्थानीय वित्त (Local Finance) से सम्बन्धित है।

### (A) केन्द्र सरकार की आय के स्रोत (Sources of Revenue of Central Government)

अथवा

### केन्द्र सरकार द्वारा लगाए जाने वाले मुख्य कर (Major Taxes of The Central Government)

कर केन्द्रीय सरकार की आय का मुख्य स्रोत है। केन्द्र सरकार की आय को मोटे तौर पर हम दो भागों में बाँट सकते हैं—

- (I) करों से प्राप्त आय (Tax Revenue)
- (II) गैर-कर साधनों से प्राप्त आय (Non-Tax Revenue)

#### I. करों से प्राप्त आय (Tax Revenue)

##### 1. आय-कर (Income Tax)

कृषि आय को छोड़कर, अन्य स्रोतों से प्राप्त व्यक्तिगत आय पर जो कर केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाया जाता है, उसे आय-कर कहते हैं। आय-कर से प्राप्त राजस्व को केन्द्र एवं राज्यों के बीच विभाजित किया जाता है। दसवें वित्त आयोग की सिफारिश के अनुसार आय-कर राजस्व में से 77.5 प्रतिशत राज्यों को दिया गया; आय-कर पर जो अधिभार लिया जाता है उसका विभाजन नहीं किया जाता वरन् उस पर पूर्ण रूप से केन्द्रीय सरकार का ही अधिकार रहता है।

**आय-कर की विशेषताएँ**—भारत में आय-कर की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

- (1) आय-कर, प्रगतिशील दर से लिया जाता है अर्थात् जैसे-जैसे आय बढ़ती है, कर की दर भी बढ़ती जाती है। इस प्रकार यह कर देने की योग्यता (Ability to pay) के सिद्धान्त पर आधारित है अर्थात् जिनमें अधिक कर देने की क्षमता है उन्हें अधिक कर देना चाहिए।
- (2) आय-कर, कुल आय पर नहीं वरन् शुद्ध आय (Net Revenue) पर लगाया जाता है। शुद्ध आय, वह आय है जो कुछ आवश्यक कटौतियों के बाद प्राप्त होती है।
- (3) आय-कर एक वर्ष अवधि में प्राप्त आय पर लगाया जाता है जिसे वित्तीय वर्ष कहते हैं।
- (4) आय-कर, नियमित रूप से प्राप्त आय पर तो लगाया ही जाता है साथ ही इसमें उस आय को भी शामिल किया जाता है जो आकस्मिक रूप से प्राप्त होती है। इसे अन्य स्रोतों से आय (Income from other Sources) के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जाता है।
- (5) एक विशेष सीमा तक आय-कर नहीं लगाया जाता जिसे छूट की सीमा कहते हैं। वर्तमान में आयकर से छूट के लिए वार्षिक आय की सीमा 50,000 रुपए है।
- (6) आय-कर को प्रगतिशील बनाने के लिए कराधान की खण्ड पद्धति (Slab System of Taxation) का सहारा लिया जाता है तथा ऊँची आय के खण्डों पर अधिक ऊँची दर से कर लिया जाता है।

## नोट

**आय-कर लगाने के लिए आय का विभाजन**—आय-कर लगाने के लिए आय को निम्न 5 भागों में विभाजित किया गया है—वेतन, सम्पत्ति, व्यवसाय, पूँजीगत लाभ एवं अन्य स्रोत जिसमें लाभांश शामिल है।

**आय-कर का प्रशासन** (Administration of Income Tax)—आय-कर लगाने के लिए आय का निर्धारण दो प्रकार से किया जा सकता है—**प्रथम**, स्रोत पर ही इसका निर्धारण किया जा सकता है (जैसे, एक सरकारी कर्मचारी के वेतन का भुगतान आय-कर को काटकर किया जा सकता है) **दूसरे**, आय प्राप्तकर्ता को अपनी आय का विवरण प्रस्तुत करने का आदेश देकर उसके आधार पर आय-कर का निर्धारण किया जा सकता है।

**आय-कर के प्रभाव** (Effects of Income Tax)—यदि आय-कर बहुत प्रगतिशील होता है तो बचत एवं विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे उत्पादन का स्तर गिर जाता है। जब लोगों की आय का एक बड़ा प्रतिशत सरकार करों के रूप ले लेती है तो लोग बचत करने एवं कार्य करने को प्रोत्साहित नहीं होते। किन्तु सरकार यह कोशिश करती है कि इस कर का ज्यादा भार मजबूत कन्धों पर ही पड़े। साथ ही सरकार की वित्तीय आवश्यकता को देखते हुए आय-कर के प्रतिकूल प्रभावों को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं बताया जा सकता।

जहाँ तक आय-कर का वितरण पर प्रभाव का प्रश्न है इसे काफी प्रभावशील स्वीकार किया जाता है क्योंकि इसे प्रगतिशील बनाकर असमानताओं को दूर किया जा सकता है। साथ ही आर्थिक स्थिरता बनाए रखने में आय का बहुत महत्त्व है।

**आय-कर के गुण** (Merits of Income Tax)—आय-कर में निम्नलिखित गुण होते हैं—

1. यह कर अन्य करों की अपेक्षा, **भुगतान करने की योग्यता के अधिक अनुरूप** होता है क्योंकि प्रगतिशील कटौतियों, अतिकर और अधिभार का गुण इसमें होता है।
2. आय-कर के द्वारा आय और सम्पत्ति के वितरण में असमानता को दूर किया जा सकता है क्योंकि इसे प्रगतिशील (Progressive) बनाया जा सकता है।
3. **आय-कर भार विवर्तित नहीं किया जा सकता।** अतः इस कर का भार उसी व्यक्ति पर पड़ता है जिस पर सरकार द्वारा कर लगाया गया है।
4. आय-कर को आर्थिक मन्दी और तेजी की स्थिति (Boom and Depression) में **आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए** प्रयुक्त किया जा सकता है।
5. जहाँ अन्य कर उपभोक्ताओं को किसी विशेष दिशा में अपने व्यय में कटौती करने के लिये बाध्य करते हैं आय-कर **किसी विशेष दिशा में व्यय को सीमित नहीं करता।** जैसे, यदि शक्कर पर बिक्री कर लगा दिया जाय तो व्यक्ति उसका उपभोग कम कर देगा किन्तु आय-कर लग जाने से शक्कर का उपभोग कम नहीं होता।
6. आय-कर उत्पादक है क्योंकि सरकारों को इससे भारी आय प्राप्त होती है।
7. आय-कर बहुत लोचपूर्ण है। आय-कर की दर में जरा-सी वृद्धि करने पर आय में बहुत वृद्धि हो जाती है।

**आय-कर के दोष**—उपर्युक्त गुणों के बावजूद के आय-कर में निम्न दोष हैं—

1. आय-कर का सबसे बड़ा दोष यह है कि अन्य करों की अपेक्षा यह बचत और विनियोग को अधिक हतोत्साहित करता है।
2. कभी-कभी इसमें दोहरे कर (Double Taxation) की सम्भावना भी बनी रहती है।
3. आय-कर के मामले में कर अपवंचन (Tax Evasion) सबसे अधिक होता है अर्थात् जो लोग अधिक आय-प्राप्त करते हैं तथा जो कर-योग्य होते हैं, वे अपनी आय छिपाकर या झूठा हिसाब प्रस्तुत कर, आय-कर की चोरी करते हैं। वर्ष 1995-96 के अन्त में भारत में आय-कर देने वालों की संख्या केवल 120 लाख है जो कुल जनसंख्या के 1.25% से भी कम है।



टास्क आयकर की विशेषताओं को लिखें।



## नोट

## भारत में आय-कर-एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

विकसित देशों की तरह भारत में आय-कर कर-राजस्व का प्रमुख स्रोत नहीं है। जनसंख्या का एक प्रतिशत भाग भी इस कर का भुगतान नहीं करता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जो वास्तव में आय-कर देने योग्य हैं, उनकी पहचान नहीं हो पा रही है और ऐसे लोग सरकार की आंखों में धूल झोंककर बड़े पैमाने पर कर की चोरी कर रहे हैं। ऐसा अनुमान है कि आय-कर की वर्तमान दरों पर देश में लगभग दो-तिहाई कर-योग्य आय पर कर नहीं दिया जाता। यह कर अपवंचन उच्च आय समूह में सबसे ज्यादा है। वर्तमान में जो कर-योग्य हैं, उनमें से केवल एक-तिहाई ही कर दे रहे हैं, शेष कर की चोरी कर रहे हैं। कर चोरी को रोकने के लिए सरकार ने आय-कर की अधिकतम दर वर्तमान में व्यक्ति के लिए 30% एवं भागीदारी फर्म कम्पनी आदि के लिए 35% कर दी है।

1991 के मध्य से कर सुधार की जो प्रक्रिया शुरू हुई उसके अनुसार आय-कर प्रणाली को काफी सरल बनाया गया है तथा कर की दरों को काफी घटाया गया है। अभी (2010-11) में आय-कर की निम्न दरें लागू हैं—

आय पट्टी	दर (%)	
1,80,000 रुपए तक	शून्य	इनके अतिरिक्त 60 हजार रुपये से अधिक आय पर 5 प्रतिशत का अधिभार (surcharge) 2002-03 में लगाया गया।
1,80,001 से 5,00,000	10	
5,00,001 से 8.0 लाख रुपए	20	
8.0 लाख रुपए से ऊपर	30	

## 2. निगम कर (Corporation Tax)

निगम कर व्यावसायिक निगमों और कम्पनियों के लाभ पर लगाया जाने वाला कर है। यह उस कर से भिन्न है जो कम्पनी के लाभांश पर अंशधारियों द्वारा दिया जाता है। 1959-60 तक इस कर को सुपर टैक्स (Super Tax) के नाम से जाना जाता था। बाद में इसे आय पर लगाए जाने वाले करों में शामिल कर, निगम कर का नाम दिया गया। निगम कर ब्याज, मजदूरी तथा मूल्य ह्रास जैसी सभी लागतों को निकालने के बाद उन करयोग्य लाभों (अर्थात् निबल लाभों) में अदा किए जाते हैं जो किसी कर निर्धारण वर्ष में निगम द्वारा कमाए जाते हैं। व्यक्ति की आय की तरह कम्पनियों की आय पर कर निर्धारण करते समय वेतन, प्रतिभूतियों पर ब्याज, सम्पत्ति लाभ से आय तथा व्यावसायिक प्राप्तियाँ व्यवसाय आय, पूँजी प्राप्तियाँ तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त आय आदि को सम्मिलित किया जाता है यद्यपि सफल आय पर निर्धारण में भत्ते और कटौतियों को ध्यान में रखा जाता है। इस प्रकार कम्पनियों की आय पर कर निर्धारण में कम्पनियों की आय पर कर निर्धारण के कम्पनियों के लाभों में से वैधानिक कटौतियाँ घटा दी जाती हैं जो कि वित्तीय एक्ट में निर्धारित की गई। कम्पनियों पर कर तथा कर अधिभार दोनों लगाए जा सकते हैं जिन्हें बजट में घोषित किया जाता है।

1959-60 में काल्डोर द्वारा 1956 में की गई अनुशंसा के आधार पर भारत में जिस निगम कर को अपनाया गया वह इस कर की क्लासिकल विचारधारा के अनुकूल थी। इस विचारधारा के अनुसार कम्पनी या निगम का पृथक् अस्तित्व होता है। इस कारण कम्पनी के कुल लाभ पर पृथक् निगम कर लगाया जा सकता है।

चेल्साह समिति (1991) ने निगम कर की पूरी जाँच की। इसने भी क्लासिकल विचारधारा का ही समर्थन किया तथा सिफारिश की कि 1992-93 से 1994-95 तक निगम कर की दर को घटाकर 40 प्रतिशत कर देना चाहिए। लेकिन 1992-93 तथा 1993-94 में इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया। 1994-95 में घरेलू कम्पनियों पर निगम कर की दर को घटाकर 45 प्रतिशत तथा 40 प्रतिशत तथा विदेशी कम्पनियों पर 55 प्रतिशत किया गया।

1996-97 के बजट में शून्य कर कम्पनियों को वैकल्पिक कर (Minimum Alternative Tax-MAT) के अन्तर्गत लाया गया। 1997-98 के बजट में घरेलू तथा विदेशी कम्पनियों पर निगम कर की दरों को क्रमशः 40 तथा 55 प्रतिशत घटाकर 35 तथा 48 प्रतिशत कर दिया गया। 2000-01 के बजट में MAT की दर को 10.5 प्रतिशत से घटाकर 7.5 प्रतिशत कर दिया गया। 2001-02 के बजट में निगम कर पर लगे सभी अधिभार (surcharge)

## नोट

को समाप्त कर दिया गया और केवल 20% गुजरात अधिभार बरकरार रहा। 2002-03 के बजट में घरेलू कम्पनियों की निगम कर दर को 35 प्रतिशत पर ही छोड़ दिया गया, जबकि विदेशी कम्पनियों पर लगे कर की दर को 48 प्रतिशत से कम करके 40 प्रतिशत कर दिया गया।

वर्तमान समय में वैयक्तिक आयकर की तुलना में निगम कर से सरकार को अधिक राजस्व मिलता है। 1970-71 में इससे 371 करोड़ रुपए की प्राप्ति हुई। 1991-92 में यह बढ़कर 785 रुपए तथा 2002-03 के बजट में 48616 करोड़ रुपए हो गया। कुल केन्द्रीय कर राजस्व का इसके 20.62 प्रतिशत होने का अनुमान था।

### 3. सम्पत्ति कर (Wealth Tax)

सम्पत्ति कर एक व्यक्ति की सम्पत्ति अथवा धन अथवा पूँजी के कुल मूल्य पर प्रतिवर्ष लगाया है। यह व्यावसायिक कम्पनियों और निगमों की सम्पत्ति पर भी लगाया जाता है।

भारत में 1957 में प्रो. काल्डोर की सिफारिशों के फलस्वरूप सम्पत्ति कर को प्रारम्भ किया गया। उनका विचार था कि आय के साथ यदि सम्पत्ति पर भी कर लगाया जाये तो कर देने की सोयता का अच्छा आधार बन सकता है एवं उसका प्रशासन अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है। सम्पत्ति कर का बचत और विनियोगों पर वैसा प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता जैसा कि आय-कर का पड़ता है।

**सम्पत्ति कर की विशेषताएँ**—इस कर की निम्न विशेषताएँ हैं—

1. यह कर प्रगतिशील दर से लगाया जाता है।
2. इस कर को निजी व्यक्तियों, हिन्दू अविभाजित परिवारों एवं निजी व्यावसायिक कम्पनियों की विशुद्ध सम्पत्ति पर प्रतिवर्ष लगाया जाता है।
3. सम्पत्ति का मूल्यांकन बाजार दर पर किया जाता है। बाजार मूल्य का मूल्यांकन निश्चित नियमों के आधार पर किया जाता है।
4. इस कर का प्रशासन आय-कर विभाग के द्वारा किया जाता है।
5. कुछ सम्पत्तियों को सम्पत्ति कर से मुक्त रखा गया है जैसे—दान सम्पत्तियाँ, कृषि सम्पत्ति बीमा पॉलिसी, व्यक्तिगत फर्नीचर एवं गहने आदि।

**सम्पत्ति कर की वर्तमान दरें (Rates of Wealth Tax)**—वर्तमान में सम्पत्ति कर की दरें हैं—

15 लाख रुपए तक शून्य; 15 लाख से उपर 1%.

**सम्पत्ति कर की आलोचना**—सम्पत्ति कर की निम्न आलोचनाएँ की गई हैं—

1. सम्पत्ति कर की यह आलोचना की जाती है कि चूँकि यह प्रतिवर्ष लगाने वाला प्रगतिशील कर है, इसका बचत एवं विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है किन्तु यह ध्यान रखने योग्य है कि आय-कर की तुलना में इसका कम प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
2. भारत में कम्पनियों की सम्पत्ति पर लगाए जाने वाले सम्पत्ति कर की आलोचना की गई किन्तु जहाँ ये कम्पनियाँ कुछ ही लोगों के नियन्त्रण में तथा विस्तृत अंश पूँजी वाली हैं, उन पर यह कर न्यायोचित है।
3. सम्पत्ति का मूल्यांकन एक जटिल कार्य है अतः सम्पत्ति कर का प्रशासन कठिन होता है।
4. ऐसी सम्पत्ति पर जिससे आय प्राप्त नहीं होती, कर लगाने से लोगों पर भार पड़ता है।

### 4. पूँजीगत लाभ कर अथवा पूँजीगत अभिलाभ कर (Capital Gains Tax)

पूँजीगत अभिलाभ का अर्थ सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धि से है। इस दृष्टि से पूँजीगत अभिलाभ से आशय उस लाभ से है जो किसी परिसम्पत्ति को खरीदे गए मूल्य की तुलना में अधिक मूल्य में बेचने से होता है। यदि सम्पत्ति को नहीं बेचा जाता तो यह लाभ प्राप्त नहीं होता। पूँजीगत अभिलाभ कर प्राप्त किए गए पूँजीगत लाभों (Realised Capital Gains) पर लगाया जाता है। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा। मान लो एक व्यक्ति 25 हजार रुपए में मकान खरीद कर उसे 32 हजार रुपए बेच देता है तो उसे 7 हजार रुपए का लाभ होता है जिस पर अभिलाभ कर (Capital Gain Tax) लगेगा। किन्तु इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि यह पूँजीगत अभिलाभ कर उस व्यक्ति पर नहीं लगाया जाता जिसका सामान्य व्यवसाय ही मकान बेचना है।

## नोट

**5. व्यय कर (Expenditure Tax)**

व्यय कर एक प्रत्यक्ष कर है जो लोगों द्वारा उपभोग पर व्यय की गई धनराशि पर लगाया जाता है। भारत में इस कर का सुझाव सबसे पहले प्रो. काल्डोर ने दिया के अनुसार आय-कर की तुलना में व्यय कर, कर देने की योग्यता का अच्छा आधार है क्योंकि इसका बचत पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता तथा कर वंचन रोकने में भी समर्थ है। इस कर को प्रगतिशील बनाने का सुझाव दिया गया।

भारत में व्यय कर अधिनियम, 1957 के अन्तर्गत अप्रैल 1958 से व्यय कर लागू किया गया। किन्तु इससे अपर्याप्त राजस्व को देखते हुए इसे 1962 में समाप्त कर दिया गया। 1964-65 में इसे पुनः लागू किया गया किन्तु 1966-67 में हटा दिया गया।

यह कर केवल व्यक्तियों पर ही लगाया गया तथा कम्पनियों को इससे मुक्त रखा गया। कर लगाने के पहले आय में से कुछ आय में से कुछ कटौतियाँ प्रदान की गईं तथा कुछ व्ययों को कर-मुक्त रखा गया।

**व्यय कर अधिनियम** 1987 द्वारा नवम्बर 1987 से व्यय कर पुनः प्रारम्भ किया गया तथा यह उन व्यक्तियों पर लगाया गया जो बड़े होटलों में कमरा, खान-पान, इत्यादि पर व्यय करते हैं।

**6. ब्याज कर (Interest Tax)**

ब्याज कर एक केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर है। ब्याज कर सर्वप्रथम 1974 में लगाया गया था और 1978 में इसे रद्द कर दिया गया। पुनः यह कर 1980 में लगाया गया और 1985 में रद्द कर दिया गया। अब यह तीसरी बार वित्त (संख्या 2) अधिनियम, 1991 द्वारा कर-निर्धारण वर्ष 1992-93 से लगाया गया है। यह कर बैंकों, सार्वजनिक वित्तीय संस्थाओं, राज्य वित्तीय निगम आदि पर उनकी ब्याज की सकल आय पर लगाया जाता है जो उन्हें भारत में दिए गए तथा अग्रिमों पर प्राप्त होता है। ब्याज कर गत वर्ष की कर-योग्य ब्याज की आय पर 3% की दर से लगाया जाता है। आय-कर अधिनियम के अन्तर्गत किसी वित्तीय संस्था द्वारा देय ब्याज कर उसके ब्याज कर उसके व्यापार से लाभों की गणना करने में स्वीकृत व्यय माना जाता है। इस कर का प्रशासन, कर-निर्धारण वसूली आदि समस्त कार्य आय-कर विभाग के अधिकृत अधिकारियों द्वारा किया जाता है। 1993-94 के बजट में निर्यात को प्रोत्साहन देने के रूप में बैंकिंग कम्पनियों का उनके द्वारा प्रदान किए जाने वाले निर्यात सम्बन्धी ऋणों पर ब्याज कर से मुक्त करने का प्रावधान रखा गया है।

**7. केन्द्रीय उत्पादन शुल्क (Central Excise Duties)**

केन्द्रीय उत्पादन शुल्क भारत सरकार की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। केन्द्रीय सरकार शराब, अफीम एवं अन्य नशीली वस्तुओं को छोड़कर भारत में पैदा की जाने वाली समस्त वस्तुओं पर उत्पादन कर लगा सकती है। नशीली वस्तुएँ राज्य सरकारों के अधिकार-क्षेत्र में आती हैं। उत्पादन कर से प्राप्त राजस्व का विभाजन केन्द्र और राज्य सरकारों में किया जाता है। यह विभाजन वित्त आयोगों की सिफारिशों के आधार पर किया जाता है।

उत्पादन कर एक अप्रत्यक्ष कर है जिसका भुगतान पहले तो उत्पादकों द्वारा जाता है किन्तु बाद में इन्हें मूल्यों में शामिल कर उपभोक्ताओं पर टाल दिया जाता है। प्रारम्भ में उत्पादन कर केवल 15 वस्तुओं पर लगाया जाता था किन्तु वर्तमान में एक बड़ी संख्या में वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क लगाया जा रहा है। वर्तमान में केन्द्रीय उत्पाद शुल्क राजकोष में कर राजस्व का सबसे बड़ा अकेला अंशदाता है।



नोट्स ब्याज कर सर्वप्रथम 1974 में लगाया गया था।

**उत्पादन शुल्क के उद्देश्य**—यह केन्द्रीय सरकार का एक लोकप्रिय कर है। यह कर लगाने के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं—

- (i) वित्तीय साधनों में वृद्धि करना क्योंकि यह उत्पादन कर है।
- (ii) अप्रत्यक्ष कर होने के नाते इसका भार अमीर तथा गरीब सभी उपभोक्ताओं पर पड़ता है।

## नोट

- (iii) इन करों से लघु और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जा सकता है क्योंकि मिल निर्मित वस्तुओं पर कर लगाकर, कुटीर उद्योगों की वस्तुओं को इस कर से मुक्त किया जा सकता है।
- (iv) इस कर का प्रयोग मुद्रा-स्फीति को नियन्त्रित करने के लिए किया जा सकता है।

**उत्पादन कर के प्रकार (Kinds of Excise Duties)**

उत्पादन कर को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(अ) आधारभूत उत्पादन कर, (ब) विशेष कर, एवं (स) बिक्री कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पादन कर।

उत्पादन कर के ढाँचे में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं। 1957 से अतिरिक्त उत्पादन कर लगाया गया। इसकी प्राप्ति राज सरकारों में वितरित कर दी जाती है।

**उत्पादन कर के पक्ष में तर्क**

- (i) ये कर उत्पादक एवं लोचपूर्ण होते हैं।
- (ii) विलसिता की वस्तुओं पर ऊँची दर से कर लगाकर अमीर व्यक्तियों से अधिक आय प्राप्त की जाती है तथा आय की असमानता को दूर किया जा सकता है।
- (iii) हानिकारक वस्तुओं पर कर लगाकर उपभोग को नियन्त्रित किया जा सकता है।
- (iv) ये कर सुविधाजनक होते हैं क्योंकि उपभोक्ताओं से इन्हें सरलता से वसूल किया जा सकता है।

**उत्पादन कर के विपक्ष में तर्क**

- (i) इन करों का विनियोग एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- (ii) सामान्य उपभोग वस्तुओं पर कर लगाने से निर्धन वर्ग का उपभोग कम हो जाता है।
- (iii) वस्तुओं पर उपभोग कम हो जाने पर सरकारी राजस्व भी कम हो जाता है।

केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का पर्याप्त विस्तार 1960 तथा 1970 के दशकों में हुआ। 1944-75 में करीब 128 वस्तु समूहों पर यह कर लगा हुआ था। इन वस्तुओं में निर्मित वस्तु, कच्ची सामग्री तथा मध्यवर्ती वस्तु सभी शामिल थीं। कच्ची सामग्री तथा मध्यवर्ती वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क का प्रपाती (Cascading) प्रभाव पड़ता है जो आर्थिक ख्याल से उचित नहीं है। एल. के. झा समिति, दीर्घकालीन राजकोषीय नीति तथा चेल्याह समिति ने यह सिफारिश की कि विस्तृत उत्पाद शुल्क के बुरे परिणामों से बचने के लिए VAT का लगाना जरूरी है। 1986-87 के केन्द्रीय बजट में संशोधित मूल्य संवर्धन कर (MODVAT) को लगाया गया। इसके लगाने का प्रमुख उद्देश्य उत्पाद शुल्क के कैसकेडिंग प्रभाव को कम करना था।

2000-01 के बजट में उत्पाद शुल्क में महत्वपूर्ण सुधार किए गए। उत्पादन के चरण में 16 प्रतिशत की एक दर पर केन्द्रीय मूल्य संवर्धन कर (CENVAT) को लगाया गया। कुछ विशेष वस्तुओं पर 8%, 16% तथा 24% की तीन दरों पर विशेष उत्पाद शुल्क लगाए गए। 2001-02 में इन तीन दरों को कम करके 16 प्रतिशत की एक दर कर दी गई। 2002-03 के बजट को पेश करते हुए वित्त मंत्री ने कहा कि पिछले दो वर्षों के सुधारों ने मुकदमेबाजी को काफी कम कर दिया है। इसलिए इस वर्ष में 16 प्रतिशत के विशेष उत्पाद शुल्क से अनेक वस्तुओं को बाहर कर दिया तथा इसे केवल 8 मर्दों पर ही लागू रखा गया।

2002-03 के बजट में यद्यपि उत्पाद कर से 91433 करोड़ रुपए की प्राप्ति का अनुमान है लेकिन, कुल केन्द्रीय कर राजस्व में इसका अंश घटकर मात्र 39 प्रतिशत ही रह गया।

**8. सीमा शुल्क (Custom Duties)**

सीमा शुल्क उत्पादन शुल्क की तरह वस्तुओं पर लगाया जाता है। सीमा शुल्क या तो मूल्यानुसार (Ad-valorem) लगाए जाते हैं अथवा परिमाणानुसार (Specific)। मूल्यानुसार अथवा यथामूल्यन कर वस्तुओं के मूल्य के अनुसार लगाए जाते हैं तथा ऐसे कर प्रगतिशील होते हैं। परिमाणानुसार लगाए गए करों को विशिष्ट कर कहते हैं जो वस्तुओं की संख्या, आकार एवं भार के अनुसार लगाए जाते हैं तथा ऐसे कर प्रतिगामी होते हैं।

**नोट**

सीमा शुल्क दो प्रकार के होते हैं—(i) आयात शुल्क (Import Duty), तथा (ii) निर्यात शुल्क (Export Duty)। इन दोनों करों का भार किस वर्ग पर पड़ता है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। वास्तविक स्थिति यह है कि सीमा शुल्क का भार आयातकर्ता देशों में वस्तुओं की माँग और पूर्ति की सापेक्षिक लोच पर निर्भर रहता है। **निर्यात कर अथवा शुल्क (Export Duty)**—जो माल भारत से विदेशों को भेजा जाता है, उस पर निर्यात कर लगाया जाता है। निर्यात कर केवल सरकारी आय का ही महत्वपूर्ण स्रोत नहीं है वरन् इसके कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक प्रभाव भी होते हैं। जैसे, कच्चे माल पर लगाए गए निर्यात कर से देश के उद्योगों को कच्चा माल सस्ते में ही उपलब्ध हो जाता है। वार्षिक बजट के अवसर पर निर्यात शुल्कों की भी घोषणा की जाती है।

**आयात कर अथवा शुल्क (Import Duty)**—आयात करों का उद्देश्य उन वस्तुओं के आयातों को हतोत्साहित करना है जिनसे देश में उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अर्थात् देश में औद्योगीकरण करना है। इसके साथ ही आयात करों से सरकार को आय भी प्राप्त होती है। भारत में आयात कर भारतीय टैरिफ अधिनियम, 1934 की पहली व दूसरी अनुसूची में दी गई दरों के अनुसार लगाए जाते हैं। आयात कर विभिन्न वस्तुओं पर अलग-अलग दर से लगाए जाते हैं।

अन्य दरों की तरह भारतीय सीमा शुल्क में भी सुधार किए गए हैं। 1985 की दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में आयात को नियंत्रित करने के लिए टैरिफ पर निर्भरता बढ़ा दी गई तथा आयात कोटा के उपयोग को घटा दिया गया। 1991 में चेल्याह समिति ने ऐसी सलाह दी कि निर्मित वस्तुओं के आयात पर शुल्क सर्वाधिक होना चाहिए, इससे, कल पुर्जों तथा मशीनरी के आयात पर तथा न्यूनतम दर आधारभूत कच्ची सामग्री पर।

आयात शुल्कों में सुधार अगले वर्षों में भी जारी रहा। 2002-03 के बजट में घोषणा की गई कि वर्ष 2004-05 तक आयात शुल्कों की केवल दो बुनियादी दर होगी—कच्ची सामग्री मध्यवर्ती वस्तु तथा पुर्जों पर 10 प्रतिशत एवं अन्तिम वस्तुओं पर 20 प्रतिशत। इन लक्ष्यों को ध्यान रखते हुए आयात शुल्क की उच्चतम दर को 2002-03 में घटाकर 35 प्रतिशत से 30 प्रतिशत कर दिया गया।

**9. सेवा कर (Service Tax)**

कर सुधार समिति (चेल्याह समिति) ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट-भाग एक (1991) में सेवाओं पर कर लगाने की सिफारिश की। इस कर को लगाने के पीछे यह तर्क था कि आर्थिक विकास के साथ-साथ सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का प्रतिशत बढ़ता जाता है तथा वस्तु क्षेत्र का अंशदान घटता जाता है। उत्पाद कर राजस्व की उत्पादकता उस कारण घटती जाएगी। इस उत्पादकता में वृद्धि के लिए परोक्ष करारोपण में सेवा कर को शामिल करना होगा। इससे अनेक प्रकार की विकृतियाँ, जो उपभोक्ता के चयन में उत्पन्न होती हैं कम हो जाएँगी। सेवा कर की अनुपस्थिति में लोग सेवाओं पर अधिक खर्च करते हैं तथा वस्तुओं एवं बचत पर व्यय को घटाते हैं। सेवा कर को नहीं लगाने पर उन उत्पादनकर्ताओं को VAT क्रेडिट का लाभ नहीं मिलेगा जिनके लिए सेवा उत्पत्ति का साधन है। चेल्याह समिति ने 10 प्रतिशत की दर पर कई वस्तुओं पर सेवा कर लगाने का सुझाव दिया। इन सेवाओं का सम्बन्ध विज्ञापन, बीमा, शेयर दलाल आदि से था।

इन्हीं तर्कों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने 1994-95 के बजट में 5 प्रतिशत की दर से तीन सेवाओं—टेलिफोन, सामान्य बीमा तथा स्टॉक दलालों पर सेवा कर लगाया जिससे 407 करोड़ रुपए का राजस्व प्राप्त हुआ। 1997-98 में सेवा कर को दस और सेवाओं पर लगाया गया। 1998-99 में 12 और सेवाओं को सेवा कर के दायरे में लाया गया। 2002-03 के बजट में दस और सेवाओं को सेवा कर के क्षेत्र के अन्तर्गत लाया गया। सेवा कर बैंक तथा गैर-बैंक वित्तीय कम्पनियों द्वारा प्रदत्त विशिष्ट सेवाओं पर लगाया जाता है। 2002-03 के बजट में ऐसी सेवाएँ प्रदान करने वाली कम्पनियों (Corporation) को भी इस कर के दायरे में लाया गया।

पर्यटक उद्योग में मन्दी को देखते हुए दिसम्बर 2001 में होटल सेवा पर लगे सेवा कर को 31 मार्च, 2002 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। 2002-03 के बजट में इस स्थगन को 31 मार्च, 2003 तक के लिए बढ़ा दिया गया।

सेवा कर से प्राप्त राजस्व निम्न प्रकार से हैं—

नोट

(करोड़ रुपए में)

	1994-95	1997-98	1999-00	2001-02 (संशोधित)	2002-03 (बजट)
सेवा कर राजस्व	407	1586	2128	3600	6026
समग्र केन्द्रीय राजस्व का प्रतिशत	0.7	1.1	1.3	1.8	2.5

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि सेवा कर से प्राप्त राजस्व में लगातार निरपेक्ष एवं सापेक्ष वृद्धि हुई है। 1994-95 तथा 2002-03 के मध्य में इसमें करीब 15 गुना वृद्धि हुई, जबकि समग्र केन्द्रीय कर राजस्व में इसका हिस्सा जो शुरू में एक प्रतिशत से भी कम था 2002-03 के बजट अनुमान में बढ़कर 2.5 प्रतिशत हो गया। इस वृद्धि के दो मुख्य कारण हैं, यथा

- (1) सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र के हिस्से में लगातार वृद्धि; तथा
- (2) सेवा कर के क्षेत्र में लगातार विस्तार कर के अन्तर्गत लाई गई सेवाओं की संख्याओं में वृद्धि। अभी जिन महत्वपूर्ण सेवाओं पर कर लगाये गये हैं वे हैं—वास्तुकार की सेवा, प्रबन्धकीय सलाहकार, चार्टर्ड एकाउन्टेण्ट, कॉस्ट एकाउन्टेण्ट, कम्पनी सैक्रेटरी, जीवन बीमा, भंडारण, रेल यात्रा एजेण्ट, हेल्थ क्लब, ब्यूटी पार्लर, केबल आपरेटर, ड्राइक्लीनिंग आदि।



क्या आप जानते हैं? सेवा कर बैंक तथा गैर बैंक वित्तीय कम्पनियों द्वारा प्रदत्त विशिष्ट सेवाओं पर लगाया जाता है।

## II. गैर-कर साधनों से प्राप्त आय (Non-Tax Revenue Sources)

केन्द्र सरकार के गैर-कर आय स्रोतों में सम्मिलित हैं—

1. **मुद्रा तथा टकसाल (Currency & Mint)**—केन्द्र सरकार को नोट एवं सिक्के ढालने का एकाधिकार प्राप्त है जिससे सरकार को प्रति वर्ष अच्छी आय प्राप्त होती है।
2. **डाक तथा तार विभाग (Post & Telegraph)**—भारत में डाक तथा तार सेवाएँ केन्द्र सरकार की आय का एक प्रमुख स्रोत हैं। सरकार प्रति वर्ष डाक तथा तार की दरों में संशोधन करके अपने राजस्व को बढ़ाने का प्रयास करती है।
3. **प्रशासनिक सेवाएँ (Administrative Services)**—सरकार अनेक प्रकार की प्रशासनिक सेवाएँ नागरिक प्रशासन तथा शान्ति व्यवस्था आदि के रूप में देती हैं और प्राप्त करती है।
4. **सार्वजनिक उपक्रमों का लाभ (Profits of Public Enterprises)**—देश में सार्वजनिक उपक्रमों का लाभ केन्द्र सरकार की आय का एक स्रोत है। यद्यपि वर्तमान में सार्वजनिक उपक्रमों में सरकार को हानि उठानी पड़ रही है, किन्तु इन उद्योगों में अपनिवेश सरकार के लिए पर्याप्त आय स्रोत एकत्रित कर रहा है।
5. **ऋण सेवाएँ (Loan Services)**—केन्द्र सरकार समय-समय पर राज्यों एवं अन्य संस्थाओं को ऋण देकर ब्याज के रूप में राजस्व प्राप्त करती है।
6. **रेल सेवाएँ (Rail Services)**—वर्तमान समय में रेल सेवाएँ केन्द्र सरकार का प्रमुख आय स्रोत बन चुकी है।
7. **अन्य (Other)**—नदी घाटी योजनाएँ तथा सामाजिक सेवाएँ भी केन्द्र सरकार के लिए राजस्व का स्रोत हैं।

नोट

## (B) राज्य सरकारों के मुख्य कर (Major Taxes of the State Governments)

भारत में संघीय राज्य का ढाँचा है तथा प्रत्येक राज्य स्वयं अपना आय-व्यय का बजट तैयार करता है। राज्य सरकारों को अपने व्यय पूर्ति हेतु कुछ कर लगाने के अधिकार दिए गए हैं।

राज्यों को करों से प्राप्त होने वाली आय को तीन भागों में बाँटा जा सकता है जो इस प्रकार हैं—

- (I) आय पर कर— 1. कृषि आय-कर, 2. व्यवसाय कर
- (II) सम्पत्ति एवं पूँजीगत लेन-देन पर कर— 3. स्टाम्प तथा रजिस्ट्रेशन शुल्क, 4. भू-राजस्व, 5. शहरी अचल सम्पत्ति पर कर
- (III) वस्तु एवं सेवाओं पर कर— 6. बिक्री कर अथवा व्यापार कर, 7. राज्य उत्पाद शुल्क, 8. मनोरंजन कर, 9. मोटर वाहनों पर कर।

### (I) आय पर लगाए जाने वाले कर

**1. कृषि आय-कर (Agricultural Income Tax)**—कृषि आय-कर कृषि से होने वाली आय पर लगाया जाता है। कर लगाने के पहले किसान की आय में कुछ कटौतियाँ की जाती हैं; जैसे, सिंचाई पर व्यय, भू-राजस्व का भुगतान स्थानीय कर, इत्यादि। इस कर की दरें भी व्यक्तिगत आय-कर की दरों के समान खण्ड (Slab-System) पर आधारित होती हैं अर्थात् कर की प्रकृति प्रगतिशील है। यह कर सब राज्यों में नहीं लगाया जाता। वर्तमान में असम, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, राजस्थान, बिहार आदि राज्यों में कृषि आय-कर लगाया जाता है।

कृषि आय-कर की दरें विभिन्न राज्यों में अलग-अलग हैं। भारत में बिहार पहला राज्य था जहाँ 1938 में कृषि आय-कर लागू किया गया।

कृषि आय-कर के सम्बन्ध में विवाद रहा है तथा इसके पक्ष एवं विपक्ष में मत प्रकट किए गए हैं। पक्ष में मुख्य तर्क यह दिया जाता है कि राज्यों के बढ़ते हुए कार्यों को देखते हुए इस कर से उन्हें आय प्राप्त होती है। भारतीय करारोपण जाँच समिति, 1925 के अनुसार, “आय-कर में से कृषि से प्राप्त आय को कर-मुक्त रखने का कोई ऐतिहासिक या सैद्धान्तिक औचित्य नहीं है।”

विपक्ष में मुख्य तर्क यह है कि किसानों पर इस कर से अधिक भार पड़ता है तथा इसका प्रशासन एवं प्रबन्ध कठिन है। निष्कर्ष यह है कि राज्यों को इस कर से कोई उल्लेखनीय आय प्राप्त नहीं होती। जहाँ तक भार का प्रश्न है, कृषि क्षेत्र में एक ऐसा वर्ग है जो इसका भार सह सकता है क्योंकि इस वर्ग को कृषि से काफी आय प्राप्त होती है।

**2. व्यवसाय कर (Profession Tax)**—यह कर राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न प्रकार के व्यवसायों पर लगाया जाता है। एक निश्चित आय सीमा तक कर से छूट प्रदान की जाती है तथा शेष आय पर इसे प्रगतिशील दर से लगाया जाता है।

इस कर से पर्याप्त आय प्राप्त नहीं होती। यही कारण है कि कई राज्यों में इसे समाप्त कर दिया गया है। मध्य प्रदेश सरकार ने भी वित्तीय वर्ष 1991-92 से व्यवसाय कर समाप्त करने की घोषणा की है।

### (II) सम्पत्ति एवं पूँजीगत लेन-देन पर कर

**3. स्टाम्प तथा रजिस्ट्रेशन (Stamps and Registration Fees)**—राज्य सरकारों को अदालती एवं गैर-अदालती स्टाम्प से भी आय प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त दस्तावेजों की रजिस्ट्री करवाते समय राज्य सरकारें शुल्क वसूल करती हैं। राज्य सरकार के राजस्व का यह एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

**4. भू-राजस्व (Land Revenue)**—भू-राजस्व अथवा मालगुजारी राज्य सरकारों की आय का प्रमुख साधन है तथा प्रारम्भ से ही यह आय का महत्वपूर्ण स्रोत रहा है। किन्तु वर्तमान में बिक्री कर इससे अधिक राजस्व प्रदान करने वाला स्रोत बन गया है। भू-राजस्व की दरें अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग रहती हैं किन्तु अब भूमि सुधार के कारण इनमें कुछ समानता आती जा रही है।

## नोट

भू-राजस्व का निर्धारण करने के लिए निम्न तीन रीतियों का प्रयोग किया जाता है—

- (i) **शुद्ध उत्पादन (Net Produce)**—तमिलानडु में शुद्ध उत्पादन के आधार पर भू-राजस्व वसूल किया जाता है अर्थात् कुल उत्पादन मूल्य में से कृषि व्यय घटाकर शुद्ध उत्पादन ज्ञात किया जाता है।
- (ii) **शुद्ध परिसम्पत्ति अथवा आर्थिक लगान (Economic Rent)**—कुल उत्पत्ति में से उत्पादन लागत घटाने पर शुद्ध परिसम्पत्ति को ज्ञात किया जा सकता है जो भू-राजस्व का आधार होता है। यह प्रणाली उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हिमाचल प्रदेश आदि राज्यों में प्रचलित है।
- (iii) **व्यावहारिक आधार (Empirical Basis)**—इस प्रणाली में कुछ व्यावहारिक बातों को ध्यान में रखकर भू-राजस्व निर्धारित किया जाता है; जैसे, भूमि की स्थिति, बाजार की स्थिति, मिट्टी का प्रकार इत्यादि। मुम्बई, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश राज्यों में यही प्रणाली प्रचलित है।

यह भी उल्लेखनीय है कि कभी-कभी राज्य सरकारों द्वारा भू-राजस्व को उन क्षेत्रों में माफ अथवा स्थगित कर दिया जाता है जहाँ किसी विशेष वर्ष में अकाल या प्राकृतिक संकट का प्रकोप होता है। भू-राजस्व की दर अनुपातिक रहती है। अतः इसका भार गरीबों पर अधिक पड़ता है।

**5. शहरी अचल सम्पत्ति पर कर**—यह कर शहरी अचल सम्पत्ति पर लगाया जाता है पर इससे कोई उल्लेखनीय आय प्राप्त नहीं होती।

### (III) वस्तु व सेवाओं पर कर

**6. बिक्री कर अथवा व्यापार कर (Sales Tax or Trade Tax)**—राजस्व प्राप्त करने की दृष्टि से बिक्री कर राज्यों के लिए सबसे महत्वपूर्ण कर है क्योंकि राज्यों को इससे सर्वाधिक आय प्राप्त होती है। इसका कारण यह है कि उत्पादन वृद्धि होने से आन्तरिक व्यापार में काफी वृद्धि हुई है। सबसे पहले बिक्री कर मद्रास में 1939 में लगाया गया। समाचार-पत्रों को छोड़कर बिक्री कर उन सब वस्तुओं पर लगाया जाता है जो देश में बेची जाती हैं। यह कर पहले विक्रेताओं पर लगाया जाता है जो उसे वस्तु के मूल्य में मिलाकर उपभोक्ता पर टाल देते हैं। यहाँ सामान्य बिक्री कर (General Sales Tax) तथा चयनात्मक बिक्री कर (Selective Sales tax) में भेद किया जाना चाहिए। जब व्यापारी द्वारा बेची जाने वाली सब वस्तुओं पर कर लगाया जाता है तो उसे सामान्य बिक्री कर कहते हैं। जब कुछ चुनी हुई वस्तुओं पर कर लगाया जाता है तो इसे चयनात्मक बिक्री कर कहते हैं। वास्तव में किसी भी राज्य में सामान्य बिक्री कर नहीं लगाया जाता।

भारत सरकार ने 1956 में केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम पारित किया तथा उन वस्तुओं पर विक्रय कर लगाया जिनका अन्तर्राज्यीय व्यापार होता है। जिस राज्य से वस्तुएँ बाहर जाती हैं वही राज्य कर लगाता है तथा राजस्व भी प्राप्त करता है। बिक्री कर एक विवादग्रस्त विषय है तथा इसका विरोध किया जाता है तथा इसे समाप्त करने का चुनावी मुद्दा बनाया जाता है पर यह समाप्त नहीं हो पाता क्योंकि राज्य इस आधार पर इसका विरोध करते हैं क्योंकि यह उनकी आय का सबसे बड़ा स्रोत है। प्रत्येक राज्य में बिक्री कर की दरें अलग-अलग हैं। बिक्री कर से जितना राजस्व प्राप्त होना चाहिए, उतना नहीं हो पाता क्योंकि एक तो इसका भुगतान ईमानदारी से नहीं किया जाता और दूसरे, बिक्री कर वसूल करने वाला सरकारी तन्त्र भी पूर्ण निष्ठा और ईमानदारी से कार्य नहीं करता।

1991 से कर सुधार की जो प्रक्रिया प्रारम्भ की गई उसका एक आयाम रहा है। राज्यों के बिक्री कर के स्थान पर केन्द्र के VAT की तरह राज्यों में VAT का लागू करना। 1999 में राज्यों के मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में VAT लागू करने का निर्णय लिया गया। 2001-02 में यह निर्णय लिया गया कि अप्रैल 2003 तक राज्यों में VAT लागू किया जाएगा।

वर्तमान समय में बिक्री कर अथवा व्यापार कर राज्य सरकारों का प्रमुख आय स्रोत है।

**7. राज्य उत्पादन शुल्क (State Excise Duties)**—राज्य सरकारों को शराब, अफीम, भांग, गांजा तथा अन्य नशीली वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाने का अधिकार है। इन वस्तुओं पर उस समय कर लगाया जाता है जब या तो राज्य की सीमा के भीतर इनका उत्पादन किया जाता है अथवा ये वस्तुएँ राज्य की सीमा में प्रवेश करती हैं। यह कर लगाने का मुख्य उद्देश्य आय प्राप्त करने के साथ-ही-साथ इन वस्तुओं के उपभोग को नियन्त्रित करना भी है।



**नोट**

उत्पादन कर अलग-अलग दरों से लगाया जाता है। जिन राज्यों ने मद्य-निषेध की नीति नहीं अपनाई है, वहाँ शराब पर काफी ऊँची दर से कर लगाया जाता है। जिन राज्यों ने पूर्ण अथवा आंशिक रूप से मद्य-निषेध की नीति अपनाई है उन्हें उत्पादन कर से प्राप्त होने वाले राजस्व में भारी कमी हो गई है। मद्य-निषेध की नीति अपनाई जाये अथवा नहीं यह एक विवादग्रस्त विषय है किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि सरकार को नशीली वस्तुओं से प्राप्त आय पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

8. **मनोरंजन कर (Entertainment Tax)**—यह कर सिनेमा, थियेटर, कुश्ती, नाच-गानों इत्यादि के कार्यक्रम पर लगाया जाता है। यह कर अप्रत्यक्ष कर है जिसे दर्शकों पर टाल दिया जाता है। वर्तमान समय में मनोरंजन कर राज्य सरकार का पर्याप्त आय दे रही है।

9. **मोटर वाहनों पर कर (Tax on Motor Vehicles)**—राज्य सरकारों को मोटर, स्कूटर आदि वाहनों के विक्रय पर कर लगाने का अधिकार है। देश में बढ़ते हुए दुपहिए वाहनों एवं अन्य वाहनों की संख्या को देखते हुए इस मद से राजस्व में वृद्धि हुई है।



टास्क VAT लागू करने का निर्णय कब लिया गया?

### (C) स्थानीय शासन के मुख्य कर (Major Taxes of Local Self Government)

स्थानीय शासन में मुख्य रूप से नगर निगम, ग्राम नगरपालिकाएँ, ग्राम पंचायतें एवं जिला बोर्डों का समावेश होता है। इनके व्यय को देखते हुए राज्य सरकार द्वारा इन्हें आय प्राप्त करने हेतु कुछ कर लगाने के अधिकार दिए गए हैं। इन करों को दो भागों में बांटा जा सकता है—(A) प्रत्यक्ष कर एवं (B) अप्रत्यक्ष कर।

#### (A) प्रत्यक्ष कर (Direct Tax)

इनमें निम्न करों का समावेश होता है—

- (1) **सम्पत्ति कर (Property Tax)**—यह स्थानीय संस्थाओं का महत्वपूर्ण कर है। इसके चार प्रकार होते हैं—मकानों पर कर, सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर कर, भूमि पर उपकर एवं सुधार कर।  
सम्पत्ति कर को दो रूपों में लगाया जाता है—सामान्य कर एवं सेवा कर।  
**सामान्य कर**—जो कर सम्पत्ति के वार्षिक मूल्य पर लगाया जाता है उसे सामान्य सम्पत्ति कर कहते हैं।  
**सेवा कर**—यह कर जल-पूर्ति, सफाई, शिक्षा, बिजली आदि की पूर्ति हेतु लगाया जाता है। ये कर सम्पत्ति के पूँजीगत मूल्य के आधार पर लगाए जाते हैं।  
सम्पत्ति कर प्रगतिशील दर से लगाया जाता है तथा यह एक लोचपूर्ण कर है। किन्तु इस कर का यह दोष है कि करों का न्यूनतम निर्धारण करवाने के लिए भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।
- (2) **पेशा एवं वृत्ति पर कर**—यह कर लाइसेन्स शुल्क के रूप में वसूल किया जाता है तथा विभिन्न पेशा एवं वृत्ति करने वालों पर भिन्न दर से लगाया जाता है।
- (3) **गाड़ियों पर कर**—यह कर तांगा, रिक्शा, साइकिल, बैलगाड़ी आदि पर लगाया जाता है। मोटर गाड़ियों पर यह कर नहीं लगाया जाता।
- (4) **बाजार कर**—यह कर नगरपालिका एवं ग्राम पंचायतों द्वारा बाजार में माल बेचने वाले व्यापारियों पर लगाया जाता है।
- (5) **मार्ग शुल्क**—यह कर ऊँची लागत से निर्मित पुलों पर से गुजरने वाले व्यक्तियों एवं माल पर लगाया जाता है।

## नोट

- (6) **हैसियत कर**—यह कर व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति एवं परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर लगाया जाता है।

**(B) अप्रत्यक्ष कर (Indirect Tax)**

इसमें मुख्य रूप से दो प्रकार के करों का समावेश होता है—(1) चुंगी कर, एवं (2) सीमा कर।

**1. चुंगी कर (Octroi Tax)**—यह कर नगरपालिकाओं की आय का प्रमुख स्रोत है तथा नगरपालिका क्षेत्र के अन्तर्गत उपयोग या विक्रय के लिए आने वाले माल पर लगाया जाता है। नगरपालिका क्षेत्र से बाहर जाने वाली वस्तुओं पर यह कर नहीं लगाया जाता।

चुंगी कर के विरोध में सबसे बड़ा तर्क यह है कि इसमें भ्रष्टाचार पनपता है क्योंकि अधिकांश आय नगरपालिका को प्राप्त नहीं हो पाती। साथ ही प्रतिगामी कर है क्योंकि इसका भार गरीब व्यक्ति पर अधिक पड़ता है।

**2. सीमा कर (Terminal Tax)**—जब कोई सामान नगरपालिका की सीमा में प्रविष्ट करे या सीमा के बाहर जाए अथवा सीमा पर से गुजरता है तो उस पर जो कर लगाया जाता है, उसे सीमा कर कहते हैं।

सीमा कर और चुंगी कर में यह अन्तर है कि चुंगी कर नगरपालिका क्षेत्र में प्रवेश करते समय लगाया जाता है जबकि सीमा कर प्रवेश करते समय या सीमा के बाहर जाते समय दोनों ही स्थितियों में लगाया जाता है। रेलों से यात्रा करने वाले यात्रियों से भाड़े के साथ ही सीमा कर वसूल कर नगरपालिका को दे दिया जाता है।

भारतीय संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य कार्यों का जिस ढंग से बँटवारा हुआ है उसके अनुसार अधिकांश कार्यों को राज्यों को सौंपा गया। किन्तु, इन कार्यों के सम्पादन के लिए राज्यों को वित्तीय साधन उपलब्ध नहीं हुए हैं। यही कारण है कि भारतीय संघीय व्यवस्था में उर्ध्व वित्तीय असमानता (vertical financial inequity) है। इस स्थिति का आभास संविधान निर्माताओं को भी था। इसलिए संविधान में ही वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था की गयी है ताकि केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की वित्तीय असमानता को केन्द्र से वित्तीय साधनों के हस्तान्तरण द्वारा दूर किया जा सके। यह हस्तान्तरण दो तरह से होता—केन्द्रीय कर राजस्व में राज्यों को एक हिस्सा देकर तथा सहायता अनुदान प्रदान करके।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

6. भारत में कैसी वित्त व्यवस्था है?
- (अ) संघीय (ब) प्रांतीय  
(स) राजकीय (द) इनमें से कोई नहीं।
7. कृषि आय को छोड़कर, अन्य स्रोतों से प्राप्त व्यक्तिगत आय पर जो कर केंद्रीय सरकार द्वारा लगाया जाता है, उसे क्या कहते हैं?
- (अ) बिक्री कर (ब) आयकर  
(स) निगम कर (द) संपत्ति कर।
8. 1959-60 में निगम कर को किस नाम से जाना जाता था?
- (अ) आय-कर (ब) संपत्ति कर  
(स) सुपर टैक्स (द) टूल टैक्स।
9. पूँजीगत अभिलाभ का क्या अर्थ है?
- (अ) संपत्ति के मूल्य में हास (ब) संपत्ति का मूल्य समान होना  
(स) संपत्ति के मूल्य में कोई परिवर्तन न होना (द) संपत्ति के मूल्य में वृद्धि।
10. ब्याज कर सर्वप्रथम कब लगाया गया था?
- (अ) 1974 (ब) 1975  
(स) 1976 (द) 1980।

## नोट

**25.3 सारांश (Summary)**

- भारतीय कर प्रणाली में स्वतन्त्रता के बाद सुधार लाने के लिए भारत सरकार ने समय-समय पर कर जाँच आयोग एवं कर जाँच समितियों की स्थापना की है। वर्ष 1953 में डॉ. जॉन मथाई की अध्यक्षता में कर प्रणाली में सुधार लाने और आय की विषमताओं को दूर करने के लिए कर जाँच आयोग की स्थापना की गई।
- प्रत्यक्ष कराधान को सरल एवं युक्ति संगत बनाने के लिए मार्च 1968 में भुतलिंगम समिति गठित की गई। देश में कर चोरी एवं कर-वंचना को रोकने के लिए 1970 में वान्चू समिति गठित की गई। अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में सुधार लाने के लिए जुलाई 1976 में श्री एल. के. झा की अध्यक्षता में अप्रत्यक्ष कर जाँच समिति गठित की गई। इसके बाद 1977 में प्रत्यक्ष कर नियमों के सरलीकरण के लिए श्री सी. सी. चौकसी की अध्यक्षता में प्रत्यक्ष कर चौकसी जाँच समिति गठित की गई।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना के उद्देश्य से आय की विषमताओं को कम करने पर बल दिया गया। इसी उद्देश्य से भारतीय कर प्रणाली को प्रगतिशील करारोपण संरचना पर केन्द्रित किया गया।
- भारतीय कर प्रणाली का उद्देश्य केवल आय प्राप्त करना ही नहीं है बल्कि देश में अधिकतम सामाजिक लाभ की दशा भी सुनिश्चित करना है। भारतीय कर प्रणाली में इस बात का ध्यान रखा गया है कि करारोपण का विनियोग, बचत एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और जनता को अधिकतम सन्तुष्टि एवं कल्याण मिल सके।
- भारत में संघीय वित्त व्यवस्था है जिसके अनुसार संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के आय के साधनों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। आय प्राप्त करने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों को कुछ कर लगाने का अधिकार संविधान में दिया गया है।
- यदि आय-कर बहुत प्रगतिशील होता है तो बचत एवं विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे उत्पादन का स्तर गिर जाता है। जब लोगों की आय का एक बड़ा प्रतिशत सरकार करों के रूप ले लेती है तो लोग बचत करने एवं कार्य करने को प्रोत्साहित नहीं होते।
- विकसित देशों की तरह भारत में आय-कर कर-राजस्व का प्रमुख स्रोत नहीं है। जनसंख्या का एक प्रतिशत भाग भी इस कर का भुगतान नहीं करता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जो वास्तव में आय-कर देने योग्य हैं, उनकी पहचान नहीं हो पा रही है और ऐसे लोग सरकार की आंखों में धूल झोंककर बड़े पैमाने पर कर की चोरी कर रहे हैं।
- निगम कर व्यावसायिक निगमों और कम्पनियों के लाभ पर लगाया जाने वाला कर है। यह उस कर से भिन्न है जो कम्पनी के लाभांश पर अंशधारियों द्वारा दिया जाता है। 1959-60 तक इस कर को सुपर टैक्स (Super Tax) के नाम से जाना जाता था।
- 1959-60 में काल्डोर द्वारा 1956 में की गई अनुशांसा के आधार पर भारत में जिस निगम कर को अपनाया गया वह इस कर की क्लासिकल विचारधारा के अनुकूल थी। इस विचारधारा के अनुसार कम्पनी या निगम का पृथक् अस्तित्व होता है। इस कारण कम्पनी के कुल लाभ पर पृथक् निगम कर लगाया जा सकता है।
- सम्पत्ति कर एक व्यक्ति की सम्पत्ति अथवा धन अथवा पूँजी के कुल मूल्य पर प्रतिवर्ष लगाया है। यह व्यावसायिक कम्पनियों और निगमों की सम्पत्ति पर भी लगाया जाता है।
- केन्द्रीय उत्पादन शुल्क भारत सरकार की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। केन्द्रीय सरकार शराब, अफीम एवं अन्य नशीली वस्तुओं को छोड़कर भारत में पैदा की जाने वाली समस्त वस्तुओं पर उत्पादन कर लगा सकती है। नशीली वस्तुएँ राज्य सरकारों के अधिकार-क्षेत्र में आती हैं।

## नोट

- केन्द्रीय उत्पाद शुल्क का पर्याप्त विस्तार 1960 तथा 1970 के दशकों में हुआ। 1944-75 में करीब 128 वस्तु समूहों पर यह कर लगा हुआ था। इन वस्तुओं में निर्मित वस्तु, कच्ची सामग्री तथा मध्यवर्ती वस्तु सभी शामिल थीं। कच्ची सामग्री तथा मध्यवर्ती वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क का प्रपाती (Cascading) प्रभाव पड़ता है जो आर्थिक ख्याल से उचित नहीं है।
- कर सुधार समिति (चेल्याह समिति) ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट-भाग एक (1991) में सेवाओं पर कर लगाने की सिफारिश की। इस कर को लगाने के पीछे यह तर्क था कि आर्थिक विकास के साथ-साथ सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का प्रतिशत बढ़ता जाता है तथा वस्तु क्षेत्र का अंशदान घटता जाता है। उत्पाद कर राजस्व की उत्पादकता उस कारण घटती जाएगी।
- भारत सरकार ने 1956 में केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम पारित किया तथा उन वस्तुओं पर विक्रय कर लगाया जिनका अन्तर्राज्यीय व्यापार होता है। जिस राज्य से वस्तुएँ बाहर जाती हैं वही राज्य कर लगाता है तथा राजस्व भी प्राप्त करता है। बिक्री कर एक विवादग्रस्त विषय है तथा इसका विरोध किया जाता है तथा इसे समाप्त करने का चुनावी मुद्दा बनाया जाता है पर यह समाप्त नहीं हो पाता क्योंकि राज्य इस आधार पर इसका विरोध करते हैं क्योंकि यह उनकी आय का सबसे बड़ा स्रोत है।
- स्थानीय शासन में मुख्य रूप से नगर निगम, ग्राम नगरपालिकाएँ, ग्राम पंचायतें एवं जिला बोर्डों का समावेश होता है। इनके व्यय को देखते हुए राज्य सरकार द्वारा इन्हें आय प्राप्त करने हेतु कुछ कर लगाने के अधिकार दिए गए हैं।

#### 25.4 शब्दकोश (Keywords)

- अधिभार (Surcharge)—अतिरिक्त कर।
- प्रपाती (Cascading)—ऐसी चट्टान जिसका किनारा खड़ा हो।
- लगान (Economic rent)—भू-कर।

#### 25.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारतीय कर प्रणाली के लक्षणों का वर्णन करें।
2. भारतीय कर प्रणाली में अच्छी कर प्रणाली की क्या विशेषताएँ हैं?
3. केन्द्र सरकार की आय के स्रोतों को लिखें।
4. आयकर किसे कहते हैं? इसकी विशेषताओं को लिखें।
5. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें—  
(a) निगम कर (b) सम्पत्ति कर (c) सेवा कर।
6. राज्य सरकारों के मुख्य करों का वर्णन करें।
7. स्थानीय शासन के मुख्य करों का वर्णन करें।

#### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |                 |                  |         |            |
|-----------------|------------------|---------|------------|
| 1. डॉ. जॉन मथाई | 2. प्रो. काल्डोर | 3. 1968 | 4. करारोपण |
| 5. अस्त्र       | 6. (अ)           | 7. (ब)  | 8. (स)     |
| 9. (द)          | 10 (अ)।          |         |            |

नोट

## 25.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
5. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## इकाई-26: श्री एल. के. झा समिति की सिफारिशें (Recommendations of Shri L. K. Jha Committee)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

26.1 समिति के निष्कर्षों का सारांश तथा सिफारिशें (Summary of Conclusions and Recommendations)

26.2 समिति की खोज (Findings of the Committee)

26.3 समिति की सिफारिशें (Recommendations of the Committee)

26.4 सारांश (Summary)

26.5 शब्दकोश (Keywords)

26.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

26.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- समिति के निष्कर्षों का सारांश तथा सिफारिशों को जानने हेतु।
- समिति की खोज संबंधी बातों को समझने में।
- समिति की सिफारिशों की जानकारी हेतु।

### प्रस्तावना (Introduction)

अप्रत्यक्ष कर-प्रणाली में सुधार करने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार ने 19 जुलाई, 1976 में श्री एल. के. झा की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की। इस समिति के छः सदस्य—श्री एम. बी. अरुणाचलम, डॉ. राजा जे. चालिया, श्री जे. सेन गुप्ता, श्री जी. वी. नेवाल्कर, श्री मनमोहन सिंह, श्री के. नरसिम्हा नियुक्त किये गये। किन्तु सितम्बर, 1976 में श्री एस. एस. मराठे—अध्यक्ष, औद्योगिक लागत तथा कीमत ब्यूरो को श्री मनमोहन सिंह की जगह नियुक्त किया गया और श्री के. एन. नरसिम्हा को समिति का सचिव नियुक्त किया गया।

### विचारणीय बातें (Terms of Reference)

समिति को निम्नलिखित बातों पर विचार करके अपनी अन्तिम सिफारिशें देनी थीं—

- (i) केन्द्रीय, राज्यों तथा स्थानीय निकायों के वर्तमान अप्रत्यक्ष कर संरचना पर पुनः विचार (review) करना।

## नोट

- (ii) दुर्लभ साधनों को आर्थिक उपयोग में प्रोत्साहित करने में अप्रत्यक्ष करों के योगदान की जाँच करना।
- (iii) उत्पादन करों की संरचना तथा स्तरों, इन करों की कीमतों तथा लागतों पर प्रभाव, इन करों का आवृत्तीय प्रभाव (Cumulative effects), विभिन्न व्यय समूहों पर इन करों का अन्तिम भार, कर आधार बढ़ाने का क्षेत्र प्रणाली की लोच में वृद्धि करना इत्यादियों की जाँच करना।
- (iv) इकट्ठी राशि के रूप में लगाये जाने वाले कर (Value-added-Tax) की कुछ मदों को अप्रत्यक्ष कर प्रणाली जहाँ अनुकूल हों, में लागू करने की सुलभता (feasibility) की जाँच करना और यदि ये सुलभ पाये जाएँ तो यह कर भारतीय परिस्थितियों में किन लोगों पर लगाया जाए—निर्माताओं, थोक व्यापारियों या फुटकर व्यापारियों पर? इसके लिए उचित सुझाव दिये जाएँ।
- (v) क्या किसी विशेष उद्योग या एक उद्योग के विशेष क्षेत्र को अप्रत्यक्ष करों में सुविधाओं के रूप में अनुदान (grant of concessions) दिया जाए? यदि दिया जाता है तो किस सीमा तक सहायता दी जानी चाहिए। इन सबकी जाँच करना।
- (vi) आयात-करों की स्तर तथा संरचना का आयात व्यापार नियन्त्रण, देश के उद्योगों, की सुरक्षा तथा देश की वस्तुओं की कीमत निर्धारण आदि के सम्बन्ध में जाँच करना। यदि आवश्यक हो तो इनमें परिवर्तन के लिए सुझाव दिया जाए।
- (vii) सरकार को समिति द्वारा दी गई सिफारिशों को लागू करने में उचित कदम (प्रशासन तथा संगठनात्मक नियुक्तियों में परिवर्तन भी सम्मिलित हैं) उठाने के लिए सलाह दी जाए।
- (viii) यदि कोई आवश्यकता हो, संविधान तथा कर विधान में परिवर्तन करने के लिए सुझाव दिये जाएँ। परिवर्तनों को लागू करने में ऐसी कर संरचना का सुझाव दिया जाए जो केन्द्र तथा राज्यों दोनों की वित्तीय आवश्यकताएँ पूरी कर सकें।
- (ix) साधनों को गतिशील करने में अप्रत्यक्ष करों में भूमिका की जाँच करने समय कर संरचना में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों के मध्य परस्पर क्रियाओं तथा उचित तालमेल का ध्यान रखा जाए।
- (x) जाँच में यदि कोई अन्य बात नजर आये तो उसकी भी सिफारिश की जाए।

## 26.1 समिति के निष्कर्षों का सारांश तथा सिफारिशें

## (Summary of Conclusions and Recommendations)

अप्रत्यक्ष कर जाँच समिति, जो झा समिति के नाम से जानी जाती है, ने अपनी रिपोर्ट अप्रैल, 1977 को सरकार के समक्ष रखी। समिति ने अपना काम पूर्ण कर लिया है। समिति ने अपनी जाँच के दौरान जो अनुभव किया एवं देखा, उन प्राप्तियों (findings) का सारांश, निष्कर्ष तथा सिफारिशें नीचे दी जा रही हैं—



नोट्स अप्रैल, 1977 में झा समिति ने अपनी रिपोर्ट सरकार के सामने रखी।

## निरीक्षण (Observations)

अप्रत्यक्ष कर जाँच समिति ने अनुभव किया कि कर प्रणाली का मुख्य उद्देश्य आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक वास्तविक साधनों को गतिशील बनाना है। किन्तु जिस प्रकार से करों के माध्यम से साधनों को गतिशील किया जाता है उस पर भार का प्रभाव अर्थव्यवस्था तथा समाज पर बुरा पड़ता है। सामाजिक दृष्टिकोण से कर प्रणाली वही बेहतर मानी जाती है जो सामाजिक न्याय के अनुकूल हो। आर्थिक दृष्टिकोण के अनुसार अच्छी कर प्रणाली वह होती है जिससे आर्थिक क्रियाओं को प्रोत्साहन मिल सके। आर्थिक प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन तभी मिल सकेगा जबकि कर प्रणाली एक तरफ से साधनों को गतिशीलता प्रदान करे तथा दूसरी तरफ प्रयोग में लाये जाने वाले साधनों की कुशलता में निम्नतम कमी करे।

## नोट

इस प्रकार कर-प्रणाली निर्धारित करते समय इन उद्देश्यों को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए। करों को अन्धाधुन्ध इसलिए नहीं लगाते रहना चाहिए कि इनसे राजस्व में वृद्धि होगी या विशेष उत्पादकों की कठिनाइयों का समाधान हो जायेगा। राजस्व वृद्धि करनी भी है तो इस तरह से की जाए ताकि प्रणाली के संरचनात्मक सन्तुलन जो कि एक बार स्थापित हो जाए, उसमें बिगाड़ न हो पाये। इन सम्बन्ध में समिति का विश्वास है कि यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि प्रणाली का विवेकीकरण हो चुका हो तथा इनमें परिवर्तन समिति के सुझावों के अनुकूल किया जाए।



क्या आप जानते हैं करों को अन्धाधुन्ध नहीं लगाना चाहिए।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. .... में श्री एल. के. झा की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की।
2. अप्रत्यक्ष कर जाँच समिति जो ..... समिति के नाम से जानी जाती है, ने अपनी रिपोर्ट अप्रैल, 1977 को सरकार के समक्ष रखी।
3. सामाजिक दृष्टिकोण से कर प्रणाली वही बेहतर मानी जाती है जो ..... न्याय के अनुकूल हो।
4. विभिन्न राज्यों में कर भार का वितरण ..... है।
5. झा समिति में ..... सदस्य थे।

### 26.2 समिति की खोज (Findings of the Committee)

समिति ने रिपोर्ट में अपनी खोजों या प्राप्तियों पर प्रकाश डाला है तथा कर-प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन की सिफारिश की है। समिति ने अनुभव किया है कि भारत की वर्तमान अप्रत्यक्ष कर प्रणाली दोषपूर्ण है तथा केन्द्र, राज्यों तथा स्थानीय निकायों द्वारा स्वतन्त्र रूप से लगाये गये अप्रत्यक्ष करों में विशेष कोई तालमेल (Coordination) नहीं है। प्रत्येक सरकारों द्वारा लगाये गये मुख्य करों की संरचना में कोई स्थिरता (Consistency) नहीं है और उसके कारण उन सबका संयुक्त रूप से पड़ने वाला प्रभाव अर्थव्यवस्था पर बुरा पड़ता है। समिति का कहना है कि करों में सुधार के लिए इन उद्देश्यों का होना आवश्यक है—कर प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए ताकि विभिन्न कर परस्पर एक-दूसरे पर छा जाएं तथा इन करों की आन्तरिक संरचना इस प्रकार से निश्चित की जाए ताकि देश में एक समान अप्रत्यक्ष कर-प्रणाली लागू की जा सके। **समिति ने वर्तमान अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में निम्नलिखित कमियाँ (deficiencies) बताई हैं—**

- (1) सरकार कच्चे माल, आयातित वस्तुओं, उत्पादन तथा बिक्री पर कर केवल अपने राजस्व वृद्धि के लिए ही लगाती है। इन करों के लगाने के क्या आर्थिक परिणाम होंगे, इस बारे में कम ही चिन्तित रहती है।
- (2) उत्पादन तथा बिक्री योग्य वस्तुओं पर लगाये जाने वाले कर अनेक वस्तुओं पर परस्पर एक दूसरे पर छाये रहते हैं। कहने का तात्पर्य है कि अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं (जिनकी संख्या काफी है) जिन पर उत्पादन-कर तथा बिक्री-कर दोनों लगाये जाते हैं।
- (3) विभिन्न राज्यों में कर भार का वितरण असमान है। इसका कारण यह है कि एक विशेष राज्य अपने करों का आयात दूसरे राज्यों के निवासियों पर कर देते हैं।



टास्क अप्रत्यक्ष कर प्रणाली के दोष क्या हैं?



## नोट

**26.3 समिति की सिफारिशें (Recommendations of the Committee)**

समिति ने अपनी रिपोर्ट अक्टूबर, 1977 में सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में समिति ने भारत में अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में सुधार करने के लिए निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तुत कीं—

**उत्पादन करों (Excise duties) के सम्बन्ध में समिति ने निम्नलिखित सुझाव प्रकट किये हैं—**

- (अ) अन्तिम उत्पादन (final products) पर कर संरचना का विवेकीकरण (rationalisation) इस प्रकार किया जाए ताकि वृद्धि (Progression) को आसानी से प्राप्त किया जा सके तथा अपनी आर्थिक प्राथमिकताओं को पूरा किया जा सके।
- (ब) कच्चे माल पर कर दरों का विवेकीकरण इस प्रकार से किया जाए ताकि निकट प्रतिस्थापित मालों के साथ एक जैसा व्यवहार किया जा सके। अन्यथा अर्थव्यवस्था में विशेष आर्थिक कारण होते हैं जिनमें विरोधाभास पाया जाता है। भूतकाल में विशेष कारणों से यदि किसी विशेष वस्तु पर ऊँची दर से कर लगा दिया गया हो वह सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की उत्पादन लागत को नीचे नहीं गिरने देगा।
- (स) उत्पादन कर-प्रणाली समस्या का समाधान एक निश्चित अवधि में करना आवश्यक है जिसके लिए समय अवधि में ही कुछ कदमों को उठाना आवश्यक है—प्रदा दरों (input taxation) में सुविधाएँ प्रदान करने की वर्तमान विधियों के कार्य-क्षेत्र को बढ़ाया जाए तथा निर्माणकारी अवस्था में इकट्ठी राशि के रूप में कर लगाया जाए।

**आयात करों (Import duties) के सम्बन्ध में समिति का कहना है कि आयात-कर मुख्यतया कच्चे माल, माध्यमिक वस्तुएँ (Intermediate products) तथा मशीन इत्यादि वस्तुओं पर ही लगाये जाते हैं। इसका प्रभाव यह होगा कि इससे लागत-कीमत संरचना में सामान्य वृद्धि हो जाती है जो कि अपने आप में अवांछनीय है इससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पर विपरीत असर पड़ता है।**

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य कथन की पहचान करें**

(State whether the following statements are True or False) :

6. समिति ने अपनी रिपोर्ट अक्टूबर, 1977 में सरकार के समक्ष प्रस्तुत की।
7. आयात-कर मुख्यतया कच्चे-माल, माध्यमिक वस्तुएँ तथा मशीन इत्यादि पर नहीं लगाया जाना चाहिए।
8. अंतिम उत्पादन पर कर संरचना का विवेकीकरण होना चाहिए।

**26.4 सारांश (Summary)**

- अप्रत्यक्ष कर जांच समिति ने अनुभव किया कि कर प्रणाली का मुख्य उद्देश्य आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक वास्तविक साधनों को गतिशील बनाना है। किन्तु जिस प्रकार से करों के माध्यम से साधनों को गतिशील किया जाता है उस पर भार का प्रभाव अर्थव्यवस्था तथा समाज पर बुरा पड़ता है। सामाजिक दृष्टिकोण से कर प्रणाली वही बेहतर मानी जाती है जो सामाजिक न्याय के अनुकूल हो।
- समिति ने रिपोर्ट में अपनी खोजों या प्राप्ति पर प्रकाश डाला है तथा कर-प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन की सिफारिश की है। समिति ने अनुभव किया है कि भारत की वर्तमान अप्रत्यक्ष कर प्रणाली दोषपूर्ण है तथा केन्द्र, राज्यों तथा स्थानीय निकायों द्वारा स्वतन्त्र रूप से लगाये गये अप्रत्यक्ष करों में विशेष कोई तालमेल (Coordination) नहीं है। प्रत्येक सरकारों द्वारा लगाये गये मुख्य करों की संरचना में कोई स्थिरता (Consistency) नहीं है और उसके कारण उन सबका संयुक्त रूप से पड़ने वाला प्रभाव अर्थव्यवस्था पर बुरा पड़ता है।

## 26.5 शब्दकोश (Keywords)

नोट

- अनुदान (Concession)–आर्थिक सहायता।
- सुलभता (Feasibility)–आसानी।

## 26.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. समिति को किन-किन बातों पर विचार करके अपनी अंतिम सिफारिशें देनी थीं?
2. अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में सुधार करने के लिए क्या-क्या सिफारिशें प्रस्तुत की गईं?
3. आयात कर के संबंध में समिति के क्या सुझाव थे?
4. समिति की खोज पर प्रकाश डालें।

## उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |                   |         |            |          |
|-------------------|---------|------------|----------|
| 1. 19 जुलाई, 1976 | 2. झा   | 3. सामाजिक | 4. असमान |
| 5. छः             | 6. सत्य | 7. असत्य   | 8. सत्य। |

## 26.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस-नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।

नोट

## **इकाई-27: कर सुधारों पर राजा चलैया समिति की रिपोर्ट (Recommendations of Raja J.Chelliah Committee on Tax Reforms)**

### **अनुक्रमणिका (Contents)**

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 सिफारिशें (Recommendations)

27.2 सारांश (Summary)

27.3 शब्दकोश (Keywords)

27.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

27.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### **उद्देश्य (Objectives)**

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- चलैया समिति की सिफारिशों से भलीभाँति परिचित होने में।
- निपटारा आयोग की जानकारी प्राप्त करने हेतु।
- कर अनुसंधान ब्यूरो को समझने में।

### **प्रस्तावना (Introduction)**

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की कर-प्रणाली में कई बार परिवर्तन होते रहे हैं। लगभग हर वर्ष बजट में आयकर की दरों में संशोधन किए जाते हैं तथा कर-वंचना को रोकने के लिए सख्त व कड़े कानूनों के नाम पर उलझन भरे कानून बनाए गए हैं जिनका परिणाम यह रहा है कि न तो कर-वंचना ही रुक पाई है और न ही ईमानदारी से करों का भुगतान करने वालों की परेशानियाँ और कठिनाइयाँ रुक पाई हैं। इन्हीं परेशानियों, कठिनाइयों, कर-वंचना रोकने के उपायों तथा उचित कर प्रणाली हेतु व्यावहारिक सुझाव देने हेतु डॉ. राजा चलैया की अध्यक्षता में एक बार सुधार समिति का गठन किया गया जिसने अपनी रिपोर्ट केन्द्रीय वित्तमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह को दिनांक 28 अगस्त, 1992 को सौंप दी। चलैया समिति ने अपनी रिपोर्ट में देश की कर-प्रणाली में सुधार के लिए कुछ महत्वपूर्ण और व्यावहारिक सुझाव दिए हैं।

## 27.1 सिफारिशें (Recommendations)

समिति ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर-प्रणाली के कर, प्रशासन की तर्क संगत, सरल व सहज बनाने तथा विदेशी विनिमय और अनिवासी भारतीयों को पूँजी लगाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए व्यापक तथा महत्वपूर्ण सिफारिशों की है जो संक्षिप्त में निम्नलिखित हैं—

### निगम कर

प्रत्यक्ष करों के सम्बन्ध में समिति का महत्वपूर्ण सुझाव निगम क्षेत्र के सम्बन्ध में है। समिति ने सुझाव दिया है कि निगम कर की वर्तमान दर को 51.75 प्रतिशत से घटाकर 1993-94 तक 45 प्रतिशत तथा अगले वर्ष 40 प्रतिशत कर दिया जाना चाहिए। वर्तमान में विदेशी कम्पनियों पर निगम कर की दर घरेलू कम्पनियों पर निगम कर की दर 51.75 प्रतिशत के मुकाबले 65 प्रतिशत है। निगम कर की इस विभेदात्मक प्रवृत्ति के बारे में समिति ने सुझाव दिया है कि विदेशी तथा घरेलू कम्पनियों पर निगम कर की दर के अन्तर को 7.5 प्रतिशत तक नीचे लाना चाहिए अर्थात् समिति के अनुसार विदेशी कम्पनियों पर निगम कर की दर 47.5 प्रतिशत होनी चाहिए। विदेशी कम्पनियों पर निगम कर की दर को 65 प्रतिशत से घटाकर 47.5 प्रतिशत तक लाने में समिति का विचार है कि इससे देश में विदेशी मुद्रा पर्याप्त मात्रा में लगाई जाएगी।

### गैर-किसानों की कृषि आय पर कर

समिति ने एक महत्वपूर्ण सुझाव कृषि आयकर लगाने का दिया है। वर्षों से कृषि आयकर लगाने पर विचार होता रहा है, लेकिन राजनीतिक कारणों से इस पर कभी कोई निर्णय नहीं हो पाया। समिति के अनुसार बड़े किसान, जो स्वयं खेती नहीं करते लेकिन जिनके पास पर्याप्त भूमि है और जो दूसरे श्रमिकों से खेती करवाते हैं, उनकी 25,000 से अधिक की वार्षिक आय पर आय कर लगाया जाना चाहिए। 25,000 रुपये से अधिक की कृषि आय को कर योग्य गैर-कृषि आय के साथ जोड़कर उस पर कर लगाने की सिफारिश समिति ने की है। समिति का विचार है कि इससे काले धन व कर वंचना पर नियन्त्रण होगा तथा राजस्व में वृद्धि होगी।

### कराधान व्यवस्था में बार-बार परिवर्तन पर रोक

समिति ने एक और व्यावहारिक सुझाव यह दिया है कि हर वर्ष के बजट में कराधान प्रक्रिया में संशोधन और राहत में परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए। कर-व्यवस्था को कम से कम पाँच वर्ष के लिए तो एक-सा ही रखा जाना चाहिए। जिससे उद्योगपति अपने कारखानों के विस्तार और विकास की योजनाएँ बना सकें। समिति के अनुसार कराधान व्यवस्था में बार-बार परिवर्तन से असमंजस की स्थिति पैदा होती है और आर्थिक विकास की गति में अवरोध पैदा होता है।



**नोट्स** हर वर्ष कराधान प्रक्रिया व राहत में संशोधन नहीं किया जाना चाहिए।

### तथ्यपरक लक्ष्य

समिति की रिपोर्ट के अनुसार करों की ऊँची दरों, सीमा-शुल्कों में दोहराव की स्थिति, आम बहस के बिना कानूनों में बदलाव, करों में छूट और कटौतियाँ करने से कर ढाँचे के हालात बिगड़े हैं। समिति ने सरकार को कर वसूली का तथ्यपरक लक्ष्य रखने और लक्ष्य निर्धारण के समय अर्थव्यवस्था की विकास दर और कीमतों में सम्भावित वृद्धि को ध्यान में रखने का सुझाव दिया है।

### निपटारा आयोग

आयकर विभाग के अधिकारियों के पास कर मामले निपटाने का अधिकार नहीं है और न्यायालय इसमें बहुत देर लगाते हैं इसलिए समिति ने एक निपटारा आयोग गठित करने की सिफारिश की है। निपटारा आयोग ऐसी समस्याओं का समाधान करेगा। लेकिन समिति ने अपनी रिपोर्ट में इस बात की भी चेतावनी दी है कि इस आयोग को कर चोरों की शरणस्थली बनने से रोकने के भी उपाय किए जाए। समिति के अनुसार निपटारा आयोग को मुख्य आयुक्तों द्वारा किसी मामले पर की गई आपत्तियों को नजरअन्दाज करने की अधिकारिता नहीं होनी चाहिए।

## नोट

## कर अनुसंधान ब्यूरो

कर ढाँचे में स्थायित्व के लिए समिति ने कर अनुसन्धान ब्यूरो बनाने का सुझाव दिया है। इस ब्यूरो का काम सुधार सम्बन्धी सुझावों का विश्लेषण करके आम बहस प्रारम्भ करना होगा। इस प्रक्रिया के बाद जिन बदलावों पर सहमति बनेगी उन्हें कम-से-कम संख्या में और पाँच साल में एक बार ही लागू करने का सुझाव दिया है।

## प्रशासनिक कमजोरियाँ

कर प्रशासन में खामियों का उल्लेख करते हुए समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि प्रशिक्षित अधिकारियों की कमी, प्रशासन का प्रभावी ढंग से काम नहीं करना, राजनीतिक नेताओं का प्रशासनिक मामलों में हस्तक्षेप करना व पूरी तरह सोच-विचार के बिना अपील करने की प्रवृत्ति के कारण भी प्रशासन सही ढंग से काम नहीं कर पाता। समिति ने कर प्रशासन को बेहतर बनाने के लिए कर निर्धारण करने वाले अधिकारियों को उनके कार्यों के लिए जिम्मेदार बनाए जाने की सिफारिश की है। समिति ने जहाँ ईमानदार और सक्षम अधिकारियों को पुरस्कृत करने का सुझाव दिया है, वहीं अक्षम अधिकारियों के विरुद्ध प्रतिकूल टिप्पणी करने की सिफारिश की है। समिति के अनुसार फिलहाल आयकर अधिनियम के अन्तर्गत लगाए जाने वाले दण्ड के स्थान पर अतिरिक्त ब्याज या विलम्ब शुल्क लगाने का प्रावधान होना चाहिए। समिति ने इस सम्बन्ध में आयुक्तों तथा महानिदेशकों को अधिकार दिए जाने की बात कही है।



क्या आप जानते हैं? समिति ने कर प्रशासन को बेहतर बनाने के लिए कर निर्धारण करने वाले अधिकारियों को उनके कार्यों के लिए जिम्मेदार बनाए जाने की सिफारिश की है।

## अन्य सुझाव

समिति ने उपर्युक्त महत्वपूर्ण सुझावों के अलावा ब्याज-कर को समाप्त करने का सुझाव दिया है। समिति ने यह सुझाव भी दिया है कि कर निर्धारण के कार्य का कम्प्यूटरीकरण कर दिया जाना आवश्यक है।

## समीक्षा (Conclusion)

चलैया समिति ने अपनी रिपोर्ट में देश की कर-प्रणाली में सुधार के लिए जो सुझाव दिए हैं वे अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक सिद्ध हो सकते हैं यदि उन्हें ईमानदारी से कार्यान्वित किया जाए। समिति का यह सुझाव कि निगम कर की वर्तमान दर 51.75 प्रतिशत को घटाकर 1993-94 तक 45 प्रतिशत तथा उसके बाद यानी अगले वर्ष 40 प्रतिशत कर देना व्यावहारिक है। इससे देश में पूँजी निवेश में वृद्धि होगी। समिति का यह सुझाव कहाँ तक क्रियान्वित होगा यह तो सरकार के निर्णय पर निर्भर करेगा लेकिन यदि कर वंचना को रोकना है तो करों की दर घटानी होगी। निगम कर की दर 40 प्रतिशत तक लाना तर्कसंगत है क्योंकि विकसित तथा विकासशील देशों में निगम कर की औसत दर लगभग 35 प्रतिशत होती है जो अग्र तालिका में स्पष्ट है।

## विभिन्न देशों में निगम कर की दरें

देश	निगम कर की दर ( प्रतिशत )	देश	निगम कर की दर ( प्रतिशत )
ब्राजील	30	स्वीडन	30
मैक्सिको	35	पेरू	35
मलेशिया	35	पाकिस्तान	40-50
इण्डोनेशिया	15-35	ताइवान	25
ब्रिटेन	35	थाईलैण्ड	35
अमरीका	35	अर्जेन्टाइना	36

## नोट

विदेशी कम्पनियों तथा घरेलू कम्पनियों पर निगम कर के अन्तर को 7.5 प्रतिशत तक नीचे लाने से अर्थात् विदेशी कम्पनियों पर निगम कर को 65 प्रतिशत से घटाकर 47.5 प्रतिशत करने से विदेशी विनियोग को प्रोत्साहन मिलेगा। इससे विदेशी कम्पनियों तथा अनिवासी भारतीय भारत में पूँजी लगाने को प्रोत्साहित होंगे। भारतीय परिस्थितियों के अनुसार निगम करों से सम्बन्धित समिति के सुझाव व्यावहारिक तथा उपयुक्त हैं।

गैर किसानों की कृषि आय पर कर लगाने का सुझाव कोई नई बात नहीं है। भारत के प्रथम वित्त मंत्री डॉ. जॉन मेथाई ने 1953 में तथा के. एन. राज समिति ने 1973 में गैर-किसानों की कृषि आय पर कर लगाने की बात कही थी। अतः कृषि आय पर कर लगाने की बात एक लम्बे अरसे से आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में तैरती रही है परन्तु वोट की राजनीति के कारण से इसे कर सीमा के भीतर लाने का सरकार कभी साहस नहीं कर सकी। चलैया समिति ने इस बारे में एक बीच का नया रास्ता सुझाया है। भारत में अधिकांश किसान छोटी जोत वाले हैं और वे आयकर देने की स्थिति में भी नहीं हैं, यह बात तो साफ है लेकिन बड़े किसान जो खुद खेती न करके श्रमिकों से खेती करवाते हैं उनकी आमदनी पर कर न लगे यह बात समझ में आने वाली नहीं है। समिति का यह सुझाव कि जो लोग खुद खेती नहीं करते लेकिन जिनके पास कृषि भूमि है उनकी 25,000 रुपये से अधिक की वार्षिक आय पर कर लगाया जाना चाहिए न्यायोचित तथा व्यावहारिक है। जो लोग स्वयं खेती नहीं करते उन्हें किसान की श्रेणी में मानना ही अपने आप में गलत है। इससे आर्थिक तथा सामाजिक विकृति भी पनपती है। खेती में कमाई के नाम पर काले धन को सफेद धन बनाने की प्रवृत्ति व्यापक होती जा रही है। ऐसी प्रवृत्ति पर रोक हेतु व सरकारी राजस्व की दृष्टि से भी ऐसा करारोपण न्यायोचित है। दूसरा पहलू यह भी है कि केन्द्र तथा राज्य सरकारें कृषि विकास के लिए बिजली, पानी, उर्वरक तथा उपकरणों के वास्ते बड़ी राशि खर्च करती हैं, इसका मुख्य लाभ बड़े किसानों और फार्म हाउसों के कारण गैर किसानों को मिला है, इन परिस्थितियों में कृषि क्षेत्र में हुए निवेश की कुछ ही वसूली गरीब किसानों की बजाय फार्म, हाउस के मालिकों और इन संस्थाओं के कारण जो बड़ी खेतीहर भूमि की मालिक बनी बैठी हैं, न्यायोचित व विवेकपूर्ण ही है। अतः सरकार को राजनीतिक स्वार्थों के ऊपर उठकर चलैया समिति की गैर किसानों पर कृषि आय पर कर लगाने की सिफारिश को कार्यान्वित करना चाहिए।



टास्क भारत के प्रथम वित्तमंत्री कौन थे?

समिति का निपटारा आयोग गठित करने व कर व्यवस्था में स्थिरता लाने के लिए कर अनुसंधान ब्यूरो की स्थापना करने का सुझाव भी उचित है। परन्तु खेद की बात यह है कि इस देश में कर देने वाले को कर चोर माना जाता है। कर व्यवस्था में सुधार लाने के लिए इस मानसिकता को बदलना होगा। कर वंचना को अपराध माना गया है लेकिन यदि कर व्यवस्था ही दूषित व अव्यावहारिक हो तो व्यक्ति को अकेले दोषी ठहराया जाना न्यायोचित नहीं है। अतः कर-प्रणाली सरल तथा व्यवहार्य होनी चाहिए। सरकार को कर प्रशासन को चुस्त, ईमानदार और संवेदनशील बनाना चाहिए। अतः समिति की करारधान व्यवस्था में बार-बार परिवर्तन पर रोक की सिफारिश भी उचित व व्यावहारिक प्रतीत होती है। समिति के अन्य सुझाव भी भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल ही हैं अतः सरकार को दृढ़ इच्छा-शक्ति से इन्हें लागू करना चाहिए।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि देश में पूँजी लगाने को प्रोत्साहित करने, विदेशी विनियोग को आकर्षित करने, राजस्व आय में वृद्धि करने तथा देश की परिस्थितियों के अनुसार चलैया समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों को लागू करना चाहिए, इससे कर वंचना तथा काले धन जैसी समस्याओं का समाधान हो सकेगा तथा राजस्व में वृद्धि हो सकेगी।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की ..... में कई बार परिवर्तन होते रहे हैं।

## नोट

2. .... समिति ने अपनी रिपोर्ट में देश की कर-प्रणाली में सुधार के लिए कुछ महत्वपूर्ण और व्यावहारिक सुझाव दिए हैं।
3. समिति के अनुसार विदेशी कंपनियों पर निगम कर की दर ..... प्रतिशत होनी चाहिए।
4. .... ने अपनी रिपोर्ट में देश की कर-प्रणाली में सुधार के लिए जो सुझाव दिए हैं वे अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक सिद्ध हो सकते हैं।
5. गैर-किसानों की कृषि आय पर ..... लगाने का सुझाव कोई नई बात नहीं है।

## 27.2 सारांश (Summary)

- स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की कर-प्रणाली में कई बार परिवर्तन होते रहे हैं। लगभग हर वर्ष बजट में आयकर की दरों में संशोधन किए जाते हैं तथा कर-वचना को रोकने के लिए सख्त व कड़े कानूनों के नाम पर उलझन भरे कानून बनाए गए हैं जिनका परिणाम यह रहा है कि न तो कर-वचना ही रुक पाई है और न ही ईमानदारी से करों का भुगतान करने वालों की परेशानियाँ और कठिनाइयाँ रुक पाई हैं।
- प्रत्यक्ष करों के सम्बन्ध में समिति का महत्वपूर्ण सुझाव निगम क्षेत्र के सम्बन्ध में है। समिति ने सुझाव दिया है कि निगम कर की वर्तमान दर को 51.75 प्रतिशत से घटाकर 1993-94 तक 45 प्रतिशत तथा अगले वर्ष 40 प्रतिशत कर दिया जाना चाहिए।
- समिति ने एक महत्वपूर्ण सुझाव कृषि आयकर लगाने का दिया है। वर्षों से कृषि आयकर लगाने पर विचार होता रहा है, लेकिन राजनीतिक कारणों से इस पर कभी कोई निर्णय नहीं हो पाया।
- समिति की रिपोर्ट के अनुसार करों की ऊँची दरों, सीमा-शुल्कों में दोहराव की स्थिति, आम बहस के बिना कानूनों में बदलाव, करों में छूट और कटौतियाँ करने से कर ढाँचे के हालात बिगड़े हैं।
- कर प्रशासन में खामियों का उल्लेख करते हुए समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि प्रशिक्षित अधिकारियों की कमी, प्रशासन का प्रभावी ढंग से काम नहीं करना, राजनीतिक नेताओं का प्रशासनिक मामलों में हस्तक्षेप करना व पूरी तरह सोच-विचार के बिना अपील करने की प्रवृत्ति के कारण भी प्रशासन सही ढंग से काम नहीं कर पाता।
- चलैया समिति ने अपनी रिपोर्ट में देश की कर-प्रणाली में सुधार के लिए जो सुझाव दिए हैं वे अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक सिद्ध हो सकते हैं यदि उन्हें ईमानदारी से कार्यान्वित किया जाए।

## 27.3 शब्दकोश (Keywords)

- कराधान (Taxation)–कर लगाना।
- अनुसंधान (Investigation)–खोज।

## 27.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. चलैया समिति की सिफारिशों का वर्णन करें।
2. निपटारा आयोग से आप क्या समझते हैं?
3. समिति द्वारा रिपोर्ट में वर्णित प्रशासन संबंधी कमजोरियों का वर्णन करें।
4. विभिन्न देशों में निगम कर की दरों को तालिका द्वारा प्रस्तुत करें।

## उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. कर-प्रणाली
2. चलैया
3. 47.5
4. चलैया समिति
5. कर।

## 27.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट



पुस्तकें

1. लोक वित्त-न्यू रॉयल बुक कंपनी।
2. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
3. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस-सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
4. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
5. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।



नोट

## इकाई-28: प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों पर केलकर समिति की सिफारिशें (Recommendations of Kelker Committee on Direct and Indirect Tax)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

28.1 सेवा कर से राजस्व प्राप्ति (Revenue Gain from Service Tax)

28.2 व्यय सुधार आयोग (Expenditure Reforms Commission)

28.3 सारांश (Summary)

28.4 शब्दकोश (Keywords)

28.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

28.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- सेवा कर से राजस्व प्राप्ति संबंधी जानकारी प्राप्त करने में।
- व्यय सुधार आयोग को समझने हेतु।

### प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों पर गठित केलकर कार्यदल की फाइनल रिपोर्ट तत्कालीन केन्द्रीय वित्त मंत्री जसवंत सिंह को 27 दिसम्बर, 2002 को सौंपी गई थी। तमाम आलोचनाओं के बावजूद अक्टूबर व नवम्बर 2002 में प्रस्तुत अपने परामर्श पत्रों में मामूली बदलाव ही इस समिति ने अपनी फाइनल सिफारिशों में किए हैं। समिति के अनुसार उसकी इन सिफारिशों को लागू करने से मध्यम वर्ग को जहाँ कर राहत मिलेगी वहीं देश में कर-जीडीपी अनुपात में इससे वृद्धि हो सकेगी। समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्नलिखित हैं—

- (1) वैयक्तिक आयकर मुक्त आय की सीमा एक लाख रुपए।
- (2) आयकर की केवल दो दरों का प्रस्ताव, 1 लाख रुपए से 4 लाख रुपए तक की वार्षिक आय पर 20 प्रतिशत तथा 4 लाख रुपए से अधिक आय पर 30 प्रतिशत।
- (3) आयकर पर अधिभार की समाप्ति।

## नोट

- (4) आयकर में मिलने वाली अधिकांश छूटें समाप्त करने के सुझाव मानक छूट की भी समाप्ति।
- (5) वरिष्ठ नागरिकों व विधवाओं को कर राहत।
- (6) आवास ऋणों पर ब्याज में आयकर की छूट 1.50 लाख रुपए के स्थान पर 50 हजार रुपए तक की ब्याज पर हो 5 लाख रुपए तक के आवास ऋणों पर 2 प्रतिशत की वैकल्पिक ब्याज राहत।
- (7) लाभांश कर व सूचीबद्ध शेरों पर दीर्घकालिक पूँजीगत लाभ की समाप्ति।
- (8) निगम कर की दर 36.5 प्रतिशत से घटाकर 30 प्रतिशत।
- (9) न्यूनतम वैकल्पिक कर (MAT) की समाप्ति।
- (10) उत्पाद शुल्क व सीमा शुल्क संरचना में व्यापक परिवर्तन।
- (11) सेनवैट की दर 16 प्रतिशत से घटाकर 14 प्रतिशत करने का सुझाव।
- (12) सेवा कर के दायरे के व्यापक विस्तार का सुझाव।



नोट्स केलकर कार्यदल की फाइनल रिपोर्ट तत्कालिक केंद्रीय वित्त मंत्री जसवंत सिंह को 27 दिसम्बर, 2002 को सौंपी गई थी।

### 28.1 सेवा कर से राजस्व प्राप्ति (Revenue Gain from Service Tax)

वर्ष 1994-95 में पहली बार सेवा कर का आरोपण किया गया, जबकि सरकार को सेवा कर से 407 करोड़ रुपए की प्राप्ति हुई वित्तीय वर्ष 2003-04 के दौरान सेवा कर से प्राप्त राशि 8300 करोड़ रुपए हो गई, जो वर्ष 2004-05 में 14150 करोड़ रुपए तक बढ़ गई, वर्ष 2005-06 के बजट प्रस्तावों में सेवा कर से 17,500 करोड़ रुपए की राशि संग्रहीत करने का प्रस्ताव है। वित्तीय वर्ष 2004-05 के केन्द्रीय बजट में 13 नई सेवाओं को 'सेवा कर' (Service Tax) के दायरे में लाने का प्रस्ताव केन्द्रीय वित्तमन्त्री ने किया था। ये 13 नई सेवाएँ थीं—व्यापार प्रदर्शनी, एयरपोर्ट सेवाएँ, ट्रांसपोर्ट बुकिंग एजेंटों की सेवाएँ, वस्तुओं को एरोप्लेन से भेजना, सर्वे और एक्सप्लोरेशन, ओपिनियन पोल, कॉपीराइट को छोड़ इंटरलेक्चुअल प्रॉपर्टी सेवाएँ, फॉरवर्ड (वायदा) कांट्रैक्ट के ब्रोकर, पंडाल, और शामियाना कांट्रैक्टर, आउटडोर कैटर, टीवी/रेडियो प्रोग्राम प्रस्तुतकर्ता, कॉमर्शियल और इंडस्ट्रियल कंस्ट्रक्शन और रिस्क प्रीमियम को सीमा तक लाइफ इंश्योरेंस (लाइफ इंश्योरेंस प्रीमियम के बचत वाले अंश पर सेवा कर नहीं लगेगा।) सेवा कर के दायरे में पहले से शामिल सेवाओं में टेलीफोन सेवा, शेयर दलाल, जनरल इंश्योरेंस, एडवर्टाइजिंग एजेंसी, कुरियर एजेंसी, रेडियो पेजर सेवाएँ, कंसल्टिंग इंजीनियर्स, एयर ट्रेवल एजेंट्स, टूर ऑपरेटर, रेंट ए कैब ऑपरेटर, मैन पॉवर रिक्रूटमेंट एजेंसी आर्किटेक्ट, इंटीरियर डेकोरेटर्स, मैनेजमेंट कंसल्टेंट, प्रैक्टिसिंग चार्टर्ड अकाउंटेंट, कम्पनी सेक्रेट्री, कॉस्ट अकाउंटेंट, रियल एस्टेट एजेंट कंसल्टेंट्स, क्रेडिट रेटिंग एजेंसी, प्राइवेट सिक्योरिटी एजेंसी, मार्केट रिसर्च एजेंसी, फोटोग्राफी, कन्वेंशन, टेलीग्राफ, टेलेक्स, फैक्स, ऑन-लाइन और डाटा बेस सर्विसेज, साउण्ड रिकॉर्डिंग, ब्रॉडकास्टिंग, कार्गो हैंडलिंग, स्टोरेज एण्ड वेयर हाउसिंग, इवेंट मैनेजमेंट, केबल ऑपरेटर्स, ब्यूटी पार्लर्स, हैल्थ एण्ड फिटनेस सेंटर आदि की सेवाएँ शामिल हैं।

बजट 2005-06 के बजट प्रस्तावों में सेवा कर की दर को पूर्ववत् 10% बनाए रखते हुए छोटे उत्पादकों को इस कर से राहत बजट में प्रदान की गई है बजट 2005-06 में सेवा कर की परिधि में 21 अन्य सेवाओं को शामिल किया गया है।

'सेवा कर' (Service Tax) का आरोपण एवं संग्रहण वर्तमान में केन्द्र सरकार द्वारा ही किया जा रहा है, किन्तु भविष्य में राज्य सरकारें भी इस कर का आरोपण कर सकेंगी। इसके लिए 95वाँ संविधान संशोधन विधेयक 2003 मई, 2003 में संसद ने पारित कर दिया था।

## नोट

## सेवा कर से प्राप्तियाँ

( करोड़ रुपए में )

वर्ष	प्राप्तियाँ
1994-95	407
1995-96	862
1996-97	1059
1997-98	1586
1998-99	1957
1999-2000	2128
2000-2001	2613
2001-2002	3302
2002-2003	4122
2003-2004	8300
2004-2005 (संशोधित)	14150
2005-2006 (बजट अनुमान)	17500

इस संशोधन विधेयक द्वारा सेवा कर को संविधान की 7वीं अनुसूची के तहत संघ सूची में शामिल करने का प्रावधान किया गया है, जबकि इसके संग्रहण का अधिकार केन्द्र व राज्यों दोनों को प्रदान करने के लिए इसमें प्रावधान किया गया है। संग्रहण के तरीकों के तौर निर्धारण के लिए एक नया विधेयक संसद में लाया जाएगा। प्रस्तावित विधेयक में ही यह निर्धारित किया जाएगा कि राजस्व बँटवारे के लिए केन्द्र व राज्यों के बीच सेवाओं का बँटवारा किया जाएगा या सेवा कर के कुल राजस्व में से हिस्सा राज्यों को दिया जाएगा।

उल्लेखनीय है कि सेवा कर का कोई प्रावधान संविधान की सातवीं अनुसूची में संघ सूची, राज्य सूची अथवा समवर्ती सूची में अभी तक नहीं है। इसके बावजूद 1 जुलाई, 1994 से केन्द्र सरकार द्वारा यह कर संविधान की संघ सूची में प्रदत्त उस विशेषाधिकार के तहत लगाया जा रहा है जिसमें कहा गया है कि किसी भी सूची (संघ, राज्य अथवा समवर्ती) में न शामिल किसी कर को लगाने का अधिकार केन्द्र का होगा।



क्या आप जानते हैं? सेवा कर को संविधान की 7वीं अनुसूची के तहत संघ सूची में शामिल करने का प्रावधान किया गया है।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

- केलकर कार्यदल की फाइनल रिपोर्ट ..... को सौंपी गई थी।
- रिपोर्ट के अनुसार, वैयक्तिक ..... मुक्त आय की सीमा एक लाख रुपए होनी चाहिए।
- ..... शुल्क व सीमा शुल्क संरचना में व्यापक परिवर्तन किए जाने चाहिए।
- ..... कर के दायरे के व्यापक विस्तार का सुझाव दिया गया।
- प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों पर ..... समिति का गठन किया गया।

## 28.2 व्यय सुधार आयोग (Expenditure Reforms Commission)

केन्द्र सरकार के समूचे व्यय प्रारूप की समीक्षा के लिए 28 फरवरी, 2000 को पूर्व वित्त सचिव श्री के. पी. गीताकृष्णन की अध्यक्षता में व्यय सुधार आयोग का गठन किया गया। यह आयोग गैर-जरूरी खर्चों को समाप्त करने और अन्य खर्चों में कमी लाने के उपाय प्रस्तुत किया।

आयोग के कार्य निम्नलिखित हैं-

- (1) केन्द्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विभागों और सम्बद्ध संगठनों के कार्यों की पुनरावृत्ति रोकने, राज्य सरकार की भूमिका तथा केन्द्र सरकार के कार्यों, क्रिया कलापों और प्रशासनिक ढाँचे में कमी लाने के सुझाव देना।
- (2) सभी प्रकार की सब्सिडी की समीक्षा और आर्थिक रूप से तर्कसंगत बनाने के लिए इन सब्सिडियों को जारी रखने की परख और उनके प्रभाव को अधिकतम करने के उपाय सुझाना।
- (3) विभागीय और व्यावसायिक सम्पत्तियों के इस्तेमाल के शुल्क तय करने के ढाँचे की समीक्षा तथा लागत वसूलने के लिए नीति सुझाना।
- (4) केन्द्र सरकार के मंत्रालयों, सम्बद्ध विभागों और संस्थानों के स्टाफ की संख्या की समीक्षा करना तथा विभिन्न सेवाओं के कैडर और स्टाफ को तर्कसंगत बनाने के उपाय सुझाना।
- (5) सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त स्वायत्त संस्थानों की स्थापना की प्रक्रिया तथा उन्हें धन देने के तौर-तरीकों की समीक्षा करना तथा उनकी गतिविधियों को चलाने के लिए बजटीय सहायता कम करने के उपाय सुझाना।
- (6) सरकार में व्यय प्रबंधन से जुड़े अन्य प्रासंगिक मुद्दे पर विचार करना और उचित सुझाव देना।

5 सदस्यीय आयोग ने अपनी पहली रिपोर्ट 10 जुलाई, 2000 को तथा छठी रिपोर्ट केन्द्रीय वित्त मंत्री को 26 जून, 2001 को प्रस्तुत की थी। इस रिपोर्ट में पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, रसायन एवं उर्वरक व इस्पात मंत्रालयों के सम्बन्ध में संस्तुतियाँ प्रस्तुत की गईं।

आयोग की सातवीं रिपोर्ट जुलाई 2001 में व आठवीं रिपोर्ट अगस्त 2001 में प्रस्तुत की गईं।

### वार्षिक बजट की प्रक्रिया

संघ अथवा केन्द्र सरकार की आगामी वित्तीय वर्ष की सभी अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का पूर्वानुमान प्रतिवर्ष संसद में प्रस्तुत किया जाता है। इसे **वार्षिक वित्तीय वक्तव्य या बजट** कहा जाता है।

### वैट रोड मैप-मुख्य बिन्दु

- 1 अप्रैल, 2005 से देशभर में 'वैट' का कार्यान्वयन।
- लगभग 550 उत्पाद 'वैट' के दायरे में।
- वैट की दो मुख्य दरें-4 प्रतिशत व 12.5 प्रतिशत।
- 46 उत्पादों की एक कर-मुक्त (Tax-exempted) श्रेणी।
- सोने चाँदी के आभूषणों के लिए 1 प्रतिशत की विशेष दर।
- पेट्रोल, डीजल, शराब, लॉटरी के टिकट व एटीएफ आदि वैट के दायरे के बाहर, क्योंकि इनका मूल्य बाजार शक्तियों से निर्धारित नहीं होता।
- अतिरिक्त उत्पाद शुल्क के दायरे वाले तीनों उत्पादों-चीनी, तम्बाकू व कपड़ा पर वैट अभी एक वर्ष तक लागू नहीं।
- वैट लागू करने से राज्य सरकारों को वित्तीय हानि होने पर पहले वर्ष हानि की 100 प्रतिशत भरपाई केन्द्र द्वारा, दूसरे व तीसरे वर्ष यह भरपाई क्रमश 75 प्रतिशत व 50 प्रतिशत।

## नोट

(राजस्व हानि का पता लगाने के लिए फार्मूला तय किया गया है। इसके लिए बिक्री कर से होने वाली राजस्व वृद्धि का औसत 2004-05 से पहले के पाँच वर्षों में से बेहतर वृद्धि वाले तीन वर्षों की वृद्धि के औसत के आधार पर तय किया जाएगा)।



टास्क आयोग की सातवीं रिपोर्ट कब प्रस्तुत की गई?

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

### बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

6. व्यय सुधार आयोग का गठन कब किया गया?
 

(अ) 28 फरवरी, 2000	(ब) 28 फरवरी, 2001
(स) 26 मार्च, 2000	(द) 26 मार्च, 2001
7. आयोग ने किस प्रकार के खर्चों को समाप्त करने और अन्य खर्चों में कमी लाने के उपाय प्रस्तुत किया?
 

(अ) जरूरी	(ब) गैर-जरूरी
(स) सार्वजनिक	(द) सरकारी।
8. कितने उत्पाद 'वैट' के दायरे में हैं?
 

(अ) 650	(ब) 750
(स) 550	(द) 1050

## 28.3 सारांश (Summary)

- प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों पर गठित केलकर कार्यदल की फाइनल रिपोर्ट तत्कालीन केन्द्रीय वित्तमंत्री जसवंत सिंह को 27 दिसम्बर, 2002 को सौंपी गई थी।
- वर्ष 1994-95 में पहली बार सेवा कर का आरोपण किया गया, जबकि सरकार को सेवा कर से 407 करोड़ रुपए की प्राप्ति हुई वित्तीय वर्ष 2003-04 के दौरान सेवा कर से प्राप्त राशि 8300 करोड़ रुपए हो गई, जो वर्ष 2004-05 में 14150 करोड़ रुपए तक बढ़ गई, वर्ष 2005-06 के बजट प्रस्तावों में सेवा कर से 17,500 करोड़ रुपए की राशि संग्रहित करने का प्रस्ताव है।
- बजट 2005-06 के बजट प्रस्तावों में सेवा कर की दर को पूर्ववत् 10% बनाए रखते हुए छोटे उत्पादकों को इस कर से राहत बजट में प्रदान की गई है। बजट 2005-06 में सेवा कर की परिधि में 21 अन्य सेवाओं को शामिल किया गया है।
- 'सेवा कर' (Service Tax) का आरोपण एवं संग्रहण वर्तमान में केन्द्र सरकार द्वारा ही किया जा रहा है, किन्तु भविष्य में राज्य सरकारें भी इस कर का आरोपण कर सकेंगी। इसके लिए 95वाँ संविधान संशोधन विधेयक 2003 मई, 2003 में संसद ने पारित कर दिया था।
- 5 सदस्यीय आयोग ने अपनी पहली रिपोर्ट 10 जुलाई, 2000 को तथा छठी रिपोर्ट केन्द्रीय वित्तमंत्री को 26 जून, 2001 को प्रस्तुत की थी। इस रिपोर्ट में पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, रसायन एवं उर्वरक व इस्पात मंत्रालयों के सम्बन्ध में संस्तुतियाँ प्रस्तुत की गईं।

## 28.4 शब्दकोश (Keywords)

- व्यय (Expenditure)–खर्च।
- आयोग (Commission)–नियुक्ति।

## 28.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. व्यय सुधार आयोग के क्या कार्य हैं?
2. सेवा कर से राजस्व की प्राप्ति किस प्रकार होती है?
3. केलकर कार्यदल की फाइनल रिपोर्ट कब और किसको सौंपी गई थी?
4. वार्षिक-वित्तीय बजट से क्या अभिप्राय है?

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |                    |         |            |         |
|--------------------|---------|------------|---------|
| 1. 27 दिसंबर, 2002 | 2. आयकर | 3. उत्पादन | 4. सेवा |
| 5. केलकर।          | 6. (अ)  | 7. (ब)     | 8. (स)। |

## 28.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त-एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन-मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस-सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
4. पब्लिक फाइनेंस-सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।
5. पब्लिक फाइनेंस-नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

नोट

## इकाई-29: राज्यों का वित्त (States Finance)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

29.1 विभाजन के प्रकार (Types of Division)

29.2 कार्य तथा साधन (Functions and Resources)

29.3 कार्य (Functions)

29.4 राज्यों के कर (States Taxes)

29.5 विभिन्न राज्यों में प्रचलित राजस्व बन्दोबस्त (Revenue Settlements Prevailing in Different States)

29.6 वसूलयाबी स्थगन तथा छूटें (Suspension and Remission)

29.7 कर की वाह्यता (Incidence of the Tax)

29.8 कराधान के भार में विभिन्नताएँ (Variations in the Burden of Taxation)

29.9 कृषि जोत का आधार (Basis of Agricultural Holding Tax)

29.10 वर्तमान व्यवस्था में बिक्री-कर का औचित्य (Justification of Sales Tax in the Present System)

29.11 मोटर वाहन कर (Motor Vehicle Taxation)

29.12 मनोरंजन कर (Entertainment Tax)

29.13 सारांश (Summary)

29.14 शब्दकोश (Keywords)

29.15 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

29.16 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे-

- विभाजन के प्रकार को जानने हेतु।
- कार्य तथा साधन को समझने हेतु।
- राज्यों के करों की जानकारी प्राप्त करने हेतु।
- विभिन्न राज्यों में प्रचलित राजस्व बन्दोबस्त को भलीभाँति जानने के लिए।
- वसूलयाबी स्थगन तथा छूटों को समझने में।

## प्रस्तावना (Introduction)

संघीय किस्म की सरकार का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह होता है कि उसके अंतर्गत केंद्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों तथा कार्यों का विभाजन कर दिया जाता है।

कुछ कार्य समवर्ती सूची में रखे हैं, जैसे कि आर्थिक व सामाजिक नियोजन, वाणिज्यिक व औद्योगिक एकाधिकार, औद्योगिक व श्रम विवाद, श्रम कल्याण जिसमें श्रमिकों के कार्य करने की दशाएँ भी सम्मिलित हैं, मूल्य, नियंत्रण, शिक्षा, सिंचाई तथा बिजली आदि।

जिन करों पर राज्यों को विधायी शक्ति तथा एकत्र करने का अधिकार प्राप्त है, वे हैं—भूराजस्व या मालगुजारी, कृषि आय पर कर, कृषि भूमि के संबंध में उत्तराधिकार कर तथा आस्ति कर, भूमि, भवनों व खनिज अधिकारों पर कर तथा मद्य, अफीम, भारतीय भाँग व मादक औषधियों तथा मादक पदार्थों के उत्पादन व विनिर्माण पर उत्पादन कर। ब्रिटिश शासन में भूमि के प्रशासन को भू-राजस्व के बन्दोबस्त का नाम दिया गया था और ये बन्दोबस्त काफी व्यापार सर्वेक्षण तथा वर्गीकरण के पश्चात् निर्धारित किये गए थे।

एकसमान आय तथा धन रखने वाले वर्गों पर प्रत्यक्ष करों की वाह्यता बिना इस बात का ध्यान रखे हुए समान रूप से पड़नी चाहिए कि वह आय का धन किस स्रोत से प्राप्त हुआ या किस रूप में प्राप्त हुआ है।

### 29.1 विभाजन के प्रकार (Types of Division)

केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच करों के क्षेत्राधिकार (tax jurisdiction) का स्पष्ट रूप से विभाजन किया गया है। ऐसा करके इस बात का प्रयास किया गया है कि न तो करों के प्रशासन या प्रबन्ध में पुनरावृत्ति (duplication) हो और न एक ही कर का प्रतियोगितापूर्ण तरीके से शोषण हो। इसके लिए सर्वप्रथम सभी करों की व्यापक रूप से परिगणना की गई है और तत्पश्चात् प्रत्येक कर पर या तो केन्द्र सरकार को अथवा राज्य सरकार को वैधानिक अधिकार प्रदान किया गया है। फिर भी, यदि कोई कर बचाता है तो उन अवशिष्ट करों की शक्तियाँ केन्द्र या संघ सरकार को सौंपी गई हैं। सामान्यतः जिन करों का आधार व्यापक अथवा अन्तर्राज्यीय स्तर का है वे संघ की विधायी सत्ता (legislative authority) के अन्तर्गत रखे गये हैं और जिन करों का आधार स्थानीय है, वे राज्यों की विधायी सत्ता के अन्तर्गत आते हैं।

### 29.2 कार्य तथा साधन (Functions and Resources)

संघीय किस्म की सरकार का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह होता है कि उसके अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों तथा कार्यों का विभाजन कर दिया जाता है। इसीलिए भारतीय संविधान में कुछ कार्य तथा साधन राज्यों को सौंपे गये हैं। इस विभाजन का मूल उद्देश्य यह है कि राज्य सरकारें वित्तीय, प्रशासनिक एवं अन्य क्षेत्रों में बिना किसी संघर्ष के स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकें। इस प्रकार स्पष्ट है कि संघीय शासन व्यवस्था में, राज्यों को अपने कार्य सम्पन्न करने के लिए यथेष्ट साधन प्रदान किए जाने चाहिए, यह भी आवश्यक है कि राज्यों को अपनी वांछित आय प्राप्त करने के लिए न तो केन्द्र पर निर्भर रहना पड़े और न केन्द्र राज्यों की स्वायत्तता (autonomy) में ही हस्तक्षेप करे। यही नहीं, देश के आर्थिक विकास के साथ राज्यों के कार्यों व साधनों का यह विभाजन भी अस्त-व्यस्त नहीं होना चाहिए।

अतः अब हम राज्यों के कार्यों व साधनों की विवेचना करेंगे और इस बात की छानबीन करेंगे कि संविधान के अन्तर्गत राज्यों को जो साधन सौंपे गये हैं उनके द्वारा वे स्वतन्त्र रूप से अपने कार्यों को सम्पन्न करने में कहाँ तक सफल हुए हैं और इस सम्बन्ध में उन्हें किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।



## नोट

**29.3 कार्य (Functions)**

केन्द्र व राज्यों के बीच कार्यों या शक्तियों तथा साधनों के विभाजन का विवेचन यद्यपि संघीय वित्त के अध्याय में पहले ही काफी व्यापक रूप से किया जा चुका है, तथापि विषय को स्पष्ट करने के लिए यहाँ उसका अत्यन्त संक्षिप्त विवरण फिर दिया जा रहा है।

**केन्द्र सरकार के कार्य (Functions of the State Government)**

केन्द्र पर जिन कार्यों का दायित्व है उनमें मुख्य हैं—प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, विदेशी व्यापार, रेलें, मुद्रा तथा मुद्रा-ढलाई, डाक व तार, अन्तर्राज्यीय व्यापार व वाणिज्य का नियमन (regulations), अन्तर्राज्यीय नदियों तथा नदी घाटी योजनाओं का नियमन व विकास, बीमा, अणुशक्ति, चुनाव (elections) तथा लेखे एवं लेखा परीक्षण।

**राज्य सरकारों के कार्य (Functions of State Government)**

जिन कार्यों को सम्पन्न करने का भार राज्यों पर डाला गया है, वे हैं—कानून व व्यवस्था की स्थापना, पुलिस, जेल, न्याय का प्रशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई अस्पताल तथा औषधालय, मादक पदार्थों का उत्पादन, निर्माण तथा बिक्री शिक्षा, कृषि तथा कृषि के विकास से सम्बन्धित समस्याएँ, क्षेत्रीय तथा लघु उद्योग जैसे कि हथकरघा आदि, वन, बाजी तथा जुआ और सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित कानून बनाने का उत्तरदायित्व आदि।

**समवर्ती कार्य (Concurrent Functions)**

कुछ कार्य समवर्ती सूची में रखे हैं, जैसे कि आर्थिक व सामाजिक नियोजन, वाणिज्यिक व औद्योगिक एकाधिकार, औद्योगिक व श्रम विवाद, श्रम कल्याण जिसमें श्रमिकों के कार्य करने की दशाएँ भी सम्मिलित हैं, मूल्य नियन्त्रण, शिक्षा, सिंचाई तथा बिजली आदि। इस समवर्ती सूची में उल्लिखित किसी भी विषय के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार, कुछ प्रतिबन्धों के अधीन, संसद (Parliament) तथा राज्यों के विधानमण्डलों को प्राप्त हैं। इसका अर्थ यह है कि इस सूची में जिन विषयों का उल्लेख किया गया है, उसके नियन्त्रण तथा विकास का उत्तरदायित्व केन्द्र तथा राज्य, दोनों पर ही है। किन्तु व्यावहारिक जीवन में यह देखा गया है कि इन विषयों के सम्बन्ध में या तो केन्द्र कानूनी व्यवस्थाएँ करता है अथवा इनके लिए सहायता तथा अनुदान देता है, किन्तु इनके नियन्त्रण व विकास की अन्तिम जिम्मेवारी राज्यों पर रहती है।

**संघीय कर (Union Taxes)**

संघ सूची (Union List) की बारह मदों को अग्रलिखित पाँच वर्गों में बाँटा गया है—(1) पूर्णतया केन्द्रीय मदें इस वर्ग के अन्तर्गत निर्यात करों सहित सीमा शुल्क (customs duties), निगम कर, व्यक्तियों तथा कम्पनियों की कृषि भूमि को छोड़कर आय परिसम्पत्तियों (assets) के पूँजीगत मूल्य कर। संविधान की धारा 271 के अनुसार, आय-कर लगने वाले अधिभार (Surcharge) भी पूर्णतया केन्द्रीय मद हैं, (2) कृषि आय को छोड़कर अन्य आमदनियों पर लगाए जाने वाले कर। केन्द्र आय-कर लगाता है तथा उनका संग्रह करता है परन्तु उसे वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार आय-कर का कुछ भाग राज्यों को देना होता है। (3) शराब तथा अफीम को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर लगाए जाने वाले संघीय उत्पादन शुल्क केन्द्र द्वारा लगाए तथा एकत्र किये जाते हैं परन्तु यदि संसद चाहे तो उनका कुछ भाग राज्यों में बाँटा जा सकता है। (4) ऐसे कर जो कि संघ द्वारा लगाये तथा एकत्र किये जाते हैं परन्तु संसद के द्वारा वे पूर्णतया राज्यों में वितरित कर दिये जाते हैं, ये कर हैं—उत्तराधिकारी तथा आस्ति-कर, वायु तथा समुद्री मार्गों द्वारा लाये-ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर (terminal tax), रेल किरायों तथा भाड़ों पर कर, समाचार-पत्रों के क्रय-विक्रय पर कर, तथा अन्तर्राज्यीय व्यापार पर बिक्री कर या क्रय कर। (5) वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाये जाते हैं किन्तु राज्यों द्वारा एकत्र किये जाते हैं तथा राज्यों द्वारा ही रख लिये जाते हैं, जैसे विनिमय पत्रों, चैकों या प्रतिपत्रा-पत्रों आदि पर स्टाम्प शुल्क तथा मद्य से युक्त चिकित्सा शृंगार प्रसाधनों पर उत्पादन शुल्क।

## 29.4 राज्यों के कर (States Taxes)

जिन करों पर राज्यों को विधायी शक्ति तथा एकत्र करने का अधिकार प्राप्त है, वे हैं—भूराजस्व या मालगुजारी, कृषि आय पर कर, कृषि भूमि के सम्बन्ध में उत्तराधिकार कर तथा आस्ति कर, भूमि, भवनों व खनिज अधिकारों पर कर तथा मद्य, अफीम, भारतीय भाँग व मादक औषधियों तथा मादक पदार्थों के उत्पादन व विनिर्माण पर उत्पादन कर। इसके अतिरिक्त, उपभोग की वस्तुओं के स्थानीय क्षेत्र में प्रदेश पर कर, बिजली के उपभोग अथवा बिक्री पर कर, वाहनों, जानवरों अथवा नावों पर कर, समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर, सड़कों या आन्तरिक जलमार्गों द्वारा ले जाए जाने वाले माल तथा यात्रियों पर कर, चुँगी, वृत्ति, व्यापार, स्टाम्प शुल्क तथा रोजगार पर व्यवसाय तथा रोजगार पर कर, प्रति व्यक्ति कर (Capitation Tax), विलासिता पर कर जिसमें मनोरंजन बाजी तथा जुए पर कर भी सम्मिलित हैं, स्टाम्प शुल्क तथा रजिस्ट्रेशन फीस भी पूर्णतया राज्यों को सौंपे गये हैं।



नोट्स

संविधान की धारा 270, 273, 275 तथा 280 के अनुसार, राज्यों के साधनों में रहने वाली कमी की पूर्ति संघ सरकार वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर सहायक अनुदानों (grants-in-aid) के द्वारा करती है।

### (1) भूराजस्व या मालगुजारी (Land Revenue)

भूराजस्व अत्यन्त प्राचीन काल से ही राज्यों की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बना चला आ रहा है। इस प्रकार, राज्यों के करों में इसे पुराना कर कहा जा सकता है। जब यह कर लागू हुआ, तभी से भूराजस्व के बन्दोबस्त की व्यवस्था में तथा देय कर की गणना करने की रीतियों में विभिन्न राज्यों के बीच काफी अन्तर बना रहा है। किन्तु इसके बावजूद, इसका राज्यों के सबसे महत्वपूर्ण करों में से एक माना जाता रहा है और वह इसलिए क्योंकि यह सबसे पुराना कर है और विभिन्न समयों में किसी न किसी रूप में सदा ही इसका अस्तित्व अत्यन्त व्यापक रूप से बना रहा है।

### बन्दोबस्त की विभिन्न प्रथाएँ (Different Systems of Settlement)

भारत में ब्रिटिश शासन काल में भू-बन्दोबस्त की जो विभिन्न प्रथाएँ प्रचलित थीं, मोटे तौर पर उनका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है—(1) **स्थायी बन्दोबस्त** (permanent settlements) की प्रथा अथवा वह प्रथा जिसमें भूराजस्व की दर का निर्धारण सदा के लिए कर दिया जाता था और (2) **अस्थायी बन्दोबस्त** (Temporary settlement) की प्रथा अथवा वह प्रथा जिसमें भूराजस्व की दर एक निश्चित अवधि के लिए निर्धारित की जाती थी। इस प्रथा को भी निम्न तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—(क) **जमींदारी प्रथा**, जिसके अन्तर्गत भूराजस्व की दर केवल जमींदार द्वारा अधिकृत क्षेत्र के लिए निर्धारित की जाती थी। (ख) **महलवारी प्रथा**, जिसमें भूराजस्व की दर किसी गाँव या महल के सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय पर संयुक्त रूप से तथा पृथक्-पृथक् निर्धारित की जाती थी। और (ग) **रैयतवारी प्रथा**, जिसमें भूराजस्व का निर्धारण किसी रैयत की भू-जोत पर किया जाता था।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. जिन करों का आधार व्यापक अथवा अंतरराज्यीय स्तर का है वे संघ की ..... के अंतर्गत रखे गये हैं।
2. संघीय किस्म की सरकार का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह होता है कि उसके अंतर्गत ..... के बीच शक्तियों तथा कार्यों का विभाजन कर दिया जाता है।
3. संघीय शासन व्यवस्था में राज्यों को अपने कार्य सम्पन्न करने के लिए यथेष्ट ..... प्रदान किए जाने चाहिए।
4. भारत में ब्रिटिश शासन काल में ..... की विभिन्न प्रथाएँ प्रचलित थीं।

नोट

## 29.5 विभिन्न राज्यों में प्रचलित राजस्व बन्दोबस्त (Revenue Settlements Prevailing in Different States)

ब्रिटिश शासन में भूमि के प्रशासन को भू-राजस्व के “बन्दोबस्त” का नाम दिया गया था और ये बन्दोबस्त काफी व्यापार सर्वेक्षण तथा वर्गीकरण के पश्चात् निर्धारित किये गये थे। इस ब्रिटिश व्यवस्था को कुछ रियासतों (princely states) में तो लागू किया गया था किन्तु अन्य रियासतों में भूराजस्व की कोई नियमित व्यवस्था नहीं थी। पंजाब, महाराष्ट्र, मद्रास (अब तमिलनाडु), असम तथा मैसूर (अब कर्नाटक) राज्य उस वर्ग में आते हैं जिसमें कि लगभग सारी ही भूमि का सर्वेक्षण तथा माप किया गया और फिर कुछ निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार भूराजस्व का निर्धारण किया गया। दूसरी ओर, राजस्थान, गुजरात का कुछ भाग तथा मध्य प्रदेश ऐसे राज्य थे, जिनमें कि भूमि का काफी बड़ा भाग बिना सर्वेक्षण किये ही पड़ा था और उनमें भूराजस्व भी निर्धारण नहीं थी। इन दोनों ही वर्गों के बीच में कुछ राज्यों का एक तीसरा वर्ग था, जैसे कि मध्य प्रदेश का कुछ भाग तथा उत्तर प्रदेश, जहाँ कि भूमियों के नियमित बन्दोबस्त थे परन्तु जमींदारी प्रथा के प्रचलन के कारण अनेक बिचौलिये बीच में आ गए थे। पश्चिमी बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा में स्थायी बन्दोबस्त की प्रथा के कारण निचले स्तरों पर भूराजस्व की कोई संगठित व्यवस्था नहीं थी।

### भूराजस्व के निर्धारण की रीतियाँ (Methods of Assessment)

सरकार को देय भूराजस्व मालगुजारी का निर्धारण करने में विभिन्न राज्यों ने भिन्न-भिन्न रीतियों का सहारा लिया है। कराधान जाँच आयोग ने इन रीतियों का वर्गीकरण निम्नलिखित श्रेणियों में किया है—

- (1) **निबल परिसम्पत्तियाँ अथवा आर्थिक अधिशेष (Net Assets or Economics Rents)**—निबल परिसम्पत्तियों की परिभाषा इस प्रकार की गई कि “**किसी क्षेत्र या जागीर (estate) या क्षेत्रों के समूह की ऐसी अनुमानित औसत वार्षिक बेशी (surplus), जो कि अनुमानित या निर्धारित सामान्य खर्चों को घटाने के बाद शेष बचे।**” अन्य शब्दों में, यह अधिशेष के उपाजन में व्यय हुए हों। इसकी गणना कुल उत्पत्ति का अनुमान लगाकर की जाती है और इसमें से जमींदार द्वारा किये गये सभी लागत-व्यय घटा दिये जाते हैं। कुल उत्पत्ति (gross produce) का मूल्यांकन रूपों में ऐसी परिवर्तित दरों से किया जाता है, जो कि सामान्यतः पिछले बीस या अधिक वर्षों की किसी फसल की औसत कीमत के आधार पर निकाली जाती है। पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश आदि राज्यों में निबल परिसम्पत्तियों का ही कर-निर्धारण का आधार बनाया गया है।
- (2) **निबल उत्पत्ति या वार्षिक मूल्य (Net Produce or Annual Value)**—निबल उत्पत्ति या वार्षिक मूल्य की गणना कुल मूल्य (gross value) में से खेतों का व्यय घटाकर तथा बुरे मौसमों के लिए कुछ छूटें प्रदान करके निबल उत्पत्ति या वार्षिक मूल्य का हिसाब लगाया जाता है। खेती के व्यय में निम्नलिखित खर्चें सम्मिलित किये जाते हैं—
  - (i) खेत जोतने वाले पशु,
  - (ii) कृषि यन्त्र व उपकरण,
  - (iii) बीज,
  - (iv) खाद,
  - (v) बौने पौधों को इधर-उधर लगाने, फसल काटने तथा गाहने या भूसा निकालने आदि कार्यों पर लगाये जाने वाले श्रमिकों की मजदूरी। तमिलनाडु में यही रीति अपनाई जाती है।
- (3) **अनुभवाश्रित (Empirical)**—अनेक राज्यों में भूराजस्व का निर्धारण अनुभवों के आधार पर अर्थात् कुछ ऐसे तत्त्वों के आधार पर किया जाता है जैसे कि किसी क्षेत्र की आर्थिक पृष्ठभूमि, कृषि के क्षेत्र में होने

## नोट

वाली वृद्धि या कमी, बाजारों की निकटता, परिवहन व संचार-साधनों की सुविधाओं व कीमतों में होने वाले परिवर्तन आदि। भूराजस्व का निर्धारण करते समय इन तत्त्वों को दृष्टिगत रखा जाता है। इस रीति में, “सर्वप्रथम सम्पूर्ण भूमि प्रदेश के लिए भूराजस्व की कुल धनराशि निर्धारित कर दी जाती है और फिर उन्हें गाँवों तथा पृथक्-पृथक् भूमि-खण्डों में बाँट दिया जाता है।” महाराष्ट्र, कर्नाटक, मणिपुर तथा त्रिपुरा में इसी रीति का उपयोग किया जाता है।

- (4) **जमाबन्दी मूल्य (Rental Value)**—इस रीति के अन्तर्गत, सर्वप्रथम यह निर्धारित किया जाता है कि जमींदार (land-lord) वास्तव में कितना लगान प्राप्त करता है और फिर कुछ कटौतियाँ निकालने के बाद उस भूमि का लगान निश्चित कर दिया जाता है। तमिलनाडु को छोड़कर, अन्य लगभग सभी राज्य जमाबन्दी मूल्य या लगान-मूल्य पर ही बल देते हैं।
- (5) **पूँजीगत मूल्य (Capital Value)**—पूँजीगत मूल्य को इस देश के किसी भी राज्य में भूराजस्व के निर्धारण के आधार के रूप में नहीं अपनाया गया है। हाँ, व्यवहार में सभी राज्यों में यह आवश्यक होता है कि भूराजस्व के निर्धारण के समय अन्य तत्त्वों के साथ ही भूमि की ब्रिकी तथा उसके बन्धक मूल्यों (mortgage values) को भी दृष्टिगत रखा जाता है।
- (6) **कुल उत्पत्ति (Gross Produce)**—यह पहले तो सभी प्रान्तों में प्रचलित थी, परन्तु अब यह केवल असम तक ही सीमित है। इस रीति के अन्तर्गत, असम में किसी भी भूमि के टुकड़े की भूराजस्व की सीमा उस टुकड़े की कुल उत्पत्ति के मूल्य को 10% निर्धारित कर दी गई है।



क्या आप जानते हैं? सर्वप्रथम सम्पूर्ण भूमि प्रदेश के लिए भूराजस्व की कुल धनराशि निर्धारित कर दी जाती है और फिर उन्हें गाँवों तथा पृथक्-पृथक् भूमि-खंडों में बाँट दिया जाता है।

## 29.6 वसूलयाबी स्थगन तथा छूटें (Suspension and Remission)

जब किसी वर्ष किन्हीं कारणों से फसलें नष्ट हो जाती हैं तो व्यवहारतः सभी राज्यों में भूराजस्व की अदायगी में रियायतें दी जाती हैं। ये रियायतें (Concessions) भूराजस्व की वसूली के स्थान के स्थगन अथवा भूराजस्व में छूट के रूप में होती हैं। ब्रिटिश काल से पूर्व ऐसे स्थगन तथा छूटों के लिए कोई विशेष नियम नहीं थे।

### 29.6.1 भूराजस्व प्रशासन (Land-Revenue Administration)

भूराजस्व के प्रशासन की मशीनरी का स्वरूप सभी राज्यों में लगभग एक-सा ही है। प्रत्येक राज्य में एक-एक **राजस्व मण्डल (Board of Revenue)** है। सामान्यतः यह होता है कि सम्पूर्ण क्षेत्र को जिलों में बाँट लिया जाता है और फिर जिलों को भी तहसील, परगनों तथा टपों आदि में विभाजित कर लिया जाता है।

सन् 1901 में अकाल आयोग (Famine Commission) द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के फलस्वरूप सभी राज्यों द्वारा भूराजस्व में रियायतों तथा छूटों की व्यवस्था की जाती है और इन्हें अधिशासी आदेशों द्वारा लागू किया जाता है।

### 29.6.2 भूराजस्व की प्राप्ति का रुख (Trends in Land Revenue Receipts)

यद्यपि यह बात सर्वविदित है कि राज्य भूमि पर अधिक कर लगाने के अधिक इच्छुक नहीं रहे हैं, किन्तु फिर भी यह सोचना गलत होगा कि भूराजस्व की मात्रा सदा स्थिर रही है। अग्र तालिका में दिये गये आँकड़ों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है—

## नोट

वर्ष	भूराजस्व या मालगुजारी ( करोड़ रु. में )	वर्ष	भूराजस्व या मालगुजारी ( करोड़ रु. में )
1950-51	40.00	1980-81	145.53
1960-61	90.04	1984-85	205.58
1970-71	122.06	1986-87	241.50

ऊपर के आँकड़ों में यह स्पष्ट है किसी विगत वर्ष में भूराजस्व में प्राप्तियाँ तो बढ़ी हैं किन्तु कुल कर-आय में इनका प्रतिशत घटा है। जिन कारणों से भूराजस्व में वृद्धि हुई है विशेष रूप से द्वितीय व तृतीय योजना की अवधि में, वे ये हैं—(1) भूराजस्व में सीधी वृद्धि, (2) अधिभार (surcharge) लगाना, (3) स्थानीय निकायों (local bodies) द्वारा अथवा स्थानीय निकायों के लिए भूराजस्व पर उपकरण (cess) लगाना, (4) वाणिज्यिक फसलों पर कर (5) सिंचाई अथवा पानी की दरों में वृद्धि, (6) भूराजस्व के पुनर्निर्धारण तथा बिचौलियों की समाप्ति के कारण होने वाली वृद्धि आदि। विभिन्न राज्यों ने भूराजस्व में वृद्धि की इन रीतियों से अपने-अपने विवेक के अनुसार पृथक्-पृथक् रीतियों का सहारा लिया। परन्तु भूराजस्व में सीधी वृद्धि करने के सरल उपाय के बजाए, राज्यों ने अन्य ऐसे उपायों को प्रमुखता दी जिनसे कि छोटे-छोटे किसानों पर अतिरिक्त बोझा न पड़े। उदाहरण के लिए, अधिभार एक निश्चित आकार से ऊपर की जोतों पर ही लगाया जा सकता है। इसी प्रकार अनेक राज्यों ने भूराजस्व पर जो उपकरण लगाया, उसका उद्देश्य भी शिक्षा तथा राजस्व जैसे जनकल्याण के कार्यों के लिए धन प्राप्त करना था। सम्पूर्ण रूप में, पंजायती राज-व्यवस्था लागू होने के बाद भी भूमि के कराधान में कुछ वृद्धि हुई है। अनेक राज्यों में अनेक उपकर (cesses) तथा भूराजस्व का कुछ भाग भी अनेक विशिष्ट अथवा सामान्य कार्यों के लिए स्थानीय निकायों को सौंप दिए गये हैं।

भूराजस्व या मालगुजारी की प्राप्तिओं में होने वाली यह मामूली-सी वृद्धि यह प्रकट करती है कि कृषि-क्षेत्र पर उसकी योग्यता के अनुसार ही कर लगाया गया है किन्तु कराधान जाँच आयोग की रिपोर्ट के बाद तो यह आमतौर पर स्वीकार की जाती रही है कि ग्रामीण क्षेत्र पर अपेक्षाकृत कम कर लगे हैं और इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि भूराजस्व में क्रमवर्धी रीति से वृद्धि की जाए।

### 29.6.3 भूराजस्व-कर के रूप में (Land Revenue as a Tax)

यह कहा जाता है कि भूराजस्व या मालगुजारी की प्रथा जिस रूप में, भारत में प्रचलित है, केवल एक या दो अपवादों को छोड़कर, व्यावहारिक रूप में, कराधान के सभी सिद्धान्तों का उल्लंघन करती है। इन अपवादों (exceptions) में एक तो एडम स्मिथ का निश्चितता का सिद्धान्त है और दूसरा कुछ सीमा तक सुविधा का सिद्धान्त है। अब हम एक कर के रूप में भूराजस्व की समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

### 29.7 कर की वाह्यता (Incidence of the Tax)

एक समान आय तथा धन रखने वाले वर्गों पर प्रत्यक्ष करों की वाह्यता बिना इस बात का ध्यान रखे हुए समान रूप से पड़नी चाहिए कि वह आय का धन किस स्रोत से प्राप्त हुआ है या किस रूप में प्राप्त हुआ है। अन्य शब्दों में, कराधान का चाहे कोई भी रूप क्यों न हो, समाज के विभिन्न वर्गों पर कराधान के भार का समन्यायपूर्ण वितरण होना चाहिए। किन्तु इसके बावजूद, सन् 1953-54 में कराधान जाँच आयोग (Taxation Enquiry Commission) ने तथा अभी हाल में कृषि आय व धन कराधान समिति ने यह स्वीकार किया है कि गैर-कृषि क्षेत्र की तुलना में कृषि क्षेत्र पर करों का भार पड़ रहा है। अनेक राज्यों में कृषि पर जो प्रत्यक्ष कर लगाए हैं, जैसे कि भूराजस्व या मालगुजारी, उपकर, भूराजस्व पर अधिभार फसल उपकर (crop cess) और कृषि आय कर, ये कृषि से प्राप्त होने वाली राष्ट्रीय आय का केवल 1 प्रतिशत ही बैठते हैं जब कि गैर-कृषि क्षेत्र से प्राप्त होने वाली राष्ट्रीय आय पर प्रत्यक्ष करों का प्रतिशत लगभग 2.75 प्रतिशत है। अग्रलिखित तालिका से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है—

## कृषि तथा गैर-कृषि क्षेत्र पर प्रत्यक्ष करों का भार

नोट

		1960-61	1965-66	1969-70	1970-71
1.	भूराजस्व तथा कृषि आय कर (करोड़ रु.)	1.07	1.30	1.28	1.37
2.	कृषि स्रोत से प्राप्त होने वाली राष्ट्रीयता आय के प्रतिशत के रूप में	1.61	1.37	0.37	0.85
3.	आय कर (करोड़ रु.)	1.69	2.72	4.48	4.73
4.	गैर कृषि स्रोत से प्राप्त राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में	2.49	2.41	2.71	2.60

\*स्रोत-भारत सरकार का वित्त मन्त्रालय-कृषि आय व धन कराधान समिति की रिपोर्ट।

## 29.8 कराधान के भार में विभिन्नताएँ

## (Variations in the Burden of Taxation)

कृषि क्षेत्र पर कम लगने की बात केवल गैर-कृषि क्षेत्र की तुलना की दृष्टि से ही कही जाती है किन्तु यदि कृषि क्षेत्र को पृथक् रूप से लिया जाए तो राज्य-राज्य और जिले-जिले में कृषि कराधान के भार में अन्तर पाया जाता है। कृषि की निबल उपज पर लगने वाले भूराजस्व में क्षेत्र-क्षेत्र के बीच जो भारी अन्तर पाये जाते हैं उनका आंशिक कारण भूराजस्व की दरों तथा उनके निर्धारण करने की रीतियों में पाई जाने वाली विभिन्नताएँ हैं। इस प्रकार, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश जैसे कई ऐसे राज्य हैं जहाँ उन दरों में भारी विभिन्नताएँ पाई जाती हैं जिनके अनुसार भू-स्वामी अपनी उन जोतों (holdings) पर राजस्व देते हैं जो कि कई महत्वपूर्ण पहलुओं से एक-सी होती है। इस प्रकार, एक ही किस्म की भूमि पर कर का भार समान नहीं है। यह भी कहा जाता है कि कृषि पर राज्यों द्वारा लगाये गये प्रत्यक्ष करों की वाह्यता में राज्य-राज्य के बीच भारी विभिन्नताएँ मिलती हैं। उड़ीसा तथा पंजाब में यह 0.24 प्रतिशत है और राजस्थान में 1.34 प्रतिशत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कृषि पर भूराजस्व सहित प्रत्यक्ष करों का भार राज्य-राज्य में भिन्न है।

## कर देने की योग्यता (Ability to Pay)

जहाँ तक कर की योग्यता के सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, भूराजस्व या मालगुजारी एक ऐसा कर है जो कि एक समान दर से लगाया जाता है। एक अनार्थिक जोत (uneconomic holding) रखने वाला किसान भी उसी दर से मालगुजारी अदा करता है जिस दर से एक बड़ी जोत वाला किसान करता है। किन्तु यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि भारत में 6 प्रतिशत जोतें 5 एकड़ से कम हैं और उत्तर प्रदेश में तो 81.2 प्रतिशत जोतें 5 एकड़ से कम हैं। ये आँकड़े प्रथम योजना के हैं और तब से तो स्थिति में और बिगाड़ ही आया है। इन छोटी-छोटी जोतों पर, जो कि सामान्यतः अनार्थिक हैं, मालगुजारी की वही दर लागू होती है जो कि बड़ी जोतों पर लागू होती है। इस प्रकार, भूराजस्व के निर्धारण में आरोहण के सिद्धान्त (principle of progression) को लागू किये जाने के पक्ष में प्रबल तर्क विद्यमान हैं। कुछ राज्यों ने 5 एकड़ से कम की जोतों की मालगुजारी से मुक्त करके तथा कृषि आय कर व अधिभार आदि लागू करके आरोहण को लागू करने की कोशिश भी की है। यहाँ यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि भूराजस्व को आरोहण पर आधारित करने के पक्ष में तो अवश्य प्रबल तर्क विद्यमान है परन्तु जोतों को इस कर से मुक्त करने के पक्ष में ऐसी बात नहीं है क्योंकि कृषि में हुए नवीनतम सुधारों एवं विकास के कारण किसानों की कर देय क्षमता बढ़ गई है। फिर, यह भी कहा जाता है कि यदि जोतों को मालगुजारी से मुक्त किया गया तो भी उससे छोटे किसानों को कोई ठोस लाभ नहीं पहुँचेगा। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि जोतों को मालगुजारी से मुक्त करने की बजाएँ इसको आरोहण पर आधारित किया जाना चाहिए और कृषि सम्बन्धी सुविधाएँ छोटे किसानों को अधिक अनुपात में दी जानी चाहिए ताकि उनकी उत्पादन क्षमता में तेजी से वृद्धि हो सके।

## नोट

**संग्रह की लागत (Cost of Collection)**

भूराजस्व या मालगुजारी के संग्रह की लागत का ठीक-ठीक पता लगाना इसलिए सम्भव नहीं है क्योंकि राजस्व अधिकारियों को मालगुजारी के संग्रह के अलावा अन्य कार्य भी सौंपा हुआ होता है। किन्तु इसमें कोई दो मत नहीं हैं कि मालगुजारी के संग्रह की लागत काफी अधिक होती है और इसका प्रशासन काफी उलझनपूर्ण। अतः मालगुजारी की स्थिति में मितव्ययिता और सरलता का सिद्धान्त भी लागू नहीं होता।

**निष्कर्ष की टिप्पणियाँ (Concluding Remarks)**

समाज और राज्य के दृष्टिकोण से मालगुजारी की पद्धति अनुत्पादक तथा बेलोच सिद्ध हुई है, इसमें विविधता तथा लोचशीलता का अभाव है और यह अवरोधी प्रभाव डालती हैं। चूँकि राज्यों के कार्यों का निरन्तर विस्तार हो रहा है, अतः उनकी राजस्व की आवश्यकताएँ भी बराबर बढ़ रही हैं। सन् 1951-52 में, भूराजस्व से केवल 48 करोड़ रु. प्राप्त हुए थे जबकि कृषि क्षेत्र का उत्पादन (चालू कीमतों के आधार पर 4800 करोड़ रु. था। देश के कुल उत्पादन के मूल्य का यह 10 प्रतिशत था। आगे चलकर जब भूराजस्व की आय बढ़कर 110 करोड़ रु. हो गई, तब तक कृषि क्षेत्र की आय 15000 करोड़ रु. तक जा पहुँची थी। सन् 1971-72 में भूराजस्व से प्राप्त होने वाली अतिरिक्त आय 1 प्रतिशत से भी काफी कम थी। सन् 1951 से 1971 तक के बीस वर्षों में कृषि उपज के मूल्य में 10200 करोड़ रु. की अतिरिक्त वृद्धि (additional increase) हुई थी जिसमें से राज्य कुल 60 करोड़ रु. की अतिरिक्त भूराजस्व के रूप में एकत्र कर सके थे। इस प्रकार कृषि क्षेत्र, जिस पर कि पहले ही नीची दर से कर लगा था, आरोही कराधान से भी बचा रहे।

इसके अतिरिक्त, सिंचाई, रासायनिक खाद, उन्नत बीज, नये कृषि यन्त्र, ट्रैक्टर तथा भूमि की चकबन्दी जैसी सुविधाएँ प्रदान करने के लिए कृषि-क्षेत्र में बड़ी मात्रा में सरकारी निवेश किये जाने के कारण भूमि की उत्पादकता में वृद्धि हुई है। यही नहीं, कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए केन्द्र तथा राज्यों द्वारा किसानों को अनेक सेवाएँ। निःशुल्क अथवा रिययती दरों पर प्रदान की गई हैं, जैसे कि उन्नत बीजों, कीटनाशक, दवाओं, खाद, पम्प सेटों, उपकरणों व उधार आदि से वितरण की सेवाएँ। परन्तु इन सब कार्यवाहियों के बावजूद, शायद ही इस दिशा में कोई गम्भीर प्रयास किया गया हो कि कृषि क्षेत्र से कुछ बेशियाँ (surpluses) प्राप्त की जाएँ और उनसे तीव्रगति से आर्थिक विकास करने के लिए राज्यों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा किया जाए।

कृषि का तीव्रगति से आर्थिक विकास करने तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रदान की गई अधिकांश सुविधाओं का लाभ चूँकि बड़े किसानों ने ही उठाया, अतः उसके कारण बड़े तथा छोटे किसानों के बीच असमानता की खाई और भी चौड़ी हो गई। यह वह सबसे बड़ी बुराई है जो कि योजनाओं की अवधि में कृषि-क्षेत्र में उत्पन्न हुई है। अतः इस स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि बड़े किसानों पर कर लगाये जाएँ, न केवल इसलिए कि राज्यों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं के लिए साधनों को गतिशील किया जाए, अपितु इसलिए भी ताकि ग्रामीण क्षेत्र में आय तथा धन के वितरण में समानता आये।

अन्त में, निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि कर के रूप में भूराजस्व का निर्धारण समुचित रूप से नहीं किया गया है। यह विभिन्न आकार के जोतों पर समान रूप से पड़ता है और अवरोधी प्रभाव डालता है। यह बेलोच तथा अनुत्पादक प्रकृति का है। राज्यों की कुल कर-आय में इसका अंशदान बहुत थोड़ा रहता है।



टास्क कर बाह्यता से क्या तात्पर्य है?

**(2) कृषि आय-कर (Agricultural Income-Tax)**

यह पहले ही बताया जा चुका है कि भूराजस्व या मालगुजारी की वर्तमान प्रणाली में दो प्रमुख दोष हैं। **सर्वप्रथम**, यह कि भूराजस्व की बाह्यता देश के विभिन्न भागों में एक समान नहीं है। भूराजस्व की वर्तमान प्रणाली का दूसरा दोष यह है कि गैर-कृषि का निर्धारण प्रत्येक भूमि पर प्रति हेक्टेयर समान दर से किया जाता है। अतः यह पद्धति

## नोट

आरोही (progressive) नहीं है। अनेक लोगों का यह भी कहना है कि गैर कृषि क्षेत्र के मुकाबले कृषि-क्षेत्र पर कम कर लगा है। किन्तु यहाँ बात ध्यान रखने की है कि कृषि तथा गैर-कृषि क्षेत्रों में निम्न आय वाले वर्गों पर कराधान के भार में कोई अधिक अन्तर नहीं है। बल्कि गैर-कृषि क्षेत्र की तुलना में कृषि क्षेत्र में यह कुछ अधिक ही है। कृषि धन तथा आय कराधान समिति के शब्दों में, इन दोनों ही क्षेत्रों में निम्न आय वाले वर्गों पर पड़ने वाली वाह्यता में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं दिखाई देता। यदि कोई अन्तर है भी, तो वह यह है कि ग्रामीण क्षेत्र में यह कुछ ऊँची है। परन्तु जहाँ तक दोनों क्षेत्रों के उच्च आय वाले वर्गों के घरेलू माल (house hold) का प्रश्न है, कृषि क्षेत्र में करों की वाह्यता नीची है और वह असमानता वैसे-वैसे और बढ़ी हुई दिखाई देती है जैसे-जैसे कोई व्यक्ति आय के पैमाने पर ऊपर चढ़ता है। अतः कुछ लोग यह सुझाव देते हैं कि विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए साधनों को गतिशीलता करने तथा कराधान के भार को समन्यायपूर्ण बनाने के लिए कृषि आय पर कर लगाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। कुछ स्रोतों का यह भी सुझाव है कि कृषि उपजों पर उस समय बिक्री कर लगाया जाए जबकि किसान अपने माल को बेचे। ऐसे लोग भी हैं जो यह सुझाव देते हैं कि भूराजस्व की वर्तमान प्रणाली को बिल्कुल समाप्त कर दिया जाना चाहिए और उसके स्थान पर कृषि आय-कर और नीची समान दरों से भूमि कर (land tax) लगाया जाना चाहिए।

किन्तु इन सभी सुझावों में कोई न कोई दोष पाया जाता है। उदाहरण के लिए, उपज की बिक्री के समय कृषि उत्पादकों पर बिक्री कर लगाये जाने से अनेक प्रशासनिक तथा वित्तीय कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी और यही कारण है कि भूराजस्व के स्थान पर ऐसा कर लगाना अधिक सुविधाजनक नहीं होगा। इसी प्रकार, कराधान जाँच आयोग (Taxation Enquiry Commission) का कहना है कि “कृषि आय कर को यदि भूराजस्व के साथ सम्मिलित रूप में लगाया जाए तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह भूमि के कराधान को अधिक समन्यायपूर्ण बनाने की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा, परन्तु राज्य सरकारों की आय के एक पहले जैसे स्रोत के रूप में यह भूराजस्व का स्थान नहीं ले सकता।” कुछ भी हो, केन्द्र तथा राज्य, दोनों ही कृषि-आमदनियों पर कर लगाने की समस्या का सामना कर रहे हैं, विशेष रूप से उन बड़े किसानों के सन्दर्भ में, जिन्होंने योजनाओं की अवधि में सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली अधिकांश सुविधाओं का लाभ उठाया है और इन सुविधाओं के कारण काफी धन इकट्ठा कर लिया है। अब हम इस दिशा में केन्द्र तथा राज्यों द्वारा किये जा रहे प्रयत्नों की विवेचना करेंगे।

### संवैधानिक स्थिति (Constitutional Position)

सन् 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार, कृषि आमदनियों पर कर लगाने का अधिकार प्रान्तों को दिया गया था। सन् 1950 के भारतीय संविधान में भी इसी स्थिति को बनाये रखा गया है। इस प्रकार, जहाँ गैर-कृषि आय पर केन्द्र सरकार द्वारा कर लगाये जाते हैं, वहाँ कृषि आय पर राज्य सरकारें कर लगाती हैं। इस सम्बन्ध में कराधान जाँच आयोग ने यह सुझाव दिया था कि “जब किसी व्यक्ति की आय पर कर लगाया जाता है तो कर की दर निर्धारण करने के लिए उस व्यक्ति की कृषि-आय को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए बशर्ते कि ऐसा करना प्रशासनिक दृष्टि से सुविधाजनक और व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी हो।” अभी हाल ही में वांचू समिति ने भी यह सुझाव दिया है कि “एकरूपता (uniformity) तथा स्थिरता (stability) के हितों में यह आवश्यक है कि केन्द्र सरकार को कृषि आय पर कर लगाने तथा उसका प्रबन्ध करने की शक्ति प्राप्त हो।”



**नोट्स** केन्द्र द्वारा कृषि आय पर कर लगाने के पक्ष में कहने को बहुत कुछ है, परन्तु केन्द्र ऐसा कर तब तक नहीं लगा सकता जब तक कि संविधान में संशोधन न किया जाए।

### (3) कृषि जोत कर (Agricultural Holding Tax)

भारत सरकार के डॉ. के. एन. राज की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई जिसे कृषि धन तथा आय कराधान समिति का नाम दिया गया। समिति के लिए विचाराधीन विषय ये थे—कृषि धन तथा आय पर प्रत्यक्ष करों की वर्तमान व्यवस्था की जाँच करना, ऐसे उपाय सुझाना जिनसे विकास के लिए अतिरिक्त साधन प्राप्त हो सकें, आर्थिक



**नोट**

असमानताओं को कम करना और भूमि व श्रम के उपलब्ध साधनों के अधिक कुशल उपयोग को प्रोत्साहन देना। समिति ने अक्टूबर 1972 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और यह सिफारिश की कि विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा कृषि जोत-कर लागू किया जाए। समिति ने गैर-कृषि आय को कृषि से प्राप्त होने वाली आय के साथ आंशिक एकीकरण करने की सिफारिश की। इसका अर्थ यह है कि गैर-कृषि आय-कर निर्धारित करते समय कृषि आय को भी दृष्टिगत रखा जाए। समिति की सिफारिशों के इस पहलू का विवेचन 'केन्द्र सरकार के कर' नामक अध्याय में पहले ही किया जा चुका है।

**स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)**

**बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :**

5. ब्रिटिश शासन में किसके प्रशासन को भू-राजस्व के "बंदोबस्त" का नाम दिया गया था?
 

(अ) भूमि	(ब) पूँजी
(स) श्रम	(द) संगठन।
6. किस मूल्य रीति के अंतर्गत सर्वप्रथम यह निर्धारित किया जाता है कि जमींदार वास्तव में कितना लगान प्राप्त करता है?
 

(अ) पूँजीगत	(ब) जमाबंदी
(स) कुल उत्पत्ति	(द) इनमें से कोई नहीं।
7. समाज और राज्य के दृष्टिकोण से किसकी पद्धति अनुत्पादक तथा बेलोच सिद्ध हुई है?
 

(अ) लागत	(ब) जमाबंदी
(स) मालगुजारी	(द) इनमें से कोई नहीं।

**29.9 कृषि जोत का आधार (Basis of Agricultural Holding Tax)**

समिति ने जिन कारणों से इस कर को लगाने की आवश्यकता अनुभव की, वे थे—भूराजस्व पद्धति के दोषों को दूर करना, विभिन्न प्रकार के किसानों पर करों का समन्यायपूर्ण भार डालना, आर्थिक विकास के लिए साधनों को प्राप्त करना। अतः समिति ने सुझाव दिया कि कृषि जोत कर का निर्धारण करते समय निम्नलिखित बातों का अवश्य ध्यान रखा जाए—

- (क) विभिन्न क्षेत्रों (regions), जिलों अथवा जिलों के भूभागों के बीच पाई जाने वाली मिट्टी तथा जलवायु सम्बन्धी विभिन्नताएँ।
- (ख) मिट्टी तथा जलवायु में समान जिलों या जिलों के भूभागों (tracts) में प्रत्येक खेत या भूमिखण्ड के लिए जल-प्राप्ति की दशाएँ।
- (ग) प्रत्येक खेत या भूमिखण्ड में उगने वाली फसलें।

कहा जाता है कि यदि इन तत्त्वों को दृष्टिगत रखा गया तो करों का भार स्थान-स्थान पर भिन्न नहीं होगा। इन तत्त्वों पर आधारित कर पद्धति में यदि आरोहण के तत्त्व को भी सम्मिलित किया गया, तो उससे कर का भार समन्यायपूर्ण हो सकता है।

**निष्कर्ष की टिप्पणियाँ (Concluding Remarks)**

कृषि जोत-कर लगाने की सिफारिश कृषि धन तथा आय के कराधान पर बनी प्रो. के. एन. राज समिति ने की है। सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कर बड़ा ही उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि यह मिट्टी तथा जलवायु के अन्तरों, जल-प्राप्ति (water supply) की दशाओं तथा विभिन्न क्षेत्रों, जिलों या भू-भागों में उगाई गई फसलों के अन्तरों को दृष्टिगत रखता है। इस प्रकार, कर निर्धारण में भूमि की उत्पादकता का आधार बनाया जाता है। कर समता व न्याय के सिद्धान्त

## नोट

तथा कर देने की योग्यता के सिद्धान्त को भी सन्तुष्ट करता है और इसमें आरोहण के तत्त्व को भी सम्मिलित किया गया है। इस प्रकार कर का भार जोत के आकार तथा भूमि की उत्पादकता के साथ-साथ ही बढ़ता है जब वर्तमान में प्रचलित भूराजस्व पद्धति में ऐसा नहीं है।

परन्तु यह कर चूँकि बड़ी जटिल प्रकृति का है, अतः प्रशासनिक दृष्टि से इसको लागू करना सन्देहास्पद (doubtful) दिखाई देता है। समिति का विचार है कि यदि इस कर की 2500 रु. अथवा इससे अधिक के कर योग्य मूल्य को सभी जोतों पर लगाया गया तो इससे 200 करोड़ रु. के लगभग अतिरिक्त आय प्राप्त होने की आशा है। “उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर यह आशा की जा सकती है कि यदि कृषि जोत कर की 5,000 रु. या इससे अधिक के कर योग्य मूल्य की सभी जोतों पर लागू किया गया तो उससे लगभग 200 करोड़ रु. वार्षिक की आय होगी। यदि इस कर को भूराजस्व तथा सम्बद्ध अधिभारों व उपकरों के स्थान पर लगाया गया तो इससे जो अतिरिक्त निबल राजस्व प्राप्त होगा वह लगभग 156 करोड़ रु. के लगभग बैठेगा और यदि इसका विस्तार 2500 रु. या इससे अधिक कर योग्य मूल्य वाली सभी जोतों तक किया गया ताकि उससे लगभग 200 करोड़ रु. के अतिरिक्त साधनों की प्राप्ति होगी।” परन्तु प्रत्येक किसान की जोत (holding) की निबल उत्पादकता (net productivity) का अनुमान लगाने में निहित दोषों के कारण इस बात में सन्देह दिखाई देता है कि इस कर से इतना प्रतिफल प्राप्त भी होगा। फिर, प्रत्येक किसान की जोत पर कर का निर्धारण करने में राजस्व अधिकारियों की ओर से बड़े पैमाने पर लालफीताशाही, रिश्वतखोरी व परेशान किये जाने की भी सम्भावना है क्योंकि उनकी सत्यनिष्ठा (integrity) सदा ही सन्देह से परे नहीं होती है। अतः कृषि आय पर कर लगाने की चाहे कोई भी योजना क्यों न लागू की जाए, यह देखना अत्यन्त आवश्यक है कि किसानों को विशेष रूप से गरीब किसानों को राजस्व अधिकारियों द्वारा परेशान न किया जाए।

#### (4) स्टाम्प शुल्क, न्यायालय फीस तथा रजिस्ट्रेशन

##### (Stamp Duties, Court Fees and Registration)

स्टाम्प शुल्क का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है—एक तो कराधान (taxation) के रूप में और दूसरे कुछ करों के संग्रह के लिए उपयुक्त एक साधन के रूप में। स्टाम्प शुल्क में सामान्यतः वे शुल्क सम्मिलित किये जाते हैं जो ऐसे विलेखों व दस्तावेजों (deeds and documents) पर लगाये जाते हैं जिन्हें कुछ कानूनी सौदों व व्यवहारों के अभिलेख (record) या प्रमाण के रूप में रखा जाता है। स्टाम्प शुल्क सरकारों में तो बड़े लोकप्रिय होते हैं परन्तु अर्थशास्त्रियों को ये अधिक अपील नहीं कर पाते, क्योंकि इनका संग्रह तथा निरीक्षण करना जहाँ सुविधाजनक होता है, वहाँ इनमें कुछ शुल्क ऐसे होते हैं जो कर अदा करने की योग्यता से सम्बद्ध नहीं होते। इन करों की वाह्यता का सामान्यीकरण करना बड़ा कठिन होता है, क्योंकि एक से ही सौदे पर एक बार एक व्यक्ति या पक्ष को शुल्क देना पड़ता है और दूसरी बार दूसरे व्यक्ति या पक्ष को। उदाहरण के लिए, जब कोई भूमि खरीदी तथा बेची जाती है तो एक ओर तो जरूरतमन्द विक्रेता (needy seller) कर का भार वहन करने को तैयार हो जाता है और दूसरी ओर उत्सुक क्रेता (eager buyer) भी इसके लिए प्रस्तुत रहता है। स्टाम्प शुल्कों का एक गुण यह है कि उनके पीछे लम्बी रुढ़ियों व रिवाजों की शक्ति होती है। इन शुल्कों का उपयोग सामान्यतः अनेक देशों में किया जाता है।

#### 29.9.1 संवैधानिक स्थिति तथा स्टाम्प शुल्कों की किस्में

##### (Constitutional Position and Kinds of Stamp Duties)

भारत में स्टाम्प शुल्क दो वर्गों में विभाजित किये जाते हैं—न्यायिक (judicial) तथा गैर-न्यायिक (non-judicial)। न्यायिक स्टाम्प शुल्क सन् 1870 के न्यायालय शुल्क अधिनियम के अन्तर्गत लगाये जाते हैं। ये वे शुल्क होते हैं जो उन लोगों द्वारा अदा किये जाते हैं जिन्हें कानूनी अदालतों तथा सरकारी कार्यालयों से व्यवहार करना होता है। इन शुल्कों को न्यायालय शुल्क (Court Fees) कहा जाता है। गैर-न्यायिक स्टाम्प शुल्कों (non-judicial stamp duties) का नियमन भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 द्वारा किया जाता है। इस अधिनियम में

**नोट**

भारत तथा राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर संशोधन होता रहा है। विनिमय-पत्रों (bill of exchange), चैक, उधार-पत्र, प्रतिज्ञा-पत्र (Pin) तथा रसीदों आदि पर लगने वाले स्टाम्प शुल्क केन्द्र की विधायी क्षमता (legislative competence) के अन्तर्गत आते हैं परन्तु उनकी प्राप्तियों का संग्रह राज्यों द्वारा किया जाता है और राज्यों द्वारा ही वे परस्पर बाँट ली जाती हैं। अचल सम्पत्ति के सौदों सहित अन्य मदों पर काम आने वाले स्टाम्प शुल्क राज्यों द्वारा लगाये जाते हैं। कुछ स्टाम्प शुल्कों की दरें निश्चित होती हैं जबकि कुछ अन्य दरें मूल्यवार (ad-valorem) होती हैं। तमिलनाडु जैसे कुछ राज्य अचल सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर लगने वाले स्टाम्प शुल्क का अधिभार (surcharge) भी लगाते हैं जिनका संग्रह राज्य द्वारा किया जाता है और फिर वे स्थानीय निकायों (local bodies) को सौंप दिये जाते हैं।

**न्यायालय शुल्क (Court Fees)**—ब्रिटिश काल से पूर्व भारत में न्यायिक संस्थाओं द्वारा शुल्क (fees) लागू किये जाने की कोई प्रथा नहीं थी। न्यायालय शुल्क लागू किये जाने की वर्तमान प्रथा का जन्म सन् 1795 में बंगाल रेगुलेशन एक्ट नं. 38 के द्वारा हुआ था और तभी से यह व्यवस्था चालू है।

सन् 1870, में भारतीय न्यायालय शुल्क अधिनियम (Indian Court Fees Act) पास हुआ जिसके अन्तर्गत न्यायालय शुल्क लागू किये गये। अप्रैल, 1944 में अनेक प्रान्तों ने मुद्रा-स्फीति विरोधी उपाय के रूप में न्यायालय शुल्क पर 33% अधिभार (surcharge) लागू किया। आगे चलकर यह अधिभार न्यायालय शुल्क की दरों में ही मिला दिया गया किन्तु न्यायालय शुल्क की दरें राज्य-राज्य में भिन्न हैं और उनमें अनेक बार संशोधन भी किये गये हैं। न्याय का प्रसाधन एक ऐसी विशेष सेवा है जो राज्य द्वारा उन लोगों के लिए उपलब्ध कराई जाती है जो कि ऐसा चाहते हैं। न्याय मुफ्त नहीं दिया जाता और न्यायालय शुल्क लोगों से वसूल किया जाता है और इसी सेवा के लिए किया जाने वाला एक भुगतान है। यही वह सिद्धान्त है जिसके अन्तर्गत न्यायालय शुल्क वसूल किया जाता है। इसे एक प्रकार का आर्थिक दण्ड भी किया जा सकता है जो कि हारने वाले उस व्यक्ति या पक्ष पर डाला जाता है जो राज्य को अनावश्यक रूप से परेशान करता है।

**29.9.2 स्टाम्प शुल्क, न्यायालय शुल्क तथा रजिस्ट्रेशन से प्राप्त होने वाली आय**

**(Revenue from Stamp Duties, Court Fees and Registration)**

सन् 1922 में 'स्टाम्प शुल्क' नामक मद कुछ शर्तों के साथ प्रान्तीय सूची (Provincial List) में स्थानान्तरित कर दी गई थी तभी से केन्द्र सरकार के लिए सुरक्षित कुछ प्रपत्रों (instruments) को छोड़कर भारतीय स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची में उल्लिखित लगभग सभी अथवा अधिकांश प्रपत्रों पर अनेक राज्य शुल्क की दरों में वृद्धि करते रहे हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि में, मुद्रा-स्फीति विरोधी उपाय के रूप में स्टाम्प शुल्क की दरों में फिर वृद्धि की गई। बम्बई, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश जैसे कुछ राज्यों में यह वृद्धि एक सामान्य अधिभार के रूप में की गई थी जो कि बाद में अधिकांश राज्यों में स्टाम्प शुल्क दरों में ही मिला दी गई थी।

स्टाम्प शुल्क तथा रजिस्ट्रेशन से होने वाली सरकारी आय के अनेक कारणों से अच्छी वृद्धि का रुख रहा है। ये कारण थे—बढ़ती हुई आर्थिक क्रियाएँ, कीमतों तथा भूमि के सौदों का बढ़ता हुआ स्तर तथा भूमि सुधार। राज्य भी समय-समय पर स्टाम्प शुल्क की दरों में वृद्धि करने के इच्छुक रहे हैं। पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में अनेक राज्यों ने न्यायालय शुल्कों में वृद्धि की तथा द्वितीय व तृतीय योजनाओं में गैर-न्यायिक स्टाम्प शुल्कों में भी वृद्धि की गई। इस स्रोत से प्राप्त होने वाली आय में वृद्धि का रुख निम्न प्रकार रहा है—

वर्ष	स्टाम्प शुल्क तथा रजिस्ट्रेशन ( करोड़ रु. में )	वर्ष	स्टाम्प शुल्क तथा रजिस्ट्रेशन ( करोड़ रु. में )
1951-52	55.06	1981-82	455.14
1960-61	43.05	1985-86	696.55
1970-71	121.08	1986-87	720.00



क्या आप जानते हैं? सन् 1922 में 'स्टाम्प शुल्क' नामक मद कुछ शर्तों के साथ प्रान्तीय सूची में स्थानान्तरित कर दी गई थी।

नोट

### 29.9.3 स्टाम्प शुल्क, न्यायालय शुल्क तथा रजिस्ट्रेशन-कर के रूप में

#### (Stamp Duties, Court Fees and Registration as Tax)

इन करों का करदाताओं की योग्यता या सामर्थ्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता और इसलिए ये सामर्थ्य सिद्धान्त (canon of ability) की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। तथापि, ये निम्नलिखित दो सिद्धान्तों को सन्तुष्ट करते हैं—(क) एक तो निश्चितता के सिद्धान्त (canon of economy) को और वह इसलिए क्योंकि इन करों की दरें स्पष्ट रूप से पूर्वनिश्चित होती हैं और (ख) दूसरे मितव्ययिता के सिद्धान्त (canon of economy) को, क्योंकि इनमें टिकटों अथवा स्टाम्प की छपाई तथा उनके वितरण की लागत ही एकमात्र उनके संग्रह की लागत होती है। इनमें केवल सम्बन्धित अधिकारियों को ही इस बात पर दृष्टि रखनी होती है कि उनके सामने प्रस्तुत किये जाने वाले प्रपत्र या कागजात, स्टाम्प शुल्क की दृष्टि से पूर्ण हैं; और यह चूँकि उनका प्रासंगिक कार्य (incidental function) होता है अतः इसमें बहुत ही थोड़ी लागत आती है। ये कर सुविधा के सिद्धान्त (canon of convenience) को भी सन्तुष्ट करते हैं क्योंकि ये कर ऐसे अवसरों पर देय होते हैं जबकि व्यक्ति के पास धनराशि विद्यमान होती है। राजस्व के एक स्रोत के रूप में भी यह कर महत्वपूर्ण है। परन्तु यह बुद्धिमानी की बात नहीं है कि राज्य की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्णतया इस कर पर निर्भर रहा जाए।

#### (5) शहरी अचल सम्पत्ति पर कर (Taxes on Urban Immovable Property)

जब भूमि का उपयोग कृषि कार्यों के लिए किया जाता है तो भूराजस्व के बन्दोबस्त के अन्तर्गत राज्य को मिलाने वाला प्रतिफल निश्चित होता है। हाँ, इस प्रतिफल के निर्धारण में कुछ तत्त्वों को अवश्य दृष्टिगत रखा जाता है जैसे कि मिट्टी, उपज, कीमतें, वर्षा, लगान सम्बन्धी आँकड़े तथा क्षेत्र की आर्थिक दशाएँ आदि। परन्तु जब भूमि का उपयोग गैर-कृषि कार्यों के लिए किया जाता है, जैसे कि आवासीय भवन (residential building) बनाने के लिए अथवा कोई औद्योगिक संस्थान कायम करने के लिए, तो भूमि के स्वामी को भूमि के मूल्य में असाधारण वृद्धि हो जाने के कारण अनुपार्जित लाभ प्राप्त होता है। नये बसने वाले अथवा बढ़ते हुए कस्बों तथा नगरों में अथवा उनके समीप के क्षेत्रों में विशेष रूप से ऐसा होता है। भूमि के मूल्यों में जो वृद्धि होती है, वह उस क्षेत्र में मुख्यतः सरकार या स्थानीय निकायों द्वारा किये जाने वाले खर्च के कारण होती है। अतः इस आधार पर, इन भूमियों पर लगाया जाने वाला कर भूराजस्व की तुलना में भिन्न तथा अधिक होना चाहिए।

भूमि के मूल्य में होने वाली इस वृद्धि का उपयोग राजस्व के एक स्रोत के रूप में किये जाने की दृष्टि से, भारत सरकार ने सन् 1979 में और उसके बाद सन् 1987 में इन भूमियों का मूल्यांकन किया और परिस्थितियों के अनुसार उन भूमियों को लगान (ground rent) निश्चित किया, जिसकी दर किराये पर दिये जाने वाले मूल्य के 33% से अधिक नहीं गई।

तथापि, बढ़े हुए शहरी विकास से कारण गैर-कृषि भूमि के कर-निर्धारण को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। इस सम्बन्ध में जो पग उठाये गये हैं, वे विभिन्न राज्यों में काफी भिन्न रहे हैं। कुछ राज्य ऐसे हैं, जिन्होंने गैर-कृषि भूमि पर कर-निर्धारण के लिए सांविधिक व्यवस्थाएँ (statutory provisions) की हैं। कुछ राज्यों ने अधिशासी आदेशों (executive orders) के अन्तर्गत ऐसा किया और कुछ राज्यों ने गैर-कृषि पर कर-निर्धारण बिल्कुल किया ही नहीं। ऐसे कर-निर्धारण की दरों के आधार में भी काफी अन्तर रहा है। कर-निर्धारण का आधार कहीं वार्षिक मूल्य (annual value) रहा है तो कहीं कुल मूल्य (gross value) का बाजार मूल्य (market value) अथवा पूर्ण सम्पदा मूल्य (free-hold value)। कुछ राज्यों में ये दरें केवल नाममात्र की ही हैं।

किन्तु अधिकांश राज्य ऐसे रहे हैं जिन्होंने गैर-कृषि उपयोग में लाई जाने वाली भूमि से प्राप्त होने वाला अनुपार्जित आय पर कर लगाने की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। तृतीय योजना काल में अवश्य इस बात का प्रयास किया

**नोट**

गया कि शहरी भूमि पर उचित दरों से कर लगाये जाएँ और सम्भावना यह है कि अन्य राज्य भी इनका अनुसरण करेंगे। तथापि, राजस्व के स्रोत के रूप में इस कर ने ऐसी क्षमता का प्रदर्शन नहीं किया है कि वे राज्यों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा कर सकेंगे। शहरी स्थानीय निकायों के साधनों में वृद्धि के लिए बनाई गई मन्त्रियों की समिति की रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया है कि करों की प्राप्ति याँ स्थानीय निकायों को दे दी जानी चाहिए। इस स्रोत से प्राप्त होने वाली आय का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

वर्ष	शहरी अचल सम्पत्ति पर कर ( करोड़ रु. में )	वर्ष	शहरी अचल सम्पत्ति पर कर ( करोड़ रु. में )
1950-51	1.8	1980-81	5.69
1960-61	4.2	1985-86	6.50
1970-71	4.2	1986-87	6.80

**( 6 ) वृत्ति, व्यापार, आजीविका तथा रोजगार कर****(Taxes on Trade, Profession, Callings and Employment)**

प्रान्तीय स्वायत्तता (Provincial autonomy) से पूर्व वृत्ति, व्यापार, आजीविका तथा रोजगार पर कोई कर नहीं लगता था, परन्तु भारत सरकार अधिनियम 1919 के अन्तर्गत कुछ प्रान्तों में इन पर स्थानीय कर (local tax) लगाया गया। व्यापार या व्यवसाय कर का उल्लेख राज्य सूची (State List) की 60वीं प्रविष्टि में किया गया है और संविधान की धारा 276 में यह प्रावधान किया गया है कि इस कर का लगाया जाना इस आधार पर अवैध नहीं माना जायेगा कि यह आमदनियों पर लगने वाले कर से सम्बन्धित है। किसी भी राज्य या स्थानीय सत्ता द्वारा किसी भी व्यक्ति पर यह कर प्रतिवर्ष अधिक से अधिक 250 रु. लगाया जा सकता है। यह एक ऐसा कर है जो सभी व्यवसायों पर, सभी रोजगारों पर तथा सभी व्यापारों पर लगाया जाता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति इतना गरीब है कि आय-कर विभाग तक उसे नहीं छेड़ता है तो उसे सामान्यतः इस कर से भी मुक्त कर दिया जाता है।

वृत्ति, व्यापार, आजीविका और रोजगार कर अधिनियम में निर्धन लोगों के लिए छूट की जो व्यवस्थाएँ की गई हैं, उन्हें इस अधिनियम (Act) का एक अच्छा लक्षण कहा जा सकता है। परन्तु यदि अनुपार्जित आय (unearned income) वाले लोगों के साथ, जैसे कि पैन्शन प्राप्तकर्ताओं, निवेश (investment) से आय प्राप्त करने वाले व्यक्तियों, मकान या सम्पत्ति के मालिकों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है अथवा कृषि आय को रोजगार या व्यवसाय से नहीं माना जाता, तो इसे न्यायोचित कहना कठिन है। चूँकि, एक कर वर्ग में आने वाले सभी लोगों पर एक समान दर से कर लगाया जाता है, अतः कर का भार धनिकों के मुकाबले निर्धन लोगों पर अधिक पड़ता है। यह धनी लोगों के साथ पक्षपात करता है क्योंकि यह अनुपार्जित आय वाले लोगों को कर मुक्त रखता है। इस स्रोत से प्राप्त होने वाली आय में पिछले बीस वर्षों में यद्यपि 10 गुनी वृद्धि हुई है, तथापि इसे राज्य के कोष का एक शक्तिशाली साधन नहीं माना जा सकता। कराधान जाँच आयोग, 1953-54 ने यह सिफारिश की थी कि वृत्ति या व्यवसाय कर को राजस्व के उन स्रोतों में सम्मिलित किया जाना चाहिए, जो कि स्थानीय निकायों (local bodies) के लिए सुरक्षित रखे जाएँ।

कुछ चुने हुए वर्षों में इस स्रोत से प्राप्त होने वाली आय निम्नांकित इस प्रकार है—

वर्ष	वृत्ति या व्यवसाय कर ( करोड़ रु. में )	वर्ष	वृत्ति या व्यवसाय कर ( करोड़ रु. में )
1950-51	0.1	1980-81	62.02
1960-61	0.4	1985-86	112.00
1970-71	3.1	1986-87	135.00

## नोट

**(7) राज्य उत्पादन-शुल्क (State Excise Duties)**

उत्पादन-शुल्क या उत्पादन कर देश के अन्दर ही उत्पन्न होने वाली उन वस्तुओं पर लगने वाले कर को कहते हैं जो कि उन वस्तुओं के उपभोग को सीमित करने की दृष्टि से लगाये जाते हैं। भारत में उत्पादन शुल्कों को दो वर्गों में बाँटा गया है—(1) वे उत्पादन शुल्क जो कि वस्तुओं के उत्पादन के समय लगाये जाते हैं। इन करों को लगाने का उद्देश्य उनके उपभोग में कटौती करना उतना नहीं होता, जितना कि राजस्व प्राप्त करना होता है और (2) वे उत्पादन शुल्क जो कि ऐसी वस्तुओं के उपभोग को सीमित करने के उद्देश्य से कर लगाये जाते हैं, जिन्हें कि हानिकारक समझा जाता है। भारत में राज्य सरकारें केवल द्वितीय वर्ग के उत्पादन करों को ही लगाती हैं।

राजस्व के जो प्रमुख स्रोत राज्य सरकारों को प्राप्त हैं, उनमें मानवीय उपयोग के लिए काम में आने वाली शराब पर लगने वाले उत्पादन शुल्क भी हैं। भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अन्तर्गत यह स्थिति थी। सन् 1935 के अधिनियम तथा भारत के संविधान के अन्तर्गत भी बहुत कुछ तक यही स्थिति बनी रही।

इस प्रकार, भारतीय संविधान के अन्तर्गत, राज्यों को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि “राज्य में बनी हुई या पैदा की गई निम्न वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क तथा साथ ही भारत में कहीं अन्यत्र निर्मित तथा पैदा की गई इन्हीं वस्तुओं पर उतनी ही दर से अथवा उससे नीची दर से प्रति कर या जवाबी कर (Countervailing duties)” लगा सके—

(क) मानवीय उपभोग के लिए काम में आने वाली शराब;

(ख) अफीम, भारतीय भाँग व नशीली दवाएँ तथा नशीले पदार्थ; किन्तु इन पदार्थों से युक्त चिकित्सा व शृंगार सम्बन्धी सामग्रियों को छोड़कर।

ये कर वास्तव में, जैसा कि **कराधान जाँच समिति** 1924-25 ने कहा था, एक प्रकार से “प्रतिबन्धात्मक उत्पादन शुल्क” (restricted excises) हैं, अर्थात् उनका मुख्य उद्देश्य मादक **पेय पदार्थों व औषधियों** के उपभोग को कम तथा नियमित करना है, यद्यपि व्यवहार में ये कर राज्यों की आय के महत्वपूर्ण स्रोत भी बने हुए हैं।

**उत्पादन शुल्कों की मदें (Items under Excise Duties)**

राज्य उत्पादन शुल्कों में ये मदें सम्मिलित हैं—आयात की गई शराब की बिक्री के लिए लाइसेंस फीस से होने वाली आय, ऐसी शराब को बोतलों में भरने अथवा ऐसी ही अन्य क्रियाओं के लिए लाइसेंस फीस तथा भारत में बनी विदेशी शराब, देश में बनी स्पिरिट, किण्वित शराब (fermented liquors), विकृत की गई स्पिरिट तथा चिकित्सा के लिए काम में लाई जाने वाली शराब आदि पर कर; मादक पदार्थ व औषधियाँ जैसे भाँग, गाँजा तथा अफीम। इन पदार्थों का निर्माण सरकारी मद्यशालाओं व कारखानों में किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति निजी क्षेत्र में इन वस्तुओं का निर्माण करना चाहता है तो उसे इसके लिए लाइसेंस लेना होता है।

**महत्त्व (Importance)**

अधिकांश राज्यों में स्थिति यह है कि उनकी आय के विभिन्न स्रोतों में मद्य पर लगाये जाने वाले उत्पादन शुल्कों को द्वितीय स्थान प्राप्त है। कुछ राज्यों में तो उत्पादन शुल्कों से होने वाली प्राप्तियाँ भूराजस्व या मालगुजारी की आय से अधिक हैं। युद्धकाल में, लगभग सभी राज्यों में उत्पादन शुल्कों से होने वाली आय में काफी ठोस वृद्धि हुई। गुजरात और तमिलनाडु को छोड़कर, जहाँ कि पूर्ण मद्यनिषेध (total prohibition) लागू है, अधिकांश राज्यों में उत्पादन शुल्क राजस्व के महत्वपूर्ण स्रोत बने हुए हैं।

**29.9.4 उत्पादन शुल्क नीति या आबकारी नीति (Excise Policy)**

सन् 1921 तक तो सरकार की आबकारी नीति केवल यह थी कि लोगों को अधिक मात्रा में शराब का उपयोग करने के प्रति हतोत्साहित किया जाए और इसके उपयोग का नियमन किया जाए। किन्तु इसके बाद देश में मद्यनिषेध (prohibition) के आन्दोलन ने जोर पकड़ा। सन् 1921 से 1937 तक की अवधि के बीच, अनेक राज्य सरकारों ने मद्य के उपभोग को न्यूनतम करने के लिए पग उठाये। इसके लिए उन्होंने मादक पेय पदार्थों के निर्माण तथा

## नोट

वितरण पर कठोर नियन्त्रण लागू किये, उत्पादन शुल्कों में वृद्धि की, नीलामी की बोलियाँ बोलने की प्रथा जारी की, लाइसेंस फीस लगाई और अवैध मद्य-निर्माण पर भारी जुर्माने किये। सन् 1931 में जब महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश सरकार के आगे राष्ट्रीय माँगों की सूची रखी तो उसमें सबसे पहली मद पूर्ण मद्यनिषेध लागू करने की ही थी। सन् 1937 में जब प्रान्तों को स्वायत्ता प्रदान की गई, तो कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों ने मद्यनिषेध की नीति को अपनाया। द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ होते ही प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिये। इससे उन प्रान्तों में मद्यनिषेध की नीति को बड़ा धक्का लगा, जहाँ कि इसे लागू किया गया था। उत्पादन शुल्कों से होने वाली प्राप्तियाँ युद्धकाल में बहुत बढ़ गई। ऐसा कुछ तो मुद्रास्फीति सम्बन्धी दशाओं के कारण हुआ और कुछ इस कारण क्योंकि विदेशों से प्रतिरक्षा सेनाएँ इस देश में काफी आ गई थीं और विदेशी सैनिक शराब का काफी प्रयोग करते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही, मद्यनिषेध का प्रश्न फिर सामने आया और तुरन्त मद्यनिषेध को प्रमुख लक्ष्य बनाया गया। अधिकांश राज्यों में मद्यनिषेध की नीति को लागू करने के लिए कठोर पग उठाये गये। संविधान में मद्यनिषेध को सामाजिक नीति के निर्देशक तत्त्वों में सम्मिलित किया गया और कहा गया कि “राज्य ऐसे मादक पेय पदार्थों तथा भेषजों के उपभोग पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न करेंगे जोकि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं, किन्तु चिकित्सा व औषधि सम्बन्धी सामग्रियों में इनका उपभोग किया जा सकेगा।”

## निष्कर्ष (Conclusion)

इस प्रकार स्पष्ट है कि धार्मिक, सामाजिक व नैतिक दृष्टिकोण से तथा लोगों पर आर्थिक प्रभावों की दृष्टि से यद्यपि मद्यनिषेध की नीति के अनेक लाभ हैं, परन्तु इसके बावजूद वित्तीय तथा प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण इसे सफलतापूर्वक लागू नहीं किया जा सका। इन कारणों से अनेक राज्य सरकारें मद्यनिषेध की नीति का विरोध करती रही हैं। अतः अनेक राज्य सरकारों ने पहले ही मद्यनिषेध को रद्द कर दिया था। इन राज्यों का कहना था कि मद्यनिषेध के कारण इसका अवैध रूप से निर्माण तथा आबकारी सम्बन्धी अपराध इतने बढ़ गये हैं कि उनमें कोई सामाजिक सुधार तो होता नहीं, और राजकोषीय हानि ही होती है। 1 अप्रैल, 1967 से हरियाणा सरकार ने और 30 अप्रैल, 1967 से केरल सरकार ने मद्यनिषेध की नीति का परित्याग कर दिया। मैसूर (कर्नाटक) ने भी सन् 1967 के आम चुनाव से एकदम पूर्व अपनी मद्यनिषेध की नीति में परिवर्तन कर दिया। आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री के. ब्रह्मानन्द रेड्डी का कहना था कि मद्यनिषेध की नीति देश में कहीं भी सफल नहीं हुई।

अब अक्टूबर, 1947 से स्थिति यह है कि भारत के दो राज्यों को छोड़कर अन्य किसी भी राज्य में मद्यनिषेध लागू नहीं है। ये दो राज्य हैं—**गुजरात** और **तमिलनाडु**। इस वर्ष हरियाणा में मद्यनिषेध लागू किया गया हो।

अन्त में, कहा जा सकता है अधिकांश राज्यों में मद्यनिषेध की नीति को राजस्व के दृष्टिकोण से तथा प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण रद्द किया है। किन्तु राज्यों की इस नीति से इसलिए सहमत व्यक्त नहीं की जा सकी, क्योंकि भौतिक कल्याण का तब तक कोई अर्थ नहीं होता जब तक कि लोगों के नैतिक व सामाजिक स्तर काफी ऊँचे न हों। यदि मद्यनिषेध की नीति प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण असफल होती है तो यह साधनों (means) का दोष है साध्य (end) का नहीं। राज्यों को केवल राजस्व के आकर्षण से ही मद्यनिषेध के कार्यक्रम को रद्द नहीं कर देना चाहिए, अपितु यह ध्यान रखना चाहिए कि “**मद्यपान की आदत शनैः शनैः समाज के ऐसे वर्गों में भी फैलती जा रही है जो कि अब तक इसके अभ्यस्त नहीं थे, विशेष रूप से समाज का युवावर्ग तथा उच्च जातियों से सम्बन्धित कुछ महिला वर्ग है।**”

यहाँ हम श्री टेकचन्द समिति के निष्कर्षों से सहमत हैं जिसने कि सन् 1964 में कहा था कि मद्यनिषेध को सम्पूर्ण देश में एक ही बार में लागू किया जाना चाहिए। समिति ने इसके लिए एक 12 वर्षीय कार्यक्रम का सुझाव दिया जिसे 1975-76 तक पूर्ण किया जाना था। यह तिथि बढ़ाकर अब 1985-86 की जा सकती है। परन्तु ऐसा न हो कि राज्य मद्यनिषेध के कार्यक्रम से अपना विश्वास ही खो दें। यदि ऐसा हुआ तो यह बात भारतीय संस्कृति के लिए आत्महत्या सिद्ध होगी और लोगों के आर्थिक जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करके रख देगी। तमिलनाडु राज्य के सलेम जिले में की गई एक जाँच रिपोर्ट में कहा गया था कि “**कुमारपलायम के जुलाहे अपनी दैनिक कमाई का लगभग 50 प्रतिशत भाग मद्यपान पर खर्च करते थे। इन लोगों की पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति उस**

## नोट

थोड़ी-सी कमाई से होती थी जो उनकी स्त्रियाँ तथा बच्चे शारीरिक तथा अन्य प्रकार के परिश्रम से प्राप्त करते थे।” इस प्रकार, शराब परोक्ष रूप से नारीत्व को प्रभावित करती है और बच्चों के मन, मस्तिष्क एवं शरीर पर जहरीला प्रभाव डालती है। किन्तु इन सबके बावजूद भी अधिकांश अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि राजस्व के इस स्रोत का परित्याग करना और मद्यनिषेध की संदेहास्पद नीति का अनुसरण करना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है।

**( 8 ) बिक्री कर (Sales Tax)****संवैधानिक स्थिति**

भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत, वस्तुओं की बिक्री या खरीद पर लगने वाले कर प्रान्तों को सौंप दिये गये थे। भारत का संविधान भी राज्यों को यह अधिकार देता है कि वे समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर लगा सकते हैं और उनका संग्रह कर सकते हैं। परन्तु साथ ही, संविधान की धारा 286 राज्यों को निम्न कर लगाने से रोकती है—(1) भारत की सीमाओं से बाहर के व्यापार के सम्बन्ध में किये जाने वाले क्रय और विक्रय; (2) अन्य राज्य में उपयोग के लिए दी गई वस्तुओं की बिक्री और (3) अन्तर्राज्यीय व्यापार व वाणिज्य से सम्बन्धित बिक्रियाँ। इसके अतिरिक्त, संसद द्वारा “आवश्यक” घोषित किये गये पदार्थों पर कर लगाने से पूर्व राज्यों को राष्ट्रपति की पूर्वानुमति भी लेनी पड़ती थी। इस दृष्टि से सन् 1952 में आवश्यक वस्तु अधिनियम (Essential Goods Act) भी पास किया गया।

कराधान जाँच आयोग की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए, सन् 1956 में संविधान (Constitution) में संशोधन किया गया। इस संशोधन के परिणामस्वरूप वस्तुओं के अन्तर्राज्यीय क्रम-विषय पर लगने वाले करों को संघ सूची में रख दिया गया और यह व्यवस्था की गई कि राज्य के भीतर ऐसी वस्तुओं के क्रय और विक्रय पर कर लगाने के राज्यों के अधिकारों पर भी प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं जिन्हें कि संसद अन्तर्राज्यीय व्यापार में विशेष महत्त्व का समझती हो। अतः सन् 1956 में एक अधिनियम (Act) पास किया गया जिसके द्वारा कुछ वस्तुओं को अन्तर्राज्यीय व्यापार तथा वाणिज्य में विशेष महत्त्व का घोषित कर दिया गया।

**बिक्री कर और क्रय-कर का अर्थ (Meaning of Sales Tax and Purchase Tax)**

बिक्री कर उस कर को कहते हैं जो कि सम्पत्ति अथवा वस्तुओं की बिक्री पर लगाया जाता है, भले ही वह बिक्री फुटकर स्तर पर हुई हो अथवा थोक या निर्माण स्तर पर। उत्तर प्रदेश में बिक्री कर व्यापारी की कुल बिक्री (turnover) पर लगाया जाता है। पण्यवर्त या कुल बिक्री (turnover) से आशय एक व्यापारी या व्यवसायी की एक निश्चित अवधि की कुल बिक्रियों से होने वाली प्राप्तियों (proceeds) से होता है। बिक्री (sales) का अर्थ है सम्पत्ति या वस्तुओं का नगद या आस्थगित भुगतान (deferred payment) के लिए कोई भी स्थानान्तरण (transfer)।

इस प्रकार, **बिक्री कर** वह कर होता है जो कि किसी व्यापारी की वस्तुओं की एक निश्चित समय की बिक्री के मूल्य पर लगाया जाता है, जब कि **क्रय कर** वह कर होता है जो किसी व्यापारी की निश्चित समय की खरीद के मूल्य पर लगाया जाता है। इस प्रकार, एक रजिस्टर्ड व्यापारी की कुल बिक्री पर लगाया जाने वाला तथा उससे वसूल किया जाने वाला कर ही बिक्री कर कहलाता है, और दूसरी ओर रजिस्टर्ड व्यापारी की खरीद की कुल मात्रा पर लगाया गया कर क्रय कर कहलाता है।

**बिक्री कर के रूप (Forms of Sales Tax)**

बिक्री-कर कई प्रकार के होते हैं, जैसे सामान्य बिक्री कर और चुनींदा बिक्री-कर, बहुस्तर और एकस्तर बिक्री कर, और पण्यवर्त कर व कुल प्राप्ति कर।

**( 1 ) सामान्य बिक्री कर और चुनींदा बिक्री कर (General Sales Tax and Selective Sales Tax)**

जब बिक्री कर कानून की परिधि में केवल कुछ चुनी हुई वस्तुएँ ही रखी जाती हैं तो यह व्यवस्था ‘चुनींदा बिक्री कर’ की व्यवस्था कहलाती है। अन्य शब्दों में, जब कर कुछ चुनी हुई वस्तुओं की बिक्री पर लगाया जाता है तो



**नोट**

उसे चुनींदा बिक्री कर कहा जाता है। ऐसा कर सामान्यतः ऊँची कीमत वाली तथा विलासिता की वस्तुओं पर लगाया जाता है। इसके विपरीत, जब कर कानून द्वारा मुक्त की गई वस्तुओं को छोड़कर, अन्य सभी वस्तुओं की कुल बिक्री पर लगाया जाता है तो उसे सामान्य बिक्री कर कहा जाता है। इस प्रकार, जब कर का संग्रह कुछ बिक्री के आधार पर किया जाता है तो उस कर को सामान्य बिक्री कर कहते हैं।

**(2) बहुस्तर और एकस्तर बिक्री कर (Multi-point and Single-point Sales Tax)**

सामान्य बिक्री कर दो प्रकार का होता है—बहुस्तर बिक्री कर और एकस्तर बिक्री कर। एक द्विस्तर बिक्री कर भी होता है परन्तु इसे एकस्तर कर पद्धति का ही एक उपभेद माना जा सकता है। इन दोनों ही प्रकार के करों में विचारधारा और स्वरूप के आधार पर अन्तर किया जाता है।

**एकस्तर कर पद्धति** के अन्तर्गत, कर की विशिष्ट रकम उस कीमत में जोड़ दी जाती है जिस पर कि वस्तु उपभोक्ता को बेची जाती है। यह कर बिक्री के केवल एक ही स्तर पर एकत्र किया जाता है। इसका संग्रह या तो उस स्तर पर किया जा सकता है जबकि उत्पादक द्वारा थोक व्यापारी को माल बेचा जाता है अथवा उस स्तर पर जब फुटकर व्यापारी द्वारा उपभोक्ता को माल बेचा जाता है। एकस्तर बिक्री कर सामान्यतः आयाकर्ताओं अथवा उत्पादकों पर लगाया जाता है। ये लोग सरकार को बिक्री कर अदा करते हैं और फिर उसे अपने ग्राहकों से वसूल कर लेते हैं। कर की राशि वस्तु की कीमत से जोड़ दी जाती है ताकि उनके द्वारा अदा की गई कर की रकम वसूल हो सके। इस प्रकार, जो व्यापारी उत्पादकों से माल खरीदते हैं उन्हें बिक्री कर नहीं देना पड़ता, अपितु ऐसी कीमत देनी पड़ती है जिसमें बिक्री कर भी सम्मिलित रहता है। एक स्तर पर पद्धति के अन्तर्गत चूँकि कर की दर अपेक्षाकृत ऊँची होती, अतः अनेक वस्तुएँ विशेष रूप से अत्यावश्यक वस्तुएँ, सामान्यतः कर-मुक्त कर दी जाती हैं।

**बहुस्तर बिक्री कर** में किसी वस्तु की बिक्री के सभी स्तरों पर कर लगाया जाता है। यह एक तो उस समय लगाया जाता है जबकि उत्पादक थोक व्यापारी को अपना माल बेचता है, फिर उस समय लगाया जाता है जबकि थोक व्यापारी खुदरा व्यापारी को अपना माल बेचता है और अन्त में तब फिर लगाया जाता है जबकि फुटकर या खुदरा व्यापारी उपभोक्ता को अपना माल बेचता है। इस कर की दर अपेक्षाकृत नीची होती है और छूटें भी कम प्रदान की जाती हैं। यह कर उपभोक्ता से वसूल किया जा सकता है। अतः यह सामान्यतः उसी के द्वारा अदा किया जाता है।



टास्क बहुस्तर और एकस्तर बिक्री कर से क्या तात्पर्य है?

**29.9.5 बहुस्तर और एकस्तर एक पद्धति की सम्भाव्यता****(Feasibility of Multi-point and Single-point System)**

अब हम इस बात की विवेचना करेंगे कि बहुस्तर तथा एकस्तर कर पद्धति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में कहाँ तक व्यावहारिक रूप से लागू हो सकती है। बहुस्तर कर पद्धति निम्नलिखित परिस्थितियों के लिए उपयुक्त (Suitable) मानी जाती है—

1. जब सरकार यह निश्चित करती है कि अपेक्षाकृत आवश्यक पदार्थों सहित उपभोग की अधिकांश वस्तुओं पर कर को लागू किया जाए।
2. जब सरकार यह निश्चित करती है कि कर को एक साथ ही बड़ी संख्या में बड़े, मध्यम तथा छोटे व्यापारियों पर लगाया जाए;
3. जब सरकार यह निश्चित करती है कि कर को इतनी नीची दर से लगाया जाए कि यदि वह एक ही वस्तु पर कई बार भी दिया जाए तो उससे कोई गम्भीर स्थिति उत्पन्न न हो।

दूसरी ओर, एकस्तर बिक्री कर निम्न परिस्थितियों में ठीक रहता है—

1. जब सरकार यह निश्चय करती है कि कर को पदार्थों की बहुसंख्या पर नहीं, बल्कि उसकी अनेक किस्मों (varieties) पर लगाया जाए।

## नोट

2. जब सरकार यह निश्चय करती है कि कर को व्यापारियों को एक सीमित संख्या पर लागू किया जाए।
3. जब सरकार यह निश्चय करती है कि वस्तुओं पर अपेक्षाकृत ऊँची दर से कर लगाया जाए।

यद्यपि एकस्तर तथा बहुस्तर, दोनों ही प्रकार के बिक्री करों की आलोचना की जाती है, किन्तु वित्तीय, आर्थिक और प्रशासनिक दृष्टिकोण से अब यह माना जाता है कि केवल एक ऐसी मिली-जुली कर-व्यवस्था ही व्यावहारिक सिद्ध हो सकती है जिसमें के ये दोनों ही प्रकार के कर अपना योगदान करें।

### पण्यावर्त कर (Turnover Tax)

भारत में कुछ राज्यों में बिक्री कर के स्थान पर 'पण्यावर्त कर' शब्द का प्रयोग किया जाता है। किन्तु इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है, अर्थात् पण्यावर्त कर के ऐसे कोई विशिष्ट लक्षण नहीं हैं, जो कि भारत में प्रचलित कर-पद्धतियों के सन्दर्भ में, एक ओर तो बिक्री कर से और दूसरी ओर क्रय कर से इनकी भिन्नता प्रकट करें।

### व्यापारियों का पंजीकरण (Registration of Dealers)

व्यापारियों का पंजीकरण या रजिस्ट्रेशन कई कारणों से आवश्यक होता है। व्यापारी जिनसे कर एकत्र किया जाता है, अनेक होते हैं तथा विस्तृत रूप से फैले हुए होते हैं। प्रशासनिक दृष्टि से यह कार्य बड़ा मंहगा तथा कठिन होता है कि बड़े, मध्यम तथा छोटे सभी व्यापारियों से कर प्राप्ति का पता लगाया जाए और उनके कर एकत्र किए जाएँ। अतः यह आवश्यक समझा जाता है कि जिन व्यापारियों से कर संग्रह होना है वे अपना रजिस्ट्रेशन करायें। व्यापारी बिक्री कर की अदायगी अपने लाभों में से कर सकते हैं अथवा वे उसे उपभोक्ताओं से एकत्र करके सरकार को अदा कर सकते हैं। बाद की स्थिति में व्यापारी के लिए यह आवश्यक होता है कि वह कर निर्धारण करने वाले अधिकारियों के यहाँ अपना रजिस्ट्रेशन कराये। केवल रजिस्टर्ड व्यापारी ही अपने ग्राहकों से बिक्री कर की धनराशि वसूल कर सकते हैं।

### बिक्री-कर का विकास (Development of the Sales Tax)

सन् 1938 में सर्वप्रथम मध्य प्रदेश सरकार द्वारा पेट्रोल कर के रूप में चुर्नीदा बिक्री कर लागू किया गया था। सामान्य बिक्री-कर सर्वप्रथम 1939 में मद्रास सरकार द्वारा बहुस्तर आधार पर और तत्पश्चात् सन् 1941 में बंगाल में एकस्तर आधार पर लागू किया गया था। पिछले 10 वर्षों की अवधि में कुछ राज्यों ने एकस्तर पद्धति को छोड़कर बहु-स्तर पद्धति को अपनाया और कुछ ने इसके विपरीत बहु-स्तर पद्धति का त्याग कर एक-स्तर पद्धति को अपनाया। उत्तर प्रदेश में अप्रैल 1948 में बिक्री-कर लागू किया गया और बहु-स्तर कर पद्धति को अपनाया गया। वर्तमान समय में, सभी राज्यों में किसी न किसी रूप में बिक्री-कर अवश्य लगे हैं। कुछ राज्यों में सीमित मात्रा में क्रय-कर भी लगाये गये हैं। छूट की सीमाओं, कर लगे पदार्थों की संख्या तथा कर की दरों में राज्य-राज्य के बीच अन्तर पाया जाता है। अन्तर्राज्यीय व्यापार से सम्बन्धित वस्तुओं पर विभिन्न राज्यों द्वारा जो बिक्री कर लगाया जाता था, उसमें एकरूपता लाने के लिए सन् 1956 में केन्द्रीय बिक्री-कर अधिनियम (Central Sales Tax Act) पास किया गया। इस कर का प्रशासन संघ सरकार के उत्तरदायित्व पर राज्यों द्वारा किया जाता है और उसकी प्राप्ति वही राज्य रख लेते हैं जो इनका संग्रह करते हैं। इस अधिनियम में ऐसी वस्तुओं की सूची का उल्लेख है जिनका अन्तर्राज्यीय व्यापार अथवा वाणिज्य में विशेष महत्त्व है। कोयला, कपास, सूती धागे, लोहा व इस्पात, जूट तथा तिलहन आदि पदार्थ इस श्रेणी में आते हैं।

### आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1952 तथा केन्द्रीय बिक्री-कर अधिनियम, 1956

#### (Essential Goods Act, 1952 and Central Sales Tax Act, 1956)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सन् 1952 में आवश्यक वस्तु अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत, यह व्यवस्था की गई थी कि राज्य ऐसी वस्तु पर कर लगाते हैं, जिन्हें कि संसद ने 'आवश्यक' घोषित कर रखा है, उन्हें उसके लिए राष्ट्रपति की पूर्वानुमति लेनी होगी। इस कर का उद्देश्य यह था कि ऐसी वस्तुओं पर

**नोट**

लगाये जाने वाले कर में एकरूपता लाई जाए तथा ऐसी वस्तुएँ कर लगाने से बच न जाएँ। किन्तु केन्द्रीय बिक्री-कर अधिनियम 1956 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार द्वारा उन वस्तुओं पर कर लगाया जाता है जो अन्तर्राज्यीय व्यापार व वाणिज्य में विशेष महत्त्व (specific importance) की होती है। इस कर का संग्रह राज्य ही करते हैं और वे ही इसकी प्राप्तियों को रख लेते हैं।

**बिक्री-कर महत्त्व (Importance of Sales Tax)**

राज्यों के वित्त में बिक्री-कर ने बड़ा महत्त्वपूर्ण रोल अदा किया है। राजस्व के स्रोत के रूप में इस कर में लोचशीलता व तरलता का गुण विद्यमान है। योजनाओं की अवधि में बिक्री-कर से होने वाली आय वृद्धि का रुख निम्न प्रकार रहा है—

वर्ष	सामान्य बिक्री कर	वर्ष	सामान्य बिक्री कर
1950-51	54.4	1980-81	3837.58
1960-61	142.4	1985-86	7074.00
1970-71	708.4	1986-87	7150.00

बिक्री-कर में वृद्धि की दर राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर से भी अधिक रही है। इस कर में लोचशीलता व सरलता की काफी शक्ति है। अतः यदि कर-वंचन की सम्भावनाओं को रोका जा सके तो इससे होने वाले राजस्व में और भी वृद्धि हो सकती है। फिर, चूँकि राज्यों की आय में वृद्धि की सम्भावनाएँ सीमित ही हैं, अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि कर-वंचन (tax-evasion) को रोकने के सभी सम्भव उपाय काम में लाए जाएँ और राज्यों की आय में इस साधन द्वारा वृद्धि की जाए।

**अल्प विकसित देशों में बिक्री-कर (Sales Tax in Underdeveloped Countries)**

अल्पविकसित देशों में, एक ओर जहाँ राज्यों की अपनी विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था के लिए साधनों को गतिशील करने की आवश्यकता है, वहाँ दूसरी ओर उनकी अधिकांश जनसंख्या निर्धन होती है तथा तथा करों का क्षेत्र भी सीमित होता है और वह इसलिए क्योंकि इन करों को लगाने की प्रशासनिक लागत बहुत अधिक होती है। इस स्थिति में, बिक्री-कर जो कि एक परोक्ष कर है, राज्य सरकारों के साधनों को गतिशील करने में बड़ा सहायक हो सकता है। बिक्री-कर एक वस्तु कर है जो कि सामान्यतः कर लगी वस्तु की कीमत में सम्मिलित रहता है और यह कर काल्वर्ट के इस सिद्धान्त के भी अनुरूप है कि 'बत्तख के पर इस प्रकार नोचो कि वह कम से कम शोर मचाये।' यदि बिक्री-कर विलासिता की वस्तुओं पर लगाया जाए तो यह परोक्ष रूप से बचतों को भी प्रोत्साहित करता है क्योंकि बढ़ी हुई कीमतें ऐसी वस्तुओं के उपभोग को हतोत्साहित करती हैं। इस प्रकार, यह कर आमतौर पर लोगों की उपभोग प्रवृत्ति (propensity to consume) को क्षीण करता है और बचतों को बढ़ावा देता है। अतः बिक्री-कर को राजस्व का एक अच्छा स्रोत माना जा सकता है, और अल्पविकसित देशों में तो विशेष रूप से।

**उत्पादन पर बिक्री-कर के प्रभाव (Effects on Production)**

अब हम इस बात की विवेचना करेंगे कि उत्पादन पर अर्थात् (क) काम करने की योग्यता पर, (ख) बचत व निवेश करने की योग्यता पर और (ग) काम करने व बचत करने की इच्छा पर बिक्री-कर के क्या प्रभाव पड़ते हैं।

**(क) काम करने की योग्यता पर प्रभाव (Effects on the ability to work)**—कराधान से काम करने की योग्यता तब घटती है जबकि व्यक्ति की कार्य क्षमता पर करों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः समाज के निर्धन वर्गों पर लगाये जाने वाले कर का सदा इसलिए विरोध किया जाता है कि उससे चूँकि उन लोगों के जीवन की आवश्यक वस्तुओं का उपयोग भी घट जाता है, अतः वह कर उनकी कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। इस प्रकार, यदि बिक्री-कर भारी बोझ उन वस्तुओं पर पड़ता है जिसका उपभोग आमतौर पर समाज का निर्धन वर्ग करता है तो इससे उनकी कार्यक्षमता पर और अन्ततः काम करने की योग्यता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता

## नोट

है। अतः बिक्री-कर की ऐसी पद्धति उत्पादन पर हानिकारक प्रभाव डाल सकती है। किन्तु यदि सामान्य उपभोग की वस्तु को कर से मुक्त कर दिया जाए और बिक्री करों का भारी बोझ ऐसी वस्तुओं पर पड़े जिनका उपभोग सामान्यतः समाज का धनी वर्ग करता है, जैसे कि विलासिता की वस्तुएँ तो लोगों की कार्यक्षमता पर और अन्ततः उत्पादन पर बिक्री करों का प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की सम्भावना नहीं है। यही नहीं, इससे तो और बचतों को ही प्रोत्साहन मिल सकता है। अतः यह आवश्यक है कि सामान्य उपभोग की वस्तुओं को या तो कर-मुक्त रखा जाए अथवा उन पर नीची दरों से कर लगाये जाएँ और विलासिता की वस्तुओं पर भारी दरों से कर लगाये जाएँ।

**(ख) बचत करने की योग्यता पर प्रभाव (Effect on Ability to Save)**—जहाँ तक बचत करने की योग्यता का प्रश्न है, यह तो सभी करों से कम होती है; हाँ, उन लोगों की बात दूसरी है जिनके पास इतनी फालतू आय ही न हो कि वे उसमें से बचत कर सकें। इस प्रकार ऐसे कर जो कि बचत करने की योग्यता को कम नहीं करते, वे होते हैं जो कि पूर्णतया ऐसे निर्धन लोगों पर पड़ते हैं जिनके पास बचत करने की गुंजाइश ही नहीं होती। अतः बिक्री कर पूर्णतया समाज के उन वर्गों पर पड़ता है जिन पर कि बचत की गुंजाइश ही नहीं होती, तो उनकी बचत करने की योग्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु यदि स्थिति इसके विपरीत है तो ऐसा प्रभाव पड़ेगा। पर यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि वस्तु-कर होने के कारण चूँकि बिक्री-कर सामान्यतः वस्तु की कीमत में ही सम्मिलित रहता है, अतः यह उपभोग तथा बचत, दोनों को ही हतोत्साहित करता है। परन्तु कर की दरें यदि कम भी कर दी जाएँ तो भी बचत बढ़ाने को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता, यदि वह कर विलासिता की वस्तुओं पर लगाया गया हो। तथापि एक तर्कसंगत बिक्री-कर बचत करने की योग्यता पर और अन्ततः उत्पादन पर कोई गम्भीर प्रभाव नहीं डालता।

**(ग) काम करने व बचत करने की इच्छा पर प्रभाव (Effect on Desire to Work and Save)**—जहाँ तक लोगों की काम करने व बचत करने की इच्छा का प्रश्न है, वस्तु करों के प्रारम्भिक प्रभावों का विवेचन पहले ही किया जा चुका है। किन्तु जिन लोगों को काफी संख्या में अपने आश्रितों (dependents) का पालन-पोषण करना होता है अथवा जिन्होंने अपनी भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक निश्चित मात्रा बचत करने का दृढ़ निश्चय कर रखा हो, वह बढ़े हुए करों के दबावों के कारण इस बात के लिए विवश हो जाते हैं कि अधिक काम करें तथा अधिक बचत करें ताकि करों के प्रभावों की क्षतिपूर्ति हो सके। ऐसी स्थिति में बिक्री-कर के लगने से काम करने व बचत करने की इच्छा कम नहीं होगी। ऐसे लोग तो अपने आश्रितों का पालन-पोषण करने के लिए तथा भविष्य में एक निश्चित रकम प्राप्त करने के लिए काम भी अधिक करेंगे और बचत भी।

### वितरण पर बिक्री-कर के प्रभाव (Effect on Distribution)

बिक्री-कर जब ऐसी वस्तुओं पर लगाया जाता है जो कि समाज के निर्धन वर्ग के लोगों द्वारा खरीदी जाती हैं तो उसकी प्रकृति अवरोही (regressive) हो जाती है। इस स्थिति में, वह आय तथा धन के वितरण की असमानताओं में और वृद्धि करता है। किन्तु इस कमी को दूर करने की दृष्टि से यदि यह चुनींदा आधार पर और केवल विलासिता की वस्तुओं पर ही लगाया जाता है तो उस स्थिति में यह राजस्व का उत्पादक स्रोत नहीं रहता है। बिक्री-कर की यह एक मौलिक कमी है कि यह उपभोक्ता की करदेय क्षमता से सम्बन्धित नहीं होता। धनी तथा निर्धन सभी इसे एक-सी दर के समान रूप से अदा करते हैं। यही नहीं, वह घरेलू परिस्थितियों के लिए भी कोई छूट प्रदान नहीं करता और इस प्रकार यह दो समान आय वाले करदाताओं के बीच में भी उन लोगों पर अधिक बोझ डालता है जिनके आश्रितों की संख्या अधिक होती है। यह भी सम्भव नहीं है कि असमान आय वाले विभिन्न करदाताओं के बीच इसे आरोही या क्रमवर्धी बना दिया जाए। इस प्रकार एक सामान्य बिक्री-कर की प्रकृति अवरोही होती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्पादन वृद्धि तथा धन का श्रेष्ठतर वितरण-आर्थिक कल्याण के अभिन्न साथी हैं। अतः प्रयास इस बात के लिए किये जाने चाहिए कि बिक्री-कर को इस प्रकार लागू किया जाए कि उससे देश की उत्पादन क्षमता में कोई कमी न आये। साथ ही, कर के ढाँचे में विभिन्न छूटें इस प्रकार प्रदान की जानी चाहिए कि इस कर को अवरोहीपन के दोष से मुक्ति मिल सके। अतः निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि राजस्व के स्रोत के रूप में बिक्री-कर ने अपनी इस क्षमता का अच्छा प्रदर्शन किया है कि वह विकास योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था

## नोट

के लिए साधनों को गतिशील कर सकता है। कुछ राज्यों में तो यह उनके सबसे बड़े स्रोतों में से एक है और कुछ में राजस्व का सबसे बड़ा स्रोत है।

### 29.10 वर्तमान व्यवस्था में बिक्री-कर का औचित्य (Justification of Sales Tax in the Present System)

वर्तमान समय में बिक्री कर को लागू रखा जाए या हटा दिया जाए, इस सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी दलीलें दी जाती हैं। जनता दल ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में बिक्री-कर हटाने का वायदा किया था तो उसकी जगह केन्द्रीय उत्पादन शुल्क लगाने की वैकल्पिक व्यवस्था रखी गयी थी। किन्तु इस विकल्प का राज्यों द्वारा विरोध किया गया क्योंकि इससे उनकी आमदनी का एकमात्र प्रमुख साधन हाथ से निकल जाता। केन्द्र सरकार भी अपने इस वायदे से मुकर रही है क्योंकि 15 मार्च, 1979 को लोकसभा में पेश किये गए 49वें संविधान संशोधन विधेयक से स्पष्ट हो जाता है कि केन्द्र को बिक्री-कर न तो राजनीतिक दृष्टि से स्वीकार्य है और न ही आर्थिक दृष्टि से उपादेय। बिक्री कर को हटाने के सम्बन्ध में यह दलील दी जाती है कि इससे केन्द्र व राज्यों के बीच के वित्तीय सम्बन्धों में आधारभूत परिवर्तन करने होंगे जो सम्भव नहीं है। किन्तु बिक्री-कर हटाने की स्थिति में केन्द्र सरकार अतिरिक्त उत्पादन शुल्क लगाकर तथा उससे प्राप्त रकम को राज्यों में वितरित करके राजस्व घाटे को पूरा कर सकती है।

### 29.11 मोटर वाहन कर (Motor Vehicle Taxation)

मोटर वाहन कर सर्वप्रथम सन् 1914 के मोटर वाहन अधिनियम के अन्तर्गत शुल्क के रूप में अखिल भारतीय आधार पर लगाया गया था। अधिनियम का मुख्य सम्बन्ध मोटर यातायात के नियमन व नियन्त्रण से था। इसके अन्तर्गत रजिस्ट्रेशन, परमिट, चालक लाईसेन्स आदि के लिए विभिन्न शुल्क (fees) लागू की गई थीं। इन शुल्कों में समय-समय पर वृद्धि भी होती रही है।

**संवैधानिक पहलू (Constitutional Aspect)**—संविधान के अन्तर्गत, राज्य सूची की प्रविष्टि 57 द्वारा वाहनों पर कर लगाने की व्यवस्था की गई है, फिर चाहे वे वाहन यन्त्र चालित हों, अथवा अन्य प्रकार के। चूँकि यह कर समवर्ती सूची में सम्मिलित है, अतः संसद को यन्त्र-चालित वाहनों के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है जिसमें कि ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण भी सम्मिलित है जिनके आधार पर ऐसे वाहनों पर कर लगाये जा सकें। परन्तु ऐसे सिद्धान्तों के बारे में अभी तक संसद ने कोई भी कानून पास नहीं किया है। वर्तमान में स्थिति यह है कि भारत में सभी राज्य मोटर वाहन कर लगाते हैं, यद्यपि कर की दरें सभी राज्यों में भिन्न हैं।

**मोटर वाहन कर के रूप (Forms of Motor Vehicles Taxation)**—राज्य स्तर पर जो मोटर वाहन-कर लगाये जाते हैं, वे तीन प्रकार के होते हैं—(क) मोटर वाहन कर, (ख) माल तथा यात्रियों पर कर, और (ग) स्थानीय कर, जैसे चुंगी, पथ-कर व पहिया कर।

यहाँ हमारा विशेष सम्बन्ध मोटर वाहन कर से ही है। यह कर सभी राज्यों में राज्य के वाहनों पर लगाया जाता है। मोटरवाहन कर का आधार तथा इसकी दरें प्रत्येक राज्य में भिन्न हैं। कुछ राज्यों में माल वाहनों पर कर लादे गये वजन के आधार पर, कुछ में बिना लादे गये वजन के आधार पर, और कुछ अन्य में अधिकृत बोझ के आधार पर अथवा सीटों की क्षमता के आधार पर कर लगाया जाता है। यात्री बसों पर कर सामान्यतः इसी आधार पर लगाया जाता है। प्रथम और द्वितीय योजनाकाल में, अनेक राज्यों में यात्री किरायों तथा माल भाड़ों पर कर लगाया। यह कर किराये या भाड़े के प्रतिशत के रूप में लगाया गया था। तथापि, यह उल्लेखनीय है कि राज्यों ने मोटर वाहनों से सम्बन्धित इन तीनों ही प्रकार के करों का आश्रय अधिकाधिक मात्रा में लिया है, और विशेष रूप से तृतीय योजना काल में, तथा इन करों की दरों में काफी वृद्धि की है।

कहा जाता है कि कई राज्यों में तो यह कर काफी बोज़िल तथा कष्टकर बन गया है। यह हिसाब लगाया गया है कि बसों की संचालन लागत का 50% से भी अधिक भाग किसी न किसी कर के रूप में ले लिया जाता है। भारतीय

## नोट

सड़क परिवहन विकास एसोसिएशन का अनुमान है कि सड़क पर चलने वाले प्रत्येक ट्रक प्रतिवर्ष औसतन 11,000 रु. करों के रूप में अदा करता है। इन करों में डीजल तेल पर दिया जाने वाला कर भी सम्मिलित है। राजस्व का यह स्रोत राज्यों के लिए बड़ा प्रलोभन का विषय रहा है यही नहीं, यह स्रोत काफी लोचदार भी सिद्ध हुआ है। इस कर को वसूल करना भी बड़ा सरल होता है परन्तु देश में मोटर-गाड़ियों के सम्पूर्ण उत्पादन-लक्ष्य को देखते हुए, मोटर वाहनों के करों में भावी लोचशीलता की बात सीमित ही प्रतीत होती है। किन्तु यदि राज्य सरकारों के वित्त की दृष्टि से देखा जाए तो यह बड़ा उचित तथा आवश्यक प्रतीत होता है कि देश में मोटर-गाड़ियों का उत्पादन तेजी से बढ़ाया जाए।

इस स्रोत से प्राप्त होने वाली आय में पिछले कुछ वर्षों में होने वाली वृद्धि का क्रम निम्न प्रकार रहा है—

वर्ष	मोटर वाहन कर ( करोड़ रु. )	वर्ष	मोटर वाहनकर ( करोड़ रु. )
1950-51	10.1	1980-81	414.93
1960-61	30.9	1985-86	680.50
1970-71	104.1	1986-87	740.50

### 29.12 मनोरंजन कर (Entertainment Tax)

मनोरंजन-कर सर्वप्रथम सन् 1922 में बंगाल में लगाया गया था। राज्य सरकारों को भारत सरकार अधिनियम 1919 व 1935 के अन्तर्गत इस कर को लगाने का अधिकार दिया गया था। भारतीय संविधान (1950) अपनी सातवीं अनुसूची की द्वितीय सूची (List II) की 62वीं प्रविष्टि के अन्तर्गत राज्य सरकारों को यह कर लगाने की शक्ति प्रदान करता है।

मनोरंजन-कर एक बड़ा सीधा-सादा कर है। जो कि मनोरंजन के ऐसे स्थान पर लगाये गये टिकटों के मूल्य पर एक निर्धारित दर से वसूल किया जाता है, जैसे कि घुड़दौड़ के स्थान (Race Courses), थियेटर, सिनेमागृह, सर्कस तथा स्पोर्ट्स आदि। इस प्रकार, यह कर मनोरंजन के उन स्थानों तक सीमित रहता है जिनमें कैश द्वारा खरीदे जाने वाले टिकटों द्वारा ही प्रवेश लिया जा सकता है। इस स्रोत से प्राप्त होने वाली आय का एक बहुत बड़ा भाग सिनेमा गृहों से प्राप्त होता है। शो या प्रदर्शन कर (show tax) ऐसा कर होता है जो कि प्रदर्शक (exhibitor) द्वारा किये जाने वाले प्रत्येक शो पर लगाया जाता है और यह प्रदर्शक पर ही पड़ता है किन्तु इस कर का भार सिनेमा जाने वाले अथवा शो देखने वाले लोगों को ही वहन करना होता है। मनोरंजन कर का संग्रह या तो नकद रूप में किया जाता है अथवा कभी-कभी चिपकाये जाने वाले विशेष टिकटों द्वारा भी एकत्र किया जाता है। कुछ मनोरंजनों को इस कर से मुक्त भी रखा जाता है जैसे कि पुण्यार्थ व धर्मार्थ प्रकृति के मनोरंजन, शिक्षा तथा प्रचार कार्यों के लिए अथवा कृषि, उद्योग अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए किये जाने वाले मनोरंजन। जहाँ तक कर-वंचन का प्रश्न है, मनोरंजन कर के सम्बन्ध में यह समस्या कुछ अधिक गम्भीर है। प्रत्येक राज्यों में मनोरंजन कर के रूप में एकत्र धनराशि स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित कर दी जाती है।

इस स्रोत से होने वाली आय का वितरण इस प्रकार है—

वर्ष	मोटर वाहन कर ( करोड़ रु. )	वर्ष	मोटर वाहन कर ( करोड़ रु. )
1950-51	6.4	1980-81	25.38
1960-61	9.8	1985-86	401.50
1970-71	57.5	1986-87	420.50

## नोट

## स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

8. कृषि जोत-कर लगाने की सिफारिश कृषि धन तथा आय के कराधान पर बनी प्रो. के. एन. राज समिति ने की है।
9. न्यायिक स्टाम्प शुल्क सन् 1970 के न्यायालय शुल्क अधिनियम के अंतर्गत लगाये जाते हैं।
10. गैर-न्यायिक स्टाम्प शुल्कों का नियमन भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 द्वारा किया जाता है।
11. न्यायालय शुल्क लागू किये जाने की वर्तमान प्रथा का जन्म सन् 1795 में बंगाल रेगुलेशन ऐक्ट न. 38 के द्वारा हुआ था और तभी से यह व्यवस्था चालू है।
12. प्रांतीय स्वायत्तता से पूर्व वृत्ति, व्यापार, आजीविका तथा रोजगार पर कर लगता था।

### 29.13 सारांश (Summary)

- केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच करों के क्षेत्राधिकार (tax jurisdiction) का स्पष्ट रूप से विभाजन किया गया है।
- संघीय किस्म की सरकार का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह होता है कि उसके अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों तथा कार्यों का विभाजन कर दिया जाता है। इसीलिए भारतीय संविधान में कुछ कार्य तथा साधन राज्यों को सौंपे गये हैं।
- जिन कार्यों को सम्पन्न करने का भार राज्यों पर डाला गया है, वे हैं—कानून व व्यवस्था की स्थापना, पुलिस, जेल, न्याय का प्रशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई अस्पताल तथा औषधालय, मादक पदार्थों का उत्पादन, निर्माण तथा बिक्री शिक्षा, कृषि तथा कृषि के विकास से सम्बन्धित समस्याएँ, क्षेत्रीय तथा लघु उद्योग जैसे कि हथकरघा आदि, वन, बाजी तथा जुआ और सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित कानून बनाने का उत्तरदायित्व आदि।
- कुछ कार्य समवर्ती सूची में रखे हैं, जैसे कि आर्थिक व सामाजिक नियोजन, वाणिज्यिक व औद्योगिक एकाधिकार, औद्योगिक व श्रम विवाद, श्रम कल्याण जिसमें श्रमिकों के कार्य करने की दशाएँ भी सम्मिलित हैं, मूल्य नियन्त्रण, शिक्षा, सिंचाई तथा बिजली आदि।
- जिन करों पर राज्यों को विधायी शक्ति तथा एकत्र करने का अधिकार प्राप्त है, वे हैं—भूराजस्व या मालगुजारी, कृषि आय पर कर, कृषि भूमि के सम्बन्ध में उत्तराधिकार कर तथा आस्ति कर, भूमि, भवनों व खनिज अधिकारों पर कर तथा मद्य, अफीम, भारतीय भाँग व मादक औषधियों तथा मादक पदार्थों के उत्पादन व विनिर्माण पर उत्पादन कर।
- ब्रिटिश शासन में भूमि के प्रशासन को भू-राजस्व के “बन्दोबस्त” का नाम दिया गया था और ये बन्दोबस्त काफी व्यापार सर्वेक्षण तथा वर्गीकरण के पश्चात् निर्धारित किये गये थे।
- किसी क्षेत्र या जागीर (estate) या क्षेत्रों के समूह की ऐसी अनुमानित औसत वार्षिक बेशी (surplus), जो कि अनुमानित या निर्धारित सामान्य खर्चों को घटाने के बाद शेष बचे।
- सन् 1901 में अकाल आयोग (Famine Commission) द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के फलस्वरूप सभी राज्यों द्वारा भूराजस्व में रियायतों तथा छूटों की व्यवस्था की जाती है और इन्हें अधिशासी आदेशों द्वारा लागू किया जाता है।
- एक समान आय तथा धन रखने वाले वर्गों पर प्रत्यक्ष करों की वाह्यता बिना इस बात का ध्यान रखे हुए समान रूप से पड़नी चाहिए कि वह आय का धन किस स्रोत से प्राप्त हुआ है या किस रूप में प्राप्त हुआ है।

## नोट

- जहाँ तक कर की योग्यता के सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, भूराजस्व या मालगुजारी एक ऐसा कर है जो कि एक समान दर से लगाया जाता है।
- सन् 1935 के **भारत सरकार अधिनियम** के अनुसार, कृषि आमदनियों पर कर लगाने का अधिकार प्रान्तों को दिया गया था। सन् 1950 के **भारतीय संविधान** में भी इसी स्थिति को बनाये रखा गया है।
- कृषि जोत-कर लगाने की सिफारिश कृषि धन तथा आय के करधान पर बनी प्रो. के. एन. राज समिति ने की है।
- स्टाम्प शुल्क का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है—एक तो करधान (taxation) के रूप में और दूसरे कुछ करों के संग्रह के लिए उपयुक्त एक साधन के रूप में। स्टाम्प शुल्क में सामान्यतः वे शुल्क सम्मिलित किये जाते हैं जो ऐसे विलेखों व दस्तावेजों (deeds and documents) पर लगाये जाते हैं जिन्हें कुछ कानूनी सौदों व व्यवहारों के अभिलेख (record) या प्रमाण के रूप में रखा जाता है।
- मद्यपान की आदत शनैः शनैः समाज के ऐसे वर्गों में भी फैलती जा रही है जो कि अब तक इसके अभ्यस्त नहीं थे, विशेष रूप से समाज का युवावर्ग तथा उच्च जातियों से सम्बन्धित कुछ महिला वर्ग है।
- कुमारपलायम के जुलाहे अपनी दैनिक कमाई का लगभग 50 प्रतिशत भाग मद्यपान पर खर्च करते थे। इन लोगों की पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति उस थोड़ी-सी कमाई से होती थी जो उनकी स्त्रियाँ तथा बच्चे शारीरिक तथा अन्य प्रकार के परिश्रम से प्राप्त करते थे।
- मनोरंजन-कर सर्वप्रथम सन् 1922 में बंगाल में लगाया गया था। राज्य सरकारों को भारत सरकार अधिनियम 1919 व 1935 के अन्तर्गत इस कर को लगाने का अधिकार दिया गया था। भारतीय संविधान (1950) अपनी सातवीं अनुसूची की द्वितीय सूची (List II) की 62वीं प्रविष्टि के अन्तर्गत राज्य सरकारों को यह कर लगाने की शक्ति प्रदान करता है।

### 29.14 शब्दकोश (Keywords)

- जागीर (Estate)—क्षेत्र।
- रियासत (Princely States)—राज्य।

### 29.15 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. राज्य सरकारों की आय के प्रमुख स्रोत बतलाइये तथा बिक्री-कर के इतिहास, महत्त्व और वर्तमान स्थिति को समझाइये।
2. भारत में भू-राजस्व का इतिहास बतलाइये तथा भू-राजस्व निर्धारण के तरीके क्या हैं?
3. भारत में राज्य सरकारों के वित्त में हाल की प्रवृत्तियों की जाँच कीजिए।
4. भारत में राज्य सरकारों की आय के प्रमुख साधन कौन-कौन से हैं? क्या वे पर्याप्त हैं? राज्य वित्त में सुधार के सुझाव दीजिए।
5. क्या मद्य निषेध की नीति लागू कर देनी चाहिए? तर्क सहित अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिए। विभिन्न राज्यों पर इस नीति के लागू होने से क्या प्रभाव पड़ेंगे?

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

- |                 |                       |          |                 |
|-----------------|-----------------------|----------|-----------------|
| 1. विधायी सत्ता | 2. केंद्र तथा राज्यों | 3. साधन  | 4. भू-बंदोबस्त। |
| 5. (अ)          | 6. (ब)                | 7. (स)   | 8. सत्य         |
| 9. असत्य        | 10. सत्य              | 11. सत्य | 12. असत्य।      |



नोट

**29.16 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)**

---



पुस्तकें

1. भारतीय लोक वित्त प्रशासन—मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
2. मनी बैंकिंग एंड पब्लिक फाइनेंस—सुंदरम वी, अल्फा पब्लि., 2009।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस—नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस—सुप्रीत सिंह एंड अनिल के. गुप्ता, डोमीनेंट, 2012।

नोट

## इकाई-30: स्थानीय वित्त (Local Finance)

### अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

30.1 नगर पालिकाएँ (Municipalities)

30.2 नगर निगम (Municipal Corporation)

30.3 ग्राम पंचायतें, पंचायत समितियों व जिला परिषदों के वित्त (Finances of Village Panchayats, Panchayat Committies and District Councils)

30.4 ग्राम पंचायतें (Village Panchayats)

30.5 पंचायत समितियाँ (Panchayat Samities)

30.6 जिला परिषद् (Zila Parishad)

30.7 सारांश (Summary)

30.8 शब्दकोश (Keywords)

30.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

30.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

### उद्देश्य (Objectives)

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे—

- नगरपालिका की आय के स्रोत, वित्तीय स्थिति आदि संबंधी जानकारी हेतु।
- नगर निगम द्वारा लगाए जाने वाले कर को जानने में।
- ग्राम पंचायतें, पंचायत समितियों व जिला परिषदों के वित्त संबंधी बातों को समझने के लिए।

### प्रस्तावना (Introduction)

केन्द्र तथा राज्यों के वित्त के सम्बन्धित समस्याओं का विवेचन पीछे किया जा चुका है। अब हम उन समस्याओं का अध्ययन करेंगे जिनका सम्बन्ध स्थानीय स्वशासन, अर्थात् नगरपालिकाओं (municipalities), नगर निगमों (municipal corporation), जिला परिषदों व ग्राम पंचायतों के वित्त से है। यह अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि केन्द्र व राज्य सरकारों का अन्तिम उद्देश्य यही होता है कि सन्तुलित एवं समन्वित तरीके से स्थानीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की जाए। यद्यपि केन्द्रीय, राज्यीय आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं किन्तु इसके बीच अन्तर उनकी सन्तुष्टि के उपायों के बारे में होता है उनके उद्देश्यों के बारे में नहीं। इस सम्बन्ध में अन्तिम उद्देश्य

**नोट**

यही होता है कि उपलब्ध साधनों द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार की जाए ताकि जनता को अधिकतम आर्थिक व सामाजिक कल्याण की प्राप्ति हो सके। जो आवश्यकताएँ (needs) स्थानीय प्रकृति की होती हैं और जिनकी पूर्ति सामान्यतया स्थानीय स्वशासन द्वारा ही की जाती हैं उनका सम्बन्ध स्थानीय सड़कों के निर्माण व रखरखाव, विद्युत तथा जलपूर्ति की व्यवस्था, सफाई तथा प्राइमरी शिक्षा की व्यवस्था आदि से होता है। परन्तु इन कार्यों को कारगर ढंग से उत्पन्न करने के लिए वित्त की एक कुशल एवं सक्षम व्यवस्था का होना भी अत्यन्त आवश्यक होता है। अतः स्थानीय स्वशासन या स्थानीय सरकारों को कुछ कर तथा आय के कुछ अन्य साधन सौंप दिये जाते हैं। अब हम इन स्थानीय सरकारों के साधनों एवं कार्यों का ही विवेचन करेंगे।

**30.1 नगरपालिकाएँ (Municipalities)**

नगरपालिकाओं के महत्वपूर्ण कार्य हैं—स्थानीय सड़कों का निर्माण व उनकी देखभाल, प्रकाश की व्यवस्था, जलपूर्ति, सड़कों व गलियों की सफाई, अस्पतालों, औषधालयों व पशु-चिकित्सालय का रख-रखाव, नालियों की व्यवस्था व सफाई, टीके लगाना, प्राइमरी शिक्षा की व्यवस्था, पार्कों व बगीचों का निर्माण, घृणोत्पादक व्यवसायों का नियन्त्रण, तथा मेलों व प्रदर्शनियों का संगठन आदि। किन्तु ये सभी कार्य नगरपालिकाओं द्वारा राज्य सरकार के नियन्त्रण में ही सम्पन्न किये जाते हैं।

**आय के स्रोत (Sources of Revenue)**

नगरपालिकाओं की आय के मुख्य स्रोत ये हैं—कराधान, राज्य सरकारों से मिलने वाले सहायक अनुदान, राज्य सरकारों द्वारा लगाये तथा एकत्र किये जाने वाले करों में हिस्से तथा नगरपालिका के उद्यमों से प्राप्त होने वाली कर-इतर आय (non-tax revenue)।

**नगरपालिकाओं द्वारा लगाये जाने वाले कर (Tax Levied by Municipalities)**

विभिन्न राज्यों में नगरपालिकाओं द्वारा लगाये जाने वाले मुख्य कर निम्नलिखित हैं—

- (1) सम्पत्ति पर कर; खुली भूमि सहित भवनों व भूमियों पर कर, सामान्य कर व सेवा कर, सम्पत्तियों के हस्तान्तरण पर कर।
- (2) वस्तुओं पर कर, चुँगी तथा सीमान्त पर।
- (3) वैयक्तिक कर, वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं तथा रोजगारों पर कर, परिस्थितियों व सम्पत्ति पर कर, यात्रियों पर सीमान्त कर जिसमें तीर्थ यात्री कर भी सम्मिलित हैं।
- (4) वाहनों तथा पशुओं पर कर।
- (5) थियेटर तथा प्रदर्शन या तमाशा कर।



**नोट्स** सभी कार्य नगरपालिकाओं द्वारा राज्य सरकार के नियन्त्रण में ही सम्पन्न किये जाते हैं।

**वित्तीय स्थिति (Financial Position)**

कराधान जाँच आयोग ने विभिन्न राज्यों में नगरपालिकाओं के कुल आय तथा व्यय का विश्लेषण किया और यह विचार व्यक्त किया कि नगरपालिकाओं की आय में जो वृद्धि हो रही है वह महत्वपूर्ण नागरिक सेवाओं पर किये जाने वाले खर्च की वृद्धि को देखते हुए अत्यन्त अपर्याप्त है। आयोग ने यह भी कहा कि लगभग सभी राज्यों में नगरपालिकाओं के बजट शायद ही कभी सन्तुलित होते हों। यही नहीं, नगरपालिकाओं की औसत आय तथा व्यय में विभिन्न राज्यों में भारी अन्तर पाये जाते हैं। इनके व्यय का स्तर भी काफी नीचा है और ऐसा इस कारण है क्योंकि नगरपालिकाओं की आय का स्तर नीचा है।

## नोट

वास्तव में स्थिति यह है कि साधनों की कमी के कारण नगरपालिकाएँ अपनी अनिवार्य सेवाओं तक को सम्पन्न करने में समर्थ नहीं हैं। जल-पूर्ति तथा जल निकासी, सफाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य, डॉक्टरी सहायता तथा सड़कों का निर्माण व रखरखाव आदि ऐसी सेवाएँ हैं, प्रत्येक नगर में जिनके अधिकाधिक विस्तार की आवश्यकता होती है। किन्तु वास्तविकता यह है कि बढ़ते हुए प्रस्थापना व्यय तथा बढ़ती हुई मजदूरियों व सामग्री की लागतों के सन्दर्भ में, नगरपालिकाएँ इन सेवाओं को युद्ध-पूर्व के स्तरों तक पर बनाये रखने में भी कठिनाई से ही समर्थ हो पाती हैं। कराधान जाँच आयोग ने ये विचार 20 वर्ष पूर्व प्रकट किये थे किन्तु आज की स्थिति में भी यह बात काफी सही उतरती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विगत 20 वर्षों में नगरपालिकाओं के वित्त में कुछ सुधार हुआ है परन्तु यह अन्तर मात्रा का है, किस्म का नहीं। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि नगरपालिकाओं को पर्याप्त साधन दिये जाने चाहिए, फिर ये साधन चाहे अनुदानों के रूप में हों अथवा सरकार के कुछ करों में उनको दिये जाने वाले हिस्से के रूप में।

**आयोग की सिफारिशें**—कराधान जाँच आयोग ने यह सिफारिश की कि निम्नलिखित करों का उपयोग पूर्णतया स्थानीय निकायों (local bodies) द्वारा किया जाना चाहिए—

- (1) भूमियों और भवनों पर कर।
- (2) किसी स्थानीय क्षेत्र में उपभोग, प्रयोग अथवा बिक्री के लिए आने वाले माल पर कर, जिसे आमतौर पर चूँगी कहा जाता है।
- (3) यन्त्र-चालित गाड़ियों को छोड़कर अन्य वाहनों पर कर।
- (4) पशुओं एवं नावों पर कर।
- (5) वृत्ति, व्यापार, आजीविका तथा रोजगार पर कर।
- (6) समाचार-पत्रों में छपने वाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर।

उपर्युक्त करों में लगभग सभी कर आजकल नगरपालिकाओं द्वारा लगाये जाते हैं, परन्तु इन करों से प्राप्त होने वाली आय बहुत थोड़ी होती है। इसका मुख्य कारण करों की दरों का नीचा होना है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि नगरपालिकाओं को चाहिए कि वे अपने करों की दरों में वृद्धि करें। इसके साथ ही, नगरपालिकाओं द्वारा अपनायी जाने वाली कर-प्रणाली आरोही प्रकृति की होनी चाहिए और किसी भी स्थिति में इसके प्रभाव अवरोही (regressive) नहीं होने चाहिए। यही नहीं, एक बात यह भी होनी चाहिए कि नगरपालिकाओं की आय के स्रोतों की अत्यन्त स्पष्ट रूप से व्याख्या की जानी चाहिए ताकि अतिव्यापन (overlapping) तथा करों के क्षेत्र के असमन्वित (uncoordinated) रूप से बचा जा सके।



क्या आप जानते हैं? विगत 20 वर्षों में नगरपालिकाओं के वित्त में कुछ सुधार हुआ है।

## 30.2 नगर निगम (Municipal Corporation)

निगम एक भिन्न प्रकार का नगर संगठन है। नगरपालिकाओं (municipalities) के मुकाबले नगर निगमों के कार्य, सामान्यतः अधिक व्यापक होते हैं और उनके अधिकार अधिक विस्तृत। इन्हें न केवल कर लगाने की ही विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, अपितु बजट के निर्माण एवं नगरपालिका सम्बन्धी कार्यों के मामले में भी इन्हें काफी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और कुछ मामलों में तो ये राज्य सरकार के नियन्त्रण से पूर्णतया मुक्त होते हैं। किन्तु नगर निगम और नगरपालिका में जो अन्तर विशेष रूप से पाया जाता है, वह है अधिशासी कार्यों (executive functions) से आयोजित कार्यों (deliberate functions) का लगभग पूर्णतया पृथक् होना तथा सम्पूर्ण कार्यकारी सत्ता उस नगरपाल अथवा म्यूनिसिपल कमिश्नर में निहित होना, जोकि चुने हुए निकाय से अपेक्षाकृत

**नोट**

स्वतन्त्र होता है।<sup>1</sup> जहाँ तक नगर निगमों के ढाँचे, संगठन तथा स्वरूप का सम्बन्ध है, वह सभी राज्यों में न्यूनाधिक रूप में एक समान है।

**नगर निगमों द्वारा लगाये जाने वाले कर (Taxes Levied by Municipal Corporations)**

नगर निगमों के कर लगाने की शक्तियाँ कुछ विशिष्ट करों तक ही सीमित हैं। इनका उल्लेख पृथक्-पृथक् रूप से करना उचित होगा। उदाहरण के लिए, बम्बई नगर निगम जिन करों को लगा सकती है, वे हैं—सम्पत्ति कर, सेवा कर, नगर शुल्क, वाहनों और पशुओं पर कर, थियेटर कर, शिक्षा उपकर (education cess) तथा एक लघु कर जिसे कुत्ता कर कहा जाता है। मद्रास नगर निगम इन करों को लगा सकती है—सम्पत्ति कर, वृत्ति, व्यापार, आजीविका व रोजगार कर, कम्पनियों पर कर, उपभोग, प्रयोग या बिक्री के लिए नगर में लाये जाने वाले काष्ठ पर कर, सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर कर, पशुओं तथा गाड़ियों पर कर और विज्ञापनों पर कर। कलकत्ता नगर निगम (एकीकृत दर से) सम्पत्ति कर, वृत्ति व्यापार तथा आजीविका पर कर तथा पशुओं व गाड़ियों पर कर लगा सकती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नगर निगमों की कर लगाने की शक्तियाँ राज्य-राज्य में और निगम-निगम में भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त, कर लगाने के तरीके में उनमें भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण के लिए, बम्बई नगर निगम अधिनियम तथा मद्रास नगर निगम अधिनियम में सम्पत्ति करों को तो अधिकतम और न्यूनतम, दोनों ही दरों का और अन्य करों की केवल न्यूनतम दरों का उल्लेख है, जबकि कलकत्ता नगर निगम अधिनियम में सम्पत्ति करों की तो अधिकतम दरों का ही उल्लेख किया गया है। किन्तु विभिन्न अधिनियमों (Acts) में उल्लेखित इन अधिकतम एवं न्यूनतम सीमाओं के अधीन रहते हुए, इन निगमों को इस बात की स्वतन्त्रता है कि वे अपनी इच्छानुसार कर लगाएँ अथवा उनमें संशोधन करें। इसके लिए उन्हें सरकारों की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती।

**वित्तीय स्थिति (Financial Position)**

म्यूनिसिपल सेवाओं पर व्यय का स्तर नगरपालिकाओं के मुकाबले नगर निगमों में स्वभावतः ही ऊँचा होता है। ऐसा कुछ सीमा तक इसलिए भी होता है क्योंकि नगर निगमों के पास कर-साधन अधिक होते हैं। किन्तु इसके साथ ही, ऐसे नगरों में युद्ध-काल में तथा युद्ध-काल के बाद भी औद्योगीकरण के कारण जनसंख्या में जो अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि हुई है, उसने नगर नियोजन (town planning) गन्दी बस्तियों की सफाई, गृह-निर्माण, जल-पूर्ति एवं जन-निकासी आदि की विशेष आवश्यकताओं को जन्म दिया है। किन्तु अनेक उदाहरण ऐसे हैं जिनमें कि नगर निगमों के लिए यह सम्भव नहीं होता कि अपने पास उपलब्ध वित्तीय साधनों से वे इन बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था कर सकें।

**30.3 ग्राम पंचायतें, पंचायत समितियों व जिला परिषदों के वित्त (Finances of Village Panchayats, Panchayat Committies and District Councils)**

जहाँ तक ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों तथा जिला परिषदों के वित्त का प्रश्न है, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से इन संस्थाओं की कर लगाने की शक्ति तथा रीति में एवं उनके प्रशासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। ये संस्थाएँ अब एक-दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं तथा योजनाओं (plans) के निर्देशों के अनुसार एक-दूसरे के साथ तालमेल एवं समन्वय रखते हुए कार्य करती हैं। यही नहीं, इन्हें अपने कार्यों, वित्तीय कार्यवाहियों एवं वित्तीय प्रशासन के मामलों में काफी स्वायत्तता तथा स्वाधीनता भी प्राप्त हो गई है। अन्य शब्दों में, इन संस्थाओं को अब कराधान के माध्यम से साधनों को गतिशील करने में तथा गतिशील किये गये साधनों का निर्धारित रीति से उपयोग करने के मामलों में काफी स्वतन्त्रता प्राप्त है।

**योजनाओं के लक्ष्य (Objectives in Plans)**

**प्रथम योजना में**, पंचायतों का महत्त्व व उसकी उपयोगिता का इन शब्दों में उल्लेख किया गया है, “पंचायतों को ग्रामीण क्षेत्रों में अपरिहार्य योगदान (indispensable role) करना है।”<sup>2</sup> **द्वितीय योजना में**, “स्थानीय नियोजन

1. Report of the Taxation Enquiry Commission 1953-54, page 349.
2. First Plan, page 165.

## नोट

के दृष्टिकोण से पंचायतों पर जोर दिया गया और कहा गया कि स्थानीय विकास तथा निर्माण के कार्यक्रमों में स्थानीय समुदायों को ही ऐसी योजनाओं का प्रस्ताव रखना चाहिए जिन्हें कि वे सरकार की सहायता एवं स्वयं अपने श्रम से पूरा कर सकें। यह अनुभव किया गया है कि जब तक ग्रामीण नियोजन के ऐसे विस्तृत कार्यक्रम नहीं अपनाये जायेंगे जिनमें कि सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय की जरूरतों को दृष्टिगत रखा गया हो, तब तक कमजोर वर्ग के लोगों, जैसे काशतकारों, किसानों, भूमिहीन श्रमिकों तथा कारीगरों आदि को सरकार द्वारा प्रदान की गई सहायता से यथेष्ट लाभ नहीं पहुँच सकता है।”

### लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation)

ग्रामीण स्तर पर श्रेष्ठतर नियोजन, अच्छे प्रशासन तथा मानवीय साधनों को गतिशील करने के लिए लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण के कार्यक्रम को लागू करने की दिशा में यथेष्ट पग उठाये गये हैं। **तृतीय योजना में**, इस कार्यक्रम के महत्त्व का इन शब्दों में उल्लेख किया गया है—“ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक विकास आन्दोलन (Community Development Movement) के अन्तर्गत एक नये कार्यक्रम का श्रीगणेश हुआ है जिसे **पंचायत राज** अथवा **लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण** कहा जाता है। ग्रामीण, ब्लॉक तथा जिला स्तरों पर विकास कार्यों का उत्तरदायित्व ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों को सौंपा गया है और इस सम्बन्ध में उन्हें काफी शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। इसे ग्रामीण विकास के प्रतिरूप में तथा जिले के प्रशासन के ढाँचे में होने वाला एक क्रान्तिकारी परिवर्तन कहा जा सकता है।”

इन संस्थाओं का महत्त्व इस तथ्य से भी प्रकट होता है कि राज्य सरकार के मार्गदर्शन एवं पर्यवेक्षण के अधीन, ग्रामीण कार्यक्रमों को लागू करने का उत्तरदायित्व अब खण्ड विकास समिति (Block Development Samiti) पर है जो कि गाँवों में पंचायतों के साथ तथा जिला स्तर पर जिला परिषदों के साथ तालमेल से कार्य करती है। इस तथ्य का एक और भी महत्त्वपूर्ण पहलू है जिस पर कि तत्कालीन पंचायत राज व सहकारिता मन्त्री श्री एम. के. डे. ने जोर दिया था, और वह यह कि पंचायत राज का अर्थ प्रशासन के विकेन्द्रीकरण से नहीं है, अपितु आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण से भी है। इसलिए कहा गया है कि ‘**लोकतन्त्रीय ढाँचों**’ के साथ तालमेल रखते हुए **प्रशासन का विकेन्द्रीकरण** ही पंचायत राज है। प्रशासन के विकेन्द्रीकरण की वर्तमान व्यवस्था बलवन्त राय मेहता समिति की सिफारिशों पर आधारित है। समिति की महत्त्वपूर्ण सिफारिशें निम्नलिखित हैं—

- (1) स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का एक त्रिस्तरीय ढाँचा हो जो ग्राम से जिले तक फैला हो और प्रत्येक स्तर की संस्थाएँ शरीर के विभिन्न अंगों के समान परस्पर सम्बन्धित हों।
- (2) इन संस्थाओं या निकायों (bodies) को शक्तियों तथा उत्तरदायित्वों का समुचित स्थानान्तरण किया गया जाए।
- (3) उन्हें पर्याप्त मात्रा में साधन (resources) भी सौंपे जाएँ।
- (4) इन स्तरों के लिए बनाये जाने वाले सभी विकास कार्यक्रम इन संस्थाओं के द्वारा ही चालू किए जाएँ।



टास्क प्रथम योजना के क्या लक्ष्य थे?

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. लोकतन्त्रीय ढाँचों के साथ तालमेल रखते हुए प्रशासन का विकेन्द्रीकरण ही ..... राज है।
2. ग्रामीण, ब्लॉक तथा जिला स्तरों पर विकास कार्यों का उत्तरदायित्व ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों एवं ..... को सौंपा गया है।
3. म्यूनिसिपल सेवाओं पर व्यय का स्तर ..... के मुकाबले नगर निगमों में स्वभावतः ही ऊँचा होता है।

## नोट

**30.4 ग्राम पंचायतें (Village Panchayats)****कार्य (Functions)**

ग्राम पंचायतों के कार्यों को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है—अनिवार्य तथा ऐच्छिक। इनके कार्यों का क्षेत्र बड़ा व्यापक है जिसमें नगर-प्रशासन तथा सांस्कृतिक, सामाजिक, कृषि व विकास सम्बन्धी क्रियाएँ आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त, पंचायत राज अधिनियमों में एक ऐसा प्रावधान (provision) दिया हुआ है जिसके अन्तर्गत राज्य सरकार पंचायतों को इस बात के लिए अधिकृत कर सकती है कि वे कुछ अन्य अतिरिक्त कार्यों को भी सम्पन्न कर सकें।

**अनिवार्य या आवश्यक कार्य (Obligatory Functions)**—अनिवार्य या आवश्यक कार्यों में सामान्यतः ये क्रियाएँ सम्मिलित की जाती हैं—सार्वजनिक सड़कों का निर्माण, उनकी मरम्मत, रख-रखाव, सफाई तथा उन पर प्रकाश की व्यवस्था, डॉक्टरों सहायता, सफाई, छूत की बीमारियों को दूर करने व फैलने से रोकने के लिए रोगहर तथा रोग निवारक उपाय (curative and preventive measures) अपनाना, जन्म, मृत्यु तथा विवाहों का पंजीकरण (registration), लड़कों तथा लड़कियों के लिए ग्रामीण प्राइमरी स्कूल की स्थापना तथा उनका रख-रखाव, पीने, कपड़े धोने तथा नहाने के पानी की व्यवस्था करने के लिए सार्वजनिक कुओं, तालाबों व पोखरों का निर्माण, मरम्मत तथा रख-रखाव (maintenance), मातृत्व तथा शिशु कल्याण तथा बाढ़ से सुरक्षा के लिए, दीवारों, डौलों, मेढ़ों, बाँधों तथा ऊँचे चबूतरों पर निर्माण, रख-रखाव व मरम्मत।

**ऐच्छिक कार्य (Discretionary Functions)**—ग्राम पंचायत अपने क्षेत्र में अनेक ऐच्छिक कार्यों की भी व्यवस्था कर सकती है। ये ऐच्छिक कार्य हैं—सार्वजनिक सड़कों के किनारे पेड़ लगाना तथा उनकी देखभाल करना, पशुओं के उन्नत प्रजनन (improved breeding) तथा चिकित्सा की व्यवस्था तथा उनकी बीमारियों की रोकथाम, सहकारिता का विकास, उन्नत बीजों व उपकरणों के भण्डारों की स्थापना, पुस्तकालयों व वाचनालयों की स्थापना व देखभाल, खाद व कूड़े-करकट के संग्रह व वितरण का नियमन, विभिन्न समुदायों के बीच सामाजिक मेलजोल, तथा प्रेम बढ़ाने के लिए संगठनों का निर्माण।

**साधन (Resources)**—सभी राज्यों में ग्राम पंचायतों को कुछ करों को लगाने की शक्ति प्रदान की गई है, यद्यपि राज्य-राज्य के बीच इस सम्बन्ध में काफी विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। पंचायतों की आय के मुख्य स्रोत हैं—सम्पत्ति कर, भूराजस्व या लगान पर उपकर (cess), वाहनों पर कर तथा व्यवसाय कर। ये कर सामान्यतः अनिवार्य ही होते हैं। पंचायतों को कुछ ऐसे अन्य करों व शुल्कों को भी लगाने का अधिकार दे दिया जाता है, जैसे कि चुँगी, दुकानों पर कर, विश्राम, गृहों पर शुल्क, जल निकासी शुल्क, रोशनी, शुल्क, जल शुल्क आदि। किन्तु ऐसे कर वहाँ लगाये जाते हैं जहाँ कि इनसे सम्बन्धित सेवाएँ ग्राम पंचायतों द्वारा उपलब्ध कराई जा रही हों।

**30.5 पंचायत समितियाँ (Panchayat Samities)**

पंचायत राज व्यवस्था में बीच के स्तर पर पंचायत समिति का गठन किया जाता है। गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में यह संस्था खण्ड-स्तर (block level) पर बनाई जाती है। इन राज्यों में मध्यवर्ती संस्था का निर्माण ताल्लुक स्तर पर किया जाता है।

आन्ध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब और राजस्थान में इन संस्था को पंचायत समिति कहा जाता है। असम राज्य में इसे आंचलिक पंचायत, मध्य प्रदेश में जनपद पंचायत, तमिलनाडु में पंचायत यूनियन कौंसिल, उत्तर प्रदेश में क्षेत्र समिति तथा पश्चिमी बंगाल में आंचलिक परिषद् कहा जाता है। ताल्लुक स्तर की संस्था को गुजरात में ताल्लुक पंचायत और कर्नाटक में ताल्लुक विकास बोर्ड कहा जाता है।

इसी प्रकार, इस समिति के सभापति को विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। उत्तर प्रदेश में इस समिति के सभापति को प्रमुख कहा जाता है।

## नोट

**कार्य (Functions)**

पंचायत समितियों को सभी राज्यों में विकाय कार्य सौंपे जाते हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को लागू करने के लिए इन्हें अप्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराया जाता है। इसके अतिरिक्त, इन समितियों को ब्लॉक या ताल्लुक के लिए विकास योजनाओं को बनाने तथा उनको लागू करने का काम भी सौंपा जाता है। प्राइमरी शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई तथा यातायात व संचार साधनों जैसे क्षेत्रों में इन समितियों को विशिष्ट कार्यकारी उत्तरदायित्व (specific executive responsibilities) सौंपे जाते हैं। गुजरात में तो ये समितियाँ पंचायतों का निरीक्षण भी करती हैं और वहाँ इन्हें यह अधिकार होता है कि पंचायतों के बजटों की छानबीन कर सकें तथा अपने सुझाव दे सकें। किन्तु आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, उड़ीसा, राजस्थान, महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में समितियाँ ग्राम पंचायत के बजटों का अनुमोदन करती हैं।

उत्तर प्रदेश में, क्षेत्र समिति को जो उत्तरदायित्व सौंपे जाते हैं, ये हैं—प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना व रख-रखाव, मातृत्व व शिशु-कल्याण, चिकित्सालय, औषधालय, पशु चिकित्सालय, प्राइमरी स्कूल, जल निकासी का कार्य, लघु सिंचाई कार्य, जल पूर्ति, ब्लॉक के लिए योजनाओं का निर्माण, गाँव सभाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं की समीक्षा, कृषि, पशुपालन, सहकारिता व कुटीर उद्योगों का विकास, पंचायतों के बजटों का अनुमोदन तथा पंचायतों का सामान्य निरीक्षण आदि।

**वित्त (Finances)**

पंचायत समिति को जो धन प्राप्त होता है उसके स्रोत हैं—ब्लॉक के बजट से प्राप्त निधियाँ (Funds), राज्य सरकार एजेन्सी के कार्य के रूप में जो विशिष्ट कार्यक्रम कार्यान्वयन के लिए पंचायत समिति को सौंपती हैं उनके लिए निर्धारित धन, भूराजस्व या मालगुजारी में हिस्सा तथा राज्य सरकार द्वारा किये जाने वाले अनुदान। इसके अतिरिक्त, कुछ राज्यों में पंचायत समितियों को कुछ करों के लगाने के भी अधिकार प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए, गुजरात राज्य में समिति, कुछ सीमाओं के अधीन, वे सभी कर लगा सकती है जिन्हें लगाने का अधिकार ग्राम पंचायत को होता है।

उत्तर प्रदेश में समिति की आय के महत्वपूर्ण स्रोत हैं अनुदान (grants) तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रमों से अंशदान। इसके अतिरिक्त, समिति विकास कार्यक्रमों को निर्धारित रीति से लागू करने के लिए राज्य सरकार से ऋण भी ले सकता है।

समिति की आय के कुछ कर-स्तर स्रोत भी होते हैं, जैसे कि दलालों (brokers) पर लाइसेंस शुल्क, वाहनों पर मार्ग-कर (tolls), बाजार व मेलों में बेचे जाने वाले पशुओं पर कर, दुकानदारों से बाजार-शुल्क (market fee) कृषि व औद्योगिक प्रदर्शनी शुल्क, समिति की सम्पत्ति के उपयोग पर शुल्क आदि।

**30.6 जिला परिषद् (Zila Parishad)**

पंचायत राज के तृतीय स्तर की संस्था असम को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में जिला स्तर पर स्थापित की गई है किन्तु असम में यह उपमण्डल या परगना (sub-division) स्तर पर है। तमिलनाडु राज्यों में, जिला स्तर की संस्था का निर्माण करने के उद्देश्य से 13 जिलों में 22 विकास जिलों के रूप में सीमाबन्दी कर दी गई है। जिला स्तर की संस्था को आन्ध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में **जिला परिषद्** कहा जाता है। किन्तु गुजरात में डिस्ट्रिक्ट पंचायत, मध्य प्रदेश में जिला पंचायत तथा तमिलनाडु व कर्नाटक में जिला विकास कौंसिल (District Development Council) कहा जाता है। असम में उपमण्डल या परगना स्तर की संस्था को महकुमा परिषद् (Mahkuma Parishad) कहा जाता है।

जिलों की परिषद् के चेयरमैन को आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा, पंजाब और पश्चिमी बंगाल में “चेयरमैन” कहा जाता है तथा असम, गुजरात, महाराष्ट्र व कर्नाटक में “प्रेजीडेन्ट” और बिहार व उत्तर प्रदेश में “अध्यक्ष” कहा जाता है।



## नोट

**विभिन्न राज्यों में कार्य (Functions in Different States)**

कर्नाटक तथा तमिलनाडु में जिला परिषद् एक समन्वयकारी संस्था का निकाय है जो कि पंचायत समितियों की कार्यप्रणाली की देखभाल करती है और विकास कार्यक्रमों को लागू करने के बारे में सरकार को सलाह देती है। इन कार्यों के अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश में, जिला परिषद् को माध्यमिक, व्यावसायिक व औद्योगिक स्कूलों की स्थापना, रख-रखाव एवं उसके विस्तार के सम्बन्ध में विशिष्ट अधिशासी कार्य भी सम्पन्न करने होते हैं। महाराष्ट्र में, जिला परिषद् पंचायत राज संस्थाओं में सबसे अधिक शक्तिशाली होती है तथा योजना एवं विकास कार्यों को करने व सरकार को सलाह देने के अलावा अनेक क्षेत्रों में कई अधिशासी कार्य (executive functions) भी सम्पन्न करती है। गुजरात, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में भी, जिला परिषदों को अनेक क्षेत्रों में प्रशासनिक कार्य सौंपे जाते हैं। असम, बिहार व उड़ीसा में यह पंचायत समितियों के बजट का भी अनुमोदन करती है। शेष राज्यों में जिला परिषद् में कोई विशेष अधिशासी कार्य नहीं करने होते और यहाँ केवल निरीक्षण एवं समन्वय करने वाली संस्था मात्र ही है।

**उत्तर प्रदेश में कार्य (Functions in Uttar Pradesh)**

उत्तर प्रदेश में तथा अन्य अधिकांश राज्यों में, जिला परिषद् को निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य सौंपे जाते हैं—

- (1) मेलों, त्यौहारों व सड़कों आदि का वर्गीकरण।
- (2) ग्राम पंचायतों और क्षेत्र समितियों या ब्लॉक समितियों का सामान्य निरीक्षण व देखभाल।
- (3) सार्वजनिक सड़कों, पुलों, मानवीय एवं पशु चिकित्सालयों तथा जूनियर हाई स्कूल तक के स्कूलों का निर्माण तथा रखरखाव।
- (4) प्राइमरी शिक्षा का प्रशासन तथा संचालन और पुस्तकालयों का निर्माण तथा रख-रखाव।
- (5) जलपूर्ति।
- (6) जिला योजनाओं को तैयार करना तथा क्षेत्र समिति या ब्लॉक समिति की योजनाओं की समीक्षा व उनके साथ तालमेल स्थापित करना।

**आय के स्रोत (Sources of Income)**

जिला परिषदों के आय के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं—

- (1) हैसियत कर (Taxes on circumstances) तथा सम्पत्ति व अन्य ऐसे कर, जिन्हें राज्य सरकार परिषद् को लागू करने के लिए अधिकृत करे।
- (2) राज्य सरकारों से मिलने वाले अनुदान (grants)।
- (3) मार्ग कर तथा शुल्क आदि, जो कि जिला परिषद् द्वारा लागू किये जाएँ।
- (4) सम्पत्ति से आय तथा राज्य सरकार से मिलने वाले कर्ज।
- (5) स्थानीय विकाय के निर्माण-कार्यों से सम्बन्धित एवं केन्द्र द्वारा प्रेरित योजनाओं व कार्यक्रमों के लिए अनुदान।
- (6) राज्य की गैर-योजना सहायता।
- (7) मेलों तथा प्रदर्शनियों से आय।
- (8) भूमि उपकर (land cesses)।

ये जिला परिषदों की आय के प्रमुख स्रोत हैं। कुछ राज्यों में, ऐसी व्यवस्था है कि इन प्राप्तियों का कुछ भाग पंचायतों को दे दिया जाता है। कुछ राज्यों में, पंचायतों को ही इन करों को लगाने की शक्ति प्राप्त है।

भूमि उपकर भूराजस्व (land revenue) पर लगाया जाने वाला एक प्रभार (charge) है जिनको राज्य सरकार स्थानीय निकायों (local bodies) के लिए एकत्र करती हैं उत्तर प्रदेश में, जमींदारी उन्मूलन के बाद भूमि उपकर

## नोट

भूराजस्व में विलीन कर दिया गया था और इसके बदले में राज्य सरकार द्वारा जिला परिषदों को क्षतिपूर्ति अनुदान दिये गये थे। पश्चिमी बंगाल व बिहार में यह उपकर भूमि के वार्षिक लगान के आधार पर लगाया जाता है। किन्तु इस सबके बावजूद इस विषय में दो मत नहीं हैं कि स्थानीय निकायों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों एवं उत्तरदायित्वों को देखते हुए इसके साधन (resources) अपर्याप्त हैं।

### स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

#### बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. ग्राम पंचायतों के कार्यों को मोटे तौर पर कितने भागों में बाँटा जा सकता है?
 

(अ) एक	(ब) दो
(स) तीन	(द) चार।
5. ग्राम पंचायत अपने क्षेत्र में किस प्रकार के कार्यों की भी व्यवस्था कर सकती है?
 

(अ) अनैच्छिक	(ब) ऐच्छिक
(स) अनिवार्य	(द) इनमें से कोई नहीं।
6. जिला परिषद के चेयरमैन को महाराष्ट्र में क्या कहा जाता है?
 

(अ) चेयरमैन	(ब) अध्यक्ष
(स) प्रेजीडेंट	(द) उपरोक्त सभी।

### 30.7 सारांश (Summary)

- नगरपालिकाओं की आय के मुख्य स्रोत ये हैं—कराधान, राज्य सरकारों से मिलने वाले सहायक अनुदान, राज्य सरकारों द्वारा लगाये तथा एकत्र किये जाने वाले करों में हिस्से तथा नगरपालिका के उद्यमों से प्राप्त होने वाली कर-इतर आय (non-tax revenue)।
- कराधान जाँच आयोग ने विभिन्न राज्यों में नगरपालिकाओं के कुल आय तथा व्यय का विश्लेषण किया और यह विचार व्यक्त किया कि नगरपालिकाओं की आय में जो वृद्धि हो रही है वह महत्त्वपूर्ण नागरिक सेवाओं पर किये जाने वाले खर्च की वृद्धि को देखते हुए अत्यन्त अपर्याप्त है।
- निगम एक भिन्न प्रकार का नगर संगठन है। नगरपालिकाओं (municipalities) के मुकाबले नगर निगमों के कार्य, सामान्यतः अधिक व्यापक होते हैं और उनके अधिकार अधिक विस्तृत। इन्हें न केवल कर लगाने की ही विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, अपितु बजट के निर्माण एवं नगरपालिका सम्बन्धी कार्यों के मामले में भी इन्हें काफी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और कुछ मामलों में तो ये राज्य सरकार के नियन्त्रण से पूर्णतया मुक्त होते हैं।
- म्यूनिसिपल सेवाओं पर व्यय का स्तर नगरपालिकाओं के मुकाबले नगर निगमों में स्वभावतः ही ऊँचा होता है। ऐसा कुछ सीमा तक इसलिए भी होता है क्योंकि नगर निगमों के पास कर-साधन अधिक होते हैं।
- जहाँ तक ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों तथा जिला परिषदों के वित्त का प्रश्न है, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से इन संस्थाओं की कर लगाने की शक्ति तथा रीति में एवं उनके प्रशासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। ये संस्थाएँ अब एक-दूसरे से सम्बन्धित रहती हैं तथा योजनाओं (plans) के निर्देशों के अनुसार एक-दूसरे के साथ तालमेल एवं समन्वय रखते हुए कार्य करती हैं।
- **प्रथम योजना में**, पंचायतों का महत्त्व व उसकी उपयोगिता का इन शब्दों में उल्लेख किया गया है, “पंचायतों को ग्रामीण क्षेत्रों में अपरिहार्य योगदान (indispensable role) करना है।”
- ग्राम पंचायतों के कार्यों को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है—अनिवार्य तथा ऐच्छिक। इनके कार्यों का क्षेत्र बड़ा व्यापक है जिसमें नगर-प्रशासन तथा सांस्कृतिक, सामाजिक, कृषि व विकास सम्बन्धी क्रियाएँ आदि सम्मिलित हैं।

## नोट

- पंचायत राज व्यवस्था में बीच के स्तर पर पंचायत समिति का गठन किया जाता है। गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में यह संस्था खण्ड-स्तर (block level) पर बनाई जाती है। इन राज्यों में मध्यवर्ती संस्था का निर्माण ताल्लुक स्तर पर किया जाता है।
- पंचायत राज के तृतीय स्तर की संस्था असम को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में जिला स्तर पर स्थापित की गई है किन्तु असम में यह उपमण्डल या परगना (sub-division) स्तर पर है। तमिलनाडु राज्यों में, जिला स्तर की संस्था का निर्माण करने के उद्देश्य से 13 जिलों में 22 विकास जिलों के रूप में सीमाबन्दी कर दी गई है। जिला स्तर की संस्था को आन्ध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में **जिला परिषद्** कहा जाता है।

### 30.8 शब्दकोश (Keywords)

- अधिनियम (Act)—विधान के अंतर्गत बनाया गया नियम।
- निकाय (Body)—संस्था।

### 30.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नगरपालिका के आय के स्रोत को बताएँ।
2. नगर निगम द्वारा लगाये जाने वाले कर को लिखें।
3. ग्राम पंचायत के कार्यों का वर्णन करें।
4. पंचायत समितियों के कार्यों का वर्णन करें।
5. जिला परिषद् के कार्यों का वर्णन करें।

### उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. पंचायती
2. जिला परिषदों
3. नगरपालिकाओं।
4. (ब)
5. (ब)
6. (स)।

### 30.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)



पुस्तकें

1. लोक वित्त—एच.एल. भाटिया, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।
2. भारतीय लोक वित्त प्रशासन—मंजूषा शर्मा, ओ.पी. बोहरा, रवि बुक्स।
3. मनी बैंकिंग : इंटरनेशनल ट्रेड एंड पब्लिक फाइनेंस—नी.थाई. सोमशेखर, अनमोल, 2004।
4. पब्लिक फाइनेंस—नंदकिशोर प्रसाद, एबीडी पब्लिकेशन, 2011।

**LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY**

Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)

Phagwara, Punjab (India)-144411

For Enquiry: +91-1824-300360

Fax.: +91-1824-506111

Email: [odl@lpu.co.in](mailto:odl@lpu.co.in)